* श्रीगणेशायनमः *

गुरुमण्डलग्रन्थमालाया विंशं पुष्पम्

स्कन्दपुराणम्

—*—

श्रीमन्महर्षि-कृष्णद्वैपायनव्यासविरचितम्

तस्य

वैष्णवखण्डात्मको

द्वितीयो भागः

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम् ।
सिद्धौघं वटुकत्रयम्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् (शाम्भवम्) ॥
वीरान्द्व्यष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम् ।
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्देगुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्लाइव रो,

कलकत्ता—१

प्रथमसंस्करणम्

५०००

वैक्रमाब्दः २०१७

ख्रैस्ताब्दः १९६०



Gurumandal Series No. XX

SKANDAPURANAM

Second Volume



VAISHNAVA KHANDAM

BY

Shrimanmaharsi Krishna Dwaipayan Vedavyas.

Part II

5, CLIVE ROW

CALCUTTA-1

Vikram Era	First Edition	Christian era
2017	5000	1960

मुद्रकः

सारनमण्डलान्तर्गत गोरियाकोठी
निवासी श्रीमत्स्वर्गतगोपालप्रसाद
सूनुः श्रीअवधकिशोरसिंहः
स्वयन्त्रालये

गोपाल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स

नामके

स्थानम् :—८७ए, राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट,
कलकत्ता—६

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

स्कन्दपुराण के द्वितीयवैष्णवखण्ड के विषय में

श्री परब्रह्म सच्चिदानन्दघन परात्परतर की असीम अनुकम्पा से संस्कृत-प्रेमी पुराणानुसन्धानकर्त्ता ज्ञानसर्वस्व विद्वद्वर्ग की सेवा में स्कन्दपुराण के द्वितीय श्रीवैष्णवखण्ड को प्रस्तुत करते हुए विशेष हार्दिक आनन्द अनुभव होता है। इस विशाल-काय महापुराण के प्रकाशन का दायित्व लेते हुए महती कठिनाइयाँ उपस्थित हुई हैं। कुछ हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रहालयों को वार-वार इसमें अनुपलब्ध ग्रन्थभाग के लिये प्रार्थना करते रहने पर भी जो प्रकाशनीय सामग्री इसमें नहीं आ सकी है उसकी ओर विद्वत्समुदाय का ध्यान आकर्षित करना परमकर्त्तव्य है जिससे भविष्यमें उन विशेष स्थलोंको पुस्तकाकारही परिशिष्ट में त्रुटिपरिमार्जन के रूप में प्रकाशित किया जा सके।

प्रथम भूमिवाराहखण्ड के अनन्तर पुरुषोत्तमक्षेत्र माहात्म्य में ४६ वीं अध्याय के आरम्भ से अन्तिम ६० वीं अध्याय के ४६ वें श्लोक तक का पाठ कलकत्ता के बङ्गवासी मुद्रणालय के बङ्गाक्षर मुद्रितग्रन्थ में अधिक मिलने से उसे प्रस्तुत ग्रन्थ में सम्मिलित किया गया है। इसे उपलब्ध ग्रन्थसंस्करणों से विशेष पाठ समझकर ही कृपालु विद्वान् इसे ग्रहण करने की कृपा करेंगे।

कुछ विशेष पाठ जो तीनों संस्करणों में सम्मिलित नहीं हैं और नारदीय पुराणोक्त स्कन्दपुराणके कार्त्तिकमाहात्म्यकी विषयसूचीमें जिस मदनालसमाहात्म्य और धूम्रकोशाख्यान का निरूपण आया है, वह इसमें अप्राप्य होने से नहीं गया है साथ ही मार्गशीर्षमाहात्म्य के बाद द्वादशवनमाहात्म्य भी सम्मिलित नहीं हुआ है। जैसे जैसे हस्तलिखितग्रन्थों में अथवा स्वतन्त्र उपलब्धपुस्तकों से ये भाग मिलते जावेंगे इन्हें परिशिष्ट में स्थान दिया जाता रहेगा।

इसीप्रकार भागवतमाहात्म्य के अनन्तर माघमासमाहात्म्य की १० अध्यायों का उल्लेख आता है जो अप्राप्य है। उपर्युक्त स्कन्दपुराण की विषयानुक्रमणिका के अनुसार माहेश्वरखण्ड के महाकाल की आविर्भावाध्याय के साथ वर्णन आता है उसका केवल वृद्धवासुदेव नाम से थोड़ा-सा प्रसङ्गोपात्त निरूपण कियाजाकर सविशेष सम्पूर्ण प्रकरण छूट गया था; उसे अविकल श्रीवेङ्कटेश्वर मुद्रणालय के स्कन्दपुराण में वैष्णवखण्ड में मुद्रण प्राप्त होने से इस भाग में प्रस्तुत किया जा सका है। यह सम्पूर्ण प्रकरण ही अध्यायानुगत है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के माहेश्वर एवं वैष्णव खण्डों की विषयानुक्रमणिका देखने से उपर्युक्त अबतक प्राप्त एवं अप्राप्त ग्रन्थस्थल का पूर्णविवरण आपलोगों की सेवा में प्रस्तुत हो सकेगा। अतः नारदपुराण के पूर्वभागस्थ बृहदुपाख्यान चतुर्थपाद के १०४ की अध्याय में प्रतिपादित अंश इस संदर्भ में अविकलरूप से प्रस्तुत है :—

ब्रह्माबोले—हे मरीचे! जिसके प्रत्येक पद में महादेव जी साक्षात् स्थित हैं ऐसे स्कन्द नाम के पुराण कोमैं कहता हूं तुम ध्यान से सुनो शतकोटिप्रविस्तर पुराणमें जो शिव की महिमा का मैंने वर्णन किया, उसके सारांशको विस्तार से कह दिया है सम्पूर्णपाप को नाश करने वाले प्रायः इक्यासी हजार श्लोकों के

श्रीनारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे १०४ अध्याये प्रतिपादिता विषयानुक्रमणिका

ब्रह्मोवाच

श्रृणु वक्ष्ये मरीचे! च पुराणं स्कन्दसञ्ज्ञितम्।
यस्मिन्प्रतिपदं साक्षान्महादेवो व्यवस्थितः॥

स्कन्दपुराण को यहाँ पर सात ही खण्ड में वर्णन किया है जिस पुराण में सम्पूर्ण सिद्धियों को देनेवाले शिव जी के चरित्र तथा माहेश्वर धर्म तत्पुरुषकल्पमें जोकार्त्तिकेय जी के द्वारा प्रकाशित किये गये वृत्त हैं। ऐसे स्कन्द-पुराण को जो सुनता है अथवा पढ़ता है वह साक्षात् शिव ही है।

प्रथम माहेश्वरखण्ड में प्रतिपादितः—

उस स्कन्दपुराण का पहला माहेश्वरखण्ड है। जिसमें प्रायः १२ हजार से न्यून श्लोक हैं ये सब बहुत पुण्यदायक हैं अनेक पापोंके नाशक तथा बहुत शिक्षा-प्रद कथाओंसे युक्त हैं और साथही असङ्ख्य सच्चरित्र कथाओं से परिपूर्ण तथा स्वामी कार्त्तिकेय के माहात्म्य के सूचक हैं।

इसमें सर्वप्रथम केदारमाहात्म्य में पुराण का उपक्रम वर्णित है। उसके बाद दक्षप्रजापति के यज्ञ की कथा है। तदनन्तर शिवलिङ्ग की पूजा करने से जो फल मिलता है उसका वर्णन है। तत्पश्चात् समुद्रमन्थन का वृत्तान्त है फिर देवेन्द्र (इन्द्र) का चरित्र वर्णित है। इसके अनन्तर पार्वती जी का वृत्तान्त नका विवाह, कार्त्तिकेय की उत्पत्ति का वर्णन फिर स्कन्दका तारकासुर के साथ हुए युद्ध का वर्णन है।

पुराणेशतकोटौ तु यच्छैवंवर्णितंमया। लक्षितस्याऽर्थजातस्यसारोव्यासेनकीर्त्तितः

स्कन्दाह्वयस्याऽत्र खण्डाःसप्तैव परिकीर्तिताः।

एकाशातिसहस्रन्तु स्कान्दं सर्वाघकृन्तनम्॥

यः श्रृणोति पठेद्वाऽपि स तु साक्षाच्छिवःस्थितः।

यत्र माहेश्वराधर्मा षण्मुखेन प्रकाशिताः॥

कल्पे तत्पुरुषे वृत्ताः सर्वसिद्धिविधायकाः।

तदनन्तर चण्डाख्यान से संयुक्त शिव जी का वृत्तान्त वर्णित है। फिर द्यूतप्रवर्त्तनाख्यान तथा नारद जी का समागम कहा गया है।

इसके वाद कुमारमाहात्म्य में पञ्चतीर्थ की कथा धर्मवर्मा राजा का चरित्र, नदीसागर कीर्तन किया गया है इसके पश्चात् नाड़ीजङ्घ की कथा सहित इन्द्रद्युम्न की कथा है। फिर पृथ्वी का प्रादुर्भाव, दमनक की कथा, पृथ्वी-सागर सङ्गम तीर्थ और कुमारेश की कथा वर्णित है। तदनन्तर अनेक कथाओं से परिपूर्ण तारकासुर का युद्ध फिर तारकासुर का वध और पञ्चलिङ्ग की स्थापना कही गयी है।

इसके अनन्तर अत्यन्त पुण्यप्रद ऊर्ध्वलोक के वर्णन सहित सब द्वीपों का वर्णन है, फिर ब्रह्माण्ड की स्थिति तथा परिमाण और वर्करेश की कथा वर्णित की गई है। पुनः महाकाल की उत्पत्ति तथा उसकी महती अद्भुत कथा कही गई है। फिर भगवान् वासुदेव का माहात्म्य और कोरितीर्थ का प्रसङ्ग सविस्तर निरूपित है।

तत्रप्रथमेमाहेश्वरखण्डे :—

तत्रमाहेश्वरश्चाऽऽद्यःखण्डःपापप्रणाशनः। किञ्चिन्न्यूनार्कसाहस्रोबहुपुण्योबृहत्कथः
सुचरित्रशतैर्युक्तः स्कन्दमाहात्म्यसूचकः। यत्रकेदारमाहात्म्ये पुराणोपक्रमः पुरा
दक्षयज्ञकथा पश्चाच्छिवलिङ्गार्चने फलम्। समुद्रमथनाख्यानं देवेन्द्रचरितं ततः॥
पार्वत्याः समुपाख्यानं विवाहस्तदनन्तरम्। कुमारोत्पत्तिकथनं ततस्तारकसङ्गरः॥
ततः पशुपताख्यानं चण्डाख्यानसमाचितम। द्यूतप्रवर्तनाख्यानं नारदेन समागमः॥
ततः कुमारमाहात्म्ये पञ्चतीर्थकथानकम्। धर्म्मवर्म्मनृपाख्यानं नदीसागरकीर्तनम्
इन्द्रद्युम्नकथा पश्चान्नाडीजङ्घकथाचिता। प्रादुर्भावस्ततोमह्याःकथा दमनकस्य च॥
महीसागरसंयोगः कुमारेशकथा ततः। ततस्तारकयुद्धश्च नानाख्यानसमाचितम्॥
वधश्च तारकस्याऽथपञ्चलिङ्गनिवेशनम्। द्वीपाख्यानंततःपुण्यंऊर्ध्वलोकव्यवस्थितः

पश्चात् गुप्तक्षेत्रमें अनेक तीर्थों का वर्णन है। और अत्यन्त पवित्रपाण्डवों की कथा और महाविद्या के प्रसाधन का वर्णन है।

फिर तीर्थयात्राकी समाप्ति, अद्भुतरूपसे वर्णितकुमार (कार्त्तिकेय) का अपूर्व चरित्र तथा अरुणाचल के माहात्म्य में सनक और ब्रह्मा की कथा का वर्णन है।

इसकेबाद पार्वतीजी की तपश्चर्या का वर्णन और उन सब तीर्थों का निरूपण फिर आश्चर्यजनक महिषासुरके पुत्रका चरित्र और उसका वध कहा गया है।

तदनन्तर शोणाचल पर पार्वती का तपोवास और नित्यदा का परिकीर्तन इत्यादि स्कन्दपुराण के माहेश्वरखण्ड में कहा गया है।

दूसरे वैष्णवखण्ड में वर्णित :—

ब्रह्मा जी कहते हैं :—

उस स्कन्दपुराण का दूसरा वैष्णवखण्ड है। उसका कथाख्यान मैं कहता हूँ सुनो :—

सर्वप्रथम वाराह भगवान् के द्वारा पृथ्वी के उद्धार का वर्णन है। जिसमें अनेक पापों के नाशक वेङ्कटगिरि का माहात्म्य कहा गया है फिर लक्ष्मी की पवित्र कथा, श्रीनिवास और उनकी स्थिति का वर्णन है।

ब्रह्माण्डस्थितिमानञ्च वर्करेशकथानकम्। महाकालसमुद्भूतिःकथाचाऽस्यमहाद्भुता
वासुदेवस्य माहात्म्यं कोरितीर्थं ततःपरम्। नानातीर्थसमाख्यानंगुप्तक्षेत्रेप्रकीर्तितम्
पाण्डवानांकथापुण्या महाविद्याप्रसाधनम्। तीर्थयात्रासमाप्तिश्चकौमारमिदमद्भुतम्
अरुणाचलमाहात्म्ये सनकब्रह्मसंकथा। गौरीतपः समाख्यानं तत्तत्तीर्थनिरूपणम्
महिषासुरजाख्यानंवधश्चास्यमहाद्भुतः। शोणाचलेशिवास्थानंनित्यदापरिकीर्त्तितम्
इत्येष कथितः स्कान्दे खण्डो माहेश्वरोऽद्भुतः॥

द्वितीये वैष्णवखण्डे :—

ब्रह्मोवाच

द्वितीयो वैष्णवःखण्डस्तस्याख्यानानि मे शृणु।

यहाँ पर कुलालाख्यान, सुवर्णमुखरीकथा तथा अनेक कथाओं से संयुक्त भारद्वाज की अद्भुत कथा कही गई है। तत्पश्चात् अनन्त कीर्त्ति को देने वाला तथा सम्पूर्ण पापों का संहार करने वाला मतङ्ग और अञ्जना का सम्वाद कहा गया है। इसके वाद उत्कल देश में पुरुषोत्तम का माहात्म्य वर्णित है। फिर मार्कण्डेयमुनि, अम्बरीष राजा, इन्द्रद्युम्न, और विद्यापति के शुभकथाओं का वर्णन है। हे वाड़व ! फिर जैमिनि का चरित्र, नारद का वृत्तान्त, नीलकण्ठ का समाख्यान और नरसिंह भगवान् का वर्णन है। पुनः इन्द्रद्युम्न राजा के अश्वमेध की कथा और उसकी ब्रह्मलोक यात्रा, तथा रथयात्रा विधि इसके वाद जन्मस्नान विधि का वर्णन है।

तत्पश्चात् दक्षिणा मूर्त्ति का प्रसङ्ग तथा गुण्डिचाख्यान वर्णित है, इसके वाद रथरक्षाविधान और शयनोत्सव का वर्णन है।

इसकेवाद ही श्वेतोपाख्यान और वह्न्युत्सव का निरूपण किया गया है। तथा दोलोत्सव नामक भगवान् के वार्षिकव्रत को कहा गया है।

प्रथमं भूमिवाराहं समाख्यानं प्रकीर्त्तितम् ॥
यत्र वोचककुभस्य माहात्म्यं पापनाशनम् ।
कमलायाः कथापुण्या श्रीनिवासस्थितिस्ततः ॥
कुलालाख्यानकञ्चाऽत्र सुवर्णमुखरीकथा । नानाख्यानसमायुक्ता भारद्वाज कथाऽद्भुता
मतङ्गाञ्जनसम्वादः कीर्तितः पापनाशनः । पुरुषोत्तममाहात्म्यं कीर्तितंचोत्कले ततः
मार्कण्डेयसमाख्यानमम्बरीषस्य भूपतेः । इन्द्रद्युम्नस्यचाख्यानंविद्यापतिकथा शुभा
जैमिनेः समुपाख्यानं नारदस्याऽपि बाडव !। नीलकण्ठसमाख्यानंनारसिंहोपवर्णनम्
अश्वमेधकथा राज्ञोब्रह्मलोकगतिस्तथा । रथयात्राविधिःपश्चाज्जन्मस्नानविधिस्तथा
दक्षिणामूर्त्त्युपाख्यानं गुण्डिचाख्यानकं ततः ।
रथरक्षाविधानञ्च शयनोत्सवकीर्त्तनम् ॥
श्वेतोपाख्यानमत्रोक्तं वह्न्युत्सवनिरूपणम् ।

अपरञ्च कामनाओं की प्राप्ति करनेवाले जनों से विष्णु पूजा एवं उद्दालक नियोग का आख्यान मोक्षसाधन व नाना योगों का निरूपण व दशावतार कथा स्नानादि का वर्णन यह उत्कल खण्ड में वर्णित है। इसके बाद बदरिकाश्रम का माहात्म्य जो पापों का नाश करने वाला तथा अग्नि आदि तीर्थों का माहात्म्य वैनतेय शिलामाहात्म्य भगवान् के वासस्थान का कारण कापालमोचनतीर्थ पञ्चधारा एवं मेरुसंस्थापन तीर्थ का वर्णन है।

इसके आगे कार्त्तिकमास माहात्म्य मदनालसमाहात्म्य एवं धूम्रकोशाख्यान का वर्णन है कार्त्तिक मासमें सम्पूर्ण दिनकृत्योंका वर्णन, भुक्ति-मुक्ति एवं कीर्त्तिको देने वाले पञ्चभीष्माख्यान व्रत का माहात्म्य व स्नान का विधान; मार्गशीर्षमाहात्म्य में पुण्ड्रादिकों का कीर्त्तन, मालाधारण का पुण्य, पञ्चामृत स्नान का पुण्य, घण्टा-नादादिकोंका फल, नाना पुष्पोंसे पूजाफल, तुलसी दलका फल, नैवेद्यका माहात्म्य, हरिवासर कीर्त्तन, अखण्डैकादशी का पुण्य तथा जागरण का फल मत्स्योत्सव विधान, नाम माहात्म्य का वर्णन ध्यानादि का पुण्यकथन मथुरामाहात्म्य और मथुरातीर्थ का माहात्म्य वर्णित है।

इसके आगे द्वादशवन-माहात्म्य फिर श्रीमद्भागवत माहात्म्य में अन्तर्लीला का प्रकाशन करने वाला वज्रशाण्डिल्य का सम्वाद वर्णित है। इसके बाद माघ-माहात्म्य जिसमें स्नान दान जप का फल एवं नाना आख्यानों का वर्णन दश

दोलोत्सवो भगवतो व्रतं साम्वत्सराभिधम् ॥
पूजा च कामिभिर्विष्णोरुद्दालकनियोगकः। मोक्षसाधनमत्रोक्तंनानायोगनिरूपणम्
दशावतारकथनं स्नानादिपरिकीर्त्तनम्। ततोबदरिकायाश्च माहात्म्यं पापनाशनम् ॥
अग्न्यादितीर्थमाहात्म्यं वैनतेयशिलाभवम्। कारणंभगवद्वासे तीर्थंकापालमोचनम्
पञ्चधाराभिधं तीर्थं मेरुसंस्थापनं तथा। ततःकार्त्तिकमाहात्म्येमाहात्म्यंमदनालसम्
धूम्रकोशसमाख्यानंदिनकृत्यानिकार्त्तिके। पञ्चभीष्मव्रताख्यानंकीर्त्तिदंभुक्तिमुक्तिदम्

अध्याय में किया है। तदनन्तर वैशाखमाहात्म्य में शय्यादानादि का फल, जलदानादिविधि, कामदेवाख्यान, श्रुतदेवचरित्र, व्याध का उपाख्यान, एवं अक्षयतृतीया आदि का विशेष पुण्यवर्णन किया है।

फिर अयोध्यामाहात्म्य में चक्रब्रह्माह्वतीर्थ, ऋणपापविमोक्षाख्यतीर्थ, सहस्रधारातीर्थ, स्वर्गद्वार,चन्द्रहरि व धर्महरिका वर्णन, स्वर्णवृष्टि, तिलोदा, सरयू युति, सीताकुण्ड, गुप्तहरि, सरयूघर्घरासङ्गम, गोप्रचारतीर्थ, दुग्धोद, गुरुकुण्डादि-पञ्चतीर्थ, घोषार्कादितेरहतीर्थ, और गयाकूप का माहात्म्य तथा माण्डव्य आदि आश्रमों का माहात्म्य एवं अजित आदिमानस तीर्थों का वर्णन है इसतरह वैष्णवखण्ड का सुन्दर वर्णन किया गया है।

इस महत्तर कार्य को सम्पादन करने में व्याकरणाचार्य श्री पं० ब्रह्मदत्तजी त्रिवेदी एम० ए० (लक्ष्मणगढ़-सीकर) और शास्त्री श्री रामनाथदाधीच मिश्र पुराण-सांख्य-स्मृतितीर्थ (नवलगढ़-जयपुर) ने परिश्रम किया है। यह संस्था के अभिन्न अङ्ग हैं उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन और धन्यवाद प्रदर्शन उनकी गुरुतर दायिता को लघु बनाने जैसा है।

तद्व्रतस्य च माहात्म्ये विधानं स्नानजं तथा।
पुण्ड्रादिकीर्तनञ्चाऽत्र मालाधारणपुण्यकम् ॥
पञ्चामृतस्नानपुण्यं घण्टानादादिजंफलम्। नानापुष्पार्चनफलं तुलसीदलजम्फलम्
नैवेद्यस्य च माहात्म्यं हरिवासन (र) कीर्तनम्।
अखण्डैकादशीपुण्यं तथा जागरणस्य च ॥
मत्स्योत्सवविधानञ्च नाममाहात्म्यकीर्तनम्।
ध्यानादिपुण्यकथनं माहात्म्यं मथुराभवम् ॥
मथुरातीर्थमाहात्म्यं पृथगुक्तं ततःपरम्। वनानांद्वादशानाञ्चमाहात्म्यं कीर्त्तितं ततः
श्रीमद्भागवतस्याऽत्र माहात्म्यं कीर्तितम्परम्।

इस महान् कार्य के सम्पादन में जो अशुद्धियाँ मानव सुलभ अभिनिवेशादि दोष दृष्टियों से तथा प्रेस के कार्यकर्त्ताओं से अनवधानतावश रह गईं हैं उनके लिये मैं साञ्जलि क्षमा प्रार्थी हूं।

अन्त में, लक्ष्मणगढ़ (सीकर) की प्रसिद्ध संस्था श्री शारदा सदन पुस्तकालय का मैं साभार कृतज्ञ हूं। यदि श्री वेङ्कटेश्वरप्रेस, बम्बई से मुद्रित ग्रन्थ के अविकल भाग वहाँसे प्राप्त नहीं होते तो तुलनात्मक दृष्टिसे पाठभेदादिमें यथाशक्ति विशेष कठिनाइयाँ अनुभव होतीं। तदर्थ वहाँ की प्रबन्धकारिणीसमिति के स्थानीय सभापति श्री पण्डित गङ्गाधरजी जोशी साहित्य वेदान्त गणितभूषण, श्रीशारदासदनके पुस्तकालयाध्यक्ष पं० श्री महावीरप्रसादजी जोशी हिन्दी विशारद और सभी पुस्तकालय के सम्मान्य सदस्यों का आभार मानता हूं। हमें आशा है भविष्य में इसीप्रकार विशेष सहायता प्राप्त होती रहेगी तथा उत्साह वर्द्धन किया जाता रहेगा।

वज्रशाण्डिल्यसम्वादमन्तर्लीलाप्रकाशकम् ॥

ततोमाघस्यमाहात्म्यंस्नानदानजपोद्भवम्। नानाख्यानसमायुक्तंदशाध्यायेनिरूपितम्

ततोवैशाखमाहात्म्येशय्यादानादिजम्फलम्। जलदानादिविधयःकामाख्यानमतःपरम्

श्रुतदेवस्यचरितं व्याधोपाख्यानमद्भुतम्। तथाक्षयतृतीयादेर्विशेषात्पुण्यकीर्त्तनम् ॥

ततस्त्वयोध्यामाहात्म्ये चक्रब्रह्माह्वतीर्थके। ऋणपापविमोक्षाख्येतथाधारसहस्रकम्

स्वर्गद्वारं चन्द्रहरिर्धर्महर्य्युपवर्णनम् ॥

स्वर्णवृष्टेरुपाख्यानं तिलोदासरयूयुतिः। सीताकुण्डंगुप्तहरिःसरयूर्घर्घराचयः ॥

गोप्रचारश्च दुग्धोदं गुरुकुण्डादिपञ्चकम्। घोषार्कादीनितीर्थानित्रयोदशततःपरम्

गयाकूपस्य माहात्म्यं सर्व्वाघविनिवर्त्तकम्।

माण्डव्याश्रमपूर्व्वाणि तीर्थानि तदनन्तरम् ॥

अजितादि मानसादितीर्थानिगदितानिच। इत्येषवैष्णवःखण्डोद्वितीयःपरिकीर्तितः

पुराणप्रेमी विद्वद्वृन्दसे पुनः अपनी अपूर्णताओंके लिये क्षमाप्रार्थी हूं मैं आशा करता हूं कि इस अमित ज्ञान भाण्डागार महापुराण ग्रन्थराशिका अविकल पारायण कर आप सब जनता जनार्दन की सेवा में अपनी अमूल्य विश्वजनीन ज्ञानविभूति को प्रवचन, भाषण एवं सतत इसी प्रकार की सेवाओं द्वारा ज्ञानवर्द्धन करते हुए यथार्थ में "सर्वभूतहितेरताः" का आदर्श प्रस्तुत करेंगे।

"कामये दुःखतप्तानाम्प्राणिनामार्त्तिनाशनम्"

शुभमिति मार्गशीर्षशुक्ला ११
गीताजयन्ती भौमवार
२०१७ विक्रमसम्वत्

भवदीय
मनसुखराय मोर
५, क्लाइव रो,
कलकत्ता -१

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

अथ स्कन्दपुराणान्तर्गत द्वितीयवैष्णवखण्डस्य

विषयानुक्रमणिका

प्रारभ्यते

—:०*०:—

पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) क्षेत्रमाहात्म्यम्

श्रीबदरिकाश्रममाहात्म्यारम्भः

कार्त्तिकमासमाहात्म्यारम्भः

मार्गशीर्षमाहात्म्यारम्भः

भागवतमाहात्म्यारम्भः

वैशाखमासमाहात्म्यारम्भः

अयोध्यामाहात्म्यारम्भः

श्रीवासुदेवमाहात्म्यारम्भः

समाप्ताचेयं स्कन्दमहापुराणान्तर्गतद्वितीयवैष्णवखण्डस्यविषयानुक्रमणिका.

इतिविद्वज्जनकृपाभिलाषिणौ लक्ष्मणदुर्गाभिज्ञत (लक्ष्मणगढ-सीकर निवासि) ब्रह्मदत्तत्रिवेदि—नवलदुर्गवास्तव्य (नवलगढ़-जयपुर निवासि) रामनाथदाधीचौ ।

——*:०:*——

शुभमस्तु सताम् ॥

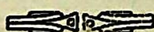
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

स्कन्दपुराणम्

तस्येदं द्वितीयं वैष्णवखण्डम्प्रारभ्यते



प्रथमोऽध्यायः

तत्राऽऽदौ वेङ्कटाचलमाहात्म्यम्

नारदस्य सुमेरुशिखरस्थयज्ञवराहदर्शनम्

व्यास उवाच

पावने नैमिषारण्ये शौनकाद्या महर्षयः। चक्रिरे लोकरक्षार्थं सत्रं द्वादशवार्षिकम् ॥१

तानभ्यगच्छत्कथको व्यासशिष्यो महामतिः।
मुनिरुग्रश्रवा नाम रोमहर्षणसम्भवः ॥ २ ॥

सम्यगभ्यर्चितस्तेषां सूतः पौराणिकोत्तमः। कथयामास तद्दिव्यं पुराणं स्कन्दनामकम्
सृष्टिसंहारवंशानां वंशानुचरितस्य च। कथां मन्वन्तराणां च विस्तरात्स न्यवेदयत्
कथास्तीर्थप्रभावाणां श्रुत्वा ते मुनिपुङ्गवाः। ऊचिरे वशिनं सूतं कथाश्रवणकाङ्क्षया

ऋषय ऊचुः

रोमहर्षण सर्वज्ञ पुराणार्थविशारदः !। माहात्म्यंश्रोतुमिच्छामोगिरीन्द्राणां महीतले

ब्रूहि त्वं नो महाभाग ! के प्रधाना महीधराः ।

श्रीसूत उवाच

एतमेव पुरा प्रश्नमपृच्छं जाह्नवीतटे । व्यासं मुनिवरश्रेष्ठं सोऽब्रवीन्मे गुरूत्तमः ॥ ७॥

व्यास उवाच

पुरा देवयुगे सूत नारदो मुनिसत्तमः । सुमेरुशिखरं गत्वा नानारत्नसुशोभितम् ॥

तन्मध्येविपुलं दीप्तं ब्रह्मणो दिव्यमालयम् । दृष्ट्वा तस्योत्तरे देशे पिप्पलद्रुममुत्तमम्

सहस्रयोजनोच्छ्रायं विस्तीर्णं द्विगुणंतथा । तन्मूलेमण्डपंदिव्यंनानारत्नसमन्वितम्

पद्मरागमणिस्तम्भैःसहस्रैःसमलंकृतम् । वैडूर्यमुक्तामणिभिःकृतस्वस्तिकमालिकम्

नवरत्नसमाकीर्णं दिव्यतोरणशोभितम् । मृगपक्षिभिराकीर्णं नवरत्नमयैः शुभैः ॥१२

पुष्परागमहाद्वारं सप्तभूमिकगोपुरम् । सन्दीप्तवज्रसुकृतकवाटद्वयशोभितम् ॥ १३॥

प्रविश्याऽसौ ददर्शान्तर्दिव्यमौक्तिकमण्डपम् । वैडूर्यवेदिकं तुङ्गमारुरोह महामुनिः॥

तन्मध्ये तुङ्गमतुलं वसुपादविराजितम् । ददर्श मुक्तासङ्कीर्णं सिंहासनं महाद्युति ॥

तन्मध्ये पुष्करंदिव्यंसहस्रदलशोभितम् । श्वेतंचन्द्रसहस्राभंकर्णिकाकेसरोज्ज्वलम्

तस्य मध्ये समासीनं पूर्णचन्द्रायुतप्रभम् । कैलासपर्वताकारं सुन्दरं पुरुषाकृतिम्

चतुर्बाहुमुदाराङ्गं वराहवदनं शुभम् । शङ्खचक्राभयवरान्बिभ्राणं पुरुषोत्तमम् ॥ १८ ॥

पीताम्बरधरं देवं पुंडरीकायतेक्षणम् । पूर्णेन्दुसौम्यवदनं धूपगन्धिमुखाम्बुजम् १९

सामध्वनिं यज्ञमूर्तिं स्रुक्तुण्डं स्रुवनासिकम् ।

क्षीरसागरसङ्काशं किरीटोज्ज्वलिताननम् ॥ २० ॥

श्रीवत्सवक्षसं शुभ्रयज्ञसूत्रविराजितम् । कौस्तुभश्रीसमुद्द्योतं समुन्नतमहोरसम्

जाम्बूनदमयैर्दिव्यैः सुरत्नाभरणैर्युतम् । विद्युन्मालापरिक्षिप्तशरन्मेघमिवोज्ज्वलम् ॥

वामपादतलाक्रान्तपादपीठविराजितम् । कटकाङ्गदकेयूरकुण्डलोज्ज्वलितं सदा ॥

चतुर्मुखवसिष्ठात्रिमार्कण्डेयैर्मुनीश्वरैः । भृग्वादिभिरनेकैश्च सेव्यमानमहर्निशम् ॥

इन्द्रादिलोकपालैश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः । सेवितं देवदेवेशं प्रणिपत्याऽभिगम्य च
दिव्यैरुपनिषद्भागैरभिष्टूय धराधरम् । नारदः परमप्रीतः स्थितो देवस्य सन्निधौ ॥
एतस्मिन्नन्तरेचाभूद्दिव्यदुन्दुभिनिःस्वनः ॥ २७ ॥
ततस्समागता देवी धरणी सखिसंयुता । सरत्नसागराकारदिव्याम्बरसमुज्ज्वला॥
सुमेरुमन्दराकारस्तनभारावनामिता । नवदूर्वादलश्यामा सर्वाभरणभूषिता ॥ २६ ॥
इलया वै पिङ्गलया सखीभ्यां च समन्विता ।
ततस्ताभ्यां समानीतं पुष्पाणां निचयं मही ॥ ३० ॥
श्रीमद्वराहदेवस्य पादमूले विकीर्य च । प्रणम्य देवदेवेशं कृताञ्जलिपुटा स्थिता ॥३१
तां देवीं श्रीवराहोऽपि ह्यालिङ्ग्याऽङ्के निधाय च ॥ ३२ ॥
पप्रच्छ कुशलं पृथ्वीं प्रीतिप्रवणमानसः ॥ ३३ ॥

श्रीवराह उवाच

त्वां निवेश्यमहादेवि! शेषशीर्षेसुखावहे । लोकंत्वयिनिवेश्यैवत्वत्सहायान्धराधरान्
इहाऽऽगतोऽस्म्यहं देवि ! किमर्थं त्वमिहाऽऽगता ॥ ३४ ॥

पृथिव्युवाच

मां समुद्धृत्य पातालात्सहस्रफणशोभिते । रत्नपीठ इवोत्तुङ्गे सरत्नेऽनन्तमूर्धनि ॥
कृत्वा मां सुस्थिरां देव ! भूधरान्संनिवेश्य च ॥ ३५ ॥
मद्धारणक्षमान्पुण्यांस्त्वन्मयान्पुरुषोत्तम । तेषु मुख्यान्महाबाहो मदाधारान्वदस्व मे

श्रीवराह उवाच

सुमेरुर्हिमवान्विन्ध्योमन्दरो गन्धमादनः । सालग्रामश्चित्रकूटो माल्यवान्पारियात्रकः
महेन्द्रो मलयःसह्यः सिंहाद्रिरपि रैवतः । मेरुपुत्रोऽञ्जनो नाम शैलः स्वर्णमयो महान्
एते शैलवराः सर्वे त्वदाधारा वसुन्धरे । ये मया देवसङ्घैश्च ऋषिसङ्घैश्च सेविताः ॥
एतेषु प्रवरान्वक्ष्ये तत्त्वतः शृणु माधवि !। सालग्रामश्चसिंहाद्रिश्शैलेन्द्रोगन्धमादनः
एते शैलवरा देवि दिशं हैमवतीं श्रिताः । दक्षिणस्यां प्रतीतांस्तुवक्ष्येशैलान्वसुन्धरे
अरुणाद्रिर्हस्तिशैलो गृध्राद्रिर्घटिकाचलः । एते शैलवराः सर्वे क्षीरनद्यास्समीपगाः

हस्तिशैलादुत्तरतः पञ्चयोजनमात्रतः । सुवर्णमुखरीनाम नदीनाम्प्रवरा नदी ॥४३॥
तस्या एवोत्तरे तीरे कमलाख्यं सरोवरम् । तत्तीरे भगवानास्ते शुकस्य वरदो हरिः
बलभद्रेण संयुक्तः कृष्णोभक्तार्तिनाशनः । वैखानसैर्मुनिगणैर्नित्यमाराधितोऽमलैः
कमलाख्यस्य सरस उत्तरे काननोत्तमे । क्रोशद्वयार्धमात्रे तु हरिचन्दनशोभिते ॥

श्रीवेङ्कटाचलो नाम वासुदेवालयो महान् ॥ ४६ ॥

सप्तयोजनविस्तीर्णः शैलेन्द्रोयोजनोच्छ्रितः । अस्तिस्वर्णमयोदेविरत्नसानुभृदायतः
इन्द्राद्या दैवतगणा वसिष्ठाद्यामुनीश्वराः । सिद्धाः साध्याश्चमरुतोदानवादैत्यराक्षसाः

रम्भाद्या अप्सरःसङ्घा वसन्ति नियतं धरे !॥ ४८ ॥

तपश्चरन्ति नागाश्च गरुडाः किन्नरास्तथा ।

एतैरधिष्ठितास्तत्रसरितःपुण्यदर्शनाः । सरांसिविविधान्यत्रसन्ति दिव्यानिमाधवि

तीर्थानाञ्चैव सर्वेषां शृणुष्व प्रवराणि वै ॥ ५० ॥

चक्रतीर्थन्दैवतीर्थं वियद्गङ्गा तथैव च । कुमारधारिका तीर्थम्पापनाशनमेव च ॥

पाण्डवं नामतीर्थञ्च स्वामिपुष्करिणी तथा ॥ ५१ ॥

सप्तैतानि वराण्याहुर्नारायणगिरौ शुभे । एतेषु प्रवरा देवि स्वामिपुष्करिणी शुभा

अस्यास्तु पश्चिमे तीरे निवसामि त्वया सह ।

आस्तेऽस्या दक्षिणे तीरे श्रीनिवासो जगत्पतिः ॥ ५३ ॥

गङ्गाद्यैःसकलैस्तीर्थैःसमासासागराम्बरे । त्रैलोक्येयानितीर्थानिसरांसिसरितस्तथा

तेषां स्वामित्वमापन्नं धरे ! स्वामिसरोवरे ॥ ५४ ॥

स्वामिपुष्करिणींपुण्यांसेवितुंदिव्यभूधरे । वसन्तिसर्वतीर्थानितेषांसंख्यांवदामिते

षट्षष्टिकोटितीर्थानि पुण्येऽस्मिन्भूधरोत्तमे ।

तेषु चात्यन्तमुख्यानि षट् तीर्थानि वसुन्धरे !॥ ५६ ॥

पञ्चानां तीर्थराजानां तुम्बोगर्भसमोमहान् । गर्भवासभयध्वंसी स्नातानाम्भूधरोत्तमे

धरण्युवाच

षट्तीर्थानिमहाबाहो! त्वयोक्तानि महीधरे । माहात्म्यंवदतेषांमे यथाकालंयथाविधि

फलानि तेषु स्नातानां नराणाम्वद भूधर !॥ ५८ ॥

श्रीवराह उवाच

नारायणाद्रिमाहात्म्यं वदामि शृणु माधवि । देवाश्चऋषयश्चैव योगिनः सनकादयः
कृतेऽञ्जनाद्रिं त्रेतायां नारायणगिरिं तथा ॥ ६० ॥
द्वापरे सिंहशैलञ्च कलौ श्रीवेङ्कटाचलम् । प्रवदन्तीह विद्वांसः परमात्मालयंगिरिम्
योजनानां सहस्रान्ते द्वीपान्तरगतोऽपि वा । यो नमेद्भूधरेन्द्रंतद्दिशमुद्दिश्यभक्तितः
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ६२ ॥
तस्मिन्षट्तीर्थमाहात्म्यं यथाकालम्वदामि ते ॥ ६३ ॥
शृणुष्वावहिताभद्रेसर्वपापप्रणाशनम् । कुम्भसंस्थेरवौमाघे पौर्णमास्याम्महातिथौ
मघानक्षत्रयुक्तायां भूधरेन्द्रे वसुन्धरे । कुमारधारिकानाम सरसी लोकपावनी ॥६५॥
यत्रास्तेपार्वतीसूनुःकार्तिकेयोऽग्निसम्भवः । देवसेनासमायुक्तःश्रीनिवासार्चकोऽमले
तस्यां यः स्नातिमध्याह्नेतस्यपुण्यफलंशृणु । गङ्गादिसर्वतीर्थेषु यः स्नातिनियमाद्वरे
द्वादशाब्दं जगद्धात्रि ! तत्फलं समवाप्नुयात् ।
योऽन्नं ददाति तत्तीर्थे शक्त्या दक्षिणयान्वितम् ।
स तावत्फलमाप्नोति स्नाने तूक्तं फलं यथा ॥ ६८ ॥
मीनसंस्थे सवितरि पौर्णमासीतिथौ धरे । उत्तराफाल्गुनी युक्ते चतुर्थे कालउत्तमे
पञ्चानामपि तीर्थानां तुम्बेऽथ गिरिगह्वरे । यः स्नाति मनुजो देवि पुनर्गर्भे न जायते
अग्निवाहस्थितो भानौ चित्रानक्षत्रसंयुते । पूर्णिमाख्येतिथौपुण्ये प्रातःकालेतथैवच
आकाशगङ्गासरितिस्नातो मोक्षवाप्नुयात् ॥ ७२ ॥
वृषभस्थे रवौ राधे द्वादश्यांरविवासरे । शुक्लेवाप्यऽथवा कृष्णे पक्षेभौमसमन्विते
शुक्ले वाप्यथवा कृष्णे भानुवारेण संयुते । पुष्यनक्षत्रसंयुक्ते हस्तर्क्षेण युतेऽपिवा
तीर्थे पाण्डवनाम्न्यत्र सङ्गवे स्नाति यो नरः । नेहदुःखमवाप्नोति परत्र सुखमश्नुते ॥
शुक्ले पक्षेऽथवा कृष्णे याऽर्कवारेण सप्तमी । पुष्यनक्षत्रसंयुक्ताहस्तर्क्षेणयुतापिवा
तस्यां तिथौ महाभागे पापनाशनसंज्ञके । तीर्थेयःस्नाति नियमाद्भूधरेन्द्रस्य मस्तके

कोटिजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते स नरोत्तमः ॥ ७७ ॥

श्रृणु देवि परङ्गुह्यमनन्ताख्ये महागिरौ । मद्दिव्यालयवायव्ये शिखरे गिरिगह्वरे ॥

देवतीर्थमितिख्यातं तटाकमतिशोभनम् ॥ ७८ ॥

तस्मिन्पुण्यतमे देवि ! स्नानकालम्वदामि ते ॥ ७९ ॥

गुरुपुष्ये व्यतीपाते सोमश्रवणके तथा । दिनेष्वेतेषु यः स्नाति तस्यपुण्यफलं श्रृणु

यानि कानीह पापानिज्ञानाज्ञानकृतानिच । तानि सर्वाणिनश्यन्ति देवतीर्थेऽतिपावने

पुण्यान्यपि च वर्धन्ते देवतीर्थनिमज्जनात् । दीर्घमायुरवाप्नोति पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥

अन्ते स्वर्गं समासाद्य चन्द्रलोके महीयते ॥ ८२ ॥

तद्दिनेष्वन्नदो देवि यावज्जीवान्नदो भवेत् । अतिगुह्यतमं देवि प्रोक्तन्तुभ्यं वसुन्धरे

व्यास उवाच

श्रुत्वाऽथ पृथिवी देवी प्रीतिप्रवणमानसा । इष्टाभिर्वाग्भिरतुलं तुष्टाव धरणीधरम्

धरण्युवाच

नमस्ते देवदेवेश! वराहवदनाऽच्युत । क्षीरसागरसङ्काश वज्रश्रृङ्ग! महाभुज !॥८५ ॥

उद्धृताऽस्मि त्वया देव !कल्पादौ सागराम्भसः ।

सहस्रबाहुना विष्णो ! धारयामि जगन्त्यहम् ॥ ८६ ॥

अनेकदिव्याभरणयज्ञसूत्रविराजित !। अरुणारुणाम्बरधर दिव्यरत्नविभूषित ॥८७॥

उद्यद्भानुप्रतीकाश पादपद्म नमोनमः । बालचन्द्राभ दंष्ट्राग्रमहाबल पराक्रम !॥८८॥

दिव्यचन्दनलिप्ताङ्ग ! तप्तकाञ्चनकुण्डल !। इन्द्रनीलमणिद्योति हेमाङ्गदविभूषित !॥

वज्रदंष्ट्राग्रनिर्भिन्न हिरण्याक्ष महाबल । पुण्डरीकाभिरामाक्ष! सामस्वनमनोहर ॥

श्रुतिसीमन्त भूषात्मन्सर्वात्मंश्चारुविक्रम !। चतुराननशम्भुभ्यां वन्दिताऽऽयतलोचन

सर्वविद्यामयाकार शब्दातीत नमो नमः । आनन्दविग्रहाऽनन्त कालकाल नमोनमः

इति स्तुत्वाऽचला देवी ववन्दे पादयोर्विभुम् ।

वन्दमानां समुद्वीक्ष्य देवः फुल्लविलोचनः ॥ ९३ ॥

उद्धृत्य धरणीं देवीमालिलिङ्गेऽथबाहुभिः । आघ्रायधरणीवक्त्रंवामाङ्केसन्निवेश्यच

आरुह्य गरुडेशानं जगाम वृषभाचलम् । मुनीन्द्रैर्नारदाद्यैश्च स्तूयमानो महीपतिः ॥
स्वामिपुष्करिणीतीरे पश्चिमे लोकपूजिते । आस्ते वराहवदनोमुनीन्द्रैस्तत्रपूजितः
वैखानसैर्महाभागैर्ब्रह्मतुल्यैर्महात्मभिः ॥ ९६ ॥

व्यास उवाच

तं दृष्ट्वा नारदः सूत! मुनीनामुक्तवान्पुरा । तदेतदहमश्रौषं तत्र वै मुनिसंसदि ॥ ९७॥
यत्पृष्टोऽहं त्वयासूतमाहात्म्यंधरणीभृताम् । मया तूक्तं यथावद्धि नारदाच्चपुराश्रुतम्
य इदं धर्मसम्वादमावयोः सूत! पावनम् । पठेद्वा देवपुरतो ब्राह्मणानां पुरस्तथा ॥
सर्वेषामपिवर्णानांश्रृण्वतांभक्तिपूर्वकम् । स प्रतिष्ठामवाप्नोति पुत्रपौत्रैःसमन्वितः
श्रृण्वतामपि सर्वेषां यदिष्टं तद्भविष्यति ॥ १०१ ॥

सूत उवाच

इति मे भगवान्व्यासःप्रोवाच मुनिसेवितः । यथाश्रुतं मया पूर्वं कृष्णद्वैपायनाद्गुरोः
तत्तथासर्वमेवाऽत्र मयाप्युक्तंमुनीश्वराः । श्रुत्वासूतवचस्त्वित्थंते प्रीतमनसोऽभवन्

ऋषय ऊचुः

सूत ! त्वयोक्तं भुवि पर्वतेषु पुण्येषु पुण्यस्य महीधरस्य ।
माहात्म्यमस्माकमहीन्द्रनाम्नः पापापहं मोक्षफलप्रदायकम् ॥ १०४ ॥
ततो वृषाद्रिं सम्प्राप्य वराहोधरणीयुतः । किमुक्तवान्धरण्यै स तन्नो ब्रूहि महामते

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येधरणीवराहसम्वादे नारदस्य सुमेरुशिखरस्थ-यज्ञवराहदर्शनप्राप्त्यादिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

श्रीवाराहमन्त्राराधनविधिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

श्रृणुध्वं मुनयः सर्वे कथाममुण्यां पुरातनीम् । वैवस्वतेऽन्तरे पूर्वं कृते पुण्यतमे युगे
नारायणाद्रौ देवेशं निवसन्तं क्षमापतिम् । वाराहरूपिणं देवं धरणी सखिभिर्वृता
प्रणम्य परिपप्रच्छ रक्तपद्मायतेक्षणम् ॥ ३ ॥

धरण्युवाच

आराध्यःकेन मन्त्रेणभवान्प्रीतोभविष्यति । तं मे वद त्वं देवेश यःप्रियो भवतःसदा
जपतां सर्वसम्पत्तिकारकं पुत्रपौत्रदम् । सार्वभौमत्वदश्चैव कामिनां कामदं सदा ॥
अन्ते यस्त्वत्पदप्राप्तिं ददाति नियमात्मनाम् । एवम्भूतं वद प्रीत्यामयिवाराहमानद

श्रीसूत उवाच

इति पृष्टस्तया भूम्या प्राह प्रीतिस्मिताननः ।

श्रीवराह उवाच

श्रृणु देवि परं गुह्यं सद्यः सम्पत्तिकारकम् । भूमिदं पुत्रदं गोप्यमप्रकाश्यंकदाचन ॥
किं च शुश्रूषवे वाच्यं भक्ताय नियतात्मने ॥ ६ ॥

ॐ नमः श्रीवराहाय धरण्युद्धरणाय च । वह्निजायासमायुक्तः सदाजप्योमुमुक्षुभिः
अयं मन्त्रो धरादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकः । ऋषिः सङ्कर्षणः प्रोक्तोदेवता त्वहमेव हि
छन्दः पङ्क्तिः समाख्याता श्रींबीजं समुदाहृतम् ।
चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं सद्गुरोर्लब्धतन्मनुः ॥ १२ ॥

जुहुयात्पायसान्नम्वैक्षौद्रसर्पिःसमन्वितम् । अथध्यानम्प्रवक्ष्यामिमनःशुद्धिप्रदायकम्
शुद्धस्फटिकशैलाभं रक्तपद्मदलेक्षणम् । वराहवदनं सौम्यश्चतुर्बाहुं किरीटिनम् ॥
श्रीवत्सवक्षसं चक्रशङ्खाभयकराम्बुजम् । वामोरुस्थितयायुक्तं त्वया मां सागराम्बरे

रक्तपीताम्बरधरं रक्ताभरणभूषितम् । श्रीकूर्मपृष्ठमध्यस्थशेषमूर्त्यब्जसंस्थितम् ॥

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सदा चाऽष्टोत्तरं शतम् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति मोक्षञ्चाऽन्ते व्रजेद् ध्रुवम् ॥ १७ ॥

प्रोक्तंमया ते धरणियत्पृष्टोऽहंत्वयाऽमले । अतः किन्ते व्यवसितम्ब्रूहि तद्विमलानने

श्रीसूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा ततो भूमिः पप्रच्छपुनरेवतम् । केनवाऽनुष्ठितन्देव पुराप्राप्तम्फलञ्च किम्

इति पृष्टः पुनर्देवः श्रीवराहोऽब्रवीदिदम् । पुरा कृतयुगे देवि धर्मोनाम मनुर्महान् ॥

ब्रह्मणोऽमुं मनुं लब्ध्वा जप्त्वाऽस्मिन्धरणीधरे ।
माञ्च दृष्ट्वा वरं लब्ध्वा प्राप्तोऽभून्मामकम्पदम् ॥ २१ ॥

इन्द्रोदुर्वाससःशापात्पुराभ्रष्टस्त्रिविष्टपात् । अनेनेष्ट्वाऽत्र मां देवि पुनःप्राप्तस्त्रिविष्टपम्

अन्येऽपि मुनयो भूमे! जप्त्वा प्राप्ताः पराङ्गतिम् ।
अनन्तः पन्नगाधीशो ह्यमुं लब्ध्वाऽथ कश्यपात् ॥ २३ ॥

श्वेतद्वीपे जपित्वैव बभूव धरणीधरः । तस्माज्जप्यः सदा चेह मनुष्यैश्च धरार्थिभिः

श्रीसूत उवाच

एतच्छ्रुत्वाऽथ सुप्रीता पुनः प्राह धराधरम् ॥ २५ ॥

धरण्युवाच

वेङ्कटाख्येमहाशैले श्रीनिवासोजगत्पतिः । कदाह्यायातिदेवेश श्रीभूमिसहितोऽमलः

कथं कल्पान्तरस्थायी भविष्यति जनार्दनः । एतद्ब्रूहि वराहात्मन्महत्कौतूहलं मम

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसम्वादे श्रीवराहमन्त्राराधनविध्यादि
वर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

अगस्त्यप्रार्थनयाभगवतःसर्वजनदृग्गोचरत्ववर्णनम्

श्रीवराह उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि पुरावृत्तं वरानने !। शृणु पुण्यं महादेवि सभविष्यं सहोत्तरम्
वैवस्वतेऽन्तरे देवि! पूर्वं कृतयुगेऽन्तरे। वायोस्तपो महद् दृष्ट्वा श्रीभूमिसहितोऽनघे
आगच्छच्छ्रीनिवासश्च स्वामिपुष्करिणीतटे ॥ २ ॥
दक्षिणेऽस्मिन्पुण्यतम आनन्दाख्यविमानके ।
वसिष्यति च श्रीकान्तो वायोः प्रियकरो हरिः ॥ ३ ॥
तदारभ्य हृषीकेशः सेनान्याराधितोऽनिशम् ।
आकल्पान्तमदृश्योऽस्मिन्विमानेऽसौ वसिष्यति ॥ ४ ॥

धरण्युवाच

अदृश्यो भगवान्मर्त्यैः कथं दृश्यो भविष्यति ॥ ५ ॥
श्रीनिवासोऽपि देवेशो भवद्दक्षिणपार्श्वगः। एतद्वद सुराधीश! जनैराराध्यते कथम्

श्रीवराह उवाच

अगस्त्योऽस्मिन्समासाद्यदृष्ट्वादेवंसनातनम् । आराध्यद्वादशाब्दंतंप्रीणयित्वापुनःपुनः
ययाचे तत्र सान्निध्यंभवान्दृश्योभवत्विति । एवमुक्तोहृषीकेशः श्रीभूमिसहितो धरे

श्रीभगवानुवाच

अहं दृश्यो भविष्यामित्वत्कृते सर्वदेहिनाम् । एतद्विमानंदेवर्षे न दृश्यं स्यात्कदाचन
आकल्पान्तं मुनीन्द्राऽस्मिन्दृश्योऽहं नाऽत्र संशयः ।
मुनिस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रीतः प्रायात्स्वमाश्रमम् ॥ १० ॥
ततश्चतुर्भुजो देवः स दृश्योऽभून्नरादिभिः ।
विमाने मुनिचिन्त्येऽस्मिन्नासिता च तथोत्तरम् ॥ ११ ॥

आराध्यमानः स्कन्देन वायुना सेवितः सदा। एवं गते महाकाले चतुर्युगसमन्विते
अष्टाविंशे तु सञ्जाते द्वापरान्ते वसुन्धरे। युद्धे च भारतेऽतीते तिष्ये सतियुगे तथा
विक्रमार्कादयो भूपाःशकाः शूद्रादयस्तथा। गमिष्यन्तिस्वर्गलोकं मामज्ञात्वावराननेे
ततः सोमकुलोद्भूतो मित्रवर्मा महारथः। तुण्डीरमण्डले राजा नारायणपुरे वसन्
भविष्यति वरारोहेमहाभाग्योदयो महान्। तस्मिञ्छासतिभूलोकं धर्मेणपृथिवीपतौ
अकृष्टपच्या पृथिवी सर्वसस्यविभूषणा। निरीतिकोऽभवत्सर्वो जनोधर्मसमन्वितः

तस्य पत्नी समभवत्पाण्ड्यकन्यामनोरमा।
तस्य जज्ञे कुलोत्तंसो वियन्नामासुतोऽस्यवै॥ १८॥

तस्य पत्नीतुधरणीनाम्नासीच्छकवंशजा। तस्मिन्राज्यंविनिक्षिप्यमित्रवर्मानृपोत्तमः

ययौ तपोवनं पुण्यं वेङ्कटाद्रेः समीपतः॥ २०॥

आकाशनामा तु महान्राजाऽभूत्सार्वभौमकः। एकदारव्रतो राजाधरणीसक्तचेतनः २१
यज्ञार्थं शोधयामास भुवमारणितीरतः। काञ्चनेन हलेनैव कृष्यमाणे धरातले॥२२॥
बीजमुष्टिं विकिरता दृष्टा कन्या धरोद्गता। पद्मशय्यागता रम्या सर्वलक्षणलक्षिता
तप्तजाम्बूनदमयी पुत्रिकेव विराजती। तां दृष्ट्वा स महीपालो विस्मयोत्फुल्ललोचनः
आदाय तनयाचेयं ममैवेति पुनःपुनः। जहर्ष मन्त्रिभिश्चैनं प्राह वागशरीरिणी॥२५
सत्यं तवैव तनया वर्धयस्व सुलोचनाम्। ततः प्रीतमना राजा स्वपुरं प्रविवेश ह
आहूय धरणीं देवीमिदमाह महीपतिः। देवदत्तामिमां पश्य भूतलादुत्थितां मम

आवाभ्यां तदपुत्राभ्यां पुत्रीयं भविता ध्रुवम्।
इत्युक्त्वा प्रददौ देव्या हस्ते प्रीत्या वियन्नृपः॥ २८॥

तस्यांगृहं प्रविष्टायांधरणीगर्भमादधौ। वियन्नृपश्चसुप्रीतोवीक्ष्यस्निग्धविलोचनाम्

उवाच फलिता सुभ्रूलता सान्तानिकी च मे।॥ ३०॥

अथ सा धरणी देवी काले कमललोचना। सुप्रशस्ते मुहूर्ते च स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु

ग्रहेषु सुषुवे पुत्रं मेषस्थे च दिवाकरे॥ ३१॥

देवदुन्दुभयो नेदुःपुष्पवृष्टिर्गृहेऽपतत्। ववौ वायुः सुखस्पर्शस्तज्जन्मदिवसे तदा

पुत्रसूतिप्रवक्तॄणां सुप्रीतः पुत्रजन्मनि । सर्वस्वदानमकरोच्छत्रचामरवर्जितम् ॥
कपिलाकोटिदानंचवृषभणां शताधिकम् । दिवसेद्वादशे पुण्येजातकर्मादिकाःक्रियाः
चकार नामधेयं च वसुदान इति स्वयम् ॥३४ ॥

श्रीवराह उवाच

आकाशतनयो देवि वसुदानो मनोरमः । ववृधे दिवसैर्बालः शुक्लपक्ष इवोडुराट् ॥
उपनीतोविनीतोऽसौगुरुभिर्ब्रह्मपारगैः । पितुरस्त्राणिशस्त्राणिमन्त्रवत्सोऽप्यशिक्षत
चतुष्पादं धनुर्वेदं साङ्गोपाङ्गमधीतवान् । पिता तेनाऽतिबलिना दुराधर्षः परैरभूत्
आकाश इव निष्पङ्को ग्रीष्मेभानुमता युतः । वैशाख इव मध्याह्ने दुःसहोदुर्निरीक्षकः

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसम्वादेऽगस्त्यप्रार्थनयाभगवतः
सर्वजनदृग्गोचरत्वादिवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

उद्यानवासिन्याःपद्मावत्याःसमीपेनारदागमनम्

धरण्युवाच

उक्तं भगवता तस्य वियत्पुत्रस्य नाम च ।
अयोनिजायास्तत्पुत्र्याः किं नाम च तदाऽकरोत् ॥१ ॥

श्रीसूत उवाच

इति पृष्टः पुनः प्राह श्रीवराहो जगत्पतिः ॥ २ ॥

श्रीवराह उवाच

आकाशराजो मतिमांस्तां दृष्ट्वा कमलेक्षणाम् ॥ ३ ॥
पद्मिनीति च नाम्ना वै चकार वसुधासुताम् ।

तां तु यौवनसम्पन्नां सखीभिःपरिवारिताम् ॥ ४ ॥
आरामे विहरन्तीं च शुककोकिलानादिते । यदृच्छयाऽऽगतस्तत्रनारदो मुनिसत्तमः
वनलक्ष्मीमिवाऽऽलोक्य विस्मयादिदमब्रवीत् ॥ ६ ॥

नारद उवाच

काऽसि कस्य सुता भीरु! हस्तं दर्शय मे तव ।
इत्युक्ता सा सुचार्वङ्गी स्वात्मानं मुनयेऽब्रवीत् ॥ ७ ॥
वियद्राजसुता ब्रह्मंल्लक्षणानि वदस्व मे । इत्युक्तः स तदा प्राह नारदो मुनिसत्तमः

नारद उवाच

शृणु त्वं चारुवदने! लक्षणानि वदामि ते । पादौ प्रतिष्ठितौ सुभ्रुरक्तपद्मदलान्वितौ
पादाङ्गुल्यः समा रक्ता रक्ततुङ्गनखान्विताः । गुल्फौ गूढौ समावेतौजङ्घेचारोमशेशुभे
जानुनीसमसुस्निग्धे समावूरू क्रमादुरू । नितम्बौ पृथुलौ पीनौ जघनंचिन्त्यमेव हि
नाभिर्मण्डलवान्निम्नःपार्श्वौते मेदुरावुभौ । त्रिम्वलीललितंमध्यंरोमराजिविराजितम्
स्तनौ पीनौ घनौ स्निग्धावुन्नतौ मग्नचूचुकौ । करौतेरक्तपद्माभौपद्मरेखासमन्वितौ
सुसूक्ष्मौ रक्तसत्पर्व निरन्तरसमाङ्गुली ॥ १३ ॥
शुकतुण्डसमाकारनखपङ्क्तिविराजितौ । दीर्घौच कोमलौ भद्रे भुजौतेपुष्पदण्डवत्
पृष्ठं ते वेदिवद्भाति विलग्नमृजु मध्यमम् । कण्ठस्तु रक्तोदीर्घश्चस्कन्धौचावनतौशुभे
मुखं प्रसन्नं सततमकलङ्कशशिप्रभम् । कपोलौ कनकादर्शसदृशौकुण्डलोज्ज्वलौ॥
तिलपुष्पसमाकारा नासिका ते शुभानने । अकलङ्काष्टमीचन्द्रसदृशोऽतिमनोहरः ॥
दृश्यतेऽयं ललाटस्ते नीलालकसुशोभितः । मूर्धा तेसमवृत्तश्चस्निग्धायतकचान्वितः
स्मितसंशोभिदशनं बिम्बाधरसमन्वितम् ।
मुखं ते विष्णुयोग्यं स्यादिति मे निश्चिता मतिः ॥ १६ ॥
नाभिस्ते दक्षिणावर्त आवर्तइवगाङ्गजः । त्वंहिक्षीराब्धिसम्भूतालक्ष्मीरिवहिदृश्यसे

श्रीवाराह उवाच

इत्युक्त्वा पूजितस्ताभिर्नारदोऽन्तर्दधे तदा ।

एतच्छ्रुत्वाऽथ तत्सख्यस्तामूचुः पद्मिनीं सखीम् ॥ २१ ॥
वनं गच्छाम? पुष्पार्थं वसन्तःसमुपागतः । कर्णिकाराश्चचूताश्चचम्पकाःपारिभद्रकाः
पलाशाः पाटलाः कुन्दा रक्ताशोकाश्च पुष्पिकाः ।
पद्मिन्यः सिन्धुवाराश्च मालत्यो यूथिका लताः ॥ २३ ॥
कह्लारकरवीराश्च सङ्घर्षादिव पुष्पिताः । पुष्पावचयनं कुर्मो वनेऽस्मिन्सुमनोहरे ॥
इत्युक्त्वा ता वनंजग्मुराकाशतनयायुताः । पुष्पाण्याहरमाणास्तुविचरन्त्यस्ततस्ततः
कश्चिद्गजेन्द्रंददृशुःशुभ्रदन्तद्वयोज्ज्वलम् । गण्डभित्तितलोद्भूतमदधाराद्वयोज्ज्वलम्
उन्नतं करिणीयूथैः समुपेतं रजोज्ज्वलम् । फूत्कारिपुष्करप्रोद्यच्छीकरापूरिताननम्
दृष्ट्वा चोद्विग्नहृदया वनस्पतिमुपाश्रिताः । एतस्मिन्नन्तरे चाऽऽशु ददृशुर्हयमुत्तमम् ॥
अकलङ्केन्दुधवलं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ।
स्फुरद्विद्युल्लतायुक्तशरन्मेघमिवोन्नतम् ॥ २६ ॥
तस्मिंस्तु पुरुषं कृष्णं मदनाकारवर्चसम् । पुण्डरीकदलाकारर्णान्तायतलोचनम् ॥३०
सुसूक्ष्मक्षौमसंवीतनीलचूलिकयोज्ज्वलम् ।
पद्मरागमणिद्योतिस्फुरत्कुण्डलमण्डितम् ॥ ३१ ॥
सुवर्णरत्नखचितशार्ङ्गदिव्यधनुर्धरम् । अपरेण करेणैव वहन्तं काञ्चनं शरम् ॥ ३२ ॥
पीतकक्षौमसंवीतकटिदेशं सुमध्यमम् । रत्नकङ्कणकेयूरकटिसूत्रविराजितम् ॥ ३३॥
विशालवक्षः संशोभिदक्षिणावर्तसंयुक्तम् । स्वर्णयज्ञोपवीतेनस्फुरत्स्कन्धंमनोहरम्
ईहामृगं समुद्दिश्य महावेगादनुद्रुतम् । तं दृष्ट्वा विस्मिता नार्यः सस्मितास्तस्थुरत्रवै
तं दृष्ट्वा हयमारूढं गजेन्द्रोनम्रमस्तकः । तुण्डमुद्धृत्य गर्जन्वै विनिवृत्त्यययौवनम्
तस्मिन्गतेगजेतत्र हयारूढः समाययौ । ईहामृगं विचिन्वानः पुष्पलावीसमीपतः
ताः समेत्य स चोवाच तुरगोपरिसंस्थितः । अत्रागतोमृगःकश्चिदीहामृगइतीरितः
दृष्टो वा भवतीभिः स ब्रूत मे कन्यका इति ॥ ३६ ॥

श्रीवराह उवाच

प्रत्यूचुस्तास्तु तं कन्या दृष्टोऽस्माभिर्न कश्चन ॥ ४० ॥

किमर्थमागतोऽस्माकं वनम्वरधनुर्धरः । अत्रावध्या मृगाः सर्वे वर्तमाना निषादप !॥
आशु गच्छ वनादस्मादाकाशनृपपालितात् । इति तासाम्वचःश्रुत्वाहयादवरुरोहसः
कास्तु यूयमियञ्चापि कन्यकाम्बुजसन्निभा । सुभगाचारुसर्वाङ्गीपीनोन्नतपयोधरा
ब्रूत मेऽहं गमिष्यामि श्रुत्वा स्वस्याऽऽलयङ्गिरिम् ॥ ४३ ॥
इति तस्या वचः श्रुत्वाधरण्यांत्मजयेरिता । सखीपद्मावतीप्राह निषादम्पर्वतालयम्
आकाशराजतनया वसुधातलसम्भवा । अस्माकं नायिका शूर! पद्मिनीनाम नामतः ॥
ब्रूहि त्वं सुभगाकार ! किन्नामा कस्य वा सुतः ।
जातिः का कुत्र ते वासः किमर्थन्त्वमिहाऽऽगतः ॥
इति पृष्टः स ताः प्राह मन्दस्मितमुखाम्बुजः ॥ ४६ ॥
द्विवाकरकुलम्प्राहुरस्माकन्तुपुराविदः । तस्य नामान्यनन्वाति पावनानिमनीषिणाम्
वर्णतो नामतश्चापि कृष्णं प्राहुतपस्विनः । ब्रह्मद्विषां सुरारीणांयस्यचक्रंभयावहम्
यस्यशङ्खध्वनिं श्रुत्वामोहमीयुर्हि वैरिणः । यस्य वै धनुषस्तुल्यं धनुर्नैवाऽमरेष्वपि
तं मां वीरपतिं प्राहुर्वेङ्कटाद्रिनिवासिनम् । तस्मादद्रितटात्सोऽहं निषादैरनुगैर्वृ तः ॥
मृगयार्थं हयारूढो युष्माकं वनमागतः । मयाऽप्यनुद्रुतः कश्चिन्मृगो वायुगतिर्ययौ
तमदृष्ट्वावनं पश्यन्दृष्टवान्सुभगामिमाम् ।कामादिहागतोऽहंवोमयाकिंलभ्यतेत्वियम्
इति कृष्णवचः श्रुत्वाक्रुद्धास्ताःपुनरब्रुवन् । आकाशराजोदृष्ट्वात्वांकृत्वानिगडबन्धनम्
यावन्नयति तावत्त्वं गच्छ शीघ्रं स्वमालयम् ॥ ५३ ॥
तर्जितस्ताभिरेवं स हयमारुह्यशीघ्रगम् । युक्तः स्वानुचरैः सर्वैर्ययौ द्रुततरं गिरिम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसम्वादे उद्यानवासिन्याः पद्मावत्याःसमीपे
नारदगमनश्रीनिवासमृगयादिवर्णनंनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

पद्मावतीदर्शनेनश्रीनिवासस्यमोहप्राप्तिः

श्रीवराह उवाच

सम्प्राप्यंचालयदिव्यमवतीर्यहयोत्तमात्। विसृज्यसोऽनुगान्सर्वान्देवान्कैरातरूपकान्
विश्रमध्वमिति प्रोच्यविवेशमणिमण्डपम् । आरुह्य मणिसोपानंपञ्चकक्षाअतीत्य च
मुक्तागृहं समासाद्य तस्मिँल्लोलायिते शुभे । नवरत्नमये मञ्चे सन्विवेशावशो हरिः
संस्मरन्पद्मगर्भाभांतामेवायतलोचनाम् । तनुमध्यांपीनकुचांमन्दस्मितमुखाम्बुजाम्
क्षीराब्धितनयामेव मेने पद्मोद्भवां शुभाम् ।
तस्यां गतमना देवः श्रीनिवासो मुमोह च ॥ ५ ॥
ततो मध्याह्नसमये कृत्वान्नं दिव्यमुत्तमम् । सूपदंशं सुगन्धं च देवार्हमतिशोभनम्
शुद्धान्नं पायसान्नं च गौडं मुद्गान्नमेव च । कृत्वा पञ्चविधापूपान्पूरिकावटकानपि ॥
देवं द्रष्टुं ययौ शीघ्रं सखी वकुलमालिका । पद्मावती पद्मपत्रा चित्ररेखासमन्विता
निवेश्य द्वारि देवस्यताः सर्वाः प्रमदोत्तमाः । विवेशतत्समीपंसास्वयंवकुलमालिका
गत्वा समीपं देवस्य ववन्दे भक्तिभावतः । दृष्ट्वाऽथ देवं विवशं पर्यङ्के रत्नभूषिते ॥
पादसंवाहनं कृत्वा निमीलितविलोचनम् । तंध्यायन्तंचकिमपिव्याजहारशुचिस्मिता
उत्तिष्ठ देवदेवेश किं शेषे पुरुषोत्तम !। परमान्नं कृतं देव ! भोक्तुमागच्छ माधव !॥
किं वा त्वमार्तवच्छेषे सर्वलोकार्तिनाशन । मृगयामटता देव किं दृष्टं भवता वने ॥
अवस्थाते विशालाक्ष! कामुकस्येवदृश्यते । कादृष्टादेवकन्यावामानुषीवाऽहिकन्यका
ब्रूहि मे त्वमचिन्त्यात्मन्कन्यां तां चित्तहारिणीम् ॥ १५ ॥

श्रीवराह उवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा निःश्वासमकरोद्विभुः । निःश्वसन्तंपुनःप्राहप्रीतावकुलमालिका
एवं मनोहरा का सा तवापि पुरुषोत्तम !। तामवोचद्धृषीकेशोवक्ष्यामि श्रृणु तत्त्वतः

श्रीभगवानुवाच

पुरा त्रेतायुगे पुण्ये रावणं हतवानहम् । तदा वेदवती कन्या साहाय्यमकरोच्छ्रियः
सीतारूपाऽभवल्लक्ष्मीर्जनकस्य महीतलात् । गते मयि तु मारीचं हन्तुं पञ्चवटीवने ॥
ममानुजोऽपिमामेवसीतया चोदितोऽन्वयात् । तदन्तरेराक्षसेन्द्रोहर्तुं सीतामुपाययौ
अग्निहोत्रगतो वह्निस्तं ज्ञात्वा रावणोद्यमम् ।
आदाय सीतां पाताले स्वाहायां सन्निवेश्य च ॥ २१ ॥
तेनैव रक्षसा स्पृष्टां पुरा वेदवतीं शुभाम् । अग्नौ विसृष्टदेहां तां संहर्तुं रावणं पुनः
सीताया रूपसदृशीं कृत्वा चैवोत्ससर्ज ह । सा रावणहृताभूत्वालङ्कायांचनिवेशिता
हते तु रावणे पश्चात्पुनरग्निंविवेशसा । अग्निस्तुरक्षितांलक्ष्मींस्वाहायांममजानकीम्
दत्त्वा हस्ते च मामाह सीतया सहितां सखीम् ।
इयं वेदवती देव सीतायाः प्रियकारिणी ॥ २५ ॥
सीतार्थं राक्षसपुरे तेन बन्दीकृता स्थिता । तस्मादेनां वरेणैव प्रीणय त्वं श्रिया सह
इति वह्निवचः श्रुत्वा सीता मामवदच्छुभा । मम प्रीतिकरीनित्यमियंवेदवतीविभो!
तस्मात्परां भागवतीं देवैनां वरय प्रभो !॥ २८ ॥

श्रीभगवानुवाच

तथा देवि करिष्यामि ह्यष्टाविंशे कलौ युगे । तावदेषा ब्रह्मलोके वसत्वमरपूजिता
पश्चात्तु भूमितनया भविष्यति वियत्सुता । इति दत्तवरा पूर्वं मया लक्ष्म्याचसुन्दरी
अद्य नारायणपुरे सम्भूता धरणीतलात् । पद्मासमा पद्मनेत्री पद्मा दत्तवरा सती॥३१
सखीभिरनुरूपाभिर्वने पुष्पाणि चिन्वती । मृगयामटता तत्र मया दृष्टा मनोरमा ॥
तस्यारूपं मया वक्तुं न शक्यं शतहायनैः । लक्ष्म्येव च तयामेऽद्यसङ्गमोभवितायदि
प्राणाः स्थिरा भविष्यन्ति सत्यमित्यवधारय ॥ ३४ ॥
त्वं तत्र गत्वातांकन्यांदृष्ट्वाबकुलमालिके । जानीहिरूपलावण्यादियंयोग्येतिचास्य वै
अनवद्या विशालाक्षी पद्मेन्दीवरलोचना ॥ ३५ ॥
इत्युक्त्वामोहमापन्नं तं प्राह बकुला पुनः । इतो गच्छामि देवेश! मनोज्ञा तव यत्र सा

मार्गं वद रमाधीश! गमिष्ये येन तां प्रति। एवमुक्तो रमाधीशस्तांप्राह वकुलस्रजम्

इतो गच्छ महाभागे! श्रीनृसिंह गुहायतः।

तन्मार्गेणाऽवतीर्याऽस्माद् भूधरेन्द्रान्मनोरमात् ॥ ३८ ॥

अगस्त्याश्रममासाद्य दृष्ट्वा लिङ्गं तदर्चितम्। अगस्त्येश इतिख्यातं सुवर्णमुखरीतटे
तीरेणैव ततो गच्छ शुकब्रह्म ऋषेर्वनम्। पश्यन्ती स्वर्णमुखरींतत्रकल्लोलमालिनीम्
तत्र पद्म सरोनाम पावनं पद्मसंयुतम्। तत्र स्नात्वाऽथ तत्तीरे तपन्तं मुनिसत्तमम्
छायाशुकं नमस्कृत्य कृष्णं च बलसंयुतम्। आराध्यमानं मुनिनाशुकेन सततं शुभे
इन्द्रनीलमणिश्यामं पीतनिर्मलवाससम्। तीर्थयात्रां गमिष्यन्तंबलभद्रंसिताकृतिम्
उपासयन्तम्मन्त्राणि मुक्तान्वितकरद्वयम्। उद्यन्तम्पादुकायुक्तम्बलभद्रम्प्रणम्य च ॥
आदाय स्वर्णकमलं सरसोऽस्माद्वरानने। तीर्त्वा सुवर्णमुखरीं वनान्युपवनानि च ॥
अरणीतीरमासाद्य विश्रम्य च वनान्तरे। नारायणपुरीं दृष्ट्वा विस्मयं च गमिष्यसि

तस्याश्चोपवने वृक्षान्पुष्पाढ्यान्फलसंयुतान्।

पनसाऽऽम्रशिरीषांश्च कुन्दतिन्दुकपाटलान् ॥ ४७ ॥

पुन्नागनागवरणरसालाङ्कोलचम्पकान्। बकुलामलकान्सालांस्तालहिन्तालपद्मकान्
जम्बूनिम्बकदम्बैलापिप्पलीमधुकार्जुनान्। प्रियङ्गुहिङ्गुखर्जूरमायूराशोकलोध्रकान् ॥
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षबदरीभूर्जकीचकान्। चिञ्चाकिंशुकमन्दारशाल्मलीबीजपूरकान् ॥
पूगनारङ्गलिकुचनारिकेलवनाकुलान्। मल्लिकामालतीकुन्दयूथिकाकेतकीयुतान् ॥
करवीराब्जसम्पन्नाम्राजरम्भाविराजितान्। मयूरकीरगरुडशुकसारससङ्कुलान् ॥५२॥
भृङ्गझङ्कारनिविडानारामान्सुमनोहरान्। पश्यन्ती परमं हर्षमवाप्य च नदीतटे ॥
गत्वा पूर्वोत्तरे मार्गे पुरीमिन्द्रपुरीसमाम्। गङ्गयेवाऽऽवृतांनित्यं सरितारणिनामया

आकाशराजनगरीं गत्वा तत्रोचितं कुरु ॥ ५५ ॥

श्रीवराह उवाच

इत्यादिश्य सुराधीशः सखीं तां बकुलाभिधाम्।

विसृज्य शयने शुभ्रे स शिश्ये श्रीसमन्वितः ॥ ५६ ॥

प्रणम्य देवदेवेशं सखी वकुलमालिका। गुञ्जामणिसमाकारं रक्ताश्वमधिरुह्य सा ॥
यथोक्तमार्गेण ययौ पश्यन्ती विविधान्मृगान्।
मत्तेभान्पर्वताकाराञ्छ्वेतदन्तविभूषितान् ॥ ५८ ॥
करिणीयूथसहिताञ्जलदादानतत्परान्। सिंहाञ्छतघनप्रख्यान्सिंहीयूथैरनुद्रुतान् ॥५९
शार्दूलक्षांश्च खड्गांश्च शरभान्गवयान्मृगान्।
कृष्णसारांश्च गोमायूञ्छशांश्च प्रियकानपि ॥ ६० ॥
सारसांश्च मयूरांश्चमार्जारान्वनगोचरान्। वृकाञ्छुकान्सूकरांश्चसुवाचःपक्षिणस्तथा
पश्यन्ती विविधाकारांस्तुष्यन्ती च मुहुर्मुहुः।
आससादाऽरणीतीरं पश्चिमं पादपाकुलम् ॥ ६२ ॥
अवतीर्याऽरुणादश्वादगस्त्येशमीपतः। दृष्ट्वाऽगस्त्येश्वरं लिङ्गमगस्त्येन सुपूजितम् ॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च विशश्राम नदीतटे ॥ ६४ ॥
तत्राऽऽगताराजगृहाद्योषितोदेवसन्निधौ। सखीःपद्मालयायास्ता दृष्ट्वा वकुलमालिका
गत्वा समीपे तासां सा किंवदन्ती स्म पृच्छति ॥ ६६ ॥

वकुलमालिकोवाच

कायूयं योषितो ब्रूत विचित्राभरणस्रजः। कुतः समागता ह्यत्र किंकार्यंवोऽमलाननाः
तास्तु तस्यावचःश्रुत्वास्मितपूर्वमथाऽब्रुवन्। शृणुष्वावहितादेविवयंवक्ष्यामहेऽधुना

इति श्रीस्कन्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येधरणीवराहसम्वादेपद्मावतीदर्शनेनश्रीनिवासस्य मोह-प्राप्त्यादिवर्णनंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

वकुलमालिकाम्प्रतिसखीविनिवेदितपद्मावत्युदन्तवर्णनम्

योषित ऊचुः

वयमाकाशराजस्य शुद्धान्तनिलयाः स्त्रियः । सख्यः पद्मालयाया वै दुहितुर्वसुधापतेः
राजपुत्रीं पुरस्कृत्य गताः पूर्वं वनान्तरम् । कुर्वन्त्यः पुष्पावचयं राजपुत्र्यर्थमाकुलाः
वृक्षमूले समासीनास्तत्रपश्यामपूरुषम् । इन्द्रनीलमणिश्याममिन्दिरामन्दिरोरसम्
ईषत्स्मितमुखं चारुपीनदीर्घभुजद्वयम् । मृष्टपीताम्बरं हेमबाणबाणासनोज्ज्वलम् ॥
सुवर्णमुकुटं हारकेयूरादिविभूषितम् । तं तु पद्मालया दृष्ट्वा सखी कमललोचना ॥

द्रुतहेमनिभाकारा पश्य पश्येति साऽब्रवीत् ।
पश्यन्तीनां तदाऽस्माकं गतोऽन्तर्धानमाशु सः ॥ ६ ॥
सा सखी मूर्च्छिताऽस्माभिर्नीता राजगृहं ततः ॥ ७ ॥

दृष्ट्वाऽस्वस्थांनृपः पुत्रीमपृच्छद्दैवचिन्तकम् । वदविप्रेन्द्र पुत्र्या मे ग्रहचारफलं मुने
बृहस्पतिसमोविप्रोविचार्याऽऽत्मनि खेचरान् । अनुकूला ग्रहाःसर्वे तवपुत्र्यानृपोत्तम
किन्तु नित्यं ग्रहफलं किञ्चिद्भ्रान्तिकरं नृप । तमुवाच पुनर्धीमान्प्रश्नकालंविचार्यच
छायां गुणित्वा लग्नञ्चतत्फलानिविचार्यच । लग्नेलग्नाधिपश्चन्द्रःकेन्द्रेचैवबृहस्पतिः
निद्राति दिनपक्षी तु प्रश्नपक्षीतुराज्यगः । शृणुराजन्फलंतस्यस्वास्थ्यमेवभविष्यति
उत्तमः पुरुषः कश्चिदागतः कन्यकाम्प्रति । तं दृष्ट्वा मूर्च्छिता पुत्रीतेनयोगंसमेष्यति
तेनैव प्रेषिताः काचिदागमिष्यतिकन्यका । सातुवक्ष्यतियद्वाक्यंतद्धितंतेभविष्यति
तत्कुरुष्व महाराज ! सत्यंसत्यं वदाम्यहम् । किंचसर्वार्थदंयत्तुसर्वव्याधिविनाशनम्

वक्ष्यामि तत्कुरुष्वाऽद्य पुत्र्यास्तव सुखावहम् ।
कार्याऽगस्त्यलिङ्गस्य ब्राह्मणैरभिषेचनम् ॥ १६ ॥
इत्युक्त्वाऽथ गृहं यातो राजानं दैवचिन्तकः ॥ १७ ॥

आकाशराजोऽपि तदा विप्रानाहूय वैदिकान् ।
अभ्यर्च्याऽऽज्ञापयामास गत्वा देवालयं द्विजाः ॥ १८ ॥
महाभिषेकं शम्भोश्च कुरुध्वं मन्त्रपूर्वकम् । इत्यनुज्ञाप्य तानस्मानाहूयाऽभ्यवदच्छुभे
महाभिषेकसम्भारान्सम्पादयत कन्यकाः । इत्याज्ञप्ता नृपेणैव वयं देवालयं गताः ॥
ब्रूहि त्वं सुभगेऽस्माकं त्वदाऽऽगमनमञ्जसा ।
कुतोऽसि कस्य वाऽर्थेन क्व वा जिगमिषा हि ते ! ॥ २१ ॥
दिव्याश्वमधिरुह्येमं देवलोकादिवाऽऽगता ॥ २२ ॥

श्रीवराह उवाच

इति ताभिस्तदा पृष्टा हृष्टा बकुलमालिका । प्रोवाचवाचंमधुरांहर्षयन्तीवबालिकाः

बकुलमालिकोवाच

श्रीवेङ्कटाद्रेः प्राप्ताऽहं नाम्ना बकुलमालिका । धरणींद्रष्टुकामाऽहमारुह्येमं तुरङ्गमम्
द्रष्टुं शक्या भवेद्देवी किमु तत्रनृपालये । इतितस्यावचःश्रुत्वाताःप्रोचुर्नृपकन्यकाः
अस्माभिः सहिता त्वम्वै द्रक्ष्यसे धरणीं शुभे !।
इत्युक्ता सा ततस्ताभिरागता नृपमन्दिरम् ॥ २६ ॥
आगच्छन्तीषु तास्वेवं धरणी तु पुलिन्दिनीम् ॥ २७ ॥
आयान्तीं वीथिकायां सा सगुञ्जाशङ्खभूषिताम् ।
शिशुं स्तनन्धयं पृष्ठे बद्ध्वा वस्त्राञ्चलेन वै ॥ २८ ॥
वदामि सत्यं श्रृणुतभूतंभव्यंभविष्यकम् । वदन्तीवीथिवीथीषुतामाहूयशुचिस्मिता
स्वर्णशूर्पं समादाय तस्मिन्मुक्ता निधाय च ।
त्रिप्रस्थमात्रांस्त्रीन्राशीन्कृत्वा तस्यै निधाय च ॥ ३० ॥
वदसत्यंपुलिन्दे! त्वमेष्यद्वाभूतमेववा । इत्येवंधरणीदेवी पृच्छन्तीतांस्थिताऽभवत्
पृष्टा साऽवददस्यास्तु मनसा यद्विचिन्तितम् ।
मध्यराशौ चिन्तितं ते वद कल्याणि! मे ऋजु ॥ ३२ ॥
ओमित्याहाऽद्य धरणी पुलिन्दां राजवल्लभा ।

षष्ठोऽध्यायः

बकुलमालिकाम्प्रतिसखीविनिवेदितपद्मावत्युदन्तवर्णनम्

योषित ऊचुः

वयमाकाशराजस्य शुद्धान्तनिलयाः स्त्रियः । सख्यः पद्मालयाया वै दुहितुर्वसुधापतेः
राजपुत्रीं पुरस्कृत्य गताः पूर्वं वनान्तरम् । कुर्वन्त्यः पुष्पावचयं राजपुत्र्यर्थमाकुलाः
वृक्षमूले समासीनास्तत्रपश्यामपूरुषम् । इन्द्रनीलमणिश्याममिन्दिरामन्दिरोरसम्
ईषत्स्मितमुखं चारुपीनदीर्घभुजद्वयम् । मृष्टपीताम्बरं हेमबाणबाणासनोज्ज्वलम् ॥
सुवर्णमुकुटं हारकेयूरादिविभूषितम् । तं तु पद्मालया दृष्ट्वा सखी कमललोचना ॥५

द्रुतहेमनिभाकारा पश्य पश्येति साऽब्रवीत् ।

पश्यन्तीनां तदाऽस्माकं गतोऽन्तर्धानमाशु सः ॥ ६ ॥

सा सखी मूर्च्छिताऽस्माभिर्नीता राजगृहं ततः ॥ ७ ॥

दृष्ट्वाऽस्वस्थांनृपः पुत्रीमपृच्छद्दैवचिन्तकम् । वदविप्रेन्द्र पुत्र्या मे ग्रहचारफलं मुने
बृहस्पतिसमोविप्रोविचार्याऽऽत्मनि खेचरान् । अनुकूला ग्रहाःसर्वे तवपुत्र्यानृपोत्तम
किन्तु नित्यं ग्रहफलं किञ्चिद्भ्रान्तिकरं नृप । तमुवाच पुनर्धीमान्प्रश्नकालंविचार्यच
छायां गुणित्वा लग्नञ्चतत्फलानिविचार्यच । लग्नेलग्नाधिपश्चन्द्रःकेन्द्रेचैवबृहस्पतिः
निद्राति दिनपक्षी तु प्रश्नपक्षीतुराज्यगः । शृणुराजन्फलंतस्यस्वास्थ्यमेवभविष्यति
उत्तमः पुरुषः कश्चिदागतः कन्यकाम्प्रति । तं दृष्ट्वा मूर्च्छिता पुत्रीतेनयोगंसमेष्यति
तेनैव प्रेषिताः काचिदागमिष्यतिकन्यका । सातुवक्ष्यतियद्वाक्यंतद्धितंतेभविष्यति
तत्कुरुष्व महाराज ! सत्यंसत्यं वदाम्यहम् । किंचसर्वार्थदंयत्तुसर्वव्याधिविनाशनम्

वक्ष्यामि तत्कुरुष्वाऽद्य पुत्र्यास्तव सुखावहम् ।

कार्याऽगस्त्यलिङ्गस्य ब्राह्मणैरभिषेचनम् ॥ १६ ॥

इत्युक्त्वाऽथ गृहं यातो राजानं दैवचिन्तकः ॥ १७ ॥

आकाशराजोऽपि तदा विप्रानाहूय वैदिकान् ।
अभ्यर्च्याऽऽज्ञापयामास गत्वा देवालयं द्विजाः ॥ १८ ॥

महाभिषेकं शम्भोश्च कुरुध्वं मन्त्रपूर्वकम् । इत्यनुज्ञाप्य तानस्मानाहूयाऽभ्यवदच्छुभे
महाभिषेकसम्भारान्सम्पादयत कन्यकाः । इत्याज्ञप्ता नृपेणैव वयं देवालयं गताः ॥

ब्रूहि त्वं सुभगेऽस्माकं त्वदाऽऽगमनमञ्जसा ।
कुतोऽसि कस्य वाऽर्थेन क्व वा जिगमिषा हि ते ! ॥ २१ ॥
दिव्याश्वमधिरुह्येमं देवलोकादिवाऽऽगता ॥ २२ ॥

श्रीवराह उवाच

इति ताभिस्तदा पृष्टा हृष्टा वकुलमालिका । प्रोवाचत्राचंमधुरांहर्षयन्तीवबालिकाः

वकुलमालिकोवाच

श्रीवेङ्कटाद्रेः प्राप्ताऽहं नाम्ना वकुलमालिका । धरणींद्रष्टुकामाऽहमारुह्येमं तुरङ्गमम्
द्रष्टुं शक्या भवेद्देवी किमु तत्रनृपालये । इतितस्यावचःश्रुत्वाताःप्रोचुर्नृपकन्यकाः

अस्माभिः सहिता त्वम्वै द्रक्ष्यसे धरणीं शुभे !।
इत्युक्ता सा ततस्ताभिरागता नृपमन्दिरम् ॥ २६ ॥
आगच्छन्तीषु तास्वेवं धरणी तु पुलिन्दिनीम् ॥ २७ ॥
आयान्तीं वीथिकायां सा सगुञ्जाशङ्खभूषिताम् ।
शिशुं स्तनन्धयं पृष्ठे बद्ध्वा वस्त्राञ्चलेन वै ॥ २८ ॥

वदामि सत्यं शृणुतभूतंभव्यंभविष्यकम् । वदन्तीवीथिवीथीषुतामाहूयशुचिस्मिता

स्वर्णशूर्पं समादाय तस्मिन्मुक्ता निधाय च ।
त्रिप्रस्थमात्रांस्त्रीन्राशीन्कृत्वा तस्यै निधाय च ॥ ३० ॥

वदसत्यंपुलिन्दे! त्वमेष्यद्वाभूतमेववा । इत्येवंधरणीदेवी पृच्छन्तीतांस्थिताऽभवत्

पृष्टा साऽवददस्यास्तु मनसा यद्विचिन्तितम् ।
मध्यराशौ चिन्तितं ते वद कल्याणि! मे ऋजु ॥ ३२ ॥
ओमित्याहाऽद्य धरणी पुलिन्दां राजवल्लभा ।

धरण्युवाच

राशिरुक्तः फलम्ब्रूहि धनराशिं ददामि ते ॥ ३३ ॥

पुलिन्दोवाच

सत्यम्वदामि ते सुभ्रु शिशोरन्नं प्रयच्छ मे । इत्युक्तासातु धरणीस्वर्णपात्रेऽन्नमाददे
दत्त्वातस्यैपुलिन्दिन्यैसत्यंब्रूहीतिसाऽवदत् । सक्षीरमन्नमादाय दत्त्वापुत्रायभामिनी
सा सत्यमवदत्सुभ्रू र्दुहितुर्देहशोषणम् । पुरुषादागतं भीरु ! तद्रूपाऽदर्शनादियम् ॥
अङ्गतापं समापन्ना ह्यनङ्गशरपीडिता । स तु देवादिदेवो वै वैकुण्ठादागतः स्वयम्
श्रीवेङ्कटाद्रिशिखरे स्वामिपुष्करिणीतटे । मायावी परमानन्दः श्रिया सह रमापतिः
कामरूपी विहरते भक्ताभीष्टप्रदो हरिः । स तुरङ्गं समारुह्य विरहन्काननान्तरे ॥३६॥
आगत्योपवनं राज्ञि तव कन्यां स दृष्टवान् । रमासमामिमां दृष्ट्वास्वयं कामवशंगतः

स्वसखीं ललितां देवः प्रेषयिष्यति तेऽन्तिकम् ।

रमेव तं समेत्यैषा रमिष्यति सुखं चिरम् ॥ ४१ ॥

एतत्सत्यं मम वचः पश्याद्यैवनृपात्मजे !। पुत्रस्यान्नंप्रयच्छेतितूष्णीमासपुलिन्दिनी
अन्नं दत्त्वापुनर्भूरितस्यैतांविससर्जह । तस्यांविनिर्गतायान्तुपुलिन्दिन्यामनिन्दिता

उत्थाय चाऽङ्गणात्तस्माद्विवेशान्तःपुरं शुभम् ।

यत्र पद्मालया कन्या समास्ते स्वसखीवृता ॥ ४४ ॥

गत्वा पुत्री समीपस्था कन्यां कामातुरां सुताम् ।

पुत्रि ! किं ते करिष्यामि वस्तु किम्वा प्रियं शुभे !॥ ४५ ॥

इति मात्राऽभिपृष्टा सा मन्दमाह मनस्विनी ॥ ४६ ॥

नेत्राभिरामं यल्लोके सतामपि मनःप्रियम् । यद्द्रष्टुकामा ब्रह्माद्या यत्तुसर्वगतं महत्
तेजसामपि तेजस्वि देवानामपि दैवतम् । भक्तैस्सद्भिरिह प्राप्यमभक्तैर्न कदाचन
तस्मिन्नेव मनो मेऽम्ब वस्तुनीह प्रवर्तते । तदेवाऽन्विष्यतांमातर्भक्तानांसर्वकामदम्

श्रीवराह उवाच

एतच्छ्रुत्वाऽथ धरणी तामपृच्छत्पुनः सुताम् । तल्लक्षणं ब्रूहि यैः प्राप्यन्तत्सुलोचने

पद्मालयोवाच

भक्तानां लक्षणं मातः! शृणु गुह्यं समाहिता। शङ्खचक्राङ्कितानित्यंभुजयुग्मेवसुन्धरे
ऊर्ध्वंपुण्ड्रं सान्तरालं तेषामेव विशेषतः। पुण्ड्रानि द्वादश पुनर्धारयन्ति तथाऽपरे
ललाटोदरहृत्कण्ठे जठरे पार्श्वयोरपि। कूर्परयोर्भुजद्वन्द्वे च पृष्ठे च गलपृष्ठके ॥५२
केशवादीनि नामानिद्वादशाङ्केषुद्वादश। वासुदेवेति तन्मूर्ध्निधारयन्तिनमोऽस्त्विवति
तेषान्तुनियमान्वक्ष्ये मातः! शृणु मनोरमान्। वेदपारायणरताःकर्म कुर्वन्तिवैदिकम्
सत्यम्वदन्ति ये देवि नासूयन्तिपरान्कचित्। परनिन्दां न कुर्वन्तिपरस्वंनहरन्तिच

न स्मरन्ति न पश्यन्ति न स्पृशन्ति कदाचन।
परदारान्सुरूपांश्च ये च तान्विद्धि वैष्णवान् ॥ ५७ ॥

सर्वभूतदयावन्तः सर्वभूतहितेरताः। सदा गायन्ति देवेशमेतान्भक्तानवेहि वै ॥ ५८
येन केनचसन्तुष्टाःस्वदारनिरताश्च ये। वीतरागभयक्रोधास्तान्भक्तान्विद्धिवैष्णवान्
एवंविधैर्गुणैर्युक्ताःपञ्चायुधधरा अपि। पित्रा चाऽऽचार्यरूपेणशिष्टेनाऽन्येन वा पुनः
स्वगृह्योक्तविधानेन वह्निमादाय वै बुधः। चक्राद्यायुधमन्त्रेणजुहुयात्षोडशाहुतीः
मूलमन्त्रेण सूक्तेन पौरुषेण ततः परम्। जातवेदः सुमन्त्रेणपश्चादष्टोत्तरं शतम् ॥
हुत्वा महाव्याहृतिभिश्चक्रादींस्तत्रतापयेत्। सद्यान्सुतप्तान्गुरुणामन्त्रवद्धारयेद्बुधः
भुजद्वये शङ्खचक्रे मूर्ध्नि शार्ङ्गशरौ तथा। ललाटे तु गदा धार्या हृदये खड्गमेव च
एवं धार्याणि पञ्चैव विष्णुभक्तैर्मुमुक्षुभिः। अथवा भुजयोश्चक्रशङ्खौचैव सुलक्षणौ
एवंलाञ्छनयुक्ता ये भक्तास्तेवैष्णवाःस्मृताः। तैरेवलभ्यंतद्ब्रह्म सदाचारसमन्वितैः

तस्मिन्नेव मम प्रीतिस्तत्प्राप्तिं वाञ्छते (काङ्क्षते) मनः।
मातर्विष्णुं विनाऽन्येषु वाञ्छा काचिन्न जायते ॥ ६७ ॥
स्मरामि श्यामलं विष्णुं वदामि हरिमच्युतम्।
तेनैव मातर्जीवामि तद्योगे चिन्त्यतां विधिः ॥ ६८ ॥

श्रीवराह उवाच

इत्युक्त्वा मातरं दीना विररामाऽम्बुजानना।

तच्छ्रुत्वा चिन्तयामास विष्णुः प्रीतः कथम्भवेत् ॥ ६६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे कन्या अगस्त्येशं समर्च्यच । आगताधरणीं द्रष्टुं सहैव बकुलस्रजा

आगतान्ब्राह्मणान्साऽथ पूजयित्वा सुभोजनैः ।

दत्त्वाऽथ दक्षिणाः पूर्णा वस्त्रालङ्कारसंयुताः ॥ ७१ ॥

आशिषो वाचयित्वाऽथ वाञ्छितार्थस्य सिद्धये ।

विसृज्य ब्राह्मणान्सर्वानथाऽपृच्छत्स्वयोषितः ॥ ७२ ॥

पूजयित्वा ह्यगस्त्येशमागतास्ता मनस्विनीः ॥ ७३ ॥

इति स्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येधरणीवाराहसम्वादेबकुलमालिकांप्रतिसखीचिनिवेदित-पद्मावत्युदन्तविष्णुभक्तलक्षणादिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

धरणीदेव्यैबकुलमालिकानिवेदितश्रीनिवासोदन्तवर्णनम्

धरण्युवाच

कैषा ब्रूत वरा कन्या युष्माभिः सङ्गता कुतः । किमर्थमागताचेह पूज्यैषाप्रतिभातिमे

कन्यका ऊचुः

एषा दिव्याङ्गना देवी त्वयि कार्यार्थमागता । देवालयेसङ्गतेयमस्माभिःशिवसन्निधौ

पृष्टाऽवदच्च भवतीं द्रष्टुमेवाऽऽगतेति वै । शक्ता द्रष्टुं राजगृहे मया राज्ञी सुखेन वा॥

एवं पृष्टास्ततो ब्रूमः सहाऽस्माभिश्च गम्यताम् ।

वयं तु धरणीदास्यो गमिष्यामो नृपालयम् ॥ ४ ॥

इत्युक्ताऽस्माभिरायाता त्वत्समीपं वसुन्धरे !।

भवत्या पृच्छ्यतामेषा किमित्याऽऽगमनं तव ॥ ५ ॥

श्रीवराह उवाच

इति तासां वचः श्रुत्वा तामपृच्छद्वसुन्धरा ॥ ६ ॥

धरण्युवाच

कुतस्त्वमागताद्देवि! किं वा कार्यंमयातव । ब्रूहिसत्यंकरिष्यामित्वदागमनकारणम्

वकुलमालिकोवाच

वेङ्कटाद्रेः समायाता नाम्ना वकुलमालिका ॥ ८ ॥

स्वामी नारायणोऽस्माकमास्तेश्रीवेङ्कटाचले । कदाचिद्धयमारुह्यहंसशुक्लंमनोजवम्

मृगयार्थं गतो राज्ञो वेङ्कटाद्रेः समीपतः । वनानि विचरन्काले शोभने कुसुमाकरे ॥

पश्यन्मृगान्गजान्सिंहान्गवयाञ्छरभान्रुरून् ।

शुकान्पारावतान्हंसान्पत्रिणोऽन्यान्वनान्तरे ॥ ११ ॥

गजराजं तत्र कञ्चिद्यूथपं मदवर्षिणम् । करेणुसहितं तुङ्गमन्वगच्छत्सुरोत्तमः ॥१२॥

वनाद्वनान्तरं गत्वा नृपं शङ्खमुपागमत् । तपस्यन्तं बृहच्छैले प्रतिष्ठाप्य जनार्दनम् ॥

श्रीभूमिसहितं नित्यमर्चयन्तं च भक्तितः । शङ्खनागबिलन्नाम सरः पावनमुत्तमम्

तत्सरस्तीरमासाद्य तुरङ्गादवरुह्य च । राजवेषं समासाद्य तमपृच्छन्नृपोत्तमम् ॥१५॥

क्रियते किं नृपश्रेष्ठ ! पादेऽस्मिञ्छेषभूभृतः ॥ १६ ॥

शङ्ख उवाच

अहं हैहयदेशीयःपुत्रः श्वेतस्य भूभृतः । महाविष्णोः प्रीतयेऽत्र कृतवानखिलान्क्रतून्

अनर्शनान्महाविष्णोर्निर्विण्णोऽहं नृपात्मज !।

तदानीमवदद्दिव्या वाणी सर्वार्त्तिनाशिनी ॥ १८ ॥

राजन्नाऽत्र भविष्यामि प्रत्यक्षस्ते वचः शृणु ।

गच्छ नारायणाद्रिं त्वं तपः कुर्विति मां स्फुटम् ॥ १९ ॥

ततो देशमहं त्यक्त्वा तपसाऽऽराधयाम्यहम् ।

अत्र देवं नृपाऽचिन्त्यं प्रतिष्ठाप्य श्रियः पतिम् ॥ २० ॥

अगस्त्यानुग्रहान्नित्यमर्चयामिविधानतः । इतितस्य वचःश्रुत्वासोऽप्यासंप्राहतंविभुम्

गच्छ नारायणाद्रिंत्वमस्यपादेकिमास्यते । आरुह्याऽनेनमार्गेणपश्चिमेशिखरेस्थितम्
प्रणम्य विष्वक्सेनं त्वं बालं न्यग्रोधमूलतः ।
स्वामिपुष्करिणीं गत्वा स्नात्वा तीरेऽथ पश्चिमे ॥ २३ ॥

अश्वत्थं तत्र वल्मीकं द्रक्ष्यसे नृपनन्दन !। तयोर्मध्यंसमासाद्य तपः कुर्वित्यचोदयत्
कश्चिच्छ्वेतो वराहोऽस्मिन्वल्मीके चरति ध्रुवम् । सतुपुण्यवतामेवदर्शनंयातिभूपते

श्रीवाराह उवाच

इत्यादिश्य हयारूढो जगाम मृगयाम्वभुः । चरन्वनाद्वनंसुभ्रूः समासाद्यारणींनदीम्
अवरुह्य हयात्तत्र विचचार तटे शुभे । वनान्तादागतो वायुः पद्मकह्लारशीतलः ॥
श्रमापनयनो मन्दं सिषेवे पुरुषोत्तमम् ॥ २७ ॥

तरवः पुष्पवर्षाणि विकिरन्तः सिषेविरे । एवं स विचरन्देवः पुष्पभारानतांस्तरून्
विचिन्वन्नाजराजन्तं पुष्पलावीर्ददर्श ह । कन्याः सुवेषा रुचिरा मेघेष्विव शतह्रदाः
तासां मध्यगतां तन्वीं ददर्शाऽतिमनोहराम् ।
लक्ष्मीसमां हेमवर्णां तस्यां सक्तमना अभूत् ॥ ३० ॥

तां गृध्नुराह ताःकन्याःकेयमित्येवपूरुषः । उक्तस्ताभिरियं कन्या वियद्राज्ञोमहाबल
इदं श्रुत्वा वचस्तासां हयमारुह्य वेगवान् ।
आजगामाऽऽशु भगवान्स्वालयं रुचिरं गिरिम् ॥ ३२ ॥

तत्र स्वालयमासाद्य स्वामिपुष्करिणीतटे । मामाहूयाऽवदद्देवो हलावकुलमालिके॥
वियद्राजपुरङ्गत्वाप्रविश्याऽन्तःपुरं सखि । तत्पत्नीं धरणींप्राप्य पृष्ट्वा कुशलमेव च
याचस्वतनयांतस्यारुचिराङ्कमलालयाम् । राज्ञोऽभिमतमाज्ञायशीघ्रमागच्छभामिनि!
इत्थं देवेन चाज्ञप्ता देवित्वद्गृहमागता । यथोचितं कुरुष्वेह राज्ञा मन्त्रियुतेन च ॥
कन्यया च विचार्यैव प्रोच्यतामुत्तरम्वचः ॥ ३७ ॥

श्रीवराह उवाच

अथ तस्या वचःश्रुत्वाप्रीता राज्ञी बभूवह । आहूयाऽऽकाशराजंतमुपेत्यकमलालयाम्
मन्त्रिमध्येऽवदद्देवीवचनस्वकुलस्रजः । श्रुत्वा प्रीतोऽवदद्राजामन्त्रिणःसपुरोहितान्

आकाशराज उवाच

कन्या त्वयोनिजा दिव्या सुभगा कमलालया। अर्थिता देवदेनेनवेङ्कट्याद्रिनिवासिना
पूर्णोमनोरथोमेऽद्य ब्रूत किं सम्मतं तु वः। श्रुत्वा मन्त्रिगणाःसर्वेराज्ञोवचनमुत्तमम्
प्रोचुः सुप्रीतमनसो वियद्राजं महीपतिम्।
वयं कृतार्था राजेन्द्र ! कुलं सर्वोन्नतम्भवेत् ॥ ४२ ॥
भवत्कन्येयमतुला श्रिया सह रमिष्यति। दीयतां देवदेवाय शार्ङ्गिणे परमात्मने ॥
अयं वसन्तः श्रीमांश्च शुभं शीघ्रं विधीयताम् ॥ ४४ ॥
आहूय धिषणं लग्नं विवाहार्थं विधीयताम् ॥ ४५ ॥
तथाऽस्त्वित्याह्वयामाससुरलोकाद्बृहस्पतिम्। पप्रच्छकन्यावरयोर्विवाहार्थंनरेश्वरः

राजोवाच

कन्याया जन्मनक्षत्रं मृगशीर्षमितिस्मृतम्। देवस्यश्रवणर्क्षन्तुतयोर्योगोविचार्यताम्
श्रुत्वाऽब्रवीत्सधिषणस्तयोरुत्तरफल्गुनी। सम्मतासुखवृद्ध्यर्थंप्रोच्यतेदैवचिन्तकैः
तयोरुत्तरफल्गुन्यां विवाहः क्रियतामिति।
वैशाखमासे विधिवत्क्रियतामिति सोऽब्रवीत् ॥ ४६ ॥

श्रीवराह उवाच

राजा तु धिषणं तत्र सम्पूज्याऽथ विसृज्य च। देवस्यदूतिकामाहगच्छदेवालयंशुभे
वैशाखे देवदेवाय कल्याणं वदसुव्रते। वैवाहिकविधानं तु कृत्वा चाऽऽगम्यतामिति
ततो देव्याःप्रियकरंशुकं दूतं तया सह। विसृज्य वायुंस्वसुतमिन्द्राद्यानयनेऽसृजत्
आहूय विश्वकर्माणं पुरालङ्कारकर्मणि। नियोजयामास सोऽपिनिर्ममेनिमिषान्तरात्
इन्द्रोऽसृजत्पुष्पवृष्टिं ननृतुश्चाप्सरोगणाः। धनदो धनधान्याद्यैः पूरयामास वेश्मतत्
यमस्तु रोगरहितांश्चकार मनुजान्भुवि। वरुणो रत्नजालानि मौक्तिकादीन्यपूरयत्
एवं सम्पाद्य सर्वाणि ययुर्देवा वृषाचलम् ॥ ५६ ॥

श्रीवराह उवाच

ततः सा हयमारुह्य शुकेन सहिता ययौ। श्रीवेङ्कटाद्रिमासाद्यदेवालयसमीपतः ॥ ५७

अवरुह्य तुरङ्गात्सा सशुकाऽभ्यन्तरं ययौ। दृष्ट्वा देवं रत्नपीठे श्रिया सह सुलोचनम्
प्रणम्य ह्यवदत्प्रीता कृत्यं तत्र कृतं विभो। माङ्गल्यवार्तां वक्तुं वै शुक एव समागतः
वदेति देवेनाऽऽज्ञप्तः शुको नत्वा तमब्रवीत्।

शुक उवाच

त्वां प्रत्याह सुता भूमेर्मामङ्गीकुरु माधव !॥ ६० ॥

वदामि तव नामानि स्मरामि त्वद्वपुस्सदा। ध्रियन्ते तवचिह्नानिभुजाद्यङ्गे रमापते
त्वद्भक्तानर्चयामीह पञ्चसंस्कारसंयुतान्। त्वत्प्रीतये हि कर्माणि करोमि मधुसूदन
एवं सदैवाचारन्त्याः पित्रोरनुमते मम। कुरु प्रसादं देवेश मामङ्गीकुरु माधव ॥ ६२
इति विज्ञापयामास कमलस्था धरासुता। शुकस्य वचनं श्रुत्वासुप्रियंत्वात्मनोहरिः

श्रीभगवानुवाच

कर्तुं कल्याणमुद्वाहमागमिष्यामि चाऽमरैः। शुकगच्छवदैवंतामित्थंदेवोऽब्रवीदिति
शुकः श्रुत्वा देववाक्यमादाय वनमालिकाम्। देवदत्तांययौ शीघ्रं वियद्राजसुतां प्रति
तुलसीमालिकांदत्त्वामृगनाभिसुगन्धिनीम्। प्रणम्यदेवीमवदच्छुकोदेववचः शुभम्
श्रुत्वा तन्मालिकांगृह्यभूमिजाशिरसादधौ। चक्रेऽलङ्कारमुचितंदेवागमनकाङ्क्षिणी
वियद्राजोऽपि सानन्दमिन्दुमाहूय सादरम्। अन्नंविधीयतांराजन्विविधंरससंयुतम्
विष्णोर्नैवेद्ययोग्यं यत्परमान्नं विधीयताम्।
देवानाञ्च ऋषीणाञ्च नराणामपि सम्मतम् ॥ ७० ॥
चतुर्विधं सुगन्धाढ्यममृतांशोः सुधाकर !।
एवं कृत्वासभ्विाधानं प्रतीक्ष्याऽऽगमनं विभोः ॥ ७१ ॥
सभायां मन्त्रिसहितःसमास्तप्रीतमानसः। पुत्रीमलङ्कृतां कृत्वा धरणीसहितोनृपः
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणिवराहसम्वादे धरणीदेव्यैबकुमालिका-
निवेदितश्रीनिवासोदन्तकमलालयाकल्याणविध्यादि
वृत्तान्तवर्णनंनाम सप्तमोऽध्यायः

अष्टमोऽध्यायः

श्रीनिवासस्यलक्ष्म्यादिकृतपरिणयालङ्कारवर्णनम्

श्रीवराह उवाच

ततोदेवाधिदेवोऽपिलक्ष्मीमाहूयभामिनीम् । किंकार्यंवदकल्याणिविवाहार्थंसुलोचने
आज्ञापयस्व स्वसखीं रमे कार्यं कुरु प्रियम् ।
श्रीस्तु कृष्णवचः श्रुत्वा सखीराहूय चोदयत् ॥ २ ॥
श्रियाऽऽज्ञप्ताततःप्रीतिःसुगन्धंतैलमाददौ । श्रुतिःक्षौमंसमादायतस्थौदेवस्यसन्निधौ
भूषणानि समादाय स्मृतिरप्यायया मुदा । धृतिरादर्शमाधत्त शान्तिर्मृगमदं दधौ
यक्षकर्दममादाय ह्रीः स्थिता पुरतो हरेः । कीर्तिः कनकपट्टं च सरत्नं मुकुटं दधौ
छत्रं दधौ तदेन्द्राणी चामरं तु सरस्वती । द्वितीयं चामरं गौरी व्यजनेविजयाजये
आगतास्ताः समालोक्यश्रीरुत्थायाऽथसत्वरा । सुगन्धंतैलमादायदेवमभ्यज्यशीर्षतः
उद्वर्तितं गन्धचूर्णैर्देवाङ्गं परिमृज्य च ।
आनीतान्करिभिस्तोयकलशान्काञ्चनाञ्छतम् ॥ ८ ॥
वियद्गङ्गादितीर्थेभ्यः कर्पूरादिसुवासितान् ।
एकमेकं समादाय त्वभ्यषिञ्चद्रमा हरिम् ॥ ६ ॥
सन्धूप्य केशान्धूपेनतानाश्यामान्ववन्ध च । सुगन्धेनानुलिप्याङ्गंस्वर्णवर्णेनतद्विभोः
पीतकौशेयकंवद्ध्वाकट्यांकाञ्चीसमन्वितम् । मुकुटादिविभूषाभिर्भूषयामास चेन्दिरा
अङ्गुलीयकरत्नानि सर्वास्वेवाऽङ्गुलीषु च । आदर्शं दर्शयामास धृतिर्देवस्य सन्निधौ
दृष्ट्वाऽऽदर्शंदेवदेवोह्यूर्ध्वपुण्ड्रं स्वयंदधौ । आरुह्यगरुडंपश्चात्स्वयं लक्ष्मीसमन्वितः
ब्रह्मेशवह्निवरुणयमयक्षेशसेवितः । वसिष्ठाद्यैर्मुनीन्द्रैश्च सनकाद्यैश्च योगिभिः ॥ १४
भक्तैर्भागवतैर्युक्तो नारायणपुरीं ययौ । जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः ॥१५
देवदुन्दुभयो नेदुस्तदा देवस्य सन्निधौ । जपन्तः स्वस्तिसूक्तानिमुनयस्तंसमन्वयुः

देवो देवगणैर्युक्तो विष्वक्सेनादिपार्षदैः ।
सखीभिस्स्यन्दनस्थाभिर्वकुलाद्याभिरन्वितः ।
आकाशराजस्य पुरमाससाद स्वलङ्कृतम् ॥ १७ ॥
देवमागतमालोक्य कन्यामैरावतस्थिताम् । पुरीं प्रदक्षिणीकृत्य गोपुरद्वारमागताम्
आलोक्याऽऽकाशराजोऽपिसमानीयवधूवरौ । बन्धुभिःसहितस्तत्रौदेवमालोक्यकेशवम्
विष्णोर्मालां स्वकण्ठस्थां हस्तेनाऽऽदाय सस्मितः ।
कमलायाः स्कन्धदेशे मुमोच सुमनश्चिताम् ॥ २० ॥
आदाय मल्लिकामालां साऽस्य कण्ठेसमर्पयत् । एवं त्रिवारं तौकृत्वावाहनादवरुह्यच
स्थित्वा पीठे क्षणंपश्चाद्गृहं विविशतुः शुभम् । ब्रह्मादिदेवयूथैश्चसहितौभूमिजाहरी
माङ्गल्यसूत्रबन्धादि साङ्कुरार्पणमब्जजः । वैवाहिकं कारयित्वा लाजहोमान्तमेव च
व्रतादेशं समाज्ञाय सहितौ कमलाहरी । चतुर्थे दिवसे सर्वं समापद्य चतुर्मुखः ॥२४
अनुज्ञाप्य वियद्राजमारोप्य गरुडे हरिम् । देवीभ्यां सहितं देवं देवैर्गन्तुं प्रचक्रमे
दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषैः सम्प्राप्य वृषभाचलम् । तुष्टुवुर्देवदेवेशं ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥
शुकादयो मुनिगणास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ।
स्तूयमानोऽथ देवोऽपि विवेश मणिमण्डपम् ॥ २७ ॥
रमाधरणिजाभ्यां च तत्र सिंहासनं ययौ ॥ २८ ॥
आकाशराजोऽपि तथा महेन्द्रादिसुरैः सह ।
पुत्रीविष्ण्वोः प्रियार्थं तु प्राभृतं कर्तुमुद्यतः ॥ २९ ॥
सौवर्णेषु कटाहेषु तडुलाञ्छालिसम्भवान् । मुद्गपात्राण्यनेकानि घृतकुम्भशतानि च
पयोघटसहस्राणि दधिभाण्डान्यनेकशः । दिव्यानि चूतकदलीनारिकेलफलानि च
धात्रीफलानि कूष्माण्डराजरम्भाफलानि च ।
पनसान्मातुलुङ्गांश्च शर्करापूरितान्घटान् ॥ ३२ ॥
सुवर्णमणिमुक्ताश्च क्षौमकोट्यम्बराणि च ।
दासीदाससहस्राणि कोटिशो गास्तथैव च ॥ ३३ ॥

हंसेन्दुशुक्लवर्णानां हयानामयुतं ददौ ।
तुङ्गानां नित्यमत्तानां गजानामधिकं शतात् ॥ ३४ ॥
अन्तःपुरचरा नारीर्नृत्तगीतविशारदाः । ददौ चतुःसहस्राणि श्रीनिवासाय विष्णवे
दत्त्वा चैतानि सर्वाणि तस्थौ देवपुरो विभुः ॥ ३५ ॥
दृष्ट्वा देवोऽपि तत्सर्वं देवीभ्यां सहितो हरिः ॥ ३६ ॥
सुप्रीतः प्राह राजानं श्वशुरं वेङ्कटेश्वरः । वरं वृणीष्व हे राजन्गुरो मत्तो यदीच्छसि
इति श्रीशवचः श्रुत्वा वियद्राजोऽवदद्विभुम् ।
त्वत्सेवैवेह देवैवं भूयादव्यभिचारिणी ॥ ३८ ॥
मनस्त्वत्पादकमले त्वयि भक्तिर्ममाऽस्तु वै ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच

त्वया यदुक्तं राजेन्द्र ! सर्वमेतद्भविष्यति । इतिदत्त्वावरंतस्मैसम्मान्यैवयथोचितम्
ब्रह्मेशादिसुरान्सर्वान्समभ्यर्च्य यथोचितम् । स्वर्लोकगमनायैवमनुमेने मुदा हरिः
गतेषु तेषु सर्वेषु श्रिया भूमिजया युतः ॥ ४१ ॥
विहरन्स यथापूर्वं स्वामिपुष्करिणीतटे ।
आस्ते दिव्यालये देवोऽप्यर्च्यमानो गुहेन वै ॥ ४२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसम्वादे ब्रह्मादिभिः साकं श्रीनिवासस्यवियद्राजपुरगमनकमलालयापरिणयादिवर्णनंनामा [illegible]ध्यायः ॥ ८

नवमोऽध्यायः

वसुनामकनिषादवृत्तान्तेसुतहननोद्युक्तंतम्प्रतिभगवदुक्तिवर्णनम्

धरण्युवाच

कलौ युगे भूमिधर ! केनत्वंद्रक्ष्यसे प्रिय !। विमानं केन ते देव कार्यतेऽस्मिन्महीधरे

श्रीनिवासोऽपि केनैव द्रक्ष्यते सुभगाकृतिः ।

एतद्व ब्रूहि मम प्रीत्या श्रोतुं कौतूहलं विभो !॥ २ ॥

श्रीवराह उवाच

वक्ष्यामि शृणु हे देवि ! भविष्यद्यद्वदामि ते ।

अस्मिन्महीधरे पुण्ये निषादो वसुनामकः ॥ ३ ॥

श्यामाकवनपालोऽभूद्भक्तिमान्पुरुषोत्तमे । श्यामाकतण्डुलान्पक्वामधुना परिषिच्य च

निवेद्य देवदेवाय श्रीभूमिसहिताय च । एवं भक्तिमतस्तस्य भार्या चित्रवती शुभा

असूत तनयं बाला वीरनामानमुत्तमम् । वसुः पुत्रेण सहितो भार्यया पतिभक्तया

कस्मिश्चिद्दिवसे पुत्रं श्यामाकं पालयेति च ।

विसृज्य पत्न्या सहितो मध्वन्वेषणतत्परः ॥ ७ ॥

गतो वनान्तरंशीघ्रं मधुच्छत्रदिदृक्षया । बालःश्यामाकपक्वानिगृहीत्वाऽग्नौनिधायच

पिष्ट्वा निवेदयामास वृक्षमूले श्रियः पतेः । नैवेद्यं भक्षयित्वैव वीरस्त्वास सुखेन वै

तदन्तरेवसुश्चापि मध्वादाय समागतः । श्यामाकान्भक्षितान्दृष्ट्वासन्तर्ज्यसुतमात्मनः

खड्गमादाय तं हन्तुं त्वरया हस्तमुद्दधौ ॥ ११ ॥

तद्वृक्षस्थस्तदा विष्णुः खड्गं जग्राह पाणिना ।

खड्गो गृहीतः केनेति पश्यन्वृक्षं ददर्श सः ॥ १२ ॥

शङ्खचक्रगदापाणिं वृक्षारूढार्धविग्रहम् । मुक्त्वा वसुश्च तं खड्गं प्रणम्योवाच केशवम्

किमिदं देवदेवेश ! चेष्टितं क्रियते त्वया ॥ १४ ॥

श्रीभगवानुवाच

वत्सोश्रृणुवचोमेत्वंपुत्रस्तेभक्तिमान्मयि । त्वत्तोऽपिमेप्रियतमस्तस्मात्प्रत्यक्षमागतः
अस्य सर्वत्रतिष्ठामि तव स्वामिसरस्तटे । इति देववचः श्रुत्वा प्रीतिमानभवद्वसुः
एतस्मिन्नेव काले तु पाण्ड्यदेशात्समागतः ।
बाल्यात्प्रभृति शूद्रोऽपि विष्णुभक्तिसमन्वितः ॥ १७ ॥
नारायणपुरीं प्राप्य श्रीवराहम्प्रणम्य च । तत्र श्रुत्वाश्रीनिवासंवेङ्कटाद्रिनिवासिनम्
स्वयम्भुवं देवदेवसेवितं प्रययौ ततः । सुवर्णमुखरीं प्राप्य स्नात्वा चोत्तीर्य तत्तटे
कमलाख्ये सरसि च स्नात्वा पुण्यप्रदायिनि । तत्तीरवासिनंदेवंकृष्णंरामेणसंयुतम्
नमस्कृत्य ततः प्रायाद्वनंगजघटायुतम् । शनैः सम्प्राप्य शेषाद्रिनिर्झरं सन्ददर्श ह
तत्समीपं समासाद्य कपिलापूजितं शिवम् ।
तत्पुरश्चक्रतीर्थं तदगाधम्पापनाशनम् ॥ २२ ॥
तत्र स्नात्वा ततोऽगच्छद्वेङ्कटाद्रिं शनैःशनैः । आराद्यधुं गच्छतामार्गेयुक्तोवैखानसेनच
रङ्गदासस्त्वारुरोह बालो द्वादशवार्षिकः ।
स्वामिपुष्करिणीम्प्राप्य स्नात्वा भक्तिसमन्वितः ॥ २४ ॥
वैखानसेन मुनिना गोपीनाथेन पूजितम् । वनमध्ये तरोर्मूले स्वामिपुष्करिणीतटे ॥
तिष्ठन्तंपुण्डरीकाक्षंश्रीभूमिसहितंहरिम् । आकाशस्थं सन्ददर्श पीननीलाकृतिशुभम्
पार्श्वस्थशङ्खचक्राभ्यां गदासिभ्यां निषेवितम् ।
पक्षौ विस्तार्य चाऽऽकाशे देवमूर्ध्नि वितानवत् ॥ २७ ॥
स्थितश्च गरुडेशानम्पश्चाच्छार्ङ्गं शरन्तथा ॥ २८ ॥
एवंदृष्ट्वाश्रीनिवासंविस्मितोरङ्गदासकः । अस्यदेवस्यचारामं करिष्यामीत्यचिन्तयत्
निश्चित्य मनसा सर्वं तरुमूलेऽवसत्सुधीः । कृत्वावैखानसाद्विष्णोर्नैवेद्यञ्च दिनेदिने
शनैश्छित्त्वा वनं घोरं वृक्षांश्चिच्छेद पार्श्वगान् ।
आस्थानचिञ्चां देवस्य रमायाश्चम्पकं तरुम् ॥ ३१ ॥
देवाज्ञप्तो वर्जयित्वा तावुभौ देवसेवितौ । देवस्यपरितोभूमौशिलाकुड्यन्तदाकरोत्

तत्कुड्यस्यैव परितः पुष्पारामांश्चकारह । मल्लिकाकरवीराब्जकुन्दमन्दारमालतीः
तुलसी चम्पकानान्तु वनान्येव चकार ह । खनित्वा तत्र कूपन्तुवर्धयंस्तज्जलैर्वनम्
आरामपुष्पाण्यादायस्वयंदामान्यथाकरोत् । विचित्राणितदाबद्ध्वापूजकस्यकरेददौ
आदायपूजकस्तानिस्कन्धेमूर्ध्निवबन्धच । श्रीनिवासस्यदेवस्यश्रीभूमिसहितस्यच
एवं देवस्य कैङ्कर्यं कुर्वंस्तस्थावुदारधीः । तस्यैवम्वर्तमानस्यसमास्त्वा सप्ततेर्गताः
कुर्वाणे पुष्पावचयं रङ्गदासे महात्मनि ॥ ३८ ॥
आरामेसरसिस्नातुंगन्धर्वःकश्चिदाययौ । गन्धर्वराजकन्याभिस्तरुणीभिः समन्वितः
जलक्रीडांकरोतिस्मदिविस्थाप्यविमानकम् । सुरूपाभिश्चसहितं क्रीडन्तंकमलाकरे

पश्यञ्छ्रीरङ्गदासोऽयं व्यस्मरन्माल्यसञ्चयम् ।
जितेन्द्रियोऽपि तत्क्रीडां पश्यन्रेतः ससर्ज ह ॥ ४१ ॥
पश्यतस्तस्य सरसः समुत्तीर्य मनोहरम् ।
दिव्यवस्त्राणि चाऽऽच्छाद्य कान्ताभिः सह सस्मितम् ॥ ४२ ॥

अधिरुह्यविमानन्तु ययौ स धनदालयम् । गते गन्धर्वराजे तु रङ्गदासो विमोहितः
त्यक्त्वाचतानिमाल्यानिस्नात्वा सरसि लज्जितः । पुनराहृत्यपुष्पाणिशनैर्देवालयंययौ
वैखानसस्तु तं दृष्ट्वा पूजाकालमतीत्य च । आगतं किमितिप्राहसखेऽतिक्रम्यचागतः
न बद्धा मालिकाश्चाऽपि त्वयाऽऽरामे च किं कृतम् ।

श्रीवराह उवाच

इत्थम्पृष्टो रङ्गदासो नाऽवदल्लज्जया ततः । लज्जितं रङ्गदासं तं प्रोवाच मधुसूदनः ॥

श्रीभगवानुवाच

लज्जयाकिं रङ्गदास! मया त्वंमोहितोह्यसि । त्वंतावज्जितकामोऽसिधीरोभवमहामते
गन्धर्वराजवद्राजा भवितासि महीतले । तत्र भुक्त्वा महाभोगान्भक्तिमान्मयिसर्वदा
प्राकारञ्चविमानञ्चकारयिष्यसि मेतदा । तत्र मुक्तिम्प्रदास्यामि प्रीत्या परमया युतः
अत्रैव कुरु सेवां त्वमाशरीरविमोक्षणात् । मद्भक्तानांसकामानामेवं मुक्तिर्भविष्यति
इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुःपुनर्नोवाचकिञ्चन । श्रुत्वातद्रङ्गदासोऽपि चकारारामुत्तमम्

साग्रं शताब्दं सेवित्वा गतः स्वर्गममन्दधीः ।
जातः सोमकुले तुङ्गे तोण्डमानिति विश्रुतः ॥ ५३ ॥
सुधीरस्तनयो वीरो नन्दिनीगर्भसम्भवः । सपञ्चवर्षोद्गुद्भूतविष्णुभक्तिः स्वयंसुधीः
सौशील्यशौर्यवीर्यादिगुणानामाकरो महान् ॥ ५४ ॥
पाण्ड्यस्य तनयांपद्मामुपयेमे मनोहराम् । ततोराजाशतंकन्यानानादेश्याः स्वयम्वराः
रेमे देवेन्द्रवद्भूमौ नारायणपुरे वसन् । अनुज्ञाम्प्राप्य पितृतः पुत्रः पञ्चास्यविक्रमः
उद्दिश्य मृगयाम्वीरो वेङ्कटाद्रेः समीपतः ॥ ५७ ॥
पादचारेण विचरन्परिवारैः समन्वितः । मदधाराम्विमुञ्चन्तं ददर्श गजयूथपम् ॥
तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा ग्रहीतुं तमनुद्रुतः । सुवर्णमुखरीं तीर्त्वा ब्रह्मर्षिशुकमुत्तमम्
नमस्कृत्याऽभ्यनुज्ञातस्ततोऽगच्छद्वनाद्वनम् ।
ददर्श रेणुकां देवीं वल्मीकाकारसंस्थिताम् ॥ ६० ॥
इष्टदामिष्टभक्तानां दिव्यारामनिवासिनीम् । परिवारैः सदोपेतां पूजितांत्रिदशैरपि
तोण्डमानपि तां नत्वा ततः पश्चान्मुखो ययौ ॥ ६२ ॥
पञ्चवर्णशुकं दृष्ट्वा तं जिघृक्षुरनुद्रुतः । सवदञ्छ्रीनिवासेति गिरिं शीघ्रतरं ययौ ॥
अनुद्रवन्सराजाऽपिगिरिराजं समारुहत् । दरीश्चविविधाःपश्यञ्छिखराणिसमन्ततः
शुकमन्वेषमाणोऽसौ श्यामार्कवनमेयिवान् । तमदृष्ट्वाशुकवरं वनपालं ददर्श ह ॥
तं तु राजानमायान्तं प्रत्युद्गच्छन्स सत्वरः ।
प्रणम्य विनयोपेतः कृताञ्जलिपुटः स्थितः ॥ ६६ ॥
तोण्डमानपि सम्पूज्य तं पप्रच्छ वनेचरम् ।
पञ्चवर्णः शुकः कश्चिद्दृष्टश्चात्राऽऽगतस्त्वया ॥ ६७ ॥
श्रीनिवासेति च वदन्क गतोऽसौ वनेचर !॥ ६८ ॥

वनेचर उवाच

सपञ्चवर्णाराजेन्द्र! श्रीनिवासप्रियःसदा । पार्श्ववर्तीसदातस्यश्रीभूमिभ्यांविवर्धितः
स्वामिपुष्करिणीतीरे सदास्ते देवसन्निधौ । ग्रहीतुं स शुकःश्रीमान्नतुकेनापिशक्यते

विहृत्य स्वेच्छयानित्यमस्मिन्गिरिवरेशुभे । दिनान्तेदेवमासाद्यतत्समीपेवसत्ययम्
तं देवमाराधयितुं गमिष्यामि नृपात्मज !। विश्रम्यतां वृक्षमूले यावदागमनं मम ॥
पुत्रेणाऽनेन सहितो विहर त्वं यथासुखम् ॥ ७३ ॥

राजोवाच

त्वया सहगमिष्यामि द्रष्टुं देवं जनार्दनम् । त्वं मे दर्शय देवेशं वेङ्कटाद्रिनिवासिनम्

तस्य राज्ञो वचः श्रुत्वा श्यामाकं मधुमिश्रितम् ।
चूतपत्रपुटे क्षिप्त्वा राज्ञा सह ययौ हरिम् ॥ ७५ ॥
गत्वा सुदूरमध्वानं पश्यन्तौ तौ शिलातलम् ।
मुहूर्तादेव सम्प्राप्तौ स्वामिपुष्करिणीं शुभाम् ॥ ७६ ॥

स्नात्वा तत्र विधानेन राज्ञा सह निषादपः । दर्शयामास देवेशं राज्ञस्तस्यमहात्मनः
स्वामिपुष्करिणीतीरे स्थितं श्रीवृक्षमूलके । अतसीपुष्पसङ्काशमम्बुजायतलोचनम्॥
चतुर्भुजमुदाराङ्गमीषत्स्मितमुखाम्बुजम् । दिव्यपीताम्बरधरं किरीटकटकोज्ज्वलम्

पार्श्वस्थाभ्यां सुरूपाभ्यां श्रीभूमिभ्यां समन्वितम् ।
परितः शङ्खचक्रासिगदाशार्ङ्गेषुसेवितम् ॥ ८० ॥
अन्यैर्दिव्यायुधैश्चाऽपि दिव्यमाहयैर्निषेवितम् ।
स्कन्देनाऽऽराध्यमानं तं त्रिसन्ध्यं पुरुषोत्तमम् ॥ ८१ ॥

वल्मीकगूढपादाब्जमाजानुपुरुषोत्तमम् । ततो दृष्ट्वा मुदा देवं प्रणेमतुरुभौ तदा ॥८२॥
राजा तु प्राञ्जलिर्भूत्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनः । आनन्दलहरीं प्राप्यनप्राज्ञायतकिञ्चन
निषादोऽपि निवेद्यैव श्यामाकंमधुमिश्रितम् । राज्ञेतदर्धंदत्त्वैवशिष्टार्धंभुक्तवान्स्वयम्
पीत्वा पुष्करिणीतोयं तेन राज्ञा समन्वितः । स पुनःश्यामकवनेपुण्यांपर्णकुटींययौ
उषित्वा चैकरात्रं तु प्रातरुत्थाय भूमिपः । स्वसैन्येन समायुक्तो निवृत्तःस्वपुरंययौ
पुनर्देवीवनं गत्वा हयादवततार ह । चैत्रशुद्धनवम्यां तु पूजयामास रेणुकाम् ॥ ८७॥
हविष्यं परमान्नं च सोपस्करमनेकशः । पशुपहारसहितं धूपदीपसमन्वितम् ॥ ८८ ॥
सुरावटीशतं दत्त्वा जातीकेसरवासितम् । एवं सम्पूजिता देवी प्रीता राज्ञे वरं ददौ

आविष्टः पुरुषः कश्चिद्वदन्नृपसत्तमम् । शृणु राजन्भविष्यं ते राज्यं निहतकण्टकम्
राजंस्तवैव नाम्नाऽत्र राजधानीभविष्यति । मत्समीपे महाराजचिरंराज्यंकरिष्यसि
देवदेवप्रसादश्च भविष्यति तवाऽनघ !। इति दत्त्वा वरं तस्मा आविष्टः प्रकृतिं ययौ
ततो लब्धवरो राजा ययौ शुकमुनिं पुनः ॥ ९२ ॥
अभिवाद्य मुनिं तेन पूजितोमुदितोऽभवत् । माहात्म्यंसरसोब्रूहिकमलाख्यस्य मे मुने

श्रीशुक उवाच

पुरा दुर्वाससः शापादवतीर्णा सुरालयात् । पद्मापद्माक्षदयिता विष्णुना सहिता नृप
सरः काञ्चनपद्माढ्यमिदं प्राप्य महेश्वरी । तपश्चकार वर्षाणां दिव्यानामयुतं रमा ॥
ततो देवाविचिन्वन्तःश्रियंविष्णुसमन्विताम् । पुरन्दरेणसंयुक्ताराजन्नस्मिन्सरोवरे
स्थितां सुवर्णकमले पुण्डरीकाक्षसंयुताम् ।
दृष्ट्वा प्रीतिसमायुक्ताः प्रणम्याम्बुजधारिणीम् ॥
कृताञ्जलिपुटाः सेन्द्रास्तुष्टुवुर्लोकमातरम् ॥ ९८ ॥

देवा ऊचुः

नमः श्रियै लोकधात्र्यै ब्रह्ममात्रे नमोनमः । नमस्ते पद्मनेत्रायै पद्ममुख्यै नमोनमः ॥
प्रसन्नमुखपद्मायै पद्मकान्त्यै नमोनमः । नमो बिल्ववनस्थायै विष्णुपत्न्यै नमोनमः
विचित्रक्षौमधारिण्यै पृथुश्रोण्यै नमोनमः । पक्वबिल्वफलापीनतुङ्गस्तन्यै नमोनमः
सुरक्तपद्मपत्राभकरपादतले शुभे । सुरत्नाङ्गदकेयूरकाञ्चीनूपुरशोभिते ॥
यक्षकर्दमसंलिप्तसर्वाङ्गे कटकोज्ज्वले ॥ १०२ ॥
माङ्गल्याभरणैश्चित्रैर्मुक्ताहारैर्विभूषिते । ताटङ्कैरवतंसैश्च शोभमानमुखाम्बुजे ॥१०३॥
पद्महस्ते नमस्तुभ्यं प्रसीद हरिवल्लभे !। ऋग्यजुःसामरूपायै विद्यायै ते नमोनमः ॥
प्रसीदास्मान्कृपादृष्टिपातैरालोकयाऽब्धिजे । ये दृष्टास्तेत्वयाब्रह्मरुद्रेन्द्रत्वंसमाप्नुयुः

श्रीशुक उवाच

इति स्तुता तदा देवैर्विष्णुवक्षःस्थलालया ।
विष्णुना सह संदृश्या रमा प्रीताऽवदत्सुरान् ॥ १०६ ॥

श्रीरुवाच

सुरारीन्सहसा हत्वा स्वपदानि गमिष्यथ ।
ये स्थानहीनाः स्वस्थानाद् भ्रंशिता ये नरा भुवि ॥ १०७ ॥
ते मामनेन स्तोत्रेण स्तुत्वा स्थानमवाप्नुयुः । अखण्डैर्बिल्वपत्रैर्मामर्चयन्तिनराभुवि
स्तोत्रेणाऽनेन ये देवा नरा युष्मत्कृतेन वै । धर्मार्थकाममोक्षाणामाकरास्तेभवन्ति वै
इदं पद्मसरो देवा ये केचननराभुवि । प्राप्यस्नानंकरिष्यन्तिमांस्तुत्वाविष्णुवल्लभाम्
तेऽपि श्रियं दीर्घमायुर्विद्यां पुत्रान्सुवर्चसः ।
लब्ध्वा भोगांश्च भुक्त्वाऽन्ते नरा मोक्षमवाप्नुयुः ॥ १११ ॥
इति दत्त्वा वरं देवी देवेन सह विष्णुना । आरुह्य गरुडेशानं वैकुण्ठस्थानमाययौ ॥

इति श्रीस्कन्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादे वसुनामकनिषादवृत्तान्तपद्मसरोमाहात्म्यादिवर्णनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

तोण्डमन्नृपस्यस्वपितुःसकाशाद्राज्यप्राप्तिवर्णनम्

श्रीशुक उवाच

इदं पद्मसरोनाम राजन्पापप्रणाशनम् । कीर्तनात्स्मरणात्स्नानान्नृणांलक्ष्मीप्रदम्भुवि
कृत्वा स्नानं त्वमप्यस्मिन्व्रज स्वपितुरन्तिकम् ॥ १ ॥

श्रीवराह उवाच

एतच्छुकवचः श्रुत्वा स्नात्वा पद्मसरोवरे ॥ २ ॥
तं नत्वा हयमारुह्य तोण्डमान्स्वपुरंययौ । तं पितायुवराजानं कृत्वा त्रीन्वत्सरानथ
रञ्जकत्वञ्च सामर्थ्यं शौर्यं वीर्यं सुशीलताम् ।

भक्तिम्विप्रेषु पुत्रस्य वीक्ष्य राजा स्वमन्त्रिभिः ॥ ४ ॥
स्वपदेस्थापयामासस्वभिषिच्यविधानतः । अनुनीय सुतं पत्न्या सार्धंराजावनंययौ
तोण्डमानपिसाम्राज्यंलब्ध्वाराज्यञ्चकार ह । निषादस्यवनेदेवो वाराहंरूपमास्थितः
श्यामाकपक्वम्भक्षित्वा रात्रौरात्रौचचारह । पदानि स वराहस्यचान्वियेषदिवादिवा
अदृष्ट्वा तं वराहं स रात्रौ जाग्रद्धनुर्धरः । स्थितोऽपश्यच्चरन्तन्तं चन्द्रकोटिसमप्रभम्
वराहं सुभगाकारं श्यामाकवनमध्यतः । तं दृष्ट्वा धनुरादाय सिंहनादञ्चकार ह ॥ ६ ॥
वराहस्तद्ध्वनिं श्रुत्वा वनान्निष्क्रम्य सत्वरम् । ययौतञ्चाप्यनुययौवराहंसनिषादपः
रात्रिशेषमनुद्रुत्य वने चन्द्रसमप्रभम् । वल्मीकं प्रविशन्तं च ददर्श स निषादपः ॥
गच्छन्तं पूर्णिमाचन्द्रमस्तं गिरिवरं यथा ।
विस्मितोऽखानयत्कोपाद्वल्मीकं स निषादपः ॥ १२ ॥
धरावराहौदद्वशेमूर्च्छितोऽयंपपातह । पितरम्मूर्च्छितं दृष्ट्वा तत्पुत्रोभक्तिमांस्तदा
वराहदेवन्तुष्टाव तेन प्रीतोऽभवद्धरिः । आविश्य पितरन्तस्य प्रोवाच मधुसूदनः ॥

श्रीभगवानुवाच

अहम्वराह देवेशो नित्यमस्मिन्वसाम्यहम् । राज्ञे त्वमुक्त्वा मामत्र प्रतिष्ठाप्यैवपूजय
वल्मीकं कृष्णगोक्षीरैः क्षालयित्वा तदुत्थिते ।
शिलातले च वाराहमुद्धृत्य धरणीस्थितम् ॥ १६ ॥
कारयित्वा प्रतिष्ठाप्य विप्रैर्वैखानसैश्च माम् । पूजयेद्विविधैर्भोगैतोण्डमान्राजसत्तमः
इत्युक्त्वा तं जहौ देवः स च स्वस्थो बभूव ह ।
सुखासीनन्तु पितरं नमस्कृत्य निषादजः ॥ १८ ॥
न्यवेदयद्दैववचःपित्रेसर्वंयथातथम् । सश्रुत्वाविस्मितोभूत्वा कृत्स्नं पुत्रवचःशुभम्
राज्ञे वक्तुं ययौ शीघ्रं निषादः स्वानुगैः सह । वसुर्निषादाधिपती राजद्वारमुपागमत्
निषादाधिपमाज्ञाय द्वारपालैर्नृपोत्तमः । आहूय तन्निषादेशं सभायाम्मन्त्रिभिः सह
सत्कृत्य तं वसुं राजा सपुत्रंसपरिच्छदम् । पप्रच्छ प्रीतिमान्राजा वसुं तंवनगोचरम्
किमागमनकृत्यन्ते वद त्वं वनगोचर ! ॥ २२ ॥

वसुरुवाच

राजन्मम वने दृष्टमाश्चर्यं शृणु भूपते !॥ २३ ॥

कश्चिच्छ्वेतवराहस्तु श्यामाकमचरन्निशि । तमवराहं धनुष्पाणिरन्वधावमहं नृप
अनुद्रुतो वायुवेगोगत्वावल्मीकमाविशत् । स्वामिपुष्करिणीतीरेपश्यतो मम भूपते

वल्मीकमखनं क्रोधान्मूर्च्छितो न्यपतम्भुवि ।

मत्पुत्रोऽयं समागत्य मां दृष्ट्वा मूर्च्छितम्भुवि ॥ २६ ॥

शुचिर्भूत्वा देवदेवं तुष्टाव मधुसूदनम् । ततो मयि समाविश्य वराहोऽध्यवदत्सुतम्
राज्ञे निवेद्य क्षिप्रं मच्चरित्रं निषादप । कृष्णगोक्षीरसेकेन वल्मीकं क्षालयेन्नृपः ॥

दृश्यते च शिला काचिद्वल्मीकस्था सुशोभना ।

वामाङ्कस्थभुवं माञ्च वराहवदनं स्थितम् ॥ २९ ॥

कारयित्वा शिल्पिनाऽथप्रतिष्ठाप्य मुनीश्वरैः । वैखानसैर्मुनिवरैरर्चयेत्तोण्डमानपि ॥
अथ गत्वाश्रीनिवासंवल्मीकावृतपद्द्वयम् । कपिलाकृष्णगोक्षीरसेचनैःक्षालयेच्छनैः
आपादपीठपर्यन्तं क्षालयित्वा दिनेदिने । कुर्यात्प्राकारमुभयोरुत्तरे दक्षिणेतथा ॥३२
इत्युक्त्वा चैव माऽमुञ्चद्देवःस्वस्थोऽभवन्नृप । इत्थन्तेवक्तुमायातोदेवदेवचिकीर्षितम्

श्रीवराह उवाच

तोण्डमानपि तच्छ्रुत्वा सुप्रीतो विस्मितोऽभवत् ।

ततः कार्यं विनिश्चित्य मन्त्रिभिः पुष्करादिभिः ॥ ३४ ॥

वेङ्कटाद्रिं जिगमिषुर्गोपानाहूय सर्वशः ।

कृष्णाश्च कपिला गावो याः काश्चित्सन्ति मामिकाः ॥ ३५ ॥

ताः सवत्सा आनयध्वं वेङ्कटाद्रिसमीपतः ।

इत्याऽऽज्ञाप्य नृपो गोपाञ्छ्वो यात्रेति च मन्त्रिणः ॥ ३६ ॥

विसृज्य प्रकृतीः सर्वा विवेशान्तःपुरम्वशी ।

उक्त्वा कथां तां पत्नीभ्यः सुष्वाप निशि पार्थिवः ॥ ३७ ॥

तं स्वप्ने श्रीनिवासोऽपि बिलमार्गंह्यदर्शयत् । स्वपुराद्वाबिलंमार्गोपलवानसृजद्धरिः

एवं स्वप्नं नृपोदृष्ट्वा प्रातरुत्थाय सत्वरः । आहूय मन्त्रिणः सर्वान्प्रकृतीन्ब्राह्मणानपि

स्वप्नन्तथाविधं चोक्त्वाऽपश्यद्द्वारेऽथ पल्लवान् ।

युक्ते मुहूर्ते प्रययौ हयमारुह्य तोण्डमान् ॥ ४० ॥

पश्यन्पल्लवभङ्गांश्च शनैः प्रीतो ययौ बिलम् । दृष्ट्वा विस्मयमापन्नो निर्ममेतत्रपत्तनम्

बिलमन्तःपुरे कृत्वा प्राकारञ्चाऽप्यकारयत् ।

वसंस्तत्र नृपेन्द्रोऽसौ निर्जित्य पृथिवीमिमाम् ॥ ४२ ॥

यथोक्तं देवदेवेन क्षीरप्रक्षालनादिकम् । कृत्वा प्राकारनिर्माणं कर्तुमुद्योगमाययौ ॥

तदानीं देवदेवेन स्वयमाज्ञापितो नृपः । तिन्तिणींचम्पकञ्चोभौपालयैतौ नगोत्तमौ

मम चाऽऽस्थानकी चिञ्चा लक्ष्म्याः स्थानञ्च चम्पकः ।

नमस्कार्यौ नृपैस्तौ हि ऋषिदेवनरैः सदा ॥ ४५ ॥

संस्थाप्यैतौनृपश्रेष्ठच्छेदयान्यान्नगोत्तमान् । प्राकारमात्रं कुरु मे द्वारगोपुरसंयुतम् ॥

विमानन्तु भवद्वंश्योनाम्नानारायणोनृपः । कारयिष्यतिमद्भक्तः स्वर्णनाऽलङ्करिष्यति

श्रीवराह उवाच

एवमुक्त्वा तोण्डमानं विरराम श्रियःपतिः ।

एवं देववचःश्रुत्वा कृत्वा प्राकारमेव च॥ ४८ ॥

पूजयामास मुनिभिर्वैखानसकुलोद्भवैः ॥ ४९ ॥

नित्यंबिलेन चाऽऽगत्य देवं नत्वानृपोत्तमः । राज्यञ्चकारधर्मेणभुञ्जानोभोगमुत्तमम्

एतस्मिन्नेव काले तु दाक्षिणात्यो द्विजोत्तमः ॥ ५१ ॥

गङ्गास्नानायगच्छन्वैसदारःप्रययौपुरात् । मार्गेऽथगर्भिणीजाता ब्राह्मणी ब्राह्मणःसच

तांतुगर्भवतींदृष्ट्वास्वात्मानुगमनेऽक्षमाम् । राजानं द्रष्टुकामोऽसौ राजद्वारमुपागमत्

द्वाःस्थेनाऽऽज्ञापितो राजा तमाहूय द्विजोत्तमम् ।

पूजयित्वा तु विधिवत्पप्रच्छ कुशलं द्विजम् ॥ ५४ ॥

राजोवाच

किमागमनकृत्यन्ते किंकरिष्याम्यहं द्विज ! ।

ब्राह्मण उवाच

वासिष्ठो वीरशर्माऽहं सामवेदी नृपोत्तम ! ॥ ५५ ॥

सदारोनिर्गतोराजन्गङ्गास्नानाय सादरः । मार्गेच गर्भिणीचेयंकौशिकीपुण्यशालिनी

नाम्ना लक्ष्मीरिति ख्याता सुशीला च पतिव्रता ।

संस्थाप्यैनां तव गृहे व्रतं निर्वर्तयाम्यहम् ॥ ५७ ॥

तस्माद्राजन्प्रयच्छाऽस्यै यथेष्टं भक्तवेतने । तावच्च रक्ष्यतां लक्ष्मीर्यावदागमनं मम

श्रीवराह उवाच

राजा तस्य वचः श्रुत्वा तण्डुलानि धनान्यपि । दत्त्वाषण्मासपर्यन्तंगृहमन्तःपुरेददौ

तां न्यस्यब्राह्मणःप्रीतोगङ्गास्नानायनिर्ययौ । गत्वाभागीरथीं गङ्गां प्रयागेक्षेत्रउत्तमे

स्नात्वा काशीं ततो गत्वा तत्रोषित्वा दिनत्रयम्

गयाम्प्राप्य पितृश्राद्धमकरोद् ब्राह्मणोत्तमः ॥ ६१ ॥

गत्वाऽयोध्यामपिपुरींप्रययौवदरीवनम् । सालग्रामं ततो गत्वा स्वदेशम्प्रतिनिर्ययौ

सम्वत्सरद्वयेऽतीते चैत्रे मासि शुभे दिने । निवृत्तोऽसौद्विजश्रेष्ठः शनैरागत्यमाधवे

एकादश्यां शुक्लपक्षे पुना राजानमाययौ । राजा तु विस्मृत्यतदाब्राह्मणीनास्मरन्नृपः

ब्राह्मणी मानिनी गेहे मृता शुष्का बभूव ह ।

वीरशर्मा ततो विप्रो गङ्गातोयकरण्डकम् ॥ ६५ ॥

विमुच्य वन्धनं त्वेकं गङ्गाम्भःकरकं शुभम् । प्रादायराज्ञे पप्रच्छ पत्नीं कुशलिनीतिमे

स्मृत्वाऽथ राजा विप्रन्तं स्थीयतामीतिचाऽब्रवीत् ।

अन्तःपुरं ततो गत्वा तामपश्यन्मृतां गृहे ॥ ६७ ॥

अनुक्त्वा ब्रह्मणे तस्मै प्रविश्य विलमुत्तमम् ।

श्रीनृसिंहं नमस्कृत्य पुनः प्राप्य विलोत्तमम् ॥ ६८ ॥

श्रीनिवासं ययौ द्रष्टुंश्रीभूमिसहितम्परम् । तं दृष्ट्वा सहसायान्तं जुगूहाते धरारमे

प्रणमन्तमवोचत्तं किमकाले नृपागतः । नृपोऽवदत्प्रणम्येशं भीतोऽथब्राह्मणींमृताम्

तच्छ्रुत्वा देवदेवोऽपि मा भैः राजन्द्विजोत्तमात् ।

आन्दोलितां तामारोप्य स्त्रीभिः स्वाभिः समन्विताम् ॥ ७१ ॥
मदालयात्पूर्वभागे द्वादश्यां स्नापयप्रभो । अस्थिनाम्निसरस्यस्मिन्नपमृत्युनिवारणे
प्राप्तजीवासमं स्त्रीभिर्ब्राह्मणेन च योक्ष्यते । शीघ्रं याहि नृपश्रेष्ठ यथोक्तं वचनं कुरु॥
इति देववचः श्रुत्वाप्रययौस्वपुरंनृपः । आन्दोलिकासुरम्यासुस्त्रियआरोप्यतामपि ॥
ब्राह्मणश्चपुरःस्कृत्यद्रष्टुं देवंययौनृपः । अस्थिकूटसरःप्राप्य स्नापयामास ताः स्त्रियः
त्वगस्थिरूपा ता चापि ताभिः क्षिप्तासरोवरे । प्राप्तजीवायथापूर्वंसुव्यक्तिरशरीरजा
उत्थिता सरसःस्नात्वा राज्ञीभिःसहमङ्गला । प्राप्ताच ब्राह्मणम्प्रीता भर्तारंपुनरागतम्
राजा हरिं पूजयित्वा ब्राह्मणाय धनन्ददौ । सहस्रनिष्कपर्यन्तंवस्त्राणिविविधानिच
स्वदेशगमनायैव सादरम्विससर्ज हः । विप्रः श्रुत्वा स्त्रियो वृत्तंप्रभाम्वं वेङ्कटेशितुः
आशीः प्रयुज्य राज्ञेऽथ स्वदेशं प्रययौ द्विजः ।
विप्रे गते श्रीनिवासो राजानम्पुनरब्रवीत् ॥ ८० ॥
दिनेदिनेच मध्याह्ने नैवेद्याऽनन्तरं नृप । आगत्य मामर्चयित्वा यथेष्टं स्वर्णपङ्कजैः ॥
गत्वा पुरीं स्वधर्मेण राज्यं कुरु नराधिप !। यद्यदिष्टन्तव नृप भविष्यति न संशयः
नागन्तव्यमकाले तु त्वया नृप कदाचन । एवं कालार्चनं कृत्वा गत्वा त्वं स्वपुरेवस

राजोवाच

तथा करिष्ये देवेश! मध्याह्ने चार्चयाम्यहम् । इति देवाज्ञया नित्यमर्चयन्स्वर्णपङ्कजैः
तदूर्ध्वं तुलसीपुष्पं जात्वपश्यत्स मृण्मयम् ॥ ८५ ॥
विस्मितो देवदेवेशमपृच्छन्नृपसत्तमः ।

राजोवाच

केनाऽर्च्यसे मृण्मयैश्च कमलैस्तुलसीसमैः ॥ ८६ ॥
राज्ञा पृष्टो देवदेवः स्मृत्वा राजानमब्रवीत् । कश्चित्कुलालोमद्भक्तःकुर्वग्रामेवसत्यसौ
स्वगृहेऽर्चयते राजंस्तदङ्गीक्रियते मया । इति देववचः श्रुत्वा तं द्रष्टुं प्रययौ नृपः ॥
गत्वा कुर्वपुरं तस्य कुलालस्य गृहं ययौ । राजानमागतं दृष्ट्वा प्रणम्यं वाग्रतःस्थितः
स्थितन्तं भीमनामानं पप्रच्छ नृपसत्तमः ।

तोण्डमानुवाच

भीम! पूजयसे देवं कथम्वद कुलोत्तम !॥ ९०॥

श्रीवाराह उवाच

पृष्टः प्राह कुलालोऽपि जातु जाने न चाऽर्चनम्।

केनोक्तं नृपतिश्रेष्ठ! कुलालोऽर्चयतीति हि ॥ ९१॥

तोण्डमानुवाच

देवेन श्रीनिवासेन ममोक्तं हि त्वदर्चनम्। स तु श्रुत्वा नृपवचः स्मृत्वा देववरम्पुरा

भीम उवाच

यदाप्रकाशितापूजायदाराजा समागतः। तोण्डमांस्तेन संवादस्तदामोक्षंगमिष्यसि

इति पूर्वम्वरं देवो दत्तवान्वेङ्कटेश्वरः ॥ ९४॥

इत्युक्त्वाऽथ कुलालोऽपि पत्न्यासार्धं तथैव च। विमानमागतंदृष्ट्वादेवंदृष्ट्वाजनार्दनम्

प्रणमन्प्रजहौप्राणान्सदारो भक्तसत्तमः। पश्यतो राजराजस्य विमानमधिरुह्य च॥

दिव्यरूपधरो देव्या सार्धं विष्णुपदं ययौ। दृष्ट्वा राजाऽद्भुतं तत्र स्वपुरं प्राप्यहर्षितः

स्वपुत्रं श्रीनिवासाख्यमभिषिच्यविधानतः। परिपालय धर्मेण मानवांश्चवसुन्धराम्

इत्याज्ञाप्य सुतं धीमांस्तताप परमं तपः। तप्यतस्तस्य देवोऽपि प्रत्यक्षमभवद्धरिः

आरुह्य गरुडं देवो रमाभूमिसमन्वितः ॥ १००॥

श्रीभगवानुवाच

किं करोमि नृपश्रेष्ठ तपसा तोषितस्तव। इत्युक्तो देवदेवेन तोण्डमानपि राजराट्

प्रीतिमान्प्राञ्जलिर्भूत्वा सगद्गदमुवाच ह। त्वल्लोके वस्तुमिच्छामि जरामरणवर्जिते

इदमेव वरं देहि माधवैतन्ममेप्सितम् ॥ १०३॥

श्रीवराह उवाच

इत्युक्त्वानिपपातोर्व्यांसाष्टाङ्गं देवसन्निधौ। तदाकलेवरं मुक्त्वा विमानं त्वारुरोहच

गन्धर्वैः स्तूयमानोऽसौसारूप्यंप्राप्यशार्ङ्गिणः। यच्छोकमोहरहितंजरामरणवर्जितम्

पुनरावृत्तिरहितं तद्विष्णोः पदमाययौ ॥ १०६॥

एतद्भविष्यं देवेशि मयोक्तं वरवर्णिनि !। यः श्रावयेद्यः शृणुयाद्विष्णुलोकंसगच्छति

श्रीसूत उवाच

इत्युक्तं देवदेवेन सभविष्यं सहोत्तरम् । शृणुयाद्यः पठेद्भक्त्या कथां पुण्यांपुरातनीम्

स तु भुक्त्वाऽखिलान्कामानन्ते विष्णुपदं व्रजेत् ॥ १०६ ॥

इति स्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणिवराहसम्वादे भविष्यद्वर्णने तोण्डमांसश्चक्रवर्तिवृत्तवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

काश्यपस्यस्वामिपुष्करिणीस्नानेनमहापातकनाशवणनम्

श्रीसूत उवाच

अथातःसंप्रवक्ष्यामिस्वामिपुष्करिणींशुभाम् । लक्ष्मीकृत्यकथामेकांपवित्रांद्विजसत्तमाः

काश्यपाख्यो द्विजःपूर्वमस्मिंस्तीर्थवरेशुभे । स्नात्वातिमहतःपापाद्विमुक्तोनरकप्रदात्

ऋषय ऊचुः

मुने ! काश्यपनामासावकरोत्किं हि पातकम् ।

स्नात्वा तीर्थवरे ह्यत्र यस्मान्मुक्तोऽभवत्क्षणात् ॥ ३ ॥

एतन्नः श्रद्दधानानांब्रूहि सूत! कृपाबलात् । त्वद्वचोऽमृततृप्तानांनपिपासाऽपि विद्यते

श्रीसूत उवाच

श्रीस्वामिपुष्करिण्याश्च माहात्म्यप्रतिपादकम् ।

इतिहासं प्रवक्ष्यामि पठताम्पापनाशनम् ॥ ५ ॥

अभिमन्युसुतो राजा परिक्षिन्नाम नामतः । अध्यास्तहास्तिनपुरंपालयन्धर्मतोमहीम्

स राजा जातु विपिने चचार मृगयारतः । षष्टिवर्षवया भूपः क्षुत्तृष्णापरिपीडितः ॥

नष्टमेकं स विपिने मार्गयन्मृगमादरात् । ध्यानारूढं मुनिं दृष्ट्वा प्राह भूपालकोत्तमः ॥
मया बाणेन विपिनेमृगो विद्धोऽधुनामुने । दृष्टःस किं त्वयाविद्धन्विद्रुतोभयकातरः

समाधिनिष्ठो मौनित्वान्न किञ्चिदपि सोऽब्रवीत् ।
ततो धनुरटन्या स स्कन्धे तस्य महामुनेः ॥ १० ॥

निधाय मृतसर्पं तु कुपितः स्वपुरं ययौ । मुनेस्तस्य सुतः कश्चिच्छृङ्गीनामबभूववै

सखा तस्य कृशाख्योऽभूच्छृङ्गिणो द्विजसत्तमः ।
सखायं शृङ्गिणं प्राह कृशाख्यः स सखा ततः ॥ १२ ॥

पिता तव मृतं सर्पं स्कन्धेन वहतेऽधुना । मा भूद्दर्पस्तव सखेमाक्रुध्यस्त्वमिदंवृथा
सोऽभवत्कुपितः शृङ्गी दित्सुःशापंनृपाय वै । मत्तातेशवसर्पंयोन्यस्तवान्मूढचेतनः
स सप्तरात्रान्म्रियतां सन्दष्टस्तक्षकाहिना । शशापैवं मुनिसुतः औत्तरेयं परीक्षितम्
शमीकाख्यः पिता तस्य शप्तं श्रुत्वा सुतेन तम् । नृपंप्रोवाचतनयंशृङ्गिणंमुनिपुङ्गवः
रक्षकं सर्वलोकानां नृपं किं शप्तवानसि । अराजके वयं लोके स्थास्यामःकथमञ्जसा
क्रोधेन पातकं भूयाद्वयया प्राप्यते सुखम् । यः समुत्पादितं कोपं क्षमयैवनिरस्यति
इह लोके परत्रासावत्यन्तं सुखमश्नुते । क्षमायुक्ता हि पुरुषा लभन्ते श्रेय उत्तमम्

ततः शमीकः स्वं शिष्यं प्राह गौरमुखाभिधम् ।
भो गौरमुख! गत्वा त्वं वद भूपं परीक्षितम् ॥ २० ॥

इमं शापं मत्सुतोक्तं तक्षकाधिपदंशनम् । पुनरायाहि शीघ्रं त्वं मत्समीपं महामते ॥
एवमुक्तः शमीकेन ययौ गौरमुखो नृपम् । समेत्यचाऽब्रवीद्भूपमौत्तरेयं परीक्षितम्

दृष्टा सर्पं पितुः स्कन्धे त्वया विनिहितं मृतम् ।
शमीकस्य सुतः शृङ्गी शशाप त्वां रुषान्वितः ॥ २३ ॥

एतद्दिनात्सप्तमेऽह्नि तक्षकेण महाहिना । दष्टो विषाग्निना दग्धो भूयादाश्वभिमन्युजः
एवंशशापत्वांराजञ्छृङ्गीतस्यमुनेः सुतः । एतद्वक्तुंपितातस्यप्राहिणोन्मांत्वदन्तिकम्
इतीरयित्वा तं भूपमाशु गौरमुखो ययौ । गते गौरमुखे पश्चाद्राजा शोकपरायणः
अभ्रंलिमहथोत्तुङ्गमेकस्तम्भं सुविस्तृतम् । मध्येगङ्गं व्यतनुत मण्डपं नृपपुङ्गवः ॥

महागारुडमन्त्रज्ञैरोषधिज्ञैश्चिकित्सकैः । तक्षकस्य विषं हन्तुं यत्नं कुर्वन्समाहितः ॥
अनेकदेवब्रह्मर्षिराजर्षिप्रवरान्वितः । आस्ते तस्मिन्नृपस्तुङ्गे मण्डपेविष्णुभक्तिमान्
तस्मिन्नवसरे विप्रःकाश्यपोमान्त्रिकोत्तमः । राजानंरक्षितुंप्रायात्तक्षकस्यमहाविषात्
सप्तमेऽहनि विप्रेन्द्रो दरिद्रो धनकामुकः । अत्रान्तरे तक्षकोऽपिविप्ररूपीसमाययौ
मध्येमार्गं विलोक्याऽथ काश्यपं प्रत्यभाषत । ब्राह्मण! त्वंकुत्र यासिवदमेऽद्यमहामुने

इति पृष्टस्तदाऽवादीत्काश्यपस्तक्षकं द्विजः ।
परीक्षितं महाराजं तक्षकोऽद्य विषाग्निना ॥ ३३ ॥

धक्ष्यते तं शमयितुं तत्समीपमुपैम्यहम् । इत्युक्तः स च तं विप्रं तक्षकः पुनरब्रवीत्
तक्षकोऽहंद्विजश्रेष्ठ! मयादष्टश्चिकित्सितुम् । नशक्योऽब्दशतेनाऽपिमहामन्त्रायुतैरपि

चिकित्सितुं चेन्मद्दष्टं शक्तिरस्ति तवाऽधुना ।
अनेकयोजनोच्छ्रायं दशाम्युज्जीवय द्रुमम् ॥ ३६ ॥
ततो भवान्समर्थो हीत्येवम्मे भाति हे द्विज !।
इतीरयित्वा तं वृक्षमदशत्तक्षकस्तदा ॥ ३७ ॥

अभवद्भस्मसात्सोऽपि वृक्षोऽत्यन्तसमुच्छ्रितः । पूर्वमेवनरःकश्चित्तंवृक्षमधिरूढवान्
तक्षकस्य विषोल्काभिःसोऽपिदग्धोऽभवत्तदा । तन्नरंनविजज्ञातेतौचकाश्यपतक्षकौ
काश्यपः प्रतिजज्ञेऽथतक्षकस्यापिश्रृण्वतः । मन्मन्त्रशक्तिंपश्यन्तुसर्वेविप्रादयोऽधुना
इतीरयित्वातंवृक्षंभस्मीभूतंविशाग्निना । आजीवयन्मन्त्रशक्त्याकाश्यपोमान्त्रिकोत्तमः

स नरस्तेन वृक्षेण साकमुज्जीवितोऽभवत् ।
अथाऽब्रवीत्तक्षकस्तं काश्यपं मन्त्रकोविदम् ॥ ४२ ॥

यथा न मुनिवाङ्मिथ्याभवेदेवं कुरु द्विज !। यत्ते राजाधनंदद्यात्ततोऽपिद्विगुणंधनम्
ददाम्यहंनिवर्तस्व शीघ्रमेव द्विजोत्तम !। इत्युक्त्वाऽनर्घरत्नानितस्मैदत्त्वा स तक्षकः
न्यवर्तयत्काश्यपं तं ब्राह्मणंमन्त्रकोविदम् । अल्पायुषं नृपं मत्वाज्ञानदृष्ट्यासकाश्यपः
स्वाश्रमं प्रययौ तूष्णींलब्धरत्नश्चतक्षकात् । सोऽब्रवीत्तक्षकःसर्पान्सर्वानाहूयतत्क्षणे
यूयं तं नृपतिं प्राप्य मुनीनां वेषधारिणः । उपहारफलान्याशु प्रयच्छत परीक्षिते ॥

तथेत्युक्त्वा सर्वसर्पा ददू राज्ञे फलान्यमी । तक्षकोऽपि तथातत्रकस्मिंश्चिद्बदरीफले
कृमिवेषधरो भूत्वा व्यतिष्ठद्दंशितुं नृपम् । अथ राजा प्रदत्तानि सर्पैर्ब्राह्मणरूपकैः ॥

परीक्षिन्मन्त्रिवृद्धेभ्यो दत्त्वा सर्वफलान्यपि ॥ '१० ॥

कौतूहलेन जग्राह स्थूलमेकं करे फलम् । तस्मिन्नवसरे सूर्योऽप्यस्ताचलमगाहत ॥

मिथ्या ऋषिवचो मा भूदिति तत्रत्यमानवाः ।
अन्योऽन्यमवदन्सर्वे ब्राह्मणाश्चनृपास्तदा ॥ '१२ ॥

एवं वदत्सु सर्वेषु फलेतस्मिन्नदृश्यत । साधु रक्तःकृमिः सर्वै राज्ञा चाऽपिपरीक्षिता
अयं किं मां दशेद्य क्रिमिरित्युक्तवान्नृपः । निदध्रे तत्फलंकण्ठेसकृमिद्विजसत्तमाः
तक्षकोऽस्मिन्स्थितः कण्ठे कृमिरूपीफलेतदा । निर्गत्यतत्फलादाशुनृपदेहमवेष्टयत्
तक्षकावेष्टिते भूपे पार्श्वस्था दुद्रुवुर्भयात् । अनन्तरं नृपोविप्रास्तक्षकस्यविषाग्निना
दग्धोऽभूद्भस्मसादाशु सप्रासादोबलीयसा । कृत्वौर्ध्वदेहिकंतस्यनृपस्यसपुरोहिताः
मन्त्रिणस्तत्सुतं राज्ये जनमेजयनामकम् । राजानमभ्यषिञ्चन्वै जगद्रक्षणवाञ्छया
तक्षकाद्रक्षितुं भूपमायातः काश्यपाभिधः । यो ब्राह्मणोमुनिश्रेष्ठःससर्वैर्निन्दितोजनैः
वभ्राम सकलान्देशाञ्छिष्टैः सर्वैश्च दूषितः । अवस्थानंन लेभेसग्रामेवाप्याश्रमेऽपिवा
यान्यान्देशानसौ यातस्तत्र तत्रमहाजनैः । तत्तद्देशान्निरस्तः सञ्छाकल्यं शरणं ययौ
प्रणम्य शाकल्यमुनिं काश्यपोनिन्दितो जनैः । इदं विज्ञापयामासशाकल्यायमहात्मने

काश्यप उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञशाकल्य! हरिवल्लभ । मुनयो ब्राह्मणाश्चाऽन्ये मां निन्दन्ति सुहृज्जनाः
नास्याऽहं कारणं जाने किंमांनिन्दन्ति मानवाः । ब्रह्महत्यासुरापानंगुरुस्त्रीगमनंतथा
स्तेयं संसर्गदोषो वः मयानाऽऽचरितंकचित् । अन्यान्यपिचपापानिनकृतानिमयामुने
तथाऽपि निन्दन्ति जना वृथामांबान्धवादयः । जानासिचेत्त्वंशाकल्यमयादोषंकृतंवद
उक्तोऽथकाश्यपेनैवशाकल्याख्योमहामुनिः । क्षणंध्यात्वाबभाषेतंकाश्यपंद्विजसत्तमाः

शाकल्य उवाच

परीक्षितं महाराजं तक्षकाद्रक्षितुं भवान् । आयासीदर्धमार्गे तु तक्षकेण निवारितः ॥

चिकित्सितुं समर्थोऽपि विषरोगादिपीडितम् ।
यो न रक्षति लोकेस्मिंस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ६६ ॥

क्रोधात्कामाद्भयाल्लोभान्मात्सर्यान्मोहतोऽपिवा । योनरक्षतिविप्रेन्द्रविषरोगातुरंनरम्
ब्रह्महा च सुरापी वा स्तेयी च गुरुतल्पगः । संसर्गदोषदुष्टश्चनापितस्यविनिष्कृतिः
कन्याविक्रयिणश्चापि हयविक्रयिणस्तथा । कृतघ्नस्याऽपिशास्त्रेषुप्रायश्चित्तंतुविद्यते
विषरोगातुरं यस्तु समर्थोऽपि न रक्षति । नतस्यनिष्कृतिःप्रोक्ताप्रायश्चित्तायुतैरपि
न तेन सह पङ्क्तौ च भुञ्जीत सुकृती जनः । न तेन सह भाषेत न पश्येत्तंनरंक्वचित्
तत्सम्भाषणमात्रेण महापातकभाग्भवेत् । परीक्षित्समहाराजः पुण्यश्लोकश्चधार्मिकः
विष्णुभक्तोमहायोगीचातुर्वर्ण्यस्यरक्षिता । व्यासपुत्राद्धरिकथांश्रुतवान्भक्तिपूर्वकम्
अरक्षित्वा नृपं तं तु वचसा तक्षकस्य यत् । निवृत्तस्तेन विप्रेन्द्रैर्बान्धवैरपि दूष्यसे
स परीक्षिन्महाराजो यद्यपिक्षणजीवितः । तथापियावन्मरणंबुधैःकार्यंचिकित्सितम्

यावत्कण्ठगताः प्राणा मुमूर्षोर्मानवस्य हि ।
तावच्चिकित्सा कर्तव्या कालस्य कुटिला गतिः ॥ ७६ ॥

इतिप्राहुःपुराश्लोकंभिषग्विद्याब्धिपारगाः । ततश्चिकित्साशक्तोऽपियस्मादकृतभेषजः
अर्धमार्गनिवृत्तश्च तेन त्वं गर्हितो ह्यसि । शाकल्येनैवमुदितः काश्यपः प्रत्यभाषत

काश्यप उवाच

ममैतद्दोषशान्त्यर्थमुपायं वद सुव्रत !। येन मां प्रतिगृह्णीयुर्बान्धवाः ससुहृज्जनाः ॥८२
कृपां मयि कुरुष्वत्वं शाकल्यहरिवल्लभ । काश्यपेनैवमुक्तस्तुशाकल्योऽपि मुनीश्वरः
क्षणं ध्यात्वा जगादैवं काश्यपं कृपया तदा ॥ ८४ ॥

शाकल्य उवाच

अस्यपापस्यशान्त्यर्थमुपायं प्रवदामि ते । तत्कर्तव्यंत्वयाशीघ्रं विलम्बंमाकृथाद्विज
सुवर्णमुखरीतीरे लक्ष्मीपतिनिवासभूः । वेङ्कटाद्रिरिति ख्यातः सर्वलोकेषु पूजितः
तस्मिञ्छेषगिरौ पुण्ये सुरासुरनमस्कृते । ब्रह्महत्यासुरापानस्वर्णस्तेयादिनाशके ॥
स्वामिपुष्करिणी चेति सर्वपापापनोदिनी । उत्तरे श्रीनिवासस्य वर्तते मङ्गलप्रदा

तं गत्वा वेङ्कटं शैलं स्वामिपुष्करिणीं शुभाम् ।
स्नात्वा सङ्कल्पपूर्वं तु वराहस्वामिनं हरिम् ॥ ८९ ॥
सेवित्वा पश्चिमेतीरेनिर्गत्यहरिमन्दिरम् । गत्वातत्रविधानेनस्वर्णाचलनिवासिनम्
श्रीनिवासं परं देवं भक्तानामभयप्रदम् । शङ्खचक्रधरं देवं वनमालाविभूषितम् ॥
दृष्ट्वानिर्धूतपापोऽसि संशयं मा कृथा द्विज । शाकल्यैनैवमुक्तस्तकाश्यपो मुनिपुङ्गवः
गत्वा वेङ्कटशैलेन्द्रं सुरासुरनमस्कृतम् । पुष्करिण्यांशुभायां तु स्नातोनियमपूर्वकम्
स्वस्थोऽभूत्काश्यपो विप्रोभिषग्विद्याब्धिपारगः ।
सर्वे बन्धुजना विप्रा काश्यपं ब्राह्मणोत्तमम् ॥ ९४ ॥
पूजयित्वा विधानेन पूज्योऽसि न च संशयः । एवम्वःकथितंविप्रावेङ्कटाचलवैभवम्
यः शृणोति नरोभक्त्या विष्णुलोके महीयते ॥ ९६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलस्थस्वामिपुष्करिणीमाहात्म्ये काश्यपदोष-निवृत्तिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

स्वामिपुष्करिणीस्नानात्तामिस्रादिनरकनिस्तारवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

सूत! सर्वार्थतत्त्वज्ञ ! वेदवेदाङ्गपारग !। श्रीस्वामिपुष्करिण्याश्च वैभवं वद नः प्रभो
यस्याः स्मरणमात्रेण मुक्तः स्यान्मानवो भुवि ॥ २ ॥

सूत उवाच

स्वामितीर्थं प्रशंसन्तिस्नान्ति वा कथयन्तिये । अष्टाविंशतिभेदांस्तेनरकान्नोपभुञ्जते
तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ । कुम्भीपाकं कालसूत्रमसिपत्रवनं तथा ॥

कृमिभक्षोऽन्धकूपश्च सन्दंशःशालमली तथा । लालाभक्षोह्यवीचिश्चसारमेयादनंतथा
तथैववज्रकणकः क्षारकर्दमपातनम् । रक्षोगणासनं चाऽपिशूलप्रोतनिरोधनम् ॥
तिरोधानाभिधं विप्रास्तथा सूचीमुखाभिधम् ।
पूयशोणितभक्षश्च विषाग्निपरिपीडनम् ॥ ७ ॥
अष्टाविंशतिसङ्ख्यातमेतन्नरकसञ्चयम् ।
न याति मनुजो विप्राः स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ८ ॥
वित्तापत्यकलत्राणां योऽन्येषामपहारकः । सकालपाशबद्धोऽयं यमदूतैर्भयानकैः ॥
तामिस्रे नरकेघोरे पात्यते बहुवत्सरम् ।
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे स तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ १० ॥
मातरं पितरंविप्रान्योद्वेष्टिपुरुषाधमः । स कालसूत्रनरके विस्तृतायुतयोजने ॥११॥
अधस्तादग्निसन्तप्ते उपर्यर्कमरीचिभिः । खलेताम्रमयेविप्राः पात्यतेक्षुधयार्दितः ॥
स्नाति चेत्पुष्करिण्यां वै तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ।
यो वेदमार्गमुल्लङ्घ्य वर्तते कुपथे नरः ॥ १३ ॥
सोऽसिपत्रवने घोरे पात्यते यमकिङ्करैः ।
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ १४ ॥
योऽश्नाति पङ्क्तिभेदेनपक्वंसूपादिकं नरः । अकृत्वापञ्चयज्ञान्वाभुङ्क्तेमोहेनसद्विजाः
पात्यतेऽयं यमभटैर्नरके कृमिभोजने । भक्ष्यमाणः कृमिशतैर्भक्षयन्कृमिसञ्चयान् ॥
स्वयञ्च कृमिभूतः संस्तिष्ठेद्यावदघक्षयम् ।
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे वै तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ १७ ॥
योहरेद्विप्रवित्तानि स्नेहेन बलतोऽपि वा । अन्येषामपिवित्तानिराजातत्पुरुषोऽपिवा
अयोमयाग्निकुण्डेषु सन्दंशैः सोऽपिपीडितः । सन्दंशे नरकेघोरे पात्यते यमपूरुषैः ॥
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ।
अगम्यां योऽभिगच्छेत स्त्रियम्वै पुरुषाधमः ॥ २० ॥
अगम्यं पुरुषं योषिदभिगच्छेत वा द्विजाः । तावयोमयनारीं च पुरुषंचाऽप्ययोमयम्

तत्रा वालिङ्ग्यतिष्ठन्तौयावच्चन्द्रदिवाकरम् । सूच्याख्येनरकेघोरे पात्येतेयमकिङ्करैः
स्नाति चेत्स्वामितीर्थेचतस्मिन्नासौनिपात्यते । बाधतेसर्वजन्तून्योनानोपायैरुपद्रवैः
शाल्मलीनरके घोरे पात्यते बहुकण्टके ।
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ २४ ॥
राजा वा राजभृत्यो वा यः पाषण्डमनुद्रुतः । भेदको धर्मसेतूनांवैतरण्यांनिपात्यते
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नासौ निपात्यते ।
वृषलीसङ्गदुष्टो वा शौचाद्याचारवर्जितः ॥ २६ ॥
त्यक्तलज्जस्त्यक्तवेदःपशुचर्यारतः सदा । सपूयविष्ठामूत्रासृक्श्लेष्मपित्तादिपूरिते
अतिवीभत्सनरके पात्यते यमकिङ्करैः ।
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ २८ ॥
यःश्वभिर्मृगयुर्वन्यान्बाणैर्वा बाधतेमृगान् । सविध्यमानोवाणौघैःपरत्र यमकिङ्करैः
प्राणरोधाख्यनरके पात्यते यमकिङ्करैः ।
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ ३० ॥
दाम्भिको यः पशून्यज्ञे विध्यनुष्ठानवर्जितः । हन्त्यसौ परलोकेषु वैशसेनरके द्विजाः
कर्त्यमानो यमभटैः पात्यते यमकिङ्करैः ।
स्नाति चेत्पुष्करिण्याम्वै तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ ३२ ॥
आत्मभार्यां सवर्णां यो रेतः पाययते यदि । परत्र रेतःपायी स रेतःकुण्डेनिपात्यते
स्नाति चेत्पुष्करिण्याम्वै तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ।
यो दस्युर्मार्गमाश्रित्य गरदो ग्रामदाहकः ॥ ३४ ॥
वणिग्द्रव्यापहारी च स परत्र द्विजोत्तमाः । वज्रदंष्ट्राभिधेघोरे पात्यते नरके चिरम्
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ।
विद्यन्ते यानि चाऽन्यानि नरकाणि परत्र वै ॥ ३६ ॥
तानि नाऽऽप्नोति मनुजः स्वामितीर्थनिमज्जनात् ।
पुष्करिण्यां सकृत्स्नानादश्वमेधफलं लभेत् ॥ ३७ ॥

आत्मविद्या भवेत्साक्षान्मुक्तिश्चापि चतुर्विधा । न पापे रमते बुद्धिर्नभवेद्दुःखमेववा
तुलापुरुषदानेन यत्फलंलभ्यते नरैः । तत्फलं लभ्यते पुम्भिः स्वामितीर्थनिमज्जनात्
गोसहस्रप्रदानेनयत्पुण्यं हिभवेन्नृणाम् । तत्पुण्यंलभते मर्त्यःस्वामितीर्थनिमज्जनात्

धर्मार्थकाममोक्षाणां यं यमिच्छति पूरुषः ।
तं तं सद्यः समाप्नोति स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४१ ॥

महापातकयुक्तोवायुक्तोवासर्वपातकैः । सद्यः पूतो भवेद्विप्राःस्वामितीर्थनिमज्जनात्

प्रज्ञालक्ष्मीर्यशःसम्पज्ज्ञानं धर्मो विरक्तता ।
मनः शुद्धिर्भवेन्नृणां स्वामितीर्थनिषेवणात् ॥ ४३ ॥

ब्रह्महत्याऽयुतश्चापि सुरापानायुतन्तथा । अयुतं गुरुदाराणां गमनस्पापकारिणाम् ॥

स्तेयायुतं सुवर्णानां तत्संसर्गाश्च कोटिशः ।
शाघ्रं विलयमायान्ति स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४५ ॥

ब्रह्महत्यासमानानिसुरापानसमानि च । गुरुस्त्रीगमनेनाऽपियानितुल्यानिचास्तिकाः

सुवर्णस्तेयतुल्यानि तत्संसर्गसमानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४७ ॥

उक्तेष्वेतेषु सन्देहो न कर्त्तव्यः कदाचन । जिह्वाग्रे परशुं तप्तं प्रक्षिपन्ति चकिङ्कराः
अर्थवादमिमं सर्वं ब्रुवन्वैनरकं व्रजेत् । सूकरः स हि विज्ञेयः सर्वकर्मवहिष्कृतः ॥

अहो मौर्ख्यमहो मौर्ख्यमहो मौर्ख्यं द्विजोत्तमाः !।
स्वामितीर्थाभिधे तीर्थे सर्वपातकनाशने ॥ ५० ॥

अद्वैतज्ञानदे पुंसाम्भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि । इष्टकामप्रदे नित्यं तथैवाज्ञाननाशने ॥ ५१॥
स्थितेऽपि तद्विहायायं रमतेऽन्यत्रवैजनः । अहो मोहस्य माहात्म्यंमयावक्तुंनशक्यते

स्नानस्य स्वामितीर्थे तु नाऽन्तकाद्भयमस्ति वै ।
स्वामितीर्थश्च पश्यन्ति तत्र स्नान्ति च ये नराः ॥ ५३ ॥

स्तुवन्ति च प्रशंसन्ति स्पृशन्ति च नमन्ति च ।
न पिबन्ति हि ते स्तन्यं मातॄणां द्विजपुङ्गवाः !॥ ५४ ॥

एवम्वःकथितंविप्राःस्वामितीर्थस्यवैभवम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां सर्वपापनिवर्हणम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीस्वामिपुष्करिणीतीर्थमहिमानुवर्णनं नाम
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

धर्मगुप्तचरित्रवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

भूयोऽपि सम्प्रवक्ष्यामि स्वामितीर्थस्य वैभवम् ।
युष्माकमादरेणाऽहं नैमिषारण्यवासिनः ॥ १ ॥

नन्दोनाममहाराजः सोमवंशसमुद्भवः । धर्मेण पालयामास सागरान्तां धरामिमाम् ॥
तस्यपुत्रःसमभवद्धर्मगुप्त इति स्मृतः । राज्यरक्षाधुरं नन्दो निजपुत्रे निधाय सः ॥
जितेन्द्रियो जिताहारः प्रविवेशतपोवनम् । ताते तपोवनं याते धर्मगुप्ताभिधो नृपः
मेदिनीं पालयामास धर्मज्ञो नीतितत्परः । ईजे बहुविधैर्यज्ञैर्देवानिन्द्र पुरोगमान् ॥५
ब्राह्मणानांददौवित्तंक्षेत्राणिचबहूनि सः । सर्वेस्वधर्मनिरतास्तस्मिन्राजनि शासति
कदाचिन्नाभवन्पीडातस्मिंश्चोरादिसम्भवाः । कदाचिद्धर्मगुप्तोऽयमारुह्यतुरगोत्तमम्
वनं विवेश विप्रेन्द्रा मृगयारसकौतुकी । तमालतालहिन्तालकुरबाकुलदिङ्मुखे ॥
विचचार वनेतस्मिन्सिंहव्याघ्रभयानके । मत्तालिकुलसन्नादसम्मूर्च्छितदिगन्तरे ॥६
पद्मकल्हारकुमुदनीलोत्पलवनाकुले । तटाके रससम्पूर्णे तपस्विजनमण्डिते ॥१०॥
तस्मिन्वने सञ्चरतो धर्मगुप्तस्य भूपतेः । अभूद्विभावरी विप्रास्तमसावृतदिङ्मुखा

राजाऽपि पश्चिमां सन्ध्यामुपास्य विनयान्वितः ।
जजाप च वने तत्र गायत्रीं वेदमातरम् ॥ १२ ॥

सिंहव्याघ्रादिभीत्याऽस्मिन्वृक्षमेकंसमाश्रिते। राजपुत्रेतदभ्याशमृक्षःसिंहभयार्दितः
अन्वधावत वृक्षं तमेकः सिंहो वनेचरः। अनुद्रुतः स सिंहेन ऋक्षो वृक्षमुपारुहत् ॥
आरुह्य ऋक्षो वृक्षं तं ददर्श जगतीपतिम्। वृक्षस्थितं महात्मानं महाबलपराक्रमम्

उवाच भूपतिं दृष्ट्वा ऋक्षोऽयं वनगोचरः।
मा भीतिं कुरु राजेन्द्र! वत्स्यावो रजनीमिह ॥ १६ ॥

महासत्त्वो महाकायो महादंष्ट्रासमाकुलः। वृक्षमूलं समायातःसिंहोऽयमतिभीषणः
रात्र्यर्धं भज निद्रां त्वं रक्ष्यमाणो मयोद्यतः। ततः प्रसुप्तं मां रक्ष शर्वर्यर्धं महामते!

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य सुप्ते नन्दसुते हरिः।
प्रोवाच ऋक्षं सुप्तोऽयं नृपो मे त्यज्यतामिति ॥ १६ ॥

तं सिंहमब्रवीदृक्षो धर्मज्ञो द्विजसत्तमाः। भवान्धर्मं न जानीते मृगराज! वनेचर!॥
विश्वासघातिनां लोके महाकष्टम्भवत्यहो। न हि मित्रद्रुहां पापं नश्येद्यज्ञायुतैरपि

ब्रह्महत्यादिपापानां कथञ्चिन्निष्कृतिर्भवेत्।
विश्वासघातिनां पापं न नश्येज्जन्मकोटिभिः ॥ २२ ॥

नाऽहं मेरुं महाभारंमन्ये पञ्चास्य! भूतले। महाभारमिमं मन्ये लोकविश्वासघातकम्
एवमुक्तोऽथ ऋक्षेण सिंहस्तूष्णीं बभूव ह। धर्मगुप्ते प्रबुद्धे तु ऋक्षः सुष्वाप भूरुहे
ततः सिंहोऽब्रवीद्भूपमेनंवृक्षं त्यजस्व मे। एवमुक्तोऽथ सिंहेन राजासुप्तमशङ्कितः

स्वाङ्कन्यस्तशिरस्कं तमृक्षं तत्याज भूतले।
पात्यमानस्ततो राज्ञा समालम्बितपादपः ॥ २६ ॥

ऋक्षः पुण्यवशाद्वृक्षान्न पपात महीतले। स ऋक्षोनृपमभ्येत्यकोपाद्वाक्यमभाषत
कामरूपधरो राजन्नहं भृगुकुलोद्भवः। ध्यानकाष्ठाभिधो नाम्ना ऋक्षरूपमधारयम् ॥
कस्मादनागसं सुप्तमत्याक्षीन्मांभवान्नृप। मच्छापादतिशीघ्रं त्वमुन्मत्तश्चर भूतले
इतिशप्त्वा मुनिर्भूपं ततः सिंहमभाषत। न सिंहस्त्वं महायक्षःकुबेरसचिवः पुरा ॥
हिमवद्गिरिमासाद्य कदाचित्त्वं वधूसखः। अज्ञानाद्गौतमाभ्याशे विहारमतनोर्मुदा ॥
गौतमोऽप्युटजाद्दैवात्समिदाहरणाय वै। निर्गतस्त्वां विवसनंदृष्ट्वा शापमुदाहरत् ॥

यस्मान्ममाश्रमेऽद्य त्वं विवस्त्रः स्थितवानसि ।
अतः सिंहत्वमद्यैव भविता ते न संशयः ॥ ३३ ॥
इति गौतमशापेन सिंहत्त्वमगमत्पुरा । कुबेरसचिवो यक्षो भद्रनामा भवान्पुरा ॥३४
कुवेरो धर्मशीलो हि तद्भृत्याश्च तथैव हि । अतःकिमर्थं त्वंहंसिमाम्पृषिंवनगोचरम्
एतत्सर्वमहं ध्यानाज्ञानामिहिमृगाधिप । इत्युक्तोध्यानकाष्ठेनत्यक्त्वासिंहत्वमाशुसः
यक्षरूपं गतो दिव्यं कुबेरसचिवात्मकम् । ध्यानकाष्ठमसावाहप्राञ्जलिः प्रणतोमुनिम्
अद्य ज्ञातं मया सर्वं पूर्ववृत्तं महामुने!। गौतमः शापकाले मे शापान्तमपि चोक्तवान्
ध्यानकाष्ठेन सम्वाद ऋक्षरूपेण ते यदा । तदा निर्धूय सिंहत्वं यक्षरूपमवाप्स्यसि॥
इति मामब्रवीद्ब्रह्मन्गौतमो मुनिपुङ्गवः । अद्य सिंहत्वनाशान्मेजानामि त्वाम्महामुने
ध्यानकाष्ठाभिधंशुद्धंकामरूपधरं सदा । इत्युक्त्वा तं प्रणम्याऽथ ध्यानकाष्ठंसयक्षराट्
विमानवरमारुह्य प्रययावलकापुरीम् । उन्मत्तरूपं तं दृष्ट्वा मन्त्रिणस्तु नृपोत्तमम् ॥
पितुः सकाशमानिन्यू रेवातीरे नृपोत्तमम् । तस्मै निवेदयामासुर्मतिभ्रंशं सुतस्य च
ज्ञात्वा तु पुत्रवृत्तान्तं पिता वै नन्दनस्तदा ॥ ४४ ॥
पुत्रमादाय सहसा जैमिनेरन्तिकं ययौ । तस्मै निवेदयामास पुत्रवृत्तान्तमादितः ॥
भगवञ्जैमिने! पुत्रो ममाद्योन्मत्ततां गतः । अस्योन्मादविनाशाय ब्रूह्युपायं महामुने॥
इति पृष्टश्चिरं दध्यौ जैमिनिर्मुनिपुङ्गवः । ध्यात्वा तु सुचिरं कालंनृपनन्दनमब्रवीत्
ध्यानकाष्ठस्य शापेन ह्युन्मत्तस्ते सुतोऽभवत् । तस्यशापस्यमोक्षार्थमुपायंप्रब्रवीमिते
सुवर्णमुखरीतीरे वेङ्कटे नामपर्वते । सर्वपापहरे पुण्ये नानाधातुविनिर्मिते ॥ ४६ ॥
स्वामिपुष्करिणी चेतितीर्थमस्तिमहत्तरम् । पवित्राणांपवित्रंहिमङ्गलानांचमङ्गलम्
श्रुतिसिद्धं महापुण्यं ब्रह्महत्यादिशोधकम् । नीत्वा तत्र सुतं तेऽद्यस्नापयस्वमहामते
उन्मादस्तत्क्षणादेवतस्यनश्येन्न संशयः । इत्युक्तस्तं प्रणम्याऽसौजैमिनिंमुनिपुङ्गवम्
नन्दः पुत्रं समादाय स्वमिपुष्करिणीं ययौ । तत्र च स्नापयामास पुत्रं नियमपूर्वकम्
स्नानमात्रात्ततः सद्यो नष्टोन्मादोऽभवत्सुतः ।
स्वयं सस्नौ स नन्दोऽपि स्वामिपुष्करिणीजले ॥ ५४ ॥

उषित्वा दिनमेकं तु सहपुत्रः पिता तदा। सेवित्वा वेङ्कटेशंचश्रीनिवासंकृपानिधिम्
पुत्रमापृच्छ्य नन्दस्तं प्रययौ तपसेवनम्। गते पितरि पुत्रोऽपिधर्मगुप्तोनृपोद्विजाः
प्रददौ वेङ्कटेशस्य बहुवित्तानि भक्तितः। ब्राह्मणेभ्यो धनंधान्यंक्षेत्राणिचददौतदा
प्रययौ मन्त्रिभिः सार्धं स्वांपुरींतदनन्तरम्। धर्मेणपालयामासराज्यंनिहतकण्टकम्
पितृपैतामहं विप्रा धर्मगुप्तोऽतिधार्मिकः। उन्मादैरप्यपस्मारैर्ग्रहैर्दुष्टैश्च ये नराः॥५६

ग्रस्ता भवन्ति विप्रेन्द्रास्तेऽपि चाऽत्र निमज्जनात्।
पुष्करिण्यां विमुक्ताः स्युः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ ६०॥
स्वामिपुष्करिणीं त्यक्त्वा तीर्थमन्यद्व्रजेत्तु यः।
स्निग्धं सगोपयस्त्यक्त्वा स स्नुहीक्षीरं प्रयाचते॥ ६१॥
स्वामितीर्थं स्वामितीर्थं स्वामितीर्थमितिद्विजाः।
त्रिः पठन्तो नरा एवं यत्र क्वाऽपि जलाशये॥ ६२॥

स्नान्तिसर्वे नरास्ते वै यास्यन्ति ब्रह्मणःपदम्। एवंवःकथिताविप्राधर्मगुप्तकथाशुभा
यस्याः श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्या विनश्यति॥ ६४॥

इति स्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येस्वामिपुष्करिणीमहिमानुवर्णनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

सुमत्याख्यद्विजवृत्तान्तकिरातीसङ्गान्महापातकप्राप्तिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

भोभोस्तपोधनाः! सर्वे नैमिषारण्यवासिनः!।
स्वामितीर्थस्य माहात्म्यं भूयोऽपि प्रवदाम्यहम्॥ १॥
पुरा किरातीसंसर्गात्सुमतिर्ब्राह्मणः सुराम्।

पीतवान्पुष्करिण्यां स स्नात्वा पापाद्विमोचितः ॥ २ ॥

ऋषय ऊचुः

सुमतिः कस्य पुत्रोऽसौ कथं स च सुरां पपौ ?।
कथं किरात्यासक्तोऽभूत्सूतपौरोणिकोत्तम !॥ ३ ॥
सर्वेषां विस्तरादेतद्वद त्वं कृपयाऽधुना ॥ ४ ॥

श्रीसूत उवाच

महाराष्ट्राभिधे देशे ब्राह्मणः कश्चिदास्तिकः । यज्ञदेव इतिख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः॥५
दयालुरातिथेयश्च शिवनारायणार्चकः । सुमतिर्नाम पुत्रोऽभूद्यज्ञदेवस्य तस्य वै ॥६॥
पितरं स परित्यज्य भार्यामपि पतिव्रताम् । प्रययावुत्कले देशे विटगोष्ठीपरायणः

काचित्किराती तद्देशे वसन्ती युवमोहिनी ।
यूनां समस्त द्रव्याणि प्रलोभ्य जगृहे चिरम् ॥ ८ ॥

तस्या गृहं स प्रययौ सुमतिर्ब्राह्मणाधमः । सुमतिं सा चजग्राहकिरातीनिर्धनंद्विजम्
तया युक्तोऽथ सुमतिस्तत्संयोगैकतत्परः । इतस्ततश्चोरयित्वाबहुद्रव्याणिसन्ततम्
दत्त्वा तया चिरं रेमे तद्गृहे बुभुजे च सः । एकेन चषकेणाऽसौ तयासह सुरां पपौ
एवं स बहुकालं वै रममाणस्तया सह । पितरौ निजपत्नीं च नाऽस्मरद्विषयातुरः ॥

स कदाचित्किरातैस्तु चौर्यं कर्तुं ययौ सह ।
विप्रस्य कस्यचिद्गेहे सोऽपि कैरातवेषभृत् ॥ १३ ॥

ययौ चोरयितुं द्रव्यंसाहसीखड्गहस्तवान् । तद्गृहस्वामिनंविप्रंहत्वाखड्गेनसाहसात्
समादाय बहु द्रव्यं किरातीभवनं ययौ । तं यान्तमनुयाति स्म ब्रह्महत्या भयङ्करी ॥
नीलवस्त्रधरा भीमा भृशं रक्तशिरोरुहा । गर्जन्ती साट्टहासं सा कम्पयन्तीचरोदसि
अनुद्रुतस्तया सोऽयं बभ्राम जगतीतले । एवं भ्रमन्भुवं सर्वांकदाचित्सुमतिःस्वयम्
स्वग्रामं प्रययौ भीत्या विप्रबन्धुर्दुरात्मवान् । अनुद्रुतस्तयाभीतःप्रययौस्वगृहंप्रति
ब्रह्महत्याऽप्यनुद्रुत्य तेन साकं गृहं ययौ । पितरं रक्षरक्षेति सुमतिः शरणं ययौ ॥
माभैर्भीरिति तं प्रोच्य पित्रा रक्षितुमुद्यतः । तदानीं ब्रह्महत्येयं तत्तातं प्रत्यभाषत

ब्रह्महत्योवाच

मैनं त्वं प्रतिगृह्णीष्व यज्ञदेवद्विजोत्तम। असौसुरापीस्तेयीच ब्रह्महा चाऽतिपातकी
मातृद्रोही पितृद्रोही भार्यात्यागीच पातकी। किरातीसङ्गदुष्टश्चह्येनंमुञ्च दुरात्मकम्
गृह्णासि चेदिमं विप्र ! महापातकिनं सुतम्।
त्वद्भार्यामस्य भार्यां च त्वां च पुत्रमिमं द्विज !॥ २३॥
भक्षयिष्यामि वंशं च तस्मान्मुञ्च सुतं त्विमम्।
इमं त्यजसि चेत्पुत्रं युष्मान्मुञ्चामि साम्प्रतम्॥ २४॥
नैकस्याऽर्थे कुलंहन्तुमर्हसि त्वं महामते !। इत्युक्तः स तया तत्रयज्ञदेवोऽब्रवीच्चताम्

यज्ञदेव उवाच

बाधते मां सुतस्नेहः कथमेनं परित्यजे। ब्रह्महत्या तदाकर्ण्यद्विजोक्तं तमभाषत॥

ब्रह्महत्योवाच

अयंहिपतितोभूत्वावर्णाश्रमबहिष्कृतः। पुत्रेऽस्मिन्माकुरुस्नेहंनिन्दितंचास्यदर्शनम्
इत्युक्त्वा ब्रह्महत्या सा यज्ञदेवस्य पश्यतः। तलेन प्रजहाराऽस्यपुत्रं सुमतिनामकम्
रुरोद तातताततेति पितरं प्रब्रुवन्मुहुः॥ २६॥
रुरुदुर्जनको माता भार्याऽपि सुमतेस्तदा। एतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्वासाः शङ्करांशकः
दृष्ट्या समाययौ योगी धार्मिकोमुनिसत्तमः। यज्ञदेवोऽथ तं दृष्ट्वामुनिरुद्रावतारकम्
स्तुत्वा प्रणम्य शरणं ययाचे पुत्रकारणात्।
दुर्वासस्त्वं महायोगिन्साक्षाद्धि शङ्करांशकः॥ ३२॥
त्वद्दर्शनमपुण्यानांभविता न कदाचन। ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयीचाऽभूत्सुतो मम
एनं प्रहर्तुमायाता ब्रह्महत्याऽपि वर्तते। भूयाद्यथा मे पुत्रोऽयं महापातकमोचितः॥
घोरा च ब्रह्महत्येयं यथाशीघ्रं लयं व्रजेत्। तमुपायं वदस्वाऽद्य मम पुत्रे दयां कुरु
अयमेव हि पुत्रो मे नान्योऽस्ति तनयो मुने !।
अस्मिन्मृते तु वंशो मे समुच्छिद्येत मूलतः॥ ३६॥
ततः पितृभ्यः पिण्डानां दाताऽपि न भवेद्ध्रुवम्।

ततः कृपां कुरुष्व त्वमस्मासु भगवन्मुने !॥ ३७ ॥
इत्युक्तः स तदोवाचदुर्वासाःशङ्करांशकः । ध्यात्वाऽथसुचिरंकालंयज्ञदेवंद्विजोत्तमम्

दुर्वासा उवाच

यज्ञदेवकृतं पापमतिक्रूरं सुतेन ते । नाऽस्य पापस्य शान्तिःस्यात्प्रायश्चित्तायुतैरपि
तथाऽपितेसुतस्याऽहंतस्यपापस्यशान्तये । प्रायश्चित्तंवदिष्यामिश्रृणुनान्यमनाद्विज
वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने । स्वामिपुष्करिणी चेति वर्तते मङ्गलप्रदा ॥
स्नातिचेत्तव पुत्रोऽयं पातकान्मुच्यते क्षणात् । एवंश्रुत्वामुनेर्वाक्यंयज्ञदेवोमहामतिः
पुत्रमादाय सुमतिं स्वामिपुष्करिणीं गतः । स्नापयामाससुमतिंहत्ययापीडितंसुतम्
आकाशवाणी तं विप्रमुवाच मधुरस्वरा ।
यज्ञदेव ! महाभाग ! स्नानेनाऽनेन सुव्रत !॥ ४४ ॥
पूतोऽभवत्तव सुतः संशयं मा कृथा द्विज !। एवम्प्रभावं तत्तीर्थं पापवृक्षकुठारकम्
एवस्वः कथितं विप्रा इतिहासं पुरातनम् । श्रृण्वतां पठतां चाऽपिवाजपेयफलंलभेत्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये स्वामिपुष्करिणीतीर्थमहिमानुवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

रामकृष्णतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

वेङ्कटाख्ये महापुण्ये सर्वपातकनाशने । कृष्णतीर्थस्यमाहात्म्यं श्रृणुध्वं सुसमाहिताः
यत्र मज्जनमात्रेण कृतघ्नोऽपिविमुच्यते । पितृन्मातृगुरूंश्चाऽवमन्यन्तेमोहमोहिताः
ये चाऽप्यन्ये दुरात्मानः कृतघ्ना निरपत्रपाः ।

ते सर्वे कृष्णतीर्थेऽस्मिञ्छुद्ध्यन्ति स्नानमात्रतः ॥ ३ ॥

कृष्णनामा मुनिः पूर्वं वेङ्कटाह्वयभूधरे । अवर्तत तपः कुर्वन्विष्णुंध्यायन्समाहितः

स तत्र कल्पयामासस्नानार्थंतीर्थमुत्तमम् । तत्रस्नात्वासकृन्मर्त्यःकृतघ्नोऽपिविमुच्यते

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि पुराणं पापनाशनम् । यस्यश्रवणमात्रेण नरोमुक्तिमवाप्नुयात्

पुरा बभूव विप्रेन्द्रो रामकृष्णो महामुनिः ।

सत्यवाञ्छीलवान्वाग्मी सर्वभूतदयान्वितः ॥ ७ ॥

शत्रुमित्रसमो दान्तस्तपस्वीविजितेन्द्रियः । परे ब्रह्मणिनिष्णातोब्रह्मतत्त्वैकसंश्रयः

एवम्प्रभावः स मुनिस्तपस्तेपे सुदारुणम् । स वै निश्चलसर्वाङ्गस्तिष्ठन्सर्वत्र भूतले

परमाण्वन्तरं वाऽपि न स्वस्थानाच्चचाल सः ।

स्थित्वा तत्र तपस्यन्तमनेकशतवत्सरान् ॥ १० ॥

तं चाऽऽक्रमत वल्मीकं छादिताङ्गं चकार वै ।

वल्मीकाक्रान्तदेहोऽपि रामकृष्णो महामुनिः ॥ ११ ॥

अकरोत्तप एवाऽसौ वल्मीकंन त्ववुध्यत । तस्मिंश्चतप्यतितपो वासवो मुनिपुङ्गवे

विसृज्य मेघजालानि वर्षयामास वेगवान् । एवं दिनानि सप्ताऽयं ववर्ष चनिरन्तरम्

धारावर्षेण महता वृष्यमाणोऽपि वै मुनिः । तद्वर्षं प्रतिजग्राह निर्मीलितविलोचनः

महता स्तनितेनाऽऽशु तदा बधिरयञ्छ ुर्ताः ।

वल्मीकस्योपरिष्टाद्वै निपपात महाशनिः ॥

तस्मिन्वर्षति पर्जन्ये शीतवातादिदुःसहे ॥

वल्मीकशिखरं ध्वस्तं बभूवाऽशनिताडितम् । तदाप्रादुरभूद्देवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥

विनतानन्दनारूढो वनमालाविभूषितः । रामकृष्णस्यतपसा तोषितो वाक्यमब्रवीत्

तपोनिधे रामकृष्ण वेदशास्त्रार्थपारग !। मदाविर्भावदिवसे यःस्नाति मनुजोत्तमः ॥

तस्यपुण्यफलं वक्तुं शेषेणाऽपि नशक्यते । मकरस्थेरवौविप्रपौर्णमास्यांमहातिथौ

पुष्यनक्षत्रयुक्तायां स्नानकालोविधीयते । तद्दिने स्नातियोमर्त्यः कृष्णतीर्थेमहामतिः

सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वान्कामाँल्लभेत सः । मदाविर्भावदिवसे कृष्णतीर्थजले शुभे

स्नातुं तत्र समायान्तिस्वपापपरिशुद्धये । देवामनुष्याः सर्वेच दिक्पालाश्चमहौजसः

एते सर्वे महात्मानः कोटिसूर्यसमप्रभाः ।
ते सर्वे कृष्णतीर्थेऽस्मिन्स्नानात्पूता भवन्ति हि ॥ २४ ॥

त्वन्नाम्नेदंमहातीर्थं लोकेप्रख्यातिमेष्यति । इत्युक्त्वा श्रीनिवासश्चतत्रैवाऽन्तरधीयत
एवं प्रभावं तत्तीर्थं महापापविशोधनम् । बुद्धिशुद्धिप्रदं पुंसां सर्वैश्वर्यप्रदायकम् ॥

एवं वः कथितम्विप्राः! कृष्णतीर्थस्य वैभवम् ।
शृण्वतां पठताञ्चैव विष्णुलोकप्रदायकम् ॥ २७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये रामकृष्णतीर्थमहिमानुवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

श्रीवेङ्कटाद्रौजलदानप्रसङ्गेहेमाङ्गस्यजलदानाकरणेनगृहगोधिकात्वप्राप्तिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

वेङ्कटाख्ये महापुण्ये तृषार्तानां विशेषतः । जलदानमकुर्वाणस्तिर्यग्योनिमवाप्नुयात्
तस्माद्वेङ्कटशैलेन्द्रे यथाशक्त्यनुसारतः । जलदानं हि कर्तव्यं सर्वेषां जीवनम्महत्
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । विप्रस्य गृहगोधायाः सम्वादम्परमाद्भुतम् ॥
पुराचेक्ष्वाकुवंशेऽभूद्धेमाङ्गइतिभूमिपः । ब्रह्मण्यो ब्रह्मभूयिष्ठोजितामित्रो जितेन्द्रियः
यावन्तोभूमिकणिकायावन्तस्तोयबिन्दवः । यावन्त्युडूनिगगनेतावतीर्गाददात्यसौ
येनेष्टयज्ञदर्भैश्च भूमिर्बर्हिष्मती स्मृता । गोभूतिलहिरण्याद्यैस्तोषिता बहवो द्विजाः

तेनाऽदत्तानि दानानि न विद्यन्त इति श्रुतम् ।
तेनाऽदत्तञ्जलञ्चैकं सुखलभ्यमपि द्विजाः ॥ ७ ॥

बोधितो ब्रह्मपुत्रेण वसिष्ठेनमहात्मना । अमूल्यं सर्वतोलभ्यं तद्दातुःकिम्फलंलभेत्
इति दुर्धीर्हेतुवादैर्नजलंदत्तवान्विभुः । अलभ्यदानेपुण्यं स्यादित्यवादीत्सयुक्तिकम्

स आनर्च द्विजान्व्यङ्गान्दरिद्रान्वृत्तिकर्शितान् ।
नाऽऽनर्च श्रोत्रियान्विप्रान्ब्रह्मज्ञान्ब्रह्मवादिनः ॥ १० ॥
प्रख्यातान्पूजयिष्यन्ति सर्वलोकाः सहार्हणैः ।
अनाथानामविद्यानां व्यङ्गानाञ्च कुटुम्बिनाम् ॥ ११ ॥

दरिद्राणांगतिःका वा तस्मात्तेमद्दयास्पदाः । इतिदुष्टेषुपात्रेषुदत्तवान्किमपिस्वकम्
तेन दोषेण महता चातकस्त्वं त्रिजन्मसु । एकजन्मनिगृध्रत्वं श्वत्वम्वा सप्तजन्मसु
प्राप्यपश्चाद्गृहेजातोभूपोऽयंगृहगोधिका । श्रुतकीर्तेस्तुभूपस्यमिथिलाधिपतेर्द्विजाः
गृहद्वारप्रतोल्यां स्म वर्तते कीटकाशनः । अष्टाशीतिषु वर्षेषु स्थितन्तेन दुरात्मना
विदेहाधिपतेर्गेहं कदाचिद्द्विपसत्तम- । श्रुतदेव इति ख्यातःश्रान्तो मध्याह्न आगमत्
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय जातहर्षो नराधिपः । मधुपर्कैः सुसम्पूज्य तस्यपादावनेजनीः
अपोमूर्ध्नाऽवहत्क्षिप्रंतदोत्क्षिप्तैश्चबिन्दुभिः । दैवोपदिष्टकालेनप्रोक्षितागृहगोधिका
सद्योजातिस्मृतिरभूत्कृतकर्माऽतिदुःखिता । त्राहित्राहीतिचुक्रोशब्राह्मणंगृहमागतम्

तिर्यग्जन्तुरवं श्रुत्वा ब्राह्मणो विस्मितोऽभवत् ।
कुतः क्रोशसि गोधे ! त्वं दशेयं केन कर्मणा ॥ २० ॥

उपदेवोऽथ देवोवात्वंनृपोऽथद्विजोत्तमः । कस्त्वम्ब्रूहि महाभाग त्वामद्याऽहंसमुद्धरे
इत्युक्तः स नृपः प्राह श्रुतदेवं महाप्रभुः । अहमिक्ष्वाकुकुलजः शस्त्रविद्याविशारदः ॥

यावन्तो भूमिकणिका यावन्तस्तोयबिन्दवः ।
यावन्त्युडूनि गगने तावतीर्गा अदामहम् ॥ २३ ॥

सर्वैर्यज्ञैर्मयाचेष्टं पूर्तान्याचरितानि मे । दानान्यपि च दत्तानि धर्मजातं स्वनुष्ठितम्
तथापिदुर्गतिर्जाता न मे चोर्ध्वगतिर्विभो । त्रिवारञ्चातकत्वं मे गृध्रत्वञ्चैकजन्मनि
सप्तजन्मसु च श्वत्वं प्राप्तम्पूर्वम्मया द्विज ! । धरताऽनेन भूपेन चापः पादावनेजनीः॥
बिन्दवो दूरमुक्षिप्तास्तैःसिक्तोऽहं कथञ्चन । तदा जन्मस्मृतिरभूत्तेन मे हतपाप्मनः

गोधाजन्मानि भाव्यानीत्यष्टाविंशति मे द्विज !।
दृश्यन्ते दैवदिष्टानि बिभ्यते जन्मभिर्भृशम् ॥ २८ ॥
न कारणम्प्रपश्यामितन्मेविस्तरतोवद । इत्युक्तः स द्विजः प्राह ज्ञातम्विज्ञानचक्षुषा
शृणु भूप! प्रवक्ष्यामि तव दुर्गतिकारणम् । न जलन्तु त्वया दत्तं वेङ्कटाह्वयभूधरे॥
तज्जलं सुलभम्मत्वा न मौल्यमितिनिश्चितः ।
नाऽध्वगानां द्विजादीनां घर्मकालेऽप्यजानता ॥ ३१ ॥
तथा पात्रं समुत्सृज्य ह्यपात्रे प्रतिपादितम् । ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्यनहिभस्मनिहूयते
तुलसीन्तु समुत्सृज्यबृहती पूज्यते नु किम् । अनाथव्यङ्गपङ्गुत्वंनप्रयोजकतामियात्
पङ्ग्वाद्या येऽप्यनाथा हि दयापात्रं हि केवलम् ।
तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठाः श्रुतिशास्त्रपरायणाः ॥ ३४ ॥
विष्णुरूपाः सदापूज्यानेतरेतुकदाचन । तत्रापिज्ञानिनोऽत्यर्थम्प्रियाविष्णोःसदैवहि
ज्ञानिनामपिभूपालविष्णुरेवसदाप्रियः । तस्माज्ज्ञानीसदापूज्यःपूज्यात्पूज्यतरःस्मृतः
न जलन्तु त्वया दत्तं साधवो वा न सेविताः ।
तेन ते दुर्गतिश्चेयं प्राप्ता चेक्ष्वाकुनन्दन !॥ ३७ ॥
वेङ्कटाद्रौ कृतम्पुण्यं तुभ्यं दास्यामिशान्तये । भूतम्भव्यंभवत्तेनकर्मजातम्विजेष्यसि
इत्युक्त्वाऽऽपउपस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम् । यद्दत्तंब्राह्मणेनाऽपिस्नानञ्चैकदिनेकृतम्
तेनध्वस्ताखिलाऽऽगास्तु त्यक्त्वा च गृहगोधिका ।
रूपं कामार्चित घोरं सद्योऽदृश्यत पूरुषः ॥ ४० ॥
दिव्यम्विमानमारूढो दिव्यस्रग्वस्त्रभूषणः । पश्यतामेव साधूनां मैथिलस्य गृहान्तरे
बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा परिक्रम्यप्रणम्यच । अनुज्ञातो ययौराजा स्तूयमानोऽमरैर्दिवम्
तत्रभुक्त्वामहाभोगान्वर्षायुतमतन्द्रितः । स एवचेक्ष्वाकुकुलेककुत्स्थोऽभून्महारथः
सप्तद्वीपप्रतीपालो ब्रह्मण्यः साधुसम्मतः । देवेन्द्रस्य समो विष्णोरंशएवम्महाप्रभुः
बोधितस्तु वसिष्ठेन सर्वान्धर्मान्मनोहरान् ।
अनुष्ठायाऽखिलमाजा तेन ध्वस्ताशुभादिकः ॥ ४५ ॥

दिव्यं ज्ञानं समासाद्य विष्णोः सायुज्यमाप्तवान् ।
तस्माद्वेङ्कटशैलेन्द्रः पुण्यः पापविनाशनः ॥ ४६ ॥
तस्मिंश्च जलदानन्तु विष्णुलोकप्रदायकम् । एवंवःकथितम्विप्रा जलदानस्यवैभवम्
वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ ४७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये जलदानवैभववर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

श्रीवेङ्कटाचलक्षेत्रादिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

वेङ्कटाद्रेस्तुमाहात्म्यंभूयोऽपिप्रवदाम्यहम् । युष्माकं सावधानेनश्रृणुध्वंसुसमाहिताः
पृथिव्यांयानितीर्थानिब्रह्माण्डाऽन्तर्गतानि च । तानिसर्वाणिवर्तन्ते वेङ्कटाह्वयभूधरे
तस्मिन्नगोत्तमे पुण्ये वसन्तं पुरुषोत्तमम् । शङ्खचक्रधरन्देवं पीताम्बरधरं शुभम् ॥
कौस्तुभालङ्कृतोरस्कं भक्तानामभयप्रदम् । देवदेवं विशालाक्षं वेदवेद्यं सनातनम् ॥
अङ्गकोशलकर्णाटकाशीगुर्जरदेशगाः । चोलकेरलपाण्ड्यादिसर्वदेशसमुद्भवाः ॥ ५ ॥
सकुटुम्बाश्च सेवार्थमायान्ति प्रतिवत्सरम् । देवाश्चऋषयःसिद्धाःयोगिनःसनकादयः
ये भाद्रपदमासे तु वेङ्कटेशमहोत्सवे । सेवां कुर्वन्ति ते सर्वे निष्पापा उत्तमोत्तमाः
तत्र श्रीवेङ्कटेशस्यब्रह्मालोकपितामहः । चकारकन्यामासे तु ध्वजारोपमहोत्सवम्
प्रतिवर्षञ्च तत्सेवानिमित्तं सर्वमानवाः । सर्वे देवाश्चगन्धर्वाःसिद्धासाध्यामहौजसः
ब्रह्मोत्सवे भगवतः समायान्ति द्विजोत्तमाः । विद्यानांवेदविद्यैवमन्त्राणांप्रणवोयथा
प्राणवत्प्रियवस्तूनां धेनूनां कामधेनुवत् । तथावेङ्कटशैलेन्द्रः क्षेत्राणामुत्तमोत्तमः ॥

शेषवत्सर्वनागानां पक्षिणां गरुडो यथा ।
देवानां तु यथा विष्णुर्वर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥ १२ ॥
तथा वेङ्कटशैलेन्द्रः क्षेत्राणामुत्तमोत्तमः । भूरुहाणां सुरतरुर्भार्यैव सुहृदां यथा ॥
तीर्थानां तु यथा गङ्गा तेजसां तु रविर्यथा । तथावेङ्कटशैलेन्द्रः क्षेत्राणामुत्तमोत्तमः
आयुधानां यथा वज्रं लोहानां काञ्चनं यथा ।
वैष्णवानां यथा रुद्रो रत्नानां कौस्तुभो यथा ॥ १५ ॥
तथा वेङ्कटशैलेन्द्रः क्षेत्राणामुत्तमोत्तमः । नाऽनेनसदृशो लोके विष्णुप्रीतिविवर्धनः॥
न माधवसमो मासो न कृतेन समं युगम् । न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम्
न जलेन समं दानं न सुखं भार्यया समम् ।
न कृषेस्तु समं वित्तं न लाभो जीवितात्परः ॥ १८ ॥
न तपोऽनशनादन्यन्न दानात्परमं सुखम् । न धर्मस्तुदयातुल्योन ज्योतिश्चक्षुषासमम्
न तृप्तिरशनातुल्या न वाणिज्यं कृषेः समम् । न धर्मेण समं मित्रं न सत्येनसमंयशः
यथा तथा भगवतः स्थानेन सदृशं न हि ॥ २१ ॥
यत्कीर्तनं सकलपापहरं मुनीन्द्रा! यद्वन्दनं सकलसौख्यदमेव लोके ।
यात्राऽपि यस्यति सुरैरपि पूजनीया तादृङ् महान्भवति वेङ्कटशैलमुख्यः ॥
तस्याऽनुभावं प्रवदामि भूयः समस्ततीर्थानि वसन्ति यत्र ।
एवं समस्तेषु च मुख्यतीर्थं श्रीस्वामिनामाऽस्ति सरोवरं तत् ॥ २३ ॥
माहात्म्यमेतस्य मयोच्यते कथं यत्पश्चिमे रोधसि भूवराहः ।
आलिङ्गय कान्तामतिसौम्यमूर्तिर्विराजते विश्वजनोपकारी ॥ २४ ॥
श्रीस्वामिपुष्करिण्याश्च दक्षिणे वेङ्कटेश्वरः । आलिङ्गितवपुर्लक्ष्म्यावरदोवर्ततेचिरम्
एवं वः कथितं विप्राः क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम् ।
य शृणोति सदा भक्त्या विष्णुलोके महीयते ॥ २६ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीति साहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये क्षेत्रमहिमानुवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

श्रीवेङ्कटेश्वरवैभववर्णनम्

सूत उवाच

अथेदानीं प्रवक्ष्यामि वेङ्कटेश्वरवैभवम् । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यतेनाऽत्र संशयः

श्रीवेङ्कटेश्वरं देवं यः पश्यति सकृन्नरः ।

स नरो मुक्तिमाप्नोति विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ २ ॥

दशवर्षैस्तु यत्पुण्यं क्रियते तु कृते युगे । त्रेतायामेकवर्षेण तत्पुण्यं साध्यते नृभिः

द्वापरे पञ्चमासेन तद्दिनेन कलौ युगे । तत्फलं कोटिगुणितं निमिषेनिमिषेनृणाम्

निःसन्देहं भवेदेवं श्रीनिवासविलोकिनाम् । श्रीवेङ्कटेश्वरे देवे तीर्थानिसकलान्यपि

विद्यन्ते सर्वदेवाश्च मुनयः पितरस्तथा । एककालं द्विकालं वा त्रिकालं सर्वदैव वा

ये स्मरन्ति महादेवं श्रीनिवासं विमुक्तिदम् ।

कीर्तयन्त्यथवा विप्रास्ते मुक्ताःपापपञ्जरात् ॥ ७ ॥

नारायणं परं देवं वेङ्कटेशं प्रयान्ति वै । पूजितं शङ्खराजेन सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥

तस्य स्मरणमात्रेण यमपीडाऽपि नो भवेत् । श्रीनिवासंमहादेवंयेऽर्चयन्तिसकृन्नराः

किं दानैः किं व्रतैस्तेषां किं तपोभिः किमध्वरैः ।

वेङ्कटेशं परं देवं यो न चिन्तयति क्षणम् ॥ १० ॥

अज्ञानी स च पापी स्यात्स मूको बधिरस्तथा ।

स जडोऽन्धश्च विज्ञेयश्छिद्रं तस्य सदा भवेत् ॥ ११ ॥

श्रीनिवासे महादेवे सकृद्दृष्टे मुनीश्वराः । किं काश्यागययाचैव प्रयागेनापिकिंफलम्

दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं मानवा इह भूतले । वेङ्कटेशं परं देवं ये पश्यन्त्यर्चयन्ति वा ॥

जन्म तेषां हि सफलं तेकृतार्थाश्च नेतरे ।। वेङ्कटेशे परे देवे दृष्टे वा पूजितेऽपि वा

शम्भुना ब्रह्मणाकिंचशक्रेणाऽप्यखिलामरैः । वेङ्कटेशेमहादेवे भक्तियुक्ताश्च ये नराः

तेषां प्रणामस्मरणपूजायुक्तास्तु ये नराः । न तेपश्यन्तिदुःखानिनैवयान्तियमालयम्
ब्रह्महत्यासहस्राणि सुरापानायुतानि च । दृष्टे नारायणे देवे विलयं यान्ति कृत्स्नशः
ये वाञ्छन्ति सदाभोगं राज्यं च त्रिदशालये । वेङ्कटाद्रिनिवासं तेप्रणमन्तुसकृन्मुदा
यानि कानि च पापानिजन्मकोटिकृतानिच । तानिसर्वाणिनश्यन्तिवेङ्कटेश्वरदर्शनात्
सम्पर्कात्कौतुकाल्लोभाद्भयाद्वापिच संस्मरन् । वेङ्कटेशं महादेवं नेहाऽमुत्रचदुःखभाक
वेङ्कटाचलदेवेशं कीर्तयन्नर्चयन्नपि । अवश्यं विष्णुसारूप्यं लभते नाऽत्र संशयः २१
यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेक्षणात् । तथापापानिसर्वाणिवेङ्कटेश्वरदर्शनम्
वेङ्कटेश्वरदेवस्य भक्तिरष्टविधा स्मृता । तद्भक्तजनवात्सल्यं तत्पूजापरितोषणम् ॥२३
स्वयं तत्पूजनं भक्त्यातदर्थे देहचेष्टितम् । तन्माहात्म्यकथावाञ्छाश्रवणेष्वादरस्तथा
स्वरनेत्रशरीरेषु विकारस्फुरणं तथा । श्रीनिवासस्य देवस्य स्मरणं सततं तथा ॥
वेङ्कटाद्रिनिवासंतमाश्रित्यैवोपजीवनम् । एवमष्टविधाभक्तिर्यस्मिन्म्लेच्छेऽपि वर्तते
स एव मुक्तिमाप्नोति शौनकाद्या महौजसः । भक्त्यात्वनन्ययामुक्तिर्ब्रह्मज्ञानेननिश्चिता
वेदान्तशास्त्रश्रवणाद्यतीनामूर्ध्वरेतसाम् । सा च मुक्तिर्विना ज्ञानं वेदान्तश्रवणोद्भवम्
यत्याश्रमं विना विप्रा विरक्तिं च विना तथा ॥ २८ ॥
सर्वेषां चैव वर्णानामखिलाश्रमिणामपि । वेङ्कश्वरदेवस्य दर्शनादेव केवलम् ॥ २९ ॥
अपुनर्भवदा मुक्तिर्भविष्यत्यविलम्बितम् । कृमिकीटाश्च देवाश्च मुनयश्च तपोधनाः ॥
तुल्या वेङ्कटशैलेन्द्रे श्रीनिवासप्रसादतः । पापं कृतं मयाऽनेकमिति मा क्रियतांभयम्
मा गर्वः क्रियतां पुण्यं मयाऽकारीतिवा जनैः । वेङ्कटेशेमहादेवेश्रीनिवासेविलोकिते
न न्यूना नाऽधिकाश्चस्युःकिन्तु सर्वे महाजनाः । वेङ्कटाख्येमहापुण्येसर्वपातकनाशने
श्रीनिवासं परं देवं यः पश्यति सभक्तिकम् । न तेन तुल्यतामेति चतुर्वेद्यपि भूतले
वेङ्कटेश्वरदेवेशं यः पूजयति भक्तितः । । स कोटिकुलसंयुक्तः प्रयाति हरिमन्दिरम् ॥
श्रीनिवासाच्च न समं नाऽधिकं पुण्यमस्ति वै ।
वेङ्कटाद्रिनिवासं तं द्वेष्टि यो मोहमास्थितः ॥ ३६ ॥
ब्रह्महत्यायुतं तेन कृतं नरककारणम् । तत्संभाषणमात्रेण मानवो नरकं व्रजेत् ॥३७॥

श्रीनिवासपरावेदाः श्रीनिवासपरा मखाः । श्रीनिवासपराः सर्वे तस्मादन्यन्न विद्यते
अन्यत्सर्वंपरित्यज्य श्रीनिवासं समाश्रयेत् । सर्वयज्ञतपोदानतीर्थस्नाने तु यत्फलम्
तत्फलं कोटिगुणितंश्रीनिवासस्यसेवया । वेङ्कटाद्रिनिवासं तं चिन्तयन्घटिकाद्वयम्
कुलैकम्विंशतिं धृत्वा विष्णुलोकेमहीयते । स्वामिपुष्करिणीतीर्थस्नानंदेवस्यदर्शनम्
यदि लभ्येत वै पुंसां किं गङ्गाजलसेवया । वेङ्कटेशं परं देवं यः कदापि न पश्यति॥
सङ्करः स तु विज्ञेयो न पितुर्बीजसम्भवः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वेङ्कटेशो दयानिधिः
द्रष्टव्योऽतिप्रयत्नेनपरलोकेच्छया द्विजाः !। एवं वः कथितं विप्रा वेङ्कटेशस्यवैभवम्

यस्त्वेतच्छृणुयान्नित्यं पठते च सभक्तिकम् ।
स वै वेङ्कटनाथस्य सेवाफलमवाप्नुयात् ॥ ४१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये वेङ्कटेश्वरवैभवानुवर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

ब्रह्मादीनां नैरन्तर्येण श्रीवेङ्कटाचले स्थितिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामिवेङ्कटाचलवैभवम् । युष्माकं सावधानेनश्रृणुध्वंसुसमाहिताः
लक्षकोटिसहस्राणि सरांसि सरितस्तथा । समुद्राश्च महापुण्यावनान्यप्याश्रमाअपि
पुण्यानि क्षेत्रजातानिवेदारण्यादिकानि च । मुनयश्च वसिष्ठाद्याः सिद्धचारणकिन्नराः
लक्ष्म्या सह धरण्या च भगवान्मधुसूदनः । सावित्र्या च सरस्वत्या सहैवचतुराननः
पार्वत्या सह देवेशस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः । हेरम्बषण्मुखाद्याश्च देवाः सेन्द्रपुरोगमाः
आदित्यादिग्रहाश्चैवतथाऽष्टवसवो द्विजाः । पितरो लोकपालाश्चतथाऽन्येदेवतागणाः
महापातकसङ्घानां नाशने लोकपावने । दिवानिशं वसन्त्यस्तवेङ्कटाचलमूर्धनि ॥ ७॥

तस्य दर्शनमात्रेण बुद्धिसौख्यं नृणां भवेत् ।
तन्मूर्धनि कृतावासाः सिद्धचारणयोषितः ॥ ८ ॥
पूजयन्ति सदाकालं वेङ्कटेशं कृपानिधिम् । कोट्यो ब्रह्महत्यानामगम्यागमकोट्यः ॥
अङ्गलग्ना विनश्यन्ति वेङ्कटाचलमारुतैः ॥ १० ॥
वेङ्कटाद्रिं गिरिं तं तु प्रार्थयेत्पुण्यवर्धनम् । स्वर्णाचलमहापुण्य सर्वदेवनिषेवित ॥
ब्रह्मादयोऽपि यं देवाः सेवन्ते श्रद्धया सह । तं भवन्तमहं पद्भ्यामाक्रमेयं नगोत्तम ॥
क्षमस्व तदघं मेऽद्य दयया पापचेतसः । त्वन्मूर्धनि कृतावासं माधवं दर्शयस्व मे ॥
प्रार्थयित्वा नरस्त्वेवं वेङ्कटाद्रिं नगोत्तमम् । ततो मृदुपदं गच्छेत्पावनं वेङ्कटाचलम् ॥
वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने । स्वामिपुष्करिणीतीर्थे स्नात्वा नियमपूर्वकम्
पिण्डदानं ततःकुर्यादपि सर्षपमात्रकम् । शमीदलसमानान्वादद्यात्पिण्डान्पितॄन्प्रति
स्वर्गस्था मोक्षमायान्ति स्वर्गं नरकवासिनः ॥ १७ ॥
ततस्तस्योपरि महत्सर्वलोकेषु विश्रुतम् । सर्वतीर्थोत्तमं पुण्यं नाम्ना पापविनाशनम्
अस्ति पुण्यतमे विप्राः पवित्रे वेङ्कटाचले । यस्य संस्मरणादेव गर्भवासो न विद्यते
तत्प्राप्य तु नरः स्नायात्स्वामितीर्थस्य चोत्तरे ।
तत्र स्नानान्नरा यान्ति वैकुण्ठं नाऽत्र संशयः ॥ २० ॥

ऋषय ऊचुः

सूत! पापविनाशाख्यतीर्थस्यब्रूहि वैभवम् । व्यासेनबोधितस्त्वंहिवेत्सिसर्वंमहामुने

श्रीसूत उवाच

ब्रह्माश्रमपदे वृत्तां पार्श्वे हिमवतः शुभे । वक्ष्यामि ब्राह्मणश्रेष्ठायुष्माकंतुकथांशुभाम्
तदाश्रमपदं पुण्यं ब्रह्माश्रमपदं शुभम् । नानावृक्षसमाकीर्णं पार्श्वे हिमवतः शुभे ॥२३
बहुगुल्मलताकीर्णं मृगद्विपनिषेवितम् । सिद्धचारणसङ्घुष्टं रम्यं पुष्पितकाननम् ॥
यतिभिर्बहुभिः कीर्णं तापसैरुपशोभितम् । ब्राह्मणैश्च महाभागैः सूर्यज्वलनसन्निभैः
नियमव्रतसम्पन्नैः समाकीर्णं तपस्विभिः । दीक्षितैर्यागशीलैश्च यताहारैःकृतात्मभिः
वेदाध्ययनसम्पन्नैर्वैदिकैः परिवेष्टितम् । वर्णिभिश्च गृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च भिक्षुभिः

स्वाश्रमाचारनिरतैः स्ववर्णोक्तविधायिभिः ।

बालखिल्यैश्च ऋषिभिः समन्तात्परिवेष्टितम् ॥ २८ ॥

तत्राऽऽश्रमेपुराकश्चिच्छूद्रोदृढमतिर्द्विजाः । साहसींब्राह्मणाभ्याशमाजगाममुदान्वितः

आगतो ह्याश्रमपदं पूजितश्च तपस्विभिः । नाम्ना दृढमतिः शूद्रः साष्टाङ्गं प्रणनाम वै

तान् स दृष्ट्वा मुनिगणादेवकल्पान्महौजसः । कुर्वतोविविधान्यज्ञान्संप्राहृष्यतशूद्रकः

अथाऽस्य बुद्धिरभवत्तपः कर्तुमनुत्तमम् । ततोऽब्रवींत्कुलपतिमुनिमाऽऽगत्यतापसम

दृढमतिरुवाच

तपोधन! नमस्तेऽस्तु रक्षमांकरुणानिधे !। तव प्रसादादिच्छामियागं कर्तुं प्रसीद मे

एवमुक्तस्तु शूद्रेण तमाह ब्राह्मणस्तदा ॥ ३४ ॥

कुलपतिरुवाच

यागे दीक्षयितुं शक्यो न शूद्रो हीनजन्मभाक् । श्रूयते यदि तेबुद्धिःशुश्रूषानिरतोभव

उपदेशो न कर्तव्यो जातिहीनस्य कर्हिचित् । उपदेशे महान्दोष उपाध्यायस्यविद्यते

नाध्यापयेद्बुधः शूद्रं तथा नैव च याजयेत् । न पाठयेत्तथाशूद्रंशास्त्रंव्याकरणादिकम्

काव्यं वा नाटकं वापि तथाऽलङ्कारमेव वा । पुराणमितिहासं च शूद्रंनैव तु पाठयेत्

यदि चोपदिशेद्विप्रःशूद्रस्यैतानिकर्हिचित् । त्यजेयुर्ब्राह्मणाविप्रंतंग्रामाद्ब्रह्मसङ्कुलात्

शूद्राय चोपदेष्टारं द्विजं चाण्डालवत्त्यजेत् । शूद्रं चाक्षरसंयुक्तं दूरतः परिवर्जयेत् ॥

तच्छुश्रूषस्व भद्रं ते ब्राह्मणाञ्छ्रद्धया सह ।

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा मन्वादिभिरुदीरिता ॥ ४१ ॥

न हि नैसर्गिकं कर्म परित्यक्तुं त्वमर्हसि । एवमुक्तः स मुनिना सशूद्रोऽचिन्तयत्तदा

किं कर्तव्यं मया त्वद्य व्रते श्रद्धा हि मे परा । यथास्यान्ममसुज्ञानंयतिष्येऽहंतथाद्यवै

इति निश्चित्य मनसा शूद्रो दृढमतिस्तदा । गत्वाऽऽश्रमपदाद्दूरं कृतवानुटजं शुभम्

तत्र वै देवतागारं पुण्यान्यायतनानि च । पुष्पारामादिकं चापि तटाकखननादिकम् ॥

श्रद्धया कारयामास तपःसिद्ध्यर्थमात्मनः । अभिषेकांश्च नियमानुपवासादिकानपि

बलिं कृत्वा च हुत्वा च दैवतान्यभ्यपूजयत् ।

सङ्कल्पनियमोपेतः फलाहारो जितेन्द्रियः ॥ ४७ ॥
नित्यं कन्दैश्च मूलैश्च पुष्पैरपि तथा फलैः । अतिथीन्पूजयामासयथावत्समुपागतान्
एवं हि सुमहान्कालो व्यतिचक्राम तस्य व ॥ ४६ ॥
अथाऽऽश्रममगात्तस्यसुमतिर्नामनामतः । द्विजोगर्गकुलोद्भूतःसत्यवादीजितेन्द्रियः
स्वागतैर्मुनिमाराध्यतोषयित्वा फलादिकैः । कथयन्वैकथाः पुण्याःकुशलंपर्यपृच्छत
इत्थं विप्रः स पाद्याद्यैरुपचारैस्तुपूजितः । आशीर्भिरभिनन्द्यैनंप्रतिगृह्यचसत्क्रियाम्
तमापृच्छत्प्रहृष्टात्मा स्वाश्रमं पुनराययौ । एवं दिनेदिनेविप्रःशूद्रेऽस्मिन्पक्षपातवान्
आगच्छदाश्रमं तस्य द्रष्टुं तं शूद्रयोनिजम् ।
बहुकालं द्विजस्याऽभूत्संसर्गः शूद्रयोनिना ॥ ५४ ॥
स्नेहस्यवशमापन्नःशूद्रोक्तंनाऽतिचक्रमे । अथाऽऽगतं द्विजं शूद्रः प्राह स्नेहवशीकृतम्
हव्यकव्यविधानं मे ब्रूहि त्वं तु गुरुर्मतः । एवमुक्तः स शूद्रेण सर्वमेतदुपादिशत् ॥
कारयामास शूद्रस्य पितृकार्यादिकं तदा । पितृकार्ये कृते तेन विसृष्टः स द्विजोत्तमः
अथ दीर्घेण कालेन पोषितः शूद्रयोनिना । त्यक्तोविप्रगणैःसोऽयंपञ्चत्वमगमद्द्विजः
वैवस्वतभटैर्नीत्वा पातितो नरकेष्वपि । कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानिच
भुक्त्वा क्रमेण नरकांस्तदन्ते स्थावरोऽभवत् । गर्दभस्तुततोजज्ञेविड्वराहस्ततःपरम्
जज्ञेऽथ सारमेयोऽसौ पश्चाद्वायसतां गतः । अथ चण्डालतांप्राप्यशूद्रयोनिमगात्ततः
गतवान्वैश्यतां पश्चात्क्षत्रियस्तदनन्तरम् ।
प्रबलैर्बाध्यमानोऽसौ ब्राह्मणो वै तदाऽभवत् ॥ ६२ ॥
उपनीतः स पित्रा तु वर्षे गर्भाष्टमे द्विजः । वर्तमानः पितुर्गेहे स्वाचाराभ्यासतत्परः
गच्छन्कदाचिद्गहने गृहीतो ब्रह्मरक्षसा । रुदन्भ्रमन्स्खलन्मूढः प्रलपन्प्रहसन्नसौ॥६४
शश्वद्धाहेति च वदन्वैदिकं कर्म सोऽत्यजत् । दृष्ट्वा सुतं तथाभूतंपितादुःखेनपीडितः
सुतमादाय च स्नेहादगस्त्यं शरणं ययौ । सुवर्णमुखरीतीरे तपस्यन्तं शिवाग्रतः ॥
भक्त्या मुनिं प्रणम्याऽसौ पिता तस्य सुतस्य वै ।
तस्मै निवेदयामास स्वपुत्रस्य विचेष्टितम् ॥ ६७ ॥

अब्रवीच्च तदा विप्रः कुम्भजं मुनिपुङ्गवम् । एष मे तनयो ब्रह्मन्गृहीतो ब्रह्मरक्षसा ॥
सुखं न लभते ब्रह्मन्रक्ष तं करुणादृशा । नास्ति मे तनयोऽप्यन्यः पितॄणामृणमुक्तये ॥
तस्य पीडाविनाशार्थमुपायं ब्रूहि कुम्भज !। त्वत्समस्त्रिषु लोकेषुतपःशीलोन विद्यते
त्वां विनाऽस्य परित्राता न मे पुत्रस्य विद्यते । पुत्रेदयांकुरुगुरोदयाशीलाहिसाधवः

श्रीसूत उवाच

एवमुक्तस्तदा तेन कुम्भजोध्यानमास्थितः । ध्यात्वातुसुचिरंकालमब्रवीद्ब्राह्मणंततः

अगस्त्य उवाच

पूर्वजन्मनि ते पुत्रो ब्राह्मणोऽयंमहामते !। सुमतिर्नाम विप्रोऽयं मतिशूद्राय वै ददौ
कर्माणिवैदिकान्येषसर्वाण्युपदिदेशवै । अतोऽयं नरकान्भुक्त्वा कल्पकोटिसहस्रकम्

जातो भुवि तदन्तेषु स्थावरादिषु योनिषु ।
इदानीं ब्राह्मणो जातः कर्मशेषेण ते सुतः ॥ ७५ ॥

यमेन प्रेषितेनाऽत्र गृहीतो ब्रह्मरक्षसा । क्रूरेण पातकेनाऽद्य पूर्वजन्मकृतेन वै ॥ ७६ ॥
उपायं ते प्रवक्ष्यामि ब्रह्मरक्षोविनाशने । शृणुष्व श्रद्धयायुक्तः समाधाय च मानसम्
सुवर्णमुखरीतीरे ऋषिसङ्घनिषेविते । वर्तते दैवतैः सेव्यः पावनो वेङ्कटाचलः ॥७८॥
तस्योपरि महातीर्थंनाम्नापापविनाशनम् । अस्तिपुण्यम्प्रसिद्धञ्च महापातकनाशनम्
भूतप्रेतपिशाचानां वेतालब्रह्मरक्षसाम् । महताञ्चैव रोगाणां तीर्थं तन्नाशकं स्मृतम्

सुतमादाय गच्छ त्वं तत्तीर्थं गिरिमध्यगम् ।
प्रयतः स्नापय सुतं तीर्थे पापविनाशने ॥ ८१ ॥

स्नानेन त्रिदिनन्तत्र ब्रह्मरक्षो विनश्यति । नैवषोपायान्तरं तस्यविनाशेविद्यतेभुवि
तस्माच्छीघ्रं प्रयाहि त्वंवेङ्कटाह्वयपर्वतम् । तत्र पापविनाशाख्यतीर्थे स्नापयतेसुतम्

मा विलम्बं कुरुष्वाऽत्र त्वरया याहि वै द्विज ! ।
इत्युक्तः स द्विजोऽगस्त्यं प्रणम्य भुवि दण्डवत् ॥ ८४ ॥

अनुज्ञातश्च तेनाऽसौ प्रययौवेङ्कटाचलम् । सुतेनसाकंविप्रोऽसौ गत्वापापविनाशनम्
सङ्कल्पपूर्वं संप्राप्य दिनत्रयमसौ सुतम् । सस्नौस्वयञ्चविप्रेन्द्रः पिता पापविनाशने

समागतः पपौ तोयं कृत्वा चाऽप्याह्निकक्रमम् ।
अथ तस्य सुतस्तत्र विमुक्तो ब्रह्मरक्षसा ॥ ८७ ॥
समजायत नीरोगः स्वस्थः सुन्दररूपधृक् ।
सर्वसम्पत्समृद्धोऽसौ भुक्त्वा भोगाननेकशः ॥ ८८ ॥
देहान्ते प्रययौ मुक्तिं स्नानात्पापविनाशने । पिताऽपितत्र स्नानेनदेहान्तेमुक्तिमाप्तवान्
तेनोपदिष्टोऽयं शूद्रः स भुक्त्वा नरकान् क्रमात् ।
अनेकासु जनित्वा च कुत्सितास्वपि योनिषु ॥ ९० ॥
गृध्रजन्माऽभवत्पश्चाद्वेङ्कटाचलभूधरे । स कदाचिज्जलम्पातुं तीर्थे पापविनाशने ॥९१
समागतः पपौ तोयं सिषिचे चात्मनस्तनुम् । तदैव दिव्यदेहःसन्सर्वाभरणभूषितः
दिव्यम्विमानमारुह्य प्रययावमरालयम् ॥ ९२ ॥

श्रीसूत उवाच

एवम्प्रभावमेतद्धै तीर्थम्पापविनाशनम् । पापानां नाशनाद्विप्राःपापनाशाभिधं हि तत्
इत्थं रहस्यं कथितं मुनीन्द्रास्तद्वैभवं पापविनाशनस्य ।
यत्राभिषेकात्सहसा विमुक्तौ द्विजश्च शूद्रश्च विनिन्द्यकृत्यौ ॥ ९५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये पापविनाशनतीर्थमहिमानुवर्णनं नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

पापविनाशनतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

पुनश्चाऽहं प्रवक्ष्यामि पापनाशनवैभवम् । भगवद्भक्तिभावेन शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥१
इतिहासं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविनाशनम् । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्रसंशयः
आसीत्पुरा द्विजवरो वेदवेदाङ्गपारगः । दरिद्रो वृत्तिहीनश्च नाम्ना भद्रमतिर्द्विजः ॥३
श्रुतानि सर्वशास्त्राणि तेन विप्रेण धीमता । श्रुतानिच पुराणानिधर्मशास्त्राणिसर्वशः

अभवंस्तस्य षट्पत्न्यः कृता सिन्धुर्यशोवती ।
कामिनी मालिनी चैव शोभा चैव प्रकीर्तिताः ॥ ५ ॥

तासुपत्नीषुतस्याऽऽसीत्पुत्राणाञ्चशतद्वयम् । तेसर्वेतस्यपुत्राद्याःक्षुधयापरिपीडिताः

अकिञ्चनो भद्रमतिः क्षुधार्तानात्मजान्प्रियान् ।
पश्यन्प्रियाः क्षुधार्तांश्च विललाऽऽपाकुलेन्द्रियः ॥ ७ ॥
धिग्जन्मभाग्यरहितं धिग्जन्मधनवर्जितम् ।
धिग्जन्मकीर्तिरहितं धिग्जन्माऽऽतिथ्यवर्जितम् ॥ ८ ॥

धिग्जन्माचाररहितं धिग्जन्मज्ञानवर्जितम् ॥ धिग्जन्मयत्नरहितंधिग्जन्मसुखवर्जितम्
धिग्जन्मबन्धुरहितंधिग्जन्मख्यातिवर्जितम् । नरस्यबह्वपत्यस्यधिग्जन्मैश्वर्यवर्जितम्

अहोगुणाः सौम्यता च विद्वत्ता जन्म सत्कुले ।
दारिद्र्याम्बुधिमग्नस्य सर्वमेतन्न शोभते ॥ ११ ॥
विप्राः पुत्राश्च पौत्राश्च बान्धवा भ्रातरस्तथा ।
शिष्याश्च सर्वे मनुजास्त्यजन्त्यैश्वर्यवर्जितम् ॥ १२ ॥

इतिनिश्चित्यमतिमान्धीरोभद्रमतिर्द्विजः । चण्डालोवाद्विजोवापिभाग्यवानेवपूज्यते
दरिद्रः पुरुषोलोके शववल्लोकनिन्दितः । अहो सम्पत्समायुक्तोनिष्ठुरोवाप्यनिष्ठुरः

गुणहीनोऽपिगुणवान्मूर्खोवापि सपण्डितः। सर्वधर्मसमायुक्तो धर्महीनोऽथवानरः
ऐश्वर्यगुणयुक्तश्चेत्पूज्य एव न संशयः। अहो दरिद्रता दुःखं तत्राप्याशातिदुःखदा
आशाभिभूताः पुरुषाःदुःखमश्नुवते क्षणात् ॥ १७ ॥
आशाया ये दासा दासास्ते सर्वलोकस्य। आशा दासी येषां तेषां दासायते लोकः
सर्वशास्त्रार्थवेत्तापिदरिद्रोभातिमूर्खवत्। आकिञ्चन्यमहाग्राहग्रस्तानांनास्तिमोचकः
अहो दुःखमहो दुःखमहो दुःखं दरिद्रता।
तत्राऽपि पुत्रदाराणां बाहुल्यमतिदुःखदम् ॥ २० ॥
एवमुक्त्वा भद्रमतिः सर्वशास्त्रार्थपारगः। अत्यैश्वर्यप्रदं धर्ममनसा चिन्तयंस्तदा
तूष्णीं स्थितो भद्रमतिर्महाक्लेशसमन्वितः ॥ २१ ॥
तदानीं तासु भार्यासु कामिनी पतिदेवता ॥ २२ ॥
भार्या साधुगुणैर्युक्ता पतिं तं प्रत्यभाषत ॥ २३ ॥
कामिन्युवाच
भगवन्सर्वधर्मज्ञ ! सर्वशास्त्रार्थपारग !। मम नाथ महाभाग वाक्यंश्रृणु महामते !॥
सुवर्णमुखरीतीर ऋषिसङ्घनिषेविते। वर्तते दैवतैः सेव्यः पावनो वेङ्कटाचलः॥२५
तस्मिन्वेङ्कटशैलेन्द्रे सुरासुरनमस्कृते। वर्तते पावनं तीर्थं पापानां दाहकं शुभम्
तत्र गत्वा महाभाग पापनाशे महामते। कुरु स्नानं प्रयत्नेन भार्यापुत्रसमन्वितः ॥२७
तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं नारदाच्च श्रुतं मया। बालभावेममपितुरन्तिकेप्रोक्तवान्मुनिः
वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने। सर्वदुःखप्रशमने सर्वसम्पत्प्रदायके ॥ २६ ॥
पापनाशे महातीर्थे स्नात्वा सङ्कल्पपूर्वकम्। अत्यैश्वर्यप्रदं धर्मं मनसा चिन्तयंस्तदा
भूमिदानं विनिश्चित्य सर्वदानोत्तमोत्तमम्। प्रापकं परलोकस्य सर्वकामफलप्रदम्
दानानामुत्तमं दानं भूदानं परिकीर्तितम्। तद्दत्त्वा समवाप्नोति यद्यदिष्टतमं नरः ॥३२
इत्येवं नारदेनोक्तं श्रुत्वा मे जनको द्विजः। सम्प्रहृष्टमना भूत्वा शेषाद्रिं प्राप्तवांस्तदा
तत्र गत्वा महाभागः सर्वसम्पत्प्रदायकम्। भूदानं विप्रवर्याय श्रोत्रियाय प्रदत्तवान्
ततो मे जनको विद्वान्सर्वभाग्यसमन्वितः।

इहलोके सुखं प्राप्य चाऽन्ते विष्णुपुरं ययौ ॥ ३५ ॥

त्वं च गत्वा महाभाग वेङ्कटाद्रिं नगोत्तमम् । कुरु दानं प्रयत्नेन भूदानं सर्वकामदम्.

भूमिदानस्य माहात्म्यं श्रृणुष्व सुसमाहितः ।

न कोऽपि गदितुं शक्तो लोकेऽस्मिन्भगवन्प्रभो !॥ ३७ ॥

भूमिदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति । परं निर्वाणमाप्नोतिभूमिदो नाऽत्र संशयः.

स्वल्पामपि महींदत्त्वाश्रोत्रियायाऽऽहिताग्नये । ब्रह्मलोकमवाप्नोतिपुनरावृत्तिवर्जितम्.

भूमिदः सर्वदः प्रोक्तो भूमिदो मोक्षभाग्भवेत् । भूमिदानं वृषाद्रौचसर्वपापप्रणाशनम्.

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः । दशहस्तां महीं दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते.

सत्पात्रे भूमिदाता यः सर्वदानफलं लभेत् ।

भूमिदस्य समो नान्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ४२ ॥

द्विजस्य वृत्तिहीनस्य यः प्रदद्यान्महीं शुभाम् । तस्यपुण्यफलंवक्तुंशेषोनार्हःकदाचन.

विप्रस्य वृत्तिहीनस्य सदाचारस्य कस्यचित् ।

योऽल्पामपि महीं दद्यात्सविष्णुर्नाऽत्र संशयः ॥ ४४ ॥

इक्षुगोधूमकेदारपूगवृक्षादिसंयुता । पृथ्वी प्रदीयते येन स विष्णुर्नाऽत्र संशयः ४५

वृत्तिहीनस्यविप्रस्यदरिद्रस्यकुटुम्बिनः । स्वल्पामपिमहींदत्त्वाविष्णुसायुज्यमश्नुते

सक्तस्य देवपूजासुविप्रस्याऽऽटविका मही । दत्ताभवतिगङ्गायांत्रिरात्रस्नानजंफलम्

विप्रस्य वृत्तिहीनस्य सदाचाररतस्य च । द्रोणिकां पृथिवींदत्त्वायत्फलं लभतेश्रृणु

गङ्गातीरेऽश्वमेधानां शतानि विधिवन्नरः । कृत्वायत्फलमाप्नोतितदाप्नोतिमहत्फलम्

ददाति भारिकां भूमिं दरिद्राय द्विजातये ।

तस्य पुण्यं प्रवक्ष्यामि मन्नाथ भगवन्प्रभो !॥ ५० ॥

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । विधाय जाह्नवीतीरेयत्फलं तल्लभेत सः ॥.

भूमिदानं महादानमतिदानं प्रकीर्तितम् । सर्वपापप्रशमनमपवर्गफलप्रदम् ॥ ५२ ॥

यच्छ्रुत्वाश्रद्धयायुक्तोभूमिदानफलंलभेत् । भार्यायावचनंश्रुत्वात्वितिहाससमन्वितम्

सन्तुष्टो मनसि ध्यात्वा शेषाचलनिवासिनम् ॥ ५४॥

गन्तुं प्रचक्रमे वुद्ध्या क्रीड़ाचलमनुत्तमम् । ततो भद्रमतिः सौम्यः सर्वधर्मपरायणः
सुशालिं नाम नगरीं कलत्रसहितो ययौ । सुघोषंनाम विप्रेन्द्रं सर्वैश्वर्यसमन्वितम्

गत्वा याचितवान्भूमिं पञ्चहस्तायतां द्विजः ।
सुघोषो धर्मनिरतस्तं निरीक्ष्य कुटुम्बिनम् ॥ ५७ ॥

मनसा प्रीतिमापन्नं समभ्यर्च्यैनमब्रवीत् । कृतार्थोऽहं भद्रमते ! सफलं मम जन्म च

मत्कुलं चाऽनघं जातं त्वं हि ग्राह्योऽसि मे यतः ॥ ५८ ॥

इत्युक्त्वा तं समभ्यर्च्य सुघोषो धर्मतत्परः । पञ्चहस्तप्रमाणांतांददौतस्मैमहामतिः

पृथिवी वैष्णवी पुण्या पृथिवी विष्णुपालिता ।
पृथिव्यास्तु प्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः ॥ ६० ॥
मन्त्रणाऽनेन विप्रेन्द्राः सुघोषस्तं द्विजेश्वरम् ।
विष्णुवुद्ध्या समभ्यर्च्य तावतीं पृथिवीं ददौ ॥ ६१ ॥

स भद्रमतये विप्रा धीमांस्तांयाचितांभुवम् । दत्तवान्हरिभक्तायश्रोत्रियायकुटुम्बिने
सुघोषो भूमिदानेन कोटिवंशसमन्वितः । प्रपेदे विष्णुभवनं यत्र गत्वान शोचति
विप्रो भद्रमतिश्चाऽपि पुत्रदारसमन्वितः । गतो वेङ्कटशैलेन्द्रं सुरासुरनमस्कृतम् ६४
गन्धर्वयक्षशैलादिसेवितं मेरुपुत्रकम् । वैकुण्ठादागतं दिव्यं क्रीडाचलमनुत्तमम् ॥

तत्र स्वामिसरस्तोये निर्मले पावने शुभे ।
दारपुत्रादिसंयुक्तः स्नात्वा सङ्कल्पपूर्वकम् ॥ ६६ ॥

तत्पश्चिमतटे श्वेतसूकरं वसुधाधरम् । नत्वा तत्र विधानेन श्रीनिवासालयं गतः
तत्र ब्रह्मादिदेवैश्चसेवितं वेङ्कटेश्वरम् । दृष्टवान्सह पुत्राद्यैर्विष्णुभक्तो महामतिः ॥६८

भक्त्या प्रणम्य देवेशं श्रीनिवासं कृपानिधिम् ।
पुत्रदारादिसंयुक्तः पापनाशनमाययौ ॥ ६९ ॥

तत्र स्नात्वाविधानेनकृतधर्मादिसत्क्रियः । कस्मैचिद्विष्णुभक्तायश्रोत्रियायमहामतिः

विष्णुवुद्ध्या स प्रददौ भूदानं मोक्षदं शुभम् ॥ ७१ ॥
तदा प्रादुरभूद्देवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ७२ ॥

विनतानन्दनारूढो वनमालाविभूषितः । पापनाशस्य तीरे तु भूदानस्य प्रभावतः
तदा भद्रमतिः सौम्यः स्तोतुं समुपक्रमे ॥ ७४ ॥
नमोनमस्तेऽखिलकारणाय नमो नमस्तेऽखिलपालकाय ।
नमोनमस्तेऽमरनायकाय नमोनमो दैत्यविमर्दनाय ॥ ७५ ॥
नमोनमो भक्तजनप्रियाय नमोनमः पापविदारणाय ।
नमोनमो दुर्जननाशकाय नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय ॥ ७६ ॥
नमो नमः कारणवामनाय नारायणायाऽमितविक्रमाय ।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥ ७७ ॥
नमः पयोराशिनिवासकाय नमोऽस्तु लक्ष्मीपतयेऽव्ययाय ।
नमोऽस्तु सूर्याद्यमितप्रभाय नमोनमः पुण्यगतागताय ॥ ७८ ॥
नमोनमोऽर्केन्दुविलोचनाय नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय ।
नमोऽस्तु यज्ञाङ्गविराजिताय नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय ॥ ७९ ॥
नमोनमः कारणकारणाय नमोऽस्तु शब्दादिविवर्जिताय ।
नमोऽस्तु तेऽभीष्टसुखप्रदाय नमोनमो भक्तमनोरमाय ॥ ८० ॥
नमोनमस्तेऽद्भुतकारणाय नमोऽस्तु ते मन्दरधारकाय ।
नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने नमो हिरण्याक्षविदारकाय ॥ ८१ ॥
नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे नमोऽस्तुते क्षत्त्रकुलान्तकाय ।
नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय नमोऽस्तु ते नन्दसुताग्रजाय ॥ ८२ ॥
नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने । श्रितार्तिनाशिने तुभ्यं भूयोभूयो नमोनमः
विप्रेण संस्तुतो देवो भगवान्भक्तवत्सलः ।
वात्सल्येनाऽब्रवीद्वाक्यं श्रीनिवासोदयानिधिः ॥ ८४ ॥
तात तुष्टोऽस्मि भद्रंतेस्तोत्रेणमहताद्विज । सर्वभोगसमायुक्तः पुत्रपौत्रादिभिर्युतः
इहलोके सुखं प्राप्य देहान्ते मुक्तिमाप्नुहि ।
इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ८६ ॥

एवं वः कथितं विप्राः पापनाशनवैभवम् । तत्तीरेभूप्रदानस्यमाहात्म्यंचाऽपिवर्णितम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
:श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये पापविनाशनतीर्थे भूदानफलानु-
वर्णनंनाम विंशतितमोऽध्यायः

एकविंशोऽध्यायः

रामानुजाख्यद्विजवृत्तान्तवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

भोभोस्तपोधनाःसर्वेनैमिषारण्यवासिनः । आकाशगङ्गातीर्थस्यमाहात्म्यंप्रवदाम्यहम्
आकाशगङ्गानिकटे सर्वशास्त्रार्थपारगः । रामानुज इतिख्यातोविष्णुभक्तो जितेन्द्रियः
तपश्चकार धर्मात्मावैखानसमतेस्थितः । ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्येस्थोविष्णुध्यानपरायणः
जपन्नष्टाक्षरं मन्त्रं ध्यायन्हृदि जनार्दनम् । वर्षास्वाकाशगो नित्यं हेमन्तेषु जलेशयः
सर्वभूतहितोदान्तःसर्वद्वन्द्वविवर्जितः । वर्षाणिकतिचित्सोऽयंजीर्णपर्णाशनोभवत्
कञ्चित्कालं जलाहारो वायुभक्षः कियत्समाः ।
अथ तत्तपसा तुष्टोभगवानभक्तवत्सलः । प्रत्यक्षतामगात्तस्य शङ्खचक्रगदाधरः ॥७
विकचाम्बुजपत्राक्षः सूर्यकोटिसमप्रभः । विनतानन्दनाऽऽरूढश्छत्रचामरशोभितः ॥८
हारकेयूरमुकुटः कटकादिविभूषितः । विष्वक्सेनसुनन्दादिकिङ्करैः परिवारितः ॥९॥
वीणावेणुमृदङ्गादिवादकैर्नारदादिभिः । गीयमानः सुविभवःपीताम्बरविराजितः॥१०
लक्ष्मीविराजितोरस्को नीलमेघनिभच्छविः ।
सनकादिमहायोगिसेवितः पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ ११ ॥
मन्दस्मितेन सकलं मोहयन्भुवनत्रयम् । स्वभासा मानयन्सर्वादिशोदश विराजयन्
सुभक्तसुलभो देवो वेङ्कटेशो दयानिधिः । पुनः सन्निदधे तस्य रामानुजमहामुनेः ॥

आविर्भूतं तदा दृष्ट्वा श्रीनिवासं कृपानिधिम् । पीताम्बरधरं देवं तुष्टिं प्राप महामुनिः
भक्त्या परमया युक्तस्तुष्टाव जगदीश्वरम् ॥ १५ ॥

रामानुज उवाच

नमो देवाधिदेवाय शङ्खचक्रगदाभृते । नमो नित्याय शुद्धाय वेङ्कटेशाय ते नमः ॥१६
नमो भक्तार्तिहन्त्रेते हव्यकव्यस्वरूपिणे । नमस्त्रिमूर्तयेतुभ्यं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे

नमः परेशाय नमोऽतिभूम्ने नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये विधात्रे ।
नमोऽस्तु सूर्येन्दुविलोचनाय नमो विरिञ्च्याद्यभिन्दिताय ॥ १८ ॥
यो नाम जात्यादिविकल्पहीनः समस्तदोषैरपि वर्जितो यः ।
समस्तसंसारभयापहारिणे तस्मै नमो दैत्यविनाशकाय ॥ १९ ॥
वेदान्तवेद्याय रमेश्वराय वृषादिवासाय विधातृपित्रे ।
नमोनमः सर्वजनार्तिहारिणे नारायणायाऽमितविक्रमाय ॥ २० ॥

नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय शार्ङ्गिणे । भूयोभूयो नमस्तुभ्यं वेङ्कटाद्रिनिवासिने
इतिस्तुत्वावेङ्कटेशंश्रीनिवासंजगद्गुरुम् । रामानुजोमुनिस्तूष्णीमास्तेविप्रवरोत्तमः
श्रुत्वा स्तुतिं श्रुतिसुखां स्तुतस्तस्य महात्मनः । अवापपरमंतोषं वेङ्कटाचलनायकः
अथालिङ्ग्य मुनिं शौरिश्चतुर्भिर्बाहुभिस्तदा । बभाषे प्रीतिसंयुक्तोवरंवैव्रियतामिति
तुष्टोऽस्मि तपसा तेऽद्यस्तोत्रेणाऽपिमहामुने । नमस्कारेणचप्रीतोवरदोऽहंतवागतः

रामानुज उवाच

नारायण रमानाथ श्रीनिवास जगन्मय । जनार्दन जगद्धाम गोविन्द नरकान्तक ॥२६
त्वद्दर्शनात्कृतार्थोऽस्मिवेङ्कटाद्रिशिरोमणे !।
त्वां नमस्यन्ति धर्मिष्ठा यतस्त्वं धर्मपालकः ॥ २७ ॥

यं न वेत्ति भवोब्रह्मायंनवेत्तित्रयीतथा । त्वांवेद्मिपरमात्मानं किमस्मादधिकं परम्
योगिनोयं नपश्यन्तियंनपश्यन्तिकर्मठाः । पश्यामिपरमात्मानंकिमस्मादधिकम्परम्
एतेन च कृतार्थोऽस्मि वेङ्कटेश जगत्पते !। यन्नामस्मृतिमात्रेण महापातकिनोऽपिच

मुक्तिं प्रयान्ति मनुजास्तं पश्यामि जनार्दनम् । त्वत्पादपद्मयुगले निश्चलाभक्तिरस्तुमे

श्रीभगवानुवाच

मयि भक्तिर्दृढा तेऽस्तु रामानुजमहामते!। शृणु चाऽप्यपरंवाक्यमुच्यतेते मया द्विज
मेषसङ्क्रमणेभानोश्चित्रानक्षत्रसंयुते । पौर्णमास्यां च गङ्गायां स्नानंकुर्वन्ति येजनाः
मेषसंक्रमणेभानोश्चित्रानक्षत्रसंयुते । पौर्णमास्यां च गङ्गायां स्नानं कुर्वन्ति ये जनाः
ते यान्ति परमं धाम पुनरावृत्तिवर्जितम् । वियद्गङ्गासमीपे त्वं वस रामानुज! द्विज!
एतत्प्रारब्धदेहान्ते यत्स्वरूपमवाप्स्यसि । बहुना किमिहोक्तेन वियद्गङ्गाजले शुभे ॥
स्नान्तिये वै जनाः सर्वेते वै भागवतोत्तमाः । भवन्तिमुनिशार्दूल!न त्रकार्याविचारणा

रामानुज उवाच

किंलक्षणा भागवता ज्ञायन्ते केन कर्मणा । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कौतूहलपरो यतः

श्रीवेङ्कटेश उवाच

लक्ष्म भागवतानां तु शृणुष्व मुनिसत्तम !॥ ३८ ॥
वक्तुं तेषां प्रभावं तु शक्यते नाऽब्दकोटिभिः ॥ ३९ ॥

येहिताःसर्वजन्तूनांगतासूयाविमत्सराः । ज्ञानिनोनिःस्पृहाःशान्तास्तेवैभागवतोत्तमाः
कर्मणा मनसा वाचा परपीडां न कुर्वते । अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥
सत्कथाश्रवणे येषां वर्तते सात्त्विकी मतिः । मत्पादाम्बुजभक्तायेतेवैभागवतोत्तमाः

मातापित्रोश्च शुश्रूषां कुर्वते ये नरोत्तमाः ।
ये तु देवार्चनरता ये तु तत्साधका नराः ॥
पूजां दृष्ट्वा तु मोदन्ते ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४३ ॥

वर्णिनां च यतीनां च परिचर्यापराश्च ये । परनिन्दामकुर्वाणास्ते वै भागवतोत्तमाः
सर्वेषां हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमाः । येगुणग्राहिणो लोकेतेवैभागवतोत्तमाः
आत्मवत्सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमाः । तुल्याःशत्रुषु मित्रेषु तेवैभागवताःस्मृताः
धर्मशास्त्रप्रवक्तारः सत्यवाक्यरताश्च ये । तेषां शुश्रूषवो ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥
व्याकुर्वन्ति पुराणानि तानि शृण्वन्ति ये तथा । तद्वक्तरि चभक्तायेतेवैभागवतोत्तमाः
ये गोब्राह्मणशुश्रूषां कुर्वन्ति सततं नराः । तीर्थयात्रापरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः

अन्येषामुदयं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः । हरिनामपर ये च ते वै भागवतोत्तमाः॥
आरामारोपणरतास्तटाकपरिरक्षकाः । कासारकूपकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥५१॥
ये वै तटाककर्तारो देवसद्मानि कुर्वते । गायत्रीनिरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥
येऽभिनन्दन्ति नामानि हरेःश्रुत्वाऽतिहर्षिताः । रोमाञ्चितशरीराश्चतेवैभागवतोत्तमाः
तुलसीकाननं दृष्ट्वा ये नमस्कुर्वते नराः । तत्काष्ठाङ्कितकर्णा ये ते वै भागवतोत्तमाः॥
तुलसीगन्धमाघ्राय सन्तोषं कुर्वते तु ये । तन्मूलमृद्धरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥
स्वाश्रमाचारनिरतास्तथैवाऽतिथिपूजकाः । ये च वेदार्थवक्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः
विदितानि च शास्त्राणि परार्थंप्रवदन्तिये । सर्वत्र गुणभाजो ये ते वै भागवतोत्तमाः
पानीयदाननिरता ह्यन्नदानरताश्च ये । एकादशीव्रतपरास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५८॥
गोदाननिरता ये च कन्यादानरताश्च ये । मदर्थं कर्मकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥
मन्मानसाश्च मद्भक्ता ये मद्भजनलोलुपाः । मन्नामस्मरणासक्तास्ते वै भागवतोत्तमाः
बहुनाऽत्र किमुक्तेन संक्षेपात्ते ब्रवीम्यहम् । सद्गुणायप्रवर्तन्ते ते वै भागवतोत्तमाः॥

एते भागवता विप्राः केचिदत्र प्रकीर्तिताः ।
ममाऽपि गदितुं शक्या नाऽब्दकोटिशतैरपि ॥ ६२ ॥

रामानुज! महाभाग! मद्भक्तानां च लक्षणम् । मयिभक्तेत्वयिप्रीत्यायुक्तंकिलमहामते

श्रीसूत उवाच

एवं वः कथितं विप्राः शौनकाद्यामहौजसः । वृषाद्रौचवियद्गङ्गातीर्थंमाहात्म्यमुत्तमम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशातिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये आकाशगङ्गामाहात्म्यरामानुजविप्रव्रतचर्यादिवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

दानार्हसत्पात्रनिर्णयवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

भगवन्सूत सर्वज्ञ वेदवेदान्तकोविद !। दानानि कस्मै देयानि दानकालश्च कीदृशः ॥१

कश्च तत्प्रतिगृह्णीयात्सर्वं नो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

श्रीसूत उवाच

महापुण्यप्रदे क्षेत्रे वेङ्कटाख्ये द्विजोत्तमाः । सर्वेषामेव वर्णानां ब्राह्मणः परमो गुरुः ॥

तस्मै दानानि देयानिस तारयति पण्डितः । ब्राह्मणःप्रतिगृह्णीयाद्वर्जयित्वात्ववर्णकम्

षण्ढस्य पुत्रहीनस्य दम्भाचाररतस्य च । वेदविद्वेषिणश्चैव द्विजविद्वेषिणस्तथा ॥५

स्वकर्मत्यागिनश्चाऽपि दत्तं भवति निष्फलम् । परदाररतस्याऽपि परद्रव्यरतस्य च

गायकस्याऽपि विप्रस्य दत्तं भवति निष्फलम् । असूयाविष्टमनसःकृतघ्नस्यचमायिनः

ज्ञानशून्यस्यविप्रस्यदत्तंभवतिनिष्फलम् । नित्यंयाच्ञापरस्यापिहिंसकस्यावलस्यच

नामविक्रयिणश्चैव वेदविक्रयिणस्तथा । स्मृतिविक्रयिणश्चैव धर्मविक्रयिणस्तथा ॥

परोपतापशीलस्य दत्तं भवति निष्फलम् । ये केचित्पापनिरता निन्दिताःसुकृतैस्तथा

न तेभ्यः प्रतिगृह्णीयान्न देयं वाऽपिकिञ्चन । सत्कर्मनिरतायैवश्रोत्रियायाऽऽहिताग्नये

वृत्तिहीनाय वै देयं दरिद्रायकुटुम्बिने । देवपूजासु सक्ताय पुराणकथकाय च ॥ १२ ॥

देयं प्रयत्नतो विप्रा दरिद्रस्य विशेषतः । बहुना किमिहोक्तेन श्रृणुध्वं द्विजसत्तमाः

सर्वेषां ब्राह्मणानां च प्रदातुं शक्यते सदा । वन्ध्याभर्त्रे प्रदत्तश्चेद्रासभो जायते नरः

नास्तिकं भिन्नमर्यादं पुत्रहीनं जडं खलम् । स्तेयिनं कितवं चैवकदाचिन्नाभिवादयेत्

पाषण्डं पतितं व्रात्यं वेदविक्रयिणं तथा । कृतघ्नं पापनिरतं कदाचिन्नाऽभिवादयेत्

तथा स्नानं प्रकुर्वन्तं समित्पुष्पकरं तथा ।

उदपात्रधरश्चैव भुञ्जन्तं नाऽभिवादयेत् ॥ १७ ॥

विवादशालिनं चण्डं वमन्तं जनमध्यगम् । भिक्षान्नधारिणं चैवशयानं नाऽभिवादयेत्

वन्ध्याश्च पुष्पिणीं जारां सूतिकां गर्भपातिनीम् ।

व्रतघ्नीश्च तथा चण्डीं कदाचिन्नाऽभिवादयेत् ॥ १६ ॥

सभायां यज्ञशालायां देवतायतनेष्वपि । प्रत्येकं तु नमस्कारो हन्ति पुण्यंपुरातनम्

श्राद्धव्रते नियुक्तश्च देवताऽभ्यर्चकं तथा । यज्ञश्च तर्पणश्चैव कुर्वन्तं नाऽभिवादयेत्

कुर्वते वन्दनं यस्तु न कुर्यात्प्रतिवन्दनम् । नाभिवाद्यः स विज्ञेयोयथाशूद्रस्तथैवच

तस्मात्सर्वेषु कालेषु बुद्धिमान्ब्राह्मणोत्तमः ।

वन्ध्यापतिं द्विजं क्रूरं कदाचिन्नाऽभिवादयेत् ॥ २३ ॥

सूत उवाच

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि पुण्यशीलस्य धीमतः । सनत्कुमारमुनये नारदेन प्रभाषितम्

तद्वक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठाः! श्रृणुध्वं सुसमाहिताः ।

पुरा गोदावरीतीरे सर्वधर्मपरायणः ॥ २५ ॥

पुण्यशीलो द्विजवरः सत्यवादी जितेन्द्रियः । दयावान्सर्वभूतेषुदेवाग्निद्विजपूजकः

कर्मणा जन्मशुद्धश्च मातापितृहिते रतः । गुरुभक्तिसदाक्षिण्यो ब्रह्मण्यःसाधुसम्मतः

एतादृशगुणैर्युक्तः पुण्यशीलस्य धीमतः ॥ २८ ॥

गृहं सम्प्राप्तवान्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः । प्रार्थितः पुण्यशीलेन पितृश्राद्धेऽतिवेगतः ॥

तं विप्रं श्रोत्रियं शान्तं पितृश्राद्धे नियोज्य वै ।

श्राद्धं चकार धर्मात्मा प्रत्याब्दिकमनुत्तमम् ॥ ३० ॥

ततः कालान्तरे तस्य पुण्यशीलस्य चाऽऽनने । वैरूपं प्राप्तमत्युग्रं रासभाननवत्तदा॥

ततः खिन्नमना भूत्वा पुण्यशीलोऽतिधार्मिकः ।

निःश्वस्य बहुधा खिन्नःप्रपेदेऽगस्त्ययोगिनः ॥ ३२ ॥

सुवर्णमुखरीतीरे ऋषिसङ्घनिषेविते । आश्रमं परमं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥

तत्राऽऽश्रमेमुनिवरैः सेव्यमानमहर्निशम् । दृष्ट्वाऽगस्त्यंमहात्मानंसर्वलोकहितैषिणम्

प्रणाममकरोत्तस्मै गार्दभास्योऽतिदुःखितः ॥

पुण्यशील उवाच

तपोनिधे! नमस्तुभ्यमगस्त्य! मुनिसेवित !। कुत्सितास्यंमहापापंरक्षरक्षदयानिधे !
केन दोषेण मे चाऽत्र मुखस्याऽऽसीत्कुरूपता ॥ ३७ ॥
मयि प्रीत्या महाभाग! वदस्व मुनिसत्तम !॥ ३८ ॥

अगस्त्य उवाच

विप्रवर्य! महाभाग! पुण्यशील! महामते! । आननस्य विरूपं वै शृणु नान्यमना द्विज
किञ्चिद्विप्रं गुणनिधिंवेदवेदाङ्गपारगम् । श्रोत्रियं पुत्ररहितं श्राद्धे त्वं विनियुक्तवान्
तेन दोषेण महता मुखे तव विरूपता ।
ये लोके हव्यकव्यादौ वन्ध्यायाः स्वामिनं द्विजम् ॥ ४१ ॥
नियोजयन्ति ते यान्ति मुखेगर्दभरूपताम् । शुभकर्मणि वा विप्रपैतृकेवाऽपिकर्मणि
वन्ध्यापतिं महापापं कदाचिन्न निमन्त्रयेत् । वन्ध्यापतिं महाक्रूरंवृषलीपतिमेव वा
श्रेयस्कामी हि विप्रेन्द्र! श्राद्धे तु न निमन्त्रयेत् ।
वेदशास्त्रादियुक्तोऽपि कुलीनः कर्मठोऽपि वा ॥ ४४ ॥
वन्ध्याभर्ता द्विजश्रेष्ठ श्राद्धेत्याज्यः कथञ्चन । ज्योतिष्टोमादियज्ञेषुव्रतेषुचतपःसु च
समर्थोऽपि द्विजश्रेष्ठः श्राद्धे वन्ध्यापतिं त्यजेत् ।
अलभ्ये तु द्विजे पात्रे तन्तुमात्रोपजीविनम् ॥ ४६ ॥
पुत्रवन्तं सदाचारं श्राद्धार्थं तु निमन्त्रयेत् । तदभावे द्विजश्रेष्ठपुत्रं वाऽनुजमेव वा ॥
आत्मानं वा नियुञ्जीत श्राद्धे वन्ध्यापतिं त्यजेत् ।
पुण्यशील! महाभाग ! चोद्धृत्य भुजमुच्यते ॥ ४८ ॥
सर्वथा पुत्रहीनंतुश्राद्धार्थंननियोजयेत् । वन्ध्यापतिंद्विजंयस्तुश्राद्धकर्तानियोक्ष्यति
तच्छ्राद्धमासुरं ज्ञेयं कर्ता च नरकं व्रजेत् ॥ ५० ॥
बहुनाऽत्र किमुक्तेन तद्दोषविनिवृत्तये । उपायं ते प्रवक्ष्यामि स्वर्णमुख्यास्तटे शुभे॥
वर्तते देवसङ्घैश्च सेवितो वेङ्कटाचलः । मेरुपुत्रो महापुण्यः सर्वकामफलप्रदः ॥५२ ॥
तस्मिन्वेङ्कटशैलेन्द्रे सुरासुरनमस्कृते । वियद्गङ्गेति नाम्ना वै तीर्थमस्ति महत्तरम्

सर्वपापप्रशमनमायुरारोग्यवर्धनम् । त्वं गत्वा वेङ्कटं शैलं स्वामिपुष्करिणीजले ॥
स्नात्वा सङ्कल्पपूर्वं तु गङ्गातीर्थमनन्तरम् । गत्वा तीर्थविधानेन स्नानं कुरु महामते !
स्नानमात्रात्ततःसद्योमुखस्याऽस्यमहामते । वैरूप्यंतत्क्षणादेवनङ्क्ष्यत्येव न संशयः
एवमुक्तः पुण्यशीलो ह्यगस्तेन महात्मना । तं प्रणम्य महात्मानं वेङ्कटाद्रिंततो ययौ
तत्र गत्वा महाभागः स्वामिपुष्करिणीजले ।
स्नात्वा नियमपूर्वं तु वियद्गङ्गासमीपगः ॥ ५८ ॥
तत्रस्नानेनधर्मात्माकामवक्त्रोपमंमुखम् । प्राप्तवान्पुण्यशीलस्तुअहोतीर्थस्य वैभवम्

सूत उवाच

एवम्वः कथितं विप्रा नारदेन प्रभाषितम् । सनत्कुमारमुनयेशौनकाद्या महौजसः ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यआकाशगङ्गामाहात्म्यवर्णनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

चक्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनेपद्मनाभाख्यद्विजवृत्तान्तवर्णनम्

सूत उवाच

अथाहंसम्प्रवक्ष्यामिद्विजेन्द्राःसत्यवादिनः । चक्रतीर्थस्यमाहात्म्यंसर्वपापप्रणाशनम्
ये शृण्वन्तिरमहापुण्यंचक्रतीर्थस्यवैभवम् । तेयान्तिविष्णुभवनंपुनरावृत्तिवर्जितम्
अन्नदाने च विमुखा जलदाने तथैव च । गोदानविमुखाये च शुद्धास्तेऽत्रनिमज्जनात्
तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं चक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ ४ ॥

सूत उवाच

पुराश्रीवत्सगोत्रीयः पद्मनाभो जितेन्द्रियः । चक्रपुष्करिणीतीरे सोऽतप्यतमहत्तपः
दयायुक्तोनिराहारःसत्यवादीजितेन्द्रियः । आत्मवत्सर्वभूतानिपश्यन्विषयनिःस्पृहः

सर्वभूतहितो दान्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ।
वर्षाणि कतिचित्सोऽयं जीर्णपर्णाशनोऽभवत् ॥ ७ ॥
कञ्चित्कालं जलाहारो वायुभक्षः कियत्समाः । एवं द्वादशवर्षाणिपद्मनाभोमहामुनिः
अतप्यत तपो घोरं देवैरपि सुदुष्करम् ।
अथ तत्तपसा तुष्टो भगवान्कमलापतिः ॥ ६ ॥
प्रत्यक्षतामगात्तस्य शङ्खचक्रगदाधरः । विकचाम्बुजपत्राक्षः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥१०
उन्मील्य चक्षुषी तत्र दृष्टवान्वेङ्कटेश्वरम् । शङ्खचक्रधरं शान्तंश्रीनिवासंकृपानिधिम्
दृष्ट्वा देवं महात्मानं स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ११ ॥
नमो देवाधिदेवाय वेङ्कटेशाय शार्ङ्गिणे । नारायणाद्रिवासाय श्रीनिवासाय ते नमः ॥
नमः कल्मषनाशाय वासुदेवाय विष्णवे । शेषाचलनिवासाय श्रीनिवासाय ते नमः
नमस्त्रैलोक्यनाथाय विश्वरूपाय साक्षिणे । शिवब्रह्मादिवन्द्याय श्रीनिवासाय ते नमः
नमः कमलनेत्राय क्षीराब्धिशयनाय ते । दुष्टराक्षससंहर्त्रे श्रीनिवासाय ते नमः ॥१५
भक्तप्रियाय देवाय देवानां पतये नमः ॥ १६ ॥
प्रणतार्तिविनाशाय श्रीनिवासाय ते नमः ॥ १७ ॥
योगिनां पतये नित्यं वेदवेद्याय विष्णवे । भक्तानां पापसंहर्त्रे श्रीनिवासाय ते नमः
एवं स्तुतो महाभागःश्रीनिवासोजगन्मयः । पद्मनाभाख्यऋषिणाचक्रतीर्थनिवासिना
सन्तोषं परमं प्राप्य वेङ्कटेशो दयानिधिः ॥ २० ॥
पद्मनाभं द्विजवरं शान्तं धर्मपरायणम् । सुधाधारोपमं वाक्यमब्रवीत्पुरुषोत्तमः ॥२१

श्रीनिवास उवाच

द्विजवर्य ! महाभाग मत्पादकमलार्चक !। चक्रतीर्थस्य तीरे त्वमाकल्पं पूजयन्वस ॥
इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुस्तत्रैवाऽन्तरधीयत । अन्तर्धानं गते देवे श्रीनिवासेजगद्गुरौ
चक्रतीर्थस्य तीरे तु वासं चक्रे महामतिः । ततः कालान्तरे कश्चिद्राक्षसोभीमदर्शनः
मुनिं तं पद्मनाभाख्यं नारायणपरायणम् । आययौ भक्षितुं क्रूरः क्षुधया परिपीडितः
ब्राह्मणं तरसा सोऽयं राक्षसो जगृहे तदा । गृहीतस्तरसा तेन विप्रो वेदाङ्गपारगः ॥

प्रचुक्रोश दयाम्भोधिमापन्नानां परायणम् । नारायणं चक्रपाणिं रक्ष रक्षेति वै मुहुः
वेङ्कटेश! दयासिन्धो! शरणागतपालक !। त्राहि मां पुरुषव्याघ्र! रक्षोवशमुपागतम् ॥

लक्ष्मीकान्त! हरे! विष्णो! वैकुण्ठ! गरुडध्वज !।
मां रक्ष राक्षसाक्रान्तं ग्राहाक्रान्तं गजं यथा ॥ २६ ॥

दामोदर! जगन्नाथ! हिरण्यासुरमर्दन !। प्रह्लादमिव मां रक्ष राक्षसेनाऽतिपीडितम्

इत्येवं स्तुवतस्तस्य पद्मनाभस्य हे द्विजाः।
स्वभक्तस्य भयं ज्ञात्वा चक्रपाणिर्दयानिधिः ॥ ३१ ॥

स्वचक्रं प्रेषयामास भक्तरक्षणकारणात् । प्रेरितं विष्णुचक्रं तद्विष्णुना प्रभविष्णुना
आजगामाऽथ वेगेन चक्रपुष्करिणीतटम् । अनन्तादित्यसङ्काशमनन्ताग्निसमप्रभम्
महाज्वालं महानादं महासुरविमर्दनम् । दृष्ट्वा सुदर्शनं विष्णो राक्षसोऽथ प्रदुद्रुवे ॥
द्रवमाणस्यतस्याऽऽशुराक्षसस्यसुदर्शनम् । शिरश्चकर्त्तसहसाज्वालामालादुरासदम्
ततो विप्रवरो दृष्ट्वा राक्षसम्पतितं भुवि । मुदा परमया युक्तस्तुष्टाव च सुदर्शनम् ॥

पद्मनाभ उवाच

विष्णुचक्र! नमस्तेऽस्तुविश्वरक्षणदाक्षित !। नारायणकराम्भोजभूषणायनमोऽस्तुते
युद्धेष्वसुरसंहारकुशलाय महारव । सुदर्शन नमस्तुभ्यं भक्तानामार्तिनाशन !॥ ३८॥

रक्ष मां भयसम्विग्नं सर्वस्मादपि कल्मषात् ।
स्वामिन्सुदर्शन! विभो! चक्रतीर्थे सदा भवान् ॥ ३६ ॥

सन्निधेहि हितायत्वंजगतोमुक्तिकाङ्क्षिणः । ब्राह्मणेनैवमुक्तंतद्विष्णुचक्रंमुनीश्वराः

तं प्राह पद्मनाभाख्यं प्रीणयन्निव सौहृदात् ॥ ४१ ॥

सुदर्शन उवाच

पद्मनाभ महापुण्यं चक्रतीर्थमनुत्तमम् । अस्मिन्वसामि सततं लोकानांहितकाम्यया

त्वत्पीडां परिचिन्त्याऽहं राक्षसेन दुरात्मना ॥ ४३ ॥

प्रेरितोविष्णुना विप्र त्वरयासमुपागतः । त्वत्पीडकोऽपिनिहतोमयाऽयंराक्षसाधमः
मोचितस्त्वं भयादस्मात्त्वं हि भक्तो हरेः सदा। चक्रतीर्थे महापुण्ये सर्वपापहरेद्विज

सततं लोकरक्षार्थंसन्निधानं करोमि ते । अस्मिन्मत्सन्निधानात्तेतथाऽन्येषामपिद्विज
इतः परं न पीडा स्याद् भूतराक्षससम्भवा ।
अस्मिन्मत्सन्निधानात्स्याच्चक्रतीर्थमिति प्रथा ॥ ४७ ॥
स्नानं येऽत्र प्रकुर्वन्ति चक्रतीर्थे विमुक्तिदे । तेषां पुत्राश्च पौत्राश्चवंशजाःसर्वएव हि
विधूतपापा यास्यन्तितद्विष्णोःपरमंपदम् । इत्युक्त्वाविष्णुचक्रंतत्पद्मनाभस्यपश्यतः
अन्येषामपि विप्राणां पश्यतां सहसा द्विजाः ।
चक्रपुष्करिणीं तां तु प्राविशत्पापनाशिनीम् ॥ ५० ॥

श्रीसूत उवाच

चक्रतीर्थस्य माहात्म्यं विप्रेन्द्राःपापनाशनम् । युष्माकंकथितंसर्वंशौनकाद्यामहौजसः
चक्रतीर्थसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति । अत्र स्नात्वा नरा विप्रामोक्षभाजोनसंशयः
कीर्तयेदिममध्यायं शृणुयाद्वा समाहितः । चक्रतीर्थाभिषेकस्य प्राप्नोति फलमुत्तमम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये चक्रतीर्थमहिमानुवर्णनंनाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

सुन्दराख्यगन्धर्वस्य राक्षसत्वप्राप्तिनिवृत्त्योरुपोद्घातवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

भगवन्राक्षसः कोऽसौ सूतपौराणिकोत्तम !। विष्णुभक्तं महात्मानंयोब्राह्मणमबाधत

श्रीसूत उवाच

वक्ष्यामि राक्षसं क्रूरंतंविप्राःशृणुतादरात् । यथाचराक्षसोजातोमुनीनांशापवैभवात्
पुरा वैकुण्ठसदृशे श्रीरङ्गेविष्णुमन्दिरे । वसिष्ठाऽत्रिमुखाः सर्वेविष्णुभक्तामहौजसः
श्रीरङ्गनाथं देवेशं भक्तानामभयप्रदम् । उपासाञ्चक्रिरे मुक्त्यै श्रीरङ्गपुरवासिनः ॥ ४॥

कदाचित्तत्र गन्धर्वो वीरबाहुसुतो वली ।
सुन्दरो नाम विप्रेन्द्रा विटगोष्ठीपरायणः ॥ ५ ॥
ललनाशतसंयुक्तो विवस्त्रःसलिलाशये । चिक्रीड स विवस्त्राभिःसाकंयुवतिभिर्मुदा
कुबेरजायास्तीर्थेतुवसिष्ठोमुनिभिःसह । माध्याह्निकंकर्तुमनाययौ श्रीरङ्गमन्दिरात्
तान्ऋषीनवलोक्याथरामास्ताभयकातराः । वासांस्याच्छादयामासुःसुन्दरोनतुसाहसी
ततो वसिष्ठः कुपितः शशापैनं गतत्रपम् ॥ ६ ॥

वसिष्ठ उवाच

यस्मात्सुन्दर गन्धर्व! दृष्ट्वाऽस्माँल्लज्जया त्वया ।
वासोनाच्छादितं शीघ्रं याहि राक्षसतां ततः ॥ १० ॥
एवमुक्ते वसिष्ठेन रामाः प्राञ्जलयस्तदा । प्रणिपत्य वसिष्ठं तं भक्तिनम्रेण चेतसा ॥
मुनिमण्डलमध्ये तु वसिष्ठमिदमब्रुवन् ॥ १२ ॥

रामा ऊचुः ।

भगवन्सर्वधर्मज्ञ चतुराननन्दन !। दयासिन्धोऽवलोक्यास्मान्न कोपं कर्तुमर्हसि ॥
पतिरेव हि नारीणां भूषणम्परमुच्यते । पतिहीना तु या नारी शतपुत्राऽपि सा मुने
विधवेत्युच्यतेलोकेतासांजन्मनिरर्थकम् । तत्प्रसादं कुरु मुने पत्यावस्माकमादरात्
एकोऽपराधः क्षन्तव्यो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
क्षमां कुरु दयासिन्धो! युष्मच्छिष्येऽत्र सुन्दरे ॥ १६ ॥

श्रीसूत उवाच

वसिष्ठः प्रार्थितस्त्वेवंसुन्दरस्याङ्गनाजनैः । प्रोवाचवचनं भूयः प्रसन्नः स द्विजोत्तमः

वसिष्ठ उवाच

न मे स्याद्वचनं मिथ्याकदाचिदपिसुभ्रुवः !। उपायंवः प्रवक्ष्यामिश्टणुध्वंश्रद्धया सह
षोडशाब्दावधिः शापो भर्तुर्वै भविताध्रुवम् ।
षोडशाब्दावधौ चैव सुन्दरो राक्षसाकृतिः ॥ १६ ॥
यदृच्छया वेङ्कटाद्रिं सर्वपापहरं शुभम् । गत्वाऽसौ चक्रतीर्थं तद्गमिष्यति सुराङ्गनाः

आस्ते तत्र महायोगीपद्मनाभोमुनीश्वरः । भक्षार्थंतंमुनिंसोऽयंराक्षसोऽभिगमिष्यति
ततो ब्राह्मणरक्षार्थं प्रेरितं चक्रमुत्तमम् । विष्णुनास्य शिरःकायाद्धरिष्यतिन संशयः

ततः स्वं रूपमासाद्य शापान्मुक्तः स सुन्दरः ।
पतिर्वस्त्रिदिवं भूयो गन्ता नाऽस्त्यत्र संशयः ॥ २३ ॥

ततस्त्रिदिवमासाद्य सुन्दरोऽयं पतिर्हि वः । रमयिष्यतिसुन्दर्यो युष्मान्सुन्दरवेषभृत्

श्रीसूत उवाच

इत्युक्त्वातुवसिष्ठस्ताःसुन्दरस्यवराङ्गनाः । स्वाश्रमम्प्रययौतूर्णंश्रीरङ्गेश्वरभक्तिमान्
अथ रामास्तमालिङ्ग्य सुन्दरम्पतिमात्मनः । रुरुदुःशोकसन्तप्ताःदुःखसागरमध्यगाः
दृश्यमानासु तास्वेवंसुन्दरोराक्षसोऽभवत् । महादंष्ट्रो महाकायो रक्तश्मश्रुशिरोरुहः
तं दृष्ट्वाभयसम्विग्नाजग्मू रामास्त्रिविष्टपम् । ततो राक्षसवेषोऽयं सुन्दरोभैरवाकृतिः
भक्षयन्प्राणिनः सर्वान्देशाद्देशं वनाद्वनम् । भ्रमन्ननिलवेगोऽयं वेङ्कटाद्रिं नगोत्तमम्

प्रविश्याऽसौ महापापी चक्रतीर्थं ततो ययौ ।
एवं षोडशवर्षाणि भ्रमतोऽस्य ययुस्तदा ॥ ३० ॥

ततस्तु षोडशाब्दान्तेराक्षसोऽयंमुनीश्वराः । भक्षितुं पद्मनाभंतं चक्रतीर्थनिवासिनम्

उपाद्रवद्वायुवेगः सचाऽस्तौषीज्जनार्दनम् ।
योगिना च स्तुतो विष्णुस्तदा चक्रमचोदयत् ॥ ३२ ॥

रक्षितुं पद्मनाभं तं राक्षसेन प्रपीडितम् । अथाऽऽगत्यहरेश्चक्रं राक्षसस्यशिरोऽहरत्
ततोऽयं राक्षसं देहं त्यक्त्वा दिव्यकलेवरः । विमानवरमारुह्य सुन्दरः पुष्पवर्षितः

प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा ववन्दे तत्सुदर्शनम् ।
तुष्टाव श्रुतिरम्याभिर्वाग्भिरग्र्याभिरादरात् ॥ ३५ ॥

सुन्दर उवाच

सुदर्शन नमस्तेऽस्तु विष्णुहस्तैकभूषण । नमस्तेऽसुरसंहर्त्रे सहस्रादित्यतेजसे ॥
कृपावेशेन भवतस्त्यक्त्वाहंराक्षसींतनुम् । स्वं रूपमभजंविष्णोश्चक्रायुधनमोऽस्तुते
अनुजानीहि मां गन्तुंत्रिदिवं विष्णुवल्लभ !। भार्या मे परिशोचन्तिविरहातुरचेतसः

त्वन्मनस्को भविष्यामि यावज्जीवं यथा ह्यहम् ।
तथा रूपं कुरुष्व त्वं मयि चक्र ! नमोऽस्तु ते ॥ ३६ ॥

एवं स्तुतंविष्णुचक्रंसुन्दरेणसभक्तिकम् । अनुजग्राह सहसातथाऽस्त्वितिमुनीश्वराः
चक्रायुधाभ्यनुज्ञातःसुन्दरोब्राह्मणोत्तमम् । प्रणम्य तेनाऽनुज्ञातोगन्धर्वस्त्रिदिवंययौ
सुन्दरे तु गतेस्वर्गंपद्मनाभोमुनीश्वरः । तच्चक्रंप्रार्थ यामास विष्णवायुध! नमोऽस्तुते
चक्रायुध! नमामि त्वां महासुरविमर्दन । सन्निधानं कुरुष्व त्वं चक्रतीर्थेऽमले शुभे

त्वत्सन्निधानात्सर्वेषां स्नातानां पापिनामिह ।
पापनाशं कुरुष्व त्वं मोक्षञ्च कुरु शाश्वतम् ॥ ४४ ॥

चक्रतीर्थमिति ख्यातिंलोकेऽस्यपरिकल्पय । त्वत्सन्निधानादत्रत्यमुनीनांभयनाशनम्
इतः परम्भवत्वार्य चक्रायुध नमोऽस्तु ते । भूतप्रेतपिशाचेभ्यो भयं मा भवतु प्रभो

इति सम्प्रार्थितं चक्रं पद्मनाभेन योगिना ।
तथैवाऽस्त्विति सम्भाष्य तस्मिंस्तीर्थे तिरोहितम् ॥ ४७ ॥

श्रीसूत उवाच

एवम्त्रःकथितोविप्रा राक्षसस्योद्भवोमया । माहात्म्यंचक्रतीर्थस्यकथितञ्चमलापहम्
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो भुवि ॥ ४९ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये चक्रतीर्थमहिमानुवर्णनं नाम
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

जाबालितीर्थमाहात्म्येकावेरीतीरवासीदुराचाराख्यद्विजोदन्तवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

भोभोस्तपोधनाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः । वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥
ततो जाबालितीर्थस्य माहात्म्यं वर्णयाम्यहम् ।
दुराचाराभिधो यत्र स्नात्वा मुक्तोऽभवद्द्विजाः !॥ २ ॥

मुनयः ऊचुः

दुराचाराभिधःकोऽसौ सूततत्त्वार्थकोविद !। किञ्चपापंकृतन्तेन दुराचारेण वै मुने!
कथम्वा पातकान्मुक्तस्तीर्थेऽस्मिन्स्नानवैभवात् ।
एतच्छुश्रूषमाणानां विस्तराद्वद नो मुने ! ॥ ४ ॥

सूत उवाच

मुनयः श्रूयतां तस्य दुराचारस्य पातकम् । जाबालितीर्थस्नानेन यथामुक्तश्चपातकम्
दुराचाराभिधो विप्रः कावेरीतीरमाश्रितः । कश्चिदास्तेद्विजःपापीक्रूरकर्मरतः सदा॥
ब्रह्मघ्नैश्च सुरापैश्चस्तेयिभिर्गुरुतल्पगैः । सदासंसर्गदुष्टोऽसोतैःसाकंन्यवसद्द्विजाः
महापातकसंसर्गदोषेणाऽस्यद्विजस्य वै । ब्राह्मण्यं सकलं नष्टं निःशेषेण द्विजोत्तमाः
महापातकिभिः सार्धं दिनमेकंतु यो द्विजः । निवसेत्सादरंतस्यतत्क्षणाद्वैद्विजन्मनः
ब्राह्मणस्य तु चैकांशोनश्यत्येव न संशयः । द्विदिनंसेवनात्स्पर्शाद्दर्शनाच्छयनात्तदा
भोजनात्सह पङ्क्तौ च महापातकिभिर्द्विजाः !।
द्वितीयभागो नश्येत ब्राह्मण्यस्य न संशयः ॥ ११ ॥
त्रिदिनाच्च तृतीयांशोनश्यत्येव न संशयः । चतुर्दिनाच्चतुर्थांशो विलयंयातिहिध्रुवम्
अतः परं च तैः साकं शयनाशनभोजनैः । तत्तुल्यपातकीभूयान्महापातकिसङ्गवान्
तेन ब्राह्मण्यहीनोऽयं दुराचाराभिधो द्विजः । ग्रस्तोऽभवद्भीषणेनव्यालेनेवबलीयसा

असौ परवशस्तेन वेतालेनाऽतिपीडितः। देशाद्देशं भ्रमन्विप्रोवनाच्चैव वनान्तरम् ॥
पूर्वपुण्यविपाकेन दैवयोगेन स द्विजः। वेङ्कटाद्रिं महापुण्यं सर्वपातकनाशनम् ॥१८॥
अनुद्रुतः पिशाचेन वेतालेन द्विजौ ययौ। न्यमज्जयत्स वेतालो महापातकनाशने ॥
जाबालितीर्थे विप्रेन्द्रा महापातकिसङ्गिनम्। उदतिष्ठत्क्षणादेव वेतालेन विमोहितः

उत्थितोऽसौ द्विजो विप्रास्तस्मातीर्थात्तु पावनात्।
स्वस्थो व्यचिन्तयत्कोऽयं स्वर्णमुख्याः समीपतः ॥ १६ ॥

कथं मयागतमहो कावेरीतीरवासिना। इतिचिन्ताकुलःसोऽयंजाबालेस्तीर्थमुत्तमम्
जाबालिंचमहात्मानंयोगीन्द्रवरमुत्तमम्। समागम्यप्रणम्याऽऽसौदुराचारोऽभ्यभाषत
न जाने भगवन्विप्र पर्वतोऽयंवदाऽधुना। कावेरीतीरनिलयो दुराचाराभिधोह्यहम्
कृपया ब्रूहि मे ब्रह्मन्मयाऽत्र कथमागतम्। इतिपृष्टो मुनिस्तेनदुराचारेण सुव्रतः ॥

ध्यात्वा मुहूर्तमवदद्दुराचारं कृपानिधिः ॥ २४ ॥

जाबालिरुवाच

महापातकिसंसर्गाद्दुराचारस्य ते पुरा। ब्राह्मण्यं नष्टमभवद्वेतालस्त्वां ततोऽग्रहीत्

तेनाऽऽविष्टस्त्वमायातो विवशोऽत्र विमूढधीः।
न्यमज्जयत्त्वां वेतालस्तीर्थेऽस्मिन्नतिपावने ॥ २६ ॥

अत्रमज्जनमात्रेण विमुक्तः पातकाद्भवान्। जाबालितीर्थे ये स्नानंपुण्यंकुर्वन्तिमानवाः
तेषां नश्यन्तिवेतालयंपश्चशातकसञ्चयाः। सत्कर्मसाधने पुण्यतीर्थेऽस्मिन्स्नानमात्रतः
महापातकिसंसर्गदोषस्ते विलयं गतः। त्वामग्रहीद्यो वेतालः पुरायंब्राह्मणोऽभवत्
मृतेऽहनिपितृश्राद्धं नाऽकरोत्पार्वणेन वै। तेन स्वपितृभिः शप्तोवेतालत्वमगादयम्॥
सोऽपिजाबालितीर्थस्यजलेस्नानप्रभावतः। वेतालत्वंविहायैव विष्णुलोकमवाप्तवान्
न कुर्याद्यो नरः श्राद्धंमातापित्रोर्मृतेऽहनि। वेतालत्वमवाप्याऽऽशुपश्चान्नरकमश्नुते

सूत उवाच

दुराचारो महापापीतीर्थेऽस्मिन्स्नानमात्रतः। प्राप्तवान्विष्णुलोकंचैपुनरावृत्तिवर्जितम्
एवम्वः कथितं पुण्यं दुराचारविमोक्षणम्। तस्मात्सुप्रयतमंतीर्थं सर्वपापहरं शुभम्

यत्र हि स्नानमात्रेण दुराचारो विमोचितः ।
यानि निष्कृतिहीनानि पापान्यपिविनाशयेत् ॥ ३५ ॥
शूद्रेण पूजितं लिङ्गंविष्णुंवायोनमेद्द्विजः । प्रायश्चित्तंनस्मृतिषुतस्योक्तंपरमर्षिभिः
नश्येत्तस्यापि तत्पापंतीर्थेजाबालिसञ्ज्ञके । विप्रनिन्दाकृतांचैवप्रायश्चित्तंन विद्यते ॥
विश्वासघातकानां च कृतघ्नानां च निष्कृतिः । भ्रातृभार्यारतानांचप्रायश्चित्तंनविद्यते
तेषां जाबालितीर्थे वै स्नानाच्छुद्धिर्भविष्यति ।
एवम्वः कथितंविप्राजाबालेस्तीर्थवैभवम् ॥ ३९ ॥
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो भुवि ॥ ४० ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये जाबालितीर्थमहिमानुवर्णनंनाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

तुम्बुरुघोणतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

अथाऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शौनकाद्या महौजसः !।
घोणतीर्थस्य माहात्म्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥
तत्रस्नानं जनानां तु जन्मान्तरतपःफलम् । उत्तराफल्गुनीयुक्तशुक्लपक्षीयपर्वणि ॥२॥
तुम्बोस्तीर्थं मीनसंस्थे रवौ तीर्थानि सर्वशः । अपराह्णेसमायान्तिगङ्गादीनिजगत्त्रये

ऋषय ऊचुः

भगवन्सूत! सर्वज्ञ! सर्वशास्त्रार्थपारग !।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वा घोणतीर्थेऽतिपावने ॥ ४ ॥
किमर्थं स्नान्ति वै तत्र मीनसंस्थे प्रभाकरे ॥ ५ ॥

श्रीसूत उवाच

पापिनो मनुजाः सर्वे ह्यस्मात्तु स्नान्ति यत्नतः ।
विसृज्य पापजालानि कृतार्था यान्ति वै जनाः ॥ ६ ॥

अस्माकं पापजालं तत्कथं नश्यति सर्वतः । एवमालोच्यतीर्थानिगङ्गादीनिप्रयत्नतः
संस्मृत्य ब्रह्मपुत्रस्य नारदस्य महात्मनः । वाक्यं मनोहरं दिव्यं सर्वपापनिषूदनम् ॥
गत्वा श्रीवेङ्कटं शैलंब्रह्महत्यादिशोधकम् । तत्रस्नात्वातीर्थवर्येस्वामिपुष्करिणीजले
अनन्तरं ततो विप्रा घोणतीर्थेऽतिपावने । उत्तराफल्गुनीयुक्तशुक्लपक्षीयपर्वणि ॥१०
स्नान्तितीर्थानिसर्वाणिमीनसंस्थेप्रभाकरे । तस्यतीर्थस्यमाहात्म्यंकोवेत्तिभुवनत्रये
तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं घोणतीर्थं द्विजोत्तमाः ॥ १२ ॥

आरामोच्छेदकं क्रूरं कन्यातुरगविक्रयम् । घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्ब्रह्मघातुकम् ॥
देवद्रव्यापहर्तारं तथा दत्तापहारकम् । घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्ब्रह्मघातुकम् ॥१४॥
तटाकसेतुभेत्तारं परस्त्रीसङ्गलोलुपम् । घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं बुधाः ॥
ददामीति द्विजायोक्त्वा पश्चाद्यो नास्तिकोऽधमः ।
घोणस्नानपरित्यक्तं सुरापं तं विदुर्बुधाः ॥ १६ ॥

गुरुविप्रजनद्वेष्यमात्मस्तुतिपरायणम् । घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं बुधाः ॥
असंस्कृतान्नभोक्तारं पितृशेषान्नभोजिनम् । घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुःस्तेयिनंद्विजाः
पितृशेषाऽन्नदातारंमातापितृविरोधिनम् । घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं बुधाः
परस्त्रीसङ्गनिरतं भ्रातृभार्यारतिप्रियम् । घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्गुरुतल्पगम् ॥२०
चण्डालभाषिणं विप्रं सदैवादर्भपाणिकम् । घोणस्नानपरित्यक्तं तत्संसर्गं तु पञ्चमम्
रजस्वलाश्वचण्डालध्वनिंश्रुत्वाऽन्नभोजिनम् । घोणस्नानपरित्यक्तंतत्संसर्गंतुपञ्चमम्
पुराणोद्वाहमौञ्ज्यादिधर्माणांविघ्नकारकम् । घोणस्नानपरित्यक्तंतमाहुःपशुघातुकम्
शरणागतहन्तारं सर्वतीर्थपराङ्मुखम् । घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्भ्रूणहं बुधाः ॥२४
पितृयज्ञपरित्यक्तं त्यक्तभार्यं कुलाधमम् । घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्गोविघातुकम् ॥
महापापसमानानि क्षुद्रपापानि यानि च । घोणस्नानपरित्यक्तमाश्रयन्ति द्विजोत्तमाः

महापापरतं विप्राः श्वपचं वा कुलाधमम् ।
क्रूरं कुलान्तकं कष्टमदत्तं कर्मवर्जितम् ॥ २७ ॥
पशुघ्नं च परद्रोहमाश्रितं पिशुनं तथा । असत्यभाषिणं दम्भपरदाररतं तथा ॥२८॥
मित्रद्रोहं कृतघ्नं च भ्रूणहं चाऽतिपातकम् । परदाररतं पापं पराणामर्थसूचकम् ॥
अनृतं कृषिकर्माणं स्वामिद्रोहं च वञ्चकम् । सलोभंपितृहन्तारं सर्वदेवपराङ्मुखम्
आत्मप्रशंसां कुर्वाणं धर्मविघ्नकरं शठम् । अपात्रव्ययकर्तारं साऽनुकूल्यविभेदकम्
सुपल्लवफलोपेतवृक्षविच्छेदकारकम् । विश्वासघातुकं चैव वीरहत्यापरायणम् ॥
अनग्निकमपुत्रं च विषकर्मप्रयोगिणम् । गुरुद्वेषकरं पापं दम्पत्योर्विरसावहम् ॥ ३३॥
ग्रामाधिपत्यं कुर्वाणं तथा देवालयस्य च । भृतकाध्यापकं विप्रं क्रूरकर्मपरायणम्
प्रकृतीकृतपापौघं गुह्यघौघपरायणम् । अज्ञानादघकर्तारं ज्ञानाद्दुष्कर्मकारकम् ॥
एतान्सर्वांश्च विप्रेन्द्रा घोणतीर्थं मनोहरम् । पुनाति स्नानपानाद्यैरहोतीर्थस्यवैभवम्

सूत उवाच

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि पुराणं पापनाशनम् । सर्वपापप्रशमनमपवर्गफलप्रदम् ॥ ३७ ॥
पुरा गार्ग्यो महातेजाःसर्वविद्याविशारदः । सर्वज्ञोनीतिवान्विप्रःप्राहचेत्थंजितेन्द्रियः
देवलं च महात्मानं नमस्कृत्य प्रसन्नधीः । कथयस्व महाभाग! मयिकारुणिको भव
घोणतीर्थस्य माहात्म्यं सर्वपापहरं शुभम् ।

देवल उवाच

तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वो भार्यां शप्त्वा पतिव्रताम् ।
अत्रस्नात्वा समभ्यर्च्य वेङ्कटेशं दयानिधिम् ॥ ४० ॥
प्राप्तवान्विष्णुलोकं वै पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ४१ ॥

गार्ग्य उवाच

किमर्थं देवलऋषे! भार्यां रूपवतीं स्त्रियम् । तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वः सर्वविद्याविशारदः
शप्तवान्केनदोषेण भार्यां सर्वगुणान्विताम् । तद्वदस्वमहाभाग! श्रोतुं कौतूहलंहि मे
तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वो भार्यां प्रीत्या ह्युवाच ह । माघत्रये मयासाकं स्नानं कुरुमलापहम्

माघमास्युदिते सूर्ये सर्वकल्मषनाशने । तीरेऽस्मिन्विष्णुपूजार्थंगोमयालेपनं कुरु
रङ्गवल्यादिभिः शुभ्रपद्मस्वस्तिकधातुभिः ।
शुश्रूषां कुरु मे विष्णोर्मासेऽस्मिन्मङ्गलप्रदे ॥ ४६ ॥
माघेऽस्मिन्माधवस्याऽस्य कुरुत्वंदीपवर्तिकाम् । सधूपंपावकंभक्त्यासमर्पयहरेःपुरः
कुरु पाकं शुचिर्भूत्वा माधवाय महात्मने । प्रदक्षिणानमस्कारैर्भक्त्या माघे मया सह
कुरुष्व देवदेवस्य सपर्यां विष्णवेऽन्वह । पुराणश्रवणं विष्णोःकुरुनित्यमतन्द्रिता
नित्यं स्नात्वा प्रयत्नेन पिवपादोदकं हरेः । कृष्णविष्णो मुकुन्देति नारायणजनार्दन
अच्युतानन्त विश्वात्मन्निति कीर्तय सन्ततम् ।
क्रोधमात्सर्यलोभादींस्त्यक्त्वा त्वं व्रतमाचर ॥ ५१ ॥
तेन ते जायते मुक्तिर्विष्णुलोकश्च शाश्वतः । इत्थंसा भर्तृगदितं श्रुत्वागन्धर्ववल्लभा
भर्तारमब्रवीत्कोपादसह्यं दुर्गतिप्रदम् ॥ ५२ ॥
माघेचोद्भूतशीते तु प्रातर्मन्दोदिते रवौ । कथं निमंज्जयेदस्मिन्माघेशीतार्तिदेऽनघ
यत्त्वयोक्तानि कर्माणि न शक्यानि मयाऽसकृत् ।
न करोमि पते! स्नानं प्रातःकाले त्वया सह ॥ ५४ ॥
मृतौशीतातिपातेन न च मे रक्षको भवान् । इत्येवमुदितं श्रुत्वा पतिर्गन्धर्ववल्लभः
स शान्तोऽपि शशापाऽथ भार्यां चाऽप्रियवादिनीम् ।
पुत्रं च धर्मविमुखं भार्यां चाऽप्रियभाषिणीम् ॥ ५६ ॥
अब्रह्मण्यश्चराजानंसद्यःशापेन दण्डयेत् । इतिन्यायंविचिन्त्याऽसौशशापेत्थंसतींतदा
वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने । घोणतीर्थसमीपे च पिप्पलद्रुमकोटरे ॥ ५८॥
तत्राम्बुरहिते मूढे! मण्डूका भव केवलम् । इत्येवं भर्तृवाक्यंतच्छ्रुत्वा गन्धर्ववल्लभा
पतित्वा पादयोस्तस्य तुम्बुरुं प्रार्थयत्सती । विशापमवदत्पश्चाद्भर्त्तावैतुम्बुरुस्तदा
अगस्त्यो वै महाभागस्तपस्वी विजितेन्द्रियः ।
घोणतीर्थवरे स्नात्वा पौर्णमास्यां महातिथौ ॥ ६१ ॥
शिष्येभ्यो वै यदा तस्मिन्नश्वत्थद्रुमसन्निधौ ।

घोणतीर्थस्य माहात्म्यं वक्ति वै ब्राह्मणोत्तमः ॥ ६२ ॥
तदापिप्पलवृक्षस्यकोटरेत्वंसमाहिता । श्रुत्वावै घोणतीर्थस्यमाहात्म्यंमोक्षदायकम्
विधूयसर्वपापानि मया साकं रमिष्यसि । इत्युक्त्वा विररामाथ धर्मपत्नी पतिव्रता ॥
भर्तृशापान्महाघोरां मण्डूकतनुमाश्रिता ।
शेषाद्रिशिखरे तस्मिन्घोणतीर्थस्य दक्षिणे ॥ ६५ ॥
शनैःशनैर्गतानारी पिप्पलद्रुमकोटरम् । अब्दायुतं गतं तस्या अश्वत्थद्रुमकोटरे ॥
ततः कालान्तरेऽगस्त्यो वेङ्कटाद्रिं मनोहरम् ।
गत्वा श्रीस्वामितीर्थे च स्नात्वा नियमपूर्वकम् ॥ ६७ ॥
वराहस्वामिनं देवंनत्वातीर्थस्यदक्षिणे । वेङ्कटेशालयंगत्वा श्रीनिवासं कृपानिधिम्
वेदवेद्यं विशालाक्षं देवदेवं सनातनम् । नत्वाऽगस्त्योमहाभागो घोणतीर्थंततो ययौ
तत्र स्नात्वा तीर्थवर्ये स्वशिष्यैर्योगिनाम्वरः ।
पिप्पलद्रुमच्छायायां शिष्येभ्यो भक्तिपूर्वकम् ॥ ७० ॥
घोणतीर्थस्य माहात्म्यं ब्रह्महत्याविनाशकम् । सर्वमङ्गलदम्पुण्यंसर्वसम्पत्प्रदायकम्
उक्तवान्योगिनां श्रेष्ठो ह्यगस्त्यो भगवान्नृषिः ॥ ७२ ॥
तदा श्रुत्वा तु वर्षाभूः पादयोस्तस्ययोगिनः । पतित्वाज्ञानदीपेनविदित्वावैभवंमुनेः
पूर्वरूपं समासाद्य नारीरूपं मनोहरम् । अगस्त्य! योगिनां श्रेष्ठ रक्षरक्ष दयानिधे !
मांरक्षदययाब्रह्मन्पतिवाक्यविरोधिनीम् । इत्युक्त्वा तं विशालाक्षी विरराम ततःपरम्

अगस्त्य उवाच

का त्वंसुश्रोणिभद्रन्तेभेकजन्मप्रदायकम् । पापं पूर्वभवेचाऽऽसीत्तद्वदस्वचमाचिरम्

नार्युवाच

तुम्बुरुर्नामगन्धर्वःसर्वविद्याविशारदः । तस्यभार्याऽस्म्यहम्विप्रह्यगस्त्यमुनिसेवित
भर्ता मे सर्वधर्मज्ञस्तुम्बुरुर्मुनिसत्तमः । सर्वधर्मान्मनोज्ञा त्वं कुरु नित्यम्मया सह ॥
पतिवाक्यं तदा श्रुत्वा परलोकोपकारकम् । असह्यम्वाक्यमत्युग्रं दुर्गतिप्रदमेव हि
मया चोक्तं हि दुर्बुद्ध्या हे तात! मुनिसत्तम !॥ ८० ॥

अगस्त्य उवाच

कुशाग्रबुद्धिस्ते भर्ता शशाप त्वांरुषान्वितः । एवंशापोयुक्तएवपतिवाक्यविरोधिनीम्
पतिवाक्यमनादृत्य स्वेच्छया वर्तते तु या । सा नारी निरये घोरेपतत्याचन्द्रतारकम्
न स्वातन्त्र्यंतु नारीणां नोल्लङ्घ्यं पतिभाषणम् । पातिव्रत्येनपुण्येनपतिशुश्रूषणेनच
स्त्रियो विष्णुपदं यान्ति न चाऽन्यैरपि सुव्रतैः ।
पतिर्माता पतिर्विष्णुः पतिर्ब्रह्मा पतिः शिवः ॥ ८४ ॥
पतिर्गुरुः पतिस्तीर्थमिति स्त्रीणांविदुर्बुधाः । पतिवाक्यमपाकृत्ययानारीसुकृतैःपरैः
सदैव युज्यते सापि नैव शुद्धा भवेत्सकृत् । पतिहीना तु या नारीगुरुभिर्धर्मवित्तमैः
सा कृतज्ञा विदध्यात्तु व्रतं धर्मफलप्रदम् । पतिना प्रेरिता सैव पतिबुद्धिपरायणा ॥
पतिपादाब्जतीर्थेन या स्नाता सा हरिप्रिया । सा स्नाता सर्वतीर्थेषुगङ्गादिषुनसंशयः
तस्मात्त्वत्कृतदोषस्तु त्वामायातीति तत्फलम् ।
भुञ्जन्त्यास्तेऽत्र शृण्वन्त्या घोणतीर्थस्य वैभवम् ॥ ८६ ॥
मुक्तिरासीच्छुभाङ्गं तन्नारीरूपं पुनर्यथा । तस्माद्घोणस्य तीर्थस्यतुम्बुतीर्थमितीहवै
लोके प्रसिद्धरभवदहो तीर्थस्य वैभवम् ॥

श्रीसूत उवाच

घोणतीर्थे महापुण्येसर्वपापविनाशिनि । स्नान्तियेपौर्णमास्यांवैशौनकाद्यामहौजसः
तेषां क्रतुफलं पुण्यं तीर्थायुतफलं भवेत् । कपिलागोसहस्रं तु यो ददाति दिनेदिने
तत्फलं समवाप्नोति स्नानात्तुम्बुरुतीर्थके । रत्नकोटिसहस्राणि यो ददाति दिनेदिने
मत्तेभानां सहस्राणि तथैवाश्वायुतान्यपि । तत्फलंसमवाप्नोति घोणतीर्थावगाहनात्
कन्याकोटिप्रदानेनयत्फलंचर्षिभिःस्मृतम् । तत्फलंसमवाप्नोतिघोणतीर्थाच्चपावनात्
हेमाम्बरसहस्रं यः कुरुक्षेत्रे प्रयच्छति । तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थस्य वैभवात्
गुर्वर्थे ब्राह्मणार्थे चस्वाम्यर्थेयस्त्यजेत्तनुम् । तत्फलंसमवाप्नोतिघोणतीर्थस्यवैभवात्
आपन्नार्तिहराणां च तीर्थसेवापरात्मनाम् । सत्यव्रतानां यत्पुण्यंघोणतीर्थाच्चतद्भवेत्
यत्फलं श्राद्धकर्तॄणां पितॄणामिन्दुसंक्षये । तत्फलंसमवाप्नोतिघोणतीर्थाद्धिपावनात्

गङ्गायां नर्मदायां च सरयूचन्द्रभागयोः । सर्वेषु पुण्यतीर्थेषु यः स्नानं कुरुते नरः ॥

तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थाद्धि पावनात् ॥ १०१ ॥

तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं घोणतीर्थं विदुर्बुधाः ॥ १०२ ॥

य इमं शृणुतेऽध्यायं सर्वपापनिवर्हणम् । वाजपेयफलं तस्य विष्णुलोकश्च शाश्वतः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये तुम्बुरुतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

श्रीवेङ्कटाचलस्य सर्वपुण्यतीर्थाधारत्ववर्णनम्

ऋषय ऊचुः

वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वसङ्कटनाशने । सन्ति वै कति तीर्थानि सूतपौराणिकोत्तम !

तेषां संख्यां च मे ब्रूहि कति मुख्यानितत्रवै । तत्राप्यत्यन्तमुख्यानिवदमेमुनिसत्तम

सद्धर्मरतिदान्यत्र कति मुख्यानि तानि च । कानि ज्ञानप्रदान्यत्र भक्तिवैराग्यदानि च

मुक्तिप्रदानि कान्यत्र तानि मे वद सुव्रत !॥ ४ ॥

श्रीसूत उवाच

षट्षष्टिकोटितीर्थानि पुण्यान्यत्र नगोत्तमे । अष्टौत्तरसहस्राणितेषु मुख्यानि सुव्रत!

सद्धर्मरतिदान्यत्र सन्ति चाऽष्टोत्तरं शतम् ।

सहस्रेभ्यश्च मुख्यानि पृथक्तेभ्यश्च तानि च ॥ ६ ॥

भक्तिवैराग्यदान्यत्र षष्टिरष्टोत्तरे शते ॥ ७ ॥

मुक्तिदान्यत्र षट् चैववेङ्कटाचलमूर्धनि । स्वामिपुष्करिणी चैव वियद्गङ्गा ततःपरम्

पश्चात्पापविनाशं च पाण्डुतीर्थमतःपरम् । कुमारधारिकातीर्थंतुम्बोस्तीर्थमतःपरम्

कुम्भमासे पौर्णमास्यां मघायोगो यदा भवेत् ।

कुमारधारिका यान्ति सर्वतीर्थानि हे द्विजाः ! ॥ १० ॥
तत्र यः स्नाति विप्रेन्द्रा राजसूयफलं लभेत् । मुक्तिश्चभवितातत्रनात्रकार्याविचारणा
अन्नदानविधिस्तत्र सार्धं दक्षिणया द्विजाः । उत्तराफल्गुनीयुक्तशुक्लपक्षीयपर्वणि ॥
तुम्बोस्तीर्थं मीनसंस्थे रवौ तीर्थानि सर्वशः । अपराह्णेसमायान्तितत्रस्नातोन जायते
मौञ्जीबन्धं विवाहं च कारयेद्द्रव्यदानतः । मेषसङ्क्रमणे भानौ चित्रानक्षत्रसंयुते॥
पौर्णमास्यां समायान्ति वियद्गङ्गां तथैव च । तत्र स्नात्वानरःसद्यःशतक्रतुफलंलभेत्
सुवर्णं तत्र दातव्यं कन्यादानं विशेषतः । वृषभस्थे रवौ विप्रा द्वादश्यां हरिवासरे
शुक्ले वाऽप्यथ कृष्णे वा भौमेनाऽपि समन्विते ।
पाण्डुतीर्थं समायान्ति गङ्गादीनि जगत्त्रये ॥ १७ ॥
तत्र स्नात्वा च गांदत्त्वामुच्यतेप्रतिबन्धकात् । आश्वयुक्छुक्लपक्षेचसप्तम्यांभानुवासरे
उत्तराषाढयुक्तायां तथा पापविनाशनम् । उत्तराभाद्रयुक्तायां द्वादश्यां वा समागतः
शालग्रामशिलां दत्त्वा स्नात्वा चविधिपूर्वकम् । मुच्यतेसर्वपापैश्चजन्मकोटिशतोद्भवैः
धनुर्मासे सिते पक्षे द्वादश्यामरुणोदये । आयान्तिसर्वतीर्थानिस्वामिपुष्करिणीजले
तत्र स्नात्वा नरः सद्योमुक्तिमेति न संशयः । यस्य जन्मसहस्रेषु पुण्यमेवाऽर्जितं पुरा
तस्य स्नानं भवेद्विप्रा नान्यस्य त्वकृतात्मनः । विभवानुगुणं दानं कार्यंतत्रयथाविधि
शालिग्रामशिलादानं गां दद्याच्च विशेषतः ॥ २४ ॥
ये शृण्वन्ति कथां विष्णोः सदा भुवनपावनीम् ।
ते वै मनुष्यलोकेऽस्मिन्विष्णुभक्ता भवन्ति हि ॥ २५ ॥
यद्यशक्तः सदा श्रोतुं कथां भुवनपावनीम् । मुहूर्तं वातदर्धंवाक्षणंवाविष्णुसत्कथाम्
यः शृणोति नरो भक्त्या दुर्गतिर्नास्ति तस्य हि ॥ २६ ॥
यत्फलं सर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम् । सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फलं विन्दते नरः ॥२७
कलौ युगे विशेषेण पुराणश्रवणादृते । नाऽस्ति धर्मःपरःपुंसां नाऽस्तिमुक्तिप्रदंपरम्
पुराणश्रवणं विष्णोर्नामसङ्कीर्तनं परम् । उभे एव मनुष्याणां पुण्यद्रुममहाफले ॥२६
पिबन्नेवाऽमृतं यस्मादेकः स्यादजराऽमरः । विष्णोः कथामृतंकुर्यात्कुलमेवाजरामरम्

बालो युवाऽथवृद्धोवादरिद्रोदुर्भगोऽपिवा । पुराणज्ञःसदावन्द्यःसपूज्यःसुकृतात्मभिः
नीचबुद्धिं न कुर्वीतपुराणज्ञे कदाचन । यस्य वक्त्रोद्गतावाणी कामधेनुःशरीरिणाम्
भवकोटिसहस्रेषुभूत्वाभूत्वावसीदताम् । योददात्यपुनर्वृत्तिंकोऽन्यस्तस्मात्परोगुरुः

व्यासासनसमाऽऽरूढो यदा पौराणिको द्विजः ।
आसमाप्तेः प्रसङ्गस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ॥ ३४ ॥

न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृते । देशे न द्यूतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥३५
सुग्रामे सुजनाकीर्णे सुक्षेत्रे देवतालये । पुण्ये वाऽथ नदीतीरे वदेत्पुण्यकथांसुधीः

श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नाऽन्यकार्येषु लालसाः ।
वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः ॥ ३७ ॥
अभक्त्या ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः ।
तेषां पुण्यफलं नाऽस्ति दुःखं जन्मनि जन्मनि ॥ ३८ ॥

पुराणं ये तु सम्पूज्यताम्बूलाद्यैरुपायनैः । शृण्वन्ति च कथां भक्त्यानदरिद्रानपापिनः
कथायां कथ्यमानायांयेगच्छन्त्यन्यतोनराः । भोगान्तरेप्रणश्यन्तितेषांदाराश्चसम्पदः

सोष्णीषमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति पावनीम् ।
ते बालकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः ॥ ४१ ॥

ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथांशृण्वन्तिपावनीम् । श्वविष्ठांभक्षयन्त्येतेनरकेचपतन्तिहि

ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः ।
अक्षय्यान्नरकान्भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः ॥ ४३ ॥

ये च वीरासनारूढा ये च सिंहासनस्थिताः । शृण्वन्तिसत्कथांतेवैभवन्त्यर्जुनपादपः
असम्प्रणम्य शृण्वन्तोविषवृक्षाभवन्तिहि । तथाशयानाःशृण्वन्तोभवन्त्यजगराहिते
यः शृणोति कथां वक्तुः समानासनसंस्थितः । गुरुतल्पसमंपापं सम्प्राप्यनरकंव्रजेत्
ये निन्दन्ति पुराणज्ञं सत्कथांपापहारिणीम् । तेवैजन्मशतंमर्त्याःशुनकाश्चभवन्तिहि
कथायां कीर्त्यमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम् । तेगर्दभाःप्रजायन्तेकृकलासास्ततःपरम्
कदाचिदपि ये पुण्यां नशृण्वन्तिकथांनराः । तेभुक्त्वानरकान्घोरान्भवन्तिवनसूकराः

कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये नराः ।
कोट्यब्दं नरकान्भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः ॥ ५० ॥
येकथामनुमोदन्तेकीर्त्यमानांनरोत्तमाः । अशृण्वन्तोऽपि तेयान्तिशाश्वतंपदमव्ययम्
ये श्रावयन्तिमनुजाःपुण्यांपौराणिकींकथाम् । कल्पकोटिशतंसाग्रंतिष्ठन्तिब्रह्मणःपदे
आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः । कम्बलाजिनवासांसि तथामञ्चकमेववा
स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ।
स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम् ॥ ५४ ॥
पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये च सूत्रं नवं वरम् । भोगिनो ज्ञानसम्पन्नास्तेभवन्तिभवेभवे
ये महापातकैर्युक्ता ह्युपपातकिनश्च ये । पुराणश्रवणादेव ते यान्ति परमम्पदम् ॥५६॥
वेङ्कटाद्रेस्तु माहात्म्यंश्रुत्वातऋषयस्ततः । व्यासप्रसादसम्पन्नंसूतंपौराणिकोत्तमम्
पूजयित्वा यथान्यायं प्रहर्षमतुलं गताः ॥ ५७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सर्वतीर्थमहिमोपसंहारपूर्वकपुराणश्रवणप्रक्रियाद्यनुवर्णनंनाम सप्तविंशोऽध्यायः

अष्टाविंशोऽध्यायः

कटाहतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

सूत! सर्वार्थतत्त्वज्ञ ! वेदवेदान्तपारग !। श्रीवेङ्कटाचले तीर्थं कटाहाख्यं सुपावनम् ॥
श्रूयते तस्य माहात्म्यंघुष्यतेचजगत्त्रये । अस्माकमेतद्ब्रूहित्वंकृपयाव्यासशासित!
पुरा वै नारदः श्रीमान्ब्रह्मपुत्रो महानृषिः । द्रष्टुं वै नैमिषारण्यं सम्प्राप्तो द्विजसत्तमः
तदानीं ब्रह्मपुत्रं तमर्घ्यपाद्यादिभिः शुभैः ।

पूजयित्वा यथान्यायं पवित्रे च कुशासने ॥ ४ ॥
सन्निवेश्य महाभक्त्या विनयानतकन्धराः । प्रणम्य प्रार्थयामासुरिमे सर्वे महर्षयः ॥
त्वां विनानारदश्रीमन्नस्माकंभुवनत्रये । धर्मोपदेशकः कश्चिन्नाऽस्ति नाऽस्तिमहर्षिषु
वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वदेवनिषेविते । वैकुण्ठादागते दिव्येसिद्धगन्धर्वसेविते ॥
कटाहतीर्थमाहात्म्यं वर्णयाऽद्य वनौकसाम् ॥ ८ ॥

श्रीनारद उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे शौनकाद्या महौजसः । कटाहतीर्थमाहात्म्यं को वेत्ति भुवनत्रये
महादेवो विजानाति तस्य तीर्थस्य वैभवम् ।
यानि कानि च पुण्यानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि वै ॥ १० ॥
तानि गङ्गादितीर्थानि स्वपापपरिशुद्धये । कटाहतीर्थसेवांच कुर्वन्तिद्विजसत्तमाः
ब्राह्मणाःक्षत्त्रियावैश्याःशूद्राश्चेतरजातयः । स्पृशन्तितज्जलमितिनपिबेद्योविमूढधीः
स हि चाण्डालतां प्राप्य कुम्भीपाके पतिष्यति ।
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतीश्वरः ॥ १३ ॥
सेवयातस्यतीर्थस्य प्राप्नोति परमंपदम् । श्रुतिस्मृतिपुराणेषुतत्तीर्थस्य प्रशंसनम्
बहुधा वर्ण्यते पञ्चमहापातकनाशनम् । अत्यद्भुततरं विप्राः सर्वलोकैकपावनम् ॥१५
ब्रह्महत्यायुतं चापि सुरापानायुतं तथा । अयुतं गुरुदाराणां गमनंपापकारणम् ॥
स्तेयायुतं सुवर्णानां तत्संसर्गाश्च कोटयः ।
शीघ्रं विलयमायान्ति तस्य तीर्थस्य सेवया ॥ १७ ॥
यानि निष्कृतिहीनानि पापानि विविधानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति तीर्थस्याऽस्य निषेवणात् ॥ १८ ॥
इदं तीर्थं महापुण्यं भगवत्पादनिस्सृतम् । कुष्ठादिरोगयुक्तोयःप्रत्यहंच पिबेदिदम्
सोऽपि रोगविहीनः सन्विष्णुलोकं च गच्छति ।
भगवाञ्छङ्करो देवो रहस्यानुभवे पुरा ॥ २० ॥
पार्वत्यै कथयामास तस्य तीर्थस्य वैभवम् । उक्तेष्वेतेषु सन्देहो न कर्तव्यःकदाचन

अर्थवादोऽयमिति च न वक्तव्यं कदाचन । येऽर्थवादमिदंब्रयुस्तेषांवैनास्तिकात्मनाम्
जिह्वाग्रे परशुं तप्तं प्रक्षिपन्ति च किङ्कराः । तस्मात्कटाहतीर्थं तु सेवनीयं प्रयत्नतः
सर्वदुःखप्रशमनमपवर्गफलप्रदम् । यत्र पीत्वा नरो भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥
एवमुक्त्वामहाभागःकाशींत्रैलोक्यपावनीम् । सम्प्राप्तोनारदःश्रीमान्सूतपौराणिकोत्तमः
संक्षेपतश्च भगवान्नैमिषे ह्युक्तवान्खलु । इदानीं श्रोतुमिच्छामः कटाहस्य च वैभवम्
सुविस्तरेण चाऽस्माकं वद सूत! कृपावशात् ॥ २७ ॥

श्रीसूत उवाच

भोभोस्तपोधनाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः । कटाहतीर्थमाहात्म्यंश्रृणुध्वंद्विजसत्तमाः
कटाहतीर्थं भो विप्राःसर्वलोकेषुविश्रुतम् । सर्वसम्पत्करं शुद्धं सर्वपापप्रणाशनम्
दुःस्वप्ननाशनं ह्येतन्महापातकनाशनम् । महाविघ्नप्रशमनं महाशान्तिकरं नृणाम् ॥३०
स्मृतिमात्रेण तत्पुंसां सर्वपापनिषूदनम् । मन्त्रेणाऽष्टाक्षरेणैव पिबेत्तीर्थं मनोहरम्
अथवा केशवाद्यैश्च नामभिर्वा पिबेज्जलम् । यद्वा नामत्रयेणाऽपि पिबेत्तीर्थं शुभप्रदम्
आहोस्विद्वेङ्कटेशस्य मन्त्रेणाऽष्टाक्षरेण वै । पिबेत्कटाहतीर्थं तद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्
विना मन्त्रेण योः विप्रः सम्पिबेत्तीर्थमुत्तमम् । पापं मे नाशयक्षिप्रंजन्मान्तरकृतंमहत्
इत्युक्त्वा स पिबेन्नित्यं मोक्षमार्गैकसाधनम् । स्वामिपुष्करिणीस्नानंवराहश्रीशदर्शनम्
कटाहतीर्थपानं च त्रयं त्रैलोक्यदुर्लभम् । बहुना किमिहोक्तेन ब्रह्महत्यादिनाशनम् ॥

पुरा कश्चिद् द्विजो मोहात्केशवाख्यो बहुश्रुतम् ।
हत्वा खड्गेन दुर्बुद्ध्या ब्रह्महत्यामवाप्तवान् ॥ ३७ ॥

सोऽपितस्मिन्महातीर्थे पीत्वाजलमनुत्तमम् । केशवाख्योमहापापीविमुक्तोब्रह्महत्यया

ऋषय ऊचुः

कस्य पुत्रः केशवाख्यः कथं प्राप्तो भयङ्करीम् । ब्रह्महत्यामतिक्रूरामस्माकं वक्तुमर्हसि

श्रीसूत उवाच

तुङ्गभद्रातटे रम्ये गन्धर्वैरुपसेविते । अग्रहारो महानासीद्वेदाढ्य इति नामतः ॥ ४०॥
तस्मिन्वेदपुरे रम्ये ब्राह्मणा वेदपारगाः । शास्त्रपारगाः सर्वे ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः

मीमांसातर्कशास्त्रज्ञाः सर्वे वेदान्तवादिनः। धर्मशास्त्रेषु निरता अन्नदानपराः सदा॥
पुत्रवन्तश्च ते सर्वे ह्यग्रहारे महाजनाः। वेदाढ्येऽप्यग्रहारे वै पद्मनाभ इति श्रुतः॥
अस्य पुत्रः केशवाख्यः सर्वकर्मवहिष्कृतः। मातरं पितरंत्यक्त्वा भार्यामपिपतिव्रताम्
सर्वदा गणिकासक्तो वेश्यागारं विवेश ह। दिनद्वये च तां वेश्यामनुभूय द्विजस्ततः
निष्कद्वयं प्रदातव्यं हस्ते दत्त्वागतःसुखम्। वेश्ययाचाधनस्त्यक्तस्तत्संयोगैकतत्परः
इतस्ततश्चोरयित्वा वहुद्रव्याणि सन्ततम्। दत्त्वातया चिरंरेमे तद्गृहे बुभुजे च सः
एकेन चषकेणाऽसौ तया सह सुरां पपौ। सकदाचित्किरातैस्तु द्रव्यं हर्तुंययौद्विजः

विप्रस्य कस्यचिद्गेहे सोऽपि कैरातवेषधृक्।
केशवो विप्रबन्धुर्वै साहसी खड्गहस्तवान्॥ ४६॥

तद्गृहस्वामिनं विप्रं हत्वा खड्गेन साहसात्। समादाय वहु द्रव्यंवेश्यागारंविवेशह
तं यान्तमनुयातिस्म ब्रह्महत्या भयङ्करी। नीलवस्त्रधरा भीमा भृशं रक्तशिरोरुहा॥
गर्जन्ती साट्टहासं सा कम्पयन्ती च रोदसी। अनुद्रुतस्तया विप्रो वभ्रामजगतीतले

एवं भ्रमन्धरां सर्वां विप्रबन्धुर्दुरात्मवान्।
स्वग्रामं प्रययौ भीत्या शौनकाद्या महौजसः॥ ५३॥

अनुद्रुतस्तया भीतः प्रययौ स्वनिकेतनम्। ब्रह्महत्याप्यनुद्रुत्य तेन साकं गृहं ययौ
जनकं रक्ष रक्षेति केशवः शरणं ययौ। मा भैषीरिति स प्रोच्य पिता रक्षितुमुद्यतः

क्रूरैनं ब्रह्महत्या सा जनकं प्रत्यभाषत॥ ५६॥

ब्रह्महत्योवाच

मैनं त्वं प्रतगृह्णीष्व पद्मनाभ द्विजोत्तम!। अयं सुरापीस्तेयी च ब्रह्महा चातिपातकी
मातृद्रोही पितृद्रोही भार्यात्यागी चतुष्टधीः। गणिकासक्तचित्तश्चह्येनंमुञ्चदुरात्मकम्
गृह्णासि चेत्सुतं विप्र महापातकिनं वृथा। त्वद्भार्यामस्य भार्यां चत्वांचपुत्रमिमंद्विज

भक्षयिष्यामि वंशं च तस्मान्मुञ्च दुरात्मकम्।
इमं त्यजसि चेत्पुत्रं युष्मान्मुञ्चामि साम्प्रतम्॥ ६०॥

नैकस्यार्थे कुलं हन्तुमर्हसि त्वं महामते!। इत्युक्तः सतयातत्रपद्मनाभोऽब्रवीच्चताम्

पद्मनाभ उवाच

बाधते मां सुतस्नेहः कथं पुत्रं परित्यजे। ब्रह्महत्या तदाकर्ण्य पद्मनाभं तमब्रवीत् ॥

ब्रह्महत्योवाच

पुत्रोऽयंपतितोऽभूत्तेवर्णाश्रमबहिष्कृतः। पुत्रेऽस्मिन्माकुरुस्नेहंनिन्दितंतस्यदर्शनम्
इत्युक्त्वा ब्रह्महत्या सा पद्मनाभस्य पश्यतः। हस्तेन प्रजहाराऽस्यसुतं केशवनामकम्
रुरोद ताततातेति जनकं प्रब्रुवन्मुहुः। रुरुदुर्जनको माता भार्या तस्य दुरात्मनः ॥

तस्मिन्काले महाभागो भरद्वाजो महामुनिः।
दिष्ट्या समाययौ योगी शौनकाद्या महौजसः ॥ ६६ ॥

पद्मनाभोऽथ तं दृष्ट्वा भरद्वाजं महामुनिम्। स्तुत्वा प्रणम्यशरणंययाचे पुत्रकारणात्
भरद्वाज महाभाग साक्षाद्विष्णवंशको भवान्। त्वद्दर्शनमपुण्यानां भविता न कदाचन
ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयी चाऽभूत्सुतो मम। पुत्रं प्रहर्तुमायाता ब्रह्महत्या भयङ्करी
भूयाद्यथा मे पुत्रोऽयं महापातकमोचितः। घोरेयं ब्रह्महत्या च यथा शीघ्रं लयं व्रजेत्
तमुपायं वदस्वाऽद्य मम पुत्रे दयां कुरु। एक एव हिपुत्रोमे नाऽन्योऽस्तितनयोमुने
सुते मृते तुवंशोमेसमुच्छिद्येतमूलतः। ततःपितृभ्यःपिण्डानांदाताऽपिनभवेद्ध्रुवम्
ततः कृपां कुरुष्व त्वमस्मासु भगवन्मुने। इत्युक्तः सभरद्वाजःसाक्षान्नारायणांशकः
ध्यात्वा तु सुचिरं कालं पद्मनाभं वचोऽब्रवीत् ॥ ७४ ॥

भरद्वाज उवाच

पद्मनाभ कृतं पापमतिक्रूरं सुतेन ते। नाऽस्य पापस्यशान्तिःस्यात्प्रायश्चित्तायुतैरपि
तथाऽपि तेसुतस्याऽहमस्य पापस्यशान्तये। प्रायश्चित्तंवदिष्यामिपद्मनाभशृणुद्विज
गङ्गाया दक्षिणे भागे द्विशतीयोजने द्विज। पूर्वाम्भोधेःपश्चिमेतु पञ्चभिर्योजनैर्मिते
सुवर्णमुखरीतीरे चोत्तरे क्रोशमात्रके। वेङ्कटाद्रिरिति ख्यातः सर्वलोकनमस्कृतः ॥
मेरुपुत्रोमहापुण्यःसर्वदेवाभिवन्दितः। वैकुण्ठलोकादानीतोविष्णोः क्रीडाचलोमहान्
गरुत्मता वेगवता स्वर्णमुख्यास्तटे शुभे। वर्तते देवसङ्घैश्च ऋषिसङ्घैश्च पूजितः ॥
तस्मिन्वेङ्कटशैलेन्द्रे साक्षान्नारायणः स्वयम् ।

लक्ष्मीदेव्या च भूदेव्या नीलादेव्या समागतः ॥ ८१ ॥
वर्तते वेङ्कटेशः स साक्षान्मोक्षप्रदायकः । तस्य वेङ्कटनाथस्य ह्यालयस्य तथोत्तरे ॥
कटाहतीर्थं विप्रेन्द्र वर्तते मङ्गलप्रदम् । ब्रह्महत्यादि पापघ्नं वाञ्छितार्थप्रदायकम् ॥
सुतेनसाकंविप्रेन्द्र! पिव तीर्थं मनोहरम् । भरद्वाजस्यवाक्यंतच्छ्रुत्वावैवेदसम्मितम्
शिरसा तं प्रणम्याऽथ ययौ वेङ्कटपर्वतम् ॥ ८५ ॥
तं गत्वा वेङ्कटं शैलं स्वामिपुष्करिणीजले । सुतेनसाकंविप्रेन्द्रःसस्नौनियमपूर्वकम्
वराहस्वामिनं नत्वा श्रीनिवासालयं गतः । प्रदक्षिणं ततःकृत्वा विमानंसम्प्रणम्य च
पद्मनाभोऽथ पुत्रेण केशवेन दुरात्मना । पपौ कटाहतीर्थं तद्ब्रह्महत्याविनाशकम् ॥
तदानीं ब्रह्महत्या सा शीघ्रमेव लयं गता । अनन्तरं ततो गत्वा वेङ्कटेशं कृपानिधिम्
पुत्रेण सह विप्रेन्द्रः पद्मनाभो ददर्श सः । तदा प्रादुरभूद्देवो वेङ्कटेशो दयानिधिः ॥
कटाहतीर्थपानेन तोषितो वाक्यमब्रवीत् ॥ ९१ ॥

श्रीभगवानुवाच

पद्मनाभ! महाबुद्धे वेदवेदान्तपारग !। भरद्वाजस्य वाक्येन प्राप्य वेङ्कटपर्वतम् ॥९२॥
कटाहतीर्थं त्वं पीत्वा कृतार्थोऽसि नसंशयः । तवपुत्रःकेशवाख्योविमुक्तो ब्रह्महत्यया
तस्मात्कटाहतीर्थं तु सेवनीयंप्रयत्नतः । तस्मिंस्तीर्थे महाभाग! पीत्वाजलमनुत्तमम्
पापिनोऽपिकृतार्थाःस्युःसत्यंसत्यं न संशयः । मामकंलोकमागत्यसुखीभवमहामते
इत्युक्त्वा वेङ्कटेशोऽसावन्तर्धानं गतस्ततः ॥ ९६ ॥

श्रीसूत उवाच

तस्मात्तपोधनाः सर्वे शौनकाद्या महौजसः । कटाहतीर्थमाहात्म्यमितिहाससमन्वितम्
यथाश्रुतं मया सम्यक्तथोक्तं भवतां द्विजाः !॥ ९८ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सूतशौनकसम्वादेकटाहतीर्थप्रशंसनंनामाऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥

——:०:——

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

अर्जुनतीर्थयात्रोपोद्घातवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

तीर्थानामिह सर्वेषां प्रभावः कथितस्त्वया । नदीनांपर्वतानाञ्च क्षेत्राणां सरसामपि
निर्देशात्पद्मगर्भस्य सुवर्णमुखरी नदी । नीता भुवमगस्त्येन व्याख्याता भवताऽनघ
तदुत्पत्तिप्रभावंचतीर्थौघांस्तत्समाश्रयान् । श्रोतुंसम्प्रीतिरुत्पन्नातन्नोवक्तुंत्वमर्हसि
प्रणम्य शम्भुं नन्दीशं षडास्यं व्यासमेवच । मुनिभिः प्रार्थितःसूतस्तदावक्तुंप्रचक्रमे

श्रीसूत उवाच

साधु पृष्टंमहाभागा! भवद्भिर्मङ्गलावहम् । आख्यानमेतदाम्नायश्रवणोद्भूतसिद्धिदम्
शृणुताऽवहितादिव्यांकथांकल्मषनाशिनीम् । भरद्वाजेनकथितांपार्थायकथयामि वः
अवाप्य द्रुपदात्प्राज्ञायाज्ञसेनीं पृथासुताः । धृतराष्ट्रनिर्देशेन जग्मुः करिपुरं शुभम् ॥
भीष्मेणचाऽम्बिकेयेनतत्रसम्मानितास्तदा । दुर्योधनादिभिःसार्द्धंन्यवसन्पञ्चवत्सरान्
ततोऽनुशिष्टोभीष्माद्यैर्धृतराष्ट्रो महायशाः । सर्वेषांकुलवृद्धानांवासुदेवस्यचाऽग्रतः
प्रददौ पाण्डुपुत्रेभ्यस्तत्सेवाहृष्टमानसः । सार्धराज्यं पुरवरंखाण्डवप्रस्थसञ्ज्ञिकम्
आमन्त्र्यपाण्डुतनयाधृतराष्ट्रादिकान्कुरून् । जग्मुस्तत्खाण्डवप्रस्थंपुरंकृष्णसमन्विताः
इन्द्रप्रस्थाह्वये तत्र रक्षिते विश्वकर्मणा । वसन्पुरेऽशिषत्पृथ्वीं सानुजो धर्मनन्दनः
गते कृष्णेनिजपुरं नारदस्याऽनुशासनात् । प्रतिज्ञांचक्रिरे पार्था धर्मज्ञा द्रौपदीं प्रति
यथाक्रमेण सा कृष्णा वर्षमेकैकमादरात् । एकैकस्य गृहे तिष्ठेत्प्रतिनिर्णयपूर्वकम्
यःपश्येत्तांपरगृहेस्थितांपाञ्चालनन्दिनीम् । तेनैकहायनमितं विधेयं तीर्थसेवनम् ॥
एवं कृतप्रतिज्ञास्ते पाण्डुभूपालनन्दनाः । व्यापारैर्लौकिसामान्यैर्निन्युःकालमतन्द्रिताः
अथ जानपदो विप्रो राजगेहाङ्गणे स्थितः । चुक्रोश बहुधा धेनुर्हृता मे तस्करैरिति
समाश्वास्य च तं विप्रं प्रविवेश धनञ्जयः । आयुधानि समानेतुं त्वरयाशस्त्रमन्दिरम्

तत्रापश्यत्समासीनौ पाञ्चालीधर्मनन्दनौ। जानन्नपि प्रतिज्ञां स धनुर्जग्राह सेषुधिः
स गत्वा तस्करानाजौ निहत्य नृपनन्दनः। निवर्त्य धेनुं तांतस्मैददौविप्राय सादरम्
अथ विज्ञापयामास फाल्गुनो धर्मनन्दनम्।
तीर्थयात्रा मया कार्या समयोल्लङ्घनादिति ॥ २१ ॥
अनुजस्य वचः श्रुत्वा सर्वधर्मविदाम्वरः। उवाच वचनं धीरः सादरं धर्मनन्दनः ॥

युधिष्ठिर उवाच

गवार्थं ब्राह्मणार्थञ्च यद्वदेदनृतं वचः। यदाचरेदसत्कर्म तत्सत्यं तत्समञ्जसम् ॥२३
ब्राह्मणार्थं गवार्थं च त्वया कर्मेदृशं कृतम्। तदसद्भावमाप्नोति कथं कथय सुव्रत! ॥
प्रजापालनकृत्यस्य चोरोपेक्षणशिक्षणैः। नूनं फलं भवेद्राज्ञो ब्रह्महत्याश्वमेधजम् ॥
असाध्यान्वैरिणो ज्ञात्वाऽप्यवनीशो न भद्रभाक्।
स्वदेशोपप्लवकरास्तस्करा यद्यशिक्षिताः ॥ २६
अस्माकं भूभुजांलोकजालस्यच हितंहियत्। त्वयेदृशंकृतंकर्मनाऽस्तिदोषोह्यतस्तव

श्रीसूत उवाच

धर्मपुत्रस्य वचनमाकर्ण्य रचिताञ्जलिः। पुनर्विज्ञापयामास धर्मनित्यो धनञ्जयः ॥

अर्जुन उवाच

मैवं भूपाल! वादीस्त्वं स्वप्रतिज्ञाऽतिलङ्घनम्। जानताधर्मसर्वस्वमुल्लसद्धर्ममूर्तिना
कृत्याकृत्यविदादक्षेणाऽऽत्मनाप्राक्समीरिता। नोल्लङ्घनीयासततं प्रतिज्ञापुरुषेण हि
अशक्तानां गतिः सेयं यद्बन्धुगुरुवाक्यतः।
धर्मं त्यजन्ति समयं त्यक्त्वा प्राक्स्वं समीरितम् ॥ ३१ ॥
कृपया तीर्थगमनादार्यो यदि निवर्तयेत्। हतप्रतिज्ञं मां लोकाञ्जल्पतः को निवारयेत्
ममाऽपि तीर्थयात्रायां कौतुकोत्तरलं मनः। कर्तव्यं चस्मृतंराजन्नारदादिप्रशासनम्
तत्प्रसीद महाराज यत्तीर्थगमनोद्यमे। सम्माननीयः प्रभुभिः समयो ह्यनुजीविनाम्
तथेति भ्रातृभिः सार्द्धं कृतानुमतिरर्जुनः। अग्रजं तोषयामास प्रणामप्रश्रयादिभिः ॥
यथाऽहंभीमसेनादीन्भ्रातॄनमामन्त्र्यपाण्डवः। कृतस्वस्त्ययनोभव्यैर्निर्ययौधरणीसुरैः

पौराणिका ज्यौतिषिका भिषजो धरणीसुराः ।
अनुजग्मुर्भृत्यगणाः शिल्पिनः सूतमागधाः ॥ ३७ ॥
युधिष्ठिराज्ञया तस्य भोगत्यागक्षमं धनम् ।
गृहीत्वाऽनुययुः स्निग्धाः सभ्याः कोशाधिकारिणः ॥ ३८ ॥
स राजपुत्रः प्रथमं प्राप्य भागीरथीं नदीम् । गङ्गाद्वारं प्रयागं चसिषेवेकाशिकामपि
पश्यंस्तीर्थानि जाह्नव्यास्तत्तीरोपान्तवर्त्मना ।
आससाद समुत्तुङ्गकल्लोलं दक्षिणोदधिम् ॥ ४० ॥
महानदीं महापुण्यां प्रसिद्धं पुरुषोत्तमम् । सिंहाचलंचसम्वीक्ष्यप्राप्तवान्कृतकृत्यताम्
ततो ददर्श कौन्तेयः पुण्यांगोदावरींनदीम् । समस्तदुरितव्रातशातनोत्तीर्णगौरवाम्
कृताभिषेकस्तत्तोयैर्विधिवत्पाण्डुनन्दनः। प्रमोदं विविधैर्दानैरकरोद्भूसुवर्णकैः ॥४३
नदीं मलापहाख्यां चद्दृष्ट्वामोदंथयौशुभम् । ततःसमाससादाऽसौकृष्णवेणींसरिद्वराम्
शिवस्य नियतावासं चतुर्द्वारसमन्वितम् । नानातीर्थगणाकीर्णं श्रीपर्वतमवैक्षत ॥
नदीं पिनाकिनीं तीर्त्वागत्वादेवर्षिसेवितम् । नारायणप्रियावासमपश्यद्वेङ्कटाचलम्
शृङ्गेऽस्य भूभृतस्तुङ्गे स्थितं लोकैकनायकम् । अपूजयद्धरिंभक्त्याप्रसिद्धंशुभसिद्धये
अवरुह्य वेङ्कटमहाद्रिशृङ्गतः स ददर्श सिद्धमुनिसङ्घसेविताम् ।
कलशोद्भवेन मुनिना समाहृतां तटिनीं सुवर्णमुखरीसमाह्वयाम् ॥ ४८ ॥
इति श्रीस्कन्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्येऽर्जुनतीर्थयात्रागमन-
वर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

सुवर्णमुखरीवर्णनेऽर्जुनस्यतत्तीरस्थकालहस्तीश्वरादिसेवाप्राप्तिवर्णनम्

सूत उवाच

तथा सर्वाणि तीर्थानि समालोक्यागतस्य च । मुदं प्रगुणयाञ्चक्रेसापार्थस्यमहापगा
यस्यास्तटनिकुञ्जेषुमोदन्तेवनिताःसुखाः। सिद्धाःसंसेविताबातैःशीकरासारशीतलैः
या समुद्यतहस्तेव गङ्गामाकाशवाहिनीम् । आलिङ्गितुं समुत्तुङ्गैः कल्लोलैरभ्रसङ्गिभिः
धूमैराहुतिसम्भूतैस्तरुशाखोपलम्भिभिः । वल्कलैश्च विराजन्ते यत्तटाश्रमभूमयः ॥४॥
मुनीन्द्रैः सुरवर्यैश्चस्थापितानि समन्ततः । यत्तटद्वितये भान्ति दिव्यलिङ्गानिशूलिनः
यदीयसैकतावासविश्रान्ता मानसं सरः । न स्मरन्ति निजावासं मरालाविहगोत्तमाः
शमितावग्रहातङ्कैः कुल्यामुखविनिर्गतैः । पुष्णातितोयैःसस्यानिलोकरक्षाक्षमाणिया
चक्रवाककुचोत्तुङ्गवीचिवल्लीविभूषिता । आवर्तनाभिविलसत्सैकतश्रोणिमण्डला ॥८
प्रफुल्लपद्मवदना चलन्मीनयुगेक्षणा । विलसत्फेनवसना हंसयानमनोहरा ॥ ९ ॥
जलपक्षिरवालापा नयनानन्दकारिणी । अपूर्वकामिनीरूपा या विभात्यम्बुधिप्रिया ॥
रोधस्यन्तरवाहिन्या नद्याः प्राच्यां धनञ्जयः । ददर्श शैलमुत्तुङ्गं कालहस्तिसमाह्वयम्
उदग्रशिखराभोगोल्लिखिताकाशमण्डलम् । सप्तपातालमूलाधोरूढमूलोपलाञ्चितम् ॥
स्नात्वातस्यांमहानद्यांतस्मिञ्छैलेसुरार्चितम् । अपश्यदर्जुनोदेवंकालहस्तीशनामकम्
सम्पूज्य च महादेवं नगेन्द्रतनयासखम् । मनसा भक्तियुक्तेनकृतार्थत्वमुपेयिवान् ॥१४
ततो महागिरौ तस्मिन्नद्भुतैकनिकेतने । चचाराऽभूतपूर्वाणां विशेषाणां दिदृक्षया ॥
सिद्धानालोकयामास वसतो गिरिसानुषु । गायतो देवदेवस्य चरित्राण्यबलायुतान्

अप्सरोललनाजुष्टान्पुष्पासवमदाकुलान् ।
निकुञ्जेषु समासीनान्गन्धर्वानैक्षतादरान् ॥ १७ ॥

विविक्तेषु प्रदेशेषु शिवध्यानपरायणान् । अपश्यद्योगिनो दिव्यानादरानन्दशालिनः ॥

प्रशान्तान्याश्रमपदान्यवैक्षत समन्ततः । बलिनीवारविलसद्द्वारभूमीश्च पाण्डवः ॥

निराहारान्वायुभुजः पर्णादानातपाशनान् ।

शान्तानालोकयामास मुनीन्नियमितेन्द्रियान् ॥ २० ॥

मुदं वितेनिरे तस्य नेत्रयोः कमलाकराः । फुल्लसौगन्धिकामोदसम्वासितदिगन्तरा

मृगयासम्भृतश्रियश्चरतोऽधिज्यकार्मुकान् ॥ २२ ॥

ददर्शान्वेषितमृगान्किरातान्वनितायुतान् । ततो दक्षिणदिग्भागे चरन्नद्रेर्मनोहरे ॥

पुण्यमाश्रममद्राक्षीद्भरद्वाजस्य कौरवः । कदलीनारिकेलाम्रकोलचम्पकचन्दनैः ॥२४ ॥

तक्कोलाशोकहिन्तालतालकेतकिदाडिमैः । जम्बूकदम्बकतकखदिरार्जुनपाटलैः ॥२५ ॥

नागपुन्नागसरलदेवदारुकरञ्जकैः । लवङ्गलुङ्गलवलीप्रियङ्गूतिलकैरपि ॥ २६ ॥

बिभीतश्रीफलाश्वत्थमधूकप्लक्षकेसरैः । पूगजम्बीरनारङ्गनिम्बामलककौशिकैः ॥२७

अन्यैश्च फलपुष्पाढ्यैः शोभितं धरणीरुहैः ।

वासन्तीकुन्दजात्यादिलताभिः परिवेष्टितम् ॥ २८ ॥

अपूर्वसौरभाकृष्टभ्रमरीभिः समन्ततः । चक्रवाकबककौञ्चहंसकारण्डवाश्रयैः ॥ २६॥

सौगन्धिकोत्पलाम्भोजकैरवौघविराजितैः । सरोभिरमृतस्यन्दिमधुरस्फारवारिभिः

समापादितलक्ष्मीकं कौतुकैकनिकेतनम् । सिंहदन्तावलव्याघ्रतरक्षुरुरुरङ्कुभिः ॥

मृगैरन्यैः समाकीर्णमन्योऽन्यहितकारिभिः । जितचैत्ररथोद्यानमधरीकृतनन्दनम् ॥

अतिवाङ्मनसोदारं परमानन्दकारणम् । शिवागमानां दिव्यानामर्थजातमनुत्तमम् ॥

प्रकाशयन्तिशावानांयत्रमञ्जुगिरः शुकाः । यस्मिन्हुताशनोदारधूमश्यामलितंनभः

अकालजलदभ्रान्तिमातनोति शिखण्डिनाम् ।

यस्मिन्विहारश्रान्तानां सिंहानां स्वेच्छयागताः ॥ ३५ ॥

निर्वापयन्ति गात्राणि करिणः करशीकरैः । तदाश्रमपदंपश्यन्विस्मयाक्रान्तमानसः

प्रभावं पाण्डुतनयः प्रशशंस तपस्विनाम् । निवार्य तत्र तत्रैव सकलाननुजीविनः ॥

मित्रैर्विप्रवरैः सार्धं प्रविवेश तमाश्रमम् । अग्रे ददर्श कौन्तेयः स्फुरत्पावकतेजसम्

भरद्वाजं मुनिवरैरनेकैः परिवारितम् । भस्मानुलिप्तसर्वाङ्गं मृगचर्मोत्तरीयकम् ॥३६॥

नववारिदसम्वीतं कैलासमिव भास्वरम् ।
जटाभिर्लम्बमानाभिर्भास्वन्तं स्वर्णकान्तिभिः ॥ ४० ॥
स्थिरविद्युल्लताकीर्णमिव शारदनीरदम् । श्रुतिस्मृतिपुराणार्थैरेकीभूय समागतैः ॥
अङ्गीकृतमिवाऽऽकारं दिव्यज्ञानशुभास्पदम् ।
धृतिक्षान्तिदयातुष्टिशान्तिभिर्नित्यसेवितम् ॥ ४२ ॥
प्रियाभिरिव रक्ताभिरखण्डब्रह्मवर्चसम् । उपगम्य शनैः पार्थस्तत्पादाम्बुजयोःपुरः ॥
चक्रे प्रणामं साष्टाङ्गं समालिङ्गितभूतलम् ॥ ४४ ॥
तमागतं पृथापुत्रमुत्थाप्य मुनिपुङ्गवः । आशीर्भिरैश्रयाञ्चक्रे प्रहर्षोत्फुल्लमानसः ॥४५॥
सम्पूज्यचयथान्यायंतमर्घ्याद्यैःप्रियातिथिम् । विनिर्दिष्टासनासीनंतमपृच्छदनामयम्
सम्माननमवाप्याऽस्मान्मुनेःपाण्डवमध्यमः । प्रियैर्वाक्यैर्मुनिपतेरकरोन्मनसो मुदम्
सस्माराऽथ भरद्वाजः स्वर्धेनुं कामदोहिनीम् ।
सा वितेनेऽतिमहतीं भक्ष्यभोज्यादिकल्पनाम् ॥ ४८ ॥
भुक्त्वा पार्थः सानुचरस्तमुपास्यतपोनिधिम् । दिनशेषंकथालापकौतुकेनात्यऽवाहयत्
ततःसायन्तनींसंध्यामुपास्यहुतपावकः । विप्रैरमात्यैः सहितो ययौतस्यकुटीगृहान्
तत्रासीनो मुनिपतेराशीर्भिरभिनन्दितः । आनन्यमानो मुमुदे तन्नदीशीतलानिलैः ॥
सम्प्रापिता केन भुवः प्रभूता कस्मान्महीध्राद्धिकप्रभावा ।
इति प्रभावं परिपृच्छ्य नद्याः श्रोतुं मुनीन्द्रान्मतिरस्य जज्ञे ॥ ५२ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशातिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां भरद्वाजाश्रमवर्णनं
नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

सुवर्णमुखरीप्रभावशुश्रूषया भरद्वाजम्प्रत्यर्जुनप्रश्नवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

कृतसायन्तनविधिं हुताशनसमद्युतिम् । सुखासीनं मुनिपतिं प्रणम्य भरतर्षभः ॥१

तदीयशीतलामोदसुधापूरानुमोदितः । गम्भीरं प्रश्रयोपेतमिदम्वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

अर्जुन उवाच

मुनिपुङ्गव! लोकेऽस्मिन्धन्य एकोऽहमेव हि । पुत्राविशेषं भवता यदेवं सम्यगादृतः

भवदादरसञ्जातकौतुकं मम मानसम् । भवद्वाक्यामृतं दिव्यं पातुं त्वरयतीव माम्

कस्माच्छैलादियंजाताकेनानीतामहानदी । किम्पुण्यंस्नानदानाद्यैःकृतैस्तत्रोपलभ्यते

अस्याःप्रभावं प्रभवं प्रह्वस्य मम सन्मुखे । वक्तुमर्हसि कार्यो हि भक्तानुग्रह एव ते॥

अर्जुनस्यवचःश्रुत्वाभरद्वाजोद्विजोत्तमः । तदाननं समालोक्यवाक्यं वाक्यविदब्रवीत्

भरद्वाज उवाच

त्वमर्जुन! महावाहो कौरवान्वयपावनः । विशेषान्मम मान्योऽसि धर्मपुत्रानुजोयतः

अनेके भूमिपा दृष्टा न ते त्वमिवफाल्गुन । लीलार्जवदयौदार्यधैर्यगाम्भीर्यशालिनः

कुलं विद्या धनञ्चैव वलिनां मदकारणम् । भवादृशानांभव्यानां तानि प्रश्रयकारणम्

प्राज्येषु राज्यभोगेषु विद्यमानेषुकौरव । ऋतेभवन्तंकोवाऽन्यो नोपैति विकृतेर्वशम्

परवानस्मि कौन्तेय! गुणैर्लोकोत्तरैस्तव । किमस्त्यकथनीयन्तेकौतुकोपेतमानस!

शृणु राजन्कथां दिव्यां मया मुनिमुखाच्छ्रुताम् ।

यां श्रुत्वा पातकातङ्कान्मुच्यन्ते सर्वजन्तवः ॥ १३ ॥

पूर्वं दाक्षायणी देवीजनकेनाऽवमानिता । त्यक्त्वा तनुन्तां नीहारगिरेरभवदात्मजा

सप्तर्षिभिरुपागम्य प्रार्थितो धरणीधरः । मृत्युञ्जयाय स्वां पुत्रीं विवाहे दातुमुद्यतः

वृषभाङ्को जगत्स्वामीविवोढुंसर्वमङ्गलाम् । प्राप्तो हिमवदावासमोषधीप्रस्थनामकम्

तच्छासनात्समाजग्मुः स्थावराणि चराणि च।
भूतानि भूतनाथस्य कल्याणमभिनन्दितुम् ॥ १७ ॥

तद्भूरिभारसम्भग्ना भूमिरुत्तरसंश्रया। निम्नतामाययौ तावद्यावत्पातालमास्थिता
निर्भारलाघवादस्माद्भृशं दक्षिणगामिनी। ऊर्ध्वंगता च तं दृष्ट्वा सर्वेषामभवद्भयम्
ज्ञात्वा तां विकृतिं भूमेर्द्दृष्ट्वाऽगस्त्यंमहेश्वरः। इत एहिमहाप्राज्ञेत्युक्त्वावचनमब्रवीत्
आगतेषु समस्तेषु भूतेष्वत्र वसुन्धरा। तद्भारेण समाक्रान्ता विकृतिं समुपागता ॥
तद्भुवः साम्यकरणे त्वमर्हसि महामते। ऋते त्वामत्र हि त्वत्तः परेणैतत्कथम्भवेत्
मत्तेजःसम्भवो हि त्वं लोकसंरक्षणोद्यतः। तस्मान्मद्वचनाद्वत्स भुवमेतां समीकुरु
मत्पाणिग्रहणाल्लोककौतुकायत्तबुद्धिषु। आगतेषु समस्तेषु स्थातव्यम्भविताऽपिच
त्वं न तिष्ठसि चेदत्र नकश्चिद्विकृतिम्भुवः। अपनेतुं हि शक्नोति तद्गन्तव्यंत्वयाऽनघ
इमांगिरिसुतापाणिग्रहकल्याणभासुराम्। मूर्तिंप्रदर्शयिष्यामि यत्र तिष्ठसि तत्र ते
इत्युक्तवातं परिष्वज्यविससर्जमहेश्वरः। तथेतितंप्रणम्याऽसौययौयाम्यांदिशंमुनिः

विन्ध्याद्रिं समतिक्रम्य दक्षिणामागते दिशम्।
अगस्त्ये मुनिशार्दूले मही साम्यमुपाययौ ॥ २८ ॥

भुवोऽपनीय विकृतिं स्थितं कलशजं मुनिम्। तुष्टुवुर्हर्षतरलाः सुरगन्धर्वकिन्नराः ॥
स ददर्श ततो गत्वा कञ्चिच्छैलं समुन्नतम्। विततैर्धरणीम्पादैर्धृत्वासंस्थितमग्रतः
महौषधीनां रत्नानामशेषाणां स्वयम्भुवा। अखण्डतेजोदीप्तानांविनिर्मितमिवाकरम्
समुन्नतैर्यः शिखरैर्निपतद्व्योमभूतले। उदारधारासम्पन्नैर्दधातीव निरन्तरम् ॥३२
शनैरारुह्य तं शैलमगस्त्यो मुनिपुङ्गवः। निवासाय मतिं चक्रे रम्ये तच्छिखरस्थले
तस्यामृतोपमेयस्य पद्मोत्पलकुलश्रियः। नानाद्रुमपरीतस्य कासारस्योत्तरे तटे ॥

मनोहरे महीभागे विधायाऽऽश्रममुत्तमम्।
आराध्य पितृदेवर्षीन्विधिवद्वास्तुदेवताम् ॥ ३५ ॥

उवास सुचिरन्तत्र मुनिसङ्घसमन्वितः। देवतासिद्धगन्धर्वाप्सरोजुष्टमहीध्रे ॥ ३६॥
तपः समावेशितचित्तवृत्तौ तपोवने तिष्ठति कुम्भजाते।

प्रशस्तसौभाग्य समन्वितोऽद्रिरगस्त्यशैलाह्वयमाससाद ॥ ३७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायामर्जुनभरद्वाजसम्वादे शङ्करविवाहागस्त्यदक्षिणदिग्गमनवर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

नद्युत्पादनायाऽगस्त्यम्प्रत्याकाशवाण्युक्तिवर्णनम्

भरद्वाज उवाच

स कदाचिन्मुनिवरः कृतपौर्वाह्णिकक्रियः । विवेश देवतागारं समाराधयितुं शिवम्
अदृश्यरूपा वाग्देवी तत्राश्राऽवि महात्मना । तेनाद्भुतोपपन्नेन व्यक्तवर्णसमुज्ज्वला ॥
आकाशवाण्युवाचैनमगस्त्यं जपताम्वरम् ।
नदीहीनो ह्ययं देशः प्रसिद्धोऽपि न शोभते ॥ ३ ॥
ज्ञानविज्ञानविमुखः साकार इव भूसुरः । दीक्षेव दक्षिणाहीना ज्योत्स्नाहीनेवशर्वरी
न विभाति नदीहीना पृथ्वीयं भूसुरोत्तम । प्रवर्तय नदींकाञ्चिल्लोकानांहितकाम्यया
अगाधदुरितोद्भूतभीतिमोचनशालिनीम् । हितमेतत्सुरौघानामेतन्मुनिवरार्थितम् ॥
भद्रमेतन्मनुष्याणामेतदाचर सुव्रत । देवानामृषिवर्याणां भूजनानां हितावहाम् ॥
पापपङ्कप्रशमनीं प्रवर्तय महानदीम् ॥ ८ ॥

श्रीभरद्वाज उवाच

तदाकर्ण्य वचो विप्रः क्षणं चिन्तापरायणः । समाप्य देवतापूजांवहिर्वेद्यामुपाविशत्
आनाययामास तदा तदाश्रमगतान्मुनीन् । तेषामकथयच्चाऽसौ दिव्यवाणीरितं वचः
तदद्भुतमुपश्रुत्य मुनयो हृष्टमानसाः ॥ ११ ॥
अभिवन्द्य मुनिश्रेष्ठं मैत्रावरुणिमब्रुवन् ॥ १२ ॥

मुनय ऊचुः

आश्चर्याणां महाश्चर्यं मङ्गलानां च मङ्गलम् । तवैव शोभते दिव्यं त्वच्चरित्रं कृपानिधे
तव हुङ्कारमात्रेण भ्रष्टो देवाधिराज्यतः । नहुषः कीटतां प्राप ततश्चित्रं न विद्यते
समावृतधराचक्रः कल्लोलाताडिताम्बरः । किन्वतो विद्यतेचित्रं यदब्धिश्चुलुकीकृतः
सूर्यमार्गनिरोधार्थप्रवृत्तोविन्ध्यभूधरः । त्वयाप्रशान्तिंगमितः किन्वतो विद्यते परम्

तवाऽद्भुतानि कर्माणि कः स्तोतुं प्रभवेद्भुवि ।
मन्महाभाग्ययोगात्त्वं प्राप्तोऽसीति शरीरिताम् ॥ १७ ॥

वयं कृतार्थाः सञ्जातास्त्रैलोक्येयन्महामुने !। निवसामोऽत्रभवतासनाथाह्याश्रमस्थले
षण्यों हि याम्यतोदूरेविषयोऽयंद्विजोत्तम । समस्तवस्तुपूर्णोऽपि नदीहीनोनराजते
किमलब्धनदीस्नानेनाऽमुनाहतजन्मना । अनदीके जनपदे वासादजननं वरम् ॥ २० ॥
परिपाकस्तु भाग्यानामस्माकंसमुपस्थितः । यदादिष्टोऽसिविबुधैःप्रवर्तयमहानदीम्
प्रवर्तितायांदेशेऽस्मिन्महानद्यांतवाऽनघ !। कदानुखलुयास्याम ःकृतस्नानाःकृतार्थताम्
किं वितर्केण बहुना प्रयत्नः क्रियतां ध्रुवम् । समानेतुंजगद्वन्द्यांशरण्यांसरिदुत्तमाम्

श्रीभरद्वाज उवाच

स तेषां वचनं हृद्यंमानयित्वामहाद्विजः । समानेष्यामिसरितमितिचक्रेविनिश्चयम्
मुनीश्वरैरनुज्ञातस्तानभ्यर्च्य सुरानपि । विशेषपूजां विधिवद्विधायपुरविद्विषः ॥
अङ्गीकृत्य व्रतं गाढं बहुलक्लेशदुः सहम् । अनन्यसुलभं यत्नात्स चकार महत्तपः ॥
घोरेषु घर्मदिवसेष्वन्तरस्थोहविर्भुजाम् । चतुर्णां सवितृन्यस्तदृष्टिर्नापययौ क्रमम्
वार्षिकेषु दिनेषूग्रवायुसम्पातदुःसहैः । आसारैस्ताड्यमानोऽपि नोद्वेगमगमद्धृदि
हेमन्ते समये तिष्ठन्कण्ठदघ्नेषु वारिषु । जपध्यानपरोभूत्वानकिञ्चिद्विकृतिं ययौ ॥
ततः समीहितार्थस्य विलम्बमवलोक्यसः । पुनर्गाढतरां निष्ठां प्रपेदेलोकभीषणाम्
निगृह्य मानसीं वृत्तिंनिराहारोजितेन्द्रियः । अविज्ञातबहिर्वृत्तिस्तस्थौपाषाणवत्तदा
एवं तपस्यतस्तस्य सर्वाङ्गेषु हुताशनः । अभ्रंलिहो ज्वलज्ज्योतिर्निश्चक्रामभयङ्करः
ततोऽद्भुतशिखाजालैरावृताः सर्वतो दिशः । समुदग्रभयोद्विग्ना जनौघाः परिचुक्रुशुः

तदा तथाविधं घोरं जगत्संक्षोभमागतम् । देवाविज्ञापयामासुर्नमस्कृत्याऽब्जजन्मने

तानाश्वास्य ततो ब्रह्मा सिद्धगन्धर्व सेवितः ।

प्रादुरासीत्कुम्भभुवः पुरोभागे तपस्यतः ॥ ३५ ॥

तमागतं समालोक्य ब्रह्माणंपरमंद्विजः । प्रणम्यविविधैःस्तोत्रैस्तोषयामासतन्मनाः

ततस्तं विनयानम्रमगस्त्यं वीक्ष्य पद्मभूः । प्रसादसुमुखो भूत्वा पूतां गिरमुपाददे ॥

ब्रह्मोवाच

परितुष्टोऽस्मि तपसा दुश्चरेण तवाऽनघ !। वृणीष्वयद्यदिष्टंतेतत्तद्दास्यामिसुव्रत!

अगस्त्य उवाच

तव प्रसादात्सकलमुपपन्नं मम प्रभो !। सम्प्रयच्छसि चेत्कामं याचेनिःशङ्कया धिया

नदीहीनमिमं देशं दृष्ट्वा खिद्यति मे मनः । अर्थाववोधरहितं श्रुतिपाठमिवाऽधिकम्

उर्वीं पावयितुं दक्षां रक्षितुं च महानदीम् । प्रसादं कुरु देवेश ममेष्टमिदमेव हि ॥४१

श्रीभरद्वाज उवाच

अगस्त्यस्यवचः श्रुत्वाभूयादेवमितिब्रुवन् । सस्मार मनसाब्रह्मासुरवर्त्माश्रयांनदीम्

अथोपेत्य वियद्गङ्गा पुरस्तात्परमेष्ठिनः । अतिष्ठन्मुकुटन्यस्तप्रशस्ताञ्जलिभासुरा ॥

स्वशासनात्समायातां विनयानतमस्तकाम् । तां सर्वजगतांधात्रीमिदंवचनमब्रवीत्

ब्रह्मोवाच

गङ्गेमयाऽनुशास्यासिकार्ये लोकोपकारके । तवापिलोकरक्षायांममैवनियतास्थितिः

देशे नदीविहीनेऽत्र प्रवर्तयितुमापगाम् । हितार्थं सर्वलोकानां कुम्भजन्मा समीहते

तस्मात्त्वमवतीर्योर्वीं स्वांशेनैकेन भूजनान् । पुनीहि गच्छ वसुधामेतद्दर्शितवर्त्मना

भूलोके सम्प्रवृत्ते तु प्रवाहेसिद्धिकाङ्क्षिणः । सेविष्यन्तेसुरवरामुनिवर्याश्चसन्ततम्

नदीषूत्तमतांयाहि त्राहि त्वत्संश्रयाञ्जनान् । कुरुप्रियमगस्त्यस्यगच्छभद्रेयथासुखम्

भरद्वाज उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे ब्रह्मा तया नद्या च तेन च । प्रणामपूजनस्तोत्रैर्विशेषैरभिनन्दितः ॥

अथ गङ्गा मुनिपतेः पुरस्तात्स्वांशसम्भवाम् ।

दिव्यतेजोमयीं मूर्तिं दर्शयित्वा वचोऽब्रवीत् ॥ ५१ ॥

गङ्गोवाच

मदीयांशोऽयमवनीं सम्प्राप्य मुनिवल्लभ !। पूरयिष्यति तेऽभीष्टं नदीरूपं समाश्रितः

भरद्वाज उवाच

इत्युक्तवा सिद्धवाहिन्यां गतायां तत्प्रयुक्तया
गन्तव्यं वर्त्मना केनेत्युक्तो मुनिरुवाच ताम् ॥ ५३ ॥

अगस्त्य उवाच

गच्छन्पुरस्तात्कल्याणि ! त्वदीयगमनोचितम् । अहंप्रदर्शयिष्यामिमार्गंत्वंमामनुव्रज
इत्युक्तामुनिना तेन सम्प्रहृष्टा तवाऽनघ । यदिष्टं तत्करिष्येऽहमिति प्रोवाच साशुभा

अथ मुनिरवतार्य तां नगेन्द्राद्धृततटिनीतनुमभ्रसङ्गिशृङ्गात् ।
मुदिततरमना ययौ पुरस्तात्तदभिमतां पदवीं प्रदर्शयन्सः ॥ ५६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीसुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां सुवर्णमुखर्याविर्भाववर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

सुवर्णमुखरीम्प्रति शक्रादिस्तुतिवर्णनम्

भरद्वाज उवाच

तदादिव्यविमानस्थाःशक्रमुख्यादिवौकसः । अगस्त्यमनुयान्तींतामनुजग्मुर्महापगाम्
नवावतारां तां दिव्यां सर्वे च मुनिपुङ्गवाः । कृताञ्जलिपुटाःस्तोत्रैरनुयाताःसिषेविरे
सिद्धचारणगन्धर्वाः सम्भूताश्च सहस्रशः । तां नदीं तं मुनीन्द्रंचप्रशशंसुःशुभैःस्तवैः
सुधोपमानममलं दिष्ट्या लब्धमिदं जलम् । इत्यौत्सुक्यरसायत्ता ननृतुर्भुवि स्त्रीजनाः

तदा निदेशाद्देवस्य पद्मयोनेः समीरणः। शृण्वतां सर्वदेवानामिदं वचनमब्रवीत् ॥

वायुरुवाच

सुवर्णमिव लोकानां भागधेयादियं नदी। नीता भुवमगस्त्येन मुखरीकृतदिङ्मुखा

तस्माद्यास्यति विख्यातिं सर्वलोकाभिनन्दिताम्।

सुवर्णमुखरीनाम्ना धाम्ना कैवल्यसम्पदा ॥ ७ ॥

एषा सुवर्णमुखरी सरित्सु सकलास्वपि। विशिष्टा सेवनीया च ब्रह्मणोवचनंत्विदम्

भरद्वाज उवाच

श्रुत्वेत्थं पवनेनोक्तं वचनंकुम्भसम्भवः। तुतोषविस्मयाक्रान्तःस्वान्तःपुलकिताङ्गकः

एवमेषा दिव्यनदी स्नानपानादिकल्पनैः। सौख्यावहा मनुष्याणां प्रतिष्ठामगमद्भुवि

आज्ञया पद्मगर्भस्य तटिन्याकाशवाहिनी। सुवर्णमुखरीनाम्ना पुनात्यात्मैकसंश्रयान्

वह्निगिरीन्द्रान्वनमण्डलञ्च देशाननेकान्सरिदुत्तमेयम्।

क्रमादतिक्रम्य निषेव्यमाणा महानदीभिर्गिरिसम्भवाभिः ॥ १२ ॥

रोगाहतानामधिकातुराणामनामयैकप्रतिपादकानि।

अन्तर्वहिःसम्भृतभूरितापनिवारणानि प्रियकारणानि ॥ १३ ॥

विहारलोलद्विरदप्रकाण्डशुण्डामहाघातरयोत्थितेन।

पुष्पोपहारं पृषतोत्करेण हर्षाद्ददातीव दिवाकरस्य ॥ १४ ॥

सौगन्धिकाम्भोरुहकैरवाणां सौरभ्यसम्वासितदिङ्मुखानाम्।

द्विरेफभाग्यैकनिकेतनानामाधारभूतान्प्रतिनिर्मलानि ॥ १५ ॥

लीलावगाहोत्सुकनाकनारीसीमन्तसिन्दूररजोऽरुणानि।

तत्केशपाशच्युतपारिजातप्रसूनगन्धैरधिवासितानि ॥ १६ ॥

सा बिभ्रती सम्भृतमङ्गलानि स्वादून्यपङ्कान्यतिनिर्मलानि।

सुधोपमानानि सुरेन्द्रसूनोः पयांसि पापप्रतिघातुकानि ॥ १७ ॥

अगस्त्यशैलात्समवाप्तजन्मा नीता भुवं कुम्भसमुद्भवेन ॥

प्रशस्ततीर्थौघविराजमाना समाययौ दक्षिणवारिराशिम् ॥ १८ ॥

शीकराक्षतविन्यासै रत्नदीपार्पणैरपि । प्रत्युद्ययुस्तामम्भोधेर्वीचयोऽभिमुखागताः ॥
तरङ्गहस्तैरालिङ्ग्य सम्भाव्यैनां समागताम् । चकार सरितां नाथःप्रियमाघोषभाषणैः
प्राप्तायामनुकूलायां तदा तस्यामपांनिधेः । प्रहृष्टेन तरङ्गेण जीवनं ववृधेतराम् ॥२१॥
इत्थं संसृज्यसरितमगस्त्यस्तामुदन्वता । स्तुत्वाययौसमामन्त्र्यकृतकृत्योयदृच्छया

अर्जुन उवाच

त्वयैव कथितो ब्रह्मन्महानद्याः समुद्भवः । अस्याः प्रभावं भगवन्निदानीं श्रोतुमुत्सहे

भरद्वाज उवाच

अहोनिबर्हणंसर्वश्रेयसामेककारणम् । शृणुमाहात्म्यमस्यास्तेकथयिष्यामिपाण्डव !

पाश्चात्त्यं जन्म सम्प्राप्य ज्ञानिनां कर्मणः क्षये ।
सुवर्णमुखरीस्नानं सिद्ध्येद्ब्रह्मत्वकारणम् ॥ २५ ॥

एतां सुवर्णमुखरीं योजनानां शतैरपि । स्मृत्वा मनुष्यः पापेभ्यो मुच्यतेनात्रसंशयः
निःक्षिप्तमस्थि जन्तूनां सुवर्णमुखरीजले । सोपानतां समायातिब्रह्मलोकाधिरोहणे
स्मरन्तः स्वर्णमुखरींयत्र कुत्राऽपिमानवाः । तोयान्तरेषुस्नात्वापिलभन्तेफलमुत्तमम्
तावदेवाऽभिभूयन्ते नराः पातककोटिभिः । सुवर्णमुखरीस्नानंयावन्नोलभ्यते शुभम्
दिव्यान्तरिक्षभौमानितीर्थानि निजसिद्धये । स्मरन्त्यहरहः प्रातः सुवर्णमुखरींनदीम्
अगस्त्याचलसम्भूता दक्षिणोदधिगामिनी । पापानिस्वर्णमुखरीस्मरणादेवनाशयेत्
सुवर्णमुखरीस्नानलोलुपेनाऽन्तरात्मना । वाञ्छन्ति मर्त्यतामेव देवाः शक्रपुरोगमाः ॥
सुवर्णमुखरीतोयपुष्टसस्यान्नभोजिनः । न लिप्यन्ते महापापैर्दुर्भोजनशतोद्भवैः ॥३३॥
अपि निष्कमितं पीतं सुवर्णमुखरीजलम् । नाशयेदद्रितुल्यानि ह्याशुपापानिदेहिनाम्
प्राप्याऽपि मानुषं जन्म सुवर्णमुखरीजले । ये वा स्नानं न कुर्वन्तितेषांजन्मनिरर्थकम्
सुवर्णमुखरीस्नानं यदेकं विधिना कृतम् । जाह्नवीस्नानकोटीनां समं भवति पर्वसु ॥
गोविन्द इव देवेषु नक्षत्रेष्विव चन्द्रमाः । नरेष्विव महीपालो भूरुहेष्विव कल्पकः
महाभूतेष्विव वियन्मायेवाऽखिलशक्तिषु । गायत्रीव च मन्त्रेषु वज्रं देवायुधेष्विव ॥
तत्त्वेष्विवाऽऽत्मनस्तत्त्वं रुद्राध्यायो यजुष्ष्विव ।

अनन्त इव नागेषु हिमाचल इवाऽद्रिषु ॥ ३६ ॥
पोत्रिक्षेत्रमिव क्षेत्रेष्विन्द्रियेष्विव मानसम् । नदीष्वपि चसर्वासुसुवर्णमुखरीवरा
नित्यं स्मरेन्नमस्कुर्यात्कीर्तयेन्मनसाऽर्चयेत् ।
शुद्धिक्षेमशिवापेक्षी सुवर्णमुखरीं शुभाम् ॥ ४१ ॥
अगस्त्याचलसम्भूतां दक्षिणोदधिगामिनीम् ।
समस्तपापहन्त्रींत्वांसुवर्णमुखरीं श्रये ॥ ४२ ॥
महापातकविप्लुष्टंगात्रं ममतपोदकैः । क्षालयामि जगद्धात्रि! श्रेयसा योजयस्वमाम्
इति सूक्तद्वयं सम्यगुच्चार्य नियतो नरः । सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा शुद्धः प्रमोदते ॥
ब्रह्मणा निर्मिता पूर्वमगस्त्येन समाहृता । स्वयं मन्दाकिनी मूर्ता सुवर्णमुखरी वरा
एवंप्रभावादिव्येयंकीर्तनीयाशुभार्थिभिः । मनसाभक्तियुक्तेनस्नातव्याशुभकाङ्क्षिभिः
सोमसूर्योपरागेषु स्नानदानादिकं कृतम् । स्यादमेयफलम्पार्थ! सुवर्णमुखरीतटे ॥४७
सङ्क्रान्तावयने पुण्येव्यतीपातेऽथ वासरे । सुवर्णमुखरीस्नानं कुलकोटिं समुद्धरेत्
जन्मर्क्षे जन्मदिवसे सुवर्णमुखरीजले ।
स्नात्वा विधिवदाप्नोति क्षेमारोग्यसुखश्रियः ॥ ४६ ॥
दुःस्वप्नविघ्नजं भूतग्रहदुःस्थानजंतथा । सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा तरति किल्बिषम्
सुवर्णमुखरीतीरे गोपादप्रमितां भुवम् । दत्त्वासर्वमहीदानाद्यत्फलन्तदवाप्नुयात् ॥
धेनुं सवस्त्रालङ्कारां सुवर्णमुखरीतटे । दत्त्वा विप्राय विधिवद्याति ब्रह्म सनातनम्
पुण्यकालेषु दानानि विधेयान्यखिलान्यपि । इहाऽमुत्रफलप्राप्त्यै सुवर्णमुखरीतटे
जपो होमस्तपो दानं पितृकर्म सुरार्चनम् । कृतम्भवेच्छतगुणं सुवर्णमुखरीतटे ॥
अन्यत्ते कथयिष्यामि विधेयंव्रतमुत्तमम् । सुवर्णमुखरीतीरे प्रतिवर्षं सुखार्थिभिः ॥
मेघकाले रविकरैस्तिरोधानमुपागतः । यदोदेति मुनिः श्रीमान्मित्रावरुणनन्दनः ॥
तस्मिन्दिने येनियताःस्नानमस्याम्प्रकुर्वते । तैः कल्पञ्च सुरावासेस्थीयतेकुरुनन्दन
तदाऽगस्त्यस्य यद्रूपं सुवर्णेन विनिर्मितम् ।
विधिना ददते पार्थ! ते यान्ति ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ५८ ॥

अर्जुन उवाच

विधिना केन कर्तव्यंव्रतमेतन्महामुने! । तन्ममाऽऽचक्ष्वसकलं जिज्ञासोस्तु महात्मनः

भरद्वाज उवाच

अगस्त्यस्योदयदिनं ज्ञात्वा नियतमानसः । स्वशक्त्याकारयेद्रूपन्तस्य हेम्ना महामुनेः
सुवर्णभास्वरच्छायं जटाबन्धमनोहरम् । दधानं करपद्माभ्यामक्षमालां कमण्डलुम् ॥
वसानं मृदुलं वल्कं मृगचर्मोत्तरीयकम् । सौम्यं भस्माङ्करुचिरं रुद्राक्षकृतभूषणम्
एवं विधाय तद्रूपं स्नात्वा नियतमानसः । आचार्यं गन्धपुष्पाद्यैरलङ्कृत्ययथाविधि

शालेयतण्डुलानां तामाढकस्योपरि स्थिताम् ।
वस्त्रद्वयसमायुक्तां प्रतिमां प्रतिपूजयेत् ॥ ६४ ॥

विन्ध्यसंस्तम्भनो वार्धिचुलकीकृतिपेशलः । ब्रह्मादिसर्वदेवानांतेजसा सुप्रकाशितः
अगस्त्यः कुम्भसम्भूतो देवासुरनमस्कृतः । प्रीतिमाप्नोतुमहतीं दानेनाऽनेन मे प्रभुः
इमं मन्त्रं समुच्चार्य धारापूर्वं सदक्षिणम् । दत्त्वाविमुक्तःपापेभ्योयातिब्रह्मसनातनम्
जन्मान्तरकृतैर्नूनमिह जन्मकृतैरपि । महापापोपपापौघैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥६८ ॥
ब्रह्माद्याः सकला देवाः सनकाद्या महर्षयः । चराचराणिभूतानिप्रीतिं यान्तिनसंशयः

कृत्वा व्रतमिदम्पुण्यमगस्त्यस्य च सन्मुनेः ।
प्रीत्यर्थम्भोजयेद्विप्रान्यथाशक्ति सदक्षिणम् ॥ ७० ॥
तस्मिन्कर्मणिचाऽशक्तो यथाशक्ति महीसुरान् ।
स्वर्णधान्यादिदानेन तोषयेद्भक्तिसंयुतः ॥ ७१ ॥

तिथिं न वितथीकुर्यात्तांयत्नेनसमाचरेत् । यत्किञ्चिदपिचाऽवश्यंकर्मकुर्याच्चपूरुषः
महामुनेरगस्त्यस्य परिपक्वं तपःफलम् । नदी सुवर्णमुखरी कीर्तनीया सुरासुरैः ॥
एवं ते कथितः सम्यङ्महानद्याः समुद्भवः । प्रभावश्चतदाचक्ष्वयद्भूयःश्रोतुमिच्छसि

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीप्रभावप्रशंसानाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

———

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्यतीर्थागस्त्येश्वरयोः प्रभाववर्णनम्

अर्जुन उवाच

श्रोत्राञ्जलिभ्यांपीत्वापिभवद्वाक्यामृतंमुहुः। मनोनोपैति मेतृप्तिंभूयःश्रवणकाङ्क्षया
क्रियासमभिहारो मेत्वद्वाक्याकर्णनैषिणः। मनः खेदाय मा भूत्ते करुणाभरितात्मनः
इदानीं श्रोतुमिच्छामि नद्यामस्यांमहामुने। कुत्रकुत्र समर्थानि तीर्थान्यघनिर्बर्हणे
काःकाः पुण्यतरङ्गिण्यः सङ्गता अनयामुने। कुत्र स्नानेनकृत्ताघानोपयान्तियमाद्भयम्
हराच्युतादिदेवानांपुण्यान्यायतनानिच। यानियानिचपुण्यानितिष्ठन्त्यस्यास्तटद्वये
तेषु क्षेत्रेषु मनुजैर्यत्फलं समवाप्यते। विहितैर्विधिवत्स्नानदानादिशुभकर्मभिः॥६॥
सोपाख्यानमिदं सर्वं वेदितं वेदवित्तम!। सञ्जातामहतीप्रीतिर्विस्तार्याचक्ष्वमेक्रमात्

भरद्वाज उवाच

यत्पृष्टंभवतापार्थक्रमाद्विस्तार्यकथ्यते। आरभ्यागस्त्यतीर्थेन्द्रादस्यास्तीर्थौघवैभवम्
अखण्डज्ञानरूपेण सर्वलोकहितैषिणा। सुरासुराणां सम्भाव्येनागस्त्येन महात्मना
वसुधामवतीर्णायांप्रथमंतद्धराधरात्। स्नात्वायत्र महानद्यां सम्प्राप्नोतिकृतार्थताम्
अगस्त्यतीर्थमित्युक्तं पावनं तज्जगत्त्रये। तत्र स्नानेन शुद्धिः स्यान्महापातकिनामपि
अनेकजन्माचरितमहापातकसंहतिम्। निरस्य दिवि मोदन्ते तत्र स्नानरता जनाः
ये तत्र तीर्थे यतिनः कृतस्नाना यतेन्द्रियाः। गोभूतिलहिरण्यादि महादानानिकुर्वते
ते प्राप्नुवन्ति सम्पूर्णं गङ्गाद्वारेसमाहितैः। विहितानां शतगुणं दानानां फलमर्जुन

अत्राऽस्ति भगवानीशः ख्यातोऽगस्त्येशसञ्ज्ञया।
स्थापितोऽगस्त्यमुनिना लोकानन्दविधायिना॥ १५॥
स्नात्वा तस्यां महानद्यां तल्लिङ्गं पूजयन्ति ये।
दशानामश्वमेधानां फलं सम्प्राप्नुवन्ति ते॥ १६॥

धनूराशिं परित्यज्य यदा मकरमंशुमान् । विशेत्तदयनं पुण्यमुत्तरं परिकीर्तितम् ॥
तस्मिन्दिने ये नियता नद्यां स्नात्वा समाहिताः ।
पश्यन्ति पार्वतीनाथमगस्त्येशं सुरार्चितम् ॥ १८ ॥
अग्निष्टोमसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च । फलं सम्प्राप्य मोदन्ते दिविदेवगणार्चिताः
मृगसङ्क्रमवेलायां पुरुषैर्मङ्गलार्थिभिः । अवश्यमेवकर्तव्यमगस्त्येशस्य दर्शनम् ॥
ऐशान्यां तस्य तीर्थस्यदेशेक्रोशमितेऽर्जुन । अस्थितीर्थत्रयंख्यातंदेवर्षिपितृनामभिः
देवर्षिपितरस्तत्र मुनिना तेन पूजिताः । प्रददुर्हृष्टमनसः सर्वान्समभिवाञ्छितान्
तदादेवर्षिपितृभिरिदंतीर्थत्रयंक्रमात् । अस्मन्नामभिरीड्यं स्यादित्युक्तंतस्यसन्निधौ
तस्मिस्तीर्थत्रयेयेतुस्नात्वाविहिततर्पणाः । ऋणत्रयविनिर्मुक्तास्तेयान्तिदिवमक्षयाम्
ततः प्रागुत्तरक्षोण्यां योजनद्वयसीमनि । प्राप्ता सुवर्णमुखरीं वेणानाम महानदी ॥
समुदग्ररयाघातनिपातिततटद्रुमा । कुल्यानिर्गतवाः पूरसमाप्लावितकानना ॥ २६ ॥
उत्तुङ्गपुलिनोत्सङ्गखेलत्कोककुलाकुला । अम्बुजामोदलोलालिमालालीलारवान्विता
अतिक्रम्य समुत्तुङ्गाननेकान्धरणीधरान् ।
प्रभूतोयरुचिरा सुवर्णमुखरीं गता ॥ २८ ॥
नदीद्वयव्यतिकरे कृतस्नाना यथाविधि । दशानामश्वमेधानामखण्डं प्राप्नुयुः फलम्
सङ्गता वेणया पुण्या सुवर्णमुखरी नदी । गिरिदुर्गमसार्गेण ययावुत्तरवाहिनी ॥३०
मध्यगेन महीध्राणां मार्गेण विषमेण सा । गत्वा विरेजे तटिनीयोजनानांचतुष्टयम्
पूर्वतस्तस्य देशस्य विषये सार्धयोजने । उदक्कूले महानद्याः प्राग्वाहिन्या मनोहरे
अगस्त्येश्वर नामास्तेख्यातं लिङ्गंपुरद्विषः । स्मरणादेवमर्त्यानांसमस्ताघनिवारणम्
तत्र स्नात्वा महानद्यांयेनरानियतेन्द्रियाः । पश्यन्तिपार्वतीनाथमगस्त्येनप्रतिष्ठितम्
अनेकैः पूर्वजननैरर्जितं पापसञ्चयम् । ते निरस्य सुरावासे मोदन्ते कालमक्षयम् ॥
ततः सोदङ्मुखी भूत्वा सुवर्णमुखरी ययौ । योजनार्धमिदं देशं तीर्थसङ्घसमन्विता
तस्मिन्देशे तु हिन्तालतालसालमनोरमे । गता सुवर्णमुखरीं नदी व्याघ्रपदाह्वया ॥
दुर्वारभूरिदुरितविनिवारणपेशला । नीरन्ध्रतीरवानीर[illegible]मण्डलमण्डिता ॥ ३८ ॥

सिद्धगन्धर्वललनालीलागाहनशालिनी ।
तपस्विकन्यानिःक्षिप्तबलिपुष्पविराजिता ॥ ३९ ॥
हंसकारण्डवक्रौञ्चकुलकोलाहलाकुला । प्राक्प्रवाहा समागत्य शैलान्तरगताऽध्वना॥
सङ्गमे सरितोस्तत्र कृतस्नानानरोत्तमाः । समग्रमश्वमेधानां दशानां प्राप्नुयुः फलम्
तत्र व्याघ्रपदाख्यायास्तटेलोकमलापहे । अनघं सर्वपापघ्नं शङ्खतीर्थं विराजते ॥
ब्रह्मर्षिनियतावासं सुरगन्धर्वसेवितम् । दर्शनस्नानपानाद्यैरमितानन्ददायकम् ॥ ४३॥
तत्राऽऽस्ते भगवानीशः शङ्खेशो नाम फाल्गुन !।
शङ्खनाम्ना मुनीन्द्रेण लिङ्गरूपं प्रतिष्ठितम् ॥ ४४ ॥
ये तत्रतीर्थेसुस्नाताःपश्यन्तिवृषवाहनम् । दशाश्वमेधजंपुण्यंलब्ध्वायान्तिसुरालयम्
युक्ता तया व्याघ्रपदाभिधानया गत्वा ततो योजनसम्मितां भुवम् ।
ययौ मुनीन्द्रैर्वृषभाचलान्तिकं संसेव्यमाना शुभनिर्मलोदका ॥ ४६ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येऽगस्त्यतीर्थादिविविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

सुवर्णमुखरीकल्यानदीसङ्गमवर्णनम्

भरद्वाज उवाच

सुवर्णमुखरीं तत्र सङ्गता मङ्गलप्रदा । कल्यानाम नदी पुण्या कालिन्दी जाह्नवीमिव
वृषभाचलसम्भूता तीर्थराजविराजिता । नदीनामुत्तमा कल्या कलुषौघविनाशिनी ॥
नानातरुलताव्रातविभूषिततटद्वया । मुनिसङ्घसुखावासा पुण्याश्रमसमुत्कटा ॥ ३ ॥
द्विजदत्तार्घ्यविलसत्कुशाक्षतलसत्तटा । अप्सरः कुचकस्तूरीपङ्कक्षालनपङ्किला ॥४॥

दन्तावलकटच्योतन्मदाम्बुसुरभीकृता । विप्रभूपालविततमखयूपशतावृता ॥ ५ ॥
अनाविलजलापूरतोषिताशेषमानवा । एकैवाऽलंपरा कर्तुं महानद्योस्तु पातकम् ॥ ६॥
तयोः सङ्गतयोः स्तोतुं महिमानं क ईशते । यत्र ब्रह्मशिलानाम सरिन्मध्ये च वर्तते
अगस्त्यतपसा पश्चाद्द्वयासान्निध्यमेति च । नदीद्वयजले तत्र स्नाता पुण्ये कुरूद्वह॥

मखानां पौण्डरीकाणां शतस्य फलमाप्नुयुः ।
ब्रह्महत्यादिपापानि समायान्ति परिक्षयम् ॥ ९ ॥

तत्राऽभिषेकपूतानां नदीत्रितयसङ्गमे । सङ्गताभवनाशिन्या कृष्णवेणीव पावनी ॥१०

राजते स्वर्णमुखरी कल्यया सङ्गता तदा ॥ ११ ॥

अथोदीच्यांमहानद्यायोजनार्द्धेविराजते । योजनोत्सेधसहितो विख्यातोवेङ्कटाचलः
सर्वेषामेव तीर्थानामाश्रयोऽयं नगोत्तमः । अञ्जनानन्तवृषभनीलकेसरिपोत्रणः ॥
एतान्युपवनान्यद्रेः स्युर्नारायणवेङ्कटौ । वराहवपुषा पूर्वं स्वीकृतत्वान्मधुद्विषा
वराहक्षेत्रमित्यार्यैः कीर्तितोऽयं महीधरः । सुवर्णमुखरीतीरे विख्याते वेङ्कटाचले

निवसत्यच्युतो नित्यमब्धीन्द्रतनयान्वितः ।
तस्मिन्गिरौ श्रिया सार्द्धं वसन्तं वेङ्कटाधिपम् ॥ १६ ॥

सेवन्ते सिद्धगन्धर्वमुनिमानवदानवाः । तस्मिन्विन्यस्तचित्तानां भक्तानांपुरुषोत्तमे

वाञ्छितान्याशु सिध्यन्ति नश्यन्ति विपदोऽर्जुन ।
ये स्मरन्ति जगन्नाथं वेङ्कटाद्रिनिवासिनम् ॥ १८ ॥
निरस्तदोषास्ते यान्ति शाश्वतम्पदमव्ययम् ॥ १९ ॥

अर्जुन उवाच

वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सुरासुरनमस्कृतः । कथं प्रादुरभूद्देवो भगवान्कमलापतिः ॥२०॥
कस्य वा कृतिनस्तत्र प्रसन्नो निजमद्भुतम् । रूपम्प्रकाशयाञ्चक्रे भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्
विष्णोर्देवादिदेवस्य महिमानंमहामुने !। श्रोतुमिच्छामितत्त्वेन तन्मेकथयविस्तरात्

भरद्वाज उवाच

शृणु वेङ्कटनाथस्य महिमानं समाहितः । विस्तरेणसमाख्यातुं ब्रह्मणाऽपिनशक्यते

धन्योऽसि देवदेवस्य माहात्म्यं मधुविद्विषः ।
यद्भक्तियुक्ताऽभूत्तात! श्रोतुम्मतिररिन्दम ! ॥ २४ ॥
कृतपुण्योऽस्म्यहंपार्थ सर्वभूतपतेर्हरेः । पवित्राणिचरित्राणिस्तोष्यन्ते यन्मयाऽधुना
पुरा भागीरथीतीरे जनकाय महात्मने । क्रतुदीक्षाप्रसक्ताय विशुद्धज्ञानशालिने ॥
वामदेवेनकथितांकथांपापप्रणाशिनीम् । कथयिष्यामि तेपार्थ! विष्णुकीर्तनपावनीम्
सर्वेषामेव भूतानामाद्यो नारायणः प्रभुः । जगन्मयो जगत्कर्ता चित्स्वरूपो निरञ्जनः
सहस्रशीर्षा भगवान्सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
यस्य भासा जगदिदं विभाति सचराचरम् ॥ २६ ॥
तस्मात्परतरं तेजस्तस्मात्परतरन्तपः । तस्मात्परतरं ज्ञानं योगस्तस्मात्परो न च
विद्या तस्मादपि परा नाऽस्ति पार्थ नरर्षभ! । सर्वेष्वपि च भूतेषु सदासन्निहितःप्रभुः
सर्वाण्यपि च भूतानि तस्मिन्नेवाऽऽसते सुखम् ।
स एव यज्ञो यज्वा च साधनं स्रुक्स्रुवादिकम् ॥ ३२ ॥
फलम्फलप्रदाता च तत्सम्प्राप्या गतिस्तथा । वह्नौ प्रणीते पशुना प्रोक्षितेनप्रजुह्वति
ये तं प्रयान्ति ते यान्ति गतिं तत्प्रतिपादिताम् ॥ ३३ ॥
कर्मबन्धं पशुं कृत्वा ज्ञानाग्नौसम्प्रवर्तिते । ये जुह्वते समुद्दिश्य ते तत्सायुज्यभागिनः
हरिः सदाशिवो ब्रह्मा महेन्द्रःपरमःस्वराट् । सर्वेश्वरस्य तस्यैतेपर्यायाः परिकीर्तिताः
समाहितोऽनुसन्धत्ते य इदंपरमात्मनः । नारायणस्य माहात्म्यं स न याति पुनर्भवम्
चिदानन्दमयः साक्षी निर्गुणो निरुपाधिकः ।
नित्योऽपि भजते तान्तामवस्थां स यदृच्छया ॥ ३७ ॥
पवित्राणां पवित्रं यो ह्यगतीनां परा गतिः । दैवतं देवतानाञ्च श्रेयसां श्रेयउत्तमम्
बोध्यानां बोध्य एकोऽसौ ध्येयानां ध्येय उत्तमः ।
विनयानां समधिको विनयो नयसंयुतः ॥ ३६ ॥
तेजसां जनकं तेजः प्रकृष्टं तपसान्तपः । आधारः सर्वभूतानामनाद्यन्तो जनार्दनः ॥
तस्येदं भावविज्ञानेमूढाब्रह्मादयोऽपि च । अज्ञोगृह्णाति जननं सर्वात्माहन्तिविद्विषः

स्वतन्त्रोऽपिस्वभक्तानांपरतन्त्रःप्रवर्तते । स साक्षी कर्मणां देवः सर्वज्ञोगरुडध्वजः
तस्य स्वरूपं मुनयो मृगयन्ते समाहिताः । सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नश्च तथा पुनः
अनिरुद्धइतिख्यातंतन्मूर्तीनांचतुष्टयम् । कीर्तितः प्रणवः पश्चाद्धृदयन्तस्यभास्वरम्

भगवान्वासुदेवश्च मन्त्रोऽयं तत्प्रकाशकः ॥ ४५ ॥
मन्त्रराजमिमं नित्यं प्रजपेद्यः समाहितः ।
स विष्णोः करुणायोगात्सिद्धीनां भाजनम्भवेत् ॥ ४६ ॥

आपन्निवारकं सम्पत्प्रापको भुक्तिमुक्तिदः । यथा ससर्ज भूतानिकल्पादावेषमाधवः
तत्सर्वंकथयिष्यामि समाहितमनाः शृणु । तस्य चिन्तयतः सर्गं तेजोरूपम्परं हरेः
विरिञ्च इति विख्यातंराजसंगुणमाश्रितम् । तस्य देवस्य वदनाच्छक्रोदेवःसपावकः

जज्ञे यश्च त्रिलोकेशः पापकर्मणि यः प्रभुः ॥ ४९ ॥

मनसश्चाऽभवच्चन्द्रःकरुणानित्यशीतलात् । अपांसर्वौषधीनाञ्च विप्राणांरक्षकःसदा
नेत्राभ्यामुदभूत्सूर्यस्तस्यविश्वप्रकाशकः । शीतोष्णवर्षकृत्कालकारणंतेजसांनिधिः

प्राणेभ्योऽस्य जगत्प्राणः समीरः समजायत ।
धर्ता ग्रहर्क्षस्वर्गङ्गाविमानानां महाबलः ॥ ५२ ॥
नाभिदेशात्समुत्पन्नमन्तरिक्षं महात्मनः ।
तस्याऽऽसीच्छिरसोव्योमभूतसम्भवकारणम् ॥ ५३ ॥
पादाम्बुजाभ्यामुदभूद्भूमिर्भूतगणाश्रया ।
विनिःसृता दिशः सर्वा श्रोत्राभ्याम्परमात्मनः ॥ ५४ ॥

भूर्भुवाद्यास्तथालोकाः स्मरणात्तस्य जज्ञिरे । रसातलादिलोकाश्च यक्षरक्षोगणादयः
मुखबाहूरुपादेभ्योजयामासस क्रमात् । ब्राह्मणान्क्षत्त्रियान्वैश्याञ्छूद्रादींश्चकुरूद्वह! ॥
छन्दांसि यज्ञस्तुरगा गावो मेषाविकादयः । अतर्क्यप्रभवां तस्मादुत्पत्तिंप्रतिपेदिरे
सङ्कल्पाद्देवदेवस्य तस्यस्थावरजङ्गमम् । भूतजातमभूत्कालो भूतोभावीभवंस्तथा ॥

पिबत्यम्बु समुद्राणां वडवानलरूपधृक् ।
कल्पान्तकाले तत्सर्वं विसृजत्यात्मनि स्थितम् ॥ ५९ ॥

सञ्चारयति भूतानां वृत्तिं सूर्येन्दुरूपधृक् । तमोनिरसनाच्चापि कालधर्मप्रवर्तनात्
जगन्ति कल्पविरमेविन्यस्यस्वोदरान्तरे । लीलाबालाकृतिः शेते वटपत्रे महाम्बुधौ

अथ चोदग्रभोगीन्द्रभोगतल्पे सुखोचिते ।
योगनिद्रामवाप्नोति सद्वितीयोऽब्जवासया ॥ ६२ ॥
नाभिकासारसम्भूताज्जनयामास पङ्कजात् ।
सर्वेषां जगतां नाथो विधातारं चतुर्मुखम् ॥ ६३ ॥

लीलाह्येषा मुकुन्दस्य स्वेच्छायोगप्रवर्तिनः । विज्ञायते न केनाऽपियाथार्थ्येनसईश्वरः
यदा धर्मस्य हानिः स्यादधर्मोवर्धते यदा । यदा वा महतीं पीडांभजन्तेदेवतागणाः
यदावलेपदुर्वारा यान्ति वृद्धिं सुरद्रुहः । भूमेर्भूमिजनानाञ्च यदोदेति महद्भयम् ॥६६॥
यदा वा निजभक्तानां साधूनामनिवारिता । दुरन्तातङ्कजननी विपत्समुपजायते ॥

तदा तदनुरूपाणि रूपाण्यास्थाय कौतुकात् ।
अधर्ममवधूयाऽऽशु कुरुते जगतो हितम् ॥ ६८ ॥

सृजति विधिसमाख्यो राजसेनात्मनाऽसौ वहति हरिसमाख्यः सत्त्वनिष्ठः प्रपञ्चम्
हरति हरसमाख्यस्तामसीमेत्य वृत्तिं मधुमथनमहिम्नामस्ति वेत्ता न कोऽपि॥६९॥
यज्ञाङ्गैः कृतसकलाङ्गसन्धिबन्धं वाराहं वपुरधिगम्य लोकनाथः ।
शैलेऽस्मिन्नभजदसौ यथा निवासं तद्वक्ष्ये शृणु विबुधाधिनाथसूनो !॥ ७० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्ये विष्णुमाहात्म्यप्रस्तावे
सृष्ट्यादिवर्णनंनाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

वराहकृतधरण्युद्धरणक्रमेश्वेतवराहावतारवर्णनम्

भरद्वाज उवाच

पुरा निशात्यये धातुः प्रबुद्धो मधुसूदनः । पुनः प्रवृत्तिं भूतानामन्वियेष धिया भृशम्
विना वसुमतीमन्ये भूतौघधरणक्षमाः । न भवन्तीति हृदये तर्कस्तस्याऽजनिष्ट च॥
अपश्यत्प्रणिधानेन महीं पातालगोचराम् । अतिमात्रभयोद्विग्नांपरीतां महताऽम्बुना
प्रतिपेदे तदा रूपं भूसमुद्धरणोचितम् । उपकर्मोष्ठमनलजिह्वं प्रणवघोषणम् ॥ ४ ॥
चतुराम्नायचरणं प्रायश्चित्तखुराञ्चितम् । प्राग्वंशकायं विलसद्दर्भरोमावलीयुतम् ॥५॥
प्रवर्ग्यावर्तसम्पन्नं दक्षिणाग्न्युदरान्वितम् ।
स्रुक्तुण्डमखिलैः सर्वैः सम्विभक्ताङ्गसन्धिकम् ॥ ६ ॥
दिव्यसूक्तसटाजालं परब्रह्मशिरस्तथा । हव्यकव्यरसोपेतं विशुद्धपशुजानुकम् ॥ ७ ॥
उत्कात्युक्तादिकच्छन्दोमार्गमन्त्रबलान्वितम् । सर्वयज्ञमयं दिव्यं वाराहंरूपमास्थितः
अन्वेष्टुं धरणीमब्धेर्विवेशसलिलान्तरम् । दंष्ट्राबालशशाङ्कोत्थलसत्कान्तिचयैर्हठात्
कल्पान्तसमयस्फीतं तमिस्रमपसारयन् । अभिभूताम्बुभृद्घोषैर्मुहुर्ब्रह्माण्डकन्दराम् ॥
निनादमुखरां कुर्वन्नन्गाढैर्घुरुघुरुस्वनैः । खुरप्रखुरविन्यासैर्जर्जरीकृतविग्रहम् ॥११॥
इतस्ततो विलुठयन्नुरगाणामधीश्वरम् । तीव्रैर्निःश्वासपवनैरापातालं सरित्पतेः ॥१२
प्रापयन्नतलस्पर्शमन्तरं दर्शनीयताम् । अतिदीर्घेण पोत्रेण मग्नोन्मग्नेन वारिधेः ॥१३
संक्षोभितानि पाथांसि कुर्वन्नन्तर्ययौ तदा ।
सप्तपातालमूलाधःस्थितां तोये भयाकुलाम् ॥ १४ ॥
वेपमानां समालोक्य धरणीं हृष्टमानसः । तामारोप्य स्वदंष्ट्राग्रमुन्ममज्ज सरित्पतेः
संस्तूय मानोमुनिभिर्जनलोकनिवासिभिः । तस्मिन्नुद्वहतिप्रेम्णादेवेवसुमतीक्षणम्
प्रतिसीरा बभूवाऽधो वारिधेर्मण्डलोचिता । तदुत्तात्मवेऽस्या वराहवपुषोऽर्जुन !॥१७

गम्भीरघोषैरम्भोधिः प्राप मङ्गलतूर्यताम् । उद्वृत्तवीचिविक्षिप्तशीकरासारसङ्गतः ॥
भेजे मुक्ताफलचयो मङ्गलाऽक्षतविभ्रमम् । उदूढा तेन देवेन सा बभौ सलिलाप्लुता
गाढरागसमुत्पन्नस्वेदक्लिन्नतनूरिव । इत्थमुद्धृत्य भगवान्महीम्पातालमूलतः ॥२०॥

सुदृढं स्थापयामास मध्येऽम्बुनिधिपाथसाम् ।
तेनोद्धृतायां मेदिन्यां पूर्णन्तद् भूनभोऽन्तरे ॥ २१ ॥

जलं तत्कृतमर्यादाऽव्यवच्छिन्नमभूत्तदा । संस्थाप्य पृथिवीमित्थं तदीयाधारसिद्धये
दिग्गजानहिराजञ्च कमठञ्च न्यवेशयत् । तेषामपि च सर्वेषामाधारत्वेन सादरम् ॥

अव्यक्तरूपां स्वां शक्तिं युयोज च दयानिधिः ।
ततो धरां समुद्धृत्य स्थितां किटितनुं हरिम् ॥ २४ ॥

तुष्टुवुः सनकाद्यास्तं जनलोकनिवासिनः । तदा वराहवपुषमाराध्य पुरुषोत्तमम् ॥२५

तदाज्ञया जगद् ब्रह्मा यथापूर्वमकल्पयत् ॥ २६ ॥

अर्जुन उवाच

कल्पान्तसलिले मग्ना कथं तिष्ठति भूरियम् । सप्तपातालोकाधः किमाधारामहामुने

कल्पकालः किया नेष स्यात्तद्वृत्तिश्च कीदृशी ॥ २८ ॥
एतद्विस्तार्य सकलं मम ब्रह्मन्मुने! वद ॥ २९ ॥

भरद्वाज उवाच

विनाडिकानां षष्ट्या स्यान्नाडिकैका दिनम्भवेत् ।
तत्षष्ट्या दिवसास्त्रिंशन्मासः पक्षद्वयात्मकः ॥ ३० ॥

मासौ द्वावृतुरित्युक्तस्तैः षड्भिर्वत्सरोभवेत् । अयनद्वितयाकारःशीतवर्षोष्णसंश्रयः
देवासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात् । उत्तरं दक्षिणं भानोरयने ते यथाक्रमम् ॥
मानुषाब्दैःखखव्योमखाक्षिपावकसागरैः । महायुगं भवेत्पार्थ! कृताद्याकारसंयुतम् ॥

सप्तत्या सैकया कालो युगानामन्तरं मनोः ।
अस्मिञ्छ्वेतवराहाख्ये कल्पे जातान्मनूञ्छृणु ॥ ३४ ॥

स्वायम्भुवःस्यात्प्रथमस्ततःस्वारोचिषोमनुः । उत्तमस्तामसाख्यश्चरैवतश्चाक्षुषाह्वयः

एते गताः प्राङ्मनवः षट् सेन्द्रसुरतापसाः । वैवस्वतो वर्ततेऽद्य सप्तमो मनुरर्जुन !
आदित्यवसुरुद्राद्यास्तत्काले देवतागणाः । इष्ट्वाऽश्वमेधशतकं तेजस्वी प्राप शक्रताम्
विश्वामित्रोऽहमत्रिश्च जमदग्निश्च कश्यपः । वशिष्ठो गौतमश्चैव ते वै सप्तर्षयोऽर्जुन
इक्ष्वाकुप्रमुखाः शूरा मनुपुत्रा महाबलाः । अवनिम्पालयामासुर्नित्यं धर्मपरायणाः ॥
सूर्यदक्षब्रह्मधर्मरुद्राणां पञ्च सूनवः । सावर्णिरौच्यभौमाद्या भविष्यन्मनुसप्तकम् ॥
चतुर्दशविधातुस्तेभवन्तिमनवोऽहनि । तत्कल्पसञ्ज्ञंतस्याऽन्तेनिशास्यात्तत्समाश्रृणु
दिनावसानसमये ब्रह्मणः पाण्डुनन्दन !। जायतेऽवग्रहो घोरः पृथिव्यां शतवार्षिकः॥

तस्मिन्नवग्रहे पृथ्व्यां नीरसायां धनञ्जय !।
चतुर्विधानि भूतानि समायान्ति परिक्षयम् ॥ ४३ ॥

तदा तप्तशिखाकारैरुपेतो घर्मदीधितिः । मयूखैरग्निसङ्काशैर्वमद्भिःपावकच्छटाः ॥४४
विनष्टग्रामनगरशैलवृक्षादिकानना । कूर्मपृष्ठोपमोर्वी स्यात्तप्ताऽयःपिण्डसन्निभा ॥
ततो विधातुर्गात्रेभ्यः समुत्पन्ना महाघनाः । आच्छादयन्तोगगनंगर्जितध्वानबन्धुराः
सितपीतारुणश्यामाश्चित्र वर्णाश्च भीषणाः । शैलेभसौधवृक्षादिनानारूपसमन्विताः
ते शताब्दमितं कालं महावृष्टिं वितन्वते । तेनाऽम्भसाशमंयाति सूर्योद्भूतोमहानलः
भूयश्च शतवर्षाणि वर्षन्त्युग्रं महाघनाः । तदम्भसा समुद्वेला विकृतिं यान्तिवार्द्धयः

कल्पान्ताम्बुदनिर्मुक्तं लोकान्व्याप्नोति तज्जलम् ।
भूर्भुवःस्वर्महर्लोकानावृणोति तमो महत् ।
तदा निमग्ना सलिले मही पातालमूलगा ॥ ५० ॥

अनष्टाकथमप्याऽऽस्तेब्रह्मशक्त्यवलम्बिता । अथनिःश्वाससम्भूतोमारुतोब्रह्मणोऽर्जुन
उत्सारयतितान्सर्वान्कल्पान्तोत्थान्महाघनान् । एवंप्रवृद्धःपवनःशतसम्वत्सरात्मकम्
कालं निरन्तरं वाति दुर्निवारस्योत्थितः । तमुग्रमनिलंहित्वा हरेर्नाभिसरोरुहे ॥५३॥
योगनिद्रामवाप्नोति तस्मिन्पार्थसिपद्मभूः । योगानद्रानुषक्तस्य यातितस्यजगद्विभोः
तावती शर्वरी पार्थ! दिनंयावत्प्रमाणकम् । निशायांसमतीतायामुत्थितोवेगवान्पुनः
सृजत्यखिलजन्तूंस्त्वै पूर्ववच्छासनाद्धरेः । कल्पेकल्पे समुचितैः रूपैः पाति जगद्धरिः

अस्मिन्कल्पे श्वेतवर्णां प्राप्तवान्यज्ञपोत्रिताम् । वराहवपुषा देवो विहरन्नवनीतले ॥
स्वपूर्वनियतावासं प्रपेदे वेङ्कटाचलम् । स्वमिपुष्करिणीतीरेचरंश्चिरमधोक्षजः ॥५८

भक्त्या परमया युक्तमपश्यज्जलजासनम् ।
सम्पूज्य प्रार्थयामास ब्रह्मा तं भूतभावनम् ॥ ५९ ॥
पुरातनीं निजां स्वामिन्भज दिव्यां तनूमिति ।
गृहीत्वाऽनुनयं तस्य त्यक्त्वा तां सूकराकृतिम् ॥ ६० ॥
अनन्यभजनीयां स्वाम्प्राप विश्वात्मिकां तनुम् ।
तथा स्थितं गिरौ तत्र कृत्वाऽप्युत्साहमूर्जितम् ॥ ६१ ॥
द्रष्टुं न शेकुः सर्वेऽपि कालेन बहुनाऽपि च ॥ ६२ ॥

अर्जुन उवाच

दर्शनस्मरणादीनां हरिरित्थमगोचरः । कथं प्रत्यक्षतां प्राप मानुषाणां महामुने ॥६३
साम्यभूतोऽथजगतांयः को वाऽऽराध्यतंविभुम् । इहप्रकाशयामासकथामेतांनिवेदय

हरिकथाश्रवणं दुरितापहं कथयतां सकलागमविद्भवान् ।
सुकृतिनां ननु सम्प्रति धुर्यता मुनिवरेण्य! ममाऽद्य समागता ॥ ६५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीति साहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां वराहावतारकीर्तनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

शङ्खाभिधाननृपवृत्तान्तवर्णनम्

भरद्वाज उवाच

शृणु पार्थ! प्रवक्ष्यामि कथामाश्चर्यकारिणीम् ।
यथाऽसौभगवानस्मिञ्छैले प्राप प्रकाशताम् ॥ १ ॥

श्रुताभिधानो नृपतिरस्ति हैहयवंशजः । यः प्रजाः स्वा इवचिरंशशासधरणींशुभाम्
तस्य पुत्रो गुणनिधिः शङ्खो नाम महीपतिः । पालयामास वसुधांसर्वशास्त्रविशारदः
तस्य विष्णौ जगन्नाथेपुण्डरीकायतेक्षणे । बभूव निश्चलाभक्तिःपरित्यक्ताऽन्यसंश्रया
देवदेवं जगन्नाथमनन्तं पुरुषोत्तमम् । प्रगाढनिश्चयो नित्यं ध्यायन्नद्भुतवैभवम् ॥ ५ ॥
चक्रे व्रतानि दानानि पुण्यानि विविधानि च । वेदवेद्यस्यनियतंप्रीत्यर्थम्मधुविद्विषः
तमुद्दिश्यैव विदधेवाजिमेधादिकान्क्रतून् । यथोक्तदक्षिणायोगात्प्रीणिताऽशेषभूसुरः
इष्टापूर्त्तात्मकं चक्रे कर्मजातमतन्द्रितः । विन्यस्तहृदयो नित्यं केशवे भक्तवत्सले ॥
स्मरत्यजस्रं गोविन्दं जपत्यच्युतमव्ययम् । पूजयत्यब्जनयनंसङ्कीर्तयति शार्ङ्गिणम्

शृणोति सततं राजा संसारार्णवतारिणीः ।
पौराणिकैः समाख्याताः पवित्रा वैष्णवीः कथाः ॥ १० ॥

ब्राह्मणानर्चतिस्माऽयंहरिप्रीत्यर्थमेवच । इत्थंसर्वात्मनायुक्तोऽप्यश्रान्तःपृथिवीपतिः
नाऽपश्यच्छाश्वतैश्वर्यं स्वतन्त्रं पुरुषोत्तमम् । अप्राप्य दर्शनं विष्णोःसर्वयज्ञमयात्मनः
सशोकाक्रान्तहृदयः परां चिन्तामुपागमत् ॥ १३ ॥

शङ्ख उवाच

परः सहस्रैर्जननैरतीतैर्दुष्कृतं बहु । कृतम्मया यदप्राप्तं हृषीकेशस्य दर्शनम् ॥ १४ ॥
उपार्जितानां तपसामनेकैः पूर्वजन्मभिः । अखण्डं हि फलं विष्णोर्दर्शनं मधुघातिनः
कथं नु यायाद्भगवान्विषयं मम नेत्रयोः । कदावा [illegible] श्रेयस्तद्वाक्याकर्णनात्मकम्

हा धिङ्मां विहितागस्कं क्रियासाफल्यवर्जितम् ।
नारायणकृपादूरं संसारक्लेशगोचरम् ॥ १७ ॥

भरद्वाज उवाच

इति चिन्ताकुलेतस्मिन्राज्ञि जीवितनिःस्पृहे । अदृश्यमूर्तिः सर्वेषांशृण्वतामाहकेशवः

श्रीभगवानुवाच

मा शोकस्य वशं यायाः शृणु वक्ष्यामि ते हितम् ।
मदेकशरणं साधुं त्वां त्यक्ष्यामि कथं नृप! ॥ १९ ॥

अयं वेङ्कटनामाद्रिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । वैकुण्ठादपि मे राजन्नावासोऽतिप्रियावहः
तं गत्वा भूधरवरं तव भक्त्यातपस्यतः । गतेसहस्रेवर्षाणांयास्याम्यालोकनीयताम्
भवानिवोद्यतोऽगस्त्यो मम दर्शनमञ्जसा । क्व वा संदृश्यते विष्णुरेवमाह चतुर्मुखम्
वृषभाद्रौ हरिर्द्रष्टुं लभ्यते नियतात्मभिः । गच्छ तत्रेति मुनये कथयामास पद्मभूः ॥
अम्भोजसम्भवेनेत्थमादिष्टः कुम्भसम्भवः । अञ्जनाद्रौ महावासे तपस्तप्तुं समेष्यति
तस्मिन्महीध्रे पुण्ये कृतवासो भवानपि ।
आराध्य मां तपोनिष्ठो मम दर्शनमाप्स्यसि ॥ २५ ॥

भरद्वाज उवाच

इत्याऽऽज्ञप्तोभगवताशङ्खोदानववैरिणा । जगामप्रीतिमतुलांधन्योऽस्मीतिस्वचेतसि
विन्यस्य तनयं वज्रं प्रजापालनकर्मणि । गोविन्ददर्शनापेक्षीनारायणगिरिं ययौ ॥
तस्यशृङ्गेसमुत्तुङ्गेस्वामिपुष्करिणींशुभाम् । दिव्यैःपयोभिरापूर्णामपश्यदमृतोपमैः
अनेकसिद्धगन्धर्वदेवर्षिगणसेविताम् । भवतापप्रशमनीं सर्वतीर्थसमाश्रयाम् ॥ २९॥
जलकाकवकक्रौञ्चहंसकारण्डवाकुलाम् । कुमुदोत्पलराजीवसौगन्धिकमनोहराम् ॥
तां दृष्ट्वा पद्मिनींदिव्यांतत्तीरेविहितोटजः । तोषितःस्नानपानाद्यैर्निर्विकल्पमनोगतिः
सर्वकर्माणि विन्यस्य जगदीशे जनार्दने ॥ ३२ ॥
जपध्यानपरो नित्यं तपस्तेपे सुदारुणम् । तस्मिन्नेवमुनिः काले शासनात्परमेष्ठिनः
अगस्त्योऽप्यासुसादाद्यं शैलमुनिशतव्रतः । प्रतीचीं दिशमास्थायकृतयत्नःप्रदक्षिणे

पश्यंस्तीर्थानिपुण्यानि बभ्रामसुचिरं गिरौ । तत्र तत्रददर्शाऽसौहरिदर्शनलालसान्
विरिञ्चिगुहशक्रेशविष्वक्सेनादिकान्क्रमात् । सनकाद्यांश्चयोगीन्द्रान्नारदप्रमुखानृषीन्
सिद्धगन्धर्वदैतेययक्षराक्षसपन्नगान् । तैस्तैः सम्मान्यमानोऽसौ प्रश्रयप्रियभाषणैः ॥
पश्यन्नाश्चर्यभूतानि सर्वाणिविचचार ह । स्नात्वातीर्थेषुसर्वेषुस्कन्दधारादिकेषुच
तत्रतत्रार्चयामासगोविन्दं जगताम्पतिम् । एवंभ्रान्त्वागतेऽब्दानांसहस्रेमुनिसत्तमः

नाऽपश्यत्पुण्डरीकाक्षं चिन्ताशोकपरोऽभवत् ॥ ४० ॥

तस्मिन्काले समाजग्मुर्धिषणोशनसौ पुनः । राजोपरिचरोनाम वसुश्च तमृषीश्वरम्
अस्माकं सफलं जातं जीवितं मुनिसत्तम ! । दृष्टो भवान्यदस्माभिर्नारायणइवापरः
ब्रह्मणा लोकनाथेन यदादिष्टा वयं मुने । अच्युतालोकनपरास्तदिदंकथ्यते तव ॥४३
अस्ति दक्षिणदिग्भागे वेङ्कटोनाम भूधरः । श्वेतद्वीपादपि हरेरावासोऽयमभीप्सितः

तस्मिन्गिरावगस्त्यस्य शङ्खस्य च महीपतेः ।
दर्शयिष्यति गोविन्दो निजरूपं जगद्गुरुः ॥ ४५ ॥

तदानीं सर्वदेवानामृषीणां यक्षरक्षसाम् । अस्माकं देवदेवस्य दर्शनं सम्भविष्यति
अचिरेणैवतद्भावितत:सन्त्यक्तकल्मषाः । अन्वेष्टुंगच्छताऽगस्त्यंतस्मिन्नारायणाचले
इत्याऽऽज्ञप्ता वयं धात्रा समागम्याऽत्रभाग्यतः । दृष्टवन्तोमहाभागंभवन्तंभूरितेजसम्
भवतासहितागत्वास्वामिपुष्करिणीतटे । तमप्यालोकयिष्यामःशङ्खं भागवतोत्तमम्

भरद्वाज उवाच

गीष्पतिप्रमुखैरित्थमादिष्टःकुम्भसम्भवः । शोकजालम्परित्यज्ययथौतैःसहितोद्रुतम्
स ददर्श महावृक्षान्फलपुष्पभरानतान् । प्ररूढशाखानिकरच्छायाच्छादितदिक्तटान्
सिंहदन्तावलव्याघ्रवराहमहिषादिकान् । मृगानालोकयामास पन्थानंचाऽन्तरान्तरा
तैस्तदानीं दक्षशिरेसानवोऽप्यम्बुभृद्भृतः । सुवर्णरौप्यताम्रादिशोभितास्तत्र तत्रतु

उच्चलच्छीकरासारनिर्वाहितदिवौकसः ।
वेगोद्धूतशिला दृष्टा शतशो गिरिनिर्झराः ॥ ५४ ॥

तेषामापादयामास प्रमोदं मन्दमारुतः । कमलामोदसञ्चारी विचरन्गिरिसानुषु ॥

शुकानां कोकिलानाञ्च तदा शुश्रुविरे गिरः ॥ ५६ ॥
तत्र तत्र समासीनान्विस्तीर्णासु द्रुषत्सु ते ।
सिद्धानपश्यन्कृष्णस्य गायतो गुणवैभवम् ॥ ५७ ॥
अगस्त्यप्रमुखाःसर्वेपरिक्रम्यमुनीश्वराः । स्वामिपुष्णरिणींदिव्यांददृशुर्विमलोदकाम् ।
तत्तीरे विहितावासमपश्यच्छङ्खभूपतिम् ।
वाङ्मनःकायजं कर्म सन्निवेश्य स्थितं हरौ ॥ ५८ ॥
स तानालोक्य सहसा मुनीन्द्रान् संशितव्रतान् ।
यथोक्तमकरोत्पूजां प्रणामस्तुतिपूर्विकाम् ॥ ६० ॥
आसीनास्तत्र ते सर्वे सम्भाव्याऽन्योन्यमुत्सुकाः ।
गोविन्दकीर्तनपराः कृतार्थत्वं प्रपेदिरे ॥ ६१ ॥

इति श्रीस्कान्द महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां श्रीवेङ्कटाचलस्प्रति शङ्खागस्त्याद्यागमनवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्यशङ्खादितपस्तुष्टस्यभगवतआविर्भाववर्णनम्

भरद्वाज उवाच

तेषां हरौ जगन्नाथे समावेशितचेतसाम् । दिनत्रयं गतं तत्र पूजास्तोत्रपरात्मनाम् ।
तृतीये दिवसे प्राप्ते ते सर्वे निद्रिता निशि । अन्तेचतुर्थयामस्य ददृशुः स्वप्नमुत्तमम् ।
शङ्खचक्रगदापाणिं प्रसन्नं पुरुषोत्तमम् । वरदानाय सम्प्राप्तमपश्यन्स्मेरलोचनम् ॥३॥
उत्थायमुदितात्मानोगृहान्निर्गत्यपावने । स्वामिपुष्करिणीतोयेसस्नुर्विधिवदादरात् ।
विधाय विधिवत्कर्म सर्वेदिनमुखोचितम् । गृहान्प्रत्याययुर्देवमाराधयितुमच्युतम् ।

सद्यः श्रेयस्करं मार्गे निमित्तं पक्षिसूचितम् । दृष्ट्वा प्रसादंदेवस्य करस्थं मेनिरे तदा
ततस्त्रिलोककर्तारंपूजयित्वा जनार्दनम् । तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः पवित्रैर्वेदवर्णितैः ॥
स्तोत्रावसाने कौन्तेय मुनीन्द्रःकुम्भसम्भवः । जजापशङ्खसहितो मन्त्रमष्टाक्षरं हरेः
इत्थं तेषां जगत्स्वामिन्यच्युतेऽर्पितचेतसाम् । अग्रभागेप्रादुरभूदेकं तेजो महाद्भुतम्

अनेककोटिसङ्ख्यानामादित्येन्दुहविर्भुजाम् ।
एकीभूयाऽम्बरतले ज्योतिर्जालमिव स्थितम् ॥ १० ॥

तत्तेजो वीक्ष्य ते सर्वेऽमितान्ताश्चर्यगोचराः । दध्युर्नारायणंदिव्यंपरमानन्दविग्रहम्
वाङ्मानसपथातीतं विश्रुतैश्वर्यभासुरम् । सहस्रनेत्रं साहस्रबाहुपादैः समन्वितम्
तप्तकार्तस्वरनिभस्फुरत्कान्तिमनोहरम् । दंष्ट्राकरालं दुर्दर्शं वमन्तं दहनच्छटाः ॥
कौस्तुभेन विराजन्तं दधानमुरसिश्रियम् । अविचिन्त्यमनाद्यन्तमत्यन्तभयदायकम्
प्रकाशयन्तं ब्रह्माण्डं सर्वमात्मनि सर्वगम् । अगस्त्यशङ्खप्रमुखास्ते सर्वे हृष्टचेतसः
तमालोक्य जगन्नाथं भूयोभूयो ववन्दिरे । भ्रमन्ति लोकरक्षार्थमायुधानि तदा हरेः॥
निजतेजोबलोपेतान्याजग्मुस्तं निषेवितुम् । चक्रमर्कप्रभं दिव्या गदाखड्गश्च नन्दकः
पुण्डरीकं चोग्ररवः पाञ्चजन्यः शशिप्रभः । तदा ब्रह्माण्डमखिलं पूरयामास निर्भरः
पाञ्चजन्यस्य निनदः सर्वासुरभयङ्करः । पाञ्चजन्यध्वनिं श्रुत्वानितान्ताश्चर्यभीषणम्
आययुर्देवताः सर्वाः स्वंस्वंवाहनमास्थिताः । ब्रह्मारुद्रःशतमखःसनकाद्याश्चयोगिनः
वसिष्ठमुख्या मुनयोगन्धर्वोरगकिन्नराः । विष्वक्सेनोगरुत्मांश्च विष्णुभृत्याजयादयः

सरूपाश्चैव ये नित्याः श्वेतद्वीपनिवासिनः ।
सुमनोद्रुमसम्भूता सुमनोवृष्टिरद्भुता ॥ २२ ॥

पपात मेदुरामोदमोदिताशेषमानसा । ननृतुर्दिव्यसुदृशो जगुः किन्नरपुङ्गवाः ॥ २३॥
तुष्टुवुर्हर्षतरलाः सुरगन्धर्वचारणाः । दृष्ट्वा ते पुण्डरीकाक्षं प्रसन्नं भक्तवत्सलम् ॥ २४
प्रणम्य तोषयामासुः साष्टाङ्गं विविधैः स्तवैः ॥ २५ ॥

ब्रह्मादय ऊचुः

जय विष्णो कृपासिन्धो जय! तामरसेक्षण! । जय लोकैकवरद जय भक्तार्तिभञ्जन! ॥

अनन्तमक्षरं शान्तमवाङ्मनसगोचरम् ।
को वा भवन्तं जानाति चिदानन्दमयात्मकम् ॥ २७ ॥
अणोरणुतरं स्थूलात्स्थूलं सर्वान्तरस्थितम् । त्वमामनन्ति पुरुषंप्रकृतेः परमच्युतम्
वेदान्तसाररूपं त्वां सर्वान्तर्बाह्यवर्तिनम् । को हि वर्णयितुं शक्तो मायायत्तेषु देहिषु
भवदीयमिदं रूपं दृष्ट्वाऽतिभयदायकम् । भयोद्विग्ना वयं सर्वे शान्तं रूपं भजस्व ह ॥

भरद्वाज उवाच

इति स्तुतो विरिञ्च्याद्यैः प्रसन्नो गरुडध्वजः । मेघघोषप्रतिमया वाचा सादरमब्रवीत्

श्रीभगवानुवाच

भयावहामिमांमूर्तिमुत्सृज्याऽहंप्रियावहम् । शान्तंरूपंभजिष्यामिमांपश्यतनिराकुलाः
इत्युक्त्वाऽन्तर्हितो भूत्वा तस्मिन्नेव क्षणान्तरे । विमानेरत्नखचिते बभूव सुखदर्शनः
चन्द्रबिम्बाननः शान्तो नीलोत्पलदलद्युतिः । सुवर्णवर्णवसनो रत्नभूषणभूषितः ॥
शङ्खचक्रगदापद्मलसत्करचतुष्टयः । तमालोक्य रमाकान्तं भूयो भूयो ववन्दिरे ॥३५॥
सन्तोषयित्वा ब्रह्मादीनभीष्टप्रतिपादनैः । अवोचद्विनयानम्रमगस्त्यं मुनिपुङ्गवम् ॥

श्रीभगवानुवाच

त्वं मुनीन्द्र ! व्रतैर्घोरैश्चीर्णैर्माम्प्रति सम्प्रति ।
परिक्लिष्टोऽसि दास्यामि वरांस्तेऽभीप्सितान्वद ॥ ३७ ॥

भरद्वाज उवाच

निशम्यवाक्यंश्रीभर्तुःप्रणम्यचपुनःपुनः । सरोमाञ्चितसर्वाङ्गःकुम्भजन्मावचोऽब्रवीत्

अगस्त्य उवाच

यद्धुतं यत्तपस्तप्तं यदधीतं श्रुतं मया । तत्सर्वं सफलं जातमाहूतोऽस्मि यतस्त्वया
एषोऽहमेव धर्मात्मा त्रिषु लोकेष्वपि प्रभो ! ।
त्वां विचिन्वन्तमधुनामामन्विष्यागतोऽसि यत् ॥ ४० ॥
त्वत्प्रसादात्पुरैवाऽहंप्राप्ताखिलमनोरथः । नपश्यामिविचिन्त्यापिप्राप्यंसम्प्रतिमाधव
तथापिचापलादेतत्तवविज्ञाप्यते प्रभो !। त्वत्पादाम्बुजयोर्भक्तिमेवं कुरुनिरन्तरम्

अवधारय चैतत्त्वं सुरप्रार्थनया मया । नदीसुवर्णमुखरीस्नातावौघविनाशिनी ॥ ४८॥
सा भवच्छैलकटकसमासन्ना समागता । तां कृतार्थय लोकेश ! त्वदनुग्रहवृत्तिभिः

सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा ये वेङ्कटे स्थितम् ।
पश्यन्ति भुक्तिमुक्त्योस्तुभूयास्तुर्भाजनानि ते ॥ ४९ ॥

अल्पायुषो नरा मूढाज्ञानयोगपरिच्युताः । न शक्नुवन्तित्वांद्रष्टुं व्रताध्ययनकर्मभिः
सदाऽस्मिन्नास्थितः शैलेसर्वेषांचजगद्गुरो । प्रसादसुमुखोदेवकांक्षितार्थप्रदोभव

श्रीभगवानुवाच

यत्प्रार्थितं त्वया विप्र! तत्तथैव भविष्यति । नूनमप्रतिमालोकेमयिभक्तिःकृताऽत्वया
जाह्नवीवनदी सेयंसुवर्णमुखरीमुने । स्यादाशास्यासुराणांच वाञ्छितश्रीविधायिनी

स्वामिपुष्करिणीचेयंनदीमूर्त्यासमन्विता ।
सङ्क्रमिष्यति तां दिव्यां नदीं तीर्थौघसंश्रयाम् ॥ ५० ॥

वैकुण्ठनाम्नि शैलेऽस्मिन्नद्यप्रभृति सर्वदा । कृतावासो भविष्यामि मुने प्रार्थनयातव
सुवर्णमुखरीस्नानक्षालितावौघकर्दमाः । अस्मिन्वैकुण्ठशैलेमां ये पश्यन्तिसमाहिताः
भुवि पुत्रादिसम्पन्नाः सर्वैश्वर्यसमन्विताः । मृतास्त्रिविष्टपे भोगानाकल्पमनुभूय च
पुनरावृत्तिरहितंकेवलानन्दभासुरम् । मत्पदं समवाप्स्यन्तिनाऽत्र कार्या विचारणा ॥

मां द्रष्टुमागतान्सर्वान्प्रतीक्ष्यामीप्सितैः शुभैः ।
योजयिष्यामि सततं त्वद्वचो गौरवान्मुने ! ॥ ५५ ॥
पुत्रार्थिनांवहून्पुत्रान्धनानिचधनार्थिनाम् ।
तथैवाऽऽरोग्यकामानां रोगशान्तिं गरीयसीम् ॥ ५६ ॥

तीव्रापत्परिभूतानांतथैवापन्निवारणम् । दास्याम्यभीप्सितान्भोगान्दुर्लभानपिसर्वदा
ये यान्कामानपेक्ष्येह प्रेक्षन्तेमांसमागताः । अवाप्नुवन्तितेसर्वेतांस्तान्कामान्नसंशयः
स्थितावायत्रकुत्राऽपिमांस्मरन्तिनरोत्तमाः । तेसर्वेवाञ्छितांसिद्धिंलभन्तेमत्प्रसादतः

भरद्वाज उवाच

इत्युक्त्वा तंमुनिंदेवः शङ्खमालोक्यभूपतिम् । शृण्वतांब्रह्ममुख्यानामिदंवचनमब्रवीत्

श्रीभगवानुवाच

प्रीतोऽस्मि शङ्ख! भक्त्याते वृणीष्वाऽभीप्सितं वरम्।
ददामि वरदोऽहं ते कशिष्ठस्य तपस्यतः ॥ ६१ ॥

शङ्ख उवाच

न याचेऽन्यन्महाबाहो! त्वत्पादाम्बुजसेवनात्।
याम्प्राप्नुवन्ति त्वद्भक्तास्तां याचे गतिमुत्तमाम् ॥ ६२ ॥

श्रीभगवानुवाच

यत्प्रार्थितं त्वया शङ्ख! तत्तथैव भविष्यति। मत्सेवायोगभव्यानामलभ्यंकिमुविद्यते
आकल्पमिन्द्रलोकस्थो ह्यप्सरोगणसेवितः।
भुक्त्वा बहुविधान्भोगांस्ततो मल्लोकमेष्यसि ॥ ६४ ॥
एवं ददौ वरानिष्टाञ्छङ्खाय पृथिवीपते!। नारायणो जगद्योनिर्भजतां कल्पभूरुहः ॥
ततो ब्रह्मादिकान्सर्वान्विसृज्य कमलेक्षणः। संस्तूयमानसैर्भक्तयातत्रैवाऽन्तर्दधेप्रभुः

भरद्वाज उवाच

वेङ्कटाद्रेःप्रभावोऽयमाख्यातोभवतेऽर्जुन!। नराःपापैः प्रमुच्यन्तेश्रुत्वेमांपावनींकथाम्
वाराहंरूपमुत्सृज्यब्रह्मणाऽभ्यर्थितोहरिः। मुमोदाऽत्राऽद्भुताकारोमायया मोहयञ्जगत्
पश्चादगस्त्यशङ्खाभ्यां प्रार्थितः सुखदर्शनम्। ददौनितान्तसुभगंशान्तंभोगात्मकंवपुः
नारायणंवेङ्कटाद्रिंस्वामिपुष्करिणींतथा। इमामाख्यांचसंस्मृत्यमुच्यन्तेपातकैर्जनाः
वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं ब्रह्माण्डेनास्तिकिञ्चन। वेङ्कटेशसमोदेवो न भूतो न भविष्यति
वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं न भूतं न भविष्यति। स्वामितीर्थसरस्तुल्यंनकुत्रापिचविद्यते
प्रातरुत्थाय ये नित्यंवेङ्कटेशं स्मरन्ति वै। तेषांकरस्थामोक्षश्रीर्नात्रकार्याविचारणा
स्वामिपुष्करिणीतीर्थे स्नात्वा सर्वात्मकं हरिम्।
ये वा पश्यन्ति नियता वराहाचलवासिनम् ॥ ७४ ॥
तेऽश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च। प्राप्नुवन्ति फलं पूर्णं नाऽत्रकार्या विचारणा
वेङ्कटाचलमाहात्म्यं येऽश्रृण्वन्ति नरोत्तमाः। तेषाम्मुक्तिश्चभुक्तिश्च इह लोके परत्र च

वेङ्कटाचलमाहात्म्यं संक्षिप्य कथितं तव । अतः परं महानद्याः प्रभावःकथ्यतेऽर्जुन

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायामगस्त्यशङ्खादितपस्तुष्ट-श्रीवेङ्कटेशाविर्भावादिमाहात्म्यवर्णनंनामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

पुत्रार्थमञ्जनाकृततपःप्रकारवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

पुत्रहीनाऽञ्जना पूर्वं दुःखितातपसि स्थिता । तांदृष्ट्वामुनिशार्दूलोमतङ्गोविष्णुतत्परः
अञ्जनाख्यामुवाचेदमत्युग्रे तपसि स्थिताम् ॥ २ ॥

मतङ्ग उवाच

समुत्तिष्ठाऽञ्जने देवि! किमर्थं तपसि स्थिता । वद देवि! महाभागेकार्यं तव वरानने

अञ्जनोवाच

मतङ्ग मुनिशार्दूल ! वचनं मे शृणुष्व ह ।
पिता मे केसरी नाम राक्षसः शिवतत्परः ॥ ४ ॥
शैवं घोरं तपश्चक्रे पुत्रार्थं तु सुदुष्करम् । पार्वतीसहितः शम्भुर्वृषभोपरि संस्थितः
प्रादुरासीत्तदा देवो ददौ तस्मै वरं शुभम् ॥ ६ ॥

शम्भुरुवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामिविधिना निर्मितं तव । अस्मिञ्जन्मन्यपुत्रत्वंतथाप्यन्यद्ददामिते
विश्रुता सर्वलोकेषु पुत्री तव भविष्यति ।
तस्याः पुत्रो महाबुद्धिस्तव प्रीतिं करिष्यति ॥ ८ ॥

इति तस्मै वरं दत्त्वा तत्रैवाऽन्तदधे हरः । मां लब्ध्वामत्पिताविप्रःकृतकृत्योबभूवह

ततःकालान्तरे विप्रः केसर्याख्यो[*] महाकपिः । ययाचेमांददस्वेतिपितरंमेततःपिता
तस्मै मां दत्तवांश्चैव पारिबर्हं ददौ च सः । गवां लक्षसहस्राणि गजलक्षं महामनाः
वाजिनामर्बुदं चैव रथानामर्बुदं तथा। वस्त्ररत्नान्यनेकानि दासदासीसहस्रकम् ॥१२
अन्तः पुरचरीर्नारीर्नृत्यगीतविशारदाः । ददौ वासःसहस्रं च मया साकं महामते ॥
पत्या मे रममाणाया भूयान्कालोगतो मुने !। अपुत्राद्दुःखिताविप्रव्रतानिविविधानिच
कृतानिच मयातत्रकिष्किन्धायांमहापुरि । माघेमासिचविप्रेन्द्र! वैशाखेकार्त्तिकेतथा
स्नानदानव्रतादीनि चातुर्मास्यव्रतं तथा । नमस्कारस्तथा विप्र प्रदक्षिणमनुत्तमम् ॥
शालग्रामान्नदानानि दीपदानं तथैव च । गोदानं तिलदानं च वस्त्रदानं महामुने ॥१७
भूदानंवारिदानंचदत्त्वापुष्पादिकंमुने !। यानियानिचमुख्यानिवैष्णवानि व्रतानि च ।
मया कृतानि सर्वाणि सत्पुत्रफलकाङ्क्षया ॥ १८ ॥
श्रवणादिषु यत्प्रोक्तं व्रतं विप्रैर्महात्मभिः । मया कृतश्च विप्रेन्द्र वैशाखेकार्तिके तथा
यानियानिचमुख्यानिफलानिविविधानिच। मयादत्तानिसर्वाणिसत्पुत्रफलकाङ्क्षया
मया कृतान्य संख्यानिव्रतानि विविधानि च ।
पुत्रं तथाप्यलब्ध्वाऽहं दुःखिता तपसि स्थिता ॥ २१ ॥
भविष्यति कथं विप्र! पुत्रस्त्रैलोक्यविश्रुतः । याचेऽहं तु मुनिश्रेष्ठ प्रणताचतवाऽग्रतः
वद त्वं मुनिशार्दूल ! दीनाऽहं तपसि स्थिता ॥ २३ ॥

श्रीसूत उवाच

एवं वदन्तीं तां प्राह मतङ्गो मुनिसत्तमः । शृणु मद्वचनं देवि! पुत्रपौत्रप्रदायकम् ॥
इतो दक्षिणदिग्भागे दशयोजनदूरतः । घनाचल इति ख्यातो नृसिंहस्य निवासभूः
तस्योपरि महाभागे ब्रह्मतीर्थं मनोहरम् । तस्याऽपि पूर्वदिग्भागे दशयोजनमात्रतः॥
सुवर्णमुखरी नाम नदीनां प्रवरा नदी । तस्या एवोत्तरे भागे वृषभाचलनामतः ॥२७

---

[*] एतेन—अञ्जनायाः पिता केसरीनाम राक्षसं, अञ्जनायाः पतिः केसरीनामवानरश्च इति केसरीत्यभिधाश्वशुरजामात्रोः राक्षसवानरयोः समानैवाऽऽसीत् ।

तस्याऽग्रेसरसिनाम्नास्वामिपुष्करिणीशुभा । गत्वादृष्ट्वाशुभंतोयंमनःशुद्धिंगमिष्यसि
तत्र स्नात्वा विधानेन वराहं तम्प्रणम्य च । वेङ्कटेशं नमस्कृत्य ततो गच्छ वरानने!॥
उत्तरेस्वामितीर्थस्य सिंहशार्दूलसंयुते । चूतपुन्नागपनसैर्वकुलामलकैः शुभैः ॥ ३० ॥
चन्दनागुरुनिम्बैश्च तालहिन्तालकिंशुकैः । कपित्थाश्वत्थविल्वैश्चइङ्गुदैश्च वरानने
एतादृशैर्महापुण्यैर्वृक्षैश्च विविधैः शुभैः । वियद्गङ्गेति विख्यातं तीर्थमेकं विराजते

तस्मिंस्तीर्थेऽञ्जने देवि ! सङ्कल्पविधिपूर्वकम् ।
स्नात्वा पीत्वा शुभं तीर्थं तीर्थस्याऽभिमुखी स्थिता ॥ ३३ ॥

वायुमुद्दिश्य हे! देवि! तपः कुरु वरानने !। देवैश्च राक्षसैर्विप्रैर्मनुजैर्मुनिसत्तमैः ॥
भृङ्गैः पक्षिभिरस्त्रैश्च शस्त्रैश्च विविधैः शुभैः । अवध्यो भवितापुत्रस्तपसातेनसंशयः

श्रीसूत उवाच

इति प्रोक्ताऽञ्जनादेवी तम्प्रणम्य पुनः पुनः । भर्त्रा साकंययावाशुवेङ्कटाचलसञ्ज्ञकम्

कापिलं तीर्थमासाद्य स्नात्वा निर्मलमानसा ।
वेङ्कटाद्रिं समारुह्य स्वामिपुष्करिणीं ययौ ॥ ३७ ॥

स्नात्वा वराहमानम्य वेङ्कटेशकृतानतिः । मतङ्गस्य ऋषेर्वाक्यं स्मरन्ती च मुहुर्मुहुः

वियद्गङ्गां ययावाशु चाऽञ्जना मञ्जुभाषिणी ।
स्नात्वा पीत्वा शुभं तोयं तीरे तस्यतदुन्मुखी ॥ ३९ ॥

प्राणवायुं समुद्दिश्य तपश्चक्रे यतव्रता । फलाहारा जलाहारा निराहारा ततः परम् ॥
सहस्राब्दं तपश्चक्रे न्यस्तनासाग्रदृष्टिका । वयस्या विपुला नाम शुश्रूषामकरोच्छुभा
वर्षाणांचसहस्रान्ते वायुर्देवो महामतिः । प्रादुरासीत्तदा तां वै भाषमाणो महामतिः
मेषसङ्क्रमणं भानौ सम्प्राप्ते मुनिसत्तमाः । पूर्णिमाख्येतिथौ पुण्येचित्रानक्षत्रसंयुते
तवेप्सितमहं दास्ये वरं वरय सुव्रते !। इति तद्वचनं श्रुत्वा ततः प्राहाऽञ्जना सती ॥
पुत्रं देहि महाभाग! वायो देव महामते । तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मातरिश्वाऽब्रवीत्ततः
पुत्रस्तेऽहंभविष्यामिख्यातिंदास्येशुभानने । इतितस्यैवरंदत्त्वातत्रैवाऽऽस्तेमहाबलः

तदा ब्रह्मादयो देवा इन्द्राद्या लोकपालकाः ।

वसिष्ठाद्या महात्मानः सनकाद्याश्च योगिनः ॥ ४७ ॥

व्यासादयश्च विप्रेन्द्रा लक्ष्म्या साकं जगत्पतिः ।

मुनिपत्न्यो देवपत्न्य ऋषिपत्न्यस्तथैव च ॥ ४८ ॥

स्वंस्वंवाहनमारुह्यदारभृत्यसुतादिभिः । आगतास्तेमहामानोद्रष्टुंतांतपसिस्थिताम्

आश्चर्यमाश्चर्यमिति ब्रुवाणा ब्रह्मादयो देवगणाश्च सर्वे ।

आलोकयन्तो दिवि दूरतस्ते स्थितास्तदा ब्रह्ममहेशमुख्याः ॥ ५० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये अञ्जनातपःकरणप्रकारादिवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

चत्वारिंशोऽध्यायः

व्यासप्रोक्ताकाशगङ्गास्नानकालनिर्णयवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

अञ्जनाऽपि वरं लब्ध्वाभर्त्रा साकंमुमोद ह । ब्रह्मादीनागतान्दृष्ट्वाविस्मयाविष्टमानसा

पत्या साकं ततः स्वस्था चाऽञ्जना मञ्जुभाषिणी ।

ब्रह्मादिभिरनुज्ञातो व्यासो वेदविदाम्वरः ॥ २ ॥

अञ्जनां तामुवाचेदं मेघगम्भीरया गिरा ॥ ३ ॥

अञ्जने ! शृणुमद्वाक्यंसर्वलोकोपकारकम् । मतङ्गस्य ऋषेर्वाक्यं श्रुत्वानिमलचेतसा

यस्मात्तु वेङ्कटं गत्वा तपः कृत्वा सुदुष्करम् ।

प्रसूयते त्वया पुत्रः शूरस्त्रैलोक्यविक्रमः ॥ ५ ॥

इदं तीर्थोत्तमं तस्मात्प्रत्यक्षदिवसे तव । गङ्गाद्यानिच तीर्थानि समायान्ति जगत्त्रये

वेङ्कटाद्रिसमं तीर्थं ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन ।

तत्राप्यत्यन्तपुण्या वै स्वामिपुष्करिणी शुभा ॥ ७ ॥

ततोऽधिकमिदं तीर्थं प्रत्यक्षंदिवसेतव । स्नानार्थं ये समायान्ति चित्राऋक्षसमन्विते

मेषं पूषणि सम्प्राप्ते पूर्णिमायां शुभे दिने ।
शृणु तेषां फलं देवि ! वक्ष्यामि तव सुव्रते !॥ ६ ॥

गङ्गादिसर्वतीर्थेषु द्वादशाब्दं वरानने !। यत्फलं विद्यते देवि ! तत्फलं भवति ध्रुवम्
दानानि कुर्वतांपुंसां तेषाशृणुफलोन्नतिम् । स्थानेतूक्तं फलंदेविविद्धितेषां वरानने

अञ्जनोवाच

कार्याणि यानि दानानि वेङ्कटाद्रौ नगोत्तमे । तानिसर्वाणि विप्रेन्द्रवदवेदविदाम्वर!

व्यास उवाच

अन्नदानं वस्त्रदानं द्वयमेतत्प्रशस्यते । पितुः श्राद्धं विशेषेण वेङ्कटाद्रौ नगोत्तमे ॥

सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति प्रीतये मधुघातिनः ।
सर्वलोकं समासाद्य मोदन्ते मुनिसत्तमाः ॥ १४ ॥

शालग्रामशिलादानं ये कुर्वन्ति नगोत्तमे । अङ्गभङ्गमवाप्नोति स्वानुभूतिं च विन्दति
यो ददाति द्विजेन्द्रायगोदानं चकुटुम्बिने । रोमसङ्ख्याप्रमाणेनविष्णुलोकेविराजते

भूमिं ददाति यो देवि! ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।
तस्य पुण्यफलं वक्तुं कः शक्तो दिवि वा भुवि ॥ १७ ॥

कन्यांददातियो देवि! श्रोत्रियायद्विजातये । विष्णुलोकंसमासाद्यमोदतेपितृभिःसह
प्रपां कुर्वन्ति ये देवि शीतलोदकसंयुताम् । तेषां पुण्यफलं वक्तुंशेषेणाऽपिनशक्यते
तिलं ददाति विप्राय श्रोत्रियायकुटुम्बिने । सर्वपापविनिर्मुक्तोविष्णुलोकंसगच्छति

धान्यदानं प्रशंसन्ति विप्रा वेदविदाम्वराः ।
बहुपुत्रा भविष्यन्ति धान्यदानं प्रकुर्वताम् ॥ २१ ॥

गन्धचम्पकपुष्पादीञ्छत्रव्यजनचामरान् । ताम्बूलघनसारादीन्यो ददाति द्विजातये ॥

भुक्त्वा भोगं चिरं कालं स्वर्गलोकं ततो व्रजेत् ।
दिव्यवर्षसहस्रञ्च भुक्त्वा भोगाननेकशः ॥ २३ ॥

सार्वभौमस्ततो भूत्वा तत्र भुक्त्वाचिरमहीम् । ततोविप्रत्वमासाद्यवेदवेदान्तपारगः

ततो मुक्तिं समायाद्धि प्रसादाच्चक्रपाणिनः। इत्येतत्कथितं देवि वेङ्कटाचलवैभवम्
य एतच्छृणुयान्नित्यंयश्चापिपरिकीर्तयेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तोविष्णुलोकंसगच्छति
इत्येतत्कथितंपूर्वं व्यासेनैव महात्मना। शृणुयाद्वा पठेद्वाऽपि कृतकृत्यो भविष्यति
तस्यैव वंशजाः सर्वे मुक्तिं यान्ति न संशयः ॥ २८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येऽञ्जनावरलब्ध्याकाशगङ्गास्नानकालनिर्णयादिवर्णनंनाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

समाप्तमिदं स्कान्दपुराणान्तर्गतं श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यम् ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे द्वितीये वैष्णवखण्डे प्रथमोभूमिवाराहखण्डः समाप्तः ॥

——:०:——

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

* श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय नमः *

अथ स्कन्दपुराणस्थ वैष्णवखण्डे

द्वितीयमुत्कलखण्डम्



पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) क्षेत्रमाहात्म्यम्

प्रथमोऽध्यायः

ब्रह्मप्रार्थनया विष्णोराविर्भाववर्णनम्

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

मुनय ऊचुः

भगवन्सर्वशास्त्रज्ञ! सर्वतीर्थमहत्त्ववित् । कथितं यत्त्वया पूर्वं प्रस्तुते तीर्थकीर्तने ॥
पुरुषोत्तमाख्यं सुमहत्क्षेत्रं परमपावनम् ॥ २ ॥
यत्राऽऽस्ते दारवतनुः श्रीशोमानुषलीलया । दर्शनान्मुक्तिदः साक्षात्सर्वतीर्थफलप्रदः
तन्नो विस्तरतोब्रूहितत्क्षेत्रंवे.ननिर्मितम् । ज्योतिःप्रकाशोभगवान्साक्षान्नारायणःप्रभुः
कथं दारुमयस्तस्मिन्नास्ते परमपूरुषः । वद ,त्वं वदतांश्रेष्ठ! सर्वलोकगुरो मुने !॥
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि नः ।

जैमिनिरुवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे रहस्यं परमं हि तत् ॥ ६ ॥

अवैष्णवानां श्रवणे भक्तिस्तत्र न जायते। यस्य सङ्कीर्तनादेव सकलं लीयते तमः
यद्यप्येष जगन्नाथः सर्वगःसर्वभावनः। स्कन्देनकथितं पूर्वं श्रुत्वाशम्भोर्मुखाम्बुजात्
सन्ति क्षेत्राणि चाऽन्यानि सर्वपापहराणि वै ॥ ८ ॥
एतत्क्षेत्रंपरंचाऽस्यवपुर्भूतंमहात्मनः। स्वयंवपुष्मांस्तत्रास्तेस्वनाम्नाख्यापितंहितत्
तत्र ये स्थातुमिच्छन्ति तेपिसर्वेंहतांहसः। किंपुनस्तत्रतिष्ठन्तोयेपश्यन्तिगदाधरम्
अहोतत्परमंक्षेत्रं विस्तृतं दशयोजनम्। तीर्थराजस्य सलिलादुत्थितं वालुकाचितम्
नीलाचलेनमहतामध्यस्थेनविराजितम्। एकस्तनमिव पृथ्व्याः सुदूरात्परिभावितम्
वाराहरूपिणापूर्वंसमुद्धृत्यवसुन्धराम्। सर्वतः सुसमां कृत्वापर्वतैःसुस्थिरीकृताम्
सृष्ट्वा चराचरं सर्वं तीर्थानि सरिदब्धिकान्।
क्षेत्राणि च यथास्थानं संनिवेश्य यथा पुरा ॥ १४ ॥
ब्रह्मा विचिन्तयामाससृष्टिभारनिपीडितः। पुनरेतां क्रियांगुर्वीं नारभेयकथन्त्विति:
तापत्रयाभिभूताहि मुच्यन्ते जन्तवःकथम्। एवं चिन्तयमानस्यमतिरासीत्प्रजापतेः
मुक्त्येककारणं विष्णुं स्तोष्येऽहं परमेश्वरम्।

ब्रह्मोवाच

नमस्ते जगदाधार! शङ्खचक्रगदाधर ॥ १७ ॥
यन्नाभिपङ्कजादेव जातोऽहं विश्वसृष्टिकृत्। परमार्थस्वरूपं ते त्वं वै वेत्सिजगन्मय
यन्माययाजगत्सर्वंनिर्मितंमहदादिकम्। यन्निःश्वाससमुद्भूतं शब्दब्रह्म त्रिधाऽभवत्
उपजीव्यतद्देवाऽहमसृजम्भुवनानि वै। त्वत्तोनाऽन्यः स्थूलसूक्ष्मदार्वह्रस्वादिकिञ्चन
विकारभेदैर्भगवंस्त्वमेवेदं चराचरम्। कटकादि यथा स्वर्णं गुणत्रयविभागशः ॥२१
स्रष्टासृज्यंत्वमेवाऽत्रपोष्टापोष्यञ्जगत्प्रभो। आधारो ध्रियमाणश्च धर्ता त्वंपरमेश्वर
त्वत्प्रेरितमतिः सर्वश्चरते च शुभाऽशुभम्।
ततः प्राप्नोति सदृशीं त्वयैव विहितां गतिम् ॥ २३ ॥
जगतोऽस्य गतिर्भर्त्ता साक्षी त्वं परमेश्वर!। चराचरगुरो! सर्वजीवभूतकृपामय!
प्रसीदाऽऽद्यजगन्नाथ! नित्यं त्वच्छरण्यस्य मे ॥ २४ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं संस्तूयमानश्च ब्रह्मणा गरुडध्वजः। नीलजीमूतसङ्काशःशङ्खचक्रादिचिह्नितः
पतगेन्द्रसमारूढः स्फुरद्वदनपङ्कजः। आविरासीद् द्विजश्रेष्ठा विवक्षुः स्फुरिताधरः

श्रीभगवानुवाच

यदर्थं मां स्तुषे ब्रह्मन्नशक्यः प्रतिभाति सः ॥ २७ ॥

अनाद्यविद्यासुदृढा दुश्छेद्याकर्मबन्धनैः। प्रभवन्त्यां कथं तस्यां हीयेतेमृतिजन्मनी
तथाऽपि चेदत्रकृतेव्यवसायस्तवाऽनघ। क्रमेण येन हि भवेत्तत्ते वक्ष्यामि कारणम्
अहं त्वं त्वमहं ब्रह्मन्मन्मयश्चाखिलञ्जगत्। रुचिस्ते यत्र मे तत्र नान्यथेतिविचारय
सागरस्योत्तरेतीरे महानद्यास्तु दक्षिणे। स प्रदेशः पृथिव्यां हि सर्वतीर्थफलप्रदः
तत्र ये मनुजा ब्रह्मन्निवसन्ति सुबुद्धयः। जन्मान्तरकृतानाञ्च पुण्यानां फलभागिनः
नाऽल्पपुण्याः प्रजायन्ते नाऽभक्ता मयिपद्मज। एकाम्रकाननाद्यावद्दक्षिणोदधितीरभूः
पदात्पदाच्छ्रेष्ठतमः क्रमात्परमपावनः। सिन्धुतीरे तु यो ब्रह्मन्राजते नीलपर्वतः ॥३४

पृथिव्यां गोपितं स्थानं तव चाऽऽपि सुदुर्लभम्।
सुरासुराणां दुर्ज्ञेयं माययाऽऽच्छादितं मम ॥ ३५ ॥

सर्वसङ्गपरित्यक्तस्तत्र तिष्ठामि देहभृत्। क्षराक्षरावतिक्रम्य वर्त्तेऽहं पुरुषोत्तमे॥
सृष्ट्यालयेननाक्रान्तंक्षेत्रम्मेपुरुषोत्तमम्। यथामां पश्यसिब्रह्मन्रूपं चक्रादिचिह्नितम्
ईदृशं तत्र गत्वैव द्रक्ष्यसे मां पितामह!। नीलाद्रेरन्तरभुवि कल्पन्यग्रोधमूलतः॥

वारुण्यां दिशि यत्कुण्डं रौहिणं नाम विश्रुतम्।
तत्तीरे निवसन्तं मां पश्यन्तश्चर्मचक्षुषा ॥ ३६ ॥

तदम्भसाक्षीणपापा मम सायुज्यमाप्नुयुः। तत्र व्रज महाभाग दृष्ट्वा मां ध्यायतस्तव
प्रकाशं यास्यते तस्य क्षेत्रस्य महिमाऽपरः। आश्चर्यभूतःपरमस्तवाऽपिचभविष्यति

श्रुतिस्मृतीहासपुराणगोपितं मन्मायया तन्न हि कस्य गोचरम्।
प्रसादतो मे स्तुवतस्तवाऽधुना प्रकाशमायास्यति सर्वगोचरम् ॥ ४२ ॥

व्रतेषु तीर्थेषु च यज्ञदानयोः पुण्यं यदुक्तं विमलात्मनां हि तत्।

अहर्निवासाल्लभतेऽत्र सर्वं निःश्वासवासात्खलु चाऽऽश्वमेधिकम् ॥ ४३ ॥

इत्यादिश्य विधिं विप्रास्तदाऽसौ पुरुषोत्तमः । पश्यतस्तस्य तत्रैव प्रभुरन्तरधीयत

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनऋषिसम्वादे ब्रह्मप्रार्थनया विष्णोराविर्भाववर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्मणःपुरुषोत्तमक्षेत्रागमनान्तरंकाकमुक्तिपूर्वकंयमस्तुतिवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

ततो ब्रह्माऽगमत्तूर्णं यत्राऽऽस्ते भगवान्स्वयम् ।
स्तवान्तेऽसौ यथा दृष्टस्तथाऽद्राक्षीत्प्रभुं तदा ॥ १ ॥

प्रत्यभिज्ञानसंहृष्टस्तं दृष्ट्वा परमेश्वरम् । अत्यद्भुतज्ञाननिधिर्बभूवाऽसौ द्विजोत्तमाः !

यावत्स्तोतुं समारेभे हर्षसम्फुल्ललोचनः । तावदेव समागत्य कुतश्चिद्वायसोत्तमः ॥

कारुण्योदकसम्पूर्णे तस्मिन्कुण्डे निमज्य तम् ।
विलोक्य माधवं नीलरत्नकान्ति कृपानिधिम् ॥ ४ ॥

काकदेहं समुत्सृज्यलुठमानोमुहुःक्षितौ । शङ्खचक्रगदापाणिस्तस्यपार्श्वेव्यवस्थितः

तिरश्चस्तां गतिं दृष्ट्वा योगीन्द्राणां सुदुर्लभाम् ।
मेनेऽसौ मुनयः सृष्टिः क्रमात्क्षीणा भविष्यति ॥ ६ ॥

मनुष्योऽधिकृते मुक्तौ वेदान्ते संशयोऽभवत् ।
नकिञ्चिद् दुर्लभं चेह विष्णुभक्तस्य विद्यते ॥ ७ ॥

प्रत्यक्षोऽभूद्द्विजश्रेष्ठाः पुराणपुरुषोदिते । सङ्कीर्त्ययन्नामनरःसर्वपापैः प्रमुच्यते ॥८

तस्य सन्दर्शने विप्रा मुक्तिः किं खलु दुर्लभा ।

मनसा ध्याययन्विष्णुं त्यजन्प्राणान्विमुच्यते ॥ ९ ॥

साक्षात्कृतोभगवतःकिंचित्रम्मुक्तिमेतियत् । पुरुषोत्तमसञ्ज्ञस्यक्षेत्रस्यमहिमाऽद्भुतः
यत्र काकोऽपिचहरिंसाक्षात्पश्यतिभोद्विजाः । सुदुर्लभंक्षेत्रमिदमज्ञानाश्वविमोचनम्

अहो क्षेत्रस्य माहात्म्यं काकस्याऽपि विमुक्तिदम् ।
किं पुनः सततं शान्तिवैराग्यज्ञानसंयुजाम् ॥ १२ ॥

ऋषयःऊचुः

नीलाद्रौ माधवं दृष्ट्वा किं चकार पितामहः । तद्दर्शनेक्षणान्नष्टदेहबन्धञ्च वायसम् ॥

जैमिनिरुवाच

अत्यद्भुतमयंदृष्ट्वायावद्ध्यायति माधवम् । तावत्पितृपतिः स्वाऽधिकारसंयमनाकुलः
दीनाननोनिःश्वसन्वैतत्र यातस्त्वरान्वितः । नीलाद्रौमाधवंदृष्ट्वा साष्टाङ्गम्प्रणिपत्यच

तुष्टाव स जगन्नाथं स्वाधिकारदृढस्थितौ ।

यम उवाच

नमस्ते देवदेवेश ! सृष्टिस्थित्यन्तकारण !॥ १६ ॥

त्वयिप्रोतमिदंसर्वंसूत्रेमणिगणायथा । त्वयाधृतंत्वयासृष्टन्त्वयाचाऽऽप्यायितंजगत्

चन्द्रसूर्यादिरूपेण नित्यम्भासयसेऽखिलम् ।
विश्वेश्वरं जगद्योनिं विश्वावासं जगद्गुरुम् ॥ १८ ॥

विश्वसाक्षिणमाद्यन्तवर्जितं प्रणमाम्यहम् । नमः परमकारुण्यजलसम्भृतसिन्धवे ॥

परापरपरातीतविभवे विश्वसम्भवे ॥ २० ॥

भवसन्तापनीहारभानवे दीनबन्धवे । स्वमायारचिताशेषविभवे गुणरज्जवे ॥ २१ ॥
नमः कमलकिञ्जल्कपीतनिर्मलवाससे । महाहवरिपुस्कन्धकृन्तचक्राय चक्रिणे ॥२२॥
दंष्ट्रोद्धृतक्षितिभृते त्रयीमूर्तिमते नमः । नमो यज्ञवराहाय चन्द्रसूर्याग्निचक्षुषे ॥
नरसिंहाय दंष्ट्रोग्रमूर्तिद्रावितशत्रवे । यदपाङ्गविलासैकसृष्टिस्थित्युपसंहृतिः ॥
उच्चावचात्मको ह्येष भवः सम्भवते मुहुः । तममुं नीलमेघाभं नीलाश्ममणिविग्रहम्
नीलाचलगुहावासं प्रणमामि कृपानिधिम् । शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं शुभदायिनम् ॥

प्रणताशेषपापौघदारिणं मुरवैरिणम् । नमस्ते कमलापाङ्गसङ्गसंस्कारचक्षुषे॥ २७ ॥
श्रीवत्सकौस्तुभोद्भासिमनोहृद्व्यूढवक्षसे । यत्पादपङ्कजद्वन्द्वसंश्रयैश्वर्यभागिनी ॥
श्रीः संश्रिता जनैः शश्वत्पृथगैश्वर्यदायिनी ।
या परापरसम्भिन्ना प्रकृतिस्ते सिसृक्षया ॥ २६ ॥
निर्विकारस्वरूपम्ब्रह्मविकारिसिसृजेऽञ्जसा । सर्वलक्षणसम्पूर्णां लक्षितां शुभलक्षणैः
लक्ष्मीशोरसि नित्यस्थां लक्ष्मीं ताम्प्रणमाम्यहम् ॥ ३० ॥

जैमिनिरुवाच

तदेवंधर्मराजेनश्रीकान्तःपरितोषितः । पार्श्वस्थांवल्लकीहस्तांनेत्रान्तेनादिशच्छ्रियम्
तेन सम्भाविता लक्ष्मीर्भवदुःखविनाशिनी । शुभायसर्वलोकानांयमम्प्रोवाचलीलया

लक्ष्मीरुवाच

यदर्थमावांसंस्तौषिक्षेत्रेऽस्मिन्दुर्लभं हि तत् । अत्याज्यमावयोरेतत्क्षेत्रंश्रीपुरुषोत्तमम्
कल्पावसानेऽप्यावां वै ध्रियेतेपरमेष्ठिना । ब्रह्मादिदिक्प्रभूणांहिस्वामित्वंनेहविद्यते
नेह कर्मपरीपाकाः सम्भवन्ति कदाचन । अत्र प्रवसतां नृणां तिरश्चामपिदुष्कृतम्
दह्यते ज्वलिताग्नौ हि तूलराशिर्यथा भृशम् ।
ये बद्धा पापपुण्याभ्यां निगडाभ्यामहर्निशम् ॥ ३६ ॥
तेषां संयमितःत्वंहियमःपूर्वंविनिर्मितः । अत्र साक्षाद्वपुष्मन्तं नीलेन्द्रमणिमञ्जुलम्
दृष्ट्वा नारायणं देवं मुच्यते कर्मबन्धनात् । अतोऽन्यतः कर्मभूमौ प्रभुस्त्वंसूर्यसम्भव!
वैक्लव्यं क्षेत्रराजेऽस्मिन्मा गास्त्वंयम संयमे । तवाऽपि भगवानेषविधाताप्रपितामहः
तिर्यञ्चं विष्णुसारूप्यं प्राप्तं पश्यतिकौतुकात् । एष कर्मपरीपाकं सर्वेषांवेत्तिकञ्जजः
ज्ञात्वा क्षेत्रस्य माहात्म्यं स्तौति देवं गदाधरम् ।
त्वद्वशं गन्तुमुचिता नेह तिष्ठन्ति जन्तवः ॥ ४१ ॥
वैवस्वत! वसन्त्यत्र जीवन्मुक्ता मुमुक्षुवः ।
तया सम्बोधितस्त्वेवं विष्णुना स्त्रीस्वरूपिणा ॥ ४२ ॥
ततोऽद्भुतलज्जाभ्यां विनीतः प्राब्रवीद्यमः ।

यम उवाच

मातस्त्वया यदाज्ञप्तं पुरा नैतन्मया श्रुतम् ॥ ४३ ॥
अज्ञानोपहतो वेद्मि रहस्यं कथमुत्तमम् । यस्य स्वरूपं वेदाश्च न च वेत्ति पितामहः
महिमानं कथन्तस्य वेद्‌म्यहङ्कार मोहितः । यदादिष्टं सुरेशानि! क्षेत्रमेतद्विमुक्तिदम्
सान्निध्याद्वासुदेवस्य ईश्वरेच्छा निरङ्कुशा । अन्यत्र बन्धदोविष्णुरत्रमोक्षंददातियत्
ममाऽपिनिरयाणाञ्चस्रष्टासौत्रिदिवस्यच । मृतानामत्रमुक्तिश्चेत्तन्माभम्वसुविस्तरम्
क्षेत्रसंस्थाप्रमाणं हि तत्र स्थितिफलं हि यत् ।
तीर्थानि कानि सन्त्यत्र किमन्यद्वा रहस्यकम् ॥ ४८ ॥
किमधिष्ठातृकं क्षेत्रं तत्सर्वंकथयस्व मे । तदहं सम्परित्यज्य निर्भयः सञ्चरे यथा ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे यमस्तुति-वर्णनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥

तृतीयोऽध्यायः

लक्ष्म्यायमप्रबोधनावसरेमार्कण्डेयकृताभगवत्स्तुतिवर्णनम्

श्रीरुवाच

साधुते बुद्धिरुत्पन्ना विष्णोःसन्निधिमाश्रिता । अद्भुतं कथयाम्येतत्क्षेत्रस्यरविनन्दन
यथाऽहं भगवद्वक्षःस्थलस्था ददृशे पुरा । चराचरे जगत्यस्मिन्प्रलीने प्रलये यम !२
एतत्क्षेत्रमहं चैव द्वे एवोपस्थिते यदा । स तदा सप्तकल्पायुर्मृकण्डोरात्मजो मुनिः
प्रणष्टे स्थावरचरे निमग्नः प्रलयार्णवे । नावस्थानमवाप्यैव शर्म लेभे न कुत्रचित् ॥
जलार्णवे भ्राम्यमाणः प्रलये स इतस्ततः । पुरुषोत्तमसादृश्ये क्षेत्रे स वटमैक्षत ॥
उत्प्लुत्योत्प्लुत्य मूलं तु न्यग्रोधस्य समीपतः ।
शुश्राव बालवचनं मार्कण्डेय! ममाऽन्तिकम् ॥ ६ ॥

प्रविश्य दुःखमतुलं जहीहि खलु मा शुचः । तच्छ्रुत्वा चित्रवचनमप्रतर्क्यं तदामुनिः
विस्मयं परमं लेभे स्वदुःखं नाऽभ्यचिन्तयत् । वारिभिःशीर्यतेनैतद्दह्यतेकालवह्निना
सम्वर्तकादिभिर्नैतच्छोष्यते नाऽपिचाल्यते । एकार्णवे महाघोरेनौरिव क्षेत्र ।ीक्ष्यते
तत्राऽयं यूपसदृशो न्यग्रोधस्तिष्ठते महान् । यं गृहीत्वाक्षेत्रमिदंन्यग्रोधईशितुस्तनुः
महाप्रलयवातेन शाखा नाऽस्य हि कम्पते ।
तस्याऽधस्तात्स हि मुनिः स्थित्वा चैतदचिन्तयत् ॥ ११ ॥
एकार्णवेऽस्मिन्प्रलये नष्टे स्थावरजङ्गमे । भूप्रदेशः स्थिरतरः कथमेष विभाव्यते ॥
यत्राऽयं शाखिप्रवरः कोमलः परिदृश्यते । मार्कण्डेयाऽऽगच्छ मुहुरितिसप्रश्रयं वचः
कुतो निराश्रयमिदंचिन्तयन्निति स प्लवन् । शङ्खचक्रगदापाणिनारायणमलोकयत्
तदङ्कपद्मासनगां मां च वैवस्वतैक्षत । विवशोजलवाताभ्यांतद्वासुस्थोव्यवस्थितः
हृष्टान्तरात्मा स मुनिरावां साष्टाङ्गमानतः । प्रसादनायदेवस्य स्तोत्रमेतदुदाहरत् ॥

मार्कण्डेय उवाच

त्वत्पादपद्मानुसरानुषङ्गं रुद्रेन्द्रपद्मासनसम्पदाढ्यम् ।
त्वद्भक्तिहीनं परितः प्रतप्तं दीनं परित्राहि कृपाम्बुधे ! माम् ॥ १७ ॥
ब्रह्मादिभिर्यत्परिचिर्यमाणं पदाम्बुजद्वन्द्वमचिन्त्यशक्ति ।
श्वःश्रेयसप्राप्तिनिदानतत्त्वं दीनं परित्राहि कृपाम्बुधे ! माम् ॥ १८ ॥
यदङ्गभूतं जगदण्डमेतदनेककोटिप्रगणं विभाति ।
लीलाविलासस्थितिसृष्टिलीनं तन्मां सुदीनं परिरक्ष विष्णो !॥ १६ ॥
एकं सुवर्णं कटकादिभेदैर्नाना यथा वा नभसोदितोऽर्कः ।
आधारवैषम्यजलेषु तादृग्विभाव्यसे निर्गुण एक एव ॥ २० ॥
अशेषसम्पूर्णरुचिप्रहीणोपादानसङ्कल्पविवर्जितोऽपि ।
दीनानुकम्पानुगुणं बिभर्षि युगेयुगे देहमपारशक्ते !॥ २१ ॥
त्वत्पादपद्मं जगदीश! पूर्वमसेव्यतानात्मधिया मया यत् ।
तत्कर्मणा दारुणपाकभाजं दीनं परित्राहि कृपाम्बुधे ! माम् ॥ २२ ॥

अशेषलोकस्थितिसृष्टिलीनविलासि यत्ते त्रिगुणं विभाति ।
वपुर्महात्मन्महदादिहेतुर्हेतोर्नमस्ते प्रकृतेः परस्य ॥ २३ ॥
सर्वत्र गत्वा बृहदप्रमेयं प्रवर्द्धमानं त्वयि बृहितं च ।
तद्ब्रह्मरूपं परिणामहेतुं स्वाध्यात्मविश्वात्मकमाश्रयामि ॥ २४ ॥
एकार्णवे महाघोरे नावस्थातुं प्रदेशभूः । अस्ति लक्ष्मीपते मेघवारिवातप्रकम्पनात् ॥
त्राहिविष्णोजगन्नाथमग्नंसंसारसागरे । मामुद्धरास्माद्गोविन्दकृपापाङ्गविलोकनात्

श्रीरुवाच

स्तुवन्तमेवं ब्रह्मर्षिं साक्षान्नारायणो विभुः । विलोक्याऽनुग्रहदृशावाक्यंचेदमुवाच ह

श्रीभगवानुवाच

मार्कण्डेय ! सुदीनोऽसि मामज्ञायद्विजोत्तम । दुश्चरं तुतपस्तप्तंदीर्घायुस्तेनकेवलम्
शयानं पत्रपुटके पश्य कल्पवटोर्ध्वगम् । बालस्वरूपं सर्वेषां कालात्मानं महामुने !॥
प्रविश्य विस्तृतं वक्त्रं तत्राऽवस्थातुमर्हसि ॥ २६ ॥

श्रीरुवाच

एवमुक्तो भगवता स मुनिर्विस्मिताननः ॥ ३० ॥
आरुह्य ददृशे बालरूपं तस्याऽविशन्मुखे । प्रविष्टः कण्ठमार्गेण महायामं महोदरम् ॥
तत्राऽसौ ददृशे विप्रोभुवनानि चतुर्दश । ब्रह्मादिदिक्पालसुरान्सिद्धगन्धर्वराक्षसान्
ऋषीन्दिव्यऋषींश्चैव भूतलं सागराङ्कितम् । नानातीर्थैर्नदीभिश्च पर्वतैः काननैस्तथा
लक्षितं पत्तनपुरं ग्रामखर्वटकैर्युतम् । पातालानि तथा सप्त नागकन्याः सहस्रशः ॥
महार्घ्यमणिसौधैश्च सुधापात्रैः समुज्ज्वलैः । अनर्घ्यमणिभिर्नागैःसेवितंपरमाद्भुतम्
जगतां धारिणं शेषं सहस्रफणमण्डितम् ।
व्याकर्तारमशेषाणां शास्त्राणां शिष्यमध्यगम् ॥ ३६ ॥
ब्रह्माण्डोदरगं वस्तु यत्किञ्चित्परमेष्ठिना । सृष्टं सर्वं ददृशेऽसौतत्कुक्षौसमहामुनिः
नापश्यदन्तं कुक्षेस्तु भ्रममाण इतस्ततः । ततो विनिष्क्रम्य पुनर्ददृशे च मया सह

पूर्वमालक्षितं यद्वदास्थितं पुरुषोत्तमम् । विस्मयोत्फुल्लनयनः प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥

मार्कण्डेय उवाच

भगवन्देवदेवेश किमद्भुतमिदं प्रभो। महाप्रलयसंरोधे सृष्टिरत्र विभाव्यते ॥ ४० ॥
त्वन्मया दुरवच्छेद्या कथं वै ज्ञायते मया ॥ ४१ ॥

श्रीभगवानुवाच

मुने! क्षेत्रमिदं चित्रं शाश्वतं मे विभावय। न सृष्टिप्रलयावत्र विद्येते न च संसृतिः
सदैकरूपं पुरुषोत्तमाख्यं मुक्तिप्रदं मामिह सम्प्रबुध्य।
अत्र प्रविष्टो न पुनः प्रयाति गर्भस्थितिं सान्द्रसुखस्वरूपः ॥ ४३ ॥
इत्याज्ञप्तो भगवतामार्कण्डेयो महामुनिः। अत्र वासंकरिष्यामीत्यन्यतीर्थपराङ्मुखः
प्रहृष्टवदनः प्राह प्रणिपत्य जगद्गुरुम् ॥ ४४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

उवाचस तथा विष्णुं भक्तिश्रद्धासमन्वितः। अनुगृह्णीष्वभगवन्क्षेत्रेऽस्मिन्पुरुषोत्तमे
यथा स्थितो मृत्युवशं न व्रजे पुरुषोत्तम !॥ ४५ ॥

श्रीभगवानुवाच

अत्र स्थितिं मे विप्रर्षे ! क्षेत्रे मोक्षप्रसाधके ॥ ४६ ॥
करिष्यामिन सन्देहो यावदाभूतसम्प्लवम्। प्रलयावसानेतीर्थंतेरचयिष्यामिशाश्वतम्
यत्तीरे तप आस्थाय मद्द्वितीयतनुं शिवम्।
आराध्य मदनुक्रोशान्मृत्युं जेष्यसि निश्चितम् ॥ ४८ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं पुरा दत्तवरो मार्कण्डेयो महामुनिः। न्यग्रोधवायव्यकोणे खातं चक्रेण वै हरेः
पावनं गर्तमास्थाय पूजयित्वा महेश्वरम्। महता तपसा विप्रो जितवान्मृत्युमञ्जसा
मुनेस्तस्यैव नाम्नाऽयं प्रख्यातो गर्त्त उत्तमः। यत्रस्नात्वाशिवंदृष्ट्वावाजिमेधफलंलभेत्

श्रीरुवाच

पञ्चक्रोशमिदं क्षेत्रं समुद्रान्तर्व्यवस्थितम्। द्विक्रोशं तीर्थराजस्यतटभूमौसुनिर्मलम्
सुवर्णवालुकाकीर्णंनीलपर्वतोशोभितम्।योऽसौविश्वेश्वरोदेवःसाक्षान्नारायणात्मकः

संयम्य विषयग्रामं समुद्रतटमास्थितः । उपासितुं जगन्नाथं चतुःषष्टितमः प्रभुः ॥
यमेश्वर इति ख्यातो यमसंयमनाशनः । यं दृष्ट्वा पूजयित्वातुकोटिलिङ्गफलं लभेत्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे यमेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

लक्ष्मीयमसम्वादे लक्ष्म्यापुरुषोत्तमक्षेत्रस्यतीर्थराजत्ववर्णनम्

श्रीरुवाच

सीमाप्रतीचीं क्षेत्रस्य शङ्खाकारस्य मूर्द्धनि । सर्वकामप्रदो देवः सआस्तेवृषभध्वजः
शङ्खाग्रे नीलकण्ठः स्यादेतत्क्रोशं सुदुर्लभम् । परमं पावनं क्षेत्रं साक्षान्नारायणस्य वै
सिन्धुराजस्य सलिलाद्यावन्मूलंवटस्य वै । शङ्खस्योदरभागस्तुसमुद्रोदकसम्प्लुतः
यत्सम्पर्कात्समुद्रोऽत्र तीर्थराजत्वमागतः । यथाऽयंभगवान्मुक्तिप्रदोदृष्टिपथं गतः ॥
तथेदं मरणात्क्षेत्रं सिन्धुः स्नानाद्विमुक्तिदः । चिच्छेद ब्रह्मणःपूर्वंरुद्रःक्रोधात्तुपञ्चमम्
तच्छिरो दुस्त्यजं गृह्णन्ब्रह्माण्डं परिबभ्रमे । अत्राऽऽगतोयदाब्रह्मकपालं परिमुक्तवान्
कपालमोचनं लिङ्गं द्वितीयावर्तसंस्थितम् । कपालमोचनं पश्येत्पूजयेत्प्रणमेच्च यः
ब्रह्महत्यादिपापनां कञ्चुकंविजहात्यसौ । तस्य दक्षिणपार्श्वे तु मरणं भवमोचनम्
तृतीयावर्तगामाद्यां शक्तिं मे विमलाह्वयाम् । जानीहिधर्मराजत्वंभुक्तिमुक्तिफलप्रदाम्
य इमां पूजयेद्भक्त्या प्रणमेत्कीर्तयेत्तुवा । सर्वान्कामानवाप्नोति मुक्तिंचान्तेचविन्दति
नाभिदेशे स्थितं ह्येतत्त्रयं कुण्डं वटो विभुः ।
कपालमोचनाद्यावदर्द्धांशिनी प्रतिष्ठिता ॥ ११ ॥

मध्यं शङ्खस्य जानीयात्सुगुप्तं चक्रपाणिना । अर्द्धमश्नाति सलिलं महाप्रलयवर्द्धितम्
सृष्ट्यादौ धर्मराजेयं शक्तिर्मेऽर्द्धांशिनी स्मृता ।
तां दृष्ट्वा प्रणमेद्यस्तु भोगान्सोऽश्नाति शाश्वतान् ॥ १३ ॥
सिन्धुराजस्य सलिलाद्यावन्मूलंवटस्य वै । कीटपक्षिमनुष्याणांमरणान्मुक्तिदोमतः
अन्तर्वेदी त्वियं पुण्या वाञ्छ्यते त्रिदशैरपि ।
यत्र स्थितान् हि पश्यन्ति सर्वांश्चक्राब्जधारिणः ॥ १५ ॥
पृथिव्यां यानितीर्थानिगगनेचत्रिविष्टपे । सार्द्धत्रिकोटिसंख्यानिस्वर्गमोक्षप्रदानिवै
तेषामयं तीर्थराजः कीर्त्तितः पुरुषोत्तमः । सर्वेषां मुक्तिक्षेत्राणामिदं सायुज्यदं मतम्
अत्रस्थितानशोचन्तिजराजन्ममृतिष्वपि । कुण्डंह्येतद्रोहिणाख्यंकारुण्याख्यजलेनवै
सम्भृतं तिष्ठते नित्यं स्पर्शनाद्बन्धमुक्तिदम् । अत्रप्रतिष्ठितं वारि प्रलये यत्प्रवर्द्धते
अत्रैव लीयते पश्चात्तस्माद्रोहिणसञ्ज्ञितम् ।
तस्मात्ते माऽत्र चिन्ताऽस्तु स्वाधिकारविपर्यये ॥ २० ॥
मोक्षाधिकारिणामत्रनेश्वरस्त्वंपरेतराट् । धर्मराजं समादिश्यलक्ष्मीरेवंपुरः स्थितम्
ब्रह्माणमाह जगतामम्बा प्रश्रयया गिरा । पितामह! जगन्नाथ विदितं सर्वमेव यत् ॥
मोक्षदं सर्वजन्तूनामेतत्क्षेत्रं धरातले । कामाख्यं क्षेत्रपालश्च विमलम्वा तपःस्थितः
साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपोऽसौ नृसिंहो दक्षिणे विभोः ।
हिरण्यकशिपोर्वक्षो विदार्याऽयं प्रभोज्ज्वलः ॥ २४ ॥
दर्शनादस्य नश्यन्ति पातकानिन संशयः । भुक्तेर्मुक्तेश्चयोग्यःस्यान्नात्रकार्याविचारणा
अस्याऽग्रे सन्त्यजन्प्राणान्ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ।
यत्किञ्चित्कुरुते कर्म कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ २६ ॥
छायैवाकल्पवृक्षस्यनृसिंहार्केणभासिता । तस्यांनश्यत्यविद्याहिज्ञानतोऽज्ञानतोमृतौ
वेदान्तेषु प्रसिद्धैस्तैर्विज्ञानैः श्रवणादिभिः । मूढानांदुर्लभैर्विप्राविनाप्यत्रविमोचनम्
अविमुक्ते मुमुक्षोस्तु कर्णमूले महेश्वरः । दिशति ब्रह्मसञ्ज्ञानं बोधोपायं कृपानिधिः
तेन बुद्ध्या समभ्यस्य क्रमान्मोक्षमवाप्नुयात् । उपदेष्टुर्महिम्नाहितस्यज्ञानंनहीयते

अत्र त्यजन्तियेप्राणांस्तेषांतत्क्षणएवहि । स्वरूपाज्जायतेमुक्तिःसंशयोमाऽस्तुतेयम
गतागतप्रसक्तानां कर्मिणां मूढचेतसाम् । वैवस्वत! कदाचिन्नो विश्वासोह्यत्रजायते
उत्सृज्य वारि गाङ्गेयं स्वादु शीतंसुनिर्मलम् । पिपासुःपल्वलंयातितद्वत्तेमूढचेतसः

भ्रमन्ति तीर्थान्यन्यानि त्यक्त्वैतत्क्षेत्रमुत्तमम् ।
फलाशामोदकैस्तृप्ता लभन्ते श्रमजं फलम् ॥ ३४ ॥

स्नानादब्भिर्दृशा देवश्छायया कल्पपादपः । यत्र कुत्रापिचक्षेत्रंमरणान्मुक्तिदं नृणाम्
यो यत्र विषये भक्त्या विश्वासं कुरुते नरः । स तु तेनैवमुच्येतनेदृशं तीर्थमस्ति वै

एतन्त्यक्त्वाऽन्यतीर्थे वै विदधाति रुचिं तु यः ।
नूनं स मायया विष्णोर्वञ्चितो लोभलालसः ॥ ३७ ॥

उपदेशेन बहुना न प्रयोजनमस्ति ते । प्रत्यक्षो ह्यनुभूतोऽयं करटो विष्णुरूपधृक्॥
अन्तर्वेदीरक्षणार्थं शक्तयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः । उग्रेणतपसा पूर्वमहं रुद्रेण भाविता॥

पत्न्यर्थं सा मया सृष्टा गौरी तस्याऽथ भाविनी ।
सर्वसौन्दर्यवसतिर्वपुषो मे विनिर्गता ॥ ४० ॥

तदाऽऽदिष्टा मया भद्रे! वचनं मे प्रियं कुरु । अन्तर्वेदीं रक्षममपरितस्त्वंस्वमूर्तिभिः
सा तु तिष्ठति मत्प्रीत्या अष्टधादिक्षु संस्थिता । मङ्गलावटमूलेतुपश्चिमेविमलातथा

शङ्खस्य पृष्ठभागे तु संस्थिता सर्वमङ्गला ।
अर्द्धांशिनी तथालम्बा कुबेरदिशि संस्थिता ॥ ४३ ॥
कालरात्रिर्दक्षिणस्यां पूर्वस्यां तु मरीचिका ।
कालरात्र्यास्तथा पश्चाच्चण्डरूपा व्यवस्थिता ॥ ४४ ॥

एताभिरुग्ररूपाभिःशक्तिभिःपरिरक्षितम् । अल्पपुण्यस्यपुंसोहिस्थानमेतत्सुदुर्लभम्
एतासामष्टशक्तीनां दर्शनात्कीर्तनात्तथा । नश्यन्ति सर्वपापानि हयमेधफलं लभेत्॥
रुद्राण्याश्चाष्टधा भेदं दृष्ट्वा रुद्रोऽपि शङ्करः । आत्मानमष्टधाभित्त्वा उपास्तेपरमेश्वरम्
आराध्य तपसा विष्णुं प्रार्थयद्वरमुत्तमम् । यत्र त्वं देवतत्राहं वसेयं हि यथासुखम्
त्वामृते कमलाकान्त! नान्यन्निर्वाणकारणम् ।

अन्तर्यामिन्प्रभो ! मे त्वं त्वां विना विग्रहः कुतः ॥ ४६ ॥
मूढा ये त्वां न जानन्ति हृष्यन्तिविषयेऽशुचौ । निर्मलाम्बरसङ्काशंत्वामहंशरणंगतः

जैमिनिरुवाच

भगवानपि रुद्रं तं क्षेत्रपालं तथा विभुः । स्थापयामास परितः स्वयंमध्येव्यवस्थितः
कपालमोचनं नाम क्षेत्रपालं यमेश्वरम् । मार्कण्डेयं तथेशानं विल्वेशं नीलकण्ठकम् ॥
वटमूले वटेशं च लिङ्गान्यष्टौमहेशितुः । यानि दृष्ट्वा तथा स्पृष्ट्वा पूजयित्वाविमुच्यते
अत्र क्षेत्रे मृता ये च न तेषां तु प्रभुर्यमः । यदर्थमागतस्त्वं हि तदन्यत्र प्रसाधय ॥
तथाऽप्यसौ जगन्नाथो भक्तायात्मसमर्पकः । यमेन तोषितो भक्त्याप्रपन्नार्तिहरः प्रभुः
सुदर्शनेन चक्रेण मायां च व्यवधास्यति । अत्याज्येऽस्मिन्क्षेत्रवरेस्वर्णवालुकयावृते
तं यमं वञ्चयित्वा तु प्रस्थापय्ययमालयम् । साधुमत्वाततःप्राहब्रह्माणंपुरतःस्थितम्

श्रीरुवाच

इन्द्रद्युम्नोनाम राजा युगे सत्ये भविष्यति । वैष्णवः सर्वयज्ञानामाहर्त्ताशास्त्रकोविदः
अत्राऽऽगत्य महाभक्तिं करिष्यति नृपोत्तमः । भगवत्प्रीतये येन वाजिमेधसहस्रकम्
करिष्यते प्रजानाथ तदनुग्रहकारणात् । एकदारुसमुत्पन्नश्चतुर्द्धा सम्भविष्यति ॥६०
दारवप्रतिमानानि विश्वकर्मा घटिष्यति । प्रतिष्ठापयिता त्वं हि इन्द्रद्युम्नप्रसादितः
अस्माकं सदृशानां च प्रतिमानांपितामह । तद्रूपका प्रतिष्ठा हि घटना च भविष्यति
इति श्रुत्वा श्रियो वाक्यं चतुर्वक्त्रो यमश्च सः ।
स्वं स्वं पुरं जग्मतुस्तौ मुदा परमया युतौ ॥ ६३ ॥
क्षेत्रस्य महिमानं तं संस्मृत्य च मुहुर्मुहुः । विस्मयेन च हर्षेण रोमाञ्चितविग्रहौ
साम्प्रतं मुनयस्तस्मिन्निन्द्रद्युम्नप्रसादितः । शङ्खचक्रधरः श्रीमान्नीलजीमूतसन्निभः
नीलाचलगुहान्तःस्थो विभ्रद्दारुमयं वपुः । आस्ते लोकोपकाराय वलेन च सुभद्रया
सुदर्शनेन चक्रेण दारुणा निर्मितेन च । सहितः प्रणतार्तीनां नाशनः करुणार्णवः ॥
यं दृष्ट्वा पापवन्धेन सुदृढेन विमुच्यते । सुकर्मौघपरीपाको युगपत्समुपस्थितः ॥६८
पश्यतां भो मुनिश्रेष्ठास्तापत्रयसुधानिधिम् ।

बहवो ह्यवतारा हि विष्णोर्दिव्याश्च मानुषाः ॥ ६९ ॥
अत्यद्भुतानि कर्माणि माहात्म्यं चाऽपि वर्णितम् ।
परिचित्यान्मनुष्यांस्तु न मन्यन्ते सुरा अपि ॥ ७० ॥

देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् । तिरश्चामपि भो विप्रास्तस्मिन्दारुमयेहरौ
सर्वात्मभूते वसति चित्तं सर्वसुखावहे । उपजीवन्त्यस्यसुखंयस्याऽनन्यस्वरूपिणः
ब्रह्मणः श्रुतिवागाहेत्येतदत्राऽनुभूयते । ह्यति संसारदुःखानि ददाति सुखमव्ययम् ॥
तस्माद्दारुमयं ब्रह्म वेदान्तेषु प्रगीयते । न हि काष्ठमयी मोक्षं ददाति प्रतिमा क्वचित्
कृतेनाऽकृतता विप्राः कदाचिन्नोपलभ्यते । अकृतो ह्यपवर्गस्तु कृताद्वादारुणः कथम्
अधिष्ठानं विना ब्राह्म्यमैश्वर्यं नोपलभ्यते । रहस्यमेतत्परमं विष्णोः स्थानमनुत्तमम्
अलौकिकी साप्रतिमालौकिकीतिप्रकाशिता । कुत्रश्रुतावाद्दृष्टावाप्रतिमाव्याहरेदिति
इन्द्रद्युम्नाय स वरं तदा दारुवपुर्ददौ । दीनानाथैकशरणं तरणं भववारिधेः ॥ ७८ ॥
चराचर सदावन्द्य चरणं तं परायणम् । नारायणं जगद्योनिं सृष्टिसंहृतिकारणम् ॥
मोक्षणं सर्वपापानां दारणं सकलापदाम् । विभूतीनां वितरणं वरणं सर्वयोगिनाम्
भरणं सर्वजन्तूनां धरणं जगतामपि । भाषणं सर्वभाषाणां दूषणं सर्वदुष्कृताम् ॥
शोषणं सर्वपङ्कानां नीलाद्रिशरणं हरिम् । शरणं प्रयात मुनयो ह्यनन्यशरणं विभुम्

निश्चेष्टो दारुवर्ष्माऽपि दिव्यलीलाविलासकृत् ।
क्षमते स्वल्पभक्त्याऽपि सोऽपराधशतं नृणाम् ॥ ८३ ॥

अत्र वः कथयिष्यामि चरितं पापनाशनम् । लीलया दारुदेहस्य मुनयः परमात्मनः
कुरुक्षेत्रे समुद्भूतौ ब्राह्मणक्षत्रियावुभौ । सखायौ जग्मतुःप्रीत्याएकाहारविहारिणौ

वृत्तच्युतौ निषिद्धानामाहर्त्तारौ विमोहितौ ।
अस्वाध्यायवषट्कारौ स्वधास्वाहाविवर्जितौ ॥ ८६ ॥

अपात्रभूतौ धर्मस्य महापातकदूषितौ । मधुभक्षौ पण्ययोषित्सहवासौ मुदान्वितौ
पारलौकिकचिन्तातुतयोःस्वप्नेऽपिनाऽऽगता । एवंप्रवर्तमानौतावायुषोऽर्द्धंचनिन्यतुः
एकदा भ्रममाणौ तौ यज्ञवाटमगच्छताम् । श्रुण्वन्तौ दूरतस्तोत्रंशास्त्रवादं मनोहरम्

दृष्ट्वा तास्ताः क्रियाः सर्वाः श्रुतिसञ्चोदिता द्विजाः ।
तौ तदा चक्रतुः श्रद्धां धर्मे वर्त्मन्यधार्मिकौ ॥ ६० ॥
संस्मरन्तौस्वजातिंतौपुण्डरीकाम्बरीषकौ । निन्दन्तौदुश्चरित्रंस्वंपरस्परमभाषताम्
कथमावां तरिष्यावो दुष्कृतार्णवमुल्बणम् । इहैव जन्मन्यजरं बुद्धिपूर्वमुपार्जितम् ॥
न तच्छास्त्रं हि जानाति यदावाभ्यां च दुष्कृतम् ।
सञ्चितं तस्य घोरस्य प्रायश्चित्तं सुदुर्ल्लभम् ॥ ६३ ॥
तथापि ब्राह्मणानेतान्ब्रह्मिष्ठान्वै सदोगतान् ।
प्रणिपातप्रपन्नान्वै पृच्छावोऽत्र च निष्कृतिम् ॥ ६४ ॥
इति निश्चित्य तौ विप्रानभिवाद्याऽभ्यपृच्छताम् ।
यथावत्कल्मषं स्वं स्वं विज्ञाप्य च मुहुर्मुहुः ॥ ६५ ॥
ते तयोर्वचनं श्रुत्वा मीलिताक्षा द्विजोत्तमाः ।
नाऽब्रुवन्किंस्विदन्योन्यं वीक्षन्तो विस्मिताननाः ॥ ६६ ॥
अहो सुघोरकर्माणि सञ्चितानि दुरात्मनोः । येषु शास्त्रंपदं दातुं प्रायश्चित्तायनह्यलम्
शक्नुमोनवयं तस्मादनयमोर्निष्कृताविति । तेषांमध्येसदोमुख्यःकश्चिद्वैष्णवपुङ्गवः
भगवद्भक्तिमाहात्म्यक्षपिताशेषकल्मषः । तानुवाच विहस्येदं वाक्यं वाक्यविदांवरः

वैष्णव उवाच

भो द्विजक्षत्रदायादपापराशेःसुदारुणात । मुक्तिश्चेद्वाञ्छतस्तूर्णंगच्छतंपुरुषोत्तमम्
क्षेत्रोत्तमं दारुमयो यत्राऽऽस्ते पुरुषोत्तमः । इन्द्रद्युम्नस्य राजर्षेर्भक्त्यानुग्रहकृद्विभुः॥
तमाराध्य जगन्नाथं शङ्खचक्रगदाधरम् । पापक्षयं वामुक्तिंवास्वेच्छयाप्राप्स्यथध्रुवम्
घोरदुष्कृततूलौघदावाग्निसदृशस्तु सः । तपसैतत्क्षयं नेतुं न शक्यं जन्मकोटिभिः
युगपत्संक्षयं याति यंदृष्ट्वासर्वकिल्बिषम् । तन्मा विलम्बं कुरुतंप्रयातंतत्रसत्वरम्
सुपुण्ये चोत्कले देशे दक्षिणार्णवतीरगे । नीलाद्रिशिखरावासं व्रजतं शरणं विभुम्
सोऽभीष्टसिद्धिं वां देवः प्रदास्यति कृपानिधिः ।
इत्यादिष्टौ ततो विप्रक्षत्रियौ हर्षसंयुतौ ॥ १०६ ॥

तेनैव वर्त्मना विप्राः प्रयातौ पुरुषोत्तमे ॥ १०७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्येजैमिनिऋषिसम्वादे
पुण्डरीकाम्बरीषोद्धारकथावर्णनंनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

ब्राह्मणक्षत्रियपुण्डरीकाम्बरीषाभ्यांविष्णुरूपदर्शनवर्णनम्

जैमिनिरुवाच ।

निर्विण्णचेतसौ तौ तु त्यक्त्वा वेश्यादिसङ्गतिम् ।
ध्यायंतौ मनसा विष्णुं शुद्धाहारव्रतावुभौ ॥ १ ॥
कालेनकियताप्राप्तौनीलाद्रिनिलयंहरेः । तीर्थराजजले स्नात्वायथावद्विधिचोदितम्
प्रासादद्वारितिष्ठन्तौसाष्टांगंप्रणिपत्यच । भगवन्तंनिरीक्षन्तौ नापश्यतां तदाद्विजाः
विवर्णवदनौ देवमदृष्ट्वा चिन्तयाऽऽकुलौ । आरभेते ह्यनशनं भगवद्दर्शनावधि ॥ ४ ॥
कीर्तयन्तौ भगवतो नाम कल्मषनाशनम् ।
तृतीयस्यां त्रियामायां ज्योतिरेकमपश्यताम् ॥ ५ ॥
त्रीण्यहानिपुनस्तौ चतदोपावसतांस्थिरौ । मध्ये सप्तमरात्रेस्तुभगवन्तमपश्यताम्
त्रिदशानांस्तुतीःश्रुत्वादिव्यज्ञानौबभूवतुः । अपास्तपापनिर्मोकौसाक्षाद्देवमपश्यताम्
शङ्खचक्रगदापाणिं दिव्यालङ्कारभूषितम् । रत्नपादुकयोःपृष्ठे विन्यस्तचरणाम्बुजम्
व्याकोशपुण्डरीकाक्षं प्रसन्नवदनं विभुम् ।
वामपार्श्वे स्थितां लक्ष्मीं वामेनाऽऽलिङ्ग्यबाहुना ॥ ६ ॥
नागवल्लीदलं बद्धमाददानं श्रिया हृतम् । रत्नवेत्रकराः काश्चित्काश्चिच्चामरपाणयः॥
गन्धतैलप्रदीपास्तुरत्नवर्तिप्रदीपिकाः । काश्चिद्दधानाः स्वकरैर्यौवनाढ्याः सुभूषिताः

पश्चाद्रत्नमयं छत्रं बिभ्रती काचिदुज्ज्वला । धूपपात्रं मुखाभ्याशेकृष्णागुरुसुधूपितम्
काचिद्दधाना प्रम्लोचां हसन्तीं विग्रहश्रिया । लीलालकदृशा देवाननुगृह्णन्तमग्रतः

बद्धाञ्जलिपुटान्नम्रकन्धरांस्तुवतः पृथक् ।
सिद्धान्मुनिगणान्दिव्यान्सनकादीन्स्मितेन च ॥ १४ ॥

नारदादींश्च गन्धर्वान्दिव्यगामनोहरान् । दत्तावधानं श्रवणे लीलयैवानुकम्पिनम् ॥

प्रह्लादादीन्वैष्णवाग्र्यान्स्वरूपं ध्यायतोऽग्रतः ।
चित्ताकर्षणसँल्लीनां विदधानं स्वविग्रहे ॥ १६ ॥
वक्षःस्थलप्रविलसत्कौस्तुभप्रतिबिम्बितैः ।
देवादिभिर्विश्वरूपमूर्त्तेः स्वस्याः प्रकाशकम् ॥ १७ ॥

उपर्युपरि दिव्यायाःपुष्पवृष्टेरधः स्थितम् । श्रीसन्निधानविगतश्रियमप्सरसां गणम्
पश्यन्तं विविधं नित्यमङ्गहारमनोहरम् । दिव्यलीलाविलासं तं दृष्ट्वातौद्विजबाहुजौ
बभूवतुः क्षणात्सर्वविद्यानांपारगौ द्विजाः । त्रिः परिक्रम्य देवेशं कृताञ्जलिपुटावुभौ

साष्टाङ्गपातप्रणतौ तुष्टुवाते मुदान्वितौ ॥ २० ॥

पुण्डरीक उवाच

नमस्ते जगदाधार! सर्गस्थित्यन्तकारण !। नारायण! नमस्तेऽस्तुपरमात्मन्परायण!
परमार्थस्त्वमेवैको भवाप्यन्यविवर्जितः । नित्यानन्दस्वरूपंत्वांविदन्तिध्यानचक्षुषः
चिन्मात्रं जगतामीशमधिष्ठानं परात्परम् । कथं नु मूढहृदयास्त्वांजानन्तिसुनिर्मलम्
कामार्थलिप्सासम्भ्रान्तचेतसोऽत्यन्तदुःखिनः । गतागतपथेश्रान्ताःसुखभाजःकदाचन
अनुकम्पय मां नाथ ! सुदीनं शरणागतम् । मूढं दुष्कृतकर्माणं पतितं भवसागरे ॥
कोऽन्यस्त्वत्सदृशो बन्धुर्ब्रह्माण्डेनाथवर्त्तते । स्वकर्त्तव्यानपेक्षोयोदीनानाथदयालुकः
उच्चावचभ्रमाद्दुःखं जलयन्त्रघटीमिव । अजस्रमधिकर्त्तारं परित्राहि कृपाम्बुधे ! ॥

योगक्षेमाभिसन्धाना ये मूढास्त्वामुपासते ।
लीलाविमुक्तिदं ते वै त्वन्मायापरिमोहिताः ॥ २८ ॥

नारायणेति त्वन्नाम कीर्तितं तु यदृच्छया । त्वत्तोऽधिकं जगन्नाथचतुर्वर्गैकसाधनम्

त्वं तु तैस्तैः पृथग्यज्ञैस्तास्ताः सिद्धीः प्रयच्छसि ।
त्वमेकः शरणं नाथ! पतितानां भवार्णवे ॥ ३० ॥
ज्ञाननौकासमारूढः करुणाक्षेपणीकरः । परम्पारं प्रभो नेतुं संसाराब्धेर्विचेतनम् ॥
त्वमेक ईशिषे भक्त्याऽनन्ययापरिचिन्ततः । येऽन्येमुक्तिप्रदादेवाःशास्त्रेषुपरिनिष्ठिताः
दुःखाब्धिकुम्भयोनिं ते त्वद्भक्तिं प्रापयन्ति वै ॥ ३३ ॥
तन्मे प्रसीद भगवन्पदकञ्जे ते भक्तिं दृढां वितर नाथ! भवाब्धिमुच्चैः ।
घोरं सुदुस्तरममुं हि यया तरेयमष्टाङ्गयोगजनितश्रमवर्जितोऽपि ॥ ३४ ॥
धर्मार्थकामनिचयैः कुमतिप्रगृह्यैः क्षुद्रैरमीभिरहिताल्पसुखैर्न कार्यम् ।
आज्ञापयाऽङ्घ्रिनलिनद्वयचिन्तनेऽद्य सान्द्रानुवर्धितसुखार्णवमज्जनं मे ॥ ३५ ॥
स्तुत्वेत्थं जगदीशस्य पादपद्मान्तिके द्विजः । पपातत्राहिकृष्णेतिवदन्बाष्पार्द्रयागिरा
तस्थौ स पुनरुत्थाय कृताञ्जलिपुटः स्तुवन् ॥ ३७ ॥

अम्बरीष उवाच

प्रसीददेव! सर्वात्मन्नसङ्ख्येयशिरोभुज । असङ्ख्यघ्राणनयनपाणिपाद! नमोऽस्तुते
षट्त्रिंशत्तत्त्वातीतोऽसि निष्प्रपञ्चप्रपञ्चकः । चतुर्विधजगद्धामविश्वमूर्त्तेनमोऽस्तु ते
एकपादस्त्रिपादश्च तीर्थपादोऽन्तरिक्षपात् । यस्यपादोद्भवागङ्गा पुनाति भुवनत्रयम्
ब्रह्महत्यादिपापानां शोधकं यस्य नाम वै । कीर्तितं सर्वशुभदं नमस्तस्मै शुभात्मने
देव! त्वन्नामकीर्त्याऽपि जायन्ते सर्वसिद्धयः ।
कौतुकात्त्वां हि मृग्यन्ति विद्वांसो बुद्धिशालिनः ॥ ४१ ॥
नाथत्वत्पादसलिलं संश्रयात्तापहारकम् । तापत्रयाभिभूतस्य भक्तिं मेऽत्र दृढां कुरु
अनन्यस्वामिनो मेऽद्य नाऽस्त्यन्यत्प्रार्थनीयकम् ।
प्रणिपत्य जगन्नाथ! त्वां प्रयाचे सहस्रधा ॥ ४३ ॥
समस्तपुरुषार्थस्य वीजं त्वत्पादपङ्कजे । यावत्प्राणान्धारयामितावद्भक्तिर्दृढास्तुऽमे
सृष्टिंविनिर्ममे चेमां ययाभक्त्या पितामहः । संहरत्यखिलंरुद्रो लक्ष्मीश्चैश्वर्यदायिनी
दीनानुकम्पिस्तां भक्तिं प्रार्थये नाथ्यमानसः ।

अनाद्यविद्यापङ्केऽस्मिन्सुदृढे दुस्तरे भृशम् ॥ ४९ ॥

निमग्नस्य जगन्नाथ! निरालम्बं प्रणश्यतः। महामहिम्नस्त्वद्भक्तेर्नान्यदस्तिपरायणम्

श्रुतिस्मृत्यादिसम्भिन्नमार्गाः सम्मोहहेतवः। त्वद्भक्तिमपहायैते न प्रवर्त्तितुमीश्वराः

अनन्यशरणं स्वामिन्ननुकम्पय मां विभो!। इति स्तुवञ्जगन्नाथपादपद्मान्तिके मुदा

पपात दण्डवद्भूमौ प्रसीदेतिवदन्मुहुः। ततस्तेदेवताः सर्वे स्तुत्वासम्पूज्यकेशवम्

तल्लीलापाङ्गसन्तुष्टाःप्रयातास्त्रिदिवम्पुनः। तत उन्मीलितदृशौ पुण्डरीकाम्बरीषकौ

मायया मोहितौ विष्णोः स्वप्नदृष्टमबुध्यताम्।

यां दृष्ट्वा दिव्यलीलां हि साक्षात्पललचक्षुषा ॥ ५२ ॥

पुनर्मानुषभावौ तौ दिव्यसिंहासनस्थितम्। नीलजीमूतसङ्काशं फुल्लपद्मायतेक्षणम्

शोणाधरञ्चारुनासं दिव्यकुण्डलभूषितम्। शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं वनमालिनम् ॥

पीनोरस्कञ्चारुहारमनर्घ्यमुकुटोज्वलम्।

श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं दिव्याङ्गदविभूषितम् ॥ ५५ ॥

प्रलम्बबाहुं दीनार्त्तपरित्राणसमुद्यतम्। सुवर्णसूत्रसन्नद्धमध्यग्रन्थिमणीयुतम् ॥

दिव्यपीताम्बरधरं दिव्यस्रग्गन्धभूषितम्।

स्वर्णपद्मासनासीनं सर्वाङ्गालिङ्गितश्रियम् ॥ ५७ ॥

प्रपन्नसन्तापहरं सुधासागरमुल्बणम्। अशेषवाञ्छाफलदं कल्पवृक्षं सुपुष्पितम् ॥

दक्षपार्श्वस्थितंतस्य ददृशाते हलायुधम्। बिभर्त्ति येन ब्रह्माण्डं बलेन महताविभुः

तं बलंनागराजानंफणासप्तकमण्डितम्। कैलासशिखरोत्तुङ्गं धवलं कुण्डलोज्ज्वलम्

विचित्रवनमालाढ्यं दिव्यनीलनिचोलिनम्। सततम्वारुणीक्षीवघूर्णोन्नयनपङ्कजम्

निम्नपृष्ठोन्नतोरस्कं कुण्डलीकृतविग्रहम्। शङ्खचक्रगदापद्मसमुज्ज्वलचतुर्भुजम् ॥

नानाऽलङ्काररुचिरं नतकल्मषनाशनम्। तयोर्मध्येस्थितां भद्रांसुभद्रां कुङ्कुमारुणाम्

सर्वलावण्यवसतिंसर्वदेवनमस्कृताम्। लक्ष्मींलक्ष्मीशहृदयपङ्कजस्थांपृथक्स्थिताम्

वराब्जधारिणीं देवीं दिव्यनेपथ्यभूषणाम्। प्रपन्नकल्पलतिकांसर्वकल्मषनाशिनीम्

संसारार्णवमग्नानां तारिणीं देवतारिणीम्।

वामपार्श्वस्थितम्विष्णोरद्राष्टां चक्रमुत्तमम् ॥ ६६ ॥
दार्वग्रनिर्मितम्विप्राः स्वर्णभक्तिसमुज्ज्वलम् ।
चतुर्द्धावस्थितं विष्णुं दृष्ट्वा तौ द्विजवाड्जौ ॥ ६७ ॥
अरुणोदयवेलायांश्रमंसार्थममन्यताम् । संस्मृत्यतांस्वप्नलीलांविस्मयञ्जग्मतुस्तदा
न दारुप्रतिमाचेयं साक्षाद्ब्रह्मप्रकाशते । सदोगतानाम्विप्राणां वाक्यंश्रद्दधतुश्च तौ
क्वाऽऽवां महापातकिनौ यातनाक्रमभागिनौ ।
क्वेदं सुरसमाक्रान्तस्थितम्विष्णोः प्रदर्शनम् ?॥ ७० ॥
मूर्खयोरावयोरष्टादशविद्याप्रवीणता । यस्मात्तस्माञ्च भ्रान्तिर्ज्ञानं तत्समवादिनः
यदूचुर्दारवं ब्रह्म तीर्थराजतटे स्थितम् । वटमूले प्रकाशन्तं दृष्ट्वा जन्तुर्विमुच्यते ॥
तदेवाऽयं जगन्नाथश्चतुर्द्धा सम्व्यवस्थितः । क्षितौ यदावतरति चतूरूपः प्रकाशते॥
तदाऽस्य सन्निधावावां स्थास्यावः प्राणधारिणौ ।
यावन्नाऽन्यत्र गच्छावः क्षुद्रकामपराङ्मुखौ ॥ ७४ ॥
इति निश्चित्य मुनयो विष्णौ भक्तिपरायणौ ।
नारायणाख्यं सततं जपन्तौ मुक्तिमाऽऽगतौ ॥ ७५ ॥

जैमिनिरुवाच

प्रसङ्गात्कथितं ह्येतद्रहस्यं पापनाशनम् । शृण्वन्तियेतु चरितं पुण्डरीकाम्बरीषयोः
सततं कीर्तयन्तश्च मुदा परमया युताः । व्रजन्ति विष्णुनिलयं मुदा परमया युताः
व्रजन्ति विष्णुनिलयं तेऽपि निर्द्धूतकल्मषाः ॥ ७७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां द्वितीयेवैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
पुण्डरीकाम्बरीषमुक्तिवर्णनंनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

ओढ्र (उत्कल) देशवर्णनम्

मुनय ऊचुः

कस्मिन्देशे द्विजश्रेष्ठ! तत्क्षेत्रं पुरुषोत्तमम् । यत्र नारायणःसाक्षाद्दारुरूपी प्रकाशते

जैमिनिरुवाच

उत्कलोनाम देशोऽस्ति ख्यातःपरमपावनः । यत्रतीर्थान्यनेकानिपुण्यान्यायतनानिच
दक्षिणस्योदधेस्तीरे स तु देशःप्रतिष्ठितः । यत्रस्थितावैपुरुषाः सदाचारनिदर्शनाः
वृत्ताध्ययनसम्पन्ना यज्वानो यत्र भूसुराः । सृष्ट्यादौ कृतवोवेदा वेदशास्त्रप्रवर्तकाः
अष्टादशानां विद्यानांनिधानं सम्प्रकीर्तितम् । गृहे गृहे निवसतिलक्ष्मीर्नारायणाज्ञया

लज्जाशीला विनीताश्च आधिव्याधि विवर्जिताः ।
पितृमातृरताः सत्यवादिनो वैष्णवा जनाः ॥ ६ ॥

नचाऽत्रावैष्णवःकश्चिन्नास्तिकोवाऽपिवर्तते । सर्वेपरहितास्तत्रनलुब्धानशठाःखलाः
दीर्घायुषस्तत्र जनाः स्त्रियश्च पतिदेवताः । सुशीला धर्मशीलाश्चत्रपाचारित्रभूषिताः
रूपयौवनगर्वाढ्याः सर्वालङ्कारभूषिताः । कुलशीलवयोवृत्तानुरूपाचारचञ्चवः ॥ ६ ॥
स्वकर्मनिरतास्तत्र प्रजारक्षणदीक्षिताः । क्षत्रिया दानशौण्डाश्चशस्त्रशास्त्रविशारदाः
यजन्ते क्रतुभिः सर्वे सततं भूरिदक्षिणैः । दीप्यन्ते चित्तयोयेषांयूपाःकाञ्चनभूषिताः

येषां गृहेष्वतिथयः कामनाधिकपूजिताः ।
वैश्याश्च कृषिवाणिज्यगोरक्षावृत्तिसंस्थिताः ॥ १२ ॥

देवान्गुरून्द्विजान्भक्त्याप्रीणयन्तिधनैरपि । एकस्यद्वारियातोऽर्थीनगच्छेदन्यवेश्मनि
गीतकाव्यकलाशिल्पकुशलाःप्रियवादिनः । शूद्राश्चधार्मिकास्तत्रस्नानदानक्रियारताः
कर्मणा मनसा वाचा धनैश्चद्विजसेवकाः । येऽन्येसङ्करजातास्तेस्वेस्वेधर्मेप्रतिष्ठिताः
न विपर्यन्ति ऋतवो नाऽकाले वर्षते घनः । न सस्यहानिर्नमरुत्स्वल्पपीड्यति प्रजाः

दुर्भिक्षमरके नाऽत्र राष्ट्रभङ्गः प्रजायते ।
नाऽलभ्यं तत्र वस्त्वस्ति यत्किञ्चित्पृथिवीगतम् ॥ १७ ॥
एवं सर्वगुणैर्युक्तो नानाद्रुमलताकुलः । अर्जुनाशोकपुन्नागतालहिन्तालशालकैः ॥१८
प्राचीनामलकैर्लोध्रैर्बकुलैर्नागकेशरैः । नारिकेलैः प्रियालैश्च सरलैर्देवदारुभिः ॥ १६ ॥
धवैश्च खदिरैर्विल्वैः पनसैश्च कपित्थकैः । चम्पकैः कर्णिकारैश्चकोविदारैःसपाटलैः
कदम्बनिम्बनिचुलरसालामलकैस्तथा । नागरङ्गैश्च जम्बीरैर्नीपकैर्मातुलुङ्गकैः ॥
मन्दारैः पारिजातैश्च न्यग्रोधागुरुचन्दनैः । खर्जूराम्रातकैः सिद्धैर्मुचुकुन्दैः सकिंशुकैः
तिन्दुकैः सप्तपर्णैश्च अश्वत्थैश्च विभीतकैः । अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैःप्रकीर्णःसुमनोहरैः
मालतीकुन्दवाणैश्च करवीरैः सितेतरैः । केतकीवनषण्डैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः ॥
एलालवङ्गकङ्कोलदाडिमैर्बीजपूरकैः । श्रेणीकृतैः पूगवनैरुद्यानैः शतशो वृतः ॥ २५ ॥
नानाद्रुमलताकीर्णःपर्वतैः सिन्धुभिर्वृतः । स एषदेशप्रवर उत्कलाख्यो द्विजोत्तमाः॥
ऋषिकुल्यां समासाद्य दक्षिणोदधिगामिनीम् ।
स्वर्णरेखामहानद्योर्मध्ये देशः प्रतिष्ठितः ॥ २७ ॥
सन्त्यत्र पुण्यायतने क्षेत्राणि सुबहून्यपि । पूर्वंवस्तीर्थयात्रायांवर्णितानिमयाद्विजाः
भूस्वर्गः साम्प्रतं ह्येष कथितः पुरुषोत्तमः ॥ २८ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्य ओढ्र (उत्कल) देशवर्णनंनाम-
षष्ठोऽध्यायः ॥

सप्तमोऽध्यायः

मालवाधिपतेरिन्द्रद्युम्नस्यकेनचित्तीर्थाटनव्यग्रेणजटिलेनवार्तालापवर्णनम्

मुनय ऊचुः

कस्मिन्युगे स तु नृप इन्द्रद्युम्नोऽभवन्मुने। कस्मिन्देशेऽस्यनगरंकथंवापुरुषोत्तमम्
गत्वा च विष्णोःप्रतिमांकारयामासवाकथम्। एतत्सर्वं विस्तरतःकथयस्व महामुने
याथातथ्येन सर्वज्ञ! परं कौतूहलं हि नः ॥ ३ ॥

जैमिनिरुवाच

साधु साधु द्विजश्रेष्ठा यत्पृच्छध्वं पुरातनम्। सर्वपापहरं पुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम्
चरितं तस्य वक्ष्यामि तथावृत्तं कृते युगे। शृणुध्वं मुनयःसर्वेसावधानाजितेन्द्रियाः
आसीत्कृतयुगे विप्रा इन्द्रद्युम्नो महानृपः। सूर्यवंशे स धर्मात्मा स्रष्टुः पञ्चमपुरुषः
सत्यवादी सदाचारोऽवदातः सात्त्विकाग्रणीः।
न्यायात्सदा पालयति प्रजाः स्वा इव स प्रजाः ॥ ७ ॥

अध्यात्मविज्ञानशौण्डःशूरःसङ्ग्रामवर्द्धनः। सदोद्यतःसदाविप्रपूजकःपितृभक्तिमान्
अष्टादशसु विद्यासु वृहस्पतिरिवाऽपरः। ऐश्वर्येण सुराधीशः कुवेरः कोषसञ्चये ॥
रूपवान्सुभगः शीलीदाता भोक्ता प्रियम्वदः। यष्टासमस्तयज्ञानांब्रह्मण्यःसत्यसङ्गरः
वल्लभो नरनारीणां पौर्णमास्यां यथा शशी। आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यःशत्रुपक्षक्षयङ्करः
वैष्णवः सत्यसम्पन्नो जितक्रोधो जितेन्द्रियः। राजसूयंक्रतुवरंवाजिमेधसहस्रकम्
इयाज परमः श्रीमान्मुमुक्षुर्धर्मतत्परः। एवं सर्वगुणोपेतः स पृथ्वीं पालयन्नृपः ॥१३
अवन्तींनाम नगरीं मालवे भुवि विश्रुताम्। उवास सर्वरत्नाढ्यांद्वितीयाममरावतीम्
तत्र स्थितो नरपतिर्विष्णौभक्तिमनुत्तमाम्। चकार मनसा वाचा कर्मणापरमाद्भुताम्
एवं प्रवर्तमानोऽसौ कदाचिच्छ्रीपतेर्विभोः। पूजासमयमासाद्य देवार्चनगृहान्तरे ॥
विद्वद्भिःकविभिश्चैवतीर्थयात्राप्रसिद्धिभिः। दैवज्ञैःश्रोत्रियैःसार्द्धंपुरोहितमवस्थितम्

आहूतो व्याजहारेदं ज्ञायतां क्षेत्रमुत्तमम् । यत्रसाक्षाज्जगन्नाथं पश्यामोऽनेन चक्षुषा
एवमुक्तो नृपाग्र्येण वैष्णवेन पुरोहितः । तीर्थयातृव्रजं पश्यन्नुवाच प्रश्रितं वचः॥

भोभोस्तीर्थाटनव्यग्रा धार्मिकास्तीर्थकोविदाः !।
यदादिशति देवोऽयं युष्माभिस्तच्छ्रुतं किल ॥ २० ॥

विज्ञाय तस्याऽभिप्रायं कश्चित्सुबहुतीर्थगः । उवाचवाग्मीराजानंबद्धाञ्जलिपुटं मुदा
राजन्ननेकतीर्थानिव्यचारिषमहं प्रभो !। आशैशवात्क्षितितले श्रुतान्यन्यैस्तु यानि वै
ओढदेशइतिख्यातो वर्षे भारतसञ्ज्ञिते । दक्षिणस्योदधेस्तीरेक्षेत्रं श्रीपुरुषोत्तमम्
यत्र नीलगिरिर्नामसमन्तात्काननावृतः । तस्योत्सङ्गेकल्पवृक्षःसमन्तात्क्रोशसंमितः

तस्य छायां समाक्रम्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
तस्य पश्चाद्दिशि ख्यातं कुण्डं रौहिणसञ्ज्ञितम् ॥ २५ ॥
तत्पूर्णं कारुणाम्भोभिः स्पर्शनादेव मुक्तिदम् ।
तस्य प्राक्तटमास्थाय नीलेन्द्रमणिनिर्मिता ॥ २६ ॥

तनुः श्रीवासुदेवस्य साक्षान्मुक्तिप्रदायिनी । तत्र कुण्डेतुयःस्नात्वाद्दृष्ट्वातुपुरुषोत्तमम्
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्य विमुच्यते । तत्राऽऽस्त आश्रमश्रेष्ठःख्यातःशबरदीपकः
पश्चिमस्यां दिशिविभोर्वेष्टितःशबरालयैः । यस्मादेकपदीमार्गोयेनर्विष्णवालयंव्रजेत्

यत्र साक्षाज्जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः ।
जन्तूनां दर्शनान्मुक्तिं यो ददाति कृपानिधिः ॥ ३० ॥

तत्रोषितं मया राजन्वर्षं श्रीपुरुषोत्तमे । तुष्ट्यर्थं देवदेवस्य व्रतिना वनवासिना ॥
प्रतिरात्रं भगवतो दर्शनाय दिवौकसाम् । आगतानां महाराज! दिव्यगन्धोह्यमानुषः
नानास्तुतिवचःकल्पपुष्पवृष्टिश्चलभ्यते । महिमैष न कुत्राऽपिविष्णोःस्थानेप्रकाशते
पौराणिकी प्रवृत्तिश्च श्रुतातत्र महीपते !। वायसो माधवं दृष्ट्वा तिर्यग्देहोऽपिमुच्यते
नाऽधिकारी पुण्यकृत्येज्ञानहीनोऽपिपार्थिव !। तृषार्त्तो रौहिणेकुण्डेजलंपातुंसमागतः

त्यक्त्वा कालवशात्प्राणान्विष्णुसारूप्यमाप्तवान् ।
अहमासं पुरा मूर्खस्तत्प्रसादात्तु साम्प्रतम् ॥ ३६ ॥

अष्टादशसुविद्यासुशेषोवास्यान्ममापरः । मतिश्चनिर्मलाजाताविष्णोःपश्यामिनापरम्
त्वं यस्माद्विष्णुभक्तोऽ सिसततंचदृढव्रतः । अतस्तवोपदेशार्थमागतोऽहंतवान्तिकम्
नो धनं न चभूमिंचत्वत्तःसम्प्रार्थ्यतेऽधुना । व्यलीकमेतन्माबुद्ध्वातत्रस्थंश्रीधरंभज
एवमुक्त्वा तु जटिलः सर्वेषां पश्यतां तदा । अन्तर्द्धानंजगामाशुराजापरमविस्मयम्

अवाप्य व्याकुलमतिः कथं मे निर्वहेदिति ।
पुरोहितमुवाचेदं तस्यैवाऽर्थस्य साधने ॥ ४१ ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

अमानुषमिदंवृत्तं श्रुत्वेदानीममानुषात् । बुद्धिस्त्वरयते तत्र यत्रास्तेऽसौ गदाधरः
मम धर्मार्थकामाहित्वदायत्ताद्विजोत्तम । अविरुद्धास्त्वत्प्रसादात्त्रिवर्गःसाधितोमया
इदानींचेद्द्विजश्रेष्ठत्वमत्रार्थेगमिष्यसि । चतुर्वर्गस्तुसम्पूर्णःप्राप्तःस्यात्साम्प्रतम्मया

पुरोहित उवाच

बाढमेतत्करिष्यामि यथा द्रक्ष्यसि केशवम् ।
चर्माच्छादितचक्षुर्भ्यां साक्षान्मुक्तिप्रदंविभुम् ॥ ४५ ॥

एवमत्र यतिष्यामि तत्र सर्वे यथा वयम् । वत्स्यामः ससहायाश्चक्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे
साफल्यंकिमतोराजन्नन्मिनोजन्मनोभवेत् । पुरुषन्तमसःपारंसाक्षाद्द्रक्ष्यसिमाधवम्
भ्राताविद्यापतिर्नामकनीयान्मे व्रजिष्यति । देशभ्रमणशीलैश्च चारैः सह तवाऽधुना॥
तत्र गत्वा जगन्नाथं दृष्ट्वा स हि गिरौयथा । कण्टकावाससंस्थानम्भूप्रदेशम्प्रमीयच
तूर्णम्प्रवृत्तिमानेताश्रेयोऽस्माकम्भविष्यति । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा पुनरुवाचह

इन्द्रद्युम्न उवाच

साधु ब्रह्मन्समाधाय व्यवसायोविचारितः । अहम्प्रथमतोऽप्येतच्छ्रुत्वैव कृतनिश्चयः
तत्र क्षेत्रे भगवतः सन्निधौ निवसाम्यहम् । तद्गच्छतु तव भ्रातायथेष्टं साधयिष्यति
इत्युक्त्वाऽन्तःपुरं राजाप्रविवेशमुदान्वितः । पुरोहितोऽपि तान्सर्वान्यथावदनुपूर्वशः
राजाज्ञया पूजयित्वा प्राहिणोत्स्वं स्वमाश्रमम् । भ्रातरंसुमुहूर्ते च दैवज्ञकृतनिश्चये॥
प्रस्थापयामासतदा कृतस्वस्त्ययनंद्विजैः । अपसर्पैःप्रत्ययिकैः पुष्पस्यन्दनमास्थितः

ततः सम्प्रस्थितो विप्राः! स तु विद्यापतिर्द्विजः ।
मनसा चिन्तयामास मध्ये स्यन्दनमास्थितः ॥ ५९ ॥

अहो मे सफलं जन्म सुकल्या शर्वरी च मे । द्रक्ष्यामि यद्भगवतो मुखपद्ममघापहम् ॥
श्रवणाद्यैरुपायैर्यं यतमाना अहर्निशम् । पश्यन्ति यतयश्चेतःपुण्डरीके व्यवस्थितम्
तमद्य नीलशिखरैश्शृङ्गस्थंविभ्रतम्वपुः । वपुः सम्बन्धहरणंसाक्षाद्द्रक्ष्यामिचक्रिणम्

श्रुतिस्मृतीहासपुराणवाक्यैर्यद्रूपमास्थापयितुं न शक्यम् ।
तच्छ्रीनिधे रूपमदृष्टपूर्वं दृष्ट्वा तरिष्यामि भवाम्बुराशिम् ॥ ६० ॥
यन्नामसङ्कीर्तनतस्त्रिधांहः सङ्घः प्रणाशं स्मरतां प्रयाति ।
तमद्य विश्वेश्वरमप्रमेयं साक्षात्करिष्यामि गिरौ वसन्तम् ॥ ६१ ॥
यत्पादपद्मानन्नुसंहितस्य पदे पदे दुःखमुपार्जितस्य ।
तमः प्रकाण्डप्रभवं कदाचिन्नात्माश्रितं कर्मभिरेति नाशम् ॥ ६२ ॥
आराध्य सूक्ष्मं स्वगुहानिवासं यं पञ्चकोषावृतमात्मसंस्थम् ।
वेदान्तगीराह न चाऽपि वेद वन्दे स्वविद्यैकनिवेद्यमाद्यम् ॥ ६३ ॥
ब्रह्माण्डमालाकलितानुरोमं सहस्रमूर्द्धाङ्घ्रिदृशं पुराणम् ।
निःश्वासवातोत्थितवेदराशिं सर्वप्रपञ्चेशमहं प्रपद्ये ॥ ६४ ॥
यन्मायया निर्मितकूटमेतत्सृष्टिक्षयस्थानविलासिरूपम् ।
निरूपिताऽऽरोपितहेयरूपस्वरूपहीनं प्रणवस्वरूपम् ॥ ६५ ॥
तिर्यक्तृषाशान्तिनिमित्ततोऽपि यदृच्छया यत्सविधं प्रयातः ।
देहेन तेनैव सरूपमुक्तिमवाप तं दृष्टिपथं करिष्ये ॥ ६६ ॥
अहो अहो मे खलु भाग्यशंसी यत्कोटिजन्मार्जितपुण्य एकः ।
समुत्थितो मे खलु चर्मदृग्भ्यां विलोकयिष्ये जगदादिकन्दम् ॥ ६७ ॥

इत्थं सञ्चिन्तयन्विप्रः प्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना । अतीतं बहुमध्वानं नावुध्यद्रथवेगतः ॥
दिनमध्ये व्यतिक्रान्ते लम्बितेबहुवासरे । वर्त्मन्यदृश्यताऽग्रे तु देशो भुवनमण्डनः
ओढसञ्ज्ञस्तु भो विप्राः क्षितिमण्डलपावनः । इत्थं पश्यन्वनान्तानि गिरिदुर्गाश्रमागमान्

सूर्यास्तमनवेलायां महानद्यास्तटेऽभवत् ॥ ७० ॥
अवरुह्य रथाद्विप्रःकृत्वाचाह्निकमादृतः । उपास्य पश्चिमांसन्ध्यांदध्यौसमधुसूदनम्
रथपृष्ठेस्थितोरात्रिं गमयित्वात्वरान्वितः । महानदीं समुत्तीर्यप्रातःकृत्यंसमाप्यसः
चिन्तयन्नेव गोविन्दं प्रतस्थे रथमास्थितः ।
पश्यन्भगवतो मार्गं श्रोत्रियाणां हि यज्वनाम् ॥ ७३ ॥
ब्रह्मवर्चस्विनाम्विप्राग्रामान्पूगैरलंकृतान् । विलङ्घ्यैकाम्रमकवनंयावदायातिसद्विजः
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो ददृशे जनान् । जन्मान्तरितमात्मानं बुबुधे दिव्यरूपिणम्
अवरुह्य रथात्तूर्णं साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च । हर्षाश्रुपूर्णनयनो नाऽन्यत्किञ्चिदपश्यत ॥
केवलं मनसा विष्णुं पश्यन्बाह्ये च भो द्विजाः ! ।
एवं व्रजन्यदा विप्रो ध्यायन्पश्यन्स्तुवन्हरिम् ॥ ७७ ॥
अपश्यत्काननाकीर्णं कल्पन्यग्रोधभूषितम् । नीलाचलंलिखन्तंखं पश्यताम्पापनाशनम्
अत्यद्भुतं निवसति साक्षात्तनुभृतो हरेः । उपत्यकायामारूढः समन्तान्मार्गयन्द्विजः
मार्गं न लेभे विप्रोऽसौ मुकुन्दालोकनोत्सुकः ।
असुप्यत ततो भूमौ कुशानास्तीर्य वाग्यतः ॥ ८० ॥
दर्शने तस्य देवस्य तमेव शरणं ययौ । ततः शुश्राव वचनं गिरेः पश्चादमानुषम् ॥
भगवद्भक्तिविषयं सँल्लापं कुर्वताम्मिथः । ततो विद्यापतिर्हृष्टोऽनुसरंस्तज्जगाम वै ॥
ददर्श शबरागारैर्वेष्टितं परितो द्विजाः । क्षेत्रस्य द्वीपसंस्थानं ख्यातं शबरदीपकम्
तत्र गत्वाशनैर्विप्रःप्रविश्यविनयान्वितः । ददर्श विष्णुभक्तांस्ताञ्छङ्खचक्रगदाधरान्
प्रणम्य शिरसाविप्रस्तस्थौबद्धाञ्जलिस्तदा । ततोविश्वावसुर्नाम शबरः पलिताङ्ककः
अवसायहरेः पूजांपूजाशेषोपशोभितः । सम्प्राप्तोगिरिमध्यात्तुतस्मिन्नेवक्षणेद्विजाः
आलोक्य तं द्विजो हर्षमुपयातो व्यचिन्तयत् ।
एष प्राप्तो हरेः स्थानाच्छ्रान्तो निर्माल्यभूषितः ॥ ८७ ॥
वैष्णवाग्र्य इतो वार्तां विष्णोः प्राप्स्यामि दुर्लभाम् ।
चिन्तयन्नेव विप्रोऽसौ शबरेणाऽभ्यभाषत ॥ ८८ ॥

शबर उवाच

कुतः समागतो विप्र ! काननान्तं सुदुस्तरम् ।

क्षुतृड्भिरतिश्रान्तश्च सुखमत्राऽऽस्यताञ्चिरम् ॥ ८६ ॥

पाद्यमासनमर्घ्यञ्च दत्त्वा विश्वावसुर्द्विजम् । उवाचप्रश्रयगिरा प्रस्तुतं प्रतिपादयन्

फलैः पाकेन वा विप्र! प्राणयात्रा भवेत्तव । यत्तुभ्यं रोचते तद्वै दीयतेऽत्रमया द्विज

भाग्यं ममाऽद्य भगवञ्जीवितं सफलञ्च मे ।

प्राप्तोऽसि मद्गृहं विप्र साक्षाद्विष्णुरिवाऽपरः ॥ ९२ ॥

इतिब्रुवाणं शवरं प्रोवाच द्विजपुङ्गवः । न मे फलैर्न पाकेन कार्यं वैष्णवपुङ्गव!॥

यदर्थमागतं दूरात्साधो! तत्सफलं कुरु । इन्द्रद्युम्नस्य नृपतेरवन्तिपुरवासिनः ॥९४

पुरोहितोऽहं सम्प्राप्तो विष्णोर्दर्शनलालसः ।

राजाऽग्रे तैर्थिकानां हि समाजावसरे श्रुतम् ॥ ९५ ॥

तीर्थक्षेत्रप्रसङ्गेन केनचित्प्रस्तुतं तदा । तथा निवेदितं क्षेत्रं राजाग्रे जटिलेन वै॥

आनुपूर्व्याच्च तत्सर्वं कथयामास स द्विजः । एतदर्थमहं साधो राज्ञा चोत्कण्ठितेन वै

प्रेषितोऽहं हरिं द्रष्टुमत्रस्थं नीलमाधवम् ।

दृष्ट्वा यावन्नरपतेर्वार्त्तां नेष्यामि सोऽप्यहम् ॥ ९८ ॥

निराहारो ध्रुवं साधो ! तन्मां विष्णुं प्रदर्शय ॥ ९९ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे इन्द्रद्युम्न-पुरोहितस्यनीलमाधवदर्शनार्थंगमनवर्णनंनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

——:०:——

अष्टमोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्रेब्राह्मणस्यशबरेणसहगमनम्

जैमिनिरुवाच

इत्युक्तस्तेन विप्रेणशबरश्चिन्तयाकुलः । अस्माकमुपजीव्योऽसौरहस्यस्थोजनार्दनः
उपस्थितं नो दुर्दैवंयेनस्यात्सार्वलौकिकः । नदर्शयामिचेद्विप्रंशापंमेऽसौ प्रदास्यति
सर्वेषां ब्राह्मणो मान्यो विशेषादतिथिस्त्वयम् ।
यस्मिन्विफलकामे तु द्वौ लोकौ विफलौ मम ॥ ३ ॥
एवं विचारयन्विश्वावसुः शबरपुङ्गवः । जनप्रवादं सस्मार पुराणं शबरालये ॥ ४ ॥
अस्मिन्नन्तर्हिते देवे भूम्यन्तर्लीनमाधवे । इन्द्रद्युम्नो नरपतिः शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ ५
मनुष्यवपुषा यो वै ब्रह्मलोकं व्रजेदपि । सोऽस्मिन्प्रजाभिरागत्य वाजिमेधशतेन च
इष्ट्वादारुमयंविष्णुंचतुर्द्धास्थापयिष्यति । अस्यचेद्भाग्यमुत्पन्नंब्राह्मणस्याऽतिथेर्भृशम्
अन्तर्द्धानं भगवतः सन्निधानमथो भवेत् । तदेनंदर्शयिष्यामिनीलेन्द्रमणिमच्युतम्
न पौरुषेयं कस्याऽपि कर्तव्ये दैवनिर्मिते । इत्थं विचार्य मनसा शबरश्च पुनः पुनः ॥
उवाच विप्रं पुरतो ध्यायन्तं विष्णुमव्ययम् ॥ १० ॥

शबर उवाच

अस्माभिः पूर्वतोऽप्येष उदन्तः श्रुत एव हि । इन्द्रद्युम्नोनरपतिरत्र वासं करिष्यति
ततोऽपिभाग्यवांस्त्वंहियदग्रेनीलमाधवम् । चक्षुषापश्यसेब्रह्मन्नेहियामोह्यधित्यकाम्
इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा वर्त्मना गहनं ययौ । उपर्युपर्युपारुह्य शिलाविषमवर्त्मनि ॥
एकैकनरगम्ये च कण्टकाचितदुर्गमे । तमः प्राये पथि गतं बोधयन्वचसा द्विजम् ॥
मुहूर्ताभ्यांरौहिणस्यकुण्डस्याविशतांतटे । तंदृष्ट्वासोऽब्रवीद्विप्रंकुण्डमेतद्द्विजोत्तम
रौहिणाख्यं महत्तीर्थं कारणं सर्वपाथसाम् । अत्रस्नात्वा नरो यातिवैकुण्ठभवनंद्विज
एतस्यपूर्वभागेऽसौकल्पवृक्षच्छायावटोमहान् । छायांयस्यसमाक्रम्यब्रह्महत्यांव्यपोहति

एतयोरन्तरे ब्रह्मन्निकुञ्जाभ्यन्तरे स्थितम् । पश्यसाक्षाज्जगन्नाथं वेदान्तप्रतिपादितम्
दृष्ट्वा जहीहि सकलं विविधं पापसञ्चयम् । इत ऊर्ध्वं न शोचस्वपतितो भवसागरे

जैमिनिरुवाच

सतु कुण्डेद्विजःस्नात्वासम्प्रहृष्टमनाः सुधीः । दूरात्प्रणम्यशिरसामनसावचसाहरिम्
तुष्टाव चैकाग्रमना हर्षगद्गदया गिरा ॥ २१ ॥

विद्यापतिरुवाच

प्रधानपुरुषातीत! सर्वव्यापिन्परात्पर !। चराचरपरीणाम ! परमार्थ ! नमोऽस्तु ते॥
श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहाससम्प्रतिपादितैः । कर्मभिस्त्वं समाराध्य एक एव जगत्पते
त्वत्त एतज्जगत्सर्वं सृष्टौ सम्पद्यतेविभो !। त्वदाधारमिदं देव ! त्वयैव परिपाल्यते
कल्पान्ते संहृतं सर्वं त्वत्कुक्षौ सावकाशकम् ।
सुखं वसति सर्वात्मन्नन्तर्यामिन्नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥
नमस्ते देवदेवाय त्रयीरूपाय ते नमः । चन्द्रसूर्यादिरूपेण जगद्भासयते सदा ॥ २६॥
सर्वतीर्थमयीगङ्गायस्य पादाब्जसङ्गमात् । पुनाति सकलाँल्लोकांस्तस्मै पावयतेनमः
हवींषि मन्त्रपूतानि सम्यग्दत्तानि वह्निषु । परिणामकृते तुभ्यं जगज्जीवयते नमः॥
यदंशमुपजीवन्ति जगन्त्यानन्दरूपिणः । सर्वकल्मषहीनाय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः॥
निर्मलाय स्वरूपाय शुभरूपायमायिने । सर्वसङ्गविहीनाय नमस्ते विश्वसाक्षिणे॥
बहुपादाक्षिशीर्षास्यबाहवे सर्वजिष्णवे ।
सर्वजीवस्वरूपाय नमस्ते सर्वरूपिणे ॥ ३१ ॥
नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते कमलासन !। नमः कमलपत्राक्ष त्राहि मां पुरुषोत्तम !॥
असारसंसारपरिभ्रमेण निपीड्यमानं खलु रोगशोकैः ।
मामुद्धराऽस्माद्भवदुःखजातात्पादाब्जयोस्ते शरणं प्रपन्नम् ॥ ३३ ॥

जैमिनिरुवाच

इति स्तुत्वा सुरेशानं देवं प्रणवरूपिणम् । प्रणतः प्रणवं मन्त्रं जजाप पुरतो हरेः॥
जपान्ते शान्तमनसं कृताञ्जलिमुपस्थितम् । मन्यमानं कृतार्थंस्वंप्रोवाचशबरोद्विजम्

विश्वावसुरुवाच

कृतार्थस्त्वं प्रभुं दृष्ट्वा साम्प्रतं द्विजपुङ्गव !।
दिनान्तोऽभूद्गृहं यावः क्षुधितोऽसि श्रमान्वितः ॥ ३६ ॥
वासोऽप्यरण्ये हिंस्राणां नाऽस्माकमुचिता स्थितिः ।
यावद्भानोर्भान्ति भासस्तावद्यामो निजालयम् ॥ ३७ ॥

इत्युक्त्वा ब्राह्मणंपाणौगृहीत्वाशबरःपुनः । आजगामद्विजश्रेष्ठाःस्वाश्रमंत्वरयान्वितः
ब्राह्मणोऽपि जगन्नाथं ध्यायन्नानन्दसागरम् । क्षुत्तृषाश्रमजातानि दुःखानि बुबुधेनहि
शिलाविषममार्गेऽपि कण्टकोत्करदुर्गमे । व्रजन्न दुःखं लेभेऽसौ शरीरानास्थयामुदा
एवं व्रजन्तौ तौ विप्रशबरौ शबरालयम् । सायाह्नेतमनुप्राप्तौवैष्णवाग्र्यौतुभोद्विजाः

तत्राऽतिथिमनुप्राप्तं ब्राह्मणं शबरोत्तमः ।
भक्ष्यभोज्यविधानैश्च विविधैः समपूजयत् ॥ ४२ ॥

ततोऽभितृप्तस्तद्दत्तैरुपचारैर्नृपोचितैः । विस्मयं परमं लेभे शबरस्य सुदुर्लभैः ॥४३
शबरोऽयं निवसति विषमे काननान्तरे । आरण्यकैर्वर्त्तमानः कथमस्य गृहान्तरे ॥
राजार्हभक्ष्यभोज्यानि सुलभान्यद्भुतं महत् । इति विस्मयमापन्नं ब्राह्मणं शबरस्तदा

प्रोवाच स्निग्धवचसा विनयावनतो भृशम् ॥ ४६ ॥

शबर उवाच

भो विप्र ! श्रमहीनोऽसि कच्चित्क्षुत्तृड्विवर्जितः ।
आरण्यकानां भवने नागराणां कुतः सुखम् ॥ ४७ ॥

अज्ञाता नागरी वृत्तिः शबरैस्तु विशेषतः । राजोपजीविनांश्रेष्ठौराजामात्यपुरोहितौ
तयोराजसमः पूज्यः पुरोधाः शास्त्रसम्मतः । इन्द्रद्युम्नो नरपतिःसार्वभौमःप्रतापवान्
त्वयि तुष्टे स सन्तुष्टोध्रुवंविप्रभविष्यति । इत्युक्तवत्यरण्यस्थे सतु प्रीततरोद्विजः

उवाच शबरम्प्रीत्या विनयाद्भुतवादिनम् ॥ ५० ॥

विद्यापतिरुवाच

साधो मदुपचाराय हृतान्येतानियानि ते । वस्तून्यमानुषाणीह यान्यदृष्टानिराजभिः

चित्रमेतद्दिव्यवस्तुसञ्चयः शबरालये। एतत्ख्यातुं कौतुकं मे साधो! सम्वर्द्धते महत्

शबर उवाच

एतत्प्रकाशितुं विप्र मतिर्नोत्सहते मम। तथापि ते द्विज श्रेष्ठाऽतिथिभक्त्या वदाम्यहम्
शक्रादयो देवगणाः समायान्त्यन्वहं द्विज!। दिव्योपचारानादाय पूजनाय जगत्पतेः
पूजयित्वा जगन्नाथं स्तुत्वा नत्वा च भक्तितः। गीतवादित्रनृत्यैश्च सन्तोष्य पुरुषोत्तमम्

पुनः प्रयान्ति सततं त्रिदिवं सुरसत्तमाः।
दिव्यान्येतानि वस्तूनि निर्माल्यानि जगत्पतेः ॥ ५६ ॥

दत्तानि तुभ्यं विदुषे कथं विस्मयते भवान्। विष्णोर्निर्माल्यभोगेन क्षीणरोगजरा वयम्
सपुत्रबान्धवाः सर्वे निवसामोऽयुतायुषः। विष्णुनिर्माल्यभोगेन क्षीयते पापसंहतिः
न तच्चित्रं द्विजश्रेष्ठ येन स्यान्मुक्तिभाजनम्। श्रुत्वैतद्दुर्लभं कर्म ब्राह्मणो रोमहर्षणः
आनन्दाश्रुविलुप्ताक्षः स्वं कृतार्थममन्यत। अहो शबरजन्माऽसौ पश्यत्यव्ययमीश्वरम्

तदुच्छिष्टं दिव्यभोगमुपभुङ्क्ते दिवानिशम्।
नान्योऽस्य सदृशो लोके पृथिव्यां सचराचरे ॥ ६१ ॥

यादृशो विष्णुभक्तोऽयं शबरो नीलपर्वते। किं गत्वा स्वगृहे मेऽद्य कुटुम्बेनाऽसुखात्मना

अनेन सख्यं निष्पाद्य स्थास्याम्यत्र वनान्तरे।
चिन्तयित्वा चिरं विप्रः श्रीकृष्णासक्तमानसः ॥ ६३ ॥

पुनः प्रोवाच शबरं मयि ते चेदनुग्रहः। साधो! सख्यं त्वया कार्यमिति मे निश्चयो महान्
किं गत्वा सेवया राज्ञः परत्राऽसुखहेतुना। अत्र स्थित्वा त्वया सार्धमुपास्य मधुसूदनम्
यथा पुनर्देहबन्धो यतिष्ये न भवेन्मम। साधु मित्र त्वया सार्द्धं भाग्यान्मे सङ्गमोऽभवत्
दुस्तारं भवसंसारं तरिष्ये त्वत्प्रसादतः। सारमेतत्प्रशंसन्ति संसारे भवसागरे ॥
यद्वैष्णवेन मित्रत्वं दुःखसंसारपारदम्। मित्रस्य सहवासेन पुनः प्रत्यक्षमेष्यति ॥
भगवान्पुण्डरीकाक्षः शङ्खचक्रगदाधरः। इन्द्रद्युम्नो नरपतिर्मयि प्रत्यागते सखे ॥ ६८ ॥
भगवन्तं समाराद्धुमिहैव स निवत्स्यति। प्रासादं विपुलं चात्र चिकीर्षुर्भगवत्प्रियम्
सहस्रमुपचाराणां पूजनाय जगत्पतेः। रचयिष्यामीति महत्प्रतिज्ञाऽऽसीन्महीपतेः

प्रतिश्रुतं तत्पुरतः प्रीतस्तन्मेऽनुमन्यताम् ॥ ७२ ॥

शवर उवाच

सखे ! पुरातनी वार्त्ता प्रसिद्धैवाऽत्र तादृशी ॥ ७३ ॥

त्वया यथैव कथित इन्द्रद्युम्नसमागमः । केवलं माधवं तत्र न द्रक्ष्यति महीपतिः ॥
अचिरादेव भगवान्स्वर्णवालुकयावृतः । प्रतिजज्ञे यमायैतदन्तर्द्धानं गमिष्यति ॥७५
महाभाग्यपरीपाकात्प्रत्यक्षोऽयं त्वया कृतः । इन्द्रद्युम्नागमाभ्यासेध्रुवंसव्यवधास्यति
एषोऽर्थस्तु त्वया मित्र न वक्तव्यो नृपाग्रतः । आगत्य सोऽत्र नृपतिरदृष्ट्वापरमेश्वरम्
प्रायोपवेशव्रतवान्स्वप्ने दृष्ट्वा गदाधरम् । तदादेशाद्दारुमयं प्रभोर्लिङ्गचतुष्टयम् ॥ ७८॥
पूजयिष्यतिभक्त्याचप्रतिष्ठाप्यस्वयम्भुवा । स्थितिरत्रहरेर्यावदावयोर्वंशसंस्थितिः
अनुग्रहाद्भगवतो नात्र कार्या विचारणा । तदत्राऽर्थे सखे! खेदं मा व्रज क्षिप्रमेव हि ॥
निर्वर्त्स्यतेऽचिरादेव मित्रेदानीं सुखं स्वप । प्रातर्दृष्ट्वा पुनर्देवंनीलेन्द्राश्ममयंविभुम्

सिन्धौ स्नात्वा तस्य तटे निवासाय महीपतेः ।

द्रक्ष्यामः साधु संस्थानं यथाऽभिलषितं सखे !॥ ८२ ॥

इत्यन्याश्च कथाः पुण्याःकृत्वातौचपरस्परम् । शुभस्थानेचास्वपतांशयनेपल्लवास्तृते
प्रभातायां तु शर्वर्यां तीर्थराजोदकेन तौ । स्नानं निर्वर्त्य विधिवन्माधवं प्रणिपत्य च
राजार्हस्थानं निर्णीयनिवासायगतौपुनः । तत्रमित्रेणाऽभिमन्त्र्यराज्ञोनिर्देशकारणात्

रथमारुह्य विप्रः स त्ववन्तीपुरमाययौ ॥ ८६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
पुरुषोत्तमदर्शनमनुइन्द्रद्युम्नपुरोहितस्यावन्तीपुरींप्रत्यागमनवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥

नवमोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्ननृपतेर्विद्यापतिम्प्रतिपुरुषोत्तमक्षेत्रविषयकप्रश्नवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

प्रत्यागते ततो विप्रे सायाह्ने सुरसङ्कुले । माधवार्चनवेलायां वातश्चण्डगतिर्ववौ ॥१
सुवर्णवालुकाश्चाऽसौ विचकार च सर्वशः । तेनाकुलदृशोदेवा न शेकुरवलोकने ॥२
श्रीकान्तस्यतदा विप्राद्ध्युस्तेपुरुषोत्तमम् । यावद्ध्यानस्थिरदृशोमुहूर्तंतेदिवौकसः
ध्यानान्तेवालुकाराशिंददृशुस्ते नमाधवम् । रौहिणंचतथाकुण्डंबभूवुर्व्याकुलेन्द्रियाः
चिन्तामवापुर्महतीं हाहेति रुरुदुर्भृशम् । किमेतन्नो हि दुर्दैवमेकदा समुपस्थितम् ॥
दृशां सेचनकः श्रीशः क्षणाद्यन्नोपलभ्यते । अपराधं किमस्माकं लक्षितं पुरुषोत्तम!॥
युगपत्सेवकान्सर्वानपहाय न दृश्यसे । येषामर्थं जगन्नाथ! स्वीचकर्थ कलेवरम् ॥७॥

तानना थान्परित्यज्य कानने किमुपेक्षसे ।
स्वशरीरविभूतीर्नो विहाय कमलेक्षण !॥ ८

किमकाण्डंरचयसि कथाशेषान्दिवौकसः । तवांशभूतान्नः सर्वान्यज्वानःप्रयजन्तिवै
त्वत्प्रीत्यै यज्ञपुरुष त्वदादिष्टफलप्रदान् । त्वदहङ्कारवष्र्माणस्त्वदनुग्रहजीवनाः ॥

कान्दिशीकाः कुत्र यामः साम्प्रतं त्वदुपेक्षिताः ।
दिवि स्थानैश्च किं कार्यं त्वामनालोक्य माधव !॥ ११ ॥

अकृतार्थास्त्वयाहीना भविष्यामो वनेचराः । निष्कलङ्कसुधाभानुंसुषमापरिभावुकम्
त्वदास्यं चेन्न पश्यामो न यास्यामःसुरालयम् । तपआस्थायपरमत्रैवसंशितव्रताः
वर्त्तामहे वन्यवृत्त्याजटावल्कलधारिणः । यावत्त्वांपुण्डरीकाक्षविलोकिष्यामहेवयम्
निसर्गकरुणाम्भोधे दीनान्नस्त्रातुर्महसि । अनाथान्दीनहृदयांस्त्वामेव शरणं गतान्
त्वदनालोकशोकैकपारावारे निमज्जतः । शुभदृष्टितरण्या नः समुद्धर जगत्पते !॥१६
एवम्प्रलपतां तत्र सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् । अशरीरा तदा वाणी पुनः प्रादुर्बभूवह

अत्राऽर्थे भोः सुरा यत्नं कर्तुमर्हथ नो वृथा। अद्यप्रभृति देवस्य दर्शनं दुर्लभं भुवि॥
अत्रस्थानेऽपितंनत्वातद्दर्शनफलंलभेत्। स्वयंभुवोऽन्तिकंगत्वाहेतुंशास्यथनिश्चितम्
तच्छ्रुत्वा त्रिदशाः सर्वे ब्रह्मणोऽन्तिकमागताः। यमानुग्रहवृत्तान्तमवतारं च दारुणः
श्रुत्वा सन्तुष्टमनसःसर्वेतेत्रिदिवंगताः। स तुविद्यापतिर्विप्रोरथारूढोऽभ्यचिन्तयत्
ममकार्यं तु निष्पन्नं यद्दृष्टो नीलमाधवः। आसमन्तात्क्षेत्रमिदंपरिभ्रम्याऽवलोकये

अदृष्टपूर्वं परमंसुपुण्यं सङ्कीर्तनं यस्य मलापहारि।
क्षेत्रोत्तमं श्रीपुरुषोत्तमाख्यं प्रदक्षिणीकृत्य व्रजामि तूर्णम्॥ २३॥
पृथ्वीप्रदक्षिणफलं शतधा भजन्ते पर्यन्ति ये सकलकल्मषदार्यरण्यम्।
नीलाद्रिमण्डितमिदं पुरुषोत्तमाख्यं मित्रं ममोपदिशति स्म समुद्रतीरे

विचिन्त्येत्थं द्विजश्रेष्ठः परिबभ्राम वै तदा। क्षेत्रं पश्यन्वनं चैवनानाद्रुमगणान्वितम्
नानापक्षिगणाघुष्टंकूजद्भ्रमरगुम्फितम्। अप्रविष्टार्ककिरणं छायातरुगणावृतम्॥
सर्वर्तुकुसुमोपेतं लतागुल्मोपशोभितम्। नानाजलाशयाधारकूजत्सारससङ्कुलम्॥
पद्मकह्लारकुमुदविकचोत्पलराजितम्। न जलं तत्र कुसुमपरिहीनं लतादिकम्॥२८॥
परीत्यवेगात्तत्क्षेत्रंजगामाऽथद्विजोत्तमः। ध्यायन्निरशनःप्राज्ञःप्राप्याऽवन्तींदिनात्यये
दूतैरावेदितं पूर्वं दूरस्थस्याऽऽगतं द्विजाः। श्रुत्वेन्द्रद्युम्नोनृपतिः प्रहर्षं परमं ययौ॥
तदागमनमाकाङ्क्षन्पूजयित्वा जनार्द्दनम्। विद्वद्भिर्ब्राह्मणैः सार्द्धं तस्थौ संहृष्टमानसः
एतस्मिन्नन्तरे विप्राः स तु विद्यापतिर्द्विजः। प्रावेशिकैर्वेत्रहस्तैर्दौवारिकपुरःसरैः

निर्दिष्टमार्गः पौरैश्चाऽनुमतः कौतुकान्वितैः।
निर्माल्यमालां नीलाख्यमाधवस्य सुशोभनाम्॥ ३३॥
निधाय पाणौ राजाग्रे प्रविवेश त्वरान्वितः।
तं दृष्ट्वा नृपतिः सोऽथ समुत्थाय वरासनात्।
प्रसीद जगदीशेति वदन्नन्तिकमभ्यगात्॥ ३४॥

अद्य मे जीवितं जातं सफलं जन्मकर्मणा। निर्माल्यमालावपुषं यत्पश्यामीहमाधवम्

मालां मुकुन्दशिरसोऽनुपमप्रमोदलाभाधरीकृतसुरद्रुम कान्तगन्धाम्।

अन्धीकृतालिनिचयां पवनप्रसारिगन्धप्रणाशितजगत्कलुषां नमामि ॥ ३६ ॥

यत्पादपङ्कजगलद्रजसोऽनुषङ्गा ब्रह्मादयः परमसम्पदमापुरस्य ।

विष्णोः कलेवरसमुज्ज्वलिताङ्गरागसंसक्तपुष्पनिलयां प्रणतोऽस्मि मालाम् ॥
पद्मांहृत्पद्मवसतिंसपत्नींयाहसत्यसौ । विकस्वरैःसुकुसुमैर्विष्णवङ्कस्थितिगर्विताम्
कुत्रस्थितेयमाहार्षीन्महिमानंस्रगुज्ज्वला । याश्रीनिधेःशरीरेभूत्सर्वाङ्गव्यापिनीचिरम्
जय नीलाद्रिशिखरभूषणाघप्रदूषण !। प्रणतार्त्तिहर ! श्रीमँस्त्राहि मां शरणागतम् ॥
इति ब्रुवाणः क्षितिपो बाष्पगद्गदयागिरा । जगामशिरसाभूमिंस्फुरद्रोमाञ्चकञ्चुकः
सोऽपिविद्यापतिर्विप्रःक्षपिताशेषकल्मषः । दिव्यदेहोनृपस्याग्रेध्यायन्माधवमास्थितः
तेजसा सर्वलोकानां पापानिक्षालयन्सुधीः । अनुगृह्णातुदेवस्त्वांनीलाद्रिशिखरालयः
श्रीपतेरियमाज्ञातेमालारूपाप्रकाशिता । द्रष्टुं क्षेत्रोत्तमगतंस्वंसाक्षान्मुक्तिदायकम्
इत्युच्चरन्नरपतेरामुमोच गले स्रजम् । सोऽप्युत्थाय क्षितिपतिर्मालांहृदयलम्बिनीम्
दृष्ट्वा मेने श्रियः कान्तं साक्षाद्धृदयगामिनम् । निधायपाणीशिरसिदरमीलितलोचनः
आनन्दाऽश्रुजलक्लिन्नवदनस्तुष्टुवे हरिम् ॥ ४७ ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

जयाऽखिलजगत्सृष्टिस्थितिसंहारशिल्पकृत् !।
लीलाविश्ववपुर्लोमसङ्ख्यब्रह्माण्डभारभृत् !॥ ४८ ॥
अन्तर्यामिन्नशेषाणां प्रणतार्तिहर! प्रभो । ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुकुटकिर्मीरितपदाम्बुज !॥४६॥
दीनानाथविपन्नैकसततत्राणतत्पर !। निर्व्याजकरुणावारिपारावार! परात्पर !॥ ५०॥
त्वदेकशरणं दीनमनादिभ्रमनिर्भरम् । परित्राहि जगन्नाथ भक्ताविरतवत्सल ॥ ५१॥
इति स्तुवन्नरपतिः स्वासने समुपाविशत् । गृहमेधिब्रह्मचारियतिवैखानसैर्वृतः ॥
अष्टादशसु विद्यासु कुशलैर्यज्वभिर्द्विजैः । मौनैःस्थविरभृत्यैश्चसार्द्धंमन्त्रिपुरःसरैः
विद्यापतिं पूजयित्वा बहुमानपुरःसरम् । उपवेश्याऽग्रतः पीठे पृष्ट्वा कुशलमादितः ॥
पुरुषोत्तमक्षेत्रस्य विष्णोर्नीलाश्मवर्ष्मणः । महिमानं स्वरूपं चपप्रच्छाऽवहितोमुदा
ब्राह्मणः क्षत्रियेणाऽसौ पृष्टोऽनुभवमात्मनः । भिल्लद्वीपप्रवेशादिमज्ञतान्तं सरित्पतेः

क्षेत्रोत्तमस्य वृत्तान्तंकथयामासविस्तरात् । नीलाद्रिरोहणंनीलमाधवस्यचदर्शनम्
स्नानं चरौहिणेकुण्डे महिमानंवटस्य च । नृसिंहाद्यष्टशम्भूनांशक्तीनांमष्टसंस्थितिम्
रथेनाऽऽक्रमणाद्दृष्टौक्षेत्रस्याऽऽयामविस्तरौ । तत्सर्वं वर्णयामास यथावदनुपूर्वशः

तच्छ्रुत्वा चित्रमतुलं तैर्थिकावेदितं पुरा ।
सम्प्रतीतो हृष्टमनाः पुनस्तं क्षितिपोऽब्रवीत् ॥ ६० ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

श्रुतपूर्वन्तु भगवंस्त्वत्तोऽश्रौषं सुदुर्लभम् । क्षेत्रोत्तमं द्विजश्रेष्ठ! साम्प्रतं वर्णयस्वमे

नीलेन्द्रमणिमूर्त्तेस्तु विष्णो रूपं यथातथम् ।

विद्यापतिरुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्यां मूर्तिं जगत्पतेः ॥ ६२ ॥

यां चर्मचक्षुषा दृष्ट्वा जायते मुक्तिभाजनम् । नीलेन्द्रमणिपाषाणमयी मूर्तिः पुरातनी
यान्वहं ब्रह्मरुद्रेन्द्रपुरोगैरर्चिता सुरैः । आरोपितेयं दिव्या स्रक्पूजायांहि सुपर्वभिः
सेयंन म्लायति नृप न च गन्धेन रिच्यते । दिने वहुतिथे यातेऽपीदृशी स्रग्धरोद्भवा
दिव्योपहारनिर्माल्यभक्षणात्क्षीणकल्मषम् । मांनपश्यसिकिंराजन्नतिमानुषवर्चसम्
सकृदप्यशनाद्यस्य क्षुत्पिपासावलक्ष्याः । न वाधन्ते नृपश्रेष्ठ! दृष्टेनाऽदृष्टकल्पनम् ॥
भुक्तिर्मुक्तिश्च वै राजन्द्वे तत्र युगपत्स्थिते । न जरारोगशोकादि दुःखंतत्रहिविद्यते
यत्र साक्षाज्जगन्नाथः प्रसन्नवदनो विभुः । फुल्लेन्दीवरपत्राक्षः प्रपन्नामृतमुक्तिदः ॥

इति श्रीस्कन्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे श्रीपुरुषोत्तममाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
विद्यापतिनेन्द्रद्युम्नायदिव्यमालावर्णनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

———·—

दशमोऽध्यायः

विद्यापतिनेन्द्रद्युम्नायभगवतःपुरुषोत्तमस्यस्वरूपवर्णनम्

इन्द्रद्युम्न उवाच

जन्मप्रभृति तत्र त्वं न प्रयातोद्विजोत्तम !। कथम्विद्याद्भवान्दिव्यवृत्तान्तं पुरुषोत्तमे

विद्यापतिरुवाच

तत्र स्थितोऽहं सायाह्ने भगवन्तमुपागमम् ।
तस्मिन्काले दिव्यगन्धो ववौ च शिशिरो मरुत् ॥ २ ॥

उद्यतःसङ्कुलःशब्दःश्रूयतेस्म वियत्पथे । क्रमाद्याहि प्रयाहीति स तु वर्णमयःस्वनः
दिविष्ठानां पतत्पुष्पवृष्ट्याच्छादितपर्वतः समागमोऽभूत्सान्निध्येवैकुण्ठस्यमहीपते
वीणावेणुमृदङ्गानांचर्चरीणाञ्चनिःस्वनः ।अभूतपूर्वस्तत्राऽऽसीद्दिव्यगानविमिश्रितः
सहस्रमुपचाराणां प्रीतये परमेशितुः । देवैः समर्पितं तत्र मनुष्याऽदृष्टपूर्वकम् ॥ ६ ॥
सम्पूज्यविधिवद्देवंकरमात्रोपलक्षिताः । जयपूर्वैश्च तं स्तोत्रैः सन्तोष्य मधुसूदनम्
यथागतन्ते त्रिदशाः प्रययुस्त्रिदशालयम् । तेषु यातेषु शवरः सखा विश्वावसुर्मम
दिव्योपहारभोज्यानिमाल्यं चेदं ददौ मम । अनर्घ्यमेतदम्लानं श्रीराज्यसुखदायकम्
अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नंयोग्यंतेनाऽऽहृतंमया । शृणुष्वतस्यसंस्थानंविष्णोर्यत्क्षेत्रमुत्तमम्

अपूर्वशिल्पनैपुण्यं रूपं चाऽस्य मनोहरम् ।
न भूमिजन्मना पुंसा शक्यते गदितुं हि तत् ॥ ११ ॥

त्वद्भाग्यपौरुषाभ्यां तल्लक्षितं कथयामि ते । समन्ताद्गहनाकीर्णं नीलाद्रिनाभिकम्

आयामविस्तृतिभ्यां च विख्यातं क्रोशपञ्चकम् ।
तीर्थराजस्य वेलायां स्वर्णवालुकयावृतम् ॥ १३ ॥

अद्रेःश्रृङ्गे महानुच्चःकल्पस्थायीवटोमहान् । क्रोशायतः पुष्पफलवर्जितःपल्लवोज्ज्वलः
सूर्यापक्रमणे तस्य छायां नापक्रमेत वै । तस्य पश्चात्प्रदेशेऽस्तिकुण्डंरौहिणसञ्ज्ञकम्

जलोद्गमान्नीलहृषदारोहण विभूषितम् । बहिः स्फटिकवेदीभिश्चतुर्दिक्षु परीवृतम् ॥
अघसङ्घातहारीभिरद्भिः पूर्णं मनोरमम् । तत्पूर्ववेदिकामध्ये न्यग्रोधच्छायशीतले ॥
इन्द्रनीलमयो देव आस्ते चक्रगदाधरः । एकाशीत्यङ्गुलमितःस्वर्णपद्मोपरि स्थितः
अष्टमीचन्द्रशकलशोभाविजयि भालभूः । स्मेरेन्दीवरयुग्मश्रीधिक्कारोद्यतलोचनः ॥
आननामृतभानूद्यत्सन्तापत्रयमोचनः । नासापुटद्वयोद्भासितिलपुष्पप्रशोभनः ॥ २० ॥
वपुषोऽश्ममयत्वेऽपिसुस्मितस्नपिताधरः । हाससम्फुल्लगण्डाभ्यां रुचिरश्चिवुकंहनुः
अनन्यपूर्वघटितं सृक्किणीयुगमञ्जसा । हासनिम्नाधरौ गण्डौ चिवुकं सृक्किणी शुभे
वहन्निदर्शनं देवो विश्वकर्मादि शिल्पिनाम् । मकरास्यकर्णभूषाशोभिश्रुतियुगेन सः
गुरुभार्गवयोर्मध्ये पूर्णचन्द्रोपहासकः । ग्रैवेयशोभाजनककण्ठदेशेन पश्यताम् ॥२४॥
दक्षिणावर्त्तशङ्खस्य मुक्ताजन्माभिशङ्ककृत् । पीनायतस्कन्धयुगजानुदीर्घचतुर्भुजः ॥
स्वच्छनिर्मलहारोपशोभकोरःस्थलोविभुः । धत्तेचतुर्दशजगद्दिव्यकौस्तुभविम्बितम्
निम्ननाभिहृदाविष्टतनुरोमालिमञ्जुलः । हारं त्रिवलिमध्येन स्थाणुत्वपरिणामकः
सुरत्नमेखलादाम्ना किङ्किणीमौक्तिकस्रजा । जगल्लावण्यपुटके स्फिचौदेवस्यशोभतः
जघनालम्बिमुक्तास्रक्पीतचैलोपशोभितम् । जङ्घास्तम्भयुगंमोक्षमाङ्गल्यतोरणाश्रयम्
वृत्तानुपूर्वजानुभ्यां मालया प्रपदीनया । रत्नाढ्यवलयाभ्यां च शोभेते चरणौविभोः
हारकङ्कणकेयूरमुकुटाद्यैरलङ्कृतम् । ज्ञानाऽहङ्कारकैश्वर्यशब्दब्रह्मणि केशवः ॥३१ ॥
चक्रपद्मगदाशङ्खे परिणामानि धारयन् । सर्वाशाद्योतको देवो नीलाद्रेरुपरि स्थितः
भक्त्याप्रणम्यदृष्ट्वाऽयंदेहबन्धात्प्रमुच्यते । वामपार्श्वगतालक्ष्मीराश्लिष्टापद्मपाणिना
वल्लकीवादनपरा भगवन्मुखलोचना । सर्वलावण्यवसतिः सर्वालङ्कारभूषिता ॥३४॥
तावपश्यं हि जगतः पितरावचलस्थितौ । तूष्णींभूतौस्नेरदृशाऽनुगृह्णन्तौचपश्यतः
सजीवौ तावबुध्यं भो दीनानुग्रहकारणात् । छत्रीभूतफणावृन्दः शेषःपश्चादवस्थितः
अग्रे व्यवस्थितं दृष्टं वपुर्बिभ्रत्सुदर्शनम् । कृताञ्जलिपुटं तस्य पश्चाद्गरुडमास्थितम्
एवमद्भुतरूपन्तं दृष्ट्वा साक्षाच्छ्रियः पतिम् । चेतो रज्जुभिराकृष्टमिव तत्रैव धावति ॥
अनेकजन्मसाहस्रैः सुकर्माण्यर्जितानि चेत् ।

युगपत्परिपक्वानि यस्याऽसौ तं हि पश्यति ॥ ३९ ॥
तीर्थस्नानतपोदानदेवयज्ञव्रतैरपि । नाऽलमालोकितुं मर्त्यस्तादृशं पुरुषोत्तमम् ॥४०॥
ये नीलमूर्ति विमलाम्बराभं ध्यायन्ति विष्णुं पुरुषोत्तमस्थम् ।
ते क्षीणबन्धाः प्रविशन्ति विष्णोः पुरं हि यत्प्राप्य न शोचतीह ॥ ४१ ॥
विद्याभिरष्टादशभिः प्रणीतं नानाविधं कर्मफलं नृणां यत् ।
एकत्र तत्सर्वममुष्य विष्णोः सन्दर्शनस्यैति शतांशमानम् ॥ ४२ ॥
किमत्र वाच्यं त्वधिकं क्षितीन्द्र! पुंसोमतिर्यावदुपैति कामान् ।
लभेत नीलाद्रिपतिं प्रणम्य ततोऽधिकं क्षेत्रभुवो महिम्ना ॥ ४३ ॥
स एव दाता क्रतुभिः स यष्टा सत्यप्रवक्ता स तु धर्मशीलः ।
सर्वैर्गुणैः सर्वभवैर्वरिष्ठो नीलाद्रिनाथः खलु येन दृष्टः ॥ ४४ ॥
तत्र ये सेवकाः सन्तिमाधवस्यजगत्पतेः । तेभ्यःसकाशान्माहात्म्यमिदंज्ञातंमयानृप
तस्मिन्परम्परायातमादिसृष्टेः पुरातनम् । प्रसिद्धमिदमाख्यानंश्रुत्वातत्राऽऽगतोह्यहम्
त्वदाज्ञया तत्र गत्वा दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम् । निवेदितं ते राजेन्द्र!यथेच्छसितथा कुरु

इन्द्रद्युम्न उवाच

आप्तवाक्याद्भगवतः श्रुत्वा रूपमघापहम् ।
कृतकृत्योऽस्मि भगवन्दिव्यनिर्माल्यसङ्गमात् ॥ ४८ ॥
बहुजन्मस्वर्जितानि क्षीणानि दुरितानि मे । अधिकारी त्वहंजातोदर्शने श्रीपतेरिह
सर्वात्मनाऽहं यास्यामि राज्येनसुसमृद्धिना । तत्रावासंकरिष्यामिपुरदुर्गाणिचैवहि
क्रतुना हयमेधेन यक्ष्ये प्रीत्यै मुरद्विषः । शतोपचारैः श्रीनाथं पूजयिष्ये दिनेदिने ॥
व्रतोपवासनियमैः प्रीणयिष्ये जगद्गुरुम् । वाक्यामृतेन सन्तप्तं यथामामभिषेक्ष्यति
दीनानुकम्पीभगवान्साक्षान्नारायणो विभुः । एवंसश्रद्धयाभक्त्यासंस्तुतेयावदीश्वरम्
नारदस्तत्र सम्प्राप्तो भुवनालोककौतुकी । तमायान्तमृषिंदृष्ट्वावैष्णवाग्र्यंविधेःसुतम्
आशशंस स्वकार्यस्यसिद्धिंनरपतिस्तदा । उत्थायसहसाविप्राःपाद्यार्घ्याचमनीयकैः
[illegible] प्रोवाचेदं कृताञ्जलिः ॥ ५५ ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

अद्य मे सफला यज्ञा दानमध्ययनं तपः ॥ ५६ ॥

यन्मे गृहं समागच्छद् द्वितीयाब्रह्मणस्तनुः । कृतार्थो यद्यपि मुने आगमानुग्रहात्तव
तथाऽपि त्वत्प्रसादायकिमाज्ञां करवाणिते । किम्प्रयोजनमुद्दिश्यभवनंमेपवित्रितम्

जैमिनिरुवाच

तच्छ्रुत्वा नृपतेर्वाक्यं भक्तिप्रश्रयकोमलम् । उवाचब्रह्मणः पुत्रः स्मितपूर्वंमहीपतिम्

नारद उवाच

इन्द्रद्युम्न! नृपश्रेष्ठ! विमलैस्त्वद्गुणोत्करैः । प्रीणितादेवतासिद्धाःमुनयोब्रह्मणासह
स्वप्रतिष्ठा पृथग्योग्यागुणाएकैकशस्तव । ब्रह्मणःसदनेस्थित्यैपर्याप्तास्तुसमीहिताः
अवतीर्णो नरं द्रष्टुं तिष्ठन्तं बदराश्रमे । तद्ध्यानावसरेज्ञातो व्यवसायस्तवेदृशः ॥
साधुव्यवसितं राजन्याऽभूत्ते बुद्धिरीदृशी । सहस्रजन्मस्वभ्यासाद्भक्तिर्भवति भूपते
नीलाचलगुहावासे माधवे जगतां धवे । पितामहो महाप्राज्ञो यमाराध्य जगत्पतिम्
विनिर्ममे सृष्टिमिमां लेभे पैतामहं पदम् । तदन्वयप्रसूतोऽसि युक्ता ते भक्तिरीदृशी
चतुर्वर्गफलाभक्तिर्विष्णौ नाऽल्पतपःफलम् । अनाद्यविद्यासुदृढपञ्चक्लेशविवर्द्धिनी
एकैवेयं विष्णुभक्तिस्तदुच्छेदाय जायते । भवारण्ये प्रतिपदं दुःखसङ्कटसङ्कुले ॥
नराणां भ्रमतां विष्णुभक्तिरेकासुखप्रदा । निरालम्बेद्वन्द्ववातप्रोद्यतेऽस्मिन्सुदुस्तरे

निमग्नानां भवाम्भोधौ विष्णुभक्तिस्तरिः स्मृता ।
आश्रित्यैकां भगवतीं विष्णुभक्तिं तु मातरम् ॥ ६९ ॥
सन्तः सन्तुष्टमनसो न तु शोचन्ति जातुचित् ।
विष्णुभक्तिसुधापानसंहृष्टानां महात्मनाम् ॥ ७० ॥
ब्राह्म्यं पदं स्वल्पलाभो भाजनानां विमुक्तये ।
त्रिविधो योंऽहसां राशिः सुमहाञ्जन्मिनां नृप ! ॥ ७१ ॥

विष्णुभक्तिमहादाववह्नौ स शलभायते । प्रयागगङ्गाप्रमुखतीर्थानि च तपांसि च
अश्वमेधः क्रतुवरो दानानि सुमहान्ति च । व्रतोपवासनियमाःसहस्राण्यर्जिताअपि

समूह एषामेकत्र गुणितः कोटिकोटिभिः ।
विष्णुभक्तेः सहस्रांशसमोऽसौ न हि कीर्तितः ॥ ७४ ॥

जैमिनिरुवाच

विष्णुभक्तेस्तु माहात्म्यं श्रुत्वा ब्रह्मर्षिणोदितम् ।
विष्णुभक्तेः स्वरूपं हि ज्ञातुकामः क्षितीश्वरः ॥ ७५ ॥
नारदं पुनराहेदं वाक्यं सत्कारयुक्तिमान् ॥ ७६ ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

महिमाविष्णुभक्तेस्तुसाधुप्रोक्तोमहामुने । तस्याः स्वरूपजिज्ञासाचिरान्मेहृदिवर्त्तते
लक्षणंवर्णयेदानीं भक्तेर्वैष्णवपुङ्गव । त्वदन्यो न हि वक्ता स्याद्विज्ञातो मे महीतले

नारद उवाच

साधुराजंस्त्वया पृष्टं भक्तिलक्षणमुत्तमम् । कथयिष्ये यथार्थंत्वांभक्तिभाजनमुत्तमम्
अपात्रे न हिवाच्येयंनरेऽन्धेमलिनान्तरे । शृणुष्वाऽवहितोराजन्प्रोच्यमानांमयाऽनघ
सामान्यतो विशेषाच्च विष्णोर्भक्तिं सनातनीम् ।
अत्यन्तसुखसम्प्राप्तौ विच्छेदे दुःखसन्ततेः ॥ ८१ ॥
हेतुरेकोऽयमेवेति संश्रयाद्भक्तिरुच्यते । त्रिधा सा गुणभेदेन तुरीयानिर्गुणा मता॥
कामक्रोधाभिभूतानां दृष्ट्वा याऽन्यं न पश्यताम् ।
लब्धये चाऽभिचाराय भक्तिःस्यान्नृप तामसी ॥ ८३ ॥
यशसेचाऽतिरिक्तायपरस्यस्पर्द्धयापिवा । प्रसङ्गात्परलोकायभक्तिःसाराजसीस्मृता
आमुष्मिकंस्थिरतरंदृष्ट्वाभावान्विनश्वरान् । पश्यताऽऽश्रमवर्णोक्तान्धर्मान्नैवजिहासता
आत्मज्ञानाय या भक्तिः क्रियते सा तु सात्त्विकी ।
जगच्चेदं जगन्नाथो नाऽन्यं चाऽपि च कारणम् ॥ ८६ ॥
अहं च नततोभिन्नोमत्तोऽसौनपृथक्स्थितः । हीनंबहिरुपाधीनांप्रेमोत्कर्षेणभावनम्
दुर्लभा भक्तिरेषा हि मुक्तयेऽद्वैतसञ्ज्ञिता ।
सात्त्विक्या ब्रह्मणः स्थानं राजस्या शक्रलोकताम् ॥ ८८ ॥

प्रयान्ति भुक्त्वा भोगान्हि तामस्यापितृलोकताम् ।
पुनरागत्य भूर्लोकं भक्तिं तां वैपरीत्यतः ॥ ८६ ॥
तामसो राजसीं कुर्याद्राजसः सात्त्विकीं तथा ।
सात्त्विको मुक्तिमाप्नोति कृत्वा चाऽद्वैतभावनाम् ॥ ९० ॥
एकामपि समाश्रित्य क्रमान्मुक्तिपथं व्रजेत् ।
विष्णुभक्तिविहीनस्य श्रौतस्मार्ताश्च याः क्रियाः ॥ ९१ ॥
प्रायश्चित्तादिकंतीर्थयात्राकृच्छ्रादिकंतपः । कुलेप्रसूतिःशिल्पानिसर्वंलौकिकभूषणम्
कायक्लेशः फलं तेषां स्वैरिणीव्यभिचारवत् ।
कुलाचारविहीनोऽपि दृढभक्तिर्जितेन्द्रियः ॥ ९३ ॥
प्रशस्यः सर्वलोकानांन त्वष्टादशविद्यकः । भक्तिहीनोनृपश्रेष्ठ! सज्जातिर्धार्मिकस्तथा
नाऽल्पभाग्यस्य पुंसो हि विष्णौ भक्तिः प्रजायते ।
यां तु सम्पाद्य यत्नेन कृतकृत्यो न सीदति ॥ ९५ ॥
यया वेत्तिजगन्नाथंसाविद्यापरिकीर्तिता । येन प्रीणाति भगवांस्तत्कर्माशुभनाशनम्
विष्णुभक्तश्च सम्प्रोक्तस्ताभ्यांयुक्तोदृढव्रतः । यत्पादपांसुनाविश्वं पूयतेसचराचरम्
सृष्टिस्थितिविनाशानां स्वेच्छया प्रभवत्यसौ ।
किम्पुनः क्षुद्रकामानां भूमिस्वर्गादिसम्पदाम् ॥ ९८ ॥
वासुदेवस्यभक्तस्यनभेदोविद्यतेऽनयोः । वासुदेवस्य ये भक्तास्तेषांवक्ष्यामिलक्षणम्
प्रशान्तचित्ताःसर्वेषांसौम्याःकामजितेन्द्रियाः । कर्मणामनसावाचापरद्रोहमनिच्छवः
दयाऽऽर्द्रमनसो नित्यं स्तेयहिंसापराङ्मुखाः । गुणेषु परकार्येषु पक्षपातमुदान्विताः
सदाचारावदाताश्च परोत्सवनिजोत्सवाः । पश्यन्तः सर्वभूतस्थं वासुदेवममत्सराः
दीनानुकम्पिनो नित्यं भृशंपरहितैषिणः । राजोपचारपूजायां लालनाः स्वकुमारवत्
कृष्णसर्पादिव भयं वाह्ये परिचरन्ति ते । विषयेष्वविवेकानां या प्रीतिरुपजायते ॥
वितन्वतेतुतांप्रीतिंशतकोटिगुणांहरौ । नित्यकर्तव्यताबुद्ध्यायजन्तः शङ्करादिकान्
विष्णुस्वरूपान्ध्यायन्ति भक्त्या पितृगणेष्वपि ।

विष्णोरन्यं न पश्यन्ति विष्णुं नान्यत्पृथग्गतम् ॥ १०६ ॥
पार्थक्यं न च पार्थक्यं समष्टिव्यष्टिरूपिणः ।
जगन्नाथ! तवाऽस्मीति दासस्त्वं चाऽस्मि नो पृथक् ॥ १०७ ॥
अन्तर्यामी यदा देवः सर्वेषां हृदि संस्थितः ।
सेव्यो वा सेवको वाऽपि त्वत्तो नान्योऽस्ति कश्चन ॥ १०८ ॥
इति भावनया कृतावधानाः प्रणमन्तः सततञ्च कीर्त्तयन्तः ।
हरिमब्जजवन्द्यपादपद्मं प्रभजन्तस्तृणवज्जगज्जनेषु ॥ १०९ ॥
उपकृतिकुशला जगत्स्वजस्रं परकुशलानि निजानि मन्यमानाः ।
अपि परपरिभावने दयार्द्राः शिवमनसः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥११०॥
दृषदि परधने च लोष्ठखण्डे परवनितासु च कूटशालमलीषु ।
सखिरिपुसहजेषु बन्धुवर्गे समभतयः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥ १११ ॥
गुणगणसुमुखाः परस्य मर्मच्छदनपराः परिणामसौख्यदा हि ।
भगवतिसततं प्रदत्तचित्ताः प्रियवचसःखलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥ ११२ ॥
स्फुटमधुरपदं हि कंसहन्तुः कलुषमुषं शुभनाम चाऽऽमनन्तः ।
जयजयपरिघोषणां रटन्तः किमु विभवाः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥ ११३ ॥
हरिचरणसरोजयुग्मचित्ता जडिमधियः सुखदुःखसाम्यरूपाः ।
अपचितिचतुरा हरौ निजात्मनतवचसः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥ ११४ ॥
रथचरणगदाऽब्जशङ्खमुद्राकृतितिलकाङ्कितबाहुमूलमध्याः ।
मुररिपुचरणप्रणामधूलीधृतकवचाः खलु वैष्णवा जयन्ति ॥ ११५ ॥
मुरजिदपघनापकृष्टगन्धोत्तमतुलसीदलमाल्यचन्दनैर्यें ।
वरयितुमिव मुक्तिमात्तभूषाकृतिरुचिराः खलु वैष्णवा जयन्ति ॥ ११६ ॥
विगलितमदमानशुद्धचित्ताः प्रसभविनश्यदहङ्कृतिप्रशान्ताः ।
नरहरिममरात्तबन्धुमिष्ट्वा क्षयितशुचः खलु वैष्णवा जयन्ति ॥ ११७ ॥
भगवति सततं प्रभक्तिभाजां शुभचरितं तव लक्ष्म नोऽस्यथापि

श्रुतिपथमवतीर्णमाऽऽशु पुंसां हरति मलं चिरसञ्चितं यदेतत् ॥ ११८ ॥
न हि धनमऽपि मृग्यते कदाचिन्न खलु शरीरजखेदसम्प्रयोगः ।
मृदुलघुवचसाभिधानकीर्ति भजनमहं तव दास्य एव चिन्ता ॥ ११९ ॥
शुभचरितमपि द्विषन्ति पुंसां स्वयमिह दुश्चरितानुबन्धचित्ताः ।
महदकुशलमप्यवाप्य सुस्था भगवत्सरसिका अवैष्णवास्ते ॥१२० ॥
परमसुखपदं हृदम्बुजस्थं क्षणमपि नाऽनुसज्जन्ति मत्तभावाः ।
वितथवचनजालकैरजस्रं पिदधति नाम हरेरवैष्णवास्ते ॥ १२१ ॥
परयुवतिधनेषु नित्यलुब्धाः कृपणधियो निजकुक्षिभारपूर्णाः ।
नियतपरमहत्त्वमन्यमाना नरपशवः खलु विष्णुभक्तिहीनाः ॥ १२२ ॥
अनवरतमनार्यसङ्गरक्ताः परपरिभावकहिंसकाऽतिरौद्राः ।
नरहरिचरणस्मृतौविरक्ता नरमलिनाः खलु दूरतो हि वर्ज्याः ॥ १२३ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
नारदेनेन्द्रद्युम्नायभगवद्भक्तिवर्णनंनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नस्यनारदेनसहपुरुषोत्तमक्षेत्रगमनार्थम्परामर्शवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

नारदाद्ब्रह्मणः पुत्राद्भगवद्भक्तिमुत्तमाम् । श्रुत्वेत्थं परमप्रीतइन्द्रद्युम्नोऽप्युवाचतम् ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

साधुसङ्गस्तु विद्वद्भिर्भवव्याधिविनाशनः । ममोपदिष्टोभगवन्सोऽभूत्साम्प्रतमेवमे
येन साक्षात्कृतो विष्णुः परमात्मा परात्परः ।

स त्वं यन्मन्दिरायातस्त्वदन्यः साधुरत्र कः ॥ ३ ॥
त्वत्सन्निधानाद्भगवंस्तमो मे नाशमभ्यगात् । यन्मेत्वरयतेचित्तमर्चितुंनीलमाधवम्
वेत्सि ब्रह्माण्डवृत्तान्तं पर्यटन्सार्वलौकिकः ।
तदावां रथमास्थाय पश्यावो नीलमाधवम् ॥ ५ ॥
पुरुषोत्तमसञ्ज्ञस्यक्षेत्रस्याऽलङ्कृतंशुभम् । तत्रतीर्थानिसन्तीतिबहुभिःकथितानिमे
त्वद्वाक्याद्यदि जानामि भवेयुः सफलानि मे ॥ ६ ॥

नारद उवाच

हन्त ते दर्शयिष्यामिक्षेत्रंक्षेत्रस्थितानि च । तीर्थानिशक्तिशम्भूंश्चक्षेत्रमाहात्म्यमेवच
साक्षाद् द्रक्ष्यसि देवेशं भक्तस्याऽऽत्मसमर्पकम् ।
तवाऽनुग्रहतः शीघ्रं चतुर्द्धा सव्यवस्थितम् ॥ ८ ॥
यस्यसन्दर्शनान्मर्त्या जायतेभक्तिभाजनम् । एवं कथान्ततेतौप्रीतावहःकृत्यंसमाप्यच
यात्राऽनुकूलं निर्णीय पञ्चम्यां बुधवासरे । ज्येष्ठकृष्णेतरे पक्षे पुष्यर्क्षे लग्न उत्तमे॥
एकत्र शयितौ रात्रिं निन्यतुर्नृपनारदौ ॥ १० ॥
ततः प्रभाते विमलइन्द्रद्युम्नो नृपोत्तमः । घोषणां कारयामास राज्यस्यसहबन्धुभिः
यथाविभवतः सैन्यैर्नीलाद्रिगमनम्प्रति । यावज्जीवंतत्रवासं करिष्यामोविनिश्चितम्
यावृत्तिःकल्पितायस्यसतयातत्रजीवतु । राजानःसावरोधाश्चसामात्याःसपरिच्छदाः
रथैर्गजैस्तुरङ्गैश्च कोषैः सह पदातिभिः ॥ १४ ॥
व्रजन्तु सज्जितास्तत्र ब्राह्मणाः साऽग्निहोत्रिणः ।
वणिजः सह भाण्डैश्च सपण्याः पण्यजीविनः ॥ १५ ॥
राष्ट्रकर्मणिनिष्णाताःकुशलाराजवर्त्मसु । ज्योतिर्विदोनृत्यविदोदण्डनीतौप्रवीणकाः
नृत्यगायनवादित्रचतुर्विधसुबुद्धयः । गजवाजिनराणाञ्च भैषज्ये शास्त्रउत्तमे ॥१७
कुशला दृष्टकर्माणो विद्यास्वष्टादशस्वपि । उपाङ्गविद्यासु तथा कुहकार्थकुतूहलाः ॥
चाटसाहसिकाश्चोरास्तथान्येपश्यतोहराः । विचित्रकथनाजीवाश्चाटुकाराश्चमागधाः
शास्त्रोपजीविनश्चैवतथाऽन्येशल्यहारकाः द्यूतकाराश्च पुंश्चल्योवेश्यावेशानुगाविटाः

कृषीवलाश्च गोमेषच्छागोष्ट्रखररक्षकाः। शकुन्तपालाश्च कपिव्याघ्रशार्दूलरक्षकाः॥

आहितुण्डिकगोरक्ष्यशवरा म्लेच्छजातयः ॥२२॥

अन्ये च ये मालवदेशजाता आज्ञाम्मदीयामनुपालयन्ति।

ते यान्तु सर्वे वसतौ हि नीलाचले यथा स्वं कृतवास्तुभागाः ॥ २३॥

एवमाज्ञाप्य नृपतिर्यात्रायां च कृतक्षणः। नारदेन समागम्य दैवज्ञमिदमाह सः ॥२४

साम्वत्सरमुहूर्त्तं मे निर्णीतं ते यथा पुरा। तावन्माङ्गलिकं वस्तुजातं सम्यगुपानय

पुरोहितमतेनाऽस्मिन्क्षणेयावद्धिमृग्यते। तेनाऽऽदिष्टःस गणकः पुरोहितसहायवान्

आजहार समस्तानि माङ्गल्यानि द्विजोत्तमाः।

अत्रान्तरे स राजर्षिर्दिव्यसिंहासनस्थितः ॥ २७॥

यात्राभिषेकमाङ्गल्यं विप्रैःप्रागनुभावितम्। श्रीसूक्तवह्निसूक्ताभ्यां सूक्तेनाऽब्दैवतेनच

पावमान्याब्धिसूक्तेनपृथङ्माङ्गल्यवर्द्धकैः। तीर्थाद्भिरौषधीभिश्चसर्वगन्धैःपृथक्पृथक्

अभिषिक्तस्ततो राजा चीनांशुकहृताम्भसा। रराज वपुषा दीप्तो निर्धूमःपावकोयथा

आमुक्तशुक्लवसनःस्वाचान्तःसपवित्रकः। नान्दीमुखान्पितृगणान्पूजयित्वायथाविधि

जयाराष्ट्रभृतो हुत्वा गणहोमांश्च यत्नतः। शङ्खध्वनिसुगन्धाढ्यं श्वेतवर्णं विभ्रमकम्

वह्निं प्रदक्षिणं चक्रे दक्षिणावर्त्तगार्चिषा। साक्षात्कारेण ददतं जयं राज्ञे जयार्थिने ॥

नवग्रहमखान्ते च ग्रहकुम्भेनसेवितः। ग्रहाणांदौष्ट्यनाशायसौस्थ्यस्याऽपिविवृद्धये

ज्योतिःशास्त्रोदितैर्मन्त्रैर्दैवज्ञविधिचोदितैः। ततो माङ्गल्यनेपथ्यविधानमुपचक्रमे ॥

चीनांशुकप्रावरणे विधाय कवचं निजम्। शिरोवेष्टनकं शुभ्रं सुरत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥

सावतंसे श्रुतियुगे रत्नकुण्डलभूषिते। ग्रैवेयकं महार्घं तु हारं तरलभूषितम् ॥ ३७॥

दधाराऽथ नृपश्रेष्ठः केयूराङ्गदमुद्रिकाः। मध्येन त्रिवलीसक्तं स्वर्णसूत्रं त्रिवृद्दधौ ॥

हिरण्यकिङ्किणीयुक्तमुक्तातोरणमालिकम्। नानारत्नैःसुघटितांदधाराऽथसुमेखलाम्

अनर्घ्ये पादकटके पादयोः संन्यवेशत्। सम्मुखादर्शिताऽऽदर्शेदृशे स्वं विभूषितम्

मङ्गलारोपणार्थाय हैमपीठमुपाविशत्। प्राङ्मुखः श्रीधरं देवं संस्मरन्मधुसूदनम् ॥

मङ्गलायतनं विष्णुं सर्वमाङ्गल्यकारणम्। स्मरणादस्य नश्यन्ति पातकानिबहून्यपि

सौमन्यस्यामथो मालामार्त्तवीं गन्धवर्णिताम् ।
दधार प्रथमं राजा मन्त्रितां स्वपुरोधसा ॥ ४३ ॥

मृदं दीपं फलं दूर्वांदधिगोरोचनांततः । मन्त्राभिमन्त्रितान्सर्वान्सिद्धार्थैरभिरक्षितः
आत्मानं ददृशे राजा सौरभेये हविष्यथ । मुकुरे मन्त्रिते पश्चात्स्वं दृष्ट्वा नृपकेसरी
बह्वृचैः शान्तिघोषेणसमुदीर्णशुभायतिः । याजुष्कैःपथिसूक्तेनव्रजन्मार्गेऽभिरक्षितः
पौराणैर्मङ्गलैर्वाक्यैः कृतवीर्यधृतिर्नृपः । मागधैः स्तुतिपाठेन प्रादुर्भूतपराक्रमः ॥४७
पारिजातहरं सत्यासहितं गरुडध्वजम् । ध्यायन्हृत्पङ्कजे राजा दक्षिणं पादमुद्दधौ
प्रदक्षिणीकृत्य मुनिं नारदं पुरतः स्थितम् । मध्यद्वारमुपागच्छद्वेत्रपाणिभिरावृतः ॥
आदिष्टपदमार्गोऽसावग्निहोत्रपुरःसरः । तत्राऽपश्यत्स्थितान्विप्रानात्मनोदक्षिणेनवै

माङ्गल्यसूक्तं पठतः शुभ्राभान्पाण्डुरांऽशुकान् ।
लाजाः सपुष्पा राजाऽग्रे क्षिपतः शंसतः शुभम् ॥ ५१ ॥

वामपार्श्वस्थिता वेश्याश्चामरव्यग्रपाणयः । शुभ्रालङ्कारवसनाः स्मेरपद्माननाः शुभाः
ब्राह्मणान्पूजयामास भक्तिनम्रो द्विजोत्तमाः ॥ वस्त्राऽलङ्कारमाल्यैश्च सुगन्धैरनुलेपनैः

तोषयामास तान्विप्रान्भगवद्बुद्धिभावितान् ।
वेश्याभ्यो मागधेभ्यश्च दीनानाथेभ्य एव च ॥ ५४ ॥
राजानुमत्या सचिवो यथार्हं प्रददौ धनम् ।
श्वेतान्पारावतान्हंसाञ्छ्वेताश्वं श्वेतकुञ्जरम् ॥ ५५ ॥

सच्चूतपल्लवं श्वेतमालाफलविभूषितम् । कदलीकाण्डसन्नद्धतोरणाधःस्थितं नृपः ॥
पूर्णकुम्भं स पश्यन्वै मङ्गलानि बहून्यपि । सितातपत्रेण शिरःप्रदेशे वारितातपः ॥
युगपत्पूर्यमाणैस्तुकम्बुभिःशतसङ्ख्यकैः । सम्मिश्रितानिशुश्राववादित्राणिबहूनिसः
तथा मङ्गलगीतानि जयशब्दांश्च भूपतिः । ततो विवेश प्रासादं नृसिंहमवलोकितुम्
यं स्मृत्वाजायतेमर्त्यःसर्वकल्याणभाजनम् । दृष्ट्वासदूरान्नृहरिंदिव्यसिंहासनस्थितम्
प्रणम्य साष्टावयवंसन्तोष्योपनिषद्गिरा । दक्षपार्श्वस्थितांदुर्गांसर्वदुर्गतिमोचिनीम्
ववन्दे चरणाभ्याशे पश्यन्तीं कृपया नृपः । ततः पुरोधा देवाङ्गादवरोप्य शुभांस्रजम्

आसञ्जयामास गले सुगन्धेनाऽन्वलेपयत् । नीराजयामास राज्ञः शिरश्चावेष्टयन्मुदा
पुनः प्रदक्षिणीकृत्य तौ देवौ नृपसत्तमः । शिविकायां समारोप्य प्रतस्थेचपुरस्कृतौ
प्रादुर्भूय वहिर्द्वारे रथं दृष्ट्वा सुसज्जितम् । तुरङ्गैर्वातजवैर्दशभिः परयोजितम् ॥६४
प्रदक्षिणीकृत्य नृपो नारदेन समाविशत् । ढक्कामृदङ्गनिःसाणभेरीपणवगोमुखाः ॥

मधुरीचर्चरीशङ्खा अवाद्यन्त सहस्रशः ।
स्यन्दनाः कोटिशस्तत्र नृपाणामनुजीविनाम् ॥ ६६ ॥

चकाशिरे श्रेणिकृता इन्द्रद्युम्नरथाभितः । नानाप्रहरणोपेताः पताकाभिरलङ्कृताः ॥

ध्वजोच्छ्रिताः स्वर्णरौप्यैः किङ्किणीजालदर्पणैः ।
यन्त्रैर्नानाविधैर्युक्ता गम्भीरस्निग्धनिःस्वनाः ॥ ६८ ॥

पदातीनां कुञ्जराणांहयानां वातरंहसाम् । पत्तिसंस्फोटनैर्हस्तिबृंहितैर्हयहेषितैः ॥
वहुलै रथनिर्घोषैर्मिश्रितावाद्यनिःस्वनाः । युगान्तार्णवनिस्वानतुल्याः शुश्रुविरे जनैः

तस्मिन्क्षणे पौरजनाः स्वस्वसम्भारसज्जिताः ।
अश्वकै रासभैरुष्ट्रैर्वाहकैः प्रतितस्थिरे ॥ ७१ ॥

आन्दोलिकाश्च पल्यङ्काःकोटिशश्चतुरङ्ककाः । श्रेणीभूताश्चदृश्यन्तेराज्ञप्रस्थानसङ्कुले
राजावरोधाःशतशो वृतावर्षवरैस्ततः । नानायानसमारूढाःपालिताश्चाऽधिकारिभिः
महासैन्यैश्चसंरुद्धा राजागाराद्विनिर्ययुः । यज्वानश्चाग्निहोत्राणिशम्यारूढानिवृन्दशः
शकटेषु समारोप्य सपत्नीकाः प्रतस्थिरे । तथा पुस्तकभारांश्चदेवतार्चाकरण्डकान्
इध्मवर्हिकुशान्पात्रीः सम्भारान्होमसम्भृतान् । वाहयामासुरन्यैश्चशकटावाहकद्विजैः
सामन्तामात्यभृत्याश्च गुरोश्चाऋत्विजश्च ये । राज्ञः प्रकृतदासाश्चउपचारनियोगिनः
सर्वोपचारसम्भारानासतेऽन्ये प्रयायिनः । कोषागारनियुक्ताश्च कोषजातमशेषतः ॥
समादाय ययुस्तूर्णं राज्ञोऽवसरसेवकाः । मालाकारादयः सर्वे पण्यजीवादयस्तथा
स्वंस्वं पण्यं समादाय ययूराजनियोगिनः । श्रेष्ठश्रेण्यादयः सर्वे पुरखर्वटवासिभिः
समं विनिर्ययुः स्वस्वव्यवहारविलासकाः । इन्द्रद्युम्नस्यनृपतेर्यात्रासमयवादितान्
भेरीमृदङ्गपटहान्व्यश्नुवानान्दिगन्तरम् । श्रुत्वा जनपदावासिजनाः सर्वेससम्भ्रमाः

राजाज्ञांमूर्ध्निसम्मान्यनिर्गतानीलपर्वतम् । यस्ययश्चऋजुःपन्थाःसचतेनैवजग्मिवान्
न राजमार्गंप्रजवाद्व्यमृग्यन्तनृपाज्ञया । नीलाद्रिप्राप्तिमार्गेणदुर्गमेणाऽपि ते ययुः ॥
इन्द्रद्युम्नोऽपिराजेन्द्रः समस्तपुरवासिभिः । चतुरङ्गानीकिनीभिः सहर्षाभिश्चवेष्टितः
श्रेणीभूतक्षितिपतिस्यन्दनावलिमध्यगे । रथे रराज राजर्षिः शक्रतुल्यपरिच्छदः ॥
पुरस्त्रीमङ्गलाचारगीतलाजप्रसूनकैः । मङ्गलाचारशोभाभिः प्रसन्नशुभचेतनः ॥ ८७ ॥
वातरंहैर्हयैर्युक्तरथेन प्रययौ मुदा । अनुकूलानिलप्रोद्यद्घनच्छायसुशीतले ॥ ८८ ॥
नीरजस्के महीपृष्ठे समीकृतचतुष्पथे । देशाऽध्वनीनैः पुरुषैः काननान्तरवेदिभिः॥
आदिष्टवर्त्मा नृपतिर्मार्गस्योभयपार्श्वगान् ।
देशानरण्यानि मुहुः पश्यन्नाऽऽनन्दलोचनः ॥ ९० ॥
सीमामुत्कलदेशस्यविभजन्तींवनान्तरे । मार्गस्थांचर्चिकाम्प्रापचर्चितां मुण्डमालया
अवतीर्य रथाद्राजाविनतोनारदाऽऽज्ञया । साष्टाङ्गपातं तां नत्वा तुष्टावाऽऽनन्दचेतनः

इन्द्रद्युम्न उवाच

नमस्ते त्रिदशेशानिसर्वापद्विनिवारिणि । ब्रह्मविष्णुशिवाद्याभिः कल्पनाभिरुदीरिते
कारणं जगतामाद्ये प्रसीद परमेश्वरि !। त्वया विना जगन्नैतत्क्षणमुत्सहते शिवे॥९४
सिद्धयःसर्वकार्याणांमङ्गलानिचशाश्वते । त्वत्पादाराधनफलंमर्त्यलोके हि नाऽन्यथा
चराचरपतेर्विष्णोः शक्तिस्त्वं परमेश्वरि !। यया सृजत्यवति च जगत्संहरते विभुः॥
चराचरगुरुं देवं नीलाचलनिवासिनम् । अनुगृह्णीष्व मां देवि यथा पश्ये स्वचक्षुषा

जैमिनिरुवाच

नारदस्योपदेशेन स्तुत्वा देवीं नराधिपः । आरुरोह रथं तूर्णं विवस्वानुदयं यथा
ततः प्रतस्थे तरसा स राजा श्रान्तवाहनः । चित्रोत्पलमहानद्यास्तीरे विरलकानने ॥
धातुकन्दरविख्याते न्यवेशयदनीकिनीम् । अपराह्णक्रियां कर्तुं यावदाह्णिकमादृतः ॥
जलावतरणे नद्यां विवेश स्वपुरोधसा । पूर्वं संशोधिते प्राज्ञैर्विघ्नकण्टकवर्जिते ॥
स्नात्वा सन्तर्प्य देवांश्च पितॄनथ विशाम्पतिः ।
सम्पूज्य विधिवद्विप्रान् नृपतीन्प्रकृतीस्ततः ॥ १०२ ॥

सम्मानयामास नृपः सन्निवेशासनादिभिः। नारदेन सह श्रीमान्प्रविश्यान्तःपुरन्ततः
सुधारसानिभोज्यानिबुभुजेप्रीतमानसः। पश्चिमाद्रिंततोयाते विवस्वतिविशाम्पतिः
सायंविधिंसमाप्याशुशीतभानौ समुद्यते। अनुजीविविशांनाथःसभामध्यउपाविशत्
तत्र तस्मिन्नरपतिर्बभौसाम्राज्यलक्षणः। सम्पूर्णमण्डलश्चन्द्रो ज्योतिषामिवशारदः

कवयः कवयाञ्चक्रुः कीर्तिं तस्य सुधामलाम्।
जगुर्गाथां सुग्रथितां गायकाः कलसुस्वराः॥ १०७॥

रूपयौवनलावण्यगर्विता गणिकास्ततः। लयतानाङ्गहारैश्च सुशुद्धैर्ननृतु पुरः॥१०८
मागधास्तुष्टुवुश्चैनं लोकोत्तरशुभाकृतिम्। गद्यपद्यप्रबन्धाद्यैश्चित्रैः पदकदम्बकैः॥
ततः स राजा प्रानर्च वैष्णवाग्र्यान्सभासदः। सुसंमतैर्गन्धमाल्यताम्बूलैरतिशोभनैः
नृपांश्च शतशस्तत्र सुखासीनान्नृपाज्ञया। सम्भावयामास यथायोग्यं नृपतिभाजनैः
अथाऽपृच्छन्मुनिवरं नारदं भगवत्प्रियम्। सिंहासनार्हे स्वासीनं बहुमानपुरःसरम्

भगवच्चरितं श्रोतुं सर्वपापापनोदनम्॥ ११२॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

भगवन्वेदवेदाङ्गनिधान! भगवत्प्रिय। त्वमेव चरितं विष्णोर्जानासि ज्ञानचक्षुषा॥
हरेश्चारित्रसुधया दृढपङ्कमलीमसम्। क्षालयाऽन्तर्मम मुने यद्यनुक्रोशको मयि ११४
इत्थमालापसंमिश्रे मुनिराज्ञोः कथान्तरे। प्रविवेश नृपं द्वाःस्थ उत्कलेशप्रसेवकः॥
उवाच देवद्वारान्ते तिष्ठत्युत्कलभूमिपः। सोपायनो देवपादपद्मं द्रष्टुं समौलिकः॥
विज्ञापितःसराजर्षिर्द्वाःस्थेनैवंससम्भ्रमः। उवाचतंहिभो विप्राःश्रुत्वातद्देशमण्डलम्
क्षेत्रं श्रीपुरुषेशस्य तद्वार्त्ताकर्णनोत्सुकः। प्रवेशया विलम्बं तं श्रीमदोढ्रमहीपतिम्

स हि नीलगिरौ विष्णुं समाराध्य सुनिर्मलः।
यस्य सन्दर्शनात्सर्वे भविष्यामो हतांहसः॥ ११६॥

श्रुत्वा तद्वचनं सद्यो द्वारपालो महीपतिम्। प्रवेशयामास सभामिन्द्रद्युम्नस्यभूपतेः
विवेशोढ्रपतिस्तूर्णंसचिवैर्वैष्णवैःसह। ननामाऽङ्घ्रियुगंवन्द्यमिन्द्रद्युम्नस्यसादरम्

तमुत्थाप्य च राजेन्द्रं पुरस्कृत्य स वैष्णवम्।

स्वाऽऽसनान्ते निवेश्याऽथ प्रोचे सप्रश्रयम्वचः ॥ १२२ ॥

राजन्सर्वत्र कुशली भवानोढ्रपते! किल । अपि देवो विजयते नीलाद्रिशिखरालयः॥

कच्चित्ते निर्मलाबुद्धिर्भगवत्पादपद्मयोः । उपैति समचित्तस्य सर्वभूतेषु ते हरौ ॥

ओढ्राधीशस्तदा तस्य वचः श्रुत्वा कृताञ्जलिः ।

उवाच प्रश्रितं वाक्यं हर्षविस्मयचञ्चुकः ॥ १२५ ॥

स्वामिन्सर्वत्र कुशलं त्वत्पादानुग्रहान्मम । तूर्ये तपत्यन्धकारः कथम्वाप्रभविष्यति

निसर्गगुणसंसर्गवशीकृतमहीभुजा । त्वया सनाथा पृथिवी जिष्णुनेवाऽमरावती ॥

सदा धर्मश्चतुष्पादस्त्वयि शासति मेदिनीम् ।

निषेधाचरणं राजन्केवलं श्रूयते श्रुतौ ॥ १२८ ॥

राजनीतिषुयेराज्ञांगुणाःसमुदितास्त्वयि । त एकैकंक्षितिभुजांगतादार्ष्टान्तिकंविभो

एतावदपि साम्राज्यं दुर्लभं ते नृपोत्तम । अष्टादशद्वीपवतीक्षितिरेकगृहोपमा ॥१३०

यदित्वांनाऽसृजद्ब्रह्मावत्सलंसर्वजन्तुषु । कथंशोकविहीनाःस्युर्मृ तेष्वात्मजबन्धुषु

साधारणा नृपतयो विष्णोरंशा इति श्रुतिः ।

भवान्साक्षात्तु भगवान्कोऽन्य ईदृग्गुणाकरः ॥ १३२ ॥

दक्षिणोदधितीरेऽस्तिनीलाद्रिःकाननावृतः । नतत्रलोकसञ्चारस्तत्रास्तेसाऽपिदेवता

वात्यया वालुकाकीर्णःसाम्प्रतंश्रूयतेतु सः । तद्वशान्ममराज्येऽपिदुर्भिक्षमरकादिकम्

त्वय्यागते तु सर्वस्मिन्कुशलं मे भविष्यति ।

इत्युक्तवन्तं नृपतिरुत्कलेशं द्विजोत्तमाः !॥ १३५ ॥

विसर्जयामास तदा संनिवेशायमानयन् । नारदम्प्रेक्ष्यनिर्विण्णः किमेतदितिभोमुने!

यदर्थं मे श्रमस्तश्च विफलं हि वितर्कये । इत्युक्तवन्तं तं प्राह नारदस्तुत्रिकालवित्

न कार्या विस्मयस्तेऽत्र भाग्यवान्वैष्णवोत्तमः ।

वैष्णवानां न वाञ्छा हि विफला जायते क्वचित् ॥ १३८ ॥

अवश्यं प्रेक्षसे राजन्विभ्रतं पार्थिवं वपुः । कारणं जगतामादिं नारायणमनामयम् ॥

त्वदनुग्रहहेतोर्वै क्षितावदतरिष्यति । जगच्चराचरं सर्वं विष्णोर्वशमुपागतम् ॥

न कस्याऽपि वशे सोऽपि परमात्मा सनातनः ।
केवलम्भक्तिवशगो भगवान्भक्तवत्सलः ॥ १४१ ॥
ब्रह्मादिकीटपर्यन्तं सुगुप्तं यस्य मायया । स कथं परतन्त्रः स्याद्भृते भक्तजनान्नृप ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां मूलं भक्तिर्मुरद्विषः । सैव तद्ग्रहणोपायस्तामृतेनास्तिकिञ्चन
एक एव यदा विष्णुर्बहुधा स्वस्य मायया । तमृते परमात्मानं सुखहेतुर्न विद्यते ॥
येऽप्यन्ये शिवदुर्गाद्यास्तैस्तैः कर्मभिरावृताः ।
यच्छन्ति पूजिताः कामं तेऽपि विष्णुपरायणाः ॥ १४५ ॥
अन्तर्यामी स भगवान्देवानामपि हृत्स्थितः । यावत्फलम्प्रेरयति तावदेव ददत्यमी
वैष्णवस्त्वञ्च राजेन्द्र! पद्मयोनेश्च पञ्चमः । अष्टादशानां विद्यानां पारगो वृत्तसंस्थितः
न्यायेन रक्षितापृथ्वीं विशेषाद्ब्राह्मणार्चकः । अवश्यं द्रक्ष्यसि क्षेत्रे वैकुण्ठं चर्मचक्षुषा
पितामहोऽप्यत्रकार्येभवतोमांनियुक्तवान् । सर्वं ते कथयिष्यामि प्राप्ते क्षेत्रोत्तमे नृप
साम्प्रतं रात्रिशेषो हि तृतीयं याममृच्छति ।
स्वान्स्वान्निवेशान्निर्गन्तुं राज्ञ आज्ञापयाऽधुना ॥ १५० ॥
त्वमप्यन्तर्गृहं याहि निद्राया वशमागतः ॥ १५१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
इन्द्रद्युम्नस्य पुरुषोत्तमक्षेत्रगमनं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

नारदेन्द्रद्युम्नसम्वादएकाम्रकस्थानविषयिणीवार्त्तावर्णनम्

जैमिनिरुवाच

उक्ते ब्रह्मसुतेनेत्थमिन्द्रद्युम्नो महीमतिः । मुनेस्तु वचनं श्रुत्वा प्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना

विचार्य परया बुद्ध्या श्रमं मेने फलावहम् ॥ १ ॥

अहो मे परमं भाग्यं बहुजन्मान्तरार्जितम् । व्यवसाये ममोद्युक्तःसर्वलोकपितामहः॥
जीवन्मुक्तं स्वंतनुजंमत्सहायमकारयत् । सहायो यादृशःपुंसांभवेत्कार्यं हि तादृशम्
श्रुतं सभासुसर्वासुइति वृद्धानुशासनम् । स इत्थं चिन्तयन्राजा विसृज्यचसभासदः
ततो मुनिं करे धृत्वा विवेशाऽन्तःपुरेद्विजाः !। तमर्चयित्वाविधिवत्पल्यङ्केसहतेनवै
निशावशेषं नृपतिर्निनाय सँल्लपन्मिथः । ततः प्रभाते विमले नित्यं कर्म समाप्य वै
पूजयित्वा जगन्नाथं सन्ततार महानदीम् । ओढ्रदेशाधिपेनाऽग्रे गच्छतादिष्टपद्धतिः

एकाम्रवनकं क्षेत्रमभियातो बलान्वितः ।

स गत्वा किञ्चिदध्वानम्प्राप्य गन्धवहाभिधाम् ॥ ८ ॥

नदीं वेगवतीं शीततोयामाक्रम्य वेगवान् । पूर्वाह्णपूजासमये कोटिलिङ्गेश्वरस्य वै ॥
चर्चरीशङ्खकाहालमृदङ्गमुरजध्वनिम् । व्यश्नुवानं महारण्यं दूराच्छुश्राव भूपतिः ॥
मन्यमानो भगवतो ,नीलाचलनिवासिनः । उवाच नारदम्प्रीतो ध्वनिः कुत्रमहामुने
निलाद्रिशिखरावासः प्राप्तः किं परमेश्वरः । यदर्चा समयेह्येष श्रूयते सङ्कुलध्वनिः ॥
उताऽहोप्यन्यदेवो वा निकटे वर्त्तते मुने । इति पृष्टस्तदा राज्ञा प्रोवाच मुनिपुङ्गवः
राजन्सुदुर्लभं क्षेत्रं गोपितं मुरवैरिणा । न तत्रास्तीति भगवान्कैरपि ज्ञायते नृभिः
त्वं हि भाग्यवतांश्रेष्ठस्त्वद्भाग्यात्तेपुरोधसा । दृष्टः कथञ्चिद्भगवान्संयतेन्द्रियवर्त्मना
त्वं हि तादृग्वलैर्युक्तः षडङ्गैर्नृपसत्तम !। साहसेऽतिप्रवृत्तोऽसि संशयो मे महीपते
सम्वर्त्तते नीलगिरियोजने तु तृतीयके । इदन्त्वेकाम्रकवनंक्षेत्रं गौरीपतेर्विभोः॥

नाऽतिदूरे महीपाल ! भीतः स शरणागतः ॥ १७ ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

कथं स भीतो गौरीशः कम्वा शरणमागतः ॥ १८ ॥

ददाह त्रिपुरं घोरं शरेणैकेन यः पुराः । अत्र मे विस्मयोजातःश्रोतुमिच्छामिदुर्लभम्
राक्षताभवभीतानांभवःपरमपावनः । किमर्थं भयभीतोऽसौ कः समर्थोऽस्य वै जये

नारद उवाच

अत्र ते कथयिष्यामि पुरावृत्तम्महीपते । उपयेमे पुरा गौरीं तपसा वशमागतः ॥
ब्रह्मचारी हिमगिरौ भगवान्नीललोहितः । उत्सृज्य ब्रह्मचर्यं तु सोऽनङ्गशरपीडितः
तया रेमे रुचिरया यौवनोन्मत्तया नृप !। तत्पितुर्विषये भोगान्बुभुजेदेवकाङ्क्षितान्
कदाचिदथ निर्यातीस्ववासभवनात्सती । सामपूर्वं कुलस्त्रीभिर्मात्रोक्तासस्मितंवचः
आर्ये महत्तपस्तप्तं वरार्थं गहने वने । निष्कुलो निर्गुणो वृद्धो वरः प्राप्तो वरानने ॥

दिवारात्रिं न त्यजसि सन्निधिं तादृशस्य वै ।

को गुणः कथ्यतां वत्से! किम्वा पत्युः प्रसादजम् ॥ २६ ॥

भूषणाच्छादनं प्राप्तं ममैव गृहवासिनी । चिरं तिष्ठसि भद्रे त्वं पितृभोगोपलालिता

त्रैलोक्ये यास्तु कन्या वै परिणीता पितुर्गृहात् ।

प्रयान्त्यलङ्कृता भर्त्रा भर्तृवेश्मनि शुभ्रुम ॥ २८ ॥

अहं तु मानसी कन्यापितृणां पितृलोकतः । आगतातुमहाभागेपरिणीताहिमाद्रिणा
इत्थमुक्ता मया हास्यान्न क्रोधाच्चललोचने । जामातुरग्रेनोवाच्यंसहिविष्णुसमोमतः

नारद उवाच

मातुरित्थं वचः श्रुत्वा भर्तृनिन्दाप्रपीडिता । कोपप्रस्फुरदोष्ठीसावाचंनोचेमनागपि
प्रययावन्तिकं भर्तुर्निह्नुवानाऽम्बिकावचः । जगाद परुषं वाक्यंस्नेहगर्भमिताक्षरम्
स्वामिन्न साम्प्रतं चैतद्यद्वासः श्वशुरालये । क्षौद्रीयसामपिगुरोस्त्रैलोक्यस्यकथंनुते

तदावयोर्नाऽत्र योग्या वसतिर्मे प्रिया विभो !।

न सन्ति किं ते वासाय योग्या वै भूमयः प्रभो ॥ ३४ ॥

इत्युक्तः शिवया सोऽथ भगवान्वृषभध्वजः। तया सार्द्धं वृषारूढोमध्यदेशंययौत्वरम्
विलङ्घ्य सर्वतीर्थानि प्रयागं पावनं महत्। पूर्वसागरगामिन्या गङ्गाया उत्तरे तटे
वाराणसींनाम पुरीं गौर्या वासाय निर्ममे। पञ्चक्रोशमितांरम्यांवरप्रासादशोभिताम्
अट्टालकशतैर्युक्तामसंख्योपवनैर्युताम्। नानातीर्थसमायुक्तां नानाजनसमाकुलाम्॥
आज्ञया धूर्जटेः शुभ्रां निर्मितां विश्वकर्मणा। पावनैः शीतलैर्गङ्गातरङ्गैःक्षपितांहसाम्
तत्र मध्ये पुरे स्वर्णप्राकाराट्टालशोभिते। रत्नस्तम्भैः सुघटिते सर्वाशापरिपूरके॥
तया रेमे पशुपतिः श्रियेव मधुसूदनः। सा पुरी विश्वनाथेन कदाचिन्नैव मुच्यते॥४१
अविमुक्तेतिसाख्यातानृणांमुक्तिप्रदायिनी। पुराऽऽसीन्मनुजाधीशसेविताभवभीरुभिः
तत्रोषिता तदा गौरी तेन भर्त्रा स्वलङ्कृता। मातरं पितरञ्चापि न सस्मारमहीपते॥

एवं बहुयुगेऽतीते कैलासाद्रिं स जग्मिवान्।
आत्मनः कोटिलिङ्गानि तत्र संस्थाप्य वै प्रभुः॥ ४४॥

राजानःपालयामासुस्तांपुरींबहुशो नृप। तत्राऽऽसोत्काशिराजाख्यः पुरा द्वापरकेयुगे
शम्भुं सन्तोषयामास तपसोग्रेण वै प्रभुम्। जरासन्धपुरोगाणां राज्ञांजेतारमच्युतम्

सङ्ग्रामे प्रभविष्यामीत्यभिसन्धाय पार्थिवः।
प्रादात्तस्मै वरं सोऽपि पिनाकी परितोषितः॥ ४७॥

जेतासि कंसहन्तारं सङ्ग्रामे त्वमरिन्दम। तवार्थे प्रमथैः सार्द्धमहंयोत्स्येवृषेस्थितः
शम्भोरिति वरं लब्ध्वा प्रमत्तः स नराधिपः। शङ्खचक्रधरंसङ्ख्येहरिमाह्वतवीर्यवान्
अन्तर्यामी सभगवाञ्ज्ञात्वा वृत्तान्तमीदृशम्। चक्रंप्रस्थापयामासकाशिराजस्यसूदने
तदुग्रदर्शनं चक्रं सहस्रादित्यवर्चसम्। काशिराजशिरश्छित्त्वा तद्बलं तां पुरीं ततः
ददाह कुपितं राजन्विष्णोराशयवीर्यवित्। तद्दृष्ट्वा सुमहत्कर्म क्रुद्धः पशुपतिस्तदा
गणैर्वृतो वृषारूढः पिनाकी तदुपाद्रवत्। ततः सुदर्शनं चक्रं दृष्ट्वा तं प्रथमं पुरः॥५२
शम्भुः पाशुपतास्त्रंतच्चकारोत्पातसन्निभम्। पुराविष्णोर्वरंप्राप्तंशम्भुनाभक्तितोषितात्

बलेनाऽऽप्याययिष्यामि तवाऽस्त्रं संस्मृतस्त्वया।

मयि चेत्प्रतिकूलस्त्वं भविष्यति च निष्प्रभम्॥ ५५॥

घोरे पाशुपतेचाऽस्मिन्नस्त्रेचविफलीकृते । वाराणस्यांचदग्धायांभयत्रस्तोवृषध्वजः
तुष्टाव जगतामादिमनादिं पुरुषोत्तमम् ॥ ५७ ॥

महादेव उवाच

नारायण! परंधाम ! परमात्मन्परात्पर !। सच्चिदानन्दविभव! निरञ्जन नमोऽस्तु ते ॥
जगत्कारणसृष्ट्यादिकर्मकृद्गुणभेदतः । मायया निजया गुप्त स्वप्रकाश नमोऽस्तुते
नाऽन्तर्वहिर्वहिश्चाऽन्तर्दूरस्थो निकटाश्रयः ।
गुरुर्लघुः स्थिरोऽणीयान्स्थवीयांश्च नमोस्तु ते ॥ ६० ॥
कोट्यश्चतुरास्यस्य पलार्द्धं मम चाऽतुल !। यदपाङ्गविलासोत्थंतस्मैकालात्मने नमः
एकैकरोमाकलितब्रह्माण्डगणसम्भृतम् । मानातीतं वपुर्यस्य तस्मै विश्वात्मने नमः
स्वकालपरिमाणेन वेधसः प्रलयोद्भवौ । मन्वन्तरादिघटनाकलनाय नमोऽस्तु ते ॥
सृष्टोऽहं तमसानाथ त्वत्प्रभावानभिज्ञकः । तत्क्षमस्वाऽपराधं मेत्राहिमांशरणागतम्
स्तुतिमित्थं प्रकुर्वाणे तस्मिंस्त्रिपुरदाहिनि । चक्ररूपंपरित्यज्यआविरासीदधोक्षजः
प्रसन्नवदनः श्रीमाञ्छङ्खचक्रगदाधरः । तार्क्ष्यपद्मासनगतो वनमालाविभूषणः ॥ ६६॥
हारकुण्डलकेयूरमुकुटादिभिरुज्ज्वलः । वामोत्सङ्गगतांलक्ष्मींसत्यांदक्षिणपार्श्वगाम्
बिभ्राणःकृष्णजीमूतकान्तदेहंकृपाम्बुधिः । क्रोधाविष्टइवोवाचविस्यन्तंगिरिजापतिम्

श्रीभगवानुवाच

कालेनैतावताशम्भो! दुर्बुद्धिःकथमागता । हेतोर्नृपतिकीटस्यमयायोद्धुमुपस्थितः
कति वा मत्प्रभावास्ते नो ज्ञाता धूर्जटे! त्वया । सत्यंपाशुपतंतेऽस्त्रंदुर्जयंससुरासुरैः
मत्क्रोधरूपं तच्चक्रं त्वामपि क्षमते न यत् । मामवज्ञाय जगति भ्रमति त्वामृतेहि कः
तपोभिर्बहुभिःपूर्वं मच्छरीरतयोर्जितः । साम्प्रतं चेच्चिरं रन्तुं गौर्यासार्द्धमिहेच्छसि
पुरीं वाराणसीं चेमां यदीच्छसि चिरस्थिताम् ।
मन्नाम्ना भुवि विख्यातं क्षेत्रं श्रीपुरुषोत्तमम् ॥ ७२ ॥
दक्षिणस्योदधेस्तीरे नीलाचलविभूषितम् । दशयोजनविस्तीर्णं यावद्विरजमण्डलम्
क्रमशः पावनं क्षेत्रं यावच्चित्रोत्पला नदी । ततःप्रभृतियो देशोयावत्स्याद्दक्षिणार्णवः

पदात्पदाच्छ्रेष्ठतमो नीलाद्रिरपवर्गदः । चतुर्देहस्थितोऽहं वै यत्र नीलमणीमयः ॥
तस्योत्तरस्यां विख्यातं वनमेकाम्रकाह्वतम् । पार्वत्या तत्र निवसनिर्भयस्त्रिपुरान्तक
सृजता सर्वलोकानां मन्निदेशात्स्वयम्भुवा ।
तत्राऽपि कोटिलिङ्गानां राजा त्वमभिषेक्ष्यसे ॥ ७८ ॥
सर्वतीर्थमयं चेदं तीर्थं यन्मणिकर्णिकम् । इहाऽहङ्कारमुत्सृज्य व्रज त्वं सपरिच्छदः

नारद उवाच

इत्युक्तो वासुदेवेन त्र्यम्बको नतकन्धरः । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रोवाच मधुसूदनम् ॥

महादेव उवाच

देवदेव! जगन्नाथ! प्रणतार्तिहर! प्रभो !। त्वदाऽऽज्ञापालनं श्रेयः कारणं मे जगत्पते!॥
यत्तु मूढतया देव! अवलेपः कृतो मया । तवैवाऽनुग्रहस्तत्र प्रभो! चाञ्चल्यकारणम् ॥
यदादिशसि देवेश प्रयाणं पुरुषोत्तमम् । तन्मूर्ध्नि कृत्वायास्यामिक्षेत्रंमुक्तिप्रदंशिवम्
अभिसन्धि कुरुष्वाऽद्य ममानुग्रहकारणम् । पुरुषोत्तमं मम क्षेत्रं त्वमेव परिपालय ॥
यथा पुनर्नेदृशं तद्विनाशमुपयास्यति । इत्थमेतत्पुरा क्षेत्रं महादेवेन निर्मितम् ॥ ८५॥
बलश्रीसहितं देवमर्चयन्पुरुषोत्तमम् । अत्र साक्षादुमाकान्तः स्थापितः परमेष्ठिना ॥
वयंतत्र व्रजिष्यामोद्रक्ष्यामःपुरनाशनम् । सुदूढान्तस्तमःस्तोमभास्वतंगिरिजापतिम्
यदेतच्छाम्भवं क्षेत्रं तमसो नाशनं परम् । रजःप्रक्षालनं श्रेयः ख्यातं विरजमण्डलम्
सत्त्वोद्रिक्ततया ख्यातं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम् ।
यावन्त्यन्यानि क्षेत्राणि मुक्तिदानि श्रुतानि ते ॥ ८६ ॥
तानि सर्वाणि राजेन्द्र! ददतेमुक्तिमत्र वै । एतत्क्षेत्रं महाराज! दुष्कृताविलचेतसाम्
न विश्वासपथं याति रहस्यं चक्रपाणिनः ॥ ६१ ॥

जैमिनिरुवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहृष्टहृदयो नृपः । उवाच मुनिशार्दूलं विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥
साधु मे कथितं ब्रह्मन्क्षेत्रं परमपावनम् ॥ ६२ ॥
यत्रोमापतिरास्तेऽसौ पालकः पुरुषोत्तमः । अवश्यं तत्र गच्छामःपन्थायद्यपिवक्रभूः

उद्दिष्टेष्टपरिप्राप्तौ यदिदं कारणं महत् ॥ ९३

जैमिनिरुवाच

ततस्तौ मुनिभूपालौ मध्याह्नसमये द्विजाः। प्रापतुः सबलौ क्षेत्रमेकाम्रवनसञ्ज्ञकम्
बिन्दुतीर्थे नृपःस्नात्वातीरस्थंपुरुषोत्तमम्। सम्पूज्यविधिवद्यातःकोटीश्वरमहालयम्
तद्वारि सम्यगाचान्तस्तत्प्रीत्यै सुबहूनि सः। गजाश्वधनरत्नानि वस्त्रालङ्करणानि च
द्विजेभ्यः प्रददौ राजा सात्त्विकं धर्ममास्थितः। लिङ्गंत्रिभुवनेशंतंमहास्नानेनपूजयन्

अतुलां प्रीतिमालेभे विष्णोरद्वैतदर्शनः।

स्तुत्वा प्रणम्य भक्त्याऽसौ वीणया चोपगाय्य च ॥ ९८ ॥

कृताञ्जलिपुटो देवप्रसादनकृतोद्यमः। अनन्यमनसा तस्थौ चिन्तयन्वृषभध्वजम् ॥
ततः प्रसन्नो भगवांस्त्र्यम्बकः परमेश्वरः। साक्षान्नृपमुवाचेदं स्पष्टाक्षरपदं द्विजाः ॥

कोटिलिङ्गेश उवाच

इन्द्रद्युम्न! महाराज! वैष्णवस्त्वादृशो भुवि।

दुर्लभः खलु ते वाञ्छा चिरात्सम्यग्भविष्यति ॥ १०१ ॥

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे शम्भुः पश्यतस्तु महीक्षितः। नारदं पुनराहेदं यदादिष्टं स्वयम्भुवा
तत्कल्पय महाभाग वाजिमेधपुरःसरम्। विष्णोः कलेवरे तस्मिन्क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे

अन्तर्वेदी महापुण्या विष्णोर्हृदयसन्निभा।

तस्याः संरक्षणायाऽहं स्थापितो विष्णुनाऽष्टधा ॥ १०४ ॥

शङ्खाकृतेरग्रभागे नीलकण्ठोऽहमास्थितः। दुर्गया सह विप्रेन्द्र! तत्रेमं भूपतिं नय ॥
अन्तर्हितः खल्विदानीं नीलरत्नतनुर्हरिः। तत्र श्रीनरसिंहस्य क्षेत्रं कुरु मदाज्ञया ॥
तत्र नः सन्निधौ वाजिमेधेन यजतामयम्। सहस्रेण नृपश्रेष्ठः तदन्ते तरुमद्भुतम् ॥
दर्शयैनं द्विजश्रेष्ठ ब्रह्मरूपमकल्मषम्। चतस्रः प्रतिमास्तेन विश्वकर्मा घटिष्यति ॥
तासां प्रतिष्ठितौब्रह्मास्वयमेवागमिष्यति। यथायंक्षीणपापःस्याद्वाजिमेधैर्यजन्हरिम्
तिष्ठत्वब्दसहस्रं वै तदन्ते लोकयिष्यति। समस्तजगदाधारं सर्वकल्मषनाशनम्
दारवीं तनुमास्थाय दर्शनात्मपवर्गदम्। न तस्य चरितं वेत्ति ब्रह्माऽहं त्वं च नारद! ॥

आज्ञानुष्ठानतो भक्त्या प्रसीदति स केवलम् । नारदोऽपिमहादेवंप्रणिपत्यजगद्गुरुम्
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा यदादिष्टं त्वया विभो !॥ ११२ ॥
पितामहोऽपि मामित्थं निर्दिदेशाऽस्य कल्पनम् ।
पितामहश्च त्वं नाथ नो भिन्नौ परमात्मनः ॥ ११३ ॥
नृपतेरस्य भाग्यर्द्धिरीदृशी यत्कृते विभो !। अगोचरोऽसौ मनसस्त्रयाणामप्यनुग्रहः
यत्प्रसङ्गेन तरणं भवाब्धेरपि दुष्कृताम् । अचिन्त्यमहिमा ह्येष भगवान्भूतभावनः॥
न बुद्धिगोचरे भक्तिर्यावत्या प्रीयते ह्यसौ । चिरंयतन्तस्तिष्ठन्तिवेदानुवचनादिभिः
क्षुद्रोऽपि लभते मुक्तिमनायासेन कर्मणा ॥ ११६ ॥
गव्योपजीव्या गोप्यस्तुवनचारगृहोषिताः । आरण्यजीवनाःप्रापुर्मुक्तिकामोपभोगतः
द्रुहन्निरन्तरं प्राप शिशुपालः सभान्तरे । व्याधोहृदयमाविध्य गतिं प्रापसुदुर्लभाम्
वस्त्राकर्षं गृहं नीत्वा कुब्जैनं बुभुजे पुरा । यं ध्यानलयमापन्ना लभन्ते न सुरस्त्रियः
चाण्डालायददौ मुक्तिदूरस्थायापिनोपुनः । आसन्नायाऽतिभक्तायश्रोत्रियायपुराविभुः
मायाभिर्वञ्चयेत्त्वां हि पितामहमपि प्रभुः । तिष्ठन्ति दुःखबहुलास्तपोभिर्देहबन्धनाः
गौतमाद्या ब्रह्मचर्यनिष्ठाः कल्पान्तवासिनः ।
ईदृक्तादृक्परिच्छेद गोचरं नाऽस्य चेष्टितम् ॥ १२२ ॥
व्यवसायेन बहुना कालेन महता तथा । निर्णेतुं शक्यते नाऽस्य चरितं वा सुमेधसः
उपाया बहवः सन्ति ये शास्त्रपरिनिष्ठिताः । विदुषां मोचनायेह बहुशस्तैर्यजन्ति वै
सर्वेषामुत्तमोपायोवसतिः पुरुषोत्तमे । याऽवश्यं स्वामिसायुज्यंप्रापयेत्सुसखा यथा
तदेनं मायिनं प्राप्तुमुपायो नान्तरीयकः । स्वयं निधाय हरिणा यत्र वासः सुरक्षितः
इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन जायते सार्वलौकिकः । तदाज्ञापय देवेश गृहीत्वैनं बलान्वितम् ॥
उपत्यकायां संस्थाप्य दीक्षयित्वा महाक्रतौ ।
आगमिष्यामि पादाब्जसमीपं ते वृषध्वज !॥ १२८ ॥

जैमिनिरुवाच

तथेत्युक्त्वा महादेवः क्षणान्तर्दधे मुनेः । सोऽपि राज्ञो रथेतिष्ठन्प्रययौक्षेत्रमुत्तमम्

द्वितीयेऽह्निकपोतेशस्थलीमासेदिवान्नृपः । दैर्घ्यायामसमायुक्तां जलाशयद्रुमाकुलाम्
विल्वेशः पूर्वसीमायां समुद्रतटमास्थितः ।
सेनानिवेशयोग्यां तां मन्त्रिणा सन्निवेदिताम् ॥ १३१ ॥
यथायोग्यं यथास्थानं स्थापयित्वानृपोत्तमः । विल्वेश्वरकपोतेशंनमस्कृत्यप्रपूज्यच
रथमास्थाय मतिमान्सहितो ब्रह्मसूनुना । मनसा वचसाविष्णुंनीलाचलनिवासिनम्
चिन्तयन्कीर्तयन्विप्रा जगाम सन्निधिं हरेः ॥ १३२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
विल्वेश्वरकपोतेश्वरगमनवर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

कपोतेशविल्वेशयोर्माहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

कपोतेशस्थलीचाऽपि कथं ख्याता महामुने !। को वाकपोतःकश्चेशपतन्नोवक्तुमर्हसि

जैमिनिरुवाच

पुराकुशस्थलीसावैअसेव्यासर्वजन्तुभिः । तीक्ष्णधारैःकुशाग्रैस्तुपरितःकण्टकैश्चिता
निस्तरुर्निर्जलाधारा पिशाचवसतिर्यथा । यदा पूर्वं भगवतो नाऽन्योदेवोऽपिपूज्यते
पूज्यः स्यामहमप्येवं स्पर्धाऽऽसीद्ध धूर्जटेस्तदा ।
चिन्तयन्निति तस्यैव विष्णोर्भक्तौ मनोऽदधत् ॥ ४ ॥
सर्वनिर्विषये देशे स्थित्वाऽहंनिष्परिग्रहः । सुमहत्तपआस्थायतोषयिष्यामितंहरिम्
किं वदेयं रमेशाय का स्तुतिःशारदापतेः । सर्वब्रह्माण्डनाथस्यकिंवान्यत्तुष्टिकारकम्
तस्मान्न बाह्यं वस्त्वन्यदुपयोगायतस्य वै । अन्तर्यागंसमास्थायनिर्व्यलीकेनचेतसा

भक्तेभ्य आत्मप्रददं चराचरगुरुं हरिम् । आराध्ययिष्ये सर्वेषांपूज्यःस्यांतत्प्रसादतः
तत इत्यभिसन्धाययय‌ौ पुण्यांकुशस्थलीम् । समीपेनीलगोत्रस्यसर्वद्वन्द्वविवर्जितः
ततस्तेपे तपस्तीव्रं वायुभक्षो महेश्वरः । कपोत इव सूक्ष्मोऽभूदष्टमूर्तिरपि प्रभुः॥
ततः प्रसन्नो भगवानैश्वर्यं प्रददौ तदा । येनात्मतुल्यः सञ्जातः पूजासम्माननादिषु ॥
तपःप्रभावात्तस्यासीत्स्थलीवृन्दावनोपमा । सरस्तडागसरसीनदीभिःशोभितान्तरा
नानाद्रुमैर्लताभिश्च सर्वर्तुफलपुष्पकैः । मधुमत्तद्विरेफाणां झङ्कारैर्मुखराशया ॥ १३॥
नानापक्षिगणाकीर्णा सर्वजन्तुसुखाश्रया । कपोतसदृशो जातो यतः सतपसाशिवः
मुरारेराज्ञया सोऽत्र कपोतेश्वरतांगतः । तदाज्ञयाऽत्रवसति मृडान्या त्र्यम्बकः सदा
येऽर्चयन्ति कपोतेशं स्तुवन्तिप्रणमन्ति वा । निर्धूतकल्मषास्तेवैप्रयान्तिपुरुषोत्तमम्

अतः परं प्रवक्ष्यामि बिल्वेशमहिमां द्विजाः !।
पातालवासिनः पूर्वं दैत्या भित्त्वा महीतलम् ॥ १७ ॥

उपद्रवन्ति भूर्लोकं भक्षयन्ति जनांस्तथा । भारावतरणार्थाय देवकीगर्भसम्भवः॥
पालयामास पृथिवीं यदा स भगवान्प्रभुः । यादवैःपाण्डवैःसार्द्धंतदातत्स्थानमागतः
तीर्थराजस्य सलिलेस्नात्वा तं नीलमाधवम् । दूरात्प्रणम्य मनसा दैत्यद्वारमुपागतः
दृष्ट्वा तद्विवरं घोरमप्रवेश्यं तु मानवैः । भ्रान्त्यासंमोहयँल्लोकान्प्रथयञ्छिवपूज्यताम्
बैल्वं फलं समादाय तत्राऽऽवाह्यत्रिलोचनम् । पूजयित्वापुरारातिं तुष्टावाऽसुरसूदनः

श्रीभगवानुवाच

नमस्तेत्रिगुणातीत! गुणत्रयविभागकृत् !। त्रयीमय! त्रयातीत! त्रिकालज्ञानिने नमः
शशिसूर्याऽग्निनेत्राय ब्रह्मण्याय वरात्मने । अष्टैश्वर्यनिधानाय तुभ्यमष्टात्मने नमः॥
यस्य रूपं तमःपारे तमोनाशनमव्ययम् । अज्ञानानां तमश्छिन्नं तस्मै चितमसे नमः॥
एवंस्वमाऽऽत्मनात्मानंस्तुत्वा स भगवान्प्रभुः । तस्यप्रसादाद्विवरं सुप्रवेशमपश्यत
तेन मार्गेण पातालंससैन्योऽभ्यगमत्प्रभुः । हत्वा तत्रबलोदग्रान्दैत्यान्भारावतारणः
पुनरागम्य तत्रैवस्थित्वासवृषभध्वजम् । सम्पूज्यभगवान्द्वाररोधायस्थापयञ्छिवम्
इदमाह महाबुद्धिर्भक्तिवश्यो गदाधरः । धूर्जटे! तिष्ठ प्रासादेरुन्धानोऽसुरनिर्गमम् ॥

त्वदन्यः कः क्षमः शम्भो कर्बूरबलनाशने। स्थापयित्वा महादेवं ततोद्वारावतींययौ
ततः प्रभृति विल्वेशः पृथिव्यां ख्यातिमागतः।
पूर्वविधिः स विल्वेशः क्षेत्रराजस्य भो द्विजाः !॥ ३१ ॥
तं दृष्ट्वा पापहन्तारं मृडानीपतिमव्ययम्। सर्वान्कामानवाप्नोति विपत्तिदुस्तरांजयेत्
कपोतविल्वेश्वरयोर्माहात्म्यंकथितं तु वः। अतःपरंभोमुनयः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनऋषिसम्वादे
कपोतेशविल्वेशयोर्माहात्म्यवर्णनंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

विद्यापतिना साकंनारदपार्थिवयोर्गमनवर्णनम्

मुनय ऊचुः

रथमारुह्य तौ यातौ यदा नारदपार्थिवौ। क्व यातौ चक्रतुः किं वा तन्नो वदमहामुने

जैमिनिरुवाच

सार्द्धं च विद्यापतिना पुरोहितकनीयसा। क्षेत्रान्ते नीलकण्ठस्य समीपमुपजग्मतुः
दुर्निमित्तमभून्मार्गे व्रजतोऽस्यमहीक्षितः। वामाक्षिभुजयोःस्पन्दःस्फुरणंचमुहुर्मुहुः
तद्दृष्ट्वा नृपशार्दूलोविषादमुपसेदिवान्। पप्रच्छ कारणं चाऽस्यसर्वज्ञाननिधिंमुनिम्
अव्याहतं मे साम्राज्यं प्राप्तं क्षेत्रोत्तमं त्विदम्। दर्शनार्थंमाधवस्ययात्रेयं तु शुभावहा
अकार्यं मे भवेदद्य किं मुने ब्रूहि तत्त्वतः। स्पन्दतेवामनेत्रंतुस्फुरते च भुजोऽसकृत्
तच्छ्रुत्वा नारदः प्राह भावि कार्यं च सूचयन्। श्रावयन्कुशलं वाक्यंयदुक्तंपद्मयोनिना

नारद उवाच

मा भूद्विषादस्ते भूप सविघ्नं प्रायशः शुभम्। विघ्नान्ते चशुभंपुंसांपुनर्भाग्यवतांनृप

सत्यं त्वं सार्वभौमोऽसि क्षेत्रं विष्णोर्वपुस्त्विदम् ।
यात्रा तेऽत्र यदर्थेयं सोऽन्तर्द्धानमुपागमत् ॥ ९ ॥
एष विद्यापतिर्विप्रोदिनेयस्मिन्ददर्शतम् । सायंकालेततोऽन्येद्युः स्वर्णवालुकयावृतः
ययौ पातालनिलयं मर्त्यलोके सुदुर्लभः ॥ १० ॥

जैमिनिरुवाच

तच्छ्रुत्वा घोरवचनं वज्रपातसमं नृपः । पपात धरणीपृष्ठे निःसञ्ज्ञः स द्विजोत्तमाः
तं तथा पतितं दृष्ट्वा पुरोहितपुरोगमाः । स्निग्धाःसखायः सर्वे ते हाहाकारमुपाद्रवन्
कर्पूरशीतलंवारि मुखे सिक्त्वा पुनःपुनः । चन्दनागुरुकर्पूरैः सर्वाङ्गं लिलिपुश्च ते॥
चामरैस्तालवृन्तैश्चवीजयामासुराशुतम् । नारदोऽपिचसम्भ्रान्तोधारयन्योगधारणम्
प्राणानरक्षन्नृपतेर्जानंस्तत्र शुभायतिम् । सोऽपिराजा चिरात्संज्ञां लेभेयत्नैरनुत्तमैः
उत्थायपादयोर्विप्रा नारदस्याऽपतत्पुनः । किमकार्षं मुने! पापं कस्मिञ्जन्मान्तरेदृढम्
यस्यपाकदशायाम्वैदुःखमासीत्सुदारुणम् । कर्मणामनसावाचानो द्विजानां गवामपि
अपराधः कृतः कश्चित्स्वप्नेऽपि मुनिपुङ्गव !॥ १७ ॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कर्म यत्परिकीर्तितम् ।
राज्ञस्तन्मुनिशार्दूल! न त्यक्तं वै मया क्वचित् ॥ १८ ॥
देवतातिथिभृत्यानां पितॄणां च महामुने । तथाश्रितानां बन्धूनां नापमानःकृतोमया
पञ्चाशदपराधा ये विष्णोर्वैष्णवपुङ्गव !। त्यक्ताः प्रयत्नात्ते सर्वे क्रुद्धा इव महोरगाः
किं भाग्यं चरितं नेन पुरोहितकनीयसा । यच्चमे चक्षुषा दृष्टो भगवान्नीलमाधवः॥
किमर्थं राज्यविभ्रंशो जानतैव त्वयाकृतः । यात्रासमय एवैतत्कथं वा न प्रकीर्तितम्
किमर्थम्वाश्रोत्रियाणांस्थानभ्रंशोमयाकृतः । कथमेतैःपरित्यक्ताश्चिरात्संस्कृतभूमयः
आवंशभूतेर्वृत्तिर्याप्रजाभिःपरिपालिता । मदर्थं सा परित्यक्ताजीविष्यन्तिकथंनुताः
प्राणान्न धारयिष्यामि न द्रक्ष्यामि यदा हरिम् ।
एष मे निश्चयो ब्रह्मन्मयि नष्टे कुतः प्रजाः ॥ २५ ॥
मुने सद्दासकरुणस्त्वंमांशाधिसमुभाशुभम् । साक्षात्प्रत्यंस्तुतंनीलमाधवेनाभिषेचय

स पालयतु न्यायेन न शोचन्तु इमाःप्रजाः । राजानो ये समायातास्तेसर्वेमन्निदेशतः
मत्सूनोर्मालवेशस्यप्रयान्तुवचने स्थिताः । प्रायोपवेशविधिना चिन्तयन्नीलमाधवम्
आयुः शेषं करिष्यामि सफलं क्षेत्रसंस्थितः ॥ २६ ॥

जैमिनिरुवाच

विलपन्तमिन्द्रद्युम्नं राजानं ब्रह्मणः सुतः । उत्थाप्य प्रश्रयगिरासान्त्वयन्निदमब्रवीत्

नारद उवाच

राजन्पण्डितमूर्द्धन्यो वैष्णवो धैर्यसागरः । श्रेयः सविघ्नंसततं कथं वा नाऽवधारयेः
इदं तु परमं श्रेयः पुंसो जन्मशतार्जितम् । शरीरधारिणं पश्येच्चर्मचक्षुर्गदाधरम् ॥
निरङ्कुशा हरेर्लीला केनवाप्यवधार्यते । जीवन्मुक्तोऽप्यहं राजंस्तल्लीलांनाऽतिवर्तये
कियता वञ्चितो नाऽहं दृढभक्तोऽन्तिकस्थितः ।
दुरत्यया तस्य माया बहुजन्मशतैरपि ॥ ३४ ॥
अनन्ता तस्यमायेयंदुर्ज्ञेयापद्मयोनिना । नाभिपद्मास्थितेनाऽपिनित्यश्चस्तुतिशालिना
स्वभाव एवं कथितस्तस्यमायाविनोनृप । विशेषं कथयाम्येवं त्वन्तु भाग्यवताम्वरः
तिस्रोऽपि मूर्तयस्तस्य त्वदनुग्रहबुद्धयः । चराचराणांस्रष्टायः साक्षाल्लोकपितामहः
मामुवाच व्रजाऽऽशु त्वमिन्द्रद्युम्नस्य चाऽन्तिकम् ॥ ३७ ॥
नीलाचलम्प्रयात्येष दिदृक्षुर्नीलमाधवम् । अन्तर्द्धानं गतो ह्येष यमेन प्रार्थितो विभुः
न तत्र शोकः कर्तव्यः शक्यतेतत्र नान्यथा । वाच्यो मद्वचनाद्राजापञ्चमीममसन्ततिः
तत्कृते परमात्मानं प्रसाद्य पुरुषोत्तमम् । श्वेतद्वीपान्नयिष्यामि सहस्रान्ते महाक्रतोः
इन्द्रद्युम्नः स इदानीं क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे । अश्वमेधसहस्रैस्तु यजन्विष्णुं स तिष्ठतु
तदन्ते दारुवतनुं विष्णुं द्रक्षतिचक्षुषा । सोऽवतारो हरेः ख्यातिंतस्यद्वारागमिष्यति
तदा तु तनवो विष्णोः प्रतिष्ठाप्या मया ध्रुवम् ।
पुरा स्म मणिमूर्तिस्तु चतुर्द्धाऽवस्थितो हरिः ॥ ४२ ॥
दृष्टा पुरोधसा तस्य साक्षादग्रे निवेदितः । दिव्यदारुवपुर्भूयश्चतुर्द्धाऽवतरिष्यति ॥
तस्मात्माव्यथराजेन्द्रवाञ्छातेसफलाध्रुवम् । भविष्यतिनसन्देहोनिर्व्यलीकोवसेहवै

जैमिनिरुवाच

सान्त्वयित्वा निनायेत्थं राजानं नारदस्तदा । विश्वासपदवीं विप्राःपुनर्वाक्यमुवाचह

नारद उवाच

शङ्खाकृतेः क्षेत्रवरस्य चाऽग्रे यो नीलकण्ठः खलु दुर्गयाऽऽस्ते ।
यामो वयं तत्र च वाजिमेधक्रतूपयोग्या सुसमा स्थली सा ॥ ४७ ॥
तस्यां विनिर्माय सहस्रवर्षस्थिरां सुशालां हयमेधनाथ ।
नीलाद्रिवासस्य नृसिंहमूर्तिं दृष्ट्वा कृतार्थं विरचय्य जन्म ॥ ४८ ॥
तस्यैव मूर्तिं प्रतियातनान्ते नित्याऽर्चनीयां तव पूजनीयाम् ।
प्रत्यक्प्रतिष्ठाप्य समस्तविघ्नविनाशहेतोः फलबृंहणाय ॥ ४६ ॥

आरप्स्यामःक्रतुवरंमुनिवर्यैर्यथोचितम् । विलम्बोऽत्र न हि श्रेयानितिपैतामहम्वचः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णखण्डा-
न्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
शोकार्त्तस्येन्द्रद्युम्नस्यनारदकर्तृकंसान्त्वनंनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

भगवतःपुनराविर्भावशंसिनभोवाण्याराज्ञःप्रसादवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

ततस्ते प्रस्थिता विप्रा नीलकण्ठान्तिकम्मुदा । प्रपूज्यतं महादेवंश्रीदुर्गांप्रणिपत्यच
विमुच्य स्यन्दनवरंपादचाराः सहानुगाः । आरोढुं नीलभूमिध्रंप्रयाताः संयतेन्द्रियाः
नानाद्रुमलताकीर्णं नागापक्षिगणाकुलम् । शिलाविषमसंरोधममितं परिवेषकम् ॥
भ्रमद्भ्रमरसम्भूतभ्रमकृद्गण्डशैलकम् । दक्षिणाम्भोधिकल्लोलजलावृतनितम्बकम् ॥
अप्रतर्क्यं सदा मर्त्यैर्दुष्प्रवेश्यं महोरगैः । मत्तमातङ्गकलभबृंहितैर्भीषणान्तरम् ॥

श्वापदैश्चिरसम्वासैः शस्त्राघातमवेदिभिः । निर्भयैःपरितः कीर्णं मृगयूथैरनेकशः ॥

प्रवेष्टुकामा न प्रापुर्यदा ते मार्गमन्तरम् ।

तदा नारदसंसर्गाद्भिदित्वा तु गिरेः शिरः ॥ ७ ॥

आसेदुर्यत्र वसति कृष्णागुरुतरोरधः । सर्वापद्भयसंहर्ता दिव्यसिंहवपुर्विभुः ॥ ८॥

यं दृष्ट्वा ब्रह्महत्याद्या लीयन्तेकोटयोनृणाम् । व्यात्तास्यंभीमदशनमापिङ्गलसटाकुलम्

उग्रं त्रिनेत्रं दैत्यस्य स्वोरावुत्तानशायिनः । वक्षःस्थलं दारयन्तं नखरैर्वज्रदारुणैः ॥

अरुणाभं लसज्जिह्वं साट्टहासमुखं विभुम् । शङ्खचक्रलसद्बाहुंकिरीटमुकुटोज्ज्वलम्

नेत्रोच्छलद्वह्निकणसन्त्रासितदिगन्तरम् । प्रचण्डाघातभूम्यन्तप्रविष्टपदपङ्कजम् ॥

तमादिमूर्तिं ते दृष्ट्वा नारदाऽग्रे तदा हरिम् । निर्भया ददृशुर्दूरात्प्रणेमुर्विगतज्वराः॥१३

इन्द्रद्युम्नोऽपि तं दृष्ट्वा ारदोक्तौ विशश्वसे । भाविकार्यप्रत्ययवानिदमाहमहामुनिम्

महर्षे ! कृतकृत्योऽस्मि त्वं हि ज्ञाननिधिः परम् ।

दुराराध्यो नृसिंहोऽयं दर्शनेऽपि भयावहः ॥ १५ ॥

भवादृशैः सुसेव्योऽयंमादृशैर्दूरतोऽपिसः । दर्शनात्कृतकृत्योऽस्मिसंलीनाशेषपातकः

त्वत्सन्निधानादेवाऽत्रतिष्ठामोनिर्भया मुने । अत्युग्रमूर्तिर्भगवान्स्वल्पवीर्यैर्नरैः कथम्

आराध्यतेदैत्यराजंत्रिलोकेशं विदारयन् । यस्यनीलमयीमूर्त्तिःकृपासिन्धोःस्थितातुवै

कस्मिन्स्थले मुनिश्रेष्ठ दर्शनाद्या विमुक्तिदा । तन्मे दर्शय विप्रेन्द्रयन्मेमुक्तिप्रदंमतम्

इत्युक्तो नारदस्तस्मै दर्शयामास पावनम् । स्थानंयत्रस्थितोदेवःस्वर्णसैकतसम्वृतः

पश्यैतं योजनायामंयोजनद्वयमुच्छ्रितम् । कल्पान्तस्थायिनं भूपन्यग्रोधंमुक्तिदंनृणाम्

छायायां क्रमणाद्यस्य मुच्यते पापकञ्चुकात् ।

अस्य मूले नरः प्राणांस्त्यजन्मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥

न्यग्रोधरूपं दृष्ट्वाऽपि नारायणमकल्मषम् । निष्पापोजायते मर्त्यःकिमुतंपूजयंस्तुवन्

अस्य मूलात्प्रतीच्यां हि नृसिंहस्योत्तरेनृप !। अतिष्ठन्माधवोयत्रचतुर्मूर्तिधरोविभुः

अनुग्रहीतुं त्वामेव पुनरत्रोद्भविष्यति । श्वेतद्वीपे यथा विष्णुर्भोगभूमौ निजालयः

जम्बूद्वीपे कर्मभूमौ निजं स्थानमिदं स्मृतम् ।

स्वस्यैवाऽतिरहस्यत्वान्न प्रकाशोऽस्य सम्मतः ॥ २६ ॥

मोक्षाधिकारी जानातिस्थलमेतन्महीपते । अविश्वासपदं नृणां दुष्कृतांहिविशेषतः

अत्र याऽन्या प्रतिकृतिः पौरैर्विष्णोः प्रतिष्ठिता ।

साऽपि मुक्तिप्रदा भूप ! किं पुनः सा स्वयम्भुवा ॥ २८ ॥

अन्तर्द्धानतिरोधाने सनिमित्ते जगत्प्रभोः । अनुग्रहार्थं साधूनां जायते च युगेयुगे॥

नानावतारैर्भगवान्मत्स्यकूर्मादिकैर्नृप । निमित्तनाशे च तिरोदधाति परमेश्वरः॥

निर्निमित्तंस्थितोनित्यमिहकारुण्यसागरः।श्वेतद्वीपाद्यथाविष्णुरन्यत्राऽवतरेत्प्रभुः

अत्र स्थितोऽपि स द्वारकाकाञ्चीपुष्करादिषु ।

प्रकाशं याति कृपया तरुमूलप्ररोहवत् ॥ ३२ ॥

नानातीर्थेषु देशेषु क्षेत्रेष्वायतनेषु च । अंशावतारास्तस्यैव मा भूत्ते संशयो नृप !॥

क्षणंनत्यजतीशानःक्षेत्रंक्षेत्रमिवस्वकम् । त्वदुपज्ञस्तुभूपाल! प्रकाशोऽन्योभविष्यति

इति संदर्शितं स्थानं नारदेन महात्मना । साष्टाङ्गपातं भूमौ तदिन्द्रद्युम्नो ननाम ह

मन्वानस्तु स्थितं देवं प्रकाशमिव तुष्टुवे ॥ ३६ ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

देवदेव जगन्नाथ! प्रणतार्तिविनाशन !। त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष! पतितं भवसागरे ॥

त्वमेक एवदुःखौघध्वंसकःपरमेश्वरः । क्षुद्राः क्षुद्रान्हि सेवन्ते सुखलेशस्यलिप्सया

अनादित्रिविधौघस्य राशेः स्वस्य महांहसः ।

दुरुच्छेद्यस्य सततं पूर्यमाणस्य जन्मनः ॥ ३६ ॥

किंपुनर्भक्तिभावेनसाक्षान्मुक्तिप्रदंनृणाम् । कर्माधीनन्तुयेमूढावदन्तित्वांकृपानिधिम्

ते न जानन्तिभगवन्कर्मैवंप्रेरितंत्वया । अजामिलेनविप्रेण त्यक्त्वा वर्णाश्रमोदितम्

किं न पापं कृतं स्वामिन्सोऽपि त्वन्नामकीर्तनात् ।

मुक्तोऽभूत्स्मरणादेव पाशहस्तैर्विमोचितः ॥ ४२ ॥

सर्वेऽप्युपाया देवेशकीर्तितास्तवदर्शने । त्वयि दृष्टे हि भिद्यन्तेसंशयाहृदिसंस्थिताः

निःसंशयो भवेत्सद्यः पापपुञ्जक्षयो ध्रुवम् । त्वमेव मा पापं दीनमनुगृह्णीष्वमांविभो

निश्चितानि त्वया देव ! गर्भस्थस्य च यानि मे ।
तैरेव मे जनिर्जातु याचे त्वां केवलं त्विदम् ॥ ४५ ॥
तिरश्चो मुक्तिदा मूर्तिः स्थिता ते याऽत्र तांपुनः ।
अनेन चक्षुषा पश्यामीश! नाऽन्यत्प्रयोजनम् ॥ ४६ ॥

कृताञ्जलिपुटोराजा स्तुत्वैवं मधुसूदनम् । पुनर्ननाम धरणीपृष्ठे साऽश्रुविलोचनः ॥
ततोऽन्तरिक्षगावाणीसामसुस्वरभाषिणी । उच्चचारनभोमध्येइन्द्रद्युम्नस्यशृण्वतः
माचिन्तांव्रजभूपाल! व्रजिष्येत्वद्दृशोःपथम् । पैतामहस्वचःप्राहनारदोयत्कुरुष्वतत्
तच्छ्रुत्वा दिव्यवचनं नारदस्य च भाषितम् । श्रद्दधेवाजिमेधाय भगवत्प्रीतिकारकः
नारदं च पुनः प्राह हर्षगद्गदया गिरा । मुने त्वया'यदादिष्टं चतुर्मुखनिदेशतः ॥५१॥
अशरीरा त्वियंवाणीअनुजज्ञे तदेव हि । पितामहोजगन्नाथो भेदोवैनाऽनयोःक्वचित्
पद्मयोनेः सुतस्त्वं हि वचस्ते भगवद्वचः । तत्कर्तव्यं प्रयत्नेन यच्छ्रेय उपपादकम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्येजैमिनिऋषिसम्वादे
इन्द्रद्युम्नस्यशोकनाशोनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

आद्यमूर्तिनृसिंहस्थापनायराजोद्योगवर्णनम्

जैमिनिरुवाच ।

नृपं सुमनसं दृष्ट्वा श्रद्दधानं महाक्रतौ । उवाच परमप्रीत्या नारदो लोकहर्षणः ॥
व्यवसाये सुकृतिनां देवायान्तिसहायताम् । तत्रोदाहरणं त्वं हि यत्सहायश्चतुर्मुखः
तदेहि यामस्तत्रैव नीलकण्ठस्य सन्निधौ । सर्वराक्षससंहारं सर्वविघ्ननिवारणम् ॥
स्थापयाम्यग्रतो राजन्नृसिंहं वारुणीमुखम् ।

अन्तर्हितो हि भगवान्प्रत्यक्षोऽसौ नृकेसरी ॥ ४ ॥

सन्निधावस्य यागस्तु फलातिशयवान्भवेत् । त्वमग्रतो गच्छशीघ्रं प्रासादंतत्रकारय
स्मरणान्मम चागत्यसुतो वै विश्वकर्मणः । प्रत्यङ्मुखं तुप्रासादंसतूर्णं घटयिष्यति
दक्षिणे नीलकण्ठस्य यो महांश्चन्दनद्रुमः । धनुः शतान्तरे राजंश्चिररूढस्तु तिष्ठति
तस्य पश्चिमदेशस्थंक्षेत्रं राजन्भविष्यति । वाजिमेधसहस्रेण तस्याऽग्रेयजतांभवान्
गच्छत्वमहमत्रैवस्थास्यामिदिनपञ्चकम् । आराध्यैनंदिव्यसिंहं ज्योतीरूपमनन्तकम्
प्रत्यर्चायां प्रतिष्ठाप्यप्राणेन्द्रियमनोयुतम् । दीपाद्दीपंयथाराजन्नयिष्येशोभनाकृतिम्
नारदस्येति वचनं प्रतिश्रुत्य नृपोत्तमः । जगाम तत्र वेगेन चन्दनद्रुमसन्निधिम् ॥११
तत्राऽपश्यत्सुघटकंशिल्पशास्त्रविशारदम् । नारदस्याऽऽज्ञया प्राप्तंपुत्रं वैदेवशिल्पिनः

मनुष्यरूपमास्थाय शस्त्रसूत्रधरं स्थितम् ।
राजानं स तु दृष्ट्वा वै चिकीर्षन्तं सुरालयम् ॥ १३ ॥

कृताञ्जलिपुटः प्रोचेदेवाहंशिल्पशास्त्रवित् । नरसिंहालयं तेऽद्यघटयिष्यामिशोभनम्

राजाऽपि तमुवाचेदं प्रहसन्भो द्विजोत्तमाः ! ॥ १४ ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

न शिल्पीत्वंहिसामान्यःशिल्पशास्त्रप्रणेतृकः । कथितो नारदेनैवत्वष्टुःपुत्रो महायशाः
निर्जनेऽस्मिन्महारण्येनेतःपूर्वंजनाश्रयः । वयमद्यागताःशिल्पिन्सस्वच्छन्दःकिंनिमित्तकः
देवशिल्पी भवानेव विष्णोरमिततेजसः । सदाऽनुध्यायिनस्तस्य निदेशवशवर्तिनः
येन स्मृतस्त्वंमुनिनासएवाऽऽत्रागमिष्यति । प्रत्यर्चांनरसिंहस्यगृहीत्वातुदिनान्तरे
तदाशु घटयस्वाऽद्य सप्राकारं सतोरणम् । प्रासादं नरसिंहस्य प्रतीचीवदनं शुभम्
तं पूजयित्वा विधिवन्नियोज्यघटनेनृपः । शिलासञ्चयकान्भृत्यान्बहुवित्तैरयोजयत्
चतुर्थे दिवसे विप्राःप्रासादोऽभूदनुत्तमः । बहुकालप्रसाध्योऽपिमहिम्नादेवशिल्पिनः
ततः प्रभाते विमले नित्यकर्मावसानतः । प्रतिष्ठाविधिसम्भारं गृहीत्वासपरिच्छदः
नारदागमनं प्रेक्ष्ययावत्तिष्ठति भूपतिः । तावच्छुश्रुविरे शङ्खा मृदङ्गा मुरजास्तथा ॥

गीतमङ्गलवाद्यानिघण्टानांकरिणांस्वनाः । तथा जयजयेत्युच्चैःशब्दाआकाशमण्डले

ताञ्छ्रुत्वाविस्मयापन्नाइन्द्रद्युम्नपुरोगमाः। राजानःश्रोतियाविप्रावैष्णवाश्चसहस्रशः

निराधारास्त्विमे शब्दा अद्भुतानि न संशयः।

विचारयन्तस्ते यावत्तावद्दक्षिणतो मरुत्॥ २६॥

गन्धान्वितद्विरेफौघशब्दिताःपुष्पवृष्टयः। आविर्भूतास्त्रिपथगावारिणार्द्रीकृताद्विजाः

तदनन्तरमेवाऽसौ नारदो ब्रह्मणः सुतः। तपः प्रभावनिर्व्यूढविमानवरशायिनीम्॥

रत्नचामरहस्ताभिर्दिव्यस्त्रीभिः सुशोभिताम्।

अलङ्कृतां बहुविधैर्मणिरत्नप्रसाधनैः॥ २९॥

दिव्यमाल्याम्बरधरां दिव्यगन्धानुलेपनाम्। रम्यांप्रतिष्ठितप्राणांघटितां विश्वकर्मणा

तेजोमण्डलसम्वीतां परितो हर्षदामपि। आदाय नरसिंहस्य प्रत्यर्चांप्रत्युपस्थितः

तां दृष्ट्वा हर्षिताःसर्वेराजाराजानुयायिनः। अन्तर्द्धानं गतो देवो नारदेनोद्धृतः किमु

मेनिरे हर्षितात्मानःप्रशशंसुश्च तं मुनिम्।

निरूप्य सन्निधिस्थां तु नरसिंहाकृतिं द्विजाः॥

आद्यमूर्तेर्नृसिंहस्य प्रतिमामथ मेनिरे॥ ३३॥

प्रत्युत्थायततोराजा प्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना। प्रदक्षिणीकृत्य हरिं जगामशिरसा महीम्

श्रद्धासम्पत्तियोग्येन सम्भारेण नृपाज्ञया।

प्रस्थापयामास मुनिः प्रासादं शुभलक्षणम्॥ ३५॥

प्रतिमां देवदेवस्य सुमुहूर्ते द्विजोत्तमाः। धरारमाभ्यां सहितां रत्नवेद्यां प्रतिष्ठिताम्

योगारूढतनुं राजा इन्द्रद्युम्नोऽथ तुष्टुवे॥ ३६॥

वैष्णवैर्ब्राह्मणैर्भूपैर्नारदेनच धीमता। गुह्योपनिषदैः स्मार्तैः स्तोत्रैःशास्त्रैर्मुदान्वितैः

इन्द्रद्युम्न उवाच

एकानेकस्थूलसूक्ष्माणुमूर्ते! व्योमातीत! व्योमरूपैकरूप!।

व्योमाकार! व्यापक! व्योमसंस्थ! व्योमारूढ! व्योमकेशाब्जयोने!॥

दुःखाम्भोधेस्त्राहि मां दिव्यसिंह! प्रादुर्भूतानेककोट्यर्कधामन्!।

नित्यासन्नो दूरसंस्थो न दूरो नाऽऽसन्नो वा बोध्यबोधात्मभाव!॥ ३८॥

ज्ञेयज्ञेयो ज्ञानगम्योऽप्यगम्यो मायातीतो मानमेयोऽनुमानात् ।
कृत्स्नस्याऽऽदिः कृत्स्नकर्त्ताऽनुमन्ता पाताहर्त्ता विश्वसाक्षिन्नमस्ते ॥४०
दुःखध्वंसस्यैकहेतुं न हेतुं भेत्तुं छेत्तुं संशयानग्रजातम् ।
ज्योतीरूप! ज्ञानरूप! प्रकाश! स्तोमव्यूहाकारनिर्माणहेतो !॥ ४१ ॥
त्वत्पादाब्जे भक्तिमग्र्यां सदा मे देहि स्वामिन्मूलभूतां चतुर्णाम् ।
श्रौतैः स्मार्तैर्नित्ययुक्ता जनास्ते दीनास्तिष्ठन्त्यत्र बद्धा भवाब्धौ ॥ ४२ ॥
अनन्तपादं बहुहस्तनेत्रमनन्तकर्णं ककुभौघवस्त्रम् ।
दिवानिशानाथसुकुण्डलाढ्यं नक्षत्रमालाकृतचारुहारम् ॥ ४३ ॥
त्वामद्भुतं दिव्यनृसिंहमूर्तिं भक्त्येष्टपूर्तिं शरणम्प्रपद्ये ।
यत्पादपद्मं हि पितामहस्य किरीटरत्नैर्विकचत्वमेति ॥ ४४ ॥
यदीयपादाब्जयुगान्तभूमौ लुठेच्छिरो यस्य हि पाञ्चभौतम् ।
तद्दिव्यपादं शिरसा वहन्ति सुरेन्द्रनार्यः खलु तं नमामि ॥ ४५ ॥
तद्दिव्यसिंहं हतपापसङ्घं पादाश्रितानां करुणाब्धिसिंहम् ।
पादाऽब्जसङ्घट्टविघट्टमानब्रह्माण्डभाण्डं प्रणमामि चण्डम् ॥ ४६ ॥
सटाच्छटाकम्पनशीर्यमाणघनौघविद्रावितपापसङ्घम् ।
चण्डाट्टहासान्तरिताब्दशब्दं त्रिलोकगर्भं नृहरिं नमामि ॥ ४७ ॥
नमस्ते नमस्ते नमस्तेऽद्य विष्णो! परित्राहि दीनानुकम्पिन्ननाथम् ।
भवन्तं समासाद्य मे देहबन्धो मुरारे ! न संसारकारागृहेऽस्तु ॥ ४८ ॥
हयमेधसहस्रान्ते यथा त्वां चर्मचक्षुषा । दिव्यरूपं प्रपश्यामितथाऽनुक्रोशाय प्रभो!
यथा चेज्यासहस्रं मे निर्विघ्नं तत्समाप्यते ।
यज्ञेशत्वत्प्रसादान्मे तथा सान्निध्यमस्तु ते ॥ ४९ ॥
कोट्यःपापराशानांक्षयंयान्तियथाप्रभो !। धर्मार्थकामाहस्तस्थानैषांचित्रंस्तुवन्तिये
मोक्षस्य भाजनं विष्णो ते नरा ये तवाऽऽश्रयाः ॥ ५१ ॥
स्तुत्वेत्थं दिव्यसिंहं तं भूपतिर्हृष्टमानसः ।

दण्डपातप्रणामेन जगाम धरणीं मुहुः ॥ ५२ ॥

जैमिनिरुवाच

क्षेत्रं तन्नरसिंहस्य ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । इन्द्रद्युम्नानुग्रहाय सर्वलोकहिताय च ॥५३॥
पश्यन्ति ये नृसिंहं तं शम्भुनासहसंस्थितम् । नदेहबन्धं तेविप्राःप्राप्नुवन्तिनसंशयः
मनसा वाञ्छितं यद्यत्प्राप्नुवन्ति ततोऽधिकम् ।
स्तोत्रेणाऽनेन ये दिव्यसिंहरूपं स्तुवन्ति वै ॥ ५५ ॥
सर्वकामप्रदो देवस्तस्य मुक्तिं प्रयच्छति । ज्येष्ठशुक्लद्वादशी या स्वातीनक्षत्रसंयुता
तस्यां प्रतिष्ठितः क्षेत्रे दिव्यसिंहोमहर्षिणा । सुतेनब्रह्मणःसाक्षात्तत्रपश्यन्तितं च ये
वाजिमेधसहस्रस्य फलं साग्रं लभन्ति ते । पञ्चामृतैर्वा क्षीरेण नारिकेलरसेन वा ॥
स्नापयन्ति नरा ये वै, अथवा गन्धवारिणा । पूजयित्वा महासिंहमुपचारैः सपायसैः
जपाकुसुममाल्यैश्च गन्धमाल्यैः सुशोभनैः । धूपदीपैः सकर्पूरैस्ताम्बूलैरतिशोभनैः
सुगीर्भिः स्तुतिपाठैश्च जयशब्दैस्तथोच्चकैः । प्रदक्षिणप्रणामैश्च दानैर्ब्राह्मणतर्पणैः
सन्तोष्य नरसिंहं तं ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥ ६१ ॥
वैशाखस्य चतुर्दश्यां सौरिवारेऽनिलर्क्षके । आद्यावतारः सिंहस्य प्रदोषसमयेद्विजाः
तस्यां सम्पूज्य विधिवन्नरसिंहंसमाहितः । जन्मकोटिसहस्रैस्तुपापराशिःसुसञ्चितः
दह्यते तत्क्षणादेव तूलराशिरिवाऽग्निना ॥ ६२ ॥
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा नमस्कृत्वा प्रणिपत्यचभक्तितः । स्तुत्वाविमुच्यतेपापैर्निर्मोकैनभुजङ्गवत्
न तस्यव्याधयःसन्तिन शोकानाऽऽधयस्तथा । सर्वान्कामानवाप्नोतिहयमेधफलंतथा
समीपे तस्य भो विप्रा यजनं दानमेव च । अन्यानि पुण्यकर्माणि कृतानिचसकृन्नरैः
कोटिकोटिगुणानि स्युर्नरसिंहप्रसादतः ॥ ६६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे नृसिंहमूर्तिप्रतिष्ठानांमःषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

राज्ञःइन्द्रद्युम्नस्यसहस्रहयमेधानुष्ठानवर्णनम्

मुनय ऊचुः

प्रतिष्ठिते नारसिंहे क्षेत्रे तस्मिन्नराधिपः । किं चकारमुने! ब्रूहि परं कौतूहलं तु तत्

जैमिनिरुवाच

इन्द्रादींस्त्रिदशान्सर्वान्न्यमन्त्रयत पूर्वतः । ततः स मन्त्रयामासऋषीन्विप्रान्सहस्रशः
अध्येतूंश्चतुरो वेदान्सषडङ्गपदक्रमैः । यज्ञविद्यासु कुशलान्मीमांसापरिनिष्ठितान् ॥
सभाष्यकल्पसूत्रैस्तु परिनिष्ठितकर्मिणः । अष्टादशसु विद्यासु कुशलान्धर्मकोविदान्
सदाचारावदातांश्च कुलीनान्सत्यवादिनः । वैष्णवांश्च विशेषेण मन्त्रयामाससादरम्

त्रैलोक्ये ये च राजानः सिद्धाः सप्तर्षयो द्विजाः ।
सच्छूद्रा वणिजो द्वीपपतयश्च निमन्त्रिताः ॥ ६ ॥
क्रोशद्वयमिता विप्राः सभाऽऽसीत्तस्य भूपतेः ।
पाषाणघटिता सोच्चा सुधयासानुलेपिता ॥ ७ ॥

क्वचिद्रत्नमयी भूमिःक्वचित्काञ्चननिर्मिता । स्फाटिकीराजतीचैवयथायोग्यंकृतस्थली
स्तम्भै रत्नमयैः प्रोच्चैर्दुकूलपरिवेष्टितैः । चारुचन्द्रातपाढ्या तुगन्धमाल्यैःसचामरैः
मुक्तादामान्तरस्थैश्च चारुवातायनाशुभा । कृष्णागुरुस्नेहसिक्ताश्रीखण्डसलिलोक्षिता
सर्वर्त्तुकुसुमाकीर्णाप्रान्तोपवनसम्वृता । वाप्यः स्फटिकसोपानाःपद्मकह्लारमण्डिताः
चक्रवाकैः प्लवैर्हंसैः सारसैर्मधुरस्वनैः । व्याप्तान्तराः स्वच्छशीतसुगन्धमधुराम्भसः॥
परितः शतशस्तस्याःसुखावतरणा द्विजाः । उपच्छायाविरचनाःशोभमानाःसमन्ततः
यज्ञशाला मरुत्तस्य यथाऽऽसीद्वोद्विजोत्तमाः ॥ तथेन्द्रद्युम्नभूपस्यरचिताविश्वकर्मणा
शुभेऽह्निशुभनक्षत्रेवासयित्वासभासदः । राज्ञः सिंहासनासीनान्दृष्ट्वाऽऽसीनानृषीनपि
सप्तसिद्धान्ब्रह्मर्षिगणान्बहुमूल्यकुथस्थितान् ।

देवान्काञ्चनपीठस्थान्यथायोग्यमथ द्विजान् ॥ १६ ॥
वरासनस्थानन्यांश्च यथादेशं सुखस्थितान् ।
मध्ये नृपाणां देवानामृषीणां च शचीपतिम् ॥ १७ ॥
साम्राज्यलक्ष्मणे स्वस्य रत्नसिंहासने स्थितम् ।
दिव्यैर्माल्यैस्तथा गन्धैर्वासोभिर्विष्टरादिभिः ॥ १८ ॥

पुरोधसा समं पूर्वमर्चयामास ऋद्धिमत् । विनीतो दीनवत्तस्य चक्रे पूजांतथानृपः ॥
आश्चर्यं मन्यतेऽस्यासौ त्रैलोक्येशोऽपितद्यथा । ततःसिद्धान्देवमुनीनचर्यन्निन्द्रवत्तदा
विस्मयं जनयामास कुबेरस्याप्यधिश्रियः । ततो देवान्समानर्च प्रभूतस्वस्वसम्पदः
उपचारैर्महीनाथः सम्यगव्यग्रमानसः । राज्ञः सम्पूजयामास राजयोग्यैःपरिच्छदैः ॥
तथा ते मेनिरे भूपा भवामः साम्प्रतं वयम् । सत्यं राज्यंकमात्प्राप्तंनेदृशश्चपरिच्छदः
आनर्च वैष्णवान्भूय उपचारैः समानयन् । शान्ता अपि यथा चित्रंमेनिरेविषयागमम्

ततो विप्रान्बाहुजातान्वैश्यान्मुनिपुरःसरम् ।
सम्यक्प्रपूजयामास सत्त्वोद्रिक्तो महीपतिः ॥ २० ॥

अन्यांश्च सचिवद्वारा पूजयित्वा ससंभ्रमः । हृष्टः स विनयान्नम्रःकृताञ्जलिपुटस्तथा
महेन्द्रमुच्चैराहेदं नारदेन पुरोधसा ॥ २७ ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

तव प्रसादाद्देवेश इच्छामीदं प्रसीद मे । क्रतुना हयमेधेन प्रयक्ष्ये यज्ञपूरुषम् ॥ २८॥
अनुजानीहि मां देव क्रतूनामीश्वरोभवान् । त्वदाज्ञापालकाःसर्वेत्रैलोक्येनिवसन्तिये
यावत्क्रतुसहस्रस्य संस्था च भवति प्रभो । तावत्त्वं त्रिदशैः सार्द्धंसदोमध्यगतोवस
यष्टुमिच्छामि देवेश! नाऽहंत्वत्पदलिप्सया । सर्वेषांवेत्सिदेवेश! मनोवृत्तिसदाप्रभो
युष्माकं पूर्वदृष्टोऽत्रवपुष्मान्माधवःप्रभुः । उपासनायांसोऽयंयोवालुकाभिस्तिरोदधे
तस्य भूयः प्रकाशार्थंवाजिमेधसहस्रकम् । करिष्येवचनादिन्द्रचतुरास्यस्यशासनात्
पुनः प्रकाशिते तस्मिञ्छ्रेयो वोऽपि भविष्यति ॥ ३३ ॥
इति विज्ञापिते राज्ञा महेन्द्रप्रमुखाः सुराः । अन्तर्द्धानोत्तरं या चश्रुत्वापूर्वसरस्वती

अशरीरां स्मरन्तस्तामिदं प्रोचुः प्रहर्षिताः ।
इन्द्रद्युम्न ! महात्माऽसि सत्यं सत्यव्रतो भुवि ॥ ३५ ॥
त्वच्चेष्टितं पुराऽस्माभिरन्वभावि भविष्यकम् ।
सहायास्ते भविष्यामः कार्ये त्रैलोक्यपावने ॥ ३६ ॥

स्रष्टा स जगतां यत्र उद्युक्तः स्वयमेव हि । अत्रैवोवाच भगवानस्माकमपि भूतले ॥
प्रविशंस्तदनुक्रोशवशाद्भूयः प्रकाशनम् । करिष्ये दारवं देहमित्येतत्परिनिष्ठितम् ॥
नाऽत्राऽस्माकं व्यलीकं तु नेन्द्रस्य च महीपते । अस्मद्धिष्ण्यसमुद्योगस्तव नः प्रीतिकारकः
सुखं यजस्व राजेन्द्र! वैकुण्ठं भक्तवत्सलम् । क्रतुना हयमेधेन सहस्रपरिवर्तिना ॥
दुराराध्यो हि भगवानस्माकं भक्तवत्सलः । वयमप्यत्र देवत्वं त्यक्त्वा भक्तिपरायणाः
आराधयामः क्षेत्रेऽस्मिन्विनीता नररूपिणः । प्रियं हि मानुषे लोके कर्म सिद्ध्यति वैकृतम्

जैमिनिरुवाच

इत्युक्ते त्रिदशैः सेन्द्रैः परितुष्टान्तरात्मना । आरम्भार्थं क्रतोराजा भगवन्तमपूजयत् ॥
उपचारसहस्रैस्तु यथावत्प्रतिपादितैः । ततः पितृगणाद्राजा निरूप्य श्रद्धयाऽन्वितः
सदोगृहगतान्विप्रान्याज्ञिकान्समलङ्कृतान् । कृत्वेष्टदेवं पुरतो वैकुण्ठं साऽग्निहोत्रकम्
आकाङ्क्षन्कल्पितं लग्नं सम्वृत्ते स्वस्तिवाचने । उपस्थितः सपत्नीकः शुद्धमाङ्गल्यवेषधृक्

स्वस्ति वाच्य द्विजाञ्छुद्धान्पुण्याहं वृद्धिकर्म च ।
ततः सम्भृतसम्भारो वरयामास ऋत्विजः ॥ ४७ ॥
वृतास्ते तु सपत्नीकं दीक्षयन्तो नृपोत्तमम् ।
विहृत्य दीक्षणायेष्टान्न्ययजन्सभ्यचोदिताः ॥ ४८ ॥

प्रणीय तं प्रज्वलन्तं वेद्यामाहवनीयकम् । त्रैलोक्यमङ्गलकरं किं साक्षाद्वैष्णवं महः ॥
सुप्रोक्षितं चाऽभिमन्त्र्य अनुज्ञाप्य दिगीश्वरान् । मुमुचुस्ते हयं मुख्यमङ्गेषु शुभलक्षणम्
ततः सदीक्षितो राजा वाग्यतो रौरवीं त्वचम् । अधिष्ठाय सदोमध्ये मृत्युञ्जय इवस्थितः
निमन्त्रितानां भुक्त्यर्थं चक्षुषा सन्दिदेश वै । सुराणां रत्नपात्राणि महार्घाणि नृपाज्ञया
सचिवः कारयामास भोजनाय समृद्धिमत् । शुद्धसौवर्णपात्राणि मुनीनां च महीक्षिताम्

द्विजानां भोजनार्थायनवानिप्रत्यहंद्विजाः। क्षत्रियाणांविशांविप्राराजतानिशुभानिच कांस्यनिर्मलपात्राणिशूद्राणांभोजनाय वै। अहन्यहनिपात्राणिभोजनान्तेद्विजोत्तमाः आकरेषु प्रपात्यन्तेप्रोच्छिष्टदलवर्जनैः। तत्र यज्ञोत्सवे ये वै भोजनाय निमन्त्रिताः तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च प्रपौत्राश्चैव सन्ततिः। नित्यं पञ्चरसान्नानि बहुमानपुरःसरम्

आहूतैर्भोजिता राज्ञ इन्द्रद्युम्नस्य शासनात्।

कुटुम्बवत्स्थितास्तत्रसंस्थायावन्महाक्रतोः ॥ ५८ ॥

यद्देशीया जनास्तेषामधिष्ठाता च तान्नृपः।

नृपाणामनुसन्धाता इन्द्रद्युम्नप्रयाचितः ॥ ५९ ॥

नारदः समदर्शी तु परोपकृतिलोलुपः। इन्द्रादीनां सुरेन्द्राणां देवर्षीणां नृपोत्तमः स्वयं नरपतिश्चर्यां चकार क्रतुपूर्त्तये। षड्विधान्यन्नपानानि संस्कृतानि द्विधा नरैः देवानां भोजने तत्र मन्त्रतन्त्रविशारदैः। मर्त्यानां नलविद्यायांकुशलैःसंस्कृतानि वै क्षुत्पिपासानभिज्ञा हि सुधाहारा दिवौकसः। तेषामपिअपूर्वत्वादाश्चर्यंतद्धिभोजनम् नराणां दुर्लभं मर्त्त्ये इन्द्रद्युम्नगृहेऽशनम्। इन्द्रद्युम्नस्य चेन्द्रस्यविशेषोमर्त्यवासिता अत्यद्भुतकरं ह्येतत्प्रत्यहं च नवं नवम्। सम्माननादरावृद्धिर्भोज्यस्य द्विजसत्तमाः ॥ अन्योन्यस्पर्द्धयैवात्र प्रवर्द्धन्ते परस्परम्। सुगन्धसुमनोमाल्यकस्तूर्यादिप्रलेपनम् ॥ चित्रसूक्ष्मदुकूलानि सोपधानासनानि च। रत्नपल्यङ्किकाशय्यारत्नदण्डप्रकीर्णकम् जातीलवङ्गकर्पूरैर्नागवल्लीदलानि च। मनोहराणि गीतानि नृत्यानि विविधानि च

भरतस्य मुनेः शिक्षापण्डितै रचितानि च।

स्वस्ववंशयशोऽभिज्ञाः शतशः सूतमागधाः ॥ ६६ ॥

एतान्यन्यानिवस्तूनिदुर्लभान्यपियानिवै। त्रिदशाश्चापिमर्त्याश्चान्वभुज्यन्तसुसादरम् एकतोऽन्यत्रचित्राणिनचहीनानिकुत्रचित्। पातालवासिनांचापिभोजनंवैसुधाधिकम् यद्भुक्त्वा नाऽनुवाञ्छन्ति पातालगमनंहि ते। पुराणियानिपातालेरत्नौघालोकितानिच विना सूर्यप्रकाशेन तादृशान्येव भूपतिः। ददौ तेषां निवासाय येषु पातालबुद्धयः ॥ सुखासीनाश्च क्रीडन्तो भुञ्जाना शेरतेमुदा। देवानामपि नान्यत्रभूमिस्पर्शनमस्तिवै

इन्द्रद्युम्नपुरे तत्र स्वर्गादपि मनोहरे। यदृच्छया सुखक्रीडासक्ता नो तत्यजुर्भुवम्
अभिलाषोपजातं तु सुखंस्वर्गंवदन्तिहि। अनिच्छयाऽपिभोविप्राःसुखंसर्वत्र तत्र वै

आदृत्य यत्नान्मन्यन्ते भोज्यन्ते सादरं नराः।
न याचितः कोऽपि जनः कुतो वा स्यात्पराङ्मुखः॥ ७७॥

राजाधिराजवेश्मानि जनानां स्वगृहैःसमम्। तदासीत्स्वगृहेतेषांनसदासर्वसम्भवः
तत्र यत्कामनातीतं तद्वस्तु सुलभं बहु। इत्थं प्रवर्तिते यज्ञे यज्ञेशप्रीतये मुदा॥ ७६॥
पृथिवी हृतसर्वस्वा वाजिमेधेऽस्य भूपतेः। या पूर्वं साभवद्भूयःस्वर्णवृष्टिसुभूषिता

इत्थं प्रवृत्ते लोकानां तत्र त्रैलोक्यवासिनाम्।
दानसम्मानभोज्यानां विधौ विधिवतोऽन्वहम्॥ ८१॥

अश्वमेधं प्रति जना जगुर्गाथाःपरस्परम्। नेदृग्यागस्यसम्भारोविधेःशास्त्रप्रचोदितः
इन्द्रद्युम्नस्य राजर्षेर्न भूतो नभविष्यति। नयाचितारोऽदातारोमिथोयत्रनिमन्त्रिताः
नकामभङ्गोयत्राऽऽसीद्देवानामपिभोद्विजाः। ईदृक्समृद्धिःक्रतुराट् प्रवृत्तोभूपतेस्तदा
अधिश्रद्धःसुसम्पन्नःपूर्वस्मादपरोऽभवत्। स्मृतिकाराःकल्पकारास्तथाशास्त्रप्रणेतृकाः
यज्ञानुष्ठानकुशलाः सदाचारावतंसकाः। अग्न्याधानाद्यवभृथप्रचारमनुपूर्वशः॥ ८६॥
क्रतुः सदस्यानुमते नृपतेःप्रीतयेद्विजाः। नमन्त्राःस्वरतोहीनावर्णतोवाऽपिकर्हिचित्
ये वै विधिविधातारस्ते वै कर्मप्रचारकाः। प्रायश्चित्तनिमित्तेनप्रायश्चित्तनिबन्धनात्

कर्मोपघातो नो तत्र योगिनः कर्मयोगिनः।
यत्र सप्तर्षयो दिव्याः सदस्याः क्रतुसाक्षिणः॥ ८६॥
प्रचारयन्ति कर्माणि गुणदोषविभागिनः।
याज्ञवल्क्यादयस्तेऽत्र मुनयस्त्वृत्विजो वृताः॥ ९०॥

सदोगतास्ते मुनयः परस्परकथान्तरे। वाकोवाक्यानि सूक्तानि गुह्योपनिषदानि च
गाथाः पौराणिकीर्विप्रा विष्णुभक्तिपुरःसराः। चरितानि हरेः सर्वकलमषौघहराणिच
तत्र सम्वर्तयामासुस्ते सभायां महीक्षितः। तस्य यज्ञेहविःप्राशुःप्रत्यक्षंवह्निमध्यगाः
मुदितास्त्रिदशा विप्रा महेन्द्रप्रमुखा मखे।

चिरप्रवासिनो देवा नाऽस्मरन्तामरावतीम् ॥ ९४ ॥
अमृतं हि हविस्तेषां कल्पितं ब्रह्मणा पुरा। तत्प्राश्यमुदितादेवावीर्यवन्तश्चिरायुषः
यागानुष्ठानविषयादन्यत्र विषयान्बहून्। इन्द्रद्युम्नेन रचितान्समस्तानुपभुञ्जते ॥९६
तत्र ये नागराजानः पातालतलवासिनः। ततोऽधिकान्मर्त्यलोके विषयानुपभुञ्जते ॥
पातालगमनं ते वै नेहन्ते मनसा ध्रुवम्। इत्थं प्रवर्तितो यज्ञस्त्रैलोक्यप्रीतिकारकः ॥
इन्द्रद्युम्नस्य नृपतेः क्षेत्रेऽस्मिन्पुरुषोत्तमे। जगदीशप्रसादाय पितामहनिदेशतः ॥९९॥
एकोनं क्रमतः संस्थामवाप पृथिवीपतिः।
सहस्रं हयमेधस्य यथावद्विधिचोदितम् ॥ १०० ॥
ततः साहस्रिके यज्ञे वाजिमेधे महीपतिः। दिनेदिने दिव्यगतिर्बभूव नृपतिस्तदा ॥
सुत्यायाः सप्तदिवसाद्या रात्रिरभवत्पुरा। तस्यास्तुरीयप्रहरेदध्यौसविष्णुमव्ययम्
ध्याने तस्मिन्ददर्शाऽसौ महाभाग्यवशान्नृपः।
प्रत्यक्षमिव स श्वेतद्वीपं स्फटिकनिर्मितम् ॥ १०३ ॥
समन्तात्परिवार्यैनं तिष्ठन्तं क्षीरसागरम्। महाकल्पद्रुमैः पुष्पगन्धामोदिदिगन्तरैः
फलपल्लववल्केषु बहिरन्तश्च सर्वशः। शङ्खचक्राङ्कितैः शुभ्रैः सर्वालङ्कारभूषितः ॥
महामञ्जिष्ठवर्णैश्च मूर्तिभिस्तैर्मुरद्विषः। तन्मध्ये घटितं दिव्यमणिभिर्मण्डपोत्तमम् ॥
मध्यस्थसूर्यवद्भासि रत्नसिंहासनोज्ज्वलम्।
क्षीराब्धिशीतकल्लोलमन्दवातमनोहरम् ॥ १०७ ॥
तन्मध्ये ददृशे देवं! शङ्खचक्रगदाधरम्। नीलजीमूतसङ्काशं वनमालाविभूषितम्॥
सर्वलावण्यभवनं सौन्दर्यश्रीनिकेतनम्। निर्भर्त्सयन्तं वपुषा पिनद्धं दिव्यभूषणम् ॥
दक्षपार्श्वे स्थितं तत्र अनन्तं धरणीधरम्। कोटिचन्द्रप्रतीकाशं हिमाद्रिसदृशप्रभम्
फणामुकुटविस्तारच्छत्रीभूतंमनोहरम्। मणिकुण्डलयुग्माङ्कं चारुनीलनिचोलकम्
हललाङ्गलशङ्खारिस्फुरद्बाहुचतुष्टयम्। हारकेयूरवलयमुद्रिकाभिरलङ्कृतम् ॥ ११२॥
मेखलाकटिसूत्राढ्यं दिव्यरत्नप्रसाधनम्। दिव्यहालक्षीवमूर्ति चारुहासं सुनेत्रकम् ॥
दक्षपार्श्वस्थितां तस्य लक्ष्मीं तां शुभलक्षणाम्।

वराभयाब्जहस्तां वै कुङ्कुमाभां सुलोचनाम् ॥ ११४ ॥
त्रैलोक्ययुवतीवृन्ददृष्टान्ताऽद्भुतविग्रहाम् । ददर्श पद्मासनगांलावण्याम्बुधिपुत्रिकाम्
पितामहंच ददृशे पुरतोऽस्यकृताञ्जलिम् । वामपार्श्वे स्थितंचक्रंनानामणिमयं विभोः
सनकाद्यैर्मुनीन्द्रैस्तं स्तूयमानं जगद्गुरुम् । दृष्ट्वा स्वप्ने सराजावैप्रहृष्टोद्विजसत्तमाः
अदृष्टपूर्वरूपं तं ज्योतिर्मयमनन्तकम् । तुष्टाव तत्र ध्यानस्थो हर्षगद्गदया गिरा ११८

इन्द्रद्युम्न उवाच

नमस्ते जगदाधार जगदात्मन्नमोऽस्तु ते । कैवल्यत्रिगुणातीत गुणाञ्जन नमोऽस्तुते
सुशुद्धनिर्मलज्ञानस्वरूपाय नमोऽस्तु ते । शब्दब्रह्माभिधानाय जगद्रूपाय ते नमः ॥
संसारपतितश्रान्तदुःखध्वंस! नमोऽस्तुते । दुर्भेद्यहृदयग्रन्थिभेदकाय नमोऽस्तु ते ॥
द्विसप्तभुवनागारमूलस्तम्भाय ते नमः । ब्रह्माण्डकोटिघटनाशिल्पिने चक्रिणे नमः ॥
करुणाऽमृतपाथोधिसुधाधाम्ने नमो नमः । दीनोद्धारैकगुह्याय कृपापाथोधये नमः ॥
प्रकाशकानां सूर्यादिज्योतिषां ज्योतिषे नमः ।
प्रतिस्वस्वनदीप्ताय अन्तःपापाग्नयेनमः ॥ १२४ ॥
पावकाय पवित्राय पवित्राणां नमो नमः । गरिष्ठाय वरिष्ठाय द्राघिष्ठाय नमो नमः ॥
नेदिष्ठाय दविष्ठाय क्षोदिष्ठाय नमो नमः । वरेण्याय सुपुण्याय नारायण नमोऽस्तु ते
परित्राहि जगन्नाथ! दीनबन्धो! नमोऽस्तु ते ।
निस्तीर्णोऽहं भवाम्भोधिं प्राप्य त्वां तरणिं सुखाम् ॥ १२७ ॥
त्वयि दृष्टे रमानाथ क्लेशा व्यपगता मम । चिदानन्दस्वरूपंत्वांप्राप्तानांदुःखसंक्षयः
ध्रुवं नाथ समुत्पन्नपरमानन्ददेहेतुकम् । त्राहि त्राहि भवाम्भोधिमग्नं मांदीनचेतसम्
मध्याह्नाऽर्कोदिते व्योम्नि कुतः सन्तमसोदयः ।
ध्यानस्थितः स्तुवन्नेवं प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥ १३० ॥
ध्यानावसानेसपुनःस्वयंजाग्रदबुध्यत । स्वप्नान्तइन्द्रद्युम्नोऽपिसस्माराऽऽत्मानमात्मना
अत्यद्भुतमिदं स्वप्नं दृष्ट्वा च नृपकुञ्जरः । मेने कृतार्थमात्मानं हयमेधक्रतोस्तथा ॥
सहस्रं सफलं चैव [illegible]मायं समुपस्थितम् । न हि देवर्षिवचनं वृथाभवतिकर्हिचित्

प्रत्यक्षं मे कथं नाथः स्वयमत्र भविष्यति ।
इति चिन्ताऽऽकुलो रात्रिशेषं नीत्वा विशाम्पतिः ॥ १३४ ॥
शशंस नारदस्याऽग्रे यथा स्वप्नोऽन्वभूयत । स चापि नारदःप्राह शोकस्तेविगतोनृप
अरुणोदयकाले हि भगवन्तं ददर्श यत् । दशाहात्फलदःस्वप्नस्तस्मिन्कालेनृपोत्तम
क्रत्वन्ते भगवानत्र प्रत्यक्षस्ते भविष्यति । यदाह मद्गिरा त्वां हि चराचरगुरुर्विधिः
सोऽपि त्वया जगत्स्रष्टा स्वप्नेऽस्मिन्नवलोकितः । तदनुष्ठीयतांयज्ञःपराग्रेनप्रकाशय
स्वप्नोऽयं नृपशार्दूल! दुर्बोधाचरितोहरेः । किन्तुभाग्यवतस्त्वेवस्वप्नस्तादृक्प्रजायते

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
सहस्रयज्ञेस्वप्नेभगवद्दर्शनवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

अक्षयवटोत्पत्तिवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

ततः प्रववृते सुत्या नृपतेर्वाजिमेधिका । तस्यां त्रैलोक्यमभवदेकसद्मनिभं द्विजाः ॥
शास्त्रैः स्तोत्रैर्दिवस्पृग्भिर्वर्णक्रमसमुज्ज्वलैः ।
यथापदस्वरन्यासैरन्ये शब्दास्तिरोहिताः ॥ २ ॥
दीनेभ्योऽवारितंतत्र दीयन्तेवाञ्छितानि वै । नटनर्त्तकसूतानां साऽभूत्कल्पद्रुमोपमा
तन्मध्येऽवभृथे स्नातुं कृता यत्रोपकारिका । दक्षिणे तटभूदेशे विल्वेश्वरसमीपतः ॥
नियुक्ताः सेवकाराज्ञा ससम्भ्रममुपस्थिताः । न्यवेदयन्त नृपतिं कृताञ्जलिपुटाद्विजाः
देव दृष्टो महान्वृक्षस्तटभूमौ महोदधेः । प्रविष्टाग्रसमुद्रान्तःकल्लोलप्लवमूलकः ॥६
मञ्जिष्ठवर्णःसर्वत्रशङ्खचक्राङ्कितः प्लवन् । स्नानवेश्मसमीपेऽसौदृष्टोऽस्माभिःपरोऽद्भुतः

न दृष्टपूर्वो वृक्षोऽयमुद्यत्सूर्यनिभोऽङ्शुना । गन्धेनवासयन्सर्वां तटभूमिं सुगन्धिना
द्रुमः साधारणो नाऽयंलक्ष्यते देवभूरुहः । कश्चिद्देवस्तरुर्व्याजादागतो लक्ष्यतेध्रुवम्

नियुक्तानां वचः श्रुत्वा राजा नारदमब्रवीत् ।
तत्किं निमित्तं यद्द दृष्टं तरुश्रेष्ठं वदन्ति ते ॥ १० ॥

नारदः प्रहसन्वाक्यमुवाच नृपसत्तमम् । पूर्णाहुतिः समाप्नोतु यथा स्यात्सफलःक्रतुः
उपस्थितंते तद्भाग्यंस्वप्नेयद्दृष्टवान्पुरा । श्वेतद्वीपे विश्वमूर्तिर्दृष्टो योविष्णुरव्ययः
तदङ्गस्खलितं रोम तरुत्वमुपपद्यते । अंशावतारः स्थास्नुर्यः पृथिव्यां परमेष्ठिनः ॥
तद्रूपावतरं यातिभगवान्भक्तवत्सलः । द्रुमो ह्यपौरुषो योऽसौभाजनंनाऽस्य दर्शने
त्वामृते पुरुषव्याघ्र पृथिव्यां नृपसत्तम । त्वद्भाग्यवशतःसर्वलोकानां नयनाऽतिथिः
भविष्यति महाराज सर्वकल्मषनाशनः । समाप्याऽवभृथस्नानं तटान्ते सरिताम्पतेः
उत्सवं सुमहत्कृत्वा कृतकौतुकमङ्गलम् । महावेद्यां स्थापयात्र यज्ञेशं तरुरूपिणम् ॥
विचार्येत्थंमुदायुक्तौ तावुभौनृपनारदौ । सुसमृद्धौतत्र यातौ यत्राऽसौ भगवद्द्रुमः
तंदृष्ट्वाःहर्षिताःसर्वेब्रह्मसाक्षादुपस्थितम् । मेनिरे जन्मसाफल्यं जीवन्मुक्ता महोदयाः
इन्द्रद्युम्नोऽपिनृपतिर्ममज्जाऽमृतसागरे । स्वप्ने दृष्ट्वा जगन्नाथं यथाऽसौ भगवत्प्रियः
तथा ददर्श तं वृक्षं चतुःशाखं चतुर्भुजम् । स्वकं श्रमं मन्यमानः सफलं नृपसत्तमः
जहौशोकं नीलमणिमाधवान्तर्धिजं द्विजाः । पुनः पुनः प्रणम्यैनं हर्षाश्रुनयनो नृपः
द्विजैराहारयामास तरुं कल्लोललोलितम् । शङ्खकाहालमुरजढक्कापटहनिःस्वनैः ॥२३
गीतवादित्रनिनदैर्जयशब्दैःसहस्रशः । सुगन्धिपुष्पाञ्जलिभिराकाशात्पतितैर्मुहुः ॥२४
परितोधूपपात्रैश्च कृष्णागुरुसुधूपितैः । वेश्याभिर्यौवनोन्मत्तसुरूपाभिः प्रचालितैः ॥
रत्नदण्डप्रकीर्णैश्च वीज्यमानं समन्ततः । पताकाभिर्दिव्यपट्टदुकूलाभिः सुशोभितम्
राजाधिराजवृन्दैश्च तुरङ्गैः पत्तिभिर्वृतम् । मागधैर्वन्द्यमानं तु स्तूयमानं महर्षिभिः ॥

ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैश्चैव विद्वद्भिः श्रोत्रियैस्तथा ।
राजन्यैर्वैश्यकुलजैः सच्छूद्रैःपरिचारितम् ॥ २८ ॥

स्तोत्रैर्बहुविधैः स्मार्तैःपौराणिकैस्तथा । स्तूयमानं तरुं विष्णोर्भूलोकेपरिवेष्टितम्

स्रग्गन्धालङ्कृतंदिव्यंमहावेदीं विनिन्यतुः। वितानवरचित्राढ्यांवेष्टितायांनिरन्तरम्
वेद्यां तं स्थापयामासुरिन्द्रद्युम्नस्य शासनात्। वचसा नारदस्यैनंपूजयामासपार्थिवः
सहस्रैरुपचाराणां दिव्यरूपैर्नृपोत्तमः। पूजावसाने पप्रच्छ नारदं मुनिसत्तमम् ॥३२

कीदृश्यः प्रतिमा विष्णोर्घटयिष्यति कः पुनः।
तच्छ्रुत्वा तं मुनिः प्राह अचिन्त्यमहिमागुरुः ॥ ३३ ॥

को वेद तस्यचेष्टाम्वैसर्वलोकोत्तरां नृप। स्रष्टायोजगतां तस्याऽप्येषासंशयगोचरा
विचारयन्तौ तावित्थं यावन्नारदपार्थिवौ। अशरीरा ततोवाणी शुश्रुवेचाऽन्तरिक्षतः
तत्र विस्मयमानानां सर्वेषामेव शृण्वताम्। अपौरुषेयो भगवानविचारपथे स्थितः
सुगुप्तायां महावेद्यांस्वयंसोऽवतरिष्यति। प्रच्छाद्यतां दिनान्येषायावत्पञ्चदशानिवै
उपस्थितोऽयं यो वृद्धःशास्त्रपाणिस्तु वर्द्धकिः। एनमन्तःप्रवेश्यैवद्वारंबध्नन्तुयत्नतः
बहिर्वाद्यानि कुर्वन्तु यावत्तुघटनाभवेत्। श्रुतो हि घटनाशब्दोबाधिर्यान्धत्वदायकः
नरके वसतिश्चैव कुर्यात्सन्ताननाशनम्। नान्तः प्रवेशनं कुर्यान्न पश्येच्च कदाचन ॥

नियुक्तादन्यः पश्येच्चेद्राज्ञो राष्ट्रस्य चैव ह।
द्रष्टुश्चाऽपि महाभीतिरन्धता चक्षुषोर्युगे ॥ ४१ ॥

तस्मान्नावेक्षणंकार्यंयावत्प्रतिमनिर्मितिः। निर्व्यूढस्तुस्वयंदेवः कृत्यान्तेतुवदिष्यति
यद्यत्कार्यं प्रयत्नेनसर्वलोकसुखावहम्। तच्छ्रुत्वानारदाद्यास्तेयथोक्तंविष्णुनास्वयम्

चिकीर्षन्ति तथा कर्त्तुं तत्राऽऽयातश्च वर्द्धकिः।
प्रोवाच नृपतिं सोऽथ स्वप्ने दृष्टास्तु यास्त्वया ॥ ४४ ॥

ताएवाऽहंघटिष्यामिदारुणादिव्यरूपिणा। इत्युक्त्वाऽन्तर्दधेवेद्यांवृद्धवर्द्धकिरूपधृक्

वञ्चनार्थं मनुष्याणां साक्षान्नारायणो विभुः ॥ ४६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे श्रीपुरुषोत्तक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
मूर्तिघटनार्थंवृद्धवर्द्धकिसमागमोनामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

विष्णोर्दारुमयमूर्त्याविर्भावर्णनम्

जैमिनिरुवाच

ततः स पृथिवीपालस्तथा कृत्वाऽन्तरिक्षगा। यदुवाच गिरां देवी तद्वत्परिचचारह
एवं दिनेदिने याते दिव्यगन्धोऽनुभूयते। पारिजातप्रसूनानां वृष्टिर्मर्त्येषु दुर्लभा॥
दिव्यसङ्गीतनादश्च गीतानि रुचिराणि च। स्वर्गङ्गाजलवृष्टिश्चसूक्ष्मविन्दुसुशोभना
ऐरावतादिनागानां मदगन्धो वनद्विपैः। दुःसहः सर्वभूतानां सुखकार्यनुभूयते॥४॥
यज्ञार्थमागतादेवास्ते सर्वे विगतज्वराः। आविर्भूतं हरिं दृष्ट्वा उपासाञ्चक्रिरेद्विजाः

यथा हि माधवं पूर्वं तथा तं विष्णुशाखिनम्।
उपासनासु देवानां दिव्यचिह्नानि जज्ञिरे॥ ६॥

निर्ववाह स्वयं देवः क्रमात्पञ्चदशे दिने। चतुर्मूर्तिः स भगवान्यथा पूर्वं मयोदितः
तादृगाविर्बभूवाऽसौ युष्माकं वर्णितः पुरा। दिव्यसिंहासनगतो बलभद्रसुदर्शनैः॥
शङ्खचक्रगदापद्मलसद्बाहुर्जनार्दनः। गदामुसलचक्राब्जं धारयन्पन्नगाकृतिः॥ ६॥
छत्राकृतिफणासप्तमुकुटोज्ज्वलकुण्डलः। सुभद्रा चारुवदना वराब्जाभयधारिणी॥
लक्ष्मीःप्रादुर्बभूवेयं सर्वचैतन्यरूपिणी। इयं कृष्णावतारे हि रोहिणीगर्भसम्भवा॥
बलभद्राकृतिर्जाता बलरूपस्य चिन्तनात्। क्षणं न सहतेसाहिमोक्तुंलीलावतारिणम्

न भेदोऽस्तीह को विप्राः कृष्णस्य च बलस्य च।
एकगर्भप्रसूतत्वाद्व्यवहारोऽथ लौकिकः॥ १३॥

भगिनी बलदेवस्येत्येषा पौराणिकी कथा। पुंरूपे स्त्रीस्वरूपेण लक्ष्मीःसर्वत्रतिष्ठति
पुन्नाम्ना भगवान्विष्णुःस्त्रीनाम्नाकमलालया। देवतिर्यङ्मनुष्यादौविद्यतेनतयोःपरम्
कोह्यन्यः पुण्डरीकाक्षाद्भुवनानि चतुर्दश। धारयेत्तु फणाग्रेण सोऽनन्तोबलसञ्ज्ञितः
तस्य शक्तिस्वरूपेयं भगिनीत्युप्रकीर्तिता। सुदर्शनंतुयच्चक्रंसदाविष्णोःकरेस्थितम्

शाखाग्रस्तम्भमध्यस्थं तद्रूपं तत्तुरीयकम् । एवं तु मूर्त्तयस्तेन चतस्रो वैं प्रकाशिताः
निर्वृ त्ते भगवद्रूपे चतुर्द्धा दिव्यरूपिणि । लोकानामुपंकाराय पुनराहाऽन्तरिक्षगा १६
पट्टैराच्छाद्य सुदृढंनृपते प्रतिमास्त्विमाः । स्वं स्वं वर्णंप्रापयाऽऽशुवर्णकैश्चित्रकर्मणा
नीलाभ्रश्यामलं विष्णुं शङ्खेन्दुधवलं बलम् । रक्तं सुदर्शनंचक्रंसुभद्रांकुङ्कुमारुणाम्
नानालङ्कारुरुचिरां नानाभङ्गिविभागशः । अमी दारुस्वरूपेण दृष्टाः पापाय हेतवे ॥
गोपनीयाः प्रयत्नेन पट्टनिर्यासवल्कलैः । तस्मात्प्रथममेवैतांस्तरोरेवाऽस्य वल्कलैः
शिल्पिभिःकर्मकुशलैर्दृढमाच्छादयाऽग्रतः । वर्षे वर्षेचसंस्कार्याःपूर्वसंस्कारमोचनात्
ऋते वल्कललेपं तु स तु दिव्यश्चिरन्तनः । प्रमादाद्य इमं लेपमपनीयेत कश्चन ॥२५
दुर्भिक्षं मरकंराष्ट्रे सन्ततिश्चाऽस्यहीयते । नेक्षितव्यास्त्वयाराजन्कदाचिद्पवारणाः
मनुष्यैश्चापिराजेन्द्र! दृष्टाः स्युर्भयहेतवः । तस्मात्सचित्रा द्रष्टव्यावहुलेपविलेपिताः
सुचित्रं पुण्डरीकाक्षं सविलासं सविभ्रमम् । दृष्ट्वा विमुच्यतेपापैःकल्पकोटिसमुद्भवैः
सुचित्रान्कुरुराजेन्द्र! चित्रान्कामानवाप्स्यति । आविर्वभूवभगवांस्तवानुग्रहकाम्यया
तव प्रसादाज्जन्तूनां चतुर्वर्गं प्रसादास्यति । नीलाद्रौकल्पवृक्षस्यवायव्यांशतहस्ततः
प्रदेशे सुमहत्स्थाने प्रासादं सुदृढायतम् । उत्तरे नरसिंहस्य सहस्रकरमुच्छ्रितम् ॥

कारयित्वा प्रतिष्ठाप्य तत्रैनं विनिवेशय ।

पुरा स्थितं पर्वतेऽस्मिन्योऽभ्यर्चयति माधवम् ॥ ३२ ॥

नाम्ना विश्वावसुर्नाम शवरो वैष्णवोत्तमः । पुरोध्वंसः सख्यमासीत्तेन सार्द्धं पुरा चते
तयोः सन्ततिरेवाऽस्य लेपसंस्कारकर्मणि । नियुज्यतां महाराजभविष्यत्सूत्सवेषुच
विररामैतदाभाष्य सा तु दिव्या सरस्वती । तयोपदिष्टमाकर्ण्य प्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना
वेष्टनं मोचयामास महावेद्या नृपोत्तमः । ददृशुस्ते तदा सर्वे रत्नसिंहासने स्थितम् ॥
रामं कृष्णं सुभद्रां च वासुदेवं सुदर्शनम् । यथोपदिष्टलेप्यादिसंस्कारैरुचिराकृतिम्
कृपया स्मेरवदनमुन्नतायतवक्षसम् । दीनानामुद्धृतौ नाथं प्रलम्बभुजपञ्जरम् ॥ ३८ ॥
प्रवुद्धपुण्डरीकाक्षं हासशोणायताधरम् । पश्यतां दृष्टिमात्रेण हर्तारं पापसञ्चयम् ॥
पद्मासनस्थितं कृष्णं दिव्यालङ्कारभूषितम् । स्वतेजसा परिवृतं दारुदेहेऽपिनिर्मलम्

नीलजीमूतसङ्काशं सर्वसन्तापनाशनम् । ददर्शबलदेवं च साट्टहासमुखाम्बुजम् ॥४१॥
फणामण्डलविस्तीर्णं वारुणीघूर्णितेक्षणम् । प्रोत्थितं नागराजानंपीनोन्नतसुवक्षसम्
किञ्चिन्नतं पृष्ठदेशे कुण्डलीकृतविग्रहम् । अग्रसम्फुल्लककुभं कैलासशिखरं यथा ॥४३
हलचक्राब्जमुसलधारिणं वनमालिनम् । हारकुण्डलकेयूरकिरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥
तयोर्मध्ये स्थितां लक्ष्मीं सुभद्रां भद्ररूपिणीम् ॥ ४५ ॥
सर्वदेवारणीं पापसागरोत्तारकारिणीम् । विकचाम्भोजवदनां वराब्जाभयधारिणीम्
रूपलावण्यवसतिं शोभमानां प्रसाधनैः । कुङ्कुमारुणदेहांतांसाक्षाल्लक्ष्मीमिवाऽपराम्
ददर्श विष्णोर्वामस्थां चक्रशाखाग्रनिर्मिताम् ।
वालार्कसदृशीं तीक्ष्णधारां तेजोमयीं द्विजाः !॥ ४८ ॥
तां दृष्ट्वानन्दपाथोधिनिमग्नः पृथिवीपतिः । कर्तव्यमूढः स्वतनौ स्वयं न प्रबभूव ह
दरमीलितनेत्रःसन्सृजन्बाष्पाम्बुकेवलम् । कृताञ्जलिपुटस्तस्थौस्थूणाकारोनृपोत्तमः
उवाच तं मुनिवरः स्मितवक्त्रः क्षितीश्वरम् । यदर्थं श्रममापन्नस्तत्साम्प्रतमभूत्तव
प्रत्यक्षं नृपशार्दूल! एकस्त्वंभाग्यवान्भुवि । अमुं पश्य जगन्नाथं पुण्डरीकायतेक्षणम्
भक्तानुग्रहपाथोधिं सर्वज्ञाननिधिं हरिम् । यं द्रष्टुं योगिनो नित्यं यतन्ति यतमानसाः
अवधानेन महता क्षणं पश्यन्ति मानवाः । सोऽयं दारुमयं देहं समास्थाय जनार्दनः
अनुग्रहीतुं त्वां भूप! प्रत्यक्षत्वमुपागतः । भजैनं धरणीनाथं स्तुहि कारुण्यसागरम्
ददाति संस्तुतः कामान्सर्वान्नृप ! मनोगतान् ॥ ५६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
विष्णोर्दारुमूर्त्याविर्भावोनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

विंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नकृताभगवत्स्तुतिस्तस्यनाम्नासरोवरोत्पत्तिवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

इत्थं प्रबोधितस्तेन नारदेन क्षितीश्वरः । तुष्टाव जगतांनाथं वचोभिः करुणान्वित

इन्द्रद्युम्न उवाच

त्वदङ्घ्रिपाथोजयुगं मुरारे! नोपासितं जन्मसु पूर्वजेषु ।
तत्कर्मणां दारुणपाकभाजं दीनं परित्राहि कृपाम्बुधे! माम् ॥ २ ॥
क्व निर्मलं त्वच्चरणाब्जयुग्मं विरिञ्चिरुद्रेन्द्रकिरीटमग्नम् ।
काऽहं कुदीनः शकृदस्रमांसमूत्रास्थिसङ्घैः पिहितस्त्वचा वै ॥ ३ ॥
असारसंसारपरिभ्रमेण श्रमातुरस्त्वां कथमीश! जाने ।
जानन्ति ते त्वां खलु देवदेव येषां भवो दुःखभवप्रकाशः ॥ ४ ॥
प्रभो मया दुःखमनेकजन्मपापार्जितं भुक्तमनेकभावम् ।
शुभार्जितो यः सुखलेशभावो निदर्शनं यन्मधुपृक्ततिक्ते ॥ ५ ॥
यदेव सौख्यानुभवाय देव! कर्मार्जितो मे विषयोपभोगः ।
स एव दुःखं परिणामतो मे न मद्विधो दुःखिजनोऽस्ति चाऽन्यः ॥ ६ ॥
विभो! यदि त्वां मनसाऽपि पूर्वमुपास्तमन्यद्विषयेक्षणोऽहम् ।
कथं तदालप्स्यमनेकजन्म पुनः पुनर्भोग्यमशेषदुःखम् ॥ ७ ॥
विभुत्वदासत्वपितृत्वपुत्रप्रियत्वमातृत्वधनित्वभावैः ।
वध्यत्वहिंस्रत्वपतित्वजायाभावैश्च तिर्यक्त्वसुरादिभावैः ॥ ८ ॥
नीचोर्द्ध्वभावं बहुशः सकृद्वा भवाङ्गणेऽस्मिँल्लुठतानुभूतम् ।
न वा मुरारे तव पादपद्मदूरीभवस्येष्टफलं हि चैतत् ॥ ९ ॥
कोशं बलं चैतदशेषपृथ्वीधनैर्वृतं यौवनरूपरूप्यः ।

मनोऽनुकूलाः शतशः स्त्रियश्च निष्कण्टकं मे नृपमण्डलं च ॥ १० ॥
साम्राज्यता चाऽपि भरो महान्मे त्वज्ज्ञानहीनस्य पशोरिवाऽयम् ।
भारावतारं कुरु मे कृपाब्धे! सदैव तत्रोदित खेदयोगः ॥ ११ ॥
दीनानुकम्पिन्! करिणो विमुक्तिः कृता विभो त्वत्स्मृतिमात्रकेण ।
भ्रान्तं घटीयन्त्रवदत्र नाथ! मां त्रातुमर्हस्यनुकम्पिभावात् ॥ १२ ॥
न मे त्वदन्यः खलु बन्धुरत्र प्रवाहविभ्रष्टतरुस्वभावे ।
पापीयसी बुद्धिरुपेतभावा स्नेहानुबन्धा विषयेऽभिभेद्या ॥ १३ ॥
अहर्निशं मे तव पादपद्मान्माऽपैतु मत्प्रार्थितमेतदेव ।
त्वां सच्चिदानन्दसुपूर्णसिन्धुं प्राप्तास्तु ये जन्मसहस्रभाग्यैः ॥ १४ ॥
किं ते हि पश्यन्ति लवैकसौख्यमनेकदुःखं विषयेन्द्रजालम् ।
क्व बन्धनं कर्मभिरिष्टलेशदुःखाकरग्रन्थिशतैरभेद्यम् ॥ १५ ॥
अनन्तमाद्यन्तविहीनमेकमानन्ददं त्वत्पदपङ्कजं क्व ।
मायाम्बुधौ ते ममताभ्रमौ च कुकर्मनक्रायितगर्तमध्ये ॥ १६ ॥
निराश्रयं मे पतितं विलासकटाक्षपातेन नयाऽद्य तीरम् ।
स्वकार्यसंसाधनयाश्रितानां सम्पादनायेष्टविधेरजस्रम् ॥ १७ ॥
भ्राम्यन्तमात्मीयहितं विसृज्य मां त्राहि मूढं सहजानुकम्पिन् !।
क्षुद्राय कार्याय बहु भ्रमन्तमप्राप्य मूलं परमेश्वरं त्वाम् ॥ १८ ॥
आयासपात्रं परमं सुदीनं मां त्राहि विष्णो जगदेकवन्द्य !।
वेदान्तवेद्याऽव्यय! विश्वनाथ! त्वमीशिषे हन्तुमघौघराशीन् ॥ १९ ॥
तं त्वां परित्यज्य सुखैकहेतुं क्षुद्राशयं मां परिपाहि विष्णो !।
प्रसुप्त एषोऽखिलभूतसङ्घश्चतुर्विधो यत्कृतमोहरात्रौ ॥ २० ॥
त्वज्ज्ञानभानूदयमेत्य चाऽन्ते प्रबोध्यते त्वां शरणं प्रपद्ये ।
त्वमेक एवाखिललोककर्त्ता फणासहस्रैः परिवीतमूर्तिः ॥ २१ ॥
पर्यायवृत्त्या बलिनांवरिष्ठ! त्वामीशितारं शरणं प्रपद्ये ।

यया सृजस्यत्सि जगन्ति नाथ वक्षःसरोजासनया स्वशक्त्या ॥ २२ ॥

तां भद्ररूपां जगदाश्रयां ते देवारणिं पादयुगे नतोऽस्मि ।

यदंशुजालप्रतिसृष्टमेतद्ब्रह्माण्डजालं करसङ्गि नाथ !॥ २३ ॥

सुदर्शनं दैत्यवलस्य हन्तृ चक्राभिधं त्वां प्रणतः सुदर्शनम् ।

स्तुत्वेत्थं नृपतिश्रेष्ठः साष्टाङ्गं प्रणनाम सः ॥ २४ ॥

परित्राहि जगन्नाथमग्नं संसारसागरे । अनाथवन्धो! कृपया दीनं मां तमसाकुलम्

नारद उवाच

जय जय नारायण अपारभवसागरोत्तारपरायण सनकसनन्दनसनातनप्रभृतियोगिवरविचिन्त्यमानदिव्यतत्त्व स्वामायाविलसिताध्यासपरिणमिताशेषभूततत्त्वत्रितत्व त्रिदण्डधरत्रिणाचिकेतत्रिमधुत्रिसुपर्णोपगीयमानदिव्यज्ञानच्छन्दोमय स्वासनसुपर्णप्रिय भक्तप्रिय भक्तजनैकवत्सल स्वमायाजालव्यवहितस्वरूप विश्वरूप विश्वप्रकाश विश्वतोमुख विश्वतोक्षि विश्वतः श्रवण विश्वतः पादशिरोग्रीव विश्वहस्तनासारसनात्वक्केशलोमलिङ्ग सर्वलोकात्मक सर्वलोकसुखावह सर्वलोकोपकारक सर्वलोकनमस्कृत लीलाविलसितकोटिपद्मोद्भवरुद्रेन्द्रमरुदश्विसाध्यसिद्धगणप्रणताशेषसुरासुरत्रिभुवनगुरो न कस्याऽपि ज्ञानगोचर! नमस्ते नमस्ते ॥२६ ॥

जैमिनिरुवाच

अन्ये चयेनृपतयःश्रोत्रियावेदपारगाः । मुनयोद्विजाःक्षत्रियाश्चविद्वांसोवैश्यजातयः

अस्तुवन्पुण्डरीकाक्षं वलिनंभद्रयासह । सूक्तैः स्तोत्रैः पुराणैश्चकविताभिर्यथातथा

अथेन्द्रद्युम्नः प्रोवाच पुरोधसमकल्मषम् । पूजार्थं वासुदेवस्य उपाचारोपसंस्कृतम्

स्वयं स नृपतिश्रेष्ठः पूजयामास तान्क्रमात् ।

नारदस्योपदेशेन विधिना मन्त्रतस्तथा ॥ ३० ॥

द्वादशाक्षरमन्त्रेण वलभद्रमपूजयत् । यमुपास्यध्रुवःस्थानं प्राप्तवानुत्तमोत्तमम् ॥

त्रयीप्रसिद्धंयत्सूक्तं पावनं पौरुषं महत् । तेन नारायणं भूपः पूजयामास शक्तितः

देव्याः सूक्तेन भद्रां तां सौदर्शन्या सुदर्शनम् ।

यथासमृद्धि भक्त्या तान्पूजयित्वा नृपोत्तमः ॥ ३३ ॥
तत्प्रीत्यै द्विजमुख्येभ्यो ददौ दानानिभक्तितः । तुलापुरुषदानानिमहादानानिपार्थिव
अश्वमेधाङ्गभूताश्चकोटिशो गा ददौतदा । अलङ्कृतास्तथान्याश्चददौगावहुदक्षिणाः
तासां खुरोद्धृतैर्योगाद्गर्तोऽभूद्विजसत्तमाः ॥
दानाम्बुना स पूर्णो वै तीर्थमासीन्महाफलम् ॥ ३६ ॥
तस्मिन्स्नात्वा पितृन्देवान्सन्तर्प्य विधिवन्नरः ।
अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोत्यसंशयः ॥ ३७ ॥
नाम्ना ख्यातं सरस्तस्यइन्द्रद्युम्नस्यभूपतेः । निर्वपत्यत्रपिण्डांश्चपितृनुद्दिश्यमानवः
कुलैकविंशमुद्धृत्य ब्रह्मलोके महीयते । नाऽतः परतरं तीर्थं हयमेधाङ्गसम्भवात् ॥
इन्द्रद्युम्नस्य सरसः स्याद्वात्रिपथगा समा । ततःप्रासादघटनामुपचक्राम भूपतिः ॥
शुभे काले सुनक्षत्रे दैवज्ञविधिचोदिते । सुमुहूर्ते नारदादीन्ब्राह्मणाग्र्यान्प्रपूज्य च
स्वस्तिवाचं च कर्मर्द्धि वाचयित्वा नृपोत्तमः ।
अर्घ्यं ददौ जगन्नाथं स्मरन्प्रासादवेश्मनि ॥ ४२ ॥
वसुधां प्रार्थयित्वा तु स्थानमाचन्द्रतारकम् ।
शिल्पिनः पूजयामास वास्तुयागपुरःसरम् ॥ ४३ ॥
महोत्सवं तथाचक्रे गीतवाद्यैः प्रभूतकैः । दीनानाथविपन्नेभ्योददौ वस्तुयथेप्सितम्
राज्ञोविसर्जयामास बहुमानपुरःसरम् । कृतार्थानवतारं तं हरेर्दृष्ट्वा हतांहसः ॥४५॥
ततः स कोटिशो वित्तं ददौपाषाणदारके । आहृतौ बहुदेशेभ्यो दृषदां पार्थिवोत्तमः
उवाचेदंमुदायुक्तःसभायांपृथिवीश्वरः । अष्टादशभ्योद्वीपेभ्यो यन्मयापौरुषार्जितम्
तत्सर्वं जगदीशस्य प्रासादायाऽपवर्जितम् । जैत्रयात्राप्रसङ्गेनश्रमोलब्धस्तु योमया
सफलोऽस्तु स मे विष्णोः प्रासादायाऽर्थयोगतः ।
अतः परं मे किं भाग्यं चराचरगुरुं हरिम् ॥ ४६ ॥
प्रसादयिष्ये सम्पत्त्या भुजद्वन्द्वार्जितश्रिया । श्रीःसदापुण्डरीकाक्षेश्रियोनुग्रहजाममम
किं कर्तुमीशस्तस्यां वै देवदेवस्य चक्रिणः ।

कटाक्षपातो यस्य स्यात्तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥ ५१ ॥
अष्टादशात्मिका देवी जिह्वाग्रे चाऽस्य नृत्यति ।
यमाराध्य जगन्नाथं ब्रह्मत्वं प्राप्तवान्विधिः ॥ ५२ ॥
रुद्रो महेश्वरत्वं च शक्रस्त्रिदिवराजताम् । लेभेतमर्च्यं जगतामर्चयिष्यामिशाश्वतम्
जितं तेन त्रिधाराशीभूतमंहो महात्मना । साङ्गोपाङ्गेन विधिना येनकृष्णःसमर्चितः
कलेवरमिदं क्षेत्रं यत्राऽहङ्कारवान्विभुः ।
आविर्भावतिरोभावौ स्थितिर्नित्या हि यत्प्रभुः ॥ ५५ ॥
अत्र साक्षाद्वपुष्मन्तं सम्पूज्यं जगतां गुरुम् ।
साक्षात्कृतार्थो भवति चतुर्वर्गस्य भाजनम् ॥ ५६ ॥
बहुव्ययाऽऽयासतो या राज्यऋद्धिर्मयाऽर्जिता ।
अस्यैवाऽनुग्रहात्सा तु सफलाऽस्तु पदाऽम्बुजे ॥ ५७ ॥
सर्वोपचारैः परिपूज्य देवं द्रव्यैर्ह्व तैः सागरमेखलायाः ।
यावत्समाप्नोति हि कर्मपाकः साम्राज्ययात्रा सफला हि माऽस्तु ॥ ५८ ॥
किं द्रव्यजातं खलु येन विष्णुं नोपाहरेत्साङ्गमपेतकल्मषः ।
किं पौरुषेयं यदि वासुदेवपरिच्छदो येन न साधितो मे ॥ ५९ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशातिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
इन्द्रद्युम्नसरोवरोत्पत्तिविवरणंनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नेनदारुवृक्षेणप्रासादनिर्माणवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

इति ब्रुवाणं राजर्षिकश्चिदृग्वेदपारगः। वेदान्तविज्ञानशीलोद्विजोवाक्यंमुदाजगौ

अहो तवाऽयं खलु भाग्यराशिर्येनाऽऽविरासीद्भुवि दारुमूर्तिः।

यस्यात्युपास्ति श्रुतिराह मुक्तिप्रदामनात्मज्ञविमोहितानाम् ॥ २ ॥

य एष प्लवते दारुः सिन्धोः पारे ह्यपौरुषम्।

तमुपास्य दुराराध्यं मुक्तिं यान्ति सुदुर्लभाम् ॥ ३ ॥

ब्रह्मज्ञाननिधिःसाक्षान्नारदःप्रत्युवाच यत्। न हि वेदान्तवचसोऽपरस्माज्ज्ञानमस्यवै

न हिप्रवृत्तिर्विष्णोस्तुविनावेदंप्रवर्त्तते। परेशांस्वस्यवासृष्टौ श्रुतिप्रामाण्यवान्प्रभुः

विना श्रुतिं प्रवर्तेच्चेत्कस्तत्प्रामाण्यमृच्छति।

तस्माच्छ्रुतिप्रसिद्धोऽयमवतारोऽत्र भूपते !॥ ६ ॥

वेदान्तवेद्यं पुरुषं गीतं तं सामगीतिषु। प्रतिमां न तु जानीहिनिःश्रेयसकरंनृणाम्

दर्शनादेव नः शान्तं सुदृढं तम उत्तमम्। सन्त्येव श्रुतयः पूर्वमेतदर्चाप्रकाशिकाः॥

एतदर्चा प्रशस्ता वै सदर्थेविनियोजिता। अहोभारतवर्षस्थामनुष्याःक्षीणकल्मषाः

अपवर्गप्रदो येषामाविरासीज्जनार्दनः। तत्राऽप्ययं चोढ्रदेशःसर्वेषामुत्तमोत्तमः॥ १०

यत्रस्थाश्चर्मनेत्रेण पश्यन्ति ब्रह्मरूपिणम्। श्रुतिस्मृतीनांगहनःपन्थाःकर्मभिराकुलः

येन याता भ्रमन्तीह घटीयन्त्रवदाकुलाः। निर्व्यलीकपदप्राप्तिहेतुरेष स चिन्मयः॥

श्रुत्यादिभिर्विनोपायैः परमानन्दमुक्तिदः। निरन्तरगतायातदुःस्थितानांदुरात्मनाम्

एष दारुवपुर्विष्णुः सुखदाता सुबान्धवः। श्रुतिस्मृत्युक्तनियमा वर्तन्ते नेह पार्थिव

यथा तथा दृष्टिपथमाचाण्डालाद्विमुक्तिदः। अभक्तश्चेदमं पश्येद्गतानुगतिको नरः

अश्वमेधसहस्राणांफलं ह्यविकलंलभेत्। भजेच्चेन्नियमस्थो हि भक्तिमान्दृढमानसः

असंशयंस सायुज्यं ब्रह्मणा लभते नरः। कः दुःखायासबहुलमनायासविनश्वरम् ॥
अचिरस्थं क्षुद्रफलं पुनरावृत्तिलक्षणम्। क्वेदं दारुमयं ब्रह्म पापराशिदवानलम् ॥
सच्चिदानन्दकैवल्यमुक्तिदं दर्शनादपि। वेदानुवचनादीनि दुष्कराणि दुरात्मनाम् ॥
महात्मभिस्तैर्यत्प्राप्यं तदव्ययमयं ददेत्। अन्यक्षेत्रेषु भगवान्सुदूरो मर्त्यवासिनाम्
स्वक्षेत्रेऽस्मिन्निवसति नित्यं मुक्तिप्रदोविभुः। अस्मादत्रमहाभागतिष्ठस्ववलपौरुषः

विद्वत्तमोऽसि भक्तश्च साङ्गोपाङ्गममुं भज ॥ २२ ॥

जैमिनिरुवाच

द्विजस्य तद्वचः श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः। साधूक्तं द्विजवर्येण श्रौतमार्गानुसारिणा
सृष्ट्यादौ ब्रह्मनिश्वासैरभवद्वेदसंहतिः। तत्रोपनिषदर्थोऽयं साम्प्रतं व्यक्तिमागतः ॥
वेत्त्येतदर्थं भगवान्पद्मयोनिः प्रजापतिः। अज्ञासिषं च भूपाल साम्प्रतं तन्मुखादहम्
तस्याऽऽज्ञयाकृतंसर्वंयथाभिलषितं एव। एनमाराध्यतिष्ठात्रयाम्यहंब्रह्मणोऽन्तिकम्
कृतं निवेदयिष्यामि प्रकाशश्च मुरद्विषः। प्रासादं कुरु भूपाल! धनेन महता तथा ॥

प्रासादे नरसिंहं तु प्रतिष्ठाप्य विमुच्यसे ॥ २८ ॥

जैमिनिरुवाच

तच्छ्रुत्वा स तु भूमीन्द्रः प्रत्युवाच मुनिं तदा।
महर्षेऽहं त्वया सार्द्धं यियासुर्ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥ २६ ॥

यत्प्रसादाज्जगन्नाथश्चक्रेऽयं लोचनातिथिः। निवेद्य तं च प्रासादं प्रतिष्ठार्थं मुरद्विषः

विज्ञापयिष्ये सान्निध्ये प्रासादस्थापनोत्सवम्।
यथा स्वयं समागम्य ब्रह्मलोकात्पितामहः ॥ ३१ ॥

महोत्सवं भगवतः प्रासादेऽत्र करिष्यति। तन्मुने! मामपिविधेःसंनिधिंप्रापयस्व च

गर्भप्रतिष्ठां प्रासादे समाप्येह स्थितो मुने!।
पश्चादावां गमिष्यावः कश्चित्कालं प्रतीक्ष मे ॥ ३३ ॥

ततः स नृपतिः सर्वाञ्छिल्पशास्त्रविशारदान्। पाषाणखण्डघटनाकर्मण्येकैकयोगतः
सत्कारैर्दानमानैश्च योजयामास सादरम्। दिने दिने सुघटितःप्रासादोववृधे द्विजाः

परितः पूर्यमाणस्तु शुक्लपक्षे यथा शशी । एवंसम्वर्ध्यमानोऽपिप्रासादः परिवर्द्धितः
महोच्छ्रयत्वादल्पेननकालेनाभिलक्ष्यते । पाषाणसङ्ख्याशक्यावाकथञ्चिद्घटनाक्रमात्

वित्तव्ययस्तु कोटीनां न सङ्ख्यातुं च शक्यते ।
यावन्तो भारते वर्षे लोकाः समयवर्तिनः ॥ ३८ ॥

इन्द्रद्युम्नस्य नृपतेर्नियुक्तास्ते महीभृतः । एकैकशो नियुक्ता ये परस्परसमन्विताः ॥
तेऽपि चान्यैर्नियुक्तास्तेसर्वे तत्रप्रवर्तिताः । अजस्रं तन्नियुक्तानां योहर्षोत्थोमहारवः
आकाशमश्नुवानोऽसौदिशांभागानपूरयत् । नृपतेःश्रद्धयाभक्त्या सात्त्विकेनप्रसादिता

श्रीः समृद्धाऽभवद्विप्राः कीर्त्या सह महीपतेः ।
क्वचित्काञ्चनविन्यस्तनानारत्नमहोज्ज्वलः ॥ ४२ ॥
क्वचित्स्फटिकमागान्तशारदाभ्रनिभच्छविः ।
क्वचिन्नीलाश्मघटिता भित्तिःकालाभ्रमेदुरा ॥ ४३ ॥

एवं सुघटिते विष्णोः प्रासादे सुमनोहरे । गर्भप्रतिष्ठां विधिवत्कृत्वा स नृपसत्तमः
वज्रपातादिभङ्गादिवारणार्थंयथोचितम् । शिल्पशास्त्रेषुमण्यादिविन्यस्यपौरुषाहृतम्
पुनः प्रासादघटनासम्भारोचितमेव वै । वहुमूल्यं वस्तुजातं यत्नात्तत्र न्यवेशयत् ॥
ततोविरच्यमानेऽस्मिन्प्रासादेकीर्तिवर्द्धने । मनसापिनसम्भाव्येत्रिषुलोकेषुभूभुजाम्

देवानामपि नो लक्ष्ये द्विजाः कल्पान्तवासिनाम् ।
प्रासाद ईदृशो भूमौ क्वचिच्च घटितो न हि ॥ ४८ ॥

स्वर्गौकाइत्थमादित्याआलपन्तिपरस्परम् । अहो सुवुद्धिरस्योच्चैर्येयमीदृक्परीणता

श्रद्धया भगवत्पादपद्मयोः साभिलाषिणी ।
अलौकिकानि कर्माणि पश्यन्ति हि रचन्त्यपि ॥ ५० ॥

केवाऽत्रभूमौराजानोवभूवुर्नीतिशालिनः । सार्वभौमास्तुसाम्राज्यजेतारःसर्वविद्विषाम्
वित्तानि यैः सञ्चितानि सुवहूनिचकोटिशः । अश्वमेधसहस्रन्तु यत्कृतंत्रिदिवेशितुः
शक्यं वा स्याद्भूभुजां तुनातःपूर्वमनुष्ठितम् ।न दृष्टंनश्रुतम्वापि वाजिमेधसहस्रकम्
महाक्षितानुष्ठितंवै यत्त्रैलोक्यवासिनः । पृथिव्यामस्यनृपतेः सहस्थाभोगभागिनः

ब्रह्मलोक इवाभातिसभार्यस्य च यज्विनः । मूर्तिमन्तस्त्रयो वेदाश्चतुष्पादोवृषस्तथा
सुराः सङ्कल्पकामास्तुयत्राद्भुतधियोऽभवन् । अयं प्रासादवर्योवैबुद्धेर्विषयताङ्गतः ॥

मनोऽपि यत्र भवति न वा त्रैलोक्यवासिनाम् ।
भूपतेर्दुर्लभं किं स्यात्सहायो यस्य नारदः ॥ ५७ ॥

पितामहश्च जगतांस्रष्टासर्वामरेश्वरः । अथवा विष्णुभक्तस्य नाऽतिदूरं चिकीर्षितम्
विष्णोस्तद्भक्तलोकस्यनाऽन्तरंविद्यतेद्विजाः । ततःसनारदम्प्राहप्रासादान्तेमुनीश्वरम्
सर्वं सम्पन्नमासीन्मे यदशक्यं सुरासुरैः । साक्षाद्भगवतो विष्णोरद्भुतोपासनारतः
भगवद्भपुराभाषि प्रासादस्तु चिरं मयि । इत्युक्त्वापादयोर्मूर्ध्ना प्रणनाम स नारदम्

नारदोऽपि तमुत्थाप्य परिपूज्य नृपोत्तमम् ।
त्वत्तो न भेदो नृपते ममाऽस्ति खलु तत्त्वतः ॥ ६२ ॥

यस्तुसाक्षाज्जगन्नाथआविर्भूतःकृतेनवा । अवश्यमर्चयस्वैनंजीवन्मुक्तोऽसिसाम्प्रतम्
तत्पादपद्मे यादृक्ते चेतः प्रणवतान्वितम् । भक्त्याह्यनन्ययापुंसः किमतःपरमस्तिवै
तीर्थैर्मन्त्रैर्जपैर्दानैः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः । व्रतैरध्ययनैर्भूप! तपोभिश्च यदर्जितुम् ॥
न शक्यंतवराजेन्द्रभक्त्या तत्करमागतम् । अतः परं न शोचस्वभक्तियोगेनमोऽस्तुते
प्रकर्षं बहुराजेन्द्र स्थित्वा चाऽस्मिंश्चिरम्भुवि । आराधयजगन्नाथमुपचारैर्महोत्सवैः

पितामहं द्रष्टुकामो गन्ता चेदन्तिकं विभोः ।
उपदेक्ष्यति सोऽप्यस्य यात्रास्तास्ता महोत्सवाः ॥ ६८ ॥

स्वयं च भगवानेववरं तुभ्यंप्रदास्यति । प्रतिष्ठापितेप्रासादेतस्मिन्कालेस्वयम्भुवा
अहमप्यागमिष्यामि तदा सप्तर्षिभिःसह । तदावांतत्र गच्छावो ब्रह्मलोकमकल्मषम्

त्वां विना भुवि कः शक्तो ब्रह्मलोकगतिम्प्रति ।
इत्युक्त्वा नारदो भूपं समुत्तस्थौ नभस्तलम् ॥ ७१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
श्रीनारदेनराजानम्प्रतिभगवत्प्रासादनिर्मापणार्थमुद्बोधवचनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नस्यब्रह्मलोकेनारदेनसहगमनवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

राजाऽथ तमुवाचेदं निर्लक्ष्य गमनं कथम् । अयं पुष्परथोऽस्त्येव मनसोवेगवान्मुने
एनमारुह्य यास्यावः क्षणं तावत्प्रतीक्ष्यताम् । यावदेताननुज्ञाप्य प्रासादेह्यधिकारिणः
प्रदक्षिणीकृत्य विभुमायामि मुनिसत्तम !। नारदोऽपिवचः श्रुत्वा श्रद्दधानोनृपोक्तिषु
करेण धृत्वा राजानं महावेदीं प्रविश्य च । सहितं रामभद्राभ्यां नत्वा कृष्णंमुहुर्मुहुः
अनुज्ञां प्रार्थयामास ब्रह्मलोकगतिम्प्रति ॥ ४ ॥

इन्द्रद्युम्नोऽपि वचसा मनसा वपुषा हरिम् । प्रदक्षिणीकृत्यपुनर्नत्वा साष्टाङ्गमुन्मनाः
ब्रह्मलोकगतिं विप्रा! याचते स्म कृताञ्जलिः ॥ ५ ॥

उभौ तौ दिव्ययानेन जग्मतुर्मुनिभूभृतौ । प्रदक्षिणीकृत्यरविं व्योममण्डलमध्यगम्
उपर्युपरि जग्माते व्यतीत्य ध्रुवमण्डलम् ॥ ६ ॥

जनलोकगतैःसिद्धैः सत्वरावनतोन्मुखैः । वीक्ष्यमाणौमुदायुक्तौ सँल्लपन्तौपरस्परम्
भगवच्चरितम्विप्रा मनोमलविशोधनम् । जीवन्मुक्तो मुनिश्रेष्ठः सर्वलोकान्भ्रमन्नयम्
यथानुपहतव्रज्यस्तथाऽयं मर्त्यवास्यपि ॥ ८ ॥

भूपतिः प्रययौ शीघ्रं विष्णुभक्तिप्रसादतः । ब्रह्माण्डविषयेनैतद्दुष्प्राप्यंवस्तुविद्यते
विष्णुभक्तेन यल्लभ्यमथवामुक्तिमेति सः । महर्लोकगतैः सिद्धैः सादराभ्यर्चितौचतौ
इन्द्रद्युम्नो न सस्मार पार्थिवं वासमात्मनः ।
क्रमादूर्ध्वगतिर्गच्छन्पश्यन्सौख्यैकभाजनान् ॥ ११ ॥

निर्द्वन्द्वानभिलाषोत्थतत्क्षणानेकपौरुषान् । केवलम्भगवत्प्रीत्यै कर्मभूमौचकार यत्
प्रासादंचिन्तयामास सम्पूर्णोवा न वा भवेत् । मय्यागतेब्रह्मलोकंशत्रुभिर्वाऽभिभूयते
श्लथादरावाभूयासुः सेवकाद्रव्यलोभतः । गृहीतवेतनाः शिल्पिवृन्दा मन्दक्रियास्तथा

न शीघ्रं घटयिष्यन्ति मयि ब्रह्मक्षयागते ॥ १४ ॥

यावद्गमिष्ये धातारं गृहीत्वाऽहं चतुर्मुखम् । तावन्नपुनरेवस्यात्प्रासादोमयि दूरगे
इहायातास्तु ये पूर्वे न पुनस्तेक्षितिंगताः । मन्वानाममसामन्ताइत्थं वा दुष्टमानसाः
राज्यं ममाहरिष्यन्ति द्विषन्तः किमु साम्प्रतम् ॥ १६ ॥
इत्थं सुविग्नमनसा चिन्तयानं महीपतिम् । अतीतानागतज्ञाननिधिर्मुनिरुवाचतम् ॥
किंचिन्तयसिराजेन्द्रत्वमेवंदीनमानसः । यत्र चाभ्यागतावावां नचिन्ताविषयोह्ययम्
नाऽऽधयोव्याधयश्चाऽत्र प्रभवन्तिकदाचन । नजरानचवामृत्युःकिमन्यद्दुःखहेतुकम्
कृतार्थोऽसिमहाभाग! यन्मानुषवपुः स्वयम् । ब्रह्मलोकमिंहायातःप्रत्यक्षंदृष्टवान्हरिम्
इहायाता न शोचन्ति हेये संसारकल्पके । ब्रुवाणमित्थं भूपालस्तमुवाच मुनीश्वरम्
न हि शोचामि भगवन्राज्ञःस्वजनबन्धुषु । समारब्धो भगवतः प्रसादो यो मयाधुना
अत्रागतं मां तेज्ञात्वा नानुतिष्ठन्तिसेवकाः । आरब्धस्यप्रतिष्ठाहिकर्तव्यानिश्चितामुने
तस्यान्तरायं सम्भाव्य दुःखितं मेमनः प्रभो । तस्य तद्वचनंश्रुत्वाप्रहस्यमुनिरब्रवीत्
प्रजापतिसमस्त्वं हि न तु सामान्यभूपतिः । केनाऽप्यकृतं नैव भूमौ पूर्वैरनुष्ठितम् ॥
किं पुनस्तव कृत्यं तु यः सृष्टिस्थितिहानिकृत् ।
ब्रह्मलोकं गतस्याऽद्य प्रतापयशसा तव ॥ २६ ॥
त्रैलोक्ये भ्रमतोनित्यंयथासूर्यनिशाकरौ । यस्यकार्येषुभगवान्सहायोऽसौ चतुर्मुखः
तेषुकिंराजशार्दूल! विघ्नशङ्काऽपिजायते । एषचदूरेऽस्तिराजेन्द्रप्रत्यक्षंयस्तवद्विषाम्
सदोमध्यगतः शक्रः साक्षात्त्रिजगतीपतिः । विशेषतो जगन्नाथप्रासादे कः पुमान्नृप
निहन्तु मनसाऽपीच्छेत्तत्र शङ्कास्तु मा तव । तदग्रतःपश्यभूप चन्द्रकोटिसमत्विषा
परितो ह्लादजनकः सुधासागरकोटिवत् । यश्चाऽयं तेजसां राशिर्जानीहि ब्रह्मसद्मनः
इत्थमालपतस्तौ तुब्रह्मलोकान्तिकंगतौ । शुश्रुवाते सुदूरात्तौब्रह्मर्षीणां मुखोद्गतम्
स्वाध्यायशब्दंसुपदंस्पष्टवर्णक्रमस्वरम् । इतिहासपुराणानिच्छन्दःकल्पानिगाथिकाः
असङ्कीर्णोज्ज्वलपदंश्रूयते प्रविभागशः । अत्रैतद्राजशार्दूल! जानीहि ब्रह्मणः पुरम्
सभाहि दृश्यते चैषा यत्रलोकपितामहः । सार्द्धंब्रह्मर्षिमुख्यैश्च सुखासीनश्चतुर्मुखः ॥

नानाचैतन्यशबलैर्जीवन्मुक्तैरुपासितः ।
यत्राऽऽगतानि वर्त्तन्ते न संसाराऽब्धिसङ्कटे ॥ ३६ ॥
सदिति ब्रह्मणो नामतस्यायंभुवनोत्तमः । सत्यलोकइतिख्यातस्तदूर्ध्वंनास्तिकिञ्चन
अस्यैव किञ्चिदुपरि अधश्चाऽण्डकपालतः । वैकुण्ठभुवनं राजन्मुक्तायत्रवसन्ति हे
यत्र योगीश्वरःसाक्षाद्योगिचिन्त्योजनार्दनः । चैतन्यवपुरास्तेवैसान्द्रानन्दात्मकःप्रभुः
यं प्राप्यन निवर्त्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि । यमुपास्ते सदा ब्रह्माजीवन्मुक्तैः स्वमुक्तये
कल्पितस्यायुषोन्तेऽसावेभिःसार्द्धंप्रपद्यते । सएषस्रष्टालोकानांमत्स्यकूर्मादिरूपधृक
रक्षिता रौद्ररूपेण संहर्त्ता लोकभावनः । इन्द्रद्युम्नं वदन्नित्थं प्राप ब्रह्मनिकेतनम् ॥
क्षणेन च सभाद्वारि प्रकोष्ठे स न्यवर्तत । यत्रतिष्ठन्तिदिक्पालाःशक्राद्याःपरितस्तथा
चिरकालंध्यानपरास्तथामन्वन्तराधिपाः । पृथग्जननिभाद्वाःस्थनिषिद्धान्तःप्रवेशनाः
इन्द्रद्युम्नेन सहितं नारदं प्रविलोक्य सः । द्वारपालः सविनयं ननामाऽऽनतकन्धरः ॥
चतुर्दशानां लोकानांभ्रमणेरसिक! प्रभो । त्वयाविनाशोभतेनोस्वामिंस्तवपितुःसभा
सन्त्येव मुनयः श्रेष्ठा ब्राह्मणा ब्रह्मविद्वराः ।
गौतमाद्यास्तथाऽप्येषा न रम्या ब्रह्मणः सभा ॥ ४७ ॥
बहुतारासु रजनी चन्द्रेणेव प्रकाशते । इति स्तुवन्ददौ तस्य प्रवेशं विनयान्वितः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
राज्ञइन्द्रद्युम्नस्यनारदेनसाकंब्रह्मसदनगमनंनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

—::०::—

त्रयोविंशोऽध्यायः

राज्ञाब्रह्मदर्शनवर्णनंब्रह्मवैभवदर्शनञ्च

नारद उवाच

दौवारिकाऽयंराजर्षिरिन्द्रद्युम्नोमहायशाः। सार्वभौमोवैष्णवाग्र्योधातारंद्रष्टुमागतः
यात्वयं पुरतस्तस्य यदि त्वमनुमन्यसे। इत्युक्तस्तं पुनः प्राह नारदं मणिकोदरः ॥

स्वामिंस्त्वयाऽऽगतो योऽसौ न सामान्यो हि बुध्यते।

यत्र पश्यसि दिक्पालान्पितॄन्मन्वन्तराधिपान् ॥ ३ ॥

तत्राऽयं मर्त्यनिलयस्तिष्ठेदपि हि पौरुषम्। भवान्गत्वा पद्मयोनिंविज्ञाप्यैनंप्रवेशय
सभाद्वारगतो योऽसौदिक्पालैःसह यास्यति। एकाग्रचित्तोभगवान्गायनेचतुराननः
अस्माकंद्वारियुक्तानांप्रतीक्ष्योऽवसरोध्रुवम्। नक्रोधोमयिकर्त्तव्योदासेतवपितुश्चते
इत्युक्तो नारदो गत्वा ब्रह्माणं जगतां पतिम्। नत्वासाष्टाङ्गपतनंविज्ञप्तोवसुधाधिपः
कटाक्षेणाऽदिशत्सोऽथ इन्द्रद्युम्नप्रवेशनम्। नोवाच किञ्चिद्भगवान्गानेदत्तावधानतः
दिव्यगायनसङ्गीते कौतुकाविष्टमानसः। ज्ञात्वेङ्गितं नारदोऽथ इन्द्रद्युम्नंनृपोत्तमम्

प्रवेशयामास ततः शक्राद्यैः सुनिरीक्षितः ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा पितामहं दूरात्स्रष्टारं जगतां नृपः। अमन्यत द्विजश्रेष्ठाः साक्षाद्दारुमयं हरिम् ॥
शनैः शनैर्ययौ भूपः प्रणमंश्च कृताञ्जलिः। स्तुवन्नमन्प्रणिपतन्साध्वसस्खलितंव्रजन्

किञ्चिद्दूरे स्थितो भूपो नारदस्य निदेशतः ॥ ११ ॥

ततः पुण्यं गीयमानं चरितं सिन्धुजापतेः। शृण्वंश्चतुर्मुखस्तस्थौमुहूर्त्तंद्विजपुङ्गवाः
सावित्रीशारदाभ्यांचवीज्यमानस्तुपार्श्वयोः। शुद्धदेहधरैर्वेदैःस्तूयमानःस्वयम्भुवः
कलाकाष्ठानिमेषादि कल्पयन्युगपर्ययम्। न जराजन्ममरणं रूपादिपरिणामनम् ॥१४
यस्य लोकगतानां वै नाऽऽधयोव्याधयस्तथा। मन्वन्तरादयोयत्रयुगावर्त्तादयस्तथा
कल्पान्ताद्या न विद्यन्ते स साक्षात्परमेश्वरः। गीतावसानेतं भूपमुवाच प्रहसन्निव॥

इन्द्रद्युम्नमहासत्त्वसाक्षात्त्वंभगवत्प्रियः । अन्यस्यदुर्लभोलोकःसत्याख्योविदितस्तव
अत्रागतिंहिवाञ्छन्तोमुनयःक्षीणकल्मषाः । तपोनिष्ठाश्चतिष्ठन्तियावदाभूतसम्प्लवम्
चतुर्दशसुलोकेषुस्थानांप्राणिनांहियत् । चैतन्यादिविचित्राणिसर्वेषामाश्रयोह्यसौ
जानन्नपि हि तत्कार्यं मानयन्नृपसत्तमम् । उवाच परमप्रीत इन्द्रद्युम्नं पितामहः ॥
किमर्थमागतोऽस्यत्रतद्ब्रूहिहृदयस्थितम् । मयि दृष्टेन दुष्प्रापममृतंकिन्नुवाञ्छितम्

इन्द्रद्युम्न उवाच

अन्तर्यामिन्हि भगवंस्त्वदज्ञातंकुतो भवेत् । तथाऽपि प्रश्नोयोनाथमय्यनुक्रोशएवसः
मूर्ध्न्याधाय तवाऽनुज्ञां कथितं तव सूनुना । इष्टाः सहस्रं क्रतवस्तदन्ते दारुदेहभृत्
आविर्बभूव भगवान्भूतभव्यभवत्प्रभुः । त्वदनुग्रहसम्पत्तिवशादेवाऽवलोकयन् ॥२४
तादृशं पुण्डरीकाक्षं येन त्वल्लोकमागतः । यस्यारब्धोमयादेवप्रासादस्तत्रचेत्स्वयम्
गत्वा देवं जगन्नाथंस्थापयिष्यसिचेत्प्रभो !। त्वदनुग्रहस्तुसफलोभवेन्मेलोकभावन
एतदर्थं जगत्स्वामिन्नारदेन सहाऽधुना । त्वत्पादमपद्मयुगलं द्रष्टुं त्वल्लोकमागतः॥

प्रसीद मां कुरुष्वेदं जगन्नाथस्त्वमेव हि ।
त्वमेव स जगन्नाथो न भेदो युवयोर्विभो !॥ २८ ॥
स्थाप्यः स्थापयिता चाऽसि वेद्यो वेदयिता भवान् ॥ २६ ॥

जैमिनिरुवाच

एवंविज्ञापनान्ते तु दुर्वासाः स महामुनिः । प्रणम्यसाष्टाङ्गपातं कृताञ्जलिरुपस्थितः
प्रोवाच विनयान्नीचो धातारं जगतां गुरुम् ॥ ३० ॥

विभो! द्वारप्रवेशेऽत्रदौवारिकनिवारिताः । लोकपालाःसपितरस्तथामन्वन्तराधिपाः
तिष्ठन्ति दीनजनवत्सुचिराल्लोकभावन !। तदाज्ञापय पश्यन्तु तव पादसरोरुहम् ३२
तच्छ्रुत्वा देवदेवस्तु तदा दुर्वाससो वचः । प्रहस्य वचनम्प्राह नैषां प्रस्ताव एवहि
इन्द्रद्युम्नेनंस्पर्द्धन्तेकिन्तु मोहवशानुगाः । जीवन्मुक्तोऽयंनृपतिःक्षीणकर्माऽघसंहतिः
मत्सन्ततेः पञ्चमोऽयं वैष्णवोविष्णुतत्परः । एतेहिसुखभोगायकर्मणा प्राप्तपौरुषाः
अत्राऽगतिं प्रार्थयन्तस्तपस्यन्ति हि देवताः । ममानुग्रहत एते आयाता मदुपासने

तथापि त्वदनुज्ञाता आयान्तु मम दर्शने। ततः प्रविष्टास्ते देवा दुर्वासोवचनेन वै॥
दूरात्प्रणेमुर्ब्रह्माणं गायनानां समीपतः। इन्द्रद्युम्नं नरपतिं सँल्लपन्तं कृताञ्जलिम्॥
ताँल्लोकपालान्प्रणतान्कटाक्षेण जगत्प्रभुः। अनुजग्राह कथयन्निन्द्रद्युम्नं ससादरम्॥

राजन्कृतस्त्वया सत्यं प्रासादो भगवत्स्थितौ।
नाऽयं कालस्तथा राज्यं न वा त्वत्सन्ततिर्नृप!॥ ४०॥

गीतगानावसरतो भूयान्कालोगतस्तव। मन्वन्तरो हि दिव्यानांयुगानामेकसप्ततिः

तव वंशोऽपि विच्छिन्नः कोटिशः क्षितिपा गताः।
देवोऽन्तिमश्च प्रासादो ह्ययमत्राऽवशिष्यते॥ ४२॥

द्वितीयस्य मनोरादियुगं स्वारोचिषस्य तु। ममान्तिकेऽत्रवसतोमृत्युर्वानजरातथा
विपर्ययमृतूनां वा न कालपरिणामता। तद्गच्छ भूमौ राजेन्द्र! देवं प्रासादमेव च॥
आत्मसम्बन्धिनं कृत्वा पुनरायाहि वेगवान्। अथवाऽहं प्रयास्यामितवानुपदमेव हि

त्वमग्रतो धरां गत्वा यावत्सम्भारमृद्धिमत्।
करिष्यसि महाभाग! तावदेव व्रजाम्यहम्॥ ४६॥

इत्याज्ञाप्येन्द्रद्युम्नं तं भगवान्सपितामहः। देवान्पुरःस्थितानाह विनयानतकन्धरान्

बद्धाञ्जलीन्साध्वसांस्तांस्तत्पादन्यस्तवीक्षणान्।
उवाच भगवान्स्निग्धगम्भीरवचसा द्विजाः!॥ ४८॥

किमर्थमागताः सर्वे युगपत्तुदिवौकसः। यत्कार्यं वो मया कार्यं विज्ञापयतमाचिरम्

जैमिनिरुवाच

इति श्रुत्वा वचो धातुस्त्रिदशाविगतज्वराः। प्रत्यूचुर्हर्षिताःसर्वे भगवन्तं पितामहम्

देवा ऊचुः

उपासितः पुराऽस्माभिर्योनीलाद्रौमणीमयः। अन्तर्हितःकथन्देव इदानीं दारुदेहधृक्
आविर्भूतः क्रतोरन्त इन्द्रद्युम्नस्य भूपतेः। एतस्य कारणं ज्ञातुं भवतः पादपङ्कजम्
आराधितुमिहाऽऽयाताः प्रसीद कथयस्व तत्। इत्युक्तेत्रिदशैर्देवोभगवान्पङ्कजासनः
रहस्यमेतद्वो देवाः कस्यचिन्नोदितं पुरा। सर्वे समुदिता यस्मादपृच्छत चिरागताः

ततो वः कथयिष्यामि सुराणांगुह्यमुत्तमम् । पूर्वेपरार्द्धे भो देवाःक्षेत्रंश्रीपुरुषोत्तमम्
नीलाश्मवपुरास्थाय न तत्याज जनार्दनः । साम्प्रतं मे द्वितीयन्तुपरार्द्धंसमुपस्थितम्
मनुःस्वायम्भुवो नाम श्वेतवाराहकल्पके । प्रवर्त्ततेऽयं कालो वै प्रातराद्यदिनस्य च॥
दारुमूर्तिरयं देवो भुवनानां हि मध्यमे । ममाऽऽयुषः प्रमाणन्तुस्थास्यतेमानयन्प्रभुः

ममाऽऽत्मा एव भगवानहमेतन्मयः सुराः ।
नावयोर्विद्यते किञ्चिदस्मिन्स्थावरजङ्गमे ॥ ५६ ॥

क्षीरोदार्णवमध्येहि श्वेतद्वीपेहि तल्पके । यः शेते योगनिद्रां तां मानयन्पुरुषोत्तमः
समूलंजगतामादिस्तस्यरोमाणियानिवै । तानि कल्पद्रुमाख्यानिशङ्खचक्राङ्किंतानिवै
तन्मध्यस्थोह्ययंवृक्षश्चैतन्याधिष्ठितःसुराः। स्वयमुत्पतितःसिन्धोःसलिलेसत्यपूरुषः
भोगान्भोक्तुंत्रिलोकस्थान्दारुवर्ष्मा जनार्दनः । अनेकजन्मसाहस्रैर्भक्तियोगेनभावितः
घोरसंसारनाशाय मया पूर्वं प्रयाचितः । पुनः पुनः सृष्टिलीनपालनोद्विग्नचेतसा ॥६४
अशेषकर्मनाशाय जगतां सर्वमुक्तये । धारणाध्यानयोगानां दुष्कराणां विनाऽपि सः
मोक्षाय भगवानाविर्बभूव पुरुषोत्तमः । प्रच्छन्नं वपुरेतस्य क्षेत्रं नाऽस्य विचारयेत्
धर्मिग्राहप्रमाणेन यादृग्दृष्टः स एव सः । चतुर्वर्गप्रदो देवो यो यथा तं विभावयेत्
तद्दर्शनपरिक्षीणपापसङ्घाः क्रमाद्भुवि । भवन्ति निर्मलात्मानः पुरुषा मुक्तिभाजनम् ॥

जैमिनिरुवाच

एवंश्रुत्वा तुते देवाः पद्मयोनेर्वचोऽमृतम् । हृष्टा सञ्चिन्तयामासुःप्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना
अचिरस्थायि देवत्वं विहायैतद्भुवं गताः । अस्मिन्क्षेत्रवरे देवमाराध्यामः सुसंयताः
हर्षप्रफुल्लवदनान्सुरान्दृष्ट्वा पितामहः । इन्द्रद्युम्नानुग्रहाय यः प्रकाशं गतः प्रभुः ॥
याताऽत्र प्रतिमा त्वस्यस्वयमेववदिष्यति । वरान्प्रदास्यतिबहून्भगवान्भक्तवत्सलः
प्रासादमिन्द्रद्युम्नस्य प्रतिष्ठापयितुं विभुम् । अहञ्चाऽपिगमिष्यामियूयंतत्र प्रयात वै
इन्द्रद्युम्नोऽग्रतो यातु प्रतिष्ठावस्तुसम्भृतौ । सहायास्तत्रभवतयूयंक्षीणाधिकारिणः
मन्वन्तरं व्यतीतं वै प्रथमं साम्प्रतं सुराः । इन्द्युम्नेन सहितास्तत्र गत्वा सुरोत्तमाः

प्रासादप्रतिमानां च चिवर्त्ता स्वाम्यमस्य वै ।

तस्मात्सम्भृत सम्भारः ससहायोऽधुना ह्यसौ ॥ ७६ ॥
अस्यसन्ततिसम्बन्धस्मरणादपि भूतले । मदाज्ञया पद्मनिधिः सह यास्यतिभूतलम्
प्रतिष्ठायै भगवतःसंयतौ सर्ववस्तुनः । इन्द्रद्युम्नोऽपि हृष्टात्मा दृष्ट्वाब्राह्मीश्रियंद्विजाः
महदाश्चर्यसम्पन्नः प्रणिपत्यजगद्गुरुम् । तदाज्ञांशिरसाधृत्वादेवैःक्षीणाधिकारिभिः
आजगाम भुवं विप्रा विधिना चाऽनुमोदिताः ॥ ८० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
राज्ञाब्रह्मदर्शनमनुपृथ्वीसमागमनवर्णनंनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

भूलोकेसमागतदेवैःश्रीविष्णुस्तववर्णनम्

जैमिनिरुवाच

आगत्य च जगन्नाथं चिरादुत्कण्ठमानसः । दण्डवत्प्रणनामाऽसौघनरोमाञ्चकञ्चुकः
नमोब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । प्रणतार्तिविनाशाय चतुर्वर्गैकहेतवे ॥ २ ॥
हिरण्यगर्भपुरुषप्रधानव्यक्तरूपिणे । ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे ॥ ३ ॥
इत्युच्चरन्स्तुतिं भूपः सानन्दाश्रुविलोचनः । प्रदक्षिणं पुनःकुर्वन्ननाम च पुनः पुनः ॥
ततोऽन्या देवता या वैतत्रागच्छन्मुदान्विताः । तुष्टुवुःप्रणतादेवंकृताञ्जलिपुटा मुदा

देवा ऊचुः

सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं सर्वतोव्याप्यअध्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्
यः पुमान्परमं ब्रह्म परमात्मेति गीयते । भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं पुरुष एव तत्
एतावानस्य महिमा ज्यायानेष पुमान्प्रभुः ।
पादोऽस्य विश्वभूतानि त्रिपादस्याऽमृतं दिवि ॥ ८ ॥

छन्दांसिजज्ञिरेत्वत्तस्त्वत्तोयज्ञपुमानपि। त्वत्तोऽश्वाश्चव्यजायन्तगावोमेषादयस्तथा
ब्राह्मणामुखतोजाताबाहुजाक्षत्रियास्तव। विशस्तवोरुजापद्भ्यांतथाशूद्राःसमागताः
मनसश्चन्द्रमा जातश्चक्षुषस्ते दिवाकरः। कर्णाभ्यां श्वसनः प्राणैर्जिह्वायाहव्यवाडपि
नाभितो गगनंद्यौश्चमूर्ध्नस्तेसमवर्तत। पादाभ्यां तेधराजातादिशश्चाऽष्टौश्रुतेर्गताः
सप्ताऽऽसन्परिधयस्त्वत्तएकविंशत्समिच्चवै। चराचराःसर्वभावास्त्वत्तएवहिजज्ञिरे
त्वमेवजगतां नाथस्त्वमेव परिपालकः। उग्ररूपश्च संहर्ता त्वमेव परमेश्वर!॥१४॥
त्वमेव यज्ञो यज्ञांशस्त्वंयज्ञेशःपरात्परः। शब्दब्रह्मपरं त्वं हि शब्दब्रह्माऽसिविश्वराट्

स्वराट् सम्राड् जगन्नाथ! विराडसि जगत्पते !।
अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्त्वं त्वया व्याप्तं जगन्मय !॥ १६ ॥

प्राप्नुवन्ति परंस्थानंत्वांयजन्तश्चयाज्ञिकाः। भोज्यंभोक्ताहविर्होताहवनंत्वंफलप्रदः
समस्तकर्मभोक्तात्वं सर्वकर्मात्मकः प्रभो !। सर्वकर्मोपकरणं सर्वकर्मफलप्रदः॥१८
कर्मप्रेरयिता त्वं हि धर्मकामार्थसिद्धिदः। त्वामृतेमुक्तिदःकोऽन्योहृषीकेशनमोस्तुते

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्त्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः॥ २०॥

वयं च्युताधिकारास्त्वां प्रपन्नाःशरणंप्रभो !। त्राहिनःपुण्डरीकाक्षअगतीनांगतिर्भव
संसारपतितस्यैकोजन्तोस्त्वंशरणंप्रभो !। त्वत्स्रष्टौत्वादृशोनास्तियोदीनपरिपालकः
दीनानाथैकशरणं पिता त्वं जगतः प्रभो !। पातापोष्टा त्वमेवेश सर्वापद्विनिवारकः
त्राहि विष्णो जगन्नाथ! त्राहि नःपरमेश्वर !। त्वामृते कमलाकान्तकःशक्तःपरिरक्षणे

अन्तर्यामिन्नमस्तेऽस्तु सर्वतेजोनिधे नमः।

इतिस्तुवन्तस्ते देवाः प्रणिपत्य पुनः पुनः। इन्द्रद्युम्नेनसहिता बहिर्भूय द्विजोत्तमाः
क्षेत्रं श्रीनरसिंहस्यगत्वातं प्रणिपत्य च। नमस्कृत्यपरांभक्तिंकृत्वाऽभ्यर्च्यनृकेसरिम्
नीलाचलाद्रेः शिखरं यत्रप्रासासादउत्तमः। ययुस्तेपद्मनिधिनासार्द्धंसम्भारकारणात्
ददृशुस्ते महाप्रांशुं व्याप्तंगगनमण्डले। उत्तिष्ठन्तंविन्ध्यगिरिंरोद्धुंभानोर्गतिंकिमु

व्यश्नुवानं दिशः सर्वा विचित्रघटनोज्ज्वलम्।

बहुकालव्यतिक्रान्तस्वस्तिभङ्गिविचित्रकम् ॥ ३० ॥

ततश्च चिन्तयामास इन्द्रद्युम्नः स वैष्णवः। घटनार्थं मया यातःसत्यलोकमितःपुरा

सुचिराद्दृष्टिपथगः पूर्णःप्रासाद उत्तमः। अनुग्रहाद्धै देवस्य नाऽत्र मानुषपौरुषम् ॥

मन्वन्तरसमाप्तिः क्व सूर्यचन्द्रेन्द्ररोधिका। तथापितिष्ठतेचायंप्रासादोह्येषदुर्लभः ॥

वल्मीकसदृशा ह्येते प्रासादा मानुषैः कृताः।

शीर्यन्ति रोहणैर्वृक्षैः स्वल्पकालगतायुषः ॥ ३४ ॥

मदनुक्रोशबुद्ध्या तु रक्षितं भवनं हरेः। ततस्तान्स सहायान्वै जगाद प्रश्रयं वचः॥

जानीत जगदीशस्य प्रासादं कारितं मया। आविर्बभूव भगवान्दारुरूपवपुःस्वयम् ॥

तदान्तरिक्षगा वाणी मामुवाचाऽशरीरिणी ॥ ३६ ॥

सहस्रपाणिसंमितं नीलाद्रेः शिखरोपरि। प्रासादं कारयस्वेति स्थितये जगदीशितुः

एतत्प्रतिष्ठानविधौ स्वयमत्राऽऽगमिष्यति । पद्मयोनिःस्वयंसार्द्धंसिद्धब्रह्मर्षिदैवतैः

तदत्र क्रियते को वा सम्भारो ज्ञायते कथम्।

इत्युक्तवन्तं ते प्रोचुर्देवा भद्माधिकारिणः ॥ ३९ ॥

देवा ऊचुः

न जानीमो वयमपि तदस्माकं गुरुर्गुरुः। इदानीं न वशेऽस्माकं सहि स्वर्गपरोहितः

पद्मनिधिरुवाच

स्वामिन्विधेरनुज्ञानादागतोऽस्मि त्वया सह।

कर्त्तव्यं किं मया चाऽत्र किम्वा वस्तु प्रतीक्ष्यते ॥ ४१ ॥

जैमिनिरुवाच

इतिह्यालप्यमानानां नारदः पुरतः स्थितः। ब्रह्मणा प्रेषितः पूर्वं सर्वशास्त्रविशारदः

सर्वसम्भारवस्तूनि यथाशास्त्रंमुने कुरु। सम्पादयिष्यति तव शासनात्पद्मकोनिधिः

तं दृष्ट्वा ते मुदा युक्ता उत्तस्थुर्ब्रह्मणः सुतम्। षडर्घ्यपूजया तस्यपूजांचक्रे नृपोत्तमः

प्रणेमुस्तेऽपि तं देवा मनुष्याकारधारिणः।

ऊचे तमिन्द्रद्युम्नोऽपि प्रतिष्ठाविधिवस्तुनि ॥ ४५ ॥

नाऽहंवेद्मि मुनिश्रेष्ठ! चिरात्त्यक्तः पुरोधसा। आदेशयक्रमाद्ब्रह्मन्सम्पाद्यं यद्यदेव हि

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
इन्द्रद्युम्नराजकृतभगवत्स्तुतिनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

रथनिर्माणवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

इत्युक्ते नारदः सोऽथ यथाशास्त्रंविचार्यवै। आलेख्यक्रमशः पत्रे राज्ञेतस्मै न्यवेदयत्
राजाऽपि पत्रं तच्छ्रुत्वासोऽवधार्य पुनःपुनः। प्रददौपद्मनिधयेलिखितान्यत्रयानिवै
सम्पाद्य पद्मनिधेशालां स्वर्णमयीं कुरु। ब्रह्मणः सदनं दिव्यं ब्रह्मर्षीणाञ्चनिर्मलम्
इन्द्रादीनां सुराणां च सिद्धानां मर्त्यवासिनाम्।
मुनीन्द्राणां निवासाय राज्ञां पातालवासिनाम् ॥ ४ ॥
तथा च नागराजानां निधे! त्रैलोक्यवासिनाम्। यथायोग्यासनैर्युक्तंगृहंगृहमतन्द्रितः
कारयाऽऽशु निधे! द्रव्यसम्भारंयावदेवतु। विश्वकर्माऽपिचतवसाहाय्यंरचयिष्यति
इत्यादिशन्तं स मुनिरिन्द्रद्युम्नमुवाच वै। सम्भारान्पृथगेतद्धि कर्त्तव्यं व्यवधानतः
स्वर्णैः सुघटितं साधुरथत्रयमलङ्कृतम्। दुकूलरत्नमालाद्यैर्बहुमूल्यैर्दृढं महत् ॥ ८
श्रीवासुदेवस्य रथो गरुडध्वजचिह्नितः। पद्मध्वजः सुभद्राया रथमूर्द्धनि धार्यताम्
रथः षोडशचक्रस्तु विष्णोः कार्यः प्रयत्नतः। चतुर्दश बलस्यैव सुभद्रायास्तु द्वादश
हस्तषोडशविस्तारो रथश्चक्रधरस्य तु। चतुर्दश बलस्यैव सुभद्रायास्तु द्वादश ॥
आसनं जगतां भूयः स्वयं स्वासनविग्रहः।
तद्याने जगतां नाथस्ततो यानं न विद्यते ॥ १२ ॥

पश्येच्चराचरं विश्वं ज्ञानादथ सुनिर्मले । स्थितो हस्ततले नित्यं निर्मलस्तस्यदर्पणः

तलस्थत्वादसौ तालः सदा तेनाऽङ्कितः प्रभुः ।

ततः स एव शेषस्य बलभद्रावतारिणः ॥ १४ ॥

अथवासीरिणःकार्यंसीरमेवध्वजोत्तमम् । ध्वजःसुनिर्मलःकार्यस्तस्मात्तालध्वजोमतः

न वासितव्यो देवोऽसावप्रतिष्ठे रथे नृप !। प्रासादेमण्डपे वापिपुरेतन्निष्फलंभवेत्

तस्मात्प्रतिष्ठा प्रथमं हरेः कार्यारथस्य वै । सम्भारःक्रियतांतस्यह्यनुष्ठेयामयातुसा

इत्याज्ञांमत्पितुर्लब्ध्वा शीघ्रमायाम्यहं नृप !। तस्य तद्वचनंश्रुत्वाघटितंस्यन्दनत्रयम्

निधिसम्पादितैर्द्रव्यैरेकाह्नाद्विश्वकर्मणा ।

स्वक्षं सुचक्रं सुस्तम्भं सुविस्तीर्णं सुतोरणम् ॥ १९ ॥

सुध्वजं सुपताकं च नानाचित्रमनोहरम् । विचित्रबन्धमिथुनपुत्तलीवलयान्वितम्

अर्द्धहाटकनिर्व्यूढं साक्षाद्रविरथोपमम् । मेघगम्भीरनिर्घोषं दृष्ट्वा कर्षगुणैर्युतम्

वातरंहोहयैर्युक्तं शतसङ्ख्यैः सितप्रभैः ॥ २१ ॥

यथाशास्त्रविधानेन नारदेन प्रतिष्ठितम् । सुलग्ने सुमुहूर्त्ते च सुतिथौ ज्योतिषोदिते

मुनय ऊचुः

भगवञ्जैमिने! ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि मतो हि नः ॥ २३ ॥

विधिना केन हि रथः प्रतिष्ठाप्योहरेरयम् । यथावद्वद नोयेनजानीमोविधिविस्तरम्

जैमिनिरुवाच

यथाप्रतिष्ठितं तेन नारदेन महात्मना । तद्वो वदिष्यामि विधिं यथा दृष्टं पुरा मया

रथस्येशानदिग्भागेशालांकृत्वासुशोभनाम् । तन्मध्येमण्डपंकृत्वावेदिंतत्रसुनिर्मलाम्

चतुरस्रां चतुर्हस्तमितां हस्तोच्छ्रितां द्विजाः । प्रतिष्ठापूर्वदिवसेरात्रावुत्तरतःशुभे

मुहूर्ते स्वस्तिवाच्याऽथ कारयेदङ्कुरार्पणम् । द्वात्रिंशद्देवताभ्यश्चबलिंदत्त्वायथाविधि

प्रातस्ततो वेदिकायां मध्ये मण्डलमालिखेत् ।

पद्मं वा स्वस्तिकं वाऽपि कुम्भं तत्र निधापयेत् ॥ २६ ॥

पञ्चद्रुमकषायं च तन्मध्ये पूरयेत्सुधीः । गङ्गादिपुण्यतोयानि पल्लवान् समृत्तिकाः

सर्वगन्धान्पञ्चरत्नसर्वौषधिगणं तथा । पूरयित्वा विधानेन आचार्यः प्राङ्मुखःशुचिः
विष्णुं स्मरन्पञ्चगव्यं पश्चादपि प्रपूरयेत् । दुकूलवेष्टितंकण्ठे माल्यैर्गन्धैःसुशोभनैः
फलपल्लवसंयुक्तं कृतकौतुकमङ्गलम् । पूरयेत्तत्र देवेशं नरसिंहमनामयम् ॥ ३३ ॥
मन्त्रराजेन विधिवदुपचारैस्तथान्तरैः । प्रार्थयित्वाप्रसादायतस्मिन्नावाह्य तं हरिम्
बाह्योपचारैर्विविधैःपूजयेद्विधिवद्द्विजाः । वायव्यांतस्यकुम्भस्यसमिदाज्यचरुंतथा
अष्टोत्तरसहस्रं च जुहुयाद्विधिवद्गुरुः । सम्पातान्प्रापयेत्तत्र कुम्भमध्ये तदन्ततः ॥
रथं सुशोभनं कृत्वा पताकागन्धमाल्यकैः । सर्वाङ्गंसेचयेत्तस्यगन्धचन्दनवारिभिः

धूपयेत्कालागुरुणा शङ्खकाहालनिस्वनैः ।
ध्वजे तस्य नृसिंहस्य प्रतिष्ठाप्य समीरणम् ॥ ३८ ॥

पूजयित्वा विधानेन रक्तस्रग्गन्धमाल्यकैः । इमं मन्त्रं समुच्चार्य सुपर्णम्प्रार्थयेत्ततः ॥

यो विश्वप्राणहेतुस्तनुरपि च हरेर्यानकेतुस्वरूपो,
यं सञ्चिन्त्यैव सद्यः स्वयमुरगवधूवर्गगर्भाः पतन्ति ।
चञ्चच्चण्डोरुतुण्डत्रुटितफणिवसारक्तपङ्काङ्कितास्यं,
वन्दे छन्दोमयं तं खगपतिममलं स्वर्णवर्णं सुपर्णम् ॥ ४० ॥

ब्रह्मघोषैः शङ्खनादैर्नानावाद्यसुविस्तरैः । रथमूर्ध्नि स्थापयेत्तं चारुसूक्तं समुच्चरन् ॥
तस्योपरिष्टात्तं कुम्भं समन्तात्प्लावयन्रथम् । त्रिरुच्चरन्मन्त्रराजं सेचयेद्ब्रह्मणा सह
ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा ब्रह्मणेदक्षिणां ददेत् । आचार्यंदक्षिणांदद्याद्येनतुष्यतितद्गुरुः
ब्राह्मणान्भोजयेदन्ते पायसैर्मधुसर्पिषा । द्वादशाक्षरमन्त्रेणबलभद्रस्य कारयेत् ॥ ४४
लाङ्गलं च पविरवन्मन्त्रःस्याल्लाङ्गलध्वजे । अथवाद्विषड्वर्णोपिमूलमन्त्रः प्रकीर्तितः
लक्ष्मीसूक्तेनभद्रायाःप्रतिष्ठाप्योरथस्तथा । नाभिह्रदान्मुरारेस्त्वंब्रह्माण्डावलिरूपधृक्

आसनं चतुरास्यस्य श्रियो वास! स्थिरो भव ।
इमं मन्त्रं समुच्चार्य ध्वजपद्मं समुच्छ्रयेत् ॥ ४७ ॥

इयान्विशेषो हविषा त्रयाणां च पृथक्पृथक् । पञ्चपञ्चभिर्होतव्यमेकैकं तु विभागशः
इत्थं रथान्प्रतिष्ठाप्य सुवर्णं गां च वत्सकम् । धान्यं च दक्षिणां दद्यात्सम्यग्देवस्य भक्तितः

एवं प्रतिष्ठिते तत्र स्यन्दनेऽथ सुभूषिते । आरोप्य देवं विधिवद्ब्रह्मघोषपुरःसरम् ॥
जयमङ्गलशब्दैश्च नानावाद्यपुरःसरैः । चामरान्दोलनैर्धूपैः पुष्पवृष्टिभिरेव च ॥ ५१ ॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्नीयते स्म रथं प्रति । हयैः सुलक्षणैर्दान्तैर्वलीवर्दैरथापि वा ॥
पुरुषैर्विष्णुभक्तैर्वा नेतव्या ह्यप्रमादतः । प्रीणयित्वा जनं सर्वं भक्ष्यभोज्यादिलेपनैः
रथस्योपरि देवेभ्यो बलिमन्त्रेणभोद्विजाः । बलिंगृह्णन्तुभोदेवाआदित्यावसवस्तथा
मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः । असुरायातुधानाश्च रथस्थाश्चैव देवताः
दिक्पाला लोकपालाश्चयेचविघ्नविनायकाः । जगतःस्वस्तिकुर्वन्तुदिव्यामहर्षयस्तथा
अविघ्नमाचरन्त्वेतेमा सन्तु परिपन्थिनः । सौम्या भवन्तुतृप्ताश्चदैत्याभूतगणास्तथा
ततस्तु नीयते देवः समभूमौ समुच्चरन् । मन्त्रंवैष्णवगायत्रीं विष्णोःसूक्तंपवित्रकम्
वामदेव्यैः पवित्रैश्च मानस्तोक्यै रथन्तरैः । ततःपुण्याहघोषेणकृतवादित्रनिःस्वनम्
शनैः शनैरथो नेयो रथःस्नेहात्तुचक्रिणः । तत्रोत्पातान्प्रवक्ष्यामिरथेऽत्रद्विजसत्तमाः
ईषाभङ्गे द्विजभयं भग्नेऽक्षे क्षत्रियक्षयः । तुलाभङ्गे वैश्यनाशः शम्या शूद्रभयं भवेत्
धुराभङ्गे त्वनावृष्टिः पीठभङ्गे प्रजाभयम् । परचक्रागमं विद्याच्चक्रभङ्गे रथस्य तु ॥
ध्वजस्य पतने विप्रा नृपोऽन्यो जायतेध्रुवम् । प्रतिमाभङ्गतायांतुराज्ञोमरणमादिशेत्
पर्यस्ते तु रथे विप्राः सर्वजानपदक्षयः । उत्पन्नेष्वेवमाद्येषु उत्पातेष्वशुभेषु च ॥६४
बलिकर्म पुनः कुर्याच्छान्तिहोमं तथैवच । ब्राह्मणान्भोजयेद्भूयो दद्याद्दानानिचैवहि

पूर्वोत्तरे च दिग्भागे रथस्याऽग्निं प्रकल्पयेत् ।
समिद्भिर्घृतमध्वाज्यमूलाग्राभिश्च होमयेत् ॥ ६६ ॥

पालाशाभिर्द्विजश्रेष्ठा मन्त्रराजेन दीक्षितः । सोमायाऽग्नयेप्रजाभ्यःप्रजानां पतये तथा
ग्रहेभ्यश्च ब्रह्मणे च दिक्पालेभ्यस्तदन्ततः । यत्र यत्र रथे दोषास्तत्र तत्र चदीक्षितः

जुहुयात्प्रतिष्ठामन्त्रेण विशेषः सर्वतो भवेत् ।
ब्राह्मणैः सहितः कुर्याद्धोमान्ते शान्तिवाचनम् ॥ ६९ ॥
स्वस्ति भवतु विप्रेभ्यः स्वस्ति राज्ञेऽस्तु नित्यशः ।
गोभ्यः स्वस्ति प्रजाभ्यस्तु जगतः शान्तिरस्तु वै ॥ ७० ॥

स्वस्त्यस्तु द्विपदे नित्यं शान्तिरस्तु चतुष्पदे ।
शं प्रजाभ्यस्तथैवाऽस्तु शं तथाऽऽत्मनि चास्तु नः ॥ ७१ ॥
शान्तिरस्तु च देवस्य भूर्भुवःस्वःशिवं तथा ।
शान्तिरस्तु शिवं चाऽस्तु सर्वतः स्वस्तिरस्तु नः ॥ ७२ ॥

त्वं देव! जगतः स्रष्टापोष्टाचैव त्वमेव हि । प्रजाः पालय देवेश! शान्तिकुरु जगत्पते
यात्राकारणभूतस्य पुरुषस्य च भूपते !। दुष्टान्ग्रहांस्तु विज्ञायग्रहशान्ति समाचरेत्॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वाद-
इन्द्रद्युम्नस्यभगवद्रथप्रतिष्ठाविधानंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नद्वाराभगवत्प्रतिष्ठायोजनवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

निरुत्पातं स मे देशे विधिवर्त्तनयाऽपि च । प्रासादनिकटं देवाः प्रापिताः सुमुहूर्त्तके
ततः शालासुमहती रत्नवर्णविनिर्मिता । निदेशादिन्द्रद्युम्नस्य निर्मिता विश्वकर्मणा ॥

सभार्चनायां वस्तूनि हवींषि च समित्कुशाः ।
भोज्यं नानाविधं गीतनृत्यांश्च विविधांस्तथा ॥ ३ ॥

साम्राज्ये यादृशी पूर्वं सम्पत्तिरभवत्क्षितौ । ततः श्रेष्ठतरा विप्राः प्रतिष्ठायांबभूवह

गालोनाम महीपालस्तदा क्षितितलेऽभवत् ।
सोऽप्यत्र प्रतिमां कृत्वा माधवाख्यां दृषन्मयीम् ॥ ५ ॥

स्थापयित्वाऽत्र प्रासादे पूजयामासऋद्धिमत् । कनीयांसंच प्रासादं निर्मायनृपसत्तमः
तत्रतांस्थापयामासततोनिष्क्रम्यसत्वरम् । ततोऽस्यनृपतिदूतमुखाच्छ्रुत्वास्यकर्मतत्

गालोऽभ्यागात्ससैन्यः सन्क्रुद्धस्तं नीलपर्वतम् ।
दृष्ट्वा प्रतिष्ठासम्भारं मर्त्यैः स्वप्नेऽपि दुर्लभम् ॥ ८ ॥
विस्मयताविष्टचेताःसतस्थौगालोनराधिपः । किमेतदितिवृत्तान्तंकोवाकारयतीदृशम्
यत्नाद्दिव्यं स विज्ञाय इन्द्रद्युम्नं नराधिपम् । ब्रह्मलोकादागतं तं कर्त्तारं देववेश्मनः
प्रतिष्ठापयितुं देवैः सार्द्धं सम्भारकारकम् । सहितं पद्मनिधिना गुरुणा नारदेन च ॥
ब्रह्माणंचाऽऽगमिष्यन्तंप्रतिष्ठायैसुरोत्तमम् । श्रुत्वासर्वंचवृतान्तंतद्राजादिव्यचेष्टितम्
मेने कृतार्थमात्मानं तद्राज्ये परमाद्भुतम् । इतः श्रेयस्करं कर्म न भूतं न भविष्यति
तदस्य निकटे स्थित्वा ज्ञात्वा कर्मक्रमं विधिम् ।
उत्सवांश्चाऽपि विज्ञाय करिष्ये प्रतिवत्सरम् ॥ १४ ॥
अमुं दारुमयं साक्षाद्ब्रह्मरूपं जनार्दनम् । अभाग्योपचयादेतावन्तं कालं न जानता ॥
असेव्यमानेन कृतं जन्मैव विफलं मया । तदेनमिन्द्रद्युम्नं वै प्रणिपत्य जगद्गुरुम् ॥
महाभागवतश्रेष्ठं ब्रह्मलोकादिहागतम् । उपेत्य शरणं साक्षाद्दृष्ट्वा नारायणं विभुम् ॥
प्रतिष्ठितं वै प्रासादे मुक्तिमेष्यामिनिश्चयम् । वैकुण्ठंसप्रतिष्ठाप्यमय्येवारोपयिष्यति
ब्रह्मलोकं गतो योवैकिंक्षितौसोऽवतिष्ठते । उपचारान्समादिश्यकोपंसम्भृत्यचप्रभोः
ब्रह्मणा सहितोऽवश्यं पुनर्यास्यति तत्क्षयम् ।
विचार्य मन्त्रिभिः सार्द्धं ततो गालोऽपि वैष्णवः ॥ २० ॥
इन्द्रद्युम्नस्य निकटं विनीतः प्रययौ मुदा । गत्वा तं दूरतो दृष्ट्वा प्रणिपातपुरःसरम्
बद्धाञ्जलिपुटो राजा मूर्ध्निवीक्षन्ससाध्वसम् । शनैःशनैर्ययौतस्यनिकटंगालपार्थिवः
देव ! त्वं राजराजोऽसि मर्त्योऽसि ब्रह्मलोकगः ।
किं स्तौमि नृपकीटोऽहं त्वां जीवन्मुक्तमीश्वरम् ॥ २३ ॥
अज्ञात्वामहिमानं ते सचिवैर्मन्त्रयन्मुहुः । योद्धुमभ्यागतो देव! दृष्ट्वा ते पौरुषं महत्
अतिमानुषमाश्चर्यं पदं चाऽपि शचीपतेः । दृष्टं तन्निश्चितं देव! ब्रह्मलोकागतस्य हि॥
ईदृशं हि महत्कर्म यदाज्ञाकृन्महानिधिः । चेतः प्रसादप्रवणं मयि धेहि सुरोत्तम !॥
त्रैलोक्यवासिनो देव यदाज्ञावशवर्तिनः ॥ २७ ॥

जैमिनिरुवाच

इत्थं विज्ञापयन्तं तं गालं नृपतिकुञ्जरम् । स्मयमान उवाचेदं राजन्किं बहुभाषसे ॥
भवानपि हरेर्भक्तः सार्वभौमो महीपतिः । सामान्यमेतद्राज्ञां वै भूस्वाम्यं भुवि वर्त्तताम्
साम्प्रतं हि भवानत्र पृथिव्यामेकपार्थिवः । नृपायत्ताः क्रियाः सर्वा मर्त्यानाममरुतामपि
अष्टदिक्पालकांशैस्तु ब्रह्मणा निर्मितो नृपः । न ह्यल्पपुण्यकृद्राजा प्रजापालनतत्परः
इह कीर्तिं च धर्मं च यत्रगच्छन्सुवर्त्मनि । प्राप्नोति राजशार्दूलविशेषात्त्वंतु वैष्णवः
प्रासादे स्थापयेद्यस्तु हरेरर्चां विधानतः । न देहबन्धमाप्नोति यातिविष्णोःपरंपदम्
माधवप्रतिमामेतां दारवीं शुभलक्षणाम् । साक्षान्मुक्तिप्रदां भूपस्वयंस्थापितवानसि
निर्विघ्नं कर्म ते जातं ममममन्वन्तरं गतम् । भवेद्वा संशयो मेऽत्र नस्वतन्त्रश्चतुर्मुखः

प्रतिष्ठायै प्रार्थितोऽयं तदन्यः स्थापयेत्कथम् ।
साक्षाद्दार्ववतारस्य प्रासादस्य नृपोत्तम !॥ ३६ ॥

सन्निधानेन चेदत्र विधाताऽनुग्रहिष्यति । तदेनं स्थापयित्वा तु चतूरूपं जनार्दनम्
समर्प्य त्वां गमिष्यामि त्वमेवोपचरिष्यसि । नित्योपहारंयात्राश्च उत्सवांश्चजगत्पतेः
यानेवोपदिशेद्देवः स्वयं वा प्रपितामहः । तांस्तान्प्रयत्नात्कुर्वीतराजा वै धर्मपालकः
ततःसगालोनृपतिःश्रुत्वातच्चिन्तितंस्वयम् । इन्द्रद्युम्नादिष्टमेतदितिप्राप परांमुदम्
तस्थौ तस्याऽन्तिकेगालआज्ञाकारइवस्वयम् । तत्तदाशुकरोत्येषइन्द्रद्युम्नोयदादिशत्
एवं सम्भृतसम्भारः सिंहासनगतः प्रभुः । देवैःपरिवृतश्चेन्द्रद्युम्नः शक्र इवाऽऽबभौ
ततोऽश्रूयन्त निनदाःदिव्यदुन्दुभिजाःशुभाः । मृदङ्गवेणुवीणादितालकाहालनिःस्वनाः
ऐरावतादिकरिणां बृंहितानि बहूनि खे । समन्ताज्जयशब्दाश्चपुष्पवृष्टिविमिश्रिताः

आकाशगङ्गासलिलकणा मन्दारमिश्रिताः ।
दिव्यस्रग्लेपधूपानां गन्धा दिग्व्यापिनस्तथा ।
वैमानिकानां देवानां किङ्किणीजालनिःस्वनाः ॥ ४५ ॥

ततश्चतेजसां राशी रोदसीमध्यपूरकः । आविरासीत्क्षितिगतनयनाच्छादकोद्विजाः
उत्तोलिताक्षिमालाभिःप्रजाभिर्वीक्षितःपुरः । ततःकमारसन्दृश्य विमानाग्र्य प्रजापतेः

स्वर्गहंसशतैः स्कन्धेनोह्यमानः समन्ततः । दिक्पालैश्चामरव्यग्रहस्तैरासेवितः पुरः
जाह्नवीयमुनानीरप्रकीर्णककरेऽभितः । पार्श्वयोश्चन्द्रसूर्याभ्यामुभाभ्यामातपत्रके ॥
धार्यमाणे शनैर्वायोर्गतिचञ्चलचोलके । ब्रह्मर्षिभिर्गौतमाद्यैः स्तूयमानो रहस्यकैः ॥

तन्मध्यस्थः प्रजानाथ! इन्द्रद्युम्नादिभिः स्तुतः ।
आलुलोके देवगणैर्जयशब्दैरभिष्टुतः ॥ ५१ ॥

रम्भादिकाभिर्वेश्याभिर्नृत्यतेस्मससाध्वसम् । हाहाहूहूप्रभृतिभिर्गीयमानश्चगायकैः
सिद्धविद्याधरगणैः सादरं चोपवीणितः । कृताञ्जलिपुटैर्दूरात्तपस्विभिरुपासितः ॥

सावित्रीशारदे तस्य वाक्प्रबन्धैर्विचित्रकैः ।
तोषमासादयन्त्यौ च कोऽन्यस्तत्तोषणे क्षमः ॥ ५४ ॥

जाह्नवीयमुनानीरप्रकीर्णितकलेवरः । ये च गन्धर्वसिद्धाद्या नारदप्रमुखा द्विजाः ॥५५
वेत्रहस्ताःसविनयादिव्यसोपानदर्शनाः । सम्मर्दःसमहानासीद्देवानां दिविगच्छताम्
नकोऽपिगण्यतेदेवःकोवाकेनपथाव्रजेत् । अहंपूर्विकया तेषां व्रजतां त्रिदिवौकसाम्
सम्मर्दातिशयात्तेषां विभ्रंशोऽभूत्स्ववाहनैः । स्रष्टा पाताचसंहर्त्ताजगतांयोजगन्मयः
साक्षाद्व्रजतितत्रैषांसुराणांमहिमाकुतः । तं दृष्ट्वासाध्वसान्नम्रोभक्त्याबद्धाञ्जलिर्नृपः
तैर्देवैर्गालराजेन नारदप्रमुखेन च । सहितो धरणीं प्रायात्साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ ६०
उत्थाय परया भक्त्या प्रहृष्टेनान्तरात्मना । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गं स्वं मन्वानःकृतार्थकम्
पुरतो जगदीशस्य पश्यञ्छुद्धंपितामहम् । कृताञ्जलिपुटो राजा ममज्जाऽऽनन्दसागरे

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
भगवत्प्रतिष्ठायोजननंनामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नद्वाराभगवन्मूर्त्तिचतुष्टयप्रतिष्ठापनवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

अथाऽन्तरिक्षान्निःश्रेणी रत्नकाञ्चननिर्मिता । संलग्ना पादसम्पीठे पद्मयोनेर्विमानगा
सा क्षितिस्पृष्टमूला वै विधातुरवरोहणे । चतुर्व्यासायतापीनसोपानश्रेणिसंयुता ॥
रथप्रासादयोर्मध्ये शक्रचापइवांऽशुमान् । आविर्बभूव सहसासाऽद्भुतं वीक्षितो जनैः
ततो गन्धर्वराजैस्तु रत्नवेत्रकरैर्द्विजाः । एषपन्थाः प्रभो ह्येहि इत्यादेशितमार्गकैः ॥
दुर्वाससो नारदस्य करयोर्दत्तहस्तकः । सोपानैरवतीर्णाऽथ पुनानश्चक्षुषा जगत् ॥

स्मयमानो रथान्दृष्ट्वा प्रासादं समलङ्कृतम् ।
दिगन्तव्यापिनींशालां रत्नस्तम्भोपशोभिताम् ॥ ६ ॥

शक्रस्याऽप्यद्भुतकरीं सर्वसम्भारसम्भृताम् । अवातरद्विमानात्स देवब्रह्मर्षिराजभिः

किरीटदत्ताञ्जलिभिः स्तूयमानः समन्ततः ।
कटाक्षेणाऽनुगृह्णाति यां दिशं स पितामहः ॥ ८ ॥

तत्राऽञ्जलीनां सम्मर्दाः कोटयः शिरसा धृताः । पादाब्जप्रणतंदृष्ट्वाइन्द्रद्युम्नंप्रजापतिः
उवाच प्रश्रयगिरास्मितभिन्नोष्ठसम्पुटः । अङ्गुल्यानिर्दिशन्देवान्पितॄन्ब्रह्मर्षितापसान्
सिद्धविद्याधरान्यक्षगन्धर्वाप्सरस्तथा । एकत्र मिलितान्सर्वान्युगपन्मोदनिर्भरान् ॥
पश्येन्द्रद्युम्नभाग्यं ते सर्वलोकवशीकरम् । त्वदर्थमेकदा सर्वे मां पुरस्कृत्य सङ्गताः

इत्युक्त्वा प्रययौ शीघ्रं नारायणरथं ततः ।
प्रणिपत्य जगन्नाथं त्रिः परीत्य पितामहः ॥ १३ ॥

आनन्दसिन्धुसम्मग्नःसरोमाञ्चवपुःस्वयम् । स्वमात्मानंनुनावाऽथप्रत्यक्षंस्वरगद्गदम्

ब्रह्मोवाच

नमस्तुभ्यं नमोमह्यं तुभ्यं मह्यं नमोनमः । अहं त्वंत्वमहंसर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥

महदादि जगत्सर्वंमायाविलसितंतव । अध्यस्तंत्वयिविश्वात्मंस्त्वयैवपरिणामितम्
यदेतदखिलाभासं तत्त्वदज्ञानसम्भवम् । ज्ञाते त्वयिविलीयेत रज्जुसर्पादिबोधवत्
अनिर्वक्तव्यमेवेदं सत्त्वात्सत्त्वविवेकतः । अद्वितीय जगद्भास स्वप्रकाशनमोऽस्तु ते
विषयानन्दमखिलं सहजानन्दरूपिणः । अंशं तवोपजीवन्ति येन जीवन्ति जन्तवः

निष्प्रपञ्च! निराकार! निर्विकार! निराश्रय !।
स्थूलसूक्ष्माणुमहिमन्स्थौल्यसूक्ष्मविवर्जितः !॥ २० ॥
गुणातीत! गुणाधार! त्रिगुणात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २१ ॥

त्वन्माययामोहितोऽहंसृष्टिमात्रपरायणः । अद्याऽपिनलभेशर्मअन्तर्यामिन्नमोऽस्तुते

त्वन्नाभिपङ्कजाज्जातो नित्यं तत्रैव संस्तुवन् ।
नाऽतिक्रमितुमीशोऽस्मि मायां ते कोऽन्य ईश्वरः ॥ २३ ॥

अहं यथाऽण्डमध्येऽस्मिन्रचितःसृष्टिकर्मणि । तथानुलोमकलिताब्रह्माण्डेब्रह्मकोटयः

सार्द्धत्रिकोटिसङ्ख्यानां विरिञ्चीनामपि प्रभो !।
नैकोऽपि तत्त्वतो वेत्ति यथाऽहं त्वत्पुरः स्थितः ॥ २५ ॥

नमोऽचिन्त्यमहिम्ने ते चिद्रूपाय नमोनमः । नमोदेवाऽधिदेवाय देवदेवाय ते नमः ॥
दिव्यादिव्यस्वरूपाय दिव्यरूपाय ते नमः । जरामृत्युविहीनायमृत्युरूपाय ते नमः
ज्वलदग्निस्वरूपाय मृत्योरपि च मृत्यवे । प्रपन्नमृत्युनाशायसहजानन्दरूपिणे ॥

भक्तिप्रियाय जगतां मात्रे पित्रे नमोनमः ॥ २८ ॥

प्रणतार्तिविनाशाय नित्योद्योगिन्नमोस्तुते । नमोनमस्तेदीनानां कृपासहजसिन्धवे
पराय पररूपाय परम्पराय ते नमः । अपारपारभूताय ब्रह्मरूपाय ते नमः ॥ ३० ॥
परमार्थस्वरूपाय नमस्ते परहेतवे । परम्परापरिव्याप्तपरतत्त्वपराय ते ॥ ३१ ॥
प्रणतार्तिविनाशाय नमः स्वात्मैकभानवे । पुरायत्प्रर्थितं स्वास्मिन्सृष्टिभारावतारणे
तत्कुरुष्व जगन्नाथ सहजानन्दरूपभाक् । त्वयिप्रसन्ने किं नाथ दुर्लभं मयि विद्यते॥
त्वयैवाऽहं पृथग्लीलाभेदाद्भिन्नः कृपाऽम्बुधे । अज्ञानतिमिरच्छन्ने जगत्कारागृहान्तरे

भ्राम्यन्न्त्रमाप्नोति त्वामृते मुक्तिहेतवे ॥ ३५ ॥

नमो नमस्ते जगदेकवन्द्य! सुरासुराभ्यर्चितपादपद्म !।
नमोनमस्तापहरैकचन्द्र! नमोनमः शर्मसुबोधसान्द्र !॥ ३६ ॥
नमोनमः कल्पकदूरभूत दुष्प्राप्यकामप्रदकल्पवृक्ष !।
दीनाशरण्यप्रणतैकदुःखसङ्घोद्धृतौ नित्यसुबद्धपक्ष !॥ ३७ ॥

प्रसीद जगतांनाथ! मग्नानां दुःखसागरे। कटाक्षलीलापातेनत्रायस्व करुणाकर!
स्तुत्वेत्थं श्रीजगन्नाथं वेदार्थैः स पितामहः। जगाम सीरिणंद्रष्टुमवतीर्णंधराधरम्
प्रणम्यपरया भक्त्या तुष्टाव बलिनं मुदा। नमः शिरस्तेदेवेश आपस्तेविग्रहः प्रभो
पादौक्षितिर्मुखं वह्निः श्वसितानि समीरणः। मनस्तेह्योषधीनाथश्चक्षुषीतेदिवाकरः
बाहवः ककुभोनाथ नमस्तेज्ञानदर्पण !। चतुर्दशानां लोकानांमूलस्तंभायसीरिणे॥
पदाम्भोजप्रपन्नानां नमः पापौघदारिणे। अनन्तवक्त्रनयनश्रोत्रपादाक्षिबाहवे॥
नमोऽनादिमहामूलतमःस्तोमौघभानवे। त्रयीमयत्रिधादोषनाशायत्र्यवतारिणे॥
फणामणिफणाकारक्षितिमण्डलधारिणे। नमः कालाऽग्निरुद्राय महारुद्राय ते नमः
भोगतल्पफणाच्छत्रमध्यसुप्ताय ते नमः। महार्णवजलैर्वृद्ध एकीभूते जगत्त्रये॥
त्वमेवशेषोभगवन्सहस्रफणमण्डितः। फणामणिगणव्याजसम्भृताखिलभौतिकः

त्वमेव नाथः सर्वेषां स्रष्टा पालयिता विभो !।
अत्ता धारयिता नित्यं मदाद्यास्त्वन्निमित्तकाः॥ ४८ ॥

एषनारायणो देवो वेदान्तेपूषगीयते। त्वत्तो न भिन्नोभगवन्कारणाद्भेदभागसि॥

शय्या त्वं शयिता ह्येष छाद्यः सञ्छादको भवान्।
यो वै विष्णुः स वै रामो यो रामः कृष्ण एव सः॥ ५० ॥

युवयोरन्तरं नास्ति प्रसीदत्वं जगन्मय। इतिस्तवन्ते बलिनं प्रणम्य परमेश्वरम्
ईश्वरीं जगतां द्रष्टुं सुभद्रास्यन्दनं ययौ। जय देवि! जगन्मातः! प्रसीदपरमेश्वरि!
कार्यकारणकर्त्रींत्वं सर्वशक्त्यै नमोऽस्तुते। सर्वस्यहृदिसन्निविष्टेज्ञानमोहात्मिकेसदा

कैवल्यमुक्तिदे भद्रे! त्वां! नमामि सुरारणिम्।
देवि! त्वं विष्णुमायाऽसि मोहयन्ती चराचरम्॥ ५३ ॥

हृत्पद्मासनसंस्थासि विष्णुभावानुसारिणी ।
त्वमेव लक्ष्मीर्गौरी च शची कात्यायनी तथा ॥ ५५ ॥
यच्च किं चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वा खिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य शक्तिस्त्वं स्तोतुं त्वां कस्तु शक्तिमान् ॥ ५६ ॥

जय भद्रे! सुभद्रे! त्वं सर्वेषां भद्रदायिनि !। भद्राभद्रस्वरूपेत्वंभद्राकालिनमोऽस्तु ते
त्वं माता जगतां देवि! पिता नारायणो हिसः । स्त्रीरूपंत्वंसर्वमेवपुंरूपोजगदीश्वरः

युवयोर्न हि भेदोऽस्ति नास्त्यन्यत्परमेव हि ।
यथा वयं नियुक्ता हि त्वया वै विष्णुमायया ॥ ५६ ॥

निर्देशकारिणो नित्यं भ्रमामः परमेश्वरि !। वृत्तिः प्रवृत्तिः परमाक्षुधानिद्रा त्वमेव च
आशात्वमाशापूर्णा च सर्वाशापरिपूरिका । मुक्तिहेतुस्त्वमेवेशिवन्धहेतुस्त्वमेवहि
सर्वज्ञानप्रदे नित्ये भक्तानां कल्पवल्लरी । त्राहिपादाब्जनम्रं मां कृपापाङ्गविलोकनैः
स्तुत्वेत्थं भद्ररूपां तां तत्समीपस्थितं रथे । चक्रंसुदर्शनंविष्णोश्चतुर्थंवपुरास्थितम्
प्रणम्यपरया भक्त्या इमांस्तुतिमुदाहरत् । सुदर्शन! महाज्वाल! कोटिसूर्यसमप्रभ !॥
अज्ञानतिमिरान्धानां वैकुण्ठाध्वप्रदर्शक । नमस्ते नित्यविलसद्वैष्णवस्वनिकेतन
अवार्यवीर्यंयद्रूपं विष्णोस्तत्प्रणमाम्यहम् । प्रणम्यस्तुत्वादेवान्सरथेभ्यःपरिवृत्य च
इन्द्रद्युम्ननारदाभ्यामादिष्टपदपद्धतिः । नीलाचलमथारोहत्प्रासादं द्रष्टुमुत्सुकः ॥६७
ततः स गत्वा प्रासादसमीपं दैवतैः सह । ददर्शशालांरुचिरांस्वचित्ताभिमतांद्विजाः
तन्मध्ये स्थापयामासदैवतोरगभूपतीन् । ब्रह्मर्षीन्योगिनोविप्रान्वैष्णवांश्चतपस्विनः
दिव्यसिंहासनवरे नृपेण प्रतिपादिते । स पादपीठे भगवानुपविष्टः स्वयं विभुः ॥
शान्तिकं पौष्टिकं कर्तुं भारद्वाजं महामुनिम् । पितामहाज्ञयाभूपोवरयामासऋद्धिमत्
प्रतिष्ठायां तु ये देवा बलिपूजाविधौ मताः । होमेषु च तथा तेवैध्यानरूपमुपाश्रिताः
आज्ञया पद्मयोनेस्तु चतुर्दिग्भागमाश्रिताः । सुपूजिता गन्धपुष्पमालाऽलङ्कारभूषणैः
ततः कर्म प्रववृते भारद्वाजेन धीमता । प्रत्यक्षं देवदेवस्य सर्वेषां च दिवौकसाम् ॥
त्रैलोक्यवासिनां पूजां चकार नृपतिर्मुदा । साङ्गोपाङ्गं समभ्यर्च्य जगत्स्रष्टारमग्रतः

ततः सम्पूजिताः सर्वे तेन त्रैलोक्यवासिनः ।
पश्यन्तोऽवस्थितं मध्ये साक्षाद्ब्रह्माणमव्ययम् ॥ ७६ ॥

वपुष्मन्तं जगन्नाथं प्रत्यक्षं ब्रह्मरूपिणम् । इन्द्रद्युम्नप्रसादेन जीवन्मुक्तत्वमाप्नुवन्
कलेवरं भगवतः प्रासादं सुमनोहरम् । प्रतिष्ठाय भरद्वाजः समुच्छ्रितमहाध्वजम्॥

व्यज्ञापयत्प्रतिष्ठायै जीवस्याऽथ पितामहम् ।
समुत्तस्थौ ततो ब्रह्मा कृतस्वस्त्ययनः स्वयम् ॥ ७६ ॥

ऋषिभिर्नारदाद्यैश्च विद्वद्भिर्ब्राह्मणैस्तथा । राजभिः क्षत्रियैर्नागैः सहितःपरमर्षिभिः
गन्धर्वैर्गायमानेषु दिव्यगानेषु सुस्वरम् । माङ्गल्योचितरागेषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च
शाकुनेषु च सूक्तेषु पठ्यमानेषु च द्विजैः । शङ्खकाहालमुरजभेरीवादित्रवैणवे ॥ ८२॥
शब्दे प्रमूर्च्छति ततः सर्वे ते स्यन्दनोपरि । गत्वाऽवतारयामासूरथात्सोपानवर्त्मनि

सावधानाः समाधिस्था भक्त्या संयमितात्मकाः ।
पार्श्वयोर्भजयोर्मूर्ध्नि पादयोर्न्यस्तपाणयः ॥ ८४ ॥

शनैः शनैः सलीलं तेनारायणनामयम् । वासंवासंतूलिकासुनिन्युःप्रासादसन्निधिम्
उपर्यपरि सन्तानवृष्टिपूत्पतितासु च । जय कृष्ण! जगन्नाथ! जय सर्वाऽघनाशन !॥
जय लीलादारुतनो! जय वाञ्छाफलप्रद !। जय संसारसम्मग्नलीलोद्धार! जयाऽव्यय
जयानुकम्पापाथोधे! जयदीनपरायण !। जयाऽच्युतजयाऽनन्तजयेशान! नमोऽस्तु ते
एभिः स्तवैः स्तूयमानोब्रह्मणाचस्वयम्भुवा । तुष्टावसमुदायुक्तोनारदश्चोपवीणयन्
रत्नच्छत्रयुगे मूर्ध्नि धार्यमाणेऽथ पृष्ठतः । शशिनाभास्वताभक्त्या दिव्यधूपेनधूपिताः
श्रेणीकृता ह्युभयतः पार्श्वयोश्चामरग्रहाः । सलीलान्दोलनव्यग्रायौवनालङ्कृतास्तथा
एवं च सहिताः सर्वे कौतूहलसमन्विताः । सुदर्शनं सुभद्रां च बलभद्रमनैषिषुः ॥

प्रासादद्वारि रचिते रत्नस्तम्भेऽथ मण्डपे ।
वासयित्वाऽभिषेकाय सम्मुखाऽऽदर्शमण्डले ॥ ६३ ॥

अधिवासितै रत्नकुम्भैस्तीर्थवायुपसम्भृतैः । सूक्ताभ्यां श्रीपुरुषयोरभिषेकंपितामहः
चकार भगवाँल्लोकसंग्रहार्थं द्विजोत्तमाः ॥ ६४ ॥

ततोऽह्यलंकृतान्देवान्गन्धमाल्योपशोभितान् । नीराजयित्वाभगवान्सस्वयंलोकभावनः
रत्नसिंहासने रम्ये स्थापयामास मन्त्रतः ॥ ६५ ॥

ब्रह्मोवाच

अशेषजगदाधार सर्वलोकप्रतिष्ठित !। सुप्रतिष्ठाऽखिलव्यापिन्प्रासादेसुस्थिरो भव ॥
त्वयि प्रतिष्ठितेनाथ! वयंसर्वेप्रतिष्ठिताः । त्वदाज्ञयाप्रतिष्ठेयंपूर्णाऽऽस्तांत्वत्प्रसादतः
स्थापयित्वा जगन्नाथं स्पृष्ट्वा तस्य हृदम्बुजम् । आनुष्टुभं मन्त्रराजंसहस्रं सजजापह
वैशाखस्याऽमले पक्षेअष्टम्यांपुष्ययोगतः । कृता प्रतिष्ठा भो विप्राःशोभनेगुरुवासरे
तद्दिनं सुमहत्पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् । स्नानं दानं तपो होमः सर्वमक्षय्यमश्नुते ॥
तस्मिन्दिनेये पश्यन्तिमानवाभक्तिभाविताः । कृष्णंरामंसुभद्रांचमुक्तिभाजोनसंशयः
शुक्लाष्टमी यावैशाखेगुरुपुष्ययुतायदा । तस्यामभ्यर्चनंविष्णोः कोटिजन्माघनाशनम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकादशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव खण्डातर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे भगवन्मूर्त्तिचतुष्टयप्रतिष्ठावर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

भगवतोनृसिंहमूर्त्तिपरिग्रहवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

ततः स भगवान्मन्त्रमहिम्ना नरकेसरी । इन्द्रद्युम्नादिभिःसर्वैर्दृष्टोऽद्भुतदर्शनः ॥ १ ॥
लेलिहानो जगत्सर्वंसमन्ताज्ज्वलजिह्वया । कालाग्निरुद्रंसकलंग्रसन्तमिवचोत्थितम्
रोदसीकन्दरं व्याप्य तेजसा तपता भृशम् । अनेकाक्षिमुखग्रीवाकरपादश्रुतिर्विभुः ॥
सर्वाश्चर्यमयो देवः केवलं तेजसो निधिः । भयत्रस्ताःसमुद्विग्नानेशाःस्तोतुमपिप्रभुम्
तं तथाविधमालोक्य नारदः पितरं तदा । पप्रच्छ भगवन्नित्थं कथमेष प्रकाशते ॥५॥

नारद उवाच

अनुग्रहायाऽवतरत्प्रत्युतैष भयप्रदः । सर्वे भयात्स्थिरतराः प्रलयाशङ्किनोऽधुना ॥
त्वमेव भगवल्लीलां जानासि जगतांपते !॥ ७ ॥
तच्छ्रुत्वा नारदवचः पद्मयोनिः स्मिताननः । उवाच कौतुकं वाक्यं सर्वेषामुपकारकम्

ब्रह्मोवाच

अवतीर्णं जगन्नाथं दृष्ट्वा दारुवपुर्धरम् ॥ ९ ॥
अवज्ञास्यन्ति वै लोकाः साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपिणम् ।
अतत्त्ववेदिनो मूढा महिमानं विदन्त्विति ॥ १० ॥
मन्त्रितो मन्त्रराजेन येनाऽसौ परमेष्ठिना । पुराऽभिमन्त्रितो येन विददार महासुरम्
तादृग्रूपं सुदुर्दर्शं प्राप्यमेति भयप्रदम् । मूर्तिरेषा परा काष्ठा विष्णोरमिततेजसः ॥
यामभ्यर्च्यगतिंयान्तिपुनरावृत्तिदुर्लभाम् । नृसिंहाभिमुखःस्तोत्रमिदमाहमुदान्वितः
नमोऽस्तु ते देववरैकसिंह! नमोऽस्तु पापौघगजैकसिंह !।
नमोऽस्तु दुःखार्णवपारसिंह! नमोऽस्तु तेजोमय दिव्यसिंह !॥ १४ ॥
नमोऽस्तु सर्वाऽऽकृतिचित्रसिंह! नमोऽस्तु ते क्लेशविमुक्तिसिंह !।
नमोऽस्तु ते दिव्यवपुर्नृसिंह! नमोऽस्तु ते वीरवरैकसिंह !॥ १५ ॥
नमोऽस्तु ते दैत्यविदारसिंह! नमोऽस्तु देवेष्वधिदेवसिंह !।
नमोऽस्तु वेदान्तवनैकसिंह! नमोऽस्तु ते योगिगुहैकसिंह !॥ १६ ॥
नमोऽस्तु ते सिंह! वृषैकसिंह! नमोऽस्तु नीलाचलशृङ्गसिंह !॥ १७ ॥

जैमिनिरुवाच

स्तुत्वेत्थंदिव्यसिंहंतमिन्द्रद्युम्नंप्रजापतिः । सिंहयन्त्रंसमालेख्यतस्योपरिनिवेश्यच
दीक्षयित्वा मन्त्रराजंसाक्षादाथर्वणोदितम् । आहुर्वैष्णवनिर्वाणं यं वेदान्तपरायणाः
यत्र वेदाश्चचत्वारःसाक्षान्नित्यम्प्रतिष्ठिताः । यमधीत्यमहामन्त्रंमनुःस्वायम्भुवःपुरा
सृष्टिं चकार भगवान्प्राप्तमस्माच्चतुर्मुखात् ।
अणिमादिगुणा यस्य फलं स्यादानुषङ्गिकम् ॥ २१ ॥

एक एव महामन्त्रः पुरुषार्थचतुष्टयम् । प्राप्तुं कारणभूतो हि किं पुनः क्षुद्रकामनाम्
एक एव महामन्त्रः सर्वक्रतुफलप्रदः । सर्वतीर्थप्रदः सर्वदानव्रतफलप्रदः ॥ २३ ॥
यथाऽयं सर्वपापौघतूलराशेर्दवानलः । दिव्यसिंहाकृतिर्देवो मन्त्रराजस्तथा ह्ययम्

एनमभ्यस्य यतयो भवरोगं त्यजन्ति हि ।
यस्य ग्रहणमात्रेण ग्रहापस्माररराक्षसाः ॥ २५ ॥

डाकिन्यो भूतवेतालपिशाचा उरगा ग्रहाः । दूरादेवपलायन्ते नेशते वीक्षितुं च तम्
मन्त्रराजं ततो लब्ध्वा इन्द्रद्युम्नश्चतुर्मुखात् । नृसिंहंशान्तवपुषंलक्ष्मीसंश्रितवक्षसम्
चक्रं पिनाकं दधतं चन्द्रसूर्याग्निचक्षुषम् । जानुप्रसारितकरसरोजद्वन्द्वमुन्नसम् ॥ २८
योगपट्टासनाऽऽरूढंद्वात्रिंशद्दलपद्मके । मन्त्रवर्णमये मध्ये कर्णिकाप्रणवोज्ज्वले ॥२९

सुखासीनं साट्टहासं वीक्षन्तं श्रीमुखाम्बुजम् ।
सटामण्डितवक्त्राब्जं दिव्यरत्नोज्ज्वलाकृति ॥ ३० ॥

फणासहस्रंविस्तार्य पश्चाच्छत्राकृतिंविभोः । ददर्श बलभद्रं तं हललाङ्गलधारिणम्
प्रजहर्ष नृपो दृष्ट्वा तादृशं पुरुशोत्तमम् । विस्मयाविष्टचेताश्च पप्रच्छ कमलासनम्
भगवंश्चित्रमेतद्वै चरितं मधुघातिनः । विज्ञातुं कथमस्माभिः शक्यःस्याल्लोकभावन!
यज्ञान्ते तादृशं रूपं बभार दारुनिर्मितम् । रथस्थं भगवानेवं प्रासादान्तर्न्यवेशयत् ॥

मामाह पूर्वं वाणी सा गगनान्तरिता तदा ।
अपौरुषेयतरुणा चतुर्मूर्तिर्भविष्यति ॥ ३५ ॥

इदानीमेकएवाऽसौ दृश्यते सुप्रतिष्ठितः । माया वांतत्त्वमथ वा तत्त्वतो मे वद प्रभो
श्रवणे यदि मां वेत्सि भाजनं भवभावन !। श्रुत्वैतत्प्रत्युवाचाऽथसंशयानंनृपोत्तमम्

ब्रह्मोवाच

आद्यामूर्तिर्भगवतो नारसिंहाकृतिर्नृप !। नारायणेन प्रथिता मदनुग्रहतस्त्वयि ॥३८॥
दारवी मूर्तिरेषेति प्रतिमाबुद्धिरत्र वै । मा भूत्ते नृपशार्दूल परब्रह्माकृतिस्त्वियम्
खण्डनात्सर्वदुःखानामखण्डानन्ददानतः । स्वभावाद्दारुरेषो हि परं ब्रह्माऽभिधीयते
इत्थं दारुमयो देवश्चतुर्वेदानुसारतः । स्रष्टा स जगतां तस्मादात्मानञ्चापिसृष्टवान्

शब्दब्रह्म परम्ब्रह्म नानयोर्भेद इष्यते । लये तु एकमेवेदं सृष्टौ भेदः प्रवर्त्तते ॥ ४२ ॥

अन्योन्यापेक्षिणौ भूप! शब्दार्थौ हि परस्परम् ।
अर्थाभावे न शब्दोऽस्ति शब्दाभावे न बुद्ध्यते ॥ ४३ ॥

अर्थस्तस्माच्चतुर्वेदाः शब्दा ह्यर्थाश्चतादृशाः । ऋग्वेदरूपी हलधृक्सामवेदोनृकेसरी
यजुर्मूर्त्तिस्त्वियं भद्रा चक्रमाथर्वणं स्मृतम् । वेदश्चतुर्द्धाभेदोऽयमेकराशिरभेदतः ॥
अतस्ते संशयो मा भूदेकस्तु बहुधा विभुः । अवतारेषु चाऽन्येषु न्यायेनैतेनवर्त्तते
भेदाभेदौतथाख्यातौ जगन्नाथस्य ते नृप !। येन ते मनसस्तुष्टिस्तेनभक्त्यासमाचर
सर्वरूपमयो ह्येष सर्वमन्त्रमयः प्रभुः । आराध्यते यथा येन तथा तस्य फलप्रदः
यथा सुशुद्धं कनकं स्वेच्छयाघटितंनृप !। तत्तत्सञ्ज्ञामवाप्येह तत्तत्सन्तोषकारकम्
एवं महिम्ना भगवानत्राविरभवन्नृप । यस्ययावांस्तुविश्वासस्तस्यसिद्धिस्तुतावती
कर्मणा मनसा वाचा विशुद्धेनाऽन्तरात्मना । समाराधय गोविन्दमत्र दारुवपुर्द्धरम्
चतुर्वर्गफलावाप्त्यै यथाऽभिलषितं तव । अनेन मन्त्रराजेनविष्णुमेनं समर्चय ॥५२
नाऽतःपरतरोमन्त्रोनभूतोनभविष्यति । अनेनाभ्यर्चितोविष्णुःप्रीतोभवतितत्क्षणात्
ददातिस्वपुरंचापिभगवान्भक्तवत्सलः । यज्ञैस्तीर्थैर्व्रतैर्दानैस्तपोभिश्चापि तस्यकिम्

नीलाचलस्थं यो विष्णुं दारुमूर्तिमुपास्ति वै ।
तत्त्वं ब्रवीमि ते भूप! श्रुत्वैतदवधारय ॥ ५५ ॥

न्यग्रोधमूलेकूलेऽस्य सिन्धोर्नीलाचलेस्थितम् । दारुव्यानामृतंब्रह्मदृष्ट्वामुच्येन्नसंशयः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
भगवतोनृसिंहपरिग्रहोनामाऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

———

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

भगवतेन्द्रद्युम्नकृतेवरदानम्

जैमिनिरुवाच

इत्युक्त्वा नृपशार्दूलं लोकसंग्रहणाय वै । सिंहाकृतिं स हृदये उद्वास्य कमलासनः
पूर्वं प्रकाशरूपं यद्विष्णोस्तु प्रकटीकृतम् । रथावरोहणे दृष्टाश्चतस्रो मूर्त्तयः पुरा
ता एव सिंहासनगाः सर्वे ते ददृशुः पुनः । द्विषडक्षरमन्त्रेण बलभद्रमपूजयत् ॥३॥
सूक्तेन पौरुषेणैनं नारायणमनामयम् । देवीसूक्तेन चक्रं च द्वादशाक्षरकेण च ॥
पूजयित्वाऽनुग्रहाय पार्थिवस्य न्यवेदयत् ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच

भगवन्देवदेवेश! भक्तानुग्रहकारक !। इन्द्रद्युम्नस्य जन्मानि त्वयि भक्तिम्प्रकुर्वतः ॥
सहस्रं समतीतानि तदन्ते त्वामलोकयत् ॥ ५ ॥
त्वद्दर्शनं हि भगवंस्त्वयि सायुज्यकारणम् ।
यद्यप्ययं भक्तियोगेनेच्छति त्वां समर्चितम् ॥ ६ ॥
तदाज्ञापय येन त्वां भक्तियोगेन भावयेत् । देशकालव्रताद्यैस्तु तथानानोपचारकैः ॥
त्वन्मुखाम्भोजगलितमाज्ञामृतरसं नृपः ।
पिपासुस्त्वां जगन्नाथ! पश्यत्येषोऽनिमेषकम् ॥ ८ ॥

जैमिनिरुवाच

इतिविज्ञापितोदेवःसाक्षात्कमलयोनिना । दारुदेहोऽपि विहसन्प्राह गम्भीरयागिरा

श्रीप्रतिमोवाच

इन्द्रद्युम्न! प्रसन्नस्तेभक्त्यानिष्कामकर्मभिः । त्वदन्येनेदृशी सम्पन्न केनाऽप्यपवर्जिता
वरं ददामि ते भूप! मयि भक्तिः स्थिरास्तु ते ।
उत्सृज्य चित्तकोटिस्तु यन्ममाऽऽयतनं कृतम् ॥ ११ ॥

भङ्गेप्येतस्यराजेन्द्रस्थानंनत्यज्यतेमया। कालान्तरेऽपिनोऽप्यन्यःप्रासादंकारयिष्यति
तवैवकीर्त्तिःसानूनंत्वत्प्रीत्यातत्रमेस्थितिः। सत्यं सत्यं पुनःसत्यंसत्यमेवब्रवीमिते
प्रासादभङ्गेतत्स्थानं न त्यक्ष्यामि कदाचन। अनेनदारुवपुषास्थास्यास्यत्रपरार्द्धकम्
द्वितीयंपद्मयोनेस्तु यावत्पारसमाप्यते। मनोःस्वायम्भुवस्याऽस्यद्वितीयेचचतुर्युगे

कृतस्य प्रथमे ज्येष्ठे दशेति क्रतुसंस्थितिः।
ज्यैष्ठ्यामहं चाऽवतीर्णस्तत्पुण्यजन्मवासरम्॥ १६॥

तस्यां मे स्नपनं कुर्यान्महास्नानविधानतः। प्रत्यर्चायांमहाराजसाधिवासंसमृद्धिमत्
पापं विनाशयिष्यामि कोटिजन्मभिरर्जितम्। सर्वतीर्थक्रतुफलं सर्वदानफलं तथा
पश्यतां चापि राजेन्द्र! फलं तावत्प्रद्यते। न्यग्रोधाद्युत्तरे कूपः सर्वतीर्थमयोऽस्तिहि

स्नानाय पूर्वं निर्माय किञ्चिदाच्छादितं भुवा।
अवतीर्णस्त्वहं पश्चात्तं विविच्य प्रकाशय॥ २०॥

संस्कार्यः स चतुर्दश्यां बलिं दत्त्वा विधानतः। रक्षकक्षेत्रपालायदिशांपालेभ्यएवच
कम्बुकाहालमुरजध्वनिषु सुस्वरेषु च। द्विजातयः स्वर्णकुम्भैरुद्धरेयुस्ततो जलम्

ज्यैष्ठ्यां प्रातस्तने काले ब्रह्मणा सहितं च माम्।
रामं सुभद्रां संस्नाप्य मम लोकमवाप्नुयात्॥ २३॥

स्नाप्यमानं तु यः पश्येन्मां तदा नृपसत्तम!। देहबन्धंचनाऽऽप्नोति स पुनर्न तु पूरुषः
कारयित्वादृढंमञ्चमैशान्यांदिशिमण्डितम्। वितानशोभारचितंचन्दनाम्भःसमुक्षितम्

तत्र मां रामभद्राभ्यां स्नापयित्वा पुनर्नयेत्॥ २६॥

दक्षिणाभिमुखं यान्तंयो मांपश्यतिभक्तितः। तत्तद्ध्रुवमवाप्नोतिमनसायद्यदिच्छति
ततः पञ्चदशाहानि स्थापयित्वा तु मां नृप!। विरूपमभिरूपं वानपश्येत्तु कदाचन

ज्येष्ठस्नानमिदं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २६॥

गुण्डिचाख्यांमहायात्रांप्रकुर्वीथाःक्षितीश्वर!। यस्याःसङ्कीर्तनादेवनरःपापाद्विमुच्यते
माघमासस्य पञ्चम्यामष्टम्यां चैत्रशुक्लके। एतेकालाःप्रशस्ताहिगुण्डिचाख्यमहोत्सवे
विशेषान्मोक्षदाषाढद्वितीया पुष्यसंयुता। ऋक्षाभावे तिथौकार्या सदासाप्रीतयेमम

आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुष्यसंयुता । तस्यां रथे समारोप्यरामंमांभद्रयासह
महोत्सवप्रवृत्त्यर्थं प्रीणयित्वा द्विजान्बहून् । गुण्डिचामण्डपंनाम यत्राहमजनं पुरा
अश्वमेधसहस्रस्य महावेदी तदाऽभवत् । तस्याः पुण्यतमं स्थानंपृथिव्यांनेहविद्यते
यत्राऽजुहोः पञ्चशतवर्षाणि प्रीतये मम । ममप्रीतिकरं स्थानं तस्मान्नान्यद्धरागतम्
यथेयं नीलशिखरी प्रासादेनतवाधुना । चतुर्मुखाऽनुरोधेन महाप्रीतिकरी मम ॥ ३७॥
तथा नृसिंहक्षेत्रे वै महावेदी तव क्रतोः । ममोत्पत्तेश्च निलयं प्रीतिकृन्ममशाश्वतम्

बहुकालं स्थितश्चाऽहं तस्यां मे प्रीतिरुत्तमा ।
आत्मा मे पद्मभूरेष प्रासादे स्थापितोऽमुना ॥ ३९ ॥
अस्यानुरोधात्त्वद्भक्त्या ह्यवतिष्ठेऽत्र नित्यदा ।
दिनानि नव यास्यामि तथा तस्मादिहागतः ॥ ४० ॥

तत्राऽस्तिते महाराज! सर्वतीर्थमयंसरः । तत्तीरेसप्तदिवसान्स्थास्याम्यनुजिघृक्षया

तत्र स्थितं मां पश्यन्तो यान्ति मर्त्या ममाऽऽलयम् ।
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां भुवनत्रये ॥ ४२ ॥
तानि सर्वाणि सरसि मत्सान्निध्याद्व्रजन्ति ते ।
तत्र स्नात्वा च विधिवद्दृष्ट्वा मां भक्तिभावतः ॥ ४३ ॥

जननीजठरे क्लेशं पुनर्नानुभवन्ति हि । नवमेऽह्नि समायान्तं दक्षिणाशामुखं तदा ॥
येपश्यन्तिप्रतिपदमश्वमेधक्रतोःफलम् । प्राप्यभोगानिन्द्रसमान्भुक्त्वान्तेमांविशन्तिते
ममोत्थानं ममस्वापं मत्पार्श्वपरिवर्त्तनम् । मार्गप्रावरणं चैव पुष्यस्नानमहोत्सवम्

फाल्गुन्यां क्रीडनं कुर्याद्दोलायां मम भूमिप !।
दोलायां येऽपि पश्यन्ति दक्षिणामुखपूजितम् ॥ ४७ ॥
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ ४८ ॥

अनयोर्मा समभ्यर्च्य दृष्ट्वा मां प्रणिपत्य च । प्रत्येकमष्टसाहस्रं वाजिमेधफलं लभेत्
चैत्रेसितत्रयोदश्यां कुर्यात्कर्मप्रपूरणम् । चैत्रे मासिचतुर्दश्यां दमनैर्मे प्रपूजनम् ॥

शुक्लपक्षे तु ये लोकाः सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ५० ॥

वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयाऽक्षयसंज्ञिता । तत्र मां लेपयेद्गन्धलेपनैरतिशोभनैः ॥
प्रीतये मम ये कुर्युरुत्सवान्मम शाश्वतान् । चतुर्वर्गप्रदाह्येते प्रत्येकं परिकीर्तिताः ॥

जैमिनिरुवाच

इतिदत्त्वावरं तस्माइन्द्रद्युम्नायभोद्विजाः । ब्रह्माणमाहभगवान्स्मेराम्भोरुहसन्मुखः
चतुर्मुख! तव प्रीत्यै सर्वंसम्पादितंमया । त्वदिच्छाहिममैवेच्छानभेदोह्यावयोर्ध्रुवम्
यन्मां माधवमूर्तिं त्वं पुराप्रार्थितवानसि । तस्यैवपरिपाकोऽयमवतारःकृतोमया

मामत्र दृष्ट्वा त्वभ्यर्च्य प्राणान्सन्त्यज्य मुच्यते ।
क्रमात्सर्वैं त्वया सार्द्धं भूयः सायुज्यमेव च ॥ ५६ ॥

यद्वाचाऽभिलपन्मर्त्योमामत्रहि निषेवते । अवश्यंतदवाप्नोतिसङ्कत्या चाऽत्रभूपतिः
व्रजेदानीं सत्यलोकं त्रिदिवं यान्तुदेवताः । तवायुःपूर्णपर्यन्तमहमत्रस्थितो ध्रुवम्
ततस्तेहर्षिताः सर्वेंब्रह्मर्षिसुरसत्तमाः । प्रणम्य शिरसा देवंजग्मुस्तेनिलयं स्वकम्
देवोऽपि च जगन्नाथःप्रतिमारूपधृक्तदा । तूष्णींतिष्ठतिसर्वेषांहर्षमापादयन्नृणाम्
इन्द्रद्युम्नोऽपिधर्मात्माविष्णुभक्तोदृढव्रतः । अनुव्रजन्पद्मयोनिंतेनाऽऽदिष्टोन्यवर्तत
यात्राःसर्वाभगवताआज्ञप्ताःसाधु कारय । अस्मिंस्तुष्टे जगन्नाथे सन्तुष्टंवैचराचरम्

इत्याज्ञां पद्मयोनेस्तु मूर्ध्न्याधाय क्षितीश्वरः ।
नारदेन सह श्रीमान्विधिना च समृद्धिमत् ।
ज्येष्ठस्नानादिकं सर्वमुत्सवं निरवर्तयत् ॥ ६३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांद्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्यं जैमिनिऋषिसम्वादे दारुब्रह्मणः सकाशादिन्द्रद्युम्नस्यवरलाभोनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

पञ्चतीर्थमाहात्म्यकीर्तनम्

मुनय ऊचुः

चकार केनविधिनाजन्मस्नानंश्रियःपतेः । अन्यानप्युत्सवान्सर्वान्विधिवद्ब्रूहिनोमुने
नारदेन पुरा प्रोक्तं सर्वं ते मुनिसत्तम । सहि वेद तमःपारे ब्रह्म ब्रह्मसुतो मुनिः ॥ २॥
तत्सर्वं ब्रूहि तत्त्वेन मुने कौतूहलं हि नः । अहो भाग्यं नरपतेरिन्द्रद्युम्नस्य भो मुने
तस्य तावति कर्मान्ते अत्यद्भुतमिदं महत् । न श्रुता हिनदृष्टाहिप्रतिमादारुनिर्मिता
सजीवतनुवत्साक्षाद्वरं दद्यान्मनुष्यवत् । स्मारंस्मारं भगवतश्चरितं पापनाशनम् ॥
चरितं तस्यनृपतेर्दुर्लभंमर्त्यवासिनाम् । नसन्तोषोऽस्तिभगवञ्श्रृण्वतांनोमहामुने

तद्वदानुक्रमेणाऽस्मान्यात्राः सर्वाघनाशनाः ।
यासां सन्दर्शनाद्वासो वैकुण्ठ इति निश्चितम् ॥ ७ ॥

यात्रामाहात्म्यवक्ताऽसौ यत्साक्षान्मधुसूदनः । तन्नोवदमहाभागजगतांहितकाम्यया

जैमिनिरुवाच

ज्येष्ठस्नानं प्रवक्ष्यामि श्रृणुध्वं मुनयोऽधुना । ज्येष्ठशुक्लदशम्यांतुव्रतंसङ्कल्प्यवाग्यतः
प्रातरुत्थाय कुर्वीत पञ्चतीर्थविधानतः । मार्कण्डेयावटं गत्वा आचम्य प्रयतः पुमान्

प्रार्थयेच्छङ्करं नत्वा कृताञ्जलिपुटोऽग्रतः ॥ १० ॥

अतितीक्ष्ण! महाकाय! कल्पान्तदहनोपम !। भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि
ततः प्रविश्य तीर्थं तु वैदिकैः पञ्चवारुणैः । अघमर्षणसूक्तेन त्रिरावृत्तेन वा द्विजाः

स्नात्वा यथावत्स्नायीत मन्त्रेणानेन चान्ततः ॥ १३ ॥

नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च । स्नानं करोमि देवेश! मम नश्यतु पातकम्
संसारसागरे मग्नं पापग्रस्तमचेतनम् । त्राहि मां भगनेत्रघ्न! त्रिपुरारे! नमोऽस्तु ते

एवं स्नात्वा बहिर्गत्वा धौतवासाः सपुण्ड्रकः ।

देवानृषीन्पितॄंश्चैव तर्पयित्वा यथाविधि ॥ १६ ॥
प्रविश्य शङ्करागारं स्पृष्ट्वा वृषणयोर्वृषम् । मन्त्रेणानेन भो विप्राः सर्वक्रतुफलंलभेत्
धर्मश्चतुष्पाद्यज्ञस्त्वंस्वर्णशृङ्गस्त्रयीवपुः । गोपते वाहरूपस्त्वं शूलिनंत्वां नमाम्यहम्
अघोरमन्त्रेण ततः पूजयेद्वृषवाहनम् । पञ्चब्रह्मभिर्ऋग्भिस्तु संस्पृशेल्लिङ्गमुत्तमम्
अङ्गुष्ठेनस्पृशेल्लिङ्गं मुष्टिना शक्तिमेव च । पूजयित्वा तु विधिवत्स्तुत्वादेवंपुरद्विषम्
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् । मार्कण्डेयावटे स्नात्वा दृष्ट्वा देवं तु शङ्करम्
फलं प्राप्नोत्यविकलं राजसूयाश्वमेधयोः । अन्ते शिवस्यसालोक्यंप्राप्यज्ञानंततोनरः
क्रमाच्च लभते मुक्तिं जगन्नाथप्रसादतः । ततो मौनी व्रजेद्देवं नारायणमनामयम् ॥
तद्दक्षिणस्थितं विष्णुरूपं न्यग्रोधमुत्तमम् । दर्शनादपि पापानां पापसंहतिनाशनम्
तं दृष्ट्वा प्रणमेद्दूराद्भावयन्पुरुषोत्तमम् । प्रदक्षिणं ततः कुर्यादिमं मन्त्रमुदीरयन् ॥२५
अमरस्त्वं सदा कल्प विष्णोरायतनं महत् । न्यग्रोध हर मेपापंविष्णुरूपनमोऽस्तुते
नमोऽस्त्वव्यक्तरूपाय महाप्रलयस्थायिने । एकाश्रयाय जगतां कल्पवृक्षाय ते नमः ॥
स्तुवञ्जपेत्तुतद्भक्त्या मूले तस्य जनार्दनम् । कोटिजन्मशतोद्भूतपापादेव विमुच्यते
तच्छायाक्रमणेनाऽपि निष्पापो जायते नरः । ततः सुपर्णं प्रणमेद्यानरूपं हरेः पुरः ॥
स्थितो भक्तिनतो विष्णोः कृताञ्जलिपुटोमुदा । छन्दोमयजगद्धामन्यानरूपत्रिवृद्वपुः
यज्ञरूप! जगद्व्यवापिन्प्रीयमाणाय ते नमः ।
स्तुत्वेत्थं गरुडं पापान्मुच्यतेऽनेकजन्मजात् ॥ ३१ ॥
वाङ्मनःकर्मनियतोगच्छेद्देवं विचिन्तयन् । प्रविश्यदेवताऽगारंकृत्वातंत्रिःप्रदक्षिणम्
पूजयेन्मन्त्रराजेन सूक्तेन पुरुषस्य वा । द्वादशाक्षरमन्त्रेण यत्र वा जायते रुचिः ॥३३
पूजाऽधिकारिणःसर्वे ब्रह्मक्षत्रविशस्ततः । अन्येषांदर्शनं भक्त्यातयोर्नामानुकीर्तनात्
पञ्चोपचारविधिना पूजयेत्परमेश्वरम् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं स्तोत्रमुदीरयेत् ॥
देवदेव! जगन्नाथ! संसारार्णवतारक !। भक्तानुग्राहक सदा रक्ष मां पादयोर्नतम् ॥
जय कृष्ण! जगन्नाथ! जयसर्वाघनाशन !। जयाशेषजगद्वन्द्यपादाम्भोज! नमोऽस्तुते
जय ब्रह्माण्डकोटीश वेदनिश्वासवातक !। अशेषजगदाधार ! परमानन्द नमोऽस्तु ते

जय ब्रह्मेन्द्ररुद्रादिदेवौघप्रणतार्तिनुत् । जयाखिलजगद्धामन्नन्तर्यामिन्नमोऽस्तु ते
जय निर्व्याजकरुणापाथोधेदीनवत्सल !। दीनानाथैकशरण! विश्वसाक्षिन्नमोऽस्तुते
संसारसिन्धुसलिले मोहावर्त्ते सुदुस्तरे। षडूर्मिकूलदुष्पारे कुकर्मग्राहदारुणे ॥४१॥
निराश्रये निरालम्बे निःसारे दुःखफेनिले। तव मायागुणैर्बद्धमवशं पतितं ततः॥
मां समुद्धर देवेश! कृपाऽपाङ्गविलोकनैः। तत्र मग्नं सुरश्रेष्ठ! सुप्रसादप्रकाशक !॥

एक एव जगन्नाथ! बन्धुस्त्वं भवभीरुणाम्।
बुभुक्षा च पिपासा च प्राणस्य मनसः स्मृतौ ॥ ४४ ॥

शोकमोहौ शरीरस्यजरामृत्युर्वपुर्भवः। त्वत्सृष्टौतादृशोनाऽस्तियोदीनपरिपालकः
अवतीर्णोऽसिलोकानामनुग्रहधिया विभो !। पूर्णकामस्यतेनाथकिमन्यत्कारणंक्षितौ
त्वत्पादपद्ममासाद्य नचिन्ताऽस्ति जगत्पते !। यतस्तेचरणाम्भोजंचतुर्वर्गैकसाधनम्
दर्शनात्सर्वलोकानां सर्ववाञ्छाफलप्रदम्। ततः सीरध्वजं शेषमन्त्रेण परिपूजयेत्
द्वादशाक्षरमन्त्रेण नाम्ना वा प्रणवादिना। एकाग्रमानसो भूत्वा प्रणिपत्य प्रसादयेत्
जय राम सदाराम सच्चिदानन्दविग्रह !। अविद्यापङ्करहित! निर्मलाकृतये नमः॥ ५०
जयाखिलजगद्भारधारणश्रमवर्जित !। तापत्रयविकर्षाय हलं कलयसे सदा॥ ५१ ॥
प्रपन्नदीनत्राणाय स्फुरन्नेत्रसरोरुह !। त्वमेवेश! पराशेषकलुषक्षालनप्रभुः ॥ ५२ ॥
प्रसन्नकरुणासिन्धो!दीनबन्धो! नमोऽस्तुते। चराचराफणाग्रेण धृता येन वसुन्धरा
मामुद्धराऽस्माद्दुष्पाराद्भवाम्भोधेरपारतः । परापराणां परम! परमेश! नमोऽस्तुते
स्तुत्वैवं नागराजानं बलं मुसलधारिणम्। पूजयेज्जगतामादिकारणां भद्रलोचनाम्
स्तुत्वाजयान्तांभोविप्राःप्रणिपत्यप्रसादयेत्। जयदेवि!महादेवि! प्रसीदभवतारिणि
सुखारणिश्रितवतांजयसन्तुष्टिकारिणी। कार्यंकार्यस्वरूपाणांकारणानांचकारणम्

धारणां धार्यमाणानां त्वामादिम्प्रणमाम्यहम्।
वक्षःस्थलस्थितां विष्णोः शम्भोरर्द्धाङ्गधारिणीम् ॥ ५८ ॥
पद्मयोनिमुखाब्जस्थां प्रणमामि जगत्प्रियाम्।
सृष्टिस्थितिविनाशादिकर्मणां परमात्मनः ॥ ५९ ॥

त्वमेका शक्तिरतुला त्वां विना सोऽपि नेश्वरः ।
त्वां सर्वलोकजननीं विष्णुमायां तपस्विनीम् ॥ ६० ॥
सुभद्रां भद्ररूपां तां मूलभूतां नमाम्यहम् ।
ततः सागरस्नानाय प्रार्थयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ ६१ ॥
नमस्ते भगवन्विष्णो जगद्व्यापिंश्चराचर! ।
निर्विघ्नं सिद्धिमायातु सिन्धुस्नानं मम प्रभो ! ॥ ६२ ॥

नमस्ते जगतामीश! शङ्खचक्रगदाधर !। देहि देव ममाऽनुज्ञां तव तीर्थनिषेवणात् ॥
ततोमौनंव्रजेद्विष्णुंचिन्तयन्सरितांपतिम् । उग्रसेनं स्थितंमार्गेअनुज्ञाप्यसमाहितः
उग्रसेन! महाबाहो! बलवन्नुग्रविक्रम । लब्ध्वा वरं सुप्रसन्नात्समुद्रतटमास्थितः
तीर्थराजकृतस्नानसुसम्पूर्णफलप्रद !। सिन्धुस्नानं करिष्यामिअनुज्ञां दातुमर्हसि
ततोगच्छेद्द्विजश्रेष्ठाःस्वर्गद्वारंततःपरम् । येनदेवाःसमायान्तिक्षेत्रेऽस्मिन्पुरुषोत्तमे
भूस्वर्गेजगदीशस्य दर्शनाय दिने दिने । स्वर्गावतारमार्गेण तत्रस्थौवांनमाम्यहम्

मामप्यूर्ध्वं नयैतां वै साक्षिणौ कर्मणां सताम् ।
सागराम्भः समुत्पन्नौ श्रेष्ठौ सर्वगुणान्वितौ ॥ ६६ ॥
मध्येन युवयोर्यामि स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
प्रार्थयित्वा ततो गच्छेत्तीर्थराजस्य सन्निधिम् ॥ ७० ॥

यं दृष्ट्वादूरतः पापान्मुच्यतेमहतोध्रुवम् । प्रक्षालितकराङ्घ्रिकआचान्तः शुचिविष्टरे

आसीनः प्राङ्मुखो भूत्वा लिखेन्मण्डलमग्रतः ।
चतुरस्रं चतुर्द्वारं चतुः स्वस्तिककोणकम् ॥ ७२ ॥

तन्मध्ये विलिखेत्पद्मम् अष्टपत्रं सुशोभनम् । ततोऽष्टाक्षरमन्त्रंतु करयोश्चतनौन्यसेत्

षड्भिर्वर्णः षडङ्गानां न्यासः प्रोक्तो मनीषिभिः ।
शेषौ कुक्षौ च पृष्ठे च न्यस्तव्यौ च ततः पुनः ॥ ७४ ॥

पादयोर्जङ्घयोरूर्वोःस्फिचोश्चपार्श्वयोःपुनः । नाभौपृष्ठेबाहुयुग्मेहृदिकण्ठेचकक्षयोः

ओष्ठयोः कर्णयोश्चक्षुषोर्गण्डयोर्नासयोस्तथा ।

भ्रुवोर्ललाटे शिरसि मन्त्रवर्णान्यथाक्रमम् ॥ ७६ ॥

विन्यस्यव्यापकंसर्वैर्न्यासंकुर्यात्समाहितः। प्राणायामत्रयं कुर्यान्मूलेनपञ्चविंशतिम्
बध्नीयात्कवचं दिव्यंसर्वपापापनोदनम्। पूर्वे मांपातुगोविन्दोवारिजाक्षस्तुदक्षिणे
प्रद्युम्नः पश्चिमे पातु हृषीकेशस्तथोत्तरे। आग्नेय्यां नरसिंहस्तुनैर्ऋत्यां मधुसूदनः
वायव्यां श्रीधरः पातु ऐशान्यांचगदाधरः। ऊर्ध्वंत्रिविक्रमःपातुअधोवाराहरूपधृक्
सर्वत्र पातु मां देवः शङ्खचक्रगदाधरः। नारायणो मनः पातु चैतन्यं गरुडध्वजः॥
पातुमे बुद्ध्यहङ्कारौत्रिगुणात्माजनार्दनः। इन्द्रियाणि सदा पातु दैत्यवर्गनिकृन्तनः
एवं बद्ध्वा च कवचं निष्पापो जायते पुमान्। षोडशैरुपचारैश्चमनसा कल्पितैनरः
पुरुषोत्तमं पूजयित्वा यथावद्विधितोद्विजाः। आवाह्यमण्डलेतस्मिन्देवदेवमनामयम्

पूजयित्वा विधानेन यथाशक्त्युपबृंहितैः।

आत्मानं तीर्थराजस्य देवदेवस्य चिन्तयन् ॥ ८१ ॥

एवं बद्ध्वाञ्जलिपुटमिमं मन्त्रमुदीरयेत्। सुदर्शन! नमस्तेऽस्तु कोटिसूर्यसमप्रभ !॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य विष्णोर्मार्गंप्रदर्शय। एवंसम्प्रार्थ्यभोविप्रास्तीर्थराजजलान्तिके
जानुभ्यामवनिं गत्वा प्रणमेद्भक्तिभावितः। तीर्थराज! नमस्तुभ्यं जलरूपाय विष्णवे

जीवनाय च जन्तूनां परं निर्वाणहेतवे ॥ ८६ ॥

अग्निश्च ते योनिरिला च देहो रेतोधा विष्णोरमृतस्य नाभिः।

उपैमि ते रूपमनन्यहेतुमानन्दसम्पन्नमप्रनुप्रविश्य ॥ ९० ॥

इति मन्त्रं पठन्विप्राः प्रविशेज्जलमध्यतः। आवाहयेत्तीर्थराजं भावयञ्जगतां पतिम्
जलाधीशं कृतस्नानफलदानेऽग्रतः स्थितम्। अघमर्षणसूक्तेन नारायणयुतेन च ९२
त्रिरावृत्तेन कुर्वीत पञ्चवारुणकेन च। सकृदावाहनादीनि षडङ्गान्यभिषेचने ॥ ९३॥
आवाहनं पुरः प्रोक्तंसन्निधानमथोच्यते। स्नातुरिष्टफलप्राप्तौ सान्निध्यपरिकल्पनम्
अन्तःशुद्ध्यर्थमाचामेत्पीत्वातदभिमन्त्रितम्। बाह्यावयवशुद्ध्यर्थं मार्जयेत्कुशवारिणा

अन्तः बहिर्विशुद्ध्यर्थं मन्त्रपूतेन वारिणा।

त्रीनञ्जलीन्मूर्ध्नि सिञ्चेन्त्त्रिषौ नाऽन्तर्जले जपः ॥ ९६ ॥

त्रिः स्नायात्स्वकृताघानि कोटिजन्मकृतानि च।
प्लावितानि जले तस्मिन्भावयन्नघनाशनम् ॥ ६७ ॥

उत्थायाऽऽचम्यविधिवत्प्रार्थयेन्मन्त्रमुच्चरन्। त्वमग्निर्जगतांनाथरेतोधाःकामदीपनः
प्रधानं सर्वभूतानां जीवानां प्रभुरव्यय !। अमृतस्याऽरणिस्त्वंहि देवयोनिरपाम्पते
वृजिनं हर मे सर्वं तीर्थराजनमोऽस्तु ते। जन्मकोटिसहस्रेषु यत्पापं पूर्वमर्जितम्
तदशेषं लयंयातुदेहिमेब्रह्मशाश्वतम्। स्नात्वाऽपिचततस्तीरमुत्तीर्याऽऽचम्य वाग्यतः
धारयेद्वाससी शुक्लेपुण्ड्रकानुज्ज्वलाकृतीन्। शङ्खचक्रगदापद्मतिलकानिचभक्तितः
देवान्पितॄन्यथान्यायं चिन्तयन्भगवद्धिया। तर्प्पयेद्विधिवद्विप्राः सम्यगव्यग्रमानसः
ततः पूर्ववदालिख्य मण्डलं चोत्तरामुखः। पूजयेन्मूलमन्त्रेण मन्त्रैरेभिश्च भक्तितः॥
नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम्। धरारमाभ्यां सहितं केवलं वा द्विजोत्तमाः॥
ध्यात्वाऽन्तर्यागसंतुष्टं बहिरावाहयेत्ततः ॥ १०५ ॥

आगच्छ परमानन्द जगद्व्यापिञ्जगन्मय !। अनुग्रहाय देवेश मण्डले सन्निधिं कुरु
चराचरमिदं सर्वं जगदत्र प्रतिष्ठितम्। तदन्तस्थस्त्वमेवेश! आसनं कल्पयामि ते
यस्य पादाम्बुजे धौते धर्मेण ब्रह्मरूपिणा। पुनाति तद्भवागङ्गाजगत्पाद्यं ददाम्यहम्
अनर्घ्यरत्नघटितचूडामणिकरोत्करैः। ब्रह्मादयः पादपद्मं चिन्तयन्ति दिने दिने॥

अनर्घ्याय जगद्धाम्ने अर्घ्यमेतद्ददाम्यहम्।
आचान्तस्तीर्थराजो वै येनाऽगस्त्यस्वरूपिणा।
तस्मै सुवासितं वारि ददाम्याचमनीयकम् ॥ ११० ॥

यः प्राप्य मधुसम्पर्कं चकर्त्र :जलरूपिणम्। अशेषाघविकर्षाय मधुपर्कं ददाम्यहम्
:यः क्रोडरूपमास्थाय प्रलयार्णवविप्लुताम्। उज्जहार धरामेतां स्नापयामि तमम्भसा
ब्रह्माण्डकोट्योयस्यविश्वरूपस्यसम्वृतिः। आच्छादनाय सर्वेषां प्रददेवाससीशुभे
विना येनाऽनुष्ठितोऽपि यज्ञः स्यादकृतोध्रुवः। तस्मैयज्ञेश्वरायेदमुपवीतं प्रकल्पये
यदङ्गसङ्गमासाद्य शोभन्ते भूषणानि वै। विश्वालङ्कृतये तस्मै भूषणानि प्रकल्पये
यदङ्गसंस्पर्शिमरुत्सङ्गान्मलयजा द्रुमाः। सुगन्धसम्पन्नास्तस्मैगन्धोऽनुलेपनम्

यस्यस्मश्चिन्तनादेवसौमनस्यंहतांहसाम् । तस्मैसुमनसां मालां सुगन्धांपरिकल्पये
यं चित्ते स्थिरमादाय भवाग्निपरिधूपनम् । जहाति तस्मै प्रददे सुगन्धं धूपमुत्तमम्
स्वतेजसाऽखिलमिदंदीपितं यस्य भाषतः । तस्मै दीपप्रदीप्ताय दीपमेतं ददाम्यहम्
चराचरं जगत्सर्वमत्ति यो यश्च भावयेत् । अनेन च पुनः पुष्टौ तस्मादन्नं निवेदये ॥
यद्दीयमुखरागेण सहजावासितेन च । मोहिताः सुरसुन्दर्यस्तस्मै ताम्बूलमुत्तमम्
प्रदक्षिणप्रक्रमणाद्भवाङ्गणविवर्त्तनम् । हन्ति यः करुणाम्भोधिस्तंनमामि जगद्गुरुम्

मन्त्रास्तु कथिता ह्येत उपचारैः पृथक्पृथक् ।
आवाह्य चिन्तयेद्देवं वहिःसंस्थितमात्मनः ॥ १२३ ॥

रत्नसिंहासनं दत्त्वा तत्राऽऽसीनं विचिन्तयेत् । पादपद्मद्वयेदद्यात्पाद्यंश्यामाकपङ्कजैः
दूर्वापराजिताभ्यां च संस्कृतं मूलमन्त्रणात् । सौवर्णेराजतेवाऽपि ताम्रेवाशङ्खएववा
अर्घ्यं संस्कृत्यविधिवद्वारिचन्दनपुष्पकैः । यवदूर्वाकुशाग्रैश्च फलसिद्धार्थकैस्तिलैः
दूर्वाकुशाग्रैर्देवस्य मूर्ध्नि सिञ्चेत्तदग्रतः । सावशेषं क्षिपेद्भूमावेषोऽर्घविधिरीरितः
जातीफलैर्वा कङ्कोलैर्लवङ्गैः संस्कृतं जलम् । दद्यादाचमनार्थन्तु मधुपर्कं ततो ददेत्
मधुसर्पियुतंगव्यंदधिकांस्येहिनिर्मले । पात्रे स्थितं च पिहितं पात्रेणाऽन्येनतादृशा
सुसंस्कृतं फलयुतं स्नपने जलमुच्यते । पट्टकौशेयकार्पासनिर्मिते वाससी शुभे ॥

यथाशक्ति प्रदेये च वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥ १३० ॥

हारकेयूरमुकुटग्रैवेयादिकभूषणम् । यथाशक्ति यथास्थानं देवस्याऽङ्गे निवेशयेत्
उपवीतं हरेर्दद्यात्पट्टसूत्रविनिर्मितम् । कार्पासमथवा विप्रा गन्धचन्दनसंस्कृतम् ॥

चन्द्रचन्दनकस्तूरीकुङ्कुमैरनुलेपनम् ॥ १३३ ॥

तुलसीदलमालाश्च जातीपङ्कजचम्पकैः । अशोकच्छुरपुन्नागनागकेसरकेसरैः ॥१३४ ॥
अन्यैःसुगन्धैःकुसुमैर्मालांमाल्यमथापि वा । मुक्तकानिच पुष्पाणिदद्याद्देवस्यमूर्द्धनि

माला सा प्रपदीना तु माल्यं कण्ठोरुसम्मितम् ।
गर्भकं केशमध्ये तु मूर्ध्नि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥ १३६ ॥

सगुग्गुल्वगुरूशीरसिताज्यमधुचन्दनैः । धूपं दद्यात्सुगन्धाढ्यं दीपंगोसर्पिषा शुभम्

कर्पूरगर्भयावर्त्या तिलतैलेन वा ददेत् ॥ १३७ ॥
अखण्डितसमुद्धौतंशालितण्डुलनिर्मितम् । सुपक्कमन्नं सुरभि सर्पिषाच सुवासितम्
सौरभेयदधिक्षीरपकरम्भासितायुतम् । नानाव्यञ्जनसङ्कीर्णं सोपदंशं सपूपकम् ॥
नानाफलयुतं हृद्यं सुगन्धं सुरसं नवम् । नैवेद्यं देवदेवस्य प्रस्थादूनं न शस्यते ॥
धूपे दीपे च नैवेद्ये स्नानेऽर्घे मधुपर्कके । वस्त्रे यज्ञोपवीते च दद्यादाचमनीयकम् ॥
अन्यत्र केवलं वारिसंस्कृतं त्वौपचारिकम् । नैवेद्यान्ते त्वाचमनंदद्याच्चकरघृष्टिकम्
सगन्धचन्दनं विप्रास्ताम्बूलं च ददेत्ततः । सकर्पूरलवङ्गैलाजातीक्रमुकसंयुतम् ॥
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा मूलमन्त्रमनन्यधीः । स्तुत्वा प्रदक्षिणं कृत्वाप्रार्थयेत्पुरुषोत्तमम्
देवदेव! जगन्नाथ! सर्वतीर्थप्रवर्त्तक । सर्वतीर्थमयश्चाऽसि सर्वदेवमय! प्रभो ! १४५
त्वत्प्रसादान्मया तीर्थराजेस्नानं हि यत्कृतम् । तदस्तु सफलं देव! यथोक्तफलदोभव
सिन्धुराजस्त्वं च विभो! द्रवरूपोऽस्यसंशयम् ।
पापालये निमग्नं मां परित्राहि नमोऽस्तु ते ॥ १४७ ॥
इत्थं प्रपूज्य देवेशं नारायणमनामयम् । तीर्थराजकृतस्नानः सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥
गवां कोटिप्रदानेन क्रतुकोटिकृतेन च । कोटिब्राह्मणभोज्येन महादानैश्च कोटिशः
यत्पुण्यं कर्मिणां प्रोक्तं तदनेन हि लभ्यते ॥ १४६ ॥
ध्यानं दानंतपोजाप्यंश्राद्धंचसुरपूजनम् । सिन्धुराजे कृतं सर्वं कोटिकोटिगुणम्भवेत्
अपि नः स कुले कश्चित्सिन्धुस्नायी भविष्यति ।
देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च दास्यते च तिलोदकम् ॥ १५१ ॥
क्रन्दन्तिसर्वपापानिसम्भ्रान्ताःसर्वपातकाः । अनिष्टानिपलायन्तेसिन्धुस्नानोद्यतस्यवै
अन्यतीर्थे कृतं पापंसिंधुतीरे विनश्यति । सिन्धुतीरेकृतं पापं सिन्धुस्नानेविनश्यति
सिन्धुस्नानरतंनित्यंदृष्ट्वैव यमकिङ्कराः । दिशोदश पलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा यथा मृगाः
यमोऽपिभीतस्तंदृष्ट्वाप्रणिपत्यप्रपूज्य च । न शक्नोतितदास्थातुं तस्याग्रेपुण्यकर्मिणः
वाञ्छन्ति देवता नित्यं मानुष्यं प्राप्नुयामहे ।

भूत्वा सम्यक्शुद्धतन्वो सिन्धुस्नानं लभेमहि ॥ १५६ ॥

मेरुमन्दरमात्रोऽपिराशिःपापस्यकर्मणः । सिन्धुस्नानेनदग्धःस्यात्तूलराशिरिवानलात्
अप्सु नारायणंदेवं स्नानकालेस्मरेत्सदा । साक्षाद्विष्णुस्वरूपेऽत्रसिन्धौचैवविशेषतः
ब्रह्मघ्नो वा सुरापोवागोघ्नोवापञ्चपातकी । सर्वेतेनिष्कृतिंयान्तिसिन्धुस्नानान्नसंशयः
कपिलाकोटिदानाच्च सिन्धुस्नानं विशिष्यते ।
सकृत्सिन्ध्ववगाहेन कुलकोटिं समुद्धरेत् ॥ १६० ॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वेष्वायतनेषु च । तत्फलं लभते सर्वं सिन्धुस्नानान्न संशयः ॥
य इच्छेत्सफलं जन्म जीवितंश्रुतमेववा । सपितॄंस्तर्पयेत्सिन्धुमभिगम्यसुरांस्तथा
चत्वारः सुलभाः वेदाः सषडङ्गपदक्रमाः । सुलभानि कुरुक्षेत्रे दानानि विविधानिच
चान्द्रायणानिकृच्छ्राणितपांसिसुलभान्यपि । अग्निष्टोमादयोयज्ञाःसुलभाबहुदक्षिणाः
सिन्धुतोयैश्च सलिलैर्दुर्लभं पितृतर्पणम् । मासं तर्पणमात्रेण पिण्डानां पातनेन च
सिन्धौ वै पितरंसर्वेविमानान्सूर्यवर्चसः । सिन्धुतर्पणसन्तुष्टाःश्राद्धपिण्डसुतर्पिताः
आरुह्य सहसा यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ १६६ ॥
आद्यन्तयोर्जगन्नाथं पूजयित्वा यथाविधि ।
तीर्थराजेऽभिषिच्य स्वं नरः स्यान्मुक्तिभाजनम् ॥ १६७ ॥
ततस्तीर्थविसर्गं च कृत्वा शुद्धमनाःपुमान् । रामंकृष्णंसुभद्रांचनत्वारूपंविचिन्तयेत्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्येजैमिनिऋषिसम्वादे
पञ्चतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

दारुब्रह्मणःस्नानयात्राविधिकीर्त्तनम्

जैमिनिरुवाच

कृतकृत्यं तदाऽऽत्मानं मन्यमानस्ततो व्रजेत् । अश्वमेधाङ्गसम्भूतमिन्द्रद्युम्नसरः प्रति
यस्य तीरे निवसति नरसिंहाकृतिर्हरिः । नरसिंहमनुप्रार्थ्य तत्र स्नायाद्यथाविधि ॥
नरसिंह! नमस्तुभ्यं यस्य ते क्षेत्र उत्तमे । सहस्रं वाजिमेधस्य कृतोश्चक्रे नृपोत्तमः
इन्द्रद्युम्नः प्रसादात्ते तस्य क्रत्वङ्गसम्भवे । सरसि स्नातुमायातो मामनुज्ञापय प्रभो !
ततस्तीर्थतटं गत्वा कृतशौचाचमक्रियः । प्रार्थयेदञ्जलिं कृत्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत्
अश्वमेधाङ्गगोकोटिखुरक्षुण्णमहीतलः । तन्मूत्रफेनादानाम्भः पूरिताखिलपावनः ॥६॥
स्नातुं तवाऽऽगतः पुण्ये सर्वतीर्थमये जले । पूर्वजन्मसहस्रोत्थं पापं स्नानाद्विमोचय
अन्तःप्रविश्यचततोवारुणैःपञ्चभिर्द्विजाः । स्नायादन्तर्जलेजप्यात्त्रिरावृत्त्याऽघमर्षणम्
अश्वमेधाङ्गसम्भूत तीर्थ! सर्वाघनाशन !। जन्मकोटिभवं पापं त्वयि स्नानाद्विनश्यतु

इमं मन्त्रं त्रिरुच्चार्य त्रिः स्नायात्तज्जले द्विजाः ।
संस्मरेद्विष्णुगायत्र्या नरसिंहाकृतिं हरिम् ॥ १० ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता यस्मात्ता नरसूनवः । अयनं प्रथमंचास्यतस्मादप्सुहरिंस्मरेत्
देवानृषीन्पितॄंश्चैव तर्पयेद्विधिवन्नरः । नरसिंहं ततो गच्छेत्पश्चिमाभिमुखं स्थितम्
सिद्धं शम्भुं कृत्रिमंवा पश्चिमाभिमुखं हरिम् । दृष्ट्वा विमुच्यतेपापैर्जन्मकोटिसमुद्भवैः
तमाथर्वणमन्त्रेण यजेच्च नरकेसरिम् । नारदेन पुरा ह्येष मन्त्रराजः प्रतिष्ठितः ॥१४॥
इन्द्रद्युम्नेन तेनैव चिरादेव उपासितः । नरसिंहाकृतौ नान्यो मन्त्रस्तत्सदृशो द्विजाः
यस्योच्चारणमात्रेण तुष्टो भवति केसरी । अनेनदारुवर्ष्माऽपि ब्रह्मणा सम्प्रतिष्ठितः
पूर्वोक्तैरुपचारैस्तु पूजयेन्नरकेसरिम् । जपाप्रसूनैररुणैरन्यैश्चैव सुगन्धिभिः ॥ १७ ॥

चन्दनागरुकर्पूरैर्लेपयेन्नरकेसरिम् । पायसं सितया युक्तं सौरभेयेण सर्पिषा ॥ १८ ॥

कर्पूरखण्डसंयुक्तान्मोदकान्घृतपाचितान् । संयावान्घृतपूपांश्च फलं नानाविधं तथा
शर्करादधिसंयुक्तं शाल्यन्नं विनिवेदयेत् । दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा नमस्कृत्वा सम्पूज्यनरकेसरीम्
स्वान्स्वानभीष्टानाप्नोतिनरो वै नाऽत्रसंशयः । देवत्वममरेशत्वं गन्धर्वत्वंचभोद्विजाः
ईशित्वं च वशित्वं च सार्वभौमत्वमेव वा । यद्यत्कामयते चित्ते तत्तदाप्नोत्यसंशयम्
पञ्चतीर्थीविधानं च कथितं पृच्छतां द्विजाः । दिनानि पञ्च कृत्वैतां पञ्चभूतमयेपुनः
न देहे प्रविशेन्मर्त्यो व्रती विष्णुपरायणः । पौर्णमास्यां प्रत्युषसि तीर्थराजजलेपुनः
पूर्वोक्तविधिना स्नात्वा शुद्धाहारो जितेन्द्रियः । एकभक्तव्रतेनैव वर्त्तते प्रीतये नरः ॥

यावत्पञ्च दिनानि स्युस्तावत्कालं द्विजोत्तमाः !॥ २५ ॥

ततः प्रविश्य प्रासादं मञ्चस्थं पुरुषोत्तमम् । रामं सुभद्रां दृष्ट्वाच मुच्यतेपापकञ्चुकैः

सर्वतीर्थमयात्कूपात् कूपादुद्धृतेन सुगन्धिना ।
वारिणा स्नाप्यमानं तु यो ज्यैष्ठ्यां पश्यते हरिम् ॥ २७ ॥

न तस्य पापसम्बन्ध आतमनिप्रभविष्यति । यात्राकर्तृविधिंवक्ष्येशृणुध्वंमुनयःपरम्
चतुर्दश्यां दृढं मञ्चं कारयित्वा सुशोभनम् । तृणकाष्ठमयं लिप्तं सुधया वहुलं शुभम्
अथवा दार्षदं कुर्याच्चिरस्थायि द्विजोत्तमाः । स्नानार्थंदेवदेवस्यवित्तशाठ्यंनकारयेत्

नानाद्रुमगणाकीर्णं दक्षिणानिलशीतलम् ।
उल्लसत्सिन्धुकल्लोलशाड्वलोपरि संस्कृतम् ॥ ३१ ॥

समुच्छ्रितमहामूल्यवितानवरशोभितम् । विरलाच्छादनं कुर्याद्देवानां दर्शनाय वै ॥
आयान्ति व्रह्मणासार्द्धंस्नपनायजगत्पतेः । स्वर्गङ्गाम्भः समादायपारिजातविभूषितम्
व्रह्मर्षयश्च त्रिदशा व्रह्मणा सहिता विभुम् । मञ्चस्थं स्नापयन्तीह वचनात्परमेष्ठिनः

जयशब्दैश्च स्तुतिभिर्वन्द्योऽयं त्रिदिवौकसाम् ।
तस्मान्मञ्चस्तु कर्तव्यो मण्डितो माल्यचामरैः ॥ ३५ ॥

नानामणिस्रजा हारिदुकूलकृततोरणम् । सुगन्धधूपसुरभिचन्दनाम्भः समुक्षितम् ॥
एवंमञ्चंप्रतिष्ठाप्यतस्यदक्षिणतोद्विजाः । कूपाद्वारिसमुद्धृत्यकलशान्स्वर्णनिर्मितान्

शालायां शास्त्रदृष्टेन विधिना त्वधिवासयेत् ॥ ३८ ॥

सुवासितं जलं तेषु पावमान्या प्रपूरयेत् । चतुर्दशीनिशामध्ये कर्मैतत्समुदाहृतम् ॥
शनैः शनैश्च नीयासुर्हरिं हलिपुरःसरम् । ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याराज्ञासम्मानितादृताः
चामरैस्तालवृन्तैश्च वीज्यमानं निरन्तरम् । पुराकृतामलेपं तं विष्णोरङ्गान्न हापयेत्
यथा सुगन्धलेपेन सुपुष्टाङ्गो दिने दिने । तथा प्रयत्नतः कार्यः कृशाङ्गो नहिपुष्टिकृत्
नयेयुरप्रमाद्यन्तो भगवन्तमनिन्दिताः । प्रमादतो यदि भवेत्पतनं मुरवैरिणः ॥ ४३
बलस्य वा सुभद्रायाराज्ञोराज्यस्यभीतिकृत् । अपिपातयतांहानिःसन्ततेर्बहुदुःखिता
नरके नियतं वासो भवेत्तेषां दुरात्मनाम् । विमुह्यन्तश्चिराद्दारुमयीयं प्रतिमा कथम्
तिष्ठेदविश्वसन्तो ये भगवद्द्रोहिणस्तु ते । नरकं प्रतिपद्यन्ते सर्वकर्मबहिष्कृताः

मूढानां नास्तिकानां च कृतघ्नानां हतात्मनाम् ।
धर्मकृत्येषु जायन्ते अविश्वासस्य युक्तयः ॥ ४७ ॥

अदृष्टं यस्य यावद्धि स तु तेन विनिर्मितः । तदन्ते तस्यक्षीयन्तेप्रासादप्रतिमादयः
न चाऽयं निर्मितः केन द्रुमः सोऽपि प्रवर्द्धितः । वरं ददातियानूनंनचासौप्रतिमामता
निर्मितायां प्रतिकृतौ पुरा मन्वन्तरादिषु । व्यतीतेष्वपि वर्द्धन्तेजनानांचसुपर्वणाम्

भक्तयस्तादृशो विप्राः सर्वेषां पृथिवीक्षिताम् ।
स्वारोचिषेऽन्तरे चैव आविर्भूतः कृपानिधिः ॥ ५१ ॥

वैवस्वतेऽन्तरे सप्तविंशे चैव चतुर्युगे । द्वापरान्ते समायातौ तदा कृष्णार्जुनावुभौ

त्रिदिनानि स्थितावत्र व्रतस्थौ मधुसूदनम् ।
भक्त्या सम्पूज्य तं स्तुत्वा जग्मतुर्द्वारकां पुनः ॥ ५३ ॥

न केऽपि तत्त्वंजानन्तिमानुषींतनुमास्थिताः । अवताराःप्रवर्त्तन्तेविष्णोरस्ययुगेयुगे
धर्मस्थापनया विप्रा लीयन्ते स्वपदे पुनः । पूर्वं च ब्रह्मणा प्रोक्तःस चानेनपरस्परम्
स्थाता परार्द्धपर्यन्तं भगवान्दारुरूपधृक् । सदाऽयं वरदोविष्णुः शुद्धसत्त्वेन भावितः

यस्य यावांस्तु विश्वासस्तस्य सिद्धिस्तु तावती ।
प्रमादीकृतविश्वासो भक्तो दृढमतिः पुमान् ॥ ५७ ॥

यत्नानुरूपं लभते फलमस्मात्सुदुर्लभम् । पुरा वः कथितं सर्वमम्बरीषविमोचनम्

ततस्तस्मिञ्जगन्नाथे परमात्मस्वरूपिणि । विधाय सुदृढां भक्तिं वसध्वं पुरुषोत्तमे
अतोऽयं भक्तितो नेयः श्रीकृष्णमञ्च उत्तमः । सुभद्राबलभद्रौ च राजवत्परिचर्यवै
उत्तोलितेषुच्छत्रेषु चामरैर्वीजितेषु च । कालागुरुसुधूपासु दिक्षु गम्भीरनादिषु
नानाविधेषु वाद्येषु त्वगारे परिपूरिते । तौर्यत्रिके साधुवृत्ते दीपिका श्रेणिराजिते
अन्धकारेऽथ सर्वेषां वर्द्धमाने महोत्सवे । आच्छन्ने श्रीपतेरङ्गे प्रमादपरिशङ्कया ६३
पट्टपट्टदुकूलेषु नीयमानेषु दूरतः । गतेर्वेगात्तदोत्तानीकृतास्ये जगतां गुरौ ॥ ६४ ॥
आवर्त्तदृष्टयो देवा दिवारोहणशङ्किनः । जयस्व राम कृष्णेति जय भद्रेति चोचिरे
एवं सलीलं भगवाञ्जन्मज्यैष्ठ्याभिषेचने । नीयते मञ्चदेशं तु निशीथे ब्राह्मणादिभिः
अहम्पूर्विकशब्दस्तु देवानां श्रूयते दिवि । देवदुन्दुभयश्चैव जयशब्दविमिश्रिताः ॥
ततो मञ्चस्थितं ब्रह्मरूपं प्रत्यर्चया सह । आच्छाद्य सर्वाण्यङ्गानि मुखवर्जं सुचेलकैः
विना निवेद्यं सम्पूज्य उपचारैः पुरोदितैः । अधिवासितकुम्भैश्च शान्तिघोषपुरःसरम्
समुद्रज्येष्ठामन्त्रेण स्नापयेत्सुरपुङ्गवान् । पश्यतामभिषेक्तॄणां कृतकृत्यत्वहेतवे ॥
स्नाप्यमानं तु पश्यन्ति ये नरास्तत्रसंस्थिताः । गर्भोदकेन स्नपनं न ते पुनरवाप्नुयुः
ज्येष्ठस्नानं भगवतोयेपश्यन्तिमुदान्विताः । नतेभावाब्धौमज्जन्तियात्रामुत्कण्ठमानसा
बुद्ध्यबुद्धिकृतः पुंसामनादिः पापसञ्चयः । तत्क्षणान्नाशमायातिपश्यतांस्नपनं हरेः
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं ब्रवीमिद्विजपुङ्गवाः ॥ सर्वसन्तापशमनमशेषमलनाशनम् ॥

स्नपनं श्रीपतेर्ज्यैष्ठ्यां यदि भक्त्या विलोकनम् ।
प्रायश्चित्तनिमित्तानि यानि पापानि सन्ति वै ॥ ७९ ॥

तानि सर्वाणि क्षीयन्तु पश्यतां स्नपनं हरेः । नाऽतः परतरंकर्म ह्यनायासेन मोचनम्
ज्येष्ठजन्मदिने स्नानं हरेर्यदवलोकितम् । स्नानदानतपःश्राद्धजपयज्ञादयस्तु ये ॥
विधयःकोटिगुणिताःकोटिजन्मोपपादिताः । स्नानदर्शनपुण्यस्यहरेस्तेनतुलांगताः
भक्त्या यः स्नपनंविष्णोरेकस्मिन्वत्सरेऽपिवा । पश्येन्नशोचतेविप्राइहसंसारमोचने

तेनेष्टं क्रतुभिः पुण्यैः श्रद्धाविपुलदक्षिणैः ।
महादानानि दत्तानि भोजिताः कोटिशो द्विजाः ॥ ८० ॥

श्राद्धानि गयशीर्षादौकोटिशश्चकृतानि वै । पुण्यकालेचतीर्थादौतपांसिचरितानिच
अर्धोदयादियोगेषु कोटितीर्थेषु कोटिशः । स्नातानि तेनभो विप्रायःपश्येत्स्नपनंहरे
सत्यं सत्यं पुनःसत्यंब्रवीमिद्विजपुङ्गवाः !। नाऽतःश्रेयस्करंकर्मशास्त्रदृष्टपथिस्थितम्
मञ्चस्थं स्नाप्यमानं हियः पश्येत्पुरुषोत्तमम् । स्नानाच्छतगुणंपुण्यंलभतेवैनसंशयः

मञ्चस्थितं जगन्नाथं स्नानार्द्रं यस्तु पश्यति ।
सान्द्रानन्दार्द्रचित्तोऽसौ न किञ्चत्पापमश्नुते ॥ ८५ ॥

यदेवपुण्यमुदितं स्नानदर्शनकर्मणि । तत्तत्फलमवाप्नोति दृष्ट्वामञ्चस्थमच्युतम् ॥
एक एवजगन्नाथस्त्रिधातत्रस्थितो द्विजाः । एकैकस्याऽपिस्नपनदर्शनंभुक्तिमुक्तिदम्
जयस्वरामभद्रेति जयभद्रेति योवदेत् । जयकृष्णजगन्नाथ ! जयेत्युच्चारयेन्मुदा ॥
स्नानकाले स वै मुक्तिं प्रयातिद्विजसत्तमाः । अधिवासादिकंतत्रयैःकृतंस्नानकर्मणि
तेषांश्रद्धामुदायुक्तः प्रदद्याद्दक्षिणाःपृथक् । ब्राह्मणेभ्यश्चमिष्टान्नं वस्त्रालङ्करणानिच

प्रदद्याच्छ्रद्धया युक्तो दीनाऽनाथांश्च तर्पयेत् ।
ये द्रष्टुमागताःस्नानं जीवन्मुक्तास्तु ते ध्रुवम् ॥ ६१ ॥

तान्यथाशक्तिवै राजा मानयेत्प्रीतये हरेः । स्नानावशेषतोयेनस्नायाद्भद्रासनस्थितः
नारीवापुरुषोवाऽपितस्यपुण्यंवदामि वः । कल्पःस्याच्चिररोगार्तोह्यपमृत्युं जयेदसौ
अपुत्रामृतवत्सा वावन्ध्यावापिलभेत्सुतम् । सुभगःसर्वलोकानांनिर्धनोधनवान्भवेत्
गुर्विणी लभते पुत्रं दीर्घायुर्गुणवत्तरम् । गङ्गादिसर्वतीर्थानां स्नानजं फलमुच्यते

स्नानदर्शनजं पुण्यं धर्मात्मा लभते ध्रुवम् ॥ ६६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
दारुब्रह्मणःस्नानयात्राविधिकीर्त्तनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

———

द्वात्रिंशोऽध्यायः

सदक्षिणामूर्त्तिदर्शनंज्येष्ठपञ्चकादिव्रतकथनम्

जैमिनिरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दक्षिणामूर्तिदर्शनम् । पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं यत्रोपलभ्यते ॥१
ततोनानाविधैर्दिव्यैर्भक्ष्यभोज्यादिकैस्तथा । यथाशक्त्युपचारैस्तुगन्धर्माल्यैश्चपूजयेत्
रामं कृष्णं सुभद्रांच गीतनृत्यादिकैस्तथा । प्रेक्षणीयैश्चविविधैःश्रद्धयाचोपपादितैः
वस्त्रचन्दनमाल्याद्यैःपूजयित्वाद्विजोत्तमान् । भगवद्ब्राह्मणांश्चैतान्महाभागवतांस्तथा
ततोनयेद्दक्षिणाभिमुखांस्तांस्त्रिदशेश्वरान् । उत्सवञ्च महत्कृत्वा पूर्वानयनवद्धरेः ॥
तस्मिन्काले हरिं पश्येद्व्रजन्तं दक्षिणामुखम् । समंसुभद्रांयोमर्त्योनसप्राकृतमानुषः

स्नानार्थमागता देवाः स्नापयित्वा जगद्गुरुम् ।
आकाशेऽपि ससम्बाधास्तावत्कालं स्थिता हरिम् ।
द्रष्टुं व्रजन्तं याम्याशावदनं भवनाशनम् ॥ ७ ॥

धर्मशास्त्रेषु यावन्तिधर्मकर्माणिसन्तिवै । तानिसर्वाणिसन्द्रष्टुंव्रजन्तंदक्षिणामुखम्
स्नानदर्शनजंपुण्यं समग्रं लभते तु सः । स्नातं मुरारिं यः पश्येद्व्रजन्तं दक्षिणामुखम्
नीराजयित्वा देवेशं रामेण सह भद्रया । प्रासादाऽन्तःप्रवेश्याऽथ न पश्येद्वै कथञ्चन

एतत्तु विस्तरेणोक्तं पूर्वमेव मया द्विजाः !॥ ११ ॥

मुनय ऊचुः

भगवन्यत्त्वया प्रोक्तं ज्येष्ठास्नानप्रदर्शनात् । फलं प्राप्नोति नियतं तन्नोब्रूहिविदाम्वर !

जैमिनिरुवाच

हन्त वः कथयिष्यामि तद्व्रतं ज्येष्ठपञ्चकम् । नातःपरतरंप्रोक्तमृषिभिः शास्त्रपारगैः
श्रौतस्मार्तपुराणोक्तव्रतानामिदमुत्तमम् । इदं प्रथमतः प्रोक्तं ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ १४
ज्येष्ठत्वाद्व्रतमुख्यानां ख्यातं तज्ज्येष्ठपञ्चकम् । समुद्रोज्येष्ठफलदःप्रभुर्ज्येष्ठफलप्रदः

वर्षसन्दर्शनात्पुण्यं मञ्चकेनैवलभ्यते । मञ्चकेन तु यल्लभ्यं महाज्यैष्ठ्यां तु तल्लभेत् ॥
यन्मयोक्तं पुरा विप्राः स्नानदर्शनजंफलम् । समग्रं तदवाप्नोतिमहाज्यैष्ठ्यांन संशयः

मुनय ऊचुः

महाज्यैष्ठीं समाचक्ष्व यत्र स्नानं महाफलम् । तत्र नः कौतुकं ब्रह्मन्महद्वैसम्प्रवर्त्तते

जैमिनिरुवाच

ज्यैष्ठस्य विमले पक्षे या वै पञ्चदशी भवेत् । शक्रर्क्षकांशगौ चन्द्रगुरू च गुरुवासरे
शुभे योगे महाज्यैष्ठी सर्वपापप्रणाशिनी । सर्वक्षेत्रं सर्वतीर्थं सप्त वै सागरास्तथा ॥
क्रतवश्चमहादानसमूहश्च तपांसि च । विद्याश्चाऽष्टादशविधा व्रतानि विविधानि च
शान्तिपौष्टिककर्माणिसाङ्ख्ययोगस्तथैवच।सर्वेसम्भूयगच्छन्तिक्षेत्रंश्रीपुरुषोत्तमम्
वृन्दशः प्रविभक्तास्तएकैकं क्षेत्रगं प्रति । कस्मै वयं भाग्यवते ज्यैष्ठस्नानावलोकने
महाज्यैष्ठ्याम्प्रवेक्ष्यामः परस्परमहम्मया । तत्र यान्ति महायोगेभगवत्क्षेत्रमुत्तमम्
महाज्यैष्ठी महापुण्या भगवत्प्रीतिवर्द्धनी । तस्यां सम्पूज्य देवेशंजगन्नाथंकृपार्णवम्
दृष्ट्वा च स्नाप्यमानं तं पापकोशाद्विमुच्यते ॥ २५ ॥
अतऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि व्रतं तज्जेष्ठपञ्चकम् । व्रतेनाऽनेन लभ्यं यत्तत्तदेवं ब्रवीमि वः
दशम्यां नियमंकुर्यात्प्रातःस्नात्वायथाविधि । आचार्यंवृणुयात्तत्रवैष्णवंद्विजपुङ्गवम्
इत्थं सङ्कल्पममलं गृह्णीयाद् व्रतमुत्तमम् ॥ २८ ॥
देवदेव जगन्नाथ संसारार्णवतारक !। अद्यारभ्यव्रतं देव यावज्ज्यैष्ठी च सा तिथिः ।
तावद्व्रतं करिष्यामि प्रीतये तव केशव !॥ २६ ॥
सर्वतीर्थाऽभिषेकं च प्रत्यहं व्रतभोजनम् । मूर्तीनां तवपञ्चानामेकस्याऽपिप्रपूजनम्
एकस्मिन्दिवसेदेव! त्रिसन्ध्यंत्वत्प्रसादतः । समाप्यतांव्रतमिदंसफलंचास्तुतेप्रभो
ततः पञ्चसुतीर्थेषु स्नात्वा च गृहमेत्यच । स्थण्डिलेविलिखेत्पद्ममष्टपत्रंसकर्णिकम्
तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भंतीर्थाम्भोभिःप्रपूरितम् । सचन्दनफलैर्युक्तंतन्मुखेताम्रभाजनम्
वाससा वेष्टितं कण्ठे पात्रं चाऽक्षतपूरितम् । तन्मध्येस्थापयेद्देवं सौवर्णं मधुसूदनम्
शुभाङ्गावयवं शान्तं वामे श्रीपुरुषमीश्वरम् ॥ ३५ ॥

दक्षिणे चगरुत्मन्तं स्पृशन्तं पृष्ठदेशतः। शङ्खचक्रधरं चोर्ध्वे पद्मासनगतं विभुम्॥
पूजयेदुपचारैस्तमाचार्योवाऽपिभोद्विजाः।नीलोत्पलानांमालांतुभक्त्यादेवायदापयेत्
दशम्यांपूजयित्वैवं दशकोट्यघनाशनम्। प्रार्थयेत्प्राञ्जलिर्भूत्वा मन्त्रमेतं समुच्चरन्
मधुसूदनदेवेश! नमस्ते माधवीप्रिय!। कृपावारांनिधे! पतितं मां भवार्णवे॥
एकादश्यां चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम्। नारायणं पद्मसंस्थं पञ्चनिष्कविनिर्मितम्।
तदर्द्धं निर्मितं वाऽपि पूजयेत्पद्ममालया॥ ४०॥
नैवेद्यं पायसं दद्यात्सितां रम्भाफलानि च। नानाविधञ्च नैवेद्यं दत्त्वासम्प्रार्थयेन्मुदा
नारायण! नमस्तेऽस्तु भवसागरतारण!। त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष शरणागतवत्सल!
एकादशेन्द्रियकृतं पापराशिमनुत्तमम्। अनादिभवनिर्व्यूढं नाशयेत्पूजितः प्रभुः॥
द्वादश्यां यज्ञवाराहं पूजयेत्स्वर्णनिर्मितम्। चन्दनागुरुकर्पूरलेपनैश्चम्पकस्रजा॥ ४४
नानाविधापूपसारा भक्ष्यभोज्यफलान्विताः। निवेद्य प्रार्थयेद्देवं स्तुतिमेतांसमुच्चरन्
प्रलयार्णवसम्मग्नां धरणीं धृतवानसि। किन्न शक्तोममोद्धारे पतितस्याऽङ्घ्रिपङ्कजे
तन्मामुद्धर गोविन्द! निमग्नं शोकसागरे॥ ४६॥
अब्दो द्वादशमासो वै यावदब्दकृतानि तु। पापानि महदल्पानि इतः पूर्वेषु जन्मसु।
तद्विनाशयते देवो द्वादश्यामर्चितो नृणाम्॥ ४७॥
त्रयोदश्यां तु प्रद्युम्नं शङ्खचक्रवराभयान्। धारयन्तं पद्मगतं चतुर्निष्कविनिर्मितम्॥
उपचारैर्यथाप्रोक्तैःपूजयेद्भक्तितो नरः। अशोकपाटलीमालांचन्द्रपूर्णांसमुज्ज्वलाम्
नैवेद्यं चैव पक्वान्नं फलं पक्वं मनोहरम्। दत्त्वा नमस्कृतिकुर्वन्प्रार्थयेत्प्राञ्जलिःशुचिः
देवप्रद्युम्न! कामानांपूरककामरूपधृक्!। कामाश्चसफलाःसन्तुःकामपाल! नमोऽस्तुते
चतुर्दश्यांनरहरिंपूजयेत्कनकाकृतिम्।वक्षःस्थलस्थयालक्ष्म्याप्रीयमाणंसटोज्ज्वलम्
व्यात्ताननं साट्टहासं योगपट्टाब्जसंस्थितम्। सुतीक्ष्णनखरं देवंसर्वापद्विनिवारणम्
चतुर्भिर्हेमनिष्कैश्च घटितं शुभलक्षणम्। पूजयेत्पूर्ववद्देवं सोपहारं सुभक्तितः॥ ५४
जपाकुसुममालां च जातीपुष्पस्रजं तथा। दत्त्वा पुष्पाञ्जलीन्पादेप्रणम्यसप्रदक्षिणम्
यथाहिरण्यकशिपुं लोकानांहितकाम्यया। व्यदारयस्तथा पापसङ्घं नाशयपूजितः

एवं सम्प्रार्थ्य नृहरिं प्रणम्य दण्डवत्क्षितौ । निर्वर्त्य व्रतमेवं तद्व्रती पञ्चदिनात्मकम्
पञ्च पञ्च प्रदीपांस्तु दिवारात्रौ प्रदापयेत् ॥ ५७ ॥
वस्त्रयुग्मान्पञ्चपञ्चच्छत्रोपानद्युगं तथा । सयज्ञसूत्रान्कलशान्पञ्च पञ्च फलान्वितान्
भोजनान्ते द्विजेभ्यश्च प्रदद्याच्छ्रद्धयान्वितः ॥ ५९ ॥
रात्रौ जागरगीताद्यैस्तथा नानोपहारकैः । तोषयेद्वासुदेवं तु पुराणपठनेन तु ॥ ६० ॥
पौर्णमास्युषसि स्नात्वा श्रीकृष्णस्याऽन्तिकं व्रजेत् ॥ ६१ ॥
रामंकृष्णंसुभद्रांचपूजयित्वायथाविधि । स्नपनंकारयित्वाऽथदृष्ट्वावाशास्त्रचोदितम्
स्नानं कृत्वा पुनः सिन्धौ गृहमागत्य तत्र वै ।
यत्र विष्णोर्मूर्त्तयस्ताः कुम्भस्था मन्त्रपूजिताः ॥ ६३ ॥
तासां पश्चिमतोवह्निंसमाधाययथाविधि । अग्निकार्यंप्रकुर्वीतस्वैःस्वैर्मन्त्रैःपुरोहितः
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तंनमोऽन्तं नामईरयेत् । देवानां मूलमन्त्रस्तुस्वाहान्तोहोमकर्मणि
चरोराज्यस्य समिधां पलाशानां पृथक्पृथक् । एकैकं देवमुद्दिश्यजुहुयाच्च शतंशतम्
तस्य पुष्पशतं चैव जहुयात्तदनन्तरम् । पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा ब्रह्मणे दक्षिणां ददेत्
आचार्ये दक्षिणां दद्यात्सुवर्णं धेनुमेवच । स्वर्णश्रृङ्गींरौप्यखुरांनानोपकरणैर्युताम्
महार्घ्यवस्त्रदानानि येन तुष्यति वा गुरुः । सर्वोपकरणैर्युक्ताः प्रतिमाश्च निवेदयेत्
ब्राह्मणान्भोजयेत्सर्पिः खण्डयुक्तैश्चपायसैः । एतद्व्रतं समाख्यातं ज्येष्ठपञ्चकमुत्तमम्
अनुष्ठाय नरो भक्त्या स्नानदर्शनजं फलम् । समग्रं लभते विप्रास्तदा नैवाऽत्र संशयः
एकादशी या तु मध्ये निर्जलासाप्रकीर्तिता । एकांतांभक्तियुक्तायेयथाविधिउपासते
यावज्जीवकृताः सर्वा एकादश्यो न संशयः । व्रतराजमिमं कृत्वा सर्वव्रतफलं लभेत्
यान्यान्समीहते कामांस्तांस्तानाप्नोत्यसंशयः ॥ ७४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे ज्येष्ठपञ्चकादितवर्णनंनाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

रथयात्रामहोत्सवविधिकथनम्

जैमिनिरुवाच

अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिमहावेदीमहोत्सवम् । अज्ञानतिमिरान्धोऽपि येनभास्वत्पदंव्रजेत्
वैशाखस्याऽमले पक्षे तृतीयापापनाशिनी । स्वयमाविष्कृताचैषाप्राजापत्यर्क्षसंयुता
तस्यां संकल्प्य नृपतिराचार्यंवरयेच्छुचिः । एकं त्रीनथ तक्षाणं दृष्टकर्माणमादरात्
वृणुयाद्धनयागायवस्त्रालङ्करणादिभिः । तक्ष्णासार्द्धं वनं गत्वा साधुवृक्षगणाकुलम्
तन्मध्ये वह्निमाधायमन्त्रराजेनमन्त्रवित् । अष्टोत्तरशतंहुत्वासम्पाताज्यविमिश्रितम्
आज्यं तरूणां मूलेतुप्रत्येकमभिघारयेत् । दिक्पालेभ्योवलिंदत्त्वाक्षेत्रपालपशूंस्तथा
वनस्पतये जुहुयात्क्षीरोदनशताहुतिम् । ततः परशुमादाय वृक्षमूलेषु दिक्षु वै ॥ ७ ॥

आज्यसंस्कृतिदेशेषु आचार्यो मन्त्रमुच्चरन् ।
किञ्चित्किञ्चिच्छेदयेद्वै चिन्तयन्गरुडध्वजम् ॥ ८ ॥

नदत्सु तूर्यघोषेषु गीतमङ्गलवादिषु । नियोज्य वर्द्धकिं तत्र आचार्यः स्वगृहं व्रजेत्
अथवास्थानलब्धानिदारूणिरथकर्मणि । उक्तसंस्कारविधिनासंस्कुर्यात्कल्पितेऽनले
आरभेत रथं कृत्वा विघ्नराजमहोत्सवम् । षोडशारैः षोडशभिश्चक्रैर्लौहमयैर्दृढैः ॥
युक्तं विष्णो रथं कुर्याद्दृढाक्षं दृढकूबरम् । विचित्रघटनाकक्षपुत्तलीपरिवेष्टितम्
नानाविचित्रवहुलमिक्षुखण्डविराजितम् । चतुस्तोरणसंयुक्तं चतुर्द्वारं सुशोभनम्
नानाविचित्रबहुलं हेमपट्टविराजितम् । द्वाविंशतिकरोच्छ्रायं पताकाभिरलङ्कृतम्
गारुडं च ध्वजं कुर्याद्रक्तचन्दननिर्मितम् । दीर्घनासंस्थूलदेहंकुण्डलाभ्यांविभूषितम्
चञ्चवग्रदष्टभुजगंसर्वालङ्कारभूषितम् । वितत्य पक्षतीव्योम्निउड्डीयन्तमिवोदितम्
दैत्यदानवसङ्घस्य बलदर्पविनाशनम् । सर्वाङ्गं तस्य कनकैराच्छाद्य परिशोभयेत् ॥

रथमेवं हरेः कुर्यात्स्वासनं सुपरिष्कृतम् ।

चतुर्दशरथाङ्गैस्तं रथं कुर्याच्च सीरिणः॥ १८ ॥

चक्रैर्द्वादशभिःकुर्यात्सुभद्रायारथोत्तमम् । सप्तच्छदमयं कुर्यात्सीरिणोलाङ्गलध्वजम्
देव्याः पद्मध्वजं कुर्यात्पद्मकाष्ठविनिर्मितम् । विरच्य्य रथान्राजाप्रतिष्ठां पूर्ववच्चरेत्
यथामन्त्रं यथाशास्त्रंविश्वसेद्व्राह्मणेषु च । ब्राह्मणाजगदीशस्यजङ्गमास्तनवःस्मृताः
इत्थं सुघटितं चक्रित्रयं देवत्रयस्यवै । आषाढस्य सिते पक्षे दिने विष्णोःशुभप्रदे
प्रतिष्ठाप्य समृद्धेनविधिनापूर्ववद्द्विजाः । रक्षणीयंतथातत्र नाऽऽरोहेत्कश्चनाऽशुभः
पक्षी वा मानुषो वाऽपि मार्जारनकुलादयः । ततो दिनत्रयादर्वाग्रथानामुत्तरे कृते
मण्डपे उत्सवाङ्गे वाप्रकुयादङ्कुरार्पणम् । अद्भुतेष्वथ जातेषु शान्तिं कुर्यात्पुरोदिताम्
रथ्यासुसंस्कृताकार्यामहावेदींतथाव्रजेत् । पार्श्वयोर्मण्डलंकुर्यात्पथिगुल्मादिभिःफलैः
सुमनःस्तवकैर्माल्यैर्दुकूलैश्चामरैस्तथा । यथा सुपुष्पिताऽरण्यराजी तत्र विराजते

भूमिः समा च कार्या वै निष्पङ्का सुखचारणा ।
निर्मला च सुगन्धा च सुदूराद्वर्जितोत्करा ॥ २८ ॥

धूपपात्राण्यनुपदं दिशांमोदकराणि च । चन्दनाम्भः परिक्षेपो यन्त्रपातोत्करस्तथा
बहूनि ऋतुपुष्पाणि पुष्पवृष्ट्यर्थमेव हि । नटनर्त्तकमुख्याश्च गायना बहवस्तथा ॥
वेश्या यौवनगर्वाढ्या रूपाऽलङ्कारभूषिताः । मृदङ्गाः पणवाश्चैव भेरीढक्कादयस्तथा
बहवो बहुधा तत्र पताकाश्चित्रितान्तराः । ध्वजाश्च बहवस्तत्र स्वर्णराजतनिर्मिताः
वैजयन्त्यो बहुविधाभूमिगावाहनास्तथा । हस्तिनश्चहयाश्चैवसुसन्नद्धाःस्वलङ्कृताः

एवं सम्भृतसम्भारः क्षितिपालः शुचिव्रतः ।
मुदा भक्त्या च परया युक्तः कुर्यान्महोत्सवम् ॥ ३४ ॥

आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीयापुष्यसंयुता । अरुणोदयवेलायां तस्यां देवं प्रपूजयेत्
ब्राह्मणैर्वैष्णवैः सार्द्धं यतिभिश्च तपस्विभिः । विज्ञापयेद्देवदेवंयात्रायैसंस्कृताञ्जलिः
इन्द्रद्युम्नंक्षितिभुजंयथाज्ञासीःपुराविभो । विजयस्वरथेनाऽथ गुण्डिचामण्डपम्प्रति
तवापाङ्गविलोकेन प्रपुनन्तु दिशो दश । निःश्रेयसपदं यान्तु स्थावराणि चराणि च
अवतारः कृतो ह्येष लोकानुग्रहकाम्यया । तदेहि भगवन्त्रात्या चरणं न्यस्य भूतले

ततः कर्पूरचूर्णैश्च सुमनोभिरवाकिरेत्। पथि शाकुनसूक्तानि प्रपठन्ति द्विजातयः ॥
केचिन्मङ्गलगाथाश्च केचिज्जयजयेति च। जितन्त इति मन्त्रं वै केचिदुच्चैर्जपन्ति च
सूतमागधमुख्याश्च कीर्तिपुण्यांमुदाजगुः। स्वर्णदण्डप्रकीर्णानांश्रेणीचोभयपार्श्वयोः
लीलयाऽऽन्दोलयन्तिस्मरमत्कङ्कणमञ्जुलम्। स्वर्णपात्रपरिक्षिप्तकृष्णागुरुसुधूपितैः
सुरभीकृतसर्वाशा मुखे व्योमाङ्गणे तथा। चर्चरीझर्झरीवेणीवीणामाधुरिकादयः ॥
शब्दायन्ते सुमधुरं गोविन्दविजयान्तरे ॥ ४४ ॥
एवं प्रवृत्ते समये कृष्णं रामपुरःसरम्। नयन्ति विप्रा भद्राश्चक्षत्रियाश्च विशस्तथा
छत्रमाला समुदिता मुक्तास्रक्वीनतोरणा। रत्नध्वजा हेमदण्डाः पार्श्वयोर्मुरवैरिणः
राजा चतुर्विधावर्णाअन्ये ये च पृथग्जनाः। दीना महान्तश्चतदा समानातत्रभान्तिवै
सलीलचरणन्यासंतूलिकास्तरणेषुतान्। वासयन्तःक्वचिच्छान्तादेवांस्तेरथमन्वियुः
महोत्सवंसमासाद्यगीतकोलाहलानि च। करे कृत्वा जगन्नाथं भ्रामयित्वारथोत्तमम्
रामं कृष्णं सुभद्राञ्च रथमध्ये निवेशयेत्। चारुचन्द्रातपाढ्येन मण्डपेन विराजिते
किङ्किणीमालिकाभिश्च माल्यचामरभूषिते। ससारकृष्णागुरुजधूपपूरितगर्भके ॥
ततस्तान्वासयित्वा तु तूलिकासु सुरोत्तमान्।
भूषयेद्विविधैर्भक्त्या वस्त्रालङ्कारमाल्यकैः ॥ ५२ ॥
पूजयेदुपचारैस्तैः समृद्धैर्भक्तिभावितैः। नाऽतः परतरं विष्णोर्यात्रान्तरमवेक्ष्यते ॥
यत्र स्वयं त्रिलोकेशः स्यन्दनेन कुतूहलात्। मानयन्पूर्वमाज्ञां तां वर्षे वर्षे व्रजेदसौ
रथस्थितं व्रजन्तं तं महावेदीमहोत्सवे। ये पश्यन्ति मुदाभक्त्या वासस्तेषांहरेःपदे
सत्यं सत्यंपुनःसत्यंप्रतिजानेद्विजोत्तमाः। नातःश्रेयःपरंविष्णोरुत्सवःशास्त्रसम्मतः
यथारथविहारोऽयंमहावेदीमहोत्सवः। यत्राऽऽगत्यदिवोदेवाःस्वर्गंयान्त्यधिकारिण
किं वच्मि तस्य माहात्म्यमुत्सवस्य मुरद्विषः ?।
यस्य संकीर्तनात्पापं नश्येज्जन्मशतोद्भवम् ॥ ५८ ॥
महावेदीं व्रजन्तं तं रथस्थं पुरुषोत्तमम्। बलभद्रं सुभद्राञ्च जन्मकोटिसमुद्भवम्
दृष्ट्वा पापं नाशयति नाऽत्रकार्याविचारणा। रथच्छायांसमाक्रम्य ब्रह्महत्यांव्यपोहति

तद्रेणुसंसक्तवपुस्त्रिविधां पापसंहतिम् । नाशयेत्स्वर्गगङ्गायां स्नानजं फलमाप्नुयात्
घनाम्बुवृष्टियोगेन रथमार्गे तु पङ्किले । दिव्यदृष्ट्याच्च कृष्णस्य समस्तमलहारिणि
तत्रयेप्रणिपातांस्तुकुर्वते वैष्णवोत्तमाः । अनादिव्यूढपङ्कांस्तेहित्वा मोक्षमवाप्नुयुः
गवां कोटिप्रदानस्य कन्यानामयुतस्य च ।
वाजिमेधसहस्रस्य फलम्प्राप्नोत्यसंशयः ॥ ६४ ॥
अनुगच्छन्तिकृष्णं ये यात्राकौतूहलादपि । अनुव्रजन्ति नित्यम्वै देवाःशक्रपुरोगमाः
पश्यन्ति ये रथं यान्तं दारुब्रह्मसनातनम् । पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं तेषां प्रकीर्तितम्
वेदैःस्तुवन्तिवेदानांवक्तारोमोक्षदायिनम् । इतिहासपुराणाद्यैःस्तोत्रैर्वाऽपिस्वयंकृतैः
स्तुवन्तिपुण्डरीकाक्षंयेवै विगतकल्मषाः । वैष्णवंयोगमास्थाय मोदन्तेनारदादिभिः
कुर्वन्ति वासुदेवाऽग्रेजयशब्देनवास्तुतिम् । ते वै जयन्तिपापानिविविधानिनसंशयः
लयतालानभिज्ञोऽपि गीतमाधुर्यवर्जितः । नर्त्तनं कुरुते वाऽपि गायत्यथ नरोत्तमः
वैष्णवोत्तमसंसर्गान्मुक्तिं प्राप्नोत्यसंशयः ॥ ७० ॥
नामानि कीर्तयन्नस्य तेन याति सहैव यः । अनुव्रज्यात्तत्फलम्वै प्राप्नोत्यत्रनसंशयः
जय कृष्ण जय कृष्ण जय कृष्णेति यो वदेत् ।
गुण्डिचानगरं यान्तं कृष्णं भक्तिसमन्वितः ॥
न मातृगर्भवासस्य स च दुःखमवाप्नुयात् ॥ ७२ ॥
चामरैर्व्यजनैः पुष्पस्तवकैर्नीलचोलकैः । रथस्याऽग्रस्थितोयोवैवीजयेत्पुरुषोत्तमम्
स वीज्यमानोऽप्सरोभिर्गन्धर्वैरुपशोभितः । अनुव्रजद्भिस्त्रिदशैर्महेन्द्रासनसंस्थितः
भुनक्तिभोगानतुलान्यावदाभूतसम्प्लवम् । तदन्तेच ब्रह्मलोकं प्राप्यमुक्तिमवाप्नुयात्
कृष्णस्य पुरतो ये वै पुष्पवृष्टिं प्रकुर्वते । ते वै मनोगतान्सर्वान्प्राप्नुवन्तिमनोरथान्
सहस्रनामभिः पुण्यैः पर्यटन्ति रथं तु ये । तेषां प्रदक्षिणं कुर्युस्त्रिदशानतकन्धराः
वसन्ति वैकुण्ठगृहे विष्णुतुल्यपराक्रमाः ॥ ७८ ॥
तस्मिन्काले महापुण्ये देवर्षिपितृसेविते । एकं ब्रह्म त्रिधाभूतं माययाऽनुगतंस्वया
साक्षाद्दारुस्वरूपेण महावेदी महोत्सवम् ॥ ८२ ॥

रथारूढःकौतुकवान्यत्रयातिजगत्प्रभुः । तस्मिन्कालेपृथिव्यां तु चरेत्तत्रमहोत्सवम्
देवा अप्युत्सवेतस्मिन्पुरुहूतपुरोगमाः । अभिमानम्परित्यज्य श्रेणीभूताहिपार्श्वयोः
प्रकर्वते महायात्रां तैस्तैर्दिव्यैः परिच्छदैः ॥ ८३ ॥
तेषामग्रेसरस्तत्र देवोऽपि प्रपितामहः । चतुर्दशानां जगतां कर्ता यः परमेश्वरः ॥
सोऽपि तत्र जगन्नाथं रथेयान्तंमहोत्सवे । ब्रह्मलोकात्परावृत्य स्तुवन्वेदमयैःस्तवैः
पदे पदे प्रणमतिः भगवन्तं सनातनम् ॥ ८५ ॥
यद्यप्यब्जनिधेः कृष्णान्न भेदोऽस्ति तथाऽप्ययम् ।
महोत्सवस्य महिमा यत्र सर्वेऽनुयायिनः ॥ ८६ ॥
नाऽतः परतरो लोके महावेदीमहोत्सवात् । सर्वपापहरो योगः सर्वतीर्थफलप्रदः
कृष्णमुद्दिश्य यस्तत्र दानं ददति वैष्णवाः । यत्किञ्चिदक्षयफलं मेरुदानेन तत्समम्
तस्याऽग्रे देवदेवस्य व्रजतो गुण्डिचालयम् । यत्किञ्चित्कुरुते कर्म तत्तदक्षयमश्नुते
उपायनानि नाना वै भक्ष्यभोज्यानिचैव हि । समर्पयन्तिदेवाय तत्प्रीत्यैवाद्विजन्मने
तेषामक्षयपुण्यानि सर्वकामप्रदानि च ॥ ९० ॥
हरेरग्रेसरा ये वै पश्यन्तस्तन्मुखाम्बुजम् । पदे पदे नमन्तश्च पङ्कधूलिपरिप्लुताः
विहाय पापकवचमभेद्यं कोटिजन्मभिः ।
क्षणान्मुक्तिफलम्प्राप्य यान्ति विष्णोः शुभालयम् ॥ ९२ ॥
सर्वक्रतूनां तीर्थानां दानानां यान्तिते फलम् । भगवद्भक्तिभावानांनातःपुण्यतमोमहः
एवं स भगवान्कृष्णः सुभद्रारामसङ्गतः । व्रजन्स्यन्दनश्रेष्ठस्थो द्योतयंश्च चतुर्दिशः
श्रीमदङ्गोपसृष्टेन मरुता सर्वदेहिनाम् । पापानि नाशयञ्छीमान्दयालुर्भक्तभावनः
अज्ञानामप्यविश्वासभाजांविश्वासहेतवे । निसर्गमुक्तिदोऽप्येष यात्रारम्भान्करोतिवै
व्रजन्समृद्ध्या देवानांमर्त्यानां च जनार्दनः । सूर्ये ललाटंतपति मध्याह्ने मार्गमध्यतः
श्रान्ता कर्षजनस्तस्थौ म्लायन्वैतद्रजोवृतः । तत्रातपस्यशान्त्यर्थंदर्पणेष्वभिषेचयेत्
पञ्चामृतैः शीततोयैः पुष्पकर्पूरवासितैः । चामरैश्च जलार्द्रान्तैः शीतलैर्व्यजनैस्तथा
वीजयेत्पुण्डरीकाक्षं सुभद्रां राममेव च । शीतैश्च पानकैर्हद्यैस्तथा खण्डविकारकैः

खर्जूरैर्नारिकेलैश्च नानारम्भाफलैस्तथा । तथा क्षीरविकारैश्च पनसैस्तृणराजकैः ॥
इक्षुभिः स्वादुहृद्यैश्च फलैर्नानाविधैस्तथा । वासितैः शीततोयैश्च पक्वताम्बूलपत्रकैः
सकर्पूरलवङ्गाद्यैः पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ १०३ ॥
तस्मिन्काले द्विजश्रेष्ठा ये पश्यन्ति जनार्दनम् । पूजयन्ति यथाशक्तिन ते संसारजंश्रमम्
प्राप्नुवन्ति द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मलोकनिवासिनः ॥ १०५ ॥
रथत्रयस्थितं देवत्रयं ये पुरुषर्षभाः । प्रदक्षिणं प्रकुर्वन्ति त्रिश्चतुः सप्त एव वा ॥
दशप्रणामान्कृत्वाऽन्ते स्थिताः प्राञ्जलयोऽग्रतः ।
पुरा रथस्थितान्ब्रह्मा स्तुतिभिर्याभिरब्जभूः ॥ १०७ ॥
तुष्टाव ताभिर्देवेशं स्तुवन्ति परमेश्वरम् । ये नरा ब्रह्मलोकं ते प्रयान्ति नियतं द्विजाः
ततोऽपराह्णे देवेशं दक्षिणानिलवीजितम् । शनैः शनैर्नयेद्गीतैर्वेणुवीणादिनादितैः ॥
वन्दिनः स्तुतिपाठैश्च कलैर्मधुरिकास्वनैः । निरन्तरैः पुष्पवर्षैश्चामरान्दोलनैस्तथा
एवं व्रजति देवेशे सूर्यश्चास्तंगतो भवेत् । द्वीपिकानां सहस्राणि ज्वालितानि सहस्रशः
तदालोकप्रकाशेन मार्गशेषश्च नीयते । रथावरोहणेनैषां मण्डपारोहणेन च ॥ ११२
सम्मर्दः सुमहांस्तत्र दिदृक्षूणां कुतूहलात् । मण्डपे वासयेद्देवं गुण्डिचाख्ये मनोहरे
चारुचन्द्रातपे चारुमाल्यचामरभूषिते । रत्नस्तम्भमये स्वर्णवेदिकोपस्कृतान्तरे ॥
प्राचीरवलयावीते सुधालेपसमुज्ज्वले । साधुसोपानघटिते चतुर्द्वारोपशोभिते ॥
त्रैलोक्याडम्बरयुते महावेद्यां महाक्रतोः । प्रादुर्भावो महेशस्य यत्राऽभूद्दारुवर्ष्मणः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
गुण्डिचायात्राकथनंनाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

रथयात्रामहोत्सवप्रशंसातत्रश्राद्धविधिवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

अश्वमेधाङ्गसरसो नृसिंहस्य च दक्षिणे। तत्राऽऽसीनश्च भगवान्पुनश्चावतरन्निव.
बभासे दिव्यरूपोऽसौ दुर्विभाव्यः सुरासुरैः।
तदा पूजोपहारैश्च भक्ष्यभोज्यादिकैस्तथा॥ २॥
पूजयित्वा जगन्नाथं तोषयेद्गीतनृत्यकैः। पुष्पोपहारैर्विविधैः सुगन्धैरनुलेपनैः॥
कृष्णागुरुजधूपैश्च गन्धतैलप्रदीपकैः। तोषयेज्जगतां नाथमनेकैरुपहारकैः॥ ४॥
बिन्दुतीर्थतटे तस्मिन्सप्ताहानिजनार्दनः। तिष्ठेत्पुरा स्वयं राज्ञे वरमेतत्समादिशत्
त्वत्तीर्थतीरे राजेन्द्र! स्थास्यामि प्रतिवत्सरम्।
सर्वतीर्थानि तस्मिंश्च स्थास्यन्ति मयि तिष्ठति॥ ६॥
तत्रस्नात्वाविधानेनतीर्थेतीर्थौघपावने। सप्ताहं ये प्रपश्यन्ति गुण्डिचामण्डपेस्थितम्
मां च रामं सुभद्रांच मत्सायुज्यमवाप्नुयुः। ततस्तस्मिन्महापुण्ये सर्वपापप्रणाशने
सर्वतीर्थैकफलदविष्णुप्रीतिकरे शुभे। स्नात्वा सन्तर्प्य विधिवत्पितृन्देवानतन्द्रितः
तटस्थं नरसिंहं तं पूजयित्वा प्रणम्य च। महावेदीं नरो गत्वा कृताशौचाचमक्रियः
पूजयेत्पूर्ववद्विप्राः प्रणमेद्वापि भक्तितः। सप्ताहं यो नरो नारी न सा प्राकृतमानुषी
विष्णुसायुज्यमाप्नोति शासनान्मुरवैरिणः। दिवातद्दर्शनं पुण्यं रात्रौ दशगुणंभवेत्
यत्किञ्चित्क्रियते कर्म सन्निधौ जगदीशितुः।
स्वल्पंवाप्यथवा भूरि कोटिकोटिगुणं भवेत्॥ १२॥
तुलापुरुषदानानि महादानानि यो ददेत्। एके प्रदत्ते दानेऽपि सर्वं दत्तं भवेद्द्विजाः
सर्वं मेरुसमं दानं सर्वे व्याससमाद्द्विजाः। महावेद्यां गते कृष्णे योगोऽयंखलुदुर्लभः
अर्द्धोदयादिका योगाः स्कन्देन परिभाषिताः।

महावेद्याख्ययोगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ १६ ॥
अतःपरं प्रवक्ष्यामि पितॄणां कार्यमुत्तमम् । यावज्जीवंगयाश्राद्धैरलभ्यम्भुवियत्फलम्
दिविस्था नरकस्था वा तिर्यग्योनिगतास्तथा ।
तथा मनुष्यजातिस्थाः सर्वे पितृपितामहाः ॥ १८ ॥
शतं पुरुषविख्याता यं वाञ्छति सुतैः कृतम् ।
तं वो विधिं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनयो वरम् ॥ १६ ॥
मघा वै पितृनक्षत्रं पितॄणां प्रीतिदं परम् । तत्र श्राद्धं तु प्रीणातिदत्तंपुत्रैर्मुदान्वितैः
पञ्चमीचतिथिःश्रेष्ठाश्राद्धेऽभ्युदयकारिणी । उभयोर्यदिसंयोगोमहापुण्यतमातिथिः
यस्यां श्राद्धे कृतेपुत्रैःपितॄणामुद्धृतिर्भवेत् । सर्वतीर्थमयेतस्मिन्सन्निधौमुरवैरिणः
श्राद्धं चेच्छ्रद्धया कुर्यान्नीलकण्ठनृसिंहयोः । मध्ये मेध्यतमे देशे योगे परमदुर्लभे ॥
पुरुषाञ्छतमुद्धृत्य ब्रह्मलोके महीयते । प्रशस्यः कुतपः कालो मन्दीभूतदिवाकरः
पितॄनुद्दिश्य वा दद्यादशक्तः कनकं शुचिः ।
तर्पयित्वा तिलैः सम्यक्पैतृकीं प्रीति मुत्तमाम् ॥ २५ ॥
अथवा भोजयेद्विप्रान्भोज्यमूल्यानि वा ददेत् । एकस्मै वा गुणवतेसहस्रंभोजनंददेत्
गुणागुणविवेकस्तुनाऽत्रयोगे विधीयते । तस्मिन्सुदुर्लभे योगेसर्वेमुनिसमाद्विजाः
आषाढस्य सिते पक्षे पञ्चमी पितृदैवतम् । नक्षत्रं जगदीशस्य महावेदीसमागमः ॥
एते यदा त्रयः स्युश्चेदिन्द्रद्युम्नसरोवरे । चतुष्पादः स्मृतो योगः पितॄणामक्षयप्रदः
पितृकार्ये न सीदन्ति निरूप्य श्राद्धमत्र वै । शृणुध्वमन्यद्विप्रा वैप्रसङ्गाच्चब्रवीमिवः
नभस्यदर्शे यः कुर्याच्चतुर्ष्वपि युगादिषु । श्राद्धं पितॄन्समुद्दिश्याऽश्वमेधाङ्गसम्भवे
गयाश्राद्धसहस्रस्य श्रद्धया विहितस्य वै । फलं यद्विसमंत्वस्यनात्रकार्याविचारणा
दानं होमो जपश्चापि सर्वपापापनोदनः । दिनानि सप्त यान्यत्र कृष्णे वसतिमण्डपे
एकस्मादुत्तरं श्रेयो यत्तस्मादुत्तरोत्तरम् ।
आषाढशुक्लतृतीयायां प्रातः स्नानं समाचरेत् ॥ ३४ ॥
इन्द्रद्युम्नतटे देशे नृसिंहक्षेत्र उत्तमे । व्रतमेतत्तु गृह्णीयात्सङ्कल्प्य विधिवन्नरः ॥ ३५ ॥

वनजागरणं नाम भगवत्प्रीतिवर्द्धनम् । सर्वपापप्रशमनं सर्वव्रतफलप्रदम् ॥ ३६ ॥
दिनानि सप्त मौनीस्यात्कृतत्रिषवणक्रियः । कुम्भेचपूजयेद्देवंत्रिसन्ध्यंभक्तिभावितः
गोघृतेनाऽथ तैलेन तिलजेनप्रदीपयेत् । अहर्निशं हरेरग्रे रक्षेत्तं यत्नतो व्रती ॥ ३८ ॥

दिवा दिवा वसेन्मौनी रात्रौ रात्रौ च जागृयात् ।
मन्त्रं भागवतं जप्यान्नित्यकृत्यान्तरे व्रती ॥ ३९ ॥

उपवासपरो भूत्वा सप्ताहानि नयेद्व्रती । अष्टमे प्रातरुत्थाय प्रतिष्ठां कारयेद्दिने ॥
तस्मिन्नेवतीर्थवरेस्नात्वाऽऽगत्यगृहं पुनः । मण्डले सर्वतोभद्रे पूर्वं कुम्भं निवेशयेत्
तत्राऽऽवाह्यहृषीकेशंपूजयेदुपचारकैः । तस्य पश्चिमदेशे च स्थण्डिले विधिसंस्कृते
अग्निं प्रणीय गृह्योक्तविधिना ब्राह्मणावृतः । अग्निकार्यंप्रकुर्वीतसमिदाज्यचरूंस्तथा

सहस्रं जुहुयादग्नौ प्रत्येकं वा शतं शतम् ।
गायत्री वैष्णवी या वै तया होमविधिः स्मृतः ॥ ४४ ॥

सम्प्राश्यदक्षिणांदद्याद्धेनुंवस्त्रंहिरण्यकम् । विप्रांश्चभोजयेदन्तेप्रीतयेविश्वसाक्षिणः
व्रतराजमिमं कृत्वाविधिनाऽनेन भोद्विजाः । चतुर्वर्गानवाप्नोतियोयःकामानभीप्सति

नारी वा श्रद्धया युक्ता कुर्याद्वेदीमहोत्सवम् ।
साऽपि तत्फलमाप्नोति या कुर्याद्व्रतमुत्तमम् ॥ ४७ ॥

यात्राकर्तुः फलं याद्वग्व्रतकर्तुश्च तत्फलम् । भवतेवैद्विजश्रेष्ठाःकथितंवोमुदान्विताः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनऋषिसम्वादे
रथयात्रामहोत्सवप्रशंसानामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

भगवतोरथरक्षाविधानवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि रथरक्षाकरं विधिम् । भूतप्रेतादयो घोरा दारुणान्यद्भुतानि च
न बाधन्ते रथान्येन मुनयो यश्चयन्मतम् । प्रत्यहं पूजयेद्देवान्कृष्णादीन्ध्वजसंस्थितान्
गन्धपुष्पाक्षतैर्माल्यैरुपहारैरनुत्तमैः । गीतनृत्तादिकैश्चैव धूपदीपनिवेदनैः ॥ ३ ॥
दिक्पालेभ्योबलिंदद्यात्पायसान्नेनचान्वहम् । भूतप्रेतपिशाचेभ्योदद्याच्चबलिमुत्तमम्
रक्षेच्च यत्नतस्तान्वै रथानारोहणोचितान् । यथा न कश्चिदारोहेन्नरो ग्राम्यपशुस्तथा
पक्षिणश्च विशेषेण येषां वासो न शोभनः ॥ ५ ॥
अष्टमेऽह्नि पुनः कृत्वा दक्षिणाभिमुखान्रथान् । विभूषयेद्वस्त्रमाल्यपताकैश्चामरादिभिः
नवम्यां वासयेद्देवांस्तेषु प्रातः समृद्धिमत् ॥ ७ ॥
दक्षिणाभिमुखा यात्राविष्णोरेषा सुदुर्लभा । यात्राप्रयत्नतःसाहिभक्तिश्रद्धासमन्वितैः
यथापूर्वा तथा चेयं द्वे च मुक्तिप्रदायिके । यात्राप्रवेशौ देवस्य एक एवोत्सवोमतः
पुराविदो वदन्त्येतां यात्रांनवदिनात्मिकाम् । एषात्र्यवयवायात्रासम्पूर्णायैरुपासिता
सुसम्पूर्णफलस्तेषां महावेदीमहोत्सवः ॥ ११ ॥
गुण्डिचामण्डपात्कृष्णमायान्तं दक्षिणामुखम् ।
रथस्थं बलिनं भद्रां पश्यन्तो मुक्तिभागिनः ॥ १२ ॥
उत्तराभिमुखान्दृष्ट्वालभन्तेयादृशंफलम् । रामादीन्स्यन्दनस्थान्येपश्यन्त्येवंमहोदयान्
यादृशं फलमाप्नुयुस्तादृशं दक्षिणामुखान् ॥ १३ ॥
पदा यान्तं रथे यान्तं यःपश्येद्दक्षिणामुखम् । तस्य जन्मकृतार्थंस्याद्वाजिमेधःपदेपदे
स्तुतिभिः प्रणिपातैश्च पुष्पवृष्टिभिरेव च । नानानृत्तोपहारैश्च व्यजनच्छत्रचामरैः ॥
उपायनैर्बहुविधैरुपतिष्ठेद्रथाग्रतः ॥ १५ ॥
नीलाचलं समायान्तं रथस्थं दक्षिणामुखम् । येपश्यन्तिहलीकेशंसुभद्रांलाङ्गलायुधम्

कामकल्पतरुं पुंसां दर्शनादेव मुक्तिदम् । ते व्रजन्ति महात्मानो वैकुण्ठभवनं हरेः
रथेन विचरन्तं तं सिन्धुतीरे जनार्दनम् । पश्यन्तं करुणापाङ्गैः प्रणतान्पुरतो नरान् ॥
दक्षिणाभिमुखं यान्तं प्रासादं नीलभूधरे । सर्वतीर्थनिधिं सर्वदानकल्पतरुं हरिम् ॥
स्तुवन्तः प्रणमन्तश्च श्रद्दधानाश्च ये नराः । न तेपुनरिहायान्तिब्रह्मलोकस्थिताध्रुवम्
मुनयः कथितो वोऽयं महावेदीमहोत्सवः । यस्य सङ्कीर्त्तनादेव निर्मलो जायतेनरः
यश्चेदं कीर्तयेन्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः । शृणुयादपि बुद्धिस्थः शक्रलोकं व्रजेदसौ
प्रत्यर्चारूपमपि वा रथमास्थाप्य योहरेः । कुर्याद्यात्रामिमां श्रद्धाभक्तिभावेनमानवः
सोऽपि विष्णोः प्रसादेन गुण्डिचोत्सवजं फलम् ।
प्राप्य वैकुण्ठभवनं याति नाऽत्र विचारणा ॥ २४ ॥
पश्यश्रीर्याचतीविप्राभक्तिर्वाश्रद्धयान्विता । तावतीयंमहायात्रायो यथाकर्तुमिच्छति
इदं पवित्रं परमं रहस्यं वेधसोदितम् । कारयित्वाऽथवा दृष्ट्वा यन्नरोनाऽवसीदति
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णखण्डा-
न्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
नवाह्निकयात्रायांरथरक्षाविधानंनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

भगवताःशयनोत्सवविधिवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

अतः परम्प्रवक्ष्यामिशयनोत्सवमुत्तमम् । आषाढीमवधिं कृत्वा हरेः स्वापस्तुकर्कटे
वार्षिकांश्चतुरो मासान्यावत्स्यात्कार्त्तिकी द्विजाः ।
अयं पुण्यतमः कालो हरेराराधनम्प्रति ॥ २ ॥
काश्यां वहुयुगं वासान्नियमव्रतसंस्थितेः । फलं यदुक्तं तद्विद्यात्क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे

चातुर्मास्यदिनैकेन वसतःसन्निधौः हरेः। वार्षिकाणांचतुर्णां तु यान्यहानिवसन्नयेत्
पुण्यक्षेत्रे जगन्नाथसन्निधौ निर्मलान्तरे। प्रत्यक्षं वाजिमेधस्य सहस्रस्यलभेत्फलम्
स्नात्वा सिन्धुजले पुण्ये दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम्। चातुर्मास्यव्रतेतिष्ठन्नशोचतिकुतश्चन
चातुर्मास्ये निवसति क्षेत्रेश्रीपुरुषोत्तमे। साक्षाद्दृष्टिर्भगवतस्तद्द्वयं मुक्तिसाधनम्
तस्मात्सर्वाणि सन्त्यज्य श्रौतस्मार्त्तानि मानवः।
प्रयत्नान्निवसेत्पुण्ये क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ ८ ॥
भोगिभोगासने सुप्तश्चातुर्मास्येषु वै प्रभुः। सर्वक्षेत्रेषुसान्निध्यंनकरोति जगद्गुरुः
अत्र साक्षान्निवसति यथा वैकुण्ठवेश्मनि। द्वादशस्वपि मासेषु भगवानत्र मूर्तिमान्
मुक्तिदश्चक्षुषा दृष्टश्चातुर्मास्ये विशेषतः। अष्टमासनिवासेन दृष्ट्वा विष्णुं दिने दिने
यदाप्नोति फलं तद्धि चातुर्मास्यदिनैकतः। चातुर्मास्यनिवासेन क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे
दिनं दिनं महापुण्यं सर्वक्षेत्रनिवासजम्। फलं ददाति भगवान्क्षेत्रे वर्षनिवासतः॥
सर्वपापप्रसक्तोऽपि सर्वाऽऽचारच्युतोऽपि च। सर्वधर्मबहिर्भूतो निवसेत्पुरुषोत्तमे
चातुर्मास्यमथैकं यः कुर्याद्वै पापकृन्नरः। विहाय सर्वपापानि बहिरन्तश्च निर्मलः॥
नरसिंहप्रसादेन वैकुण्ठभवनं व्रजेत् ॥ १५ ॥
तस्मान्नरः सर्वभावैर्विष्णोःशयनभावितान्। वार्षिकांश्चतुरोमासान्निवसेत्पुरुषोत्तमे
कुर्यादन्यन्न वा कुर्याज्जन्मसाफल्यमृच्छति ॥ १७ ॥
आषाढशुक्लैकादश्यां कुर्यात्स्वापमहोत्सवम्। मण्डपं रचयेत्तत्र शयनागारमुत्तमम्॥
देवस्य पुरतःशय्यांरत्नपल्यङ्किकोपरि। स्वास्तीर्यसोपधानांतु मृदुचीनोत्तरच्छदाम्
कर्पूरधूलिविक्षिप्तांसाधुचन्द्रातपांशुभाम्। सर्वतोवेष्टितांछिद्ररहितां चन्दनोक्षिताम्
साधुद्वारां समां स्निग्धां नानाचित्रोपशोभिताम्।
एकं स्वापगृहं कृत्वा निशीथे प्रतिमात्रयम् ॥ २१ ॥
सौवर्णं राजतं वाऽपि रीतिजं दार्षदंतथा। यथाश्रद्धं प्रकुर्वीत प्रशस्तं चोत्तरोत्तरम्
तत्त्रयाणां सुराणाम्वैपादमूले यथातथम्। निधाय पूजयेद्देवांस्तच्छेषंतेषुनिक्षिपेत्
पूजान्ते भावयेदैक्यं तेषां कृष्णादिभिःसह। एह्येहिभगवन्देव सर्वलोकैकजीवन॥

स्वापार्थं चतुरो मासान्सर्वकल्याणवृद्धये । इतिसम्प्रार्थ्य देवेशांस्तदंगात्तत्स्रजांत्रयम्
प्रत्यर्चासु विनिक्षिप्य माङ्गल्यस्तुतिगीतिभिः ।
नयेच्छय्यागृहद्वारं वासयेद्धटिकात्रये ॥ २६ ॥
पञ्चामृतैः स्नापयेत्तान्पृथक्पलशताधिकैः । सुगन्ध चन्दनैर्लिप्तान्वस्त्राऽलङ्करणादिभिः
पूजयित्वा यथान्यायं प्राञ्जलिर्मन्त्रमुच्चरेत् । जगद्वन्द्य! जगन्नाथ! जगत्त्राणपरायण!
हितायजगतामीश चातुर्मास्यान्वनागमान् । सुप्त्वाप्रशमयाऽरिष्टाञ्छक्रेणसहपूजितः
एह्येहि शयनागारं सुखमत्र स्वप प्रभो !। इति सम्प्रार्थ्य देवेशं स्वापयेत्पुरुषोत्तमम्
सुदृढंवन्धयेद्द्वारं विष्णोः शयनवेश्मनः । स्वापयित्वाजगन्नाथं लभते सुखमुत्तमम्
वार्षिकांश्चतुरोमासान्प्रसुप्ते वै जनार्दने । व्रतैरनेकैर्नियमैर्मासान्वै चतुरः क्षिपेत् ॥३२
कल्पस्थायीविष्णुलोकेनरोभक्तोभवेद्ध्रुवम् । नियमव्रतानि गदतःशृणुध्वंमुनयो मम
मञ्चखट्वादिशयनं वर्जयेभक्तिमान्नरः । अनृतौ न व्रजेद्भार्यां मासं मधु परौदनम् ॥
पटोलं मूलकं चैव वार्त्ताकं च न भक्षयेत् । अभक्ष्यंवर्जयेद्दूरान्मसूरं सितसर्षपम्
राजमाषान्कुलत्थांश्च आशुधान्यं च सन्त्यजेत् ।
शाकं दधि पयो माषाञ्छ्रावणादौ क्रमादिमान् ॥ ३६ ॥
राजगोपयतींस्त्यक्त्वा नाऽऽरोहेच्चर्मपादुके । वार्षिकांश्चतुरो मासानव्रतेन नयेद्यदि
तस्य पापस्य शान्त्यर्थं कार्तिके वा व्रती भवेत् ॥ ३७ ॥
नमः कृष्णाय हरये केशवाय नमोनमः । नमोऽस्तु नारसिंहाय विष्णवे पापजिष्णवे
सायम्प्रातर्दिवामध्ये कर्मान्तेषु च योजयेत् ॥ ३९ ॥
तस्य पापानि घोराणि चितानिबहुजन्मसु । निर्दहत्येव सर्वाणितूलराशिमिवानलः
एकाहारोयताहारोविष्णुनिर्माल्यभोजनः ।आषाढीमवधिंकृत्वाकार्तिक्यवधियोभवेत्
नक्तभोजी भवेद्वाऽपि स्वर्गस्तस्याऽल्पकं फलम् ॥ ४१ ॥
तैलाभ्यङ्गंदिवास्वापंमृषावादञ्चवर्जयेत् । आषाढशुक्लैकादश्यांसंक्रान्तौकर्कटस्यवा
आषाढ्यां वा नरो भक्त्या गृह्णीयान्नियमम्व्रती । सर्वपापहरं देवं प्रपूज्य मधुसूदनम्
तदग्रे प्रतिसङ्कल्प्य व्रतार्चनजपादिकम् । प्रार्थयेत्परमानन्दं कृताञ्जलिपुटो व्रती ॥

चातुर्मास्यव्रतं देव गृहीतं त्वत्प्रसादतः । तव प्रसादान्निर्विघ्नं सिद्धिमायातु केशव
व्रतेऽस्मिन्नद्यसम्पूर्णे परलोकगतिर्भवेत् । तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादादधोक्षज!
इति सम्प्रार्थ्य देवेशं पूर्वोक्तनियमस्थितः । प्रापयेच्चतुरोमासान्विष्ण्वर्पितमतिर्व्रती
पारणं प्रतिमासान्ते प्रीत्यै कृष्णस्य कारयेत् ॥ ४८ ॥
मिष्टान्नैर्भोजयेद्विप्रान्पूजयित्वा जगत्पतिम् ।
असमर्थस्तु कार्तिक्यां पारयेद्व्रतमुत्तमम् ॥ ४९ ॥
तस्यां पूज्यंजगन्नाथंवह्निस्थंतर्पयेत्ततः । द्विजाग्र्यान्पायसैर्मिष्टैर्विष्णुभक्त्याप्रपूजयेत्
यथाशक्त्या प्रदद्याद्वै कनकं वस्त्रमेव च । अशक्तः कार्तिके मासि व्रतंकुर्यात्पुरोदितम्
व्रतं च विविधं विष्णोः कृच्छ्रचान्द्रायणं तथा ॥ ५२ ॥
[एकान्तरंद्व्यान्तरंवाकुर्यान्मासोपवासकम् । अनोदनं फलाहारं नक्तव्रतमथाऽपिवा ।
यवगोधूमकं कुर्यात्पराकम्वाव्रतं द्विजाः ॥]
पयःपीत्वानयेद्यस्तुशाकाहारेणवापुनः । भुक्त्वाऽत्रविपुलान्भोगान्परंनिर्वाणमृच्छति
तत्राऽपि चेदशक्तः स्याद्भीष्मपञ्चकमुत्तमम् । प्रीतये देवदेवस्य वन्यवृत्तिर्भवेद्व्रती
एतद्व्रतं समाख्यातं भगवत्प्रीतिकारकम् । सर्वपापप्रशमनं विष्णुलोकगतिप्रदम् ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामप्रसाधनम् (प्रसादनम्)॥ ५५ ॥
मुनयः प्रोक्तमेतद्वो रहस्यं श्रृणुताऽपरम् । एतद्व्रतम्वा चान्यानिव्रतानि सुबहूनि च
भगवद्भक्तिहीनानां जानीध्वं विफलानि वै । फलं महाक्रतूनांयत्तीर्थानां फलमुत्तमम्
दानानां तपसांचैवसात्त्विकानांचयत्फलम् । एकयाविष्णुभक्त्यातत्समग्रं फलमश्नुते
ये पश्यन्तिमहात्मानः शयनोत्सवमुत्तमम् । मातुर्गर्भे न स्वपन्तिकारयन्तिचयेमहत्
उत्सवान्ते व्रतं चेदं प्रतिज्ञाय तदग्रतः । पर्याप्तं पारयित्वा तु ब्रह्मलोके महीयते ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
भगवतःशयनोत्सवविधिवर्णनंनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

दक्षिणायनसङ्क्रान्तिकृत्यवर्णनमुखेनश्वेतमाधवोपाख्यानवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दक्षिणायनमुत्तमम्। सङ्क्रान्तेः पूर्वकालेया कला वै विंशतिर्मताः
अयनं पुण्यकालोऽयं पुण्यकर्मसुकर्मिणाम्। पञ्चामृतैस्तत्र देवं स्नापयेत्स्वापवद्द्विजाः
सर्वाङ्गं लेपयेदस्यागुरुकर्पूरचन्दनैः। सुगन्धमाल्यालङ्कारैश्चारुवस्त्रैश्च दीपकैः ॥ ३ ॥
नानाभक्ष्योपहारैश्च पूजयेत्परमेश्वरम्। कर्पूरालतिकामुच्चैर्मुखाभ्याशे हरेर्ददेत् ॥ ४
दुर्वाङ्कुराक्षतैर्नीराजनेनाऽथप्रवन्दयेत्। माङ्गल्यगीतनृत्ताद्यैर्नारी हुलुहुलां वदेत् ॥ ५
पूजितं पूज्यमानं च यः पश्येत्पुरुषोत्तमम्। पूजाशतगुणं पुण्यं तस्मै दद्याज्जनार्दनः
अयने दक्षिणे तस्मिन्नर्च्यमानंश्रियःपतिम्। विहायसर्वपापानिविष्णुलोकंव्रजन्तिते

स्वल्पा वा महती यात्रा सर्वा मुक्तिप्रदा हरेः।
तस्मिंस्तस्मिन्दिने दृष्टो भगवान्मुक्तिदो ध्रुवम् ॥ ८ ॥
विश्वासहेतोर्मूर्खाणां यात्रा ह्येताः कृपावता।
विष्णुना कथिता विप्राः! पापिनां किल्विषापहाः ॥ ९ ॥

आयासजनितं पुण्यं मन्यन्ते ये नराधमाः। लक्ष्मीपतेर्भोजनायसंस्कार्योऽत्रमहानसः
वैष्णवाग्निं समाधाय निरूप्य चरुमुत्तमम्। वैश्वदेवं प्रकुर्वीत भगवत्पाकसाधनम्
ब्रह्मणे वास्तुपतये प्रजानाम्पतये तथा। विष्णवेविश्वकर्त्रे चशुच्यग्नौजुहुयाच्छुचिः
राज्ञा नियुक्त आचार्यःश्रौतस्मार्तक्रियापरः। द्वारपालप्रचण्डाभ्यामैशान्यांक्षेत्रपालिने
दक्षिणे च विरूपाय खगानाम्पतयेतथा। दुर्गासरस्वतीभ्यांचनैर्ऋत्यांविनिवेदयेत्

महालक्ष्मीमहेन्द्राभ्यां प्राच्यां दिशि बलिः स्मृतः।
विष्णुपारिषदेभ्योऽथ पशूनाम्पतये तथा ॥ १५ ॥

उदीच्यां बलिदानंतुनारदायाऽथपश्चिमे। आग्नेय्यामग्नयेदद्याद्वायव्यांविश्वसाक्षिणे

पञ्चश्वसनरूपेभ्यो विश्वकर्त्रेऽथ मध्यतः । आद्यन्तयोर्जलं दद्यात्प्रत्येकं बलिकर्मणि
दत्त्वा बलिं तदग्नौ तु कारयेत्पाकमुत्तमम् । सन्ध्यात्रये भगवतःपूजायैचरुकारणात्
चरुसंस्कारकाङ्गानिभक्ष्यभोज्यादिकानि वै । न दीक्षान्योजयेत्तत्रलोकेत्रैवर्णिकोनृपः
आर्यान्पवित्राञ्छूद्रान्वा वर्णांश्च परिसेवकान् ।
लौकिकव्यवहारोऽयं पचति श्रीःस्वयं ध्रुवम् ॥ २० ॥
भुङ्क्ते नारायणो नित्यं तयापक्वंशरीरवान् । अमृतंतद्धिनैवेद्यंपापघ्नंमूर्ध्निधारणात्
भक्षणान्मद्यपानादिमहादुरितनाशनम् । आघ्राणान्मानसं पापं दर्शनाद्दृष्टिजं तथा ॥
आस्वादात्तु कृतं पापं श्रावणंचव्यपोहति । स्पर्शनात्त्वक्कृतंपापंमिथ्याभाषणजंतथा
गात्रलेपाद्धरेत्पापं शारीरं वै न संशयः ॥ २४ ॥
महापवित्रं हि हरेर्निवेदितं नियोजयेद्यः पितृदेवकर्मसु ।
तृप्यन्ति तस्मै पितरः सुरास्तथा प्रयान्ति लोकं मधुसूदनस्य ते ॥ २५ ॥
नातःपवित्रंवस्त्वस्तिहव्यकव्येषुभोद्विजाः । नराणांरूपमस्थायतदश्नन्तिदिवौकसः
अभिमानो महांस्तत्र देवदेवस्य चक्रिणः । श्वेतोनाम महाराजः पुरात्रेतायुगेऽभवत्
व्रतस्थोऽपि महाभक्तिं चकार पुरुषोत्तमे । इन्द्रद्युम्नेन रचितभोगमात्रानुसारतः ॥
भोगान्प्रकल्पयामासप्रत्यहंश्रीपतेर्मुदा । भक्ष्यभोज्यान्यनेकानिषड्रसांश्चसुसंस्कृतान्
माल्यानिचविचित्राणिसुगन्धमनुलेपनम् । गीतवादित्रनृत्यानि दिव्यानिसुबहूनिच
राजोपचारा बहुशोऽवसरेऽवसरे हरेः । बहुवित्तव्ययायासभक्तिभावनिरूपकाः ॥३१
तत्तद्वैष्णवशास्त्रोक्तचित्रभोगाःपृथग्विधाः । कल्पितास्तेनभूपेनविद्वत्पङ्कजभानुना ॥
प्रातः पूजनवेलायां हरिं द्रष्टुं जगाम सः । कस्मिंश्चिद्दिवसेराजापूज्यमानंददर्शतम्
प्रणम्य देवदेवं तु बद्धाञ्जलिपुटोमुदा । प्रासादद्वारनिकटे तस्थिवान्नृपसत्तमः ॥
दृष्ट्वा स्वयंविरचितानुपचारानन्नुत्तमान् । उपायनसहस्रं च हरेरग्रे प्रकल्पितम् ॥ ३५
चिन्तयामास मनसा किञ्चिद्ध्यानावलम्बितः ।
मनुष्यकल्पितं भोगं ग्रहीष्यति हरिः किमु ॥ ३६ ॥
देवैर्दिव्योपचारैर्यो शक्यतेनाऽर्चनाविधौ । मानसैरुपहारैर्यंपूजयन्ति यतव्रताः ॥३७

भावदुष्टो वहिर्यागो नमुदे तस्यनिश्चितम् । इत्थंसञ्चितयन्राजादिव्यासनगतंविभुम्
भुञ्जानमन्नपानाढ्यं श्रिया सुपरिवेषितम् । दिव्यस्रजालङ्कृतयादिव्यगन्धदुकूलया
अनर्घ्यरत्नमञ्जीरसिञ्जितेन सुरालयम् ।पूरयन्त्यास्वर्णदर्व्या ददत्या सादरं रसान् ॥
भगवत्प्रतिरूपैश्च भुञ्जानैः परिवेष्टितम् । दृष्ट्वा कृतार्थमात्मानं मन्यमानस्तदद्भुतम्
प्रोन्मीलिताक्षः स पुनःप्राग्दृष्टंसमवैक्षत । अतःप्रभृतिराजाऽसौपरांनिर्वृतिमाप्तवान्
निवेदिताशीर्व्रतवांश्चचार सुमहत्तपः । अकालमृत्युनाशाय स्वराज्ये मृतमुक्तये ॥
मन्त्रराजं जपन्नित्यं श्रितानां कल्पपादपम् । ददर्श शतवर्षान्ते नृहरिं दुरितापहम्

योगासनाब्जनिलयं वामाङ्गावस्थितश्रियम् ।
दिव्यालङ्कृतसर्वाङ्गं स्फटिकामलविग्रहम् ॥ ४५ ॥

त्रिदशैःसिद्धमुक्तैश्च स्तूयमानंस्मिताननम् । भ्रान्तोविस्मयभीतिभ्यांहर्षगद्गदयागिरा

प्रसीद नाथेति लपन्पपात धरणीतले ॥ ४६ ॥

तपः कृशं तं प्रणतं दृष्ट्वा मनुजकेसरी । अकल्मषं क्षितिपतिं विवक्षुर्भक्तवत्सलः ॥

श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठवत्स! भक्त्यातेप्रसन्नंविद्धिमांप्रभुम् । मयि प्रसन्नेनालभ्यंवरंतत्प्रार्थ्यतांभवान्
श्रुत्वेत्थं भगवद्वाक्यंसमुत्तस्थौ ततोनृपः । बद्धाञ्जलिपुटोनम्रोभक्त्योवाच जनार्दनम्

श्वेत उवाच

स्वामिन्यदि प्रसादस्ते मयि जातः सुदुर्लभः ।
सारूप्यमथ सम्प्राप्य स्थास्यामि तव सन्निधौ ॥ ५० ॥
स्थास्ये यावन्नृपत्वेऽहं मद्राज्ये नो जनः क्वचित् ।
अकाले म्रियतां जन्तुः काले चेन्मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ५१ ॥
तच्छ्रुत्वा भगवान्प्राह श्वेतराजानमुत्तमम् ॥ ५२ ॥

श्वेत! ते वाञ्छितंभूयात्तिष्ठ त्वं ममदक्षिणे । भुक्त्वावर्षसहस्रंतुस्वराज्यंसुसमृद्धिमत्
मम निर्माल्यभोगेनक्षीणशेषाघसञ्चयः । सुनिर्मलान्तःकरणोमत्सायुज्यमवाप्स्यसि
वटसागरयोर्मध्येमुक्तिस्थानेसुदुर्लभे । मदीयाऽऽद्यावतारस्यविष्णोर्मत्स्यस्वरूपिणः

सम्मुखीनोवसत्वंहिस्फटिकामलविग्रहः। ख्यातिंयास्यसिभूर्लोकेश्वेतमाधवसञ्ज्ञया
युवयोरन्तरालेयेप्राणांस्त्यक्ष्यन्तिमानवाः। तिर्यञ्चोऽपिचकीटावाध्रुवंतेमुक्तिमाप्नुयुः
अमरा यत्र मरणमिच्छन्ति किमुमानवाः। तवोत्तरस्यां दिशियत्सरःपापनिबर्हणम्
तत्र स्नात्वाउपस्पृश्यतदीयेदक्षिणेतटे। उभयोर्द्दृष्टिपूतःसंस्त्यक्त्वाप्राणान्विमुच्यते
आसमन्तादिदं क्षेत्रं यत्रतत्राऽपिमुक्तिदम्। मूढात्मनांविश्वसितुंप्रधानंस्थानमीरितम्
तव राज्ये तु येलोकाममनिर्माल्यभोजिनः। मृतिराकालिकीतेषांनकदाचिद्भविष्यति

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
श्वेतमाधवोपाख्यानवर्णनंनामसप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

—::०::—

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

भगवतःप्रसादनिर्माल्यादिमाहात्म्यवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

इतिदत्त्वावरंतस्मैश्वेतराजायवैपुरा। जगामाऽन्तर्हितोविप्राःप्रासादान्तःस्थितोहरिः
समस्तजगदाद्याश्रीःसृष्टिस्थितिविनाशकृत्।वैष्णवीशक्तिरतुलाविष्णुदेहार्द्धहारिणी
सुधोपमं सुपक्वान्नं भुङ्क्ते नारायणः प्रभुः। तदुच्छिष्टोपभोगो हिसर्वाघक्षयकारकः
नतादृशसमंपुण्यंवस्त्वस्तिपृथिवीतले। [प्रायश्चित्तमशेषाणाम्पापानांपरिकीर्तितम्
भगवत्पादपद्मानुप्रेक्षणोपासनादिभिः]। पापसंस्कार कर्तॄणां सम्पर्कात्तु न दुष्यति
पद्मायाः सन्निधानेन सर्वे तेशुचयःस्मृताः। विष्णवालयगतंतद्धिनिर्माल्यंपतितादयः
स्पृशन्त्यन्नं न दुष्टंतद्यथाविष्णुस्तथैव तत्। व्रतस्थाविधवाश्चैवसर्वेवर्णाश्रमास्तथा
तत्प्राशनेन पूयन्ते दीक्षिताश्चाग्निहोत्रिणः। दरिद्रःकृपणो वाऽपि गृहस्थःप्रभुरेववा
स्वदेश्याः परदेश्या वा सर्वेतत्रसमागताः। नाभिमानंप्रकुर्वीरन्विष्णोर्निर्माल्यभक्षणे

भक्त्या लोभात्कौतुकाद्वा क्षुधासंशमनेनवा आकण्ठभक्षितंतद्धि पुनाति सकलांहसः

सर्वरोगोपशमनं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् ।

दारिद्र्यहरणं श्रेष्ठं विद्यायुःश्रीप्रदं शुभम् ॥ १० ॥

पक्षपातो महांस्तत्रविष्णोरमिततेजसः । निन्दन्ति ये तदमृतं मूढाःपण्डितमानिनः

स्वयं दण्डधरस्तेषु सहते नाऽपराधिनः । येषामत्र स दण्डश्चेद्ध्रुवातेषांहि दुर्गतिः

कुम्भीपाके महाघोरे पच्यन्ते तेऽतिदारुणे ।

न विक्रयः क्रयो वाऽपि प्रशस्तस्तस्य भो द्विजाः !॥ १३ ॥

निर्माल्यं जगदीशस्य नाऽशित्वाऽश्नामि किञ्चन ।

इति सत्यप्रतिज्ञो यः प्रत्यहं तच्च भक्षयेत् ॥ १४ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः शुद्धान्तःकरणो नरः । स शुद्धं वैष्णवस्थानं क्रमाद्यातिन संशयः

चिरस्थमपि संशुश्कं नीतं वा दूरदेशतः । यथातथोपयुक्तं तत्सर्वं पापापनोदनम् ॥

कुक्कुरस्य मुखाद्भ्रष्टं तदन्नं पतितं यदि । ब्राह्मणेनाऽपि भोक्तव्यमितरेषांतुकाकथा

उपोष्य तिष्ठता वाऽपि नोपवासं च कुर्वता । अशुचिर्वाप्यनाचारोमनसापापमाचरन्

प्राप्तमात्रेण भोक्तव्यं नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ १८ ॥

नैवेद्यान्नं जगद्भर्त्तुर्गाङ्गं वारि समं द्वयम् । दृष्टेःस्वर्गादिसम्प्राप्तिर्भक्षणाच्चाऽघनाशनम्

जगद्धात्र्या हि यत्पक्वं वैष्णवेऽग्नौ सुसंस्कृते ।

भुङ्क्तेऽन्वहं चक्रपाणिर्युगमन्वन्तरादिषु ॥ २० ॥

सप्तद्वीपधरामध्ये सान्निध्यं नेदृशं हरेः । यादृशंनीलगोत्रेऽस्मिन्व्याजमानुषचेष्टितम्

दारुरूपं परंब्रह्म सर्वचाक्षुषगोचरम् । प्रकाशते भो मुनयो न दृष्टं न श्रुतं क्वचित् ॥२२

तस्मै प्रवृत्तिरूपाय ब्रह्मणे परमात्मने ।

प्रवृत्तिरूपा शक्तिः श्रीः प्रवर्तयति यद्धविः ॥ २३ ॥

तदश्नाति जगन्नाथस्तच्छेषं दुरितापहम् । किमत्र चित्रंभो विप्रायदुक्तंमुक्तिकारणम्

नाऽल्पपुण्यवतां तत्र विश्वासश्च प्रजायते । वेदाचारप्रधानेषु युगेष्वेतत्प्रकीर्तितम्

महिमानं न वेदास्य विशेषाच्छ्रूयतां कलौ ।

घोरे कलियुगे तस्मिंस्त्रिपादो धर्मविप्लवः ॥ २९ ॥

धर्मः स्यादेकपादस्तुकचित्तस्य भयाच्चरेत् । सर्वेऽनृतप्रधानाहि दाम्भिकाःशठवृत्तयः
प्रायश्च धर्मविमुखा जिह्वोपस्थपरायणाः । न ध्यायन्ति तपस्यन्तिव्रतयन्तिकदाचन
अधर्मबहुलाः सर्वे हिंसका लोलुपाः परम् । परेषां परिवादेन तुष्यन्ति स्वकृतंविना
प्रसङ्गात्कौतुकाद्वाऽपि निघ्नन्ति परकर्म वै । क्षुद्रकार्याशयात्स्वस्यपरकार्यप्रबाधकाः

धर्मलब्धां स्त्रियं रम्यामवज्ञाय स्ववेश्मनि ।
परयोषिति निन्द्यायां प्रसक्ताः पशुचेष्टिताः ॥ ३१ ॥
अग्निहोत्रादिकं वाऽपि व्रतं नाऽन्यत्कश्चित्कचित् ।
जीविका तद्व द्विजातीनां नैषां वा पारलौकिकम् ॥ ३२ ॥

अव्रताधीतवेदेन अन्यायाऽऽसधनेन च । वित्तशाठ्येन च कृतं न तथा फलदायि तत्
प्रायः कलियुगे भूपाः प्रजावनपराङ्मुखाः । करादानपरानित्यं पापिष्ठाश्चौर्यवृत्तयः ॥
वर्णसङ्करिणः सर्वे शूद्रप्रायाः कलौयुगे । हर्तारः पार्थिवाः एव शूद्राश्च नृपसेवकाः ॥
श्रौतस्मार्तादिकं कर्म न तथासदनुष्ठितम् । युगे चतुर्थे भो विप्राःपरलोकायकल्पिते

दानधर्मः परो ह्यत्र नाऽन्योधर्मःप्रशस्यते ।
कर्मणा मनसा वाचा हितमिच्छेद्द्विजन्मनाम् ॥ ३७ ॥

इतिहोवाचभगवान्ब्राह्मगोमामकीतनुः । ब्राह्मणायस्यसन्तुष्टाःसन्तुष्टस्तस्यचाप्यहम्
उभयत्र समो भूयाद्ब्राह्मणे च जनार्दने । यद्वदन्तिद्विजावाक्यं तत्स्वयंभगवान्वदेत्

यथा तथा वर्तमानो वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।
भगवानपि देवेशःस साक्षाद् ब्राह्मणप्रियः ॥ ४० ॥

सदाऽवतारं कुरुते ब्राह्मणार्थं जनार्दनः । तत्पालनार्थं दुष्टान्वै निगृह्णाति युगे युगे
ससर्जब्राह्मणानग्रे सृष्ट्यादौ स चतुर्मुखः । सर्वे वर्णाः पृथक्पश्चात्तेषां वंशेषु जज्ञिरे

तस्मात्कलियुगे तस्मिन्ब्राह्मणो विष्णुरेव च ।
उभौ गतिश्च सर्वेषां ब्राह्मणानां हरिर्गतिः ॥ ४३ ॥

हरिरेवाऽत्र सर्वेषांगतिः प्राप्तेकलौयुगे । शालग्रामादिके क्षेत्रे स्मर्यतेकीर्त्यतेऽपि च

तस्मिन्नीलाचलेपुण्ये क्षेत्रे क्षेत्रज्ञवर्ष्मणि । जीवभूतः स सर्वेषां दारुव्याजशरीरभृत्
कलिकल्मषनाशाय प्रायो दुष्कृतकर्मणाम् ।
दर्शनस्तवनोच्छिष्टभोजनैर्मुक्तिदायकः ॥ ४६ ॥
उच्छिष्टेन सुरेशस्य व्याप्तंयस्यकलेवरम् । तदाहारस्तदात्माहिलिप्यते न सपातकैः
निवेदनीयमन्यासु मूर्तिष्वीशस्य वर्तते । पावनं तदपि प्रोक्तमुच्छिष्टं तु विमोचकम्
भुङ्क्ते त्वत्रैवभगवान्पश्यत्यन्यत्रचक्षुषा । पुराऽयंप्रार्थितो देवो योगिभिःपरिवेष्टितः
निर्माल्योच्छिष्टभोगेन तव मायां जयेमहि ।
अत्यन्तस्तिमिताक्षाणामनायासेन मुक्तिदः ॥ ५० ॥
शयनासनभोगाद्यै रमते च श्रिया सह । अत्र चेष्टा भगवतो वेदार्थ इति धार्यताम् ॥
समतिक्रान्तवेदो हि न कदाचित्प्रवर्तते । वेदरक्षार्थमेवास्य सम्भवो हि युगे युगे ॥
प्रमाणभूतो भगवान्विरुद्धं कथमाचरेत् । तस्मिन्विरुद्धं चरति जगदेव तथा भवेत्
आचारेण हि वेदार्थो नियतो धामतांगतः । मध्यदेशभवः पूर्वमत्रागच्छद्द्विजोत्तमः
शिष्टाचारैः सुविमलः शास्त्रार्थपरिनिष्ठितः ।
सदा शान्तः सदा दान्तःकायवाङ्मनसैर्गृही ॥ ५५ ॥
स तीर्थविधिनादेवंसमभ्यर्च्यचसाग्निकः । त्रिरात्रमत्रोषितवान्विष्ण्वर्चनपरःशुचिः
यज्ञशेषं गृहस्थानां भोक्तव्यमितिशास्त्रतः । देवोच्छिष्टं न जग्राहअन्यपाकाभिशङ्कया
दैवतैरत्र संस्कार्यो देवयोग्यः कथं भवेत् । अयोग्यत्वाच्च नैवेद्यमग्राह्यंच भवेद्ध्रुवम्
अगृहीते च नैवेद्ये श्रोत्रियेणतदाद्विजाः । सर्वे च तस्यानुचरा नाभुञ्जन्तनिवेदितम्
ततः स व्याधिसम्मग्नो विह्वलीभूतविग्रहः । सकुटुम्बोऽभवन्मूकोभगवद्द्रोहसंयुतः
मनसाचिन्तयत्येवं निर्निमित्तं कथं नु मे । कुटुम्बसहितस्याभूत्पीडासर्वाङ्गभञ्जिनी
एवं चिन्तयमानस्यत्रिरात्रान्तेऽभवन्मतिः । नेदृशी व्याधिपीडाचसर्वेषामेकदाभवेत्
को वा द्रोहः कृतोऽस्माभिरेतस्मिन्पुरुषोत्तमे ।
न बुद्धिपूर्वकः किं स्यात्ततो मे व्याधिकारणम् ॥ ६३ ॥
मुहुरित्थं चिन्तयित्वादध्यौनारायणंप्रभुम् । ध्यानावसानेतुष्टाव शास्त्रतत्त्वार्थदर्शकः

शाण्डिल्य उवाच

चतुर्दशाऽपिया विद्याधर्मनिर्णयहेतवः । ताः सर्वास्तक वाक्यानि मुखपद्मविनिर्गताः
ताभिरेवाऽऽचरेद्धर्ममिति शास्त्रार्थनिश्चयः । तस्य धर्मस्य रक्षार्थमवतारो युगे युगे
तमुल्लङ्घ्य वर्त्तमानो भवद्द्रोहकरो ध्रुवम् । अहं ते देवदेवेश! कर्मणा मनसा गिरा
धर्मशास्त्रमतिक्रम्य न वर्त्तेऽप्यर्थकामयोः । अनेकजन्मसाहस्रैः सञ्चितं पापसञ्चयम्
दग्धुमत्राऽऽगतोदेवत्वद्दर्शनदवाग्निना । कोऽपराधः कृतो देव त्वच्छास्त्रपथिवर्तिना
सर्वाङ्गं वाधते यस्मादुग्रो व्याधिरहेतुकः ॥ ६६ ॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि त्वत्पादसरसीरुहे । कृतोऽपराधोयोदेव! तं क्षमस्व कृपाम्बुधे!
भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम् । त्वयिजातापराधानां त्वमेवशरणम्प्रभो
तवाऽपराधजं पापं त्वमेव च क्षमस्व मे ॥ ७१ ॥
वह्निसन्तापतोनश्येद्वह्निसन्तापजो व्रणः । तदिमां दुर्दशांदेव प्रारब्धांपापवीजजाम्
लीलापाङ्गेन शमय अपवर्गैकहेतुना । मामुद्धर जगन्नाथ पतितं शोकसागरे ॥ ७३ ॥
त्वद्दर्शनपथं यातः किं नु शोच्योभवेन्नरः । निसर्गकरुणाम्भोधे यस्त्वद्दृष्टिपथङ्गतः
सदानन्दाब्धिसंमग्नोनशोचतिनकाङ्क्षति । नाल्पभाग्योह्यहंदेव त्वामद्राक्षंस्वचक्षुषा
अपवर्गान्तरायो मे ध्रुवमेषा विभीषिका । तत्प्रसीद जगन्नाथ! सेवकं द्रोहिणं सदा
सेव्यसेवकसम्बन्धादपराधं क्षमस्व मे ।
इति स्तवान्ते तस्याऽऽशु देहपीडाऽगमत्तदा ॥ ७७ ॥
ददर्श सोथ गोविन्दंनृसिंहंभक्तवत्सलम् । दिव्यसिंहासनारूढंदिव्याऽलङ्कारभूषितम्
आददानं श्रिया दत्तं परमान्नं कराम्बुजे । ग्रासावशेषं पात्रेषु क्षिपन्तं च मुहुर्मुहुः ॥
यावद्दत्तंवस्तुजातंतावदश्नन्तमत्वरम् । विलाससस्मितापाङ्गंहस्तेलक्ष्म्याऽपवर्जितम्
तं दृष्ट्वा विस्मयाविष्टः शाण्डिल्यः स द्विजोत्तमः ।
सस्माराऽऽत्मकृतं द्रोहं नैवेद्याग्रहणेस्थितम् ॥ ८१ ॥
क्वाऽहं प्रादेशिकः प्राज्ञः सर्वज्ञाननिधिर्भवान् । क्व त्वं महदहङ्कारभूततत्त्वविसर्जकः ॥
त्वन्मायोमूढमनसो जानीयुः कथमीश ते ।

निरंकुशामनिर्वाच्यामिच्छां सृष्टिलयात्मिकाम् ॥ ८३ ॥
इतिस्तुवन्तंनृहरिस्तेनैवोच्छिष्टपाणिना । सिषेच ग्रासशिष्टांश्चसर्वाङ्गेद्विजसत्तमम्
तैःसिक्तैर्ब्राह्मणःसद्यःसुधासेकोपमैर्मुदा । बभौदिव्यवपुःश्रीमाञ्जीवन्मुक्तोयथा मुनिः
महिमानं हि भक्तेस्तु भक्ता एवविजानते । महतींसूतिपीडांतुवन्ध्यानानुभवेत्क्वचित्
इत्युदीर्य स्वयं गात्रादुच्छिष्टं परमात्मनः । भुक्त्वा कृतार्थमात्मानं मेने श्रोत्रियपुङ्गवः
साधरणं धर्मशास्त्रं क्षेत्रेऽस्मिन्न विचार्यते । अयं तु परमो धर्मो यो देवेन प्रकीर्तितः
आधारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः । इत्थं सञ्चिन्तयन्विप्रःकुटुम्बार्थेऽवशेषितम्
आजहार स्वयं मुष्ट्या ध्यानभङ्गमवापच । प्रबुद्धश्चिन्तयामासस्वप्नंतंविस्मिताशयः
अयमेव मम द्रोहो ह्यवज्ञासिषमीश्वरम् ।
नैवेद्याशनमाहात्म्यमजानन्परमाद्भुतम् ॥ ९१ ॥
अष्टादश चतुर्दश ब्रह्माण्डं यत्पदाम्बुजम् । धर्मद्रवेण प्रक्षाल्य अपुनास्त्वं तदम्बुना
यमर्चयन्ति शक्राद्या दिव्यभोगैरनुत्तमैः । समानुष्यकृतं भुङ्क्ते क्षेत्रेऽस्मिन्महदद्भुतम्
इत्याश्चर्यपरस्तेन स्वप्नलब्धेन वै द्विजाः । नैवेद्येन कुटुम्बं स्वं मार्जयामास सादरम्
ततः सर्वे नीरुजास्ते सुवाक्याद्धृष्टमानसाः । पुनर्जन्म मन्यमानाः शशंसुः क्षेत्रमुत्तमम्
नाऽस्त्यस्य सदृशं क्षेत्रं सप्तद्वीपावनीतले ।
यत्र स्वोच्छिष्टदानेन पापान्मोचयते नरान् ॥ ९६ ॥
पुरुशोत्तममाहात्म्यं क्षेत्रं परमदुर्लभम् । यतः स्वर्गश्च भोगश्च मुक्तिश्चैव करे स्थिता
आर्तानां भवकान्तारेभाग्यादत्रसमीयुषाम् । नानाभोगोपतृप्तानांमुक्तिमार्गःसुखंभवेत्
इत्थं ते हर्षमापन्नाः प्रलपन्तः परस्परम् । यथेष्टं भोजयामासुरन्योन्यं च निवेदितम्
ततस्ते निर्मला विप्रास्तरुणादित्यवर्चसः । देवा इव बभुः सर्वे निष्पापानिर्गतज्वराः
नैवेद्याशनमाहात्म्यंकथितं वो द्विजोत्तमाः । श्रुत्वाऽपिमहतःपापान्मुच्यतेपापकृत्तमः
निर्माल्यग्रहणस्याऽस्यफलंवक्तुं नशक्नुमः । साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपेणध्रियतेवपुषाहितत्
पुष्पचन्दनमाल्यादि यदङ्गैरुपधार्यते । अपनीतं यथाकाले निर्माल्यं तत्प्रकीर्तितम् ॥
धारणं शिरसा तस्य तेनाङ्गेचापिमार्जनम् । सार्द्धानांकोटितीर्थानामभिषेकफलप्रदम्

भक्षणं गुरुतल्पादिपातकौघविनाशनम् ॥ १०४ ॥
लेप्या मूर्त्तिरियं विष्णोरन्येभ्योलेपउत्तमः । श्रीखण्डागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमादिभिः
प्रविष्टलेपस्नेहेन चन्दनागुरुदारुणा । शरीरे वासुदेवस्य इन्द्रद्युम्नेन कारितः ॥१०६
प्रत्यहं भो द्विजश्रेष्ठा वर्षान्ते चाऽपनीयते । लेप्यानां लेपनिर्मोके दर्शनं न प्रशस्यते
अन्तरा चेत्पतेल्लेपः पिष्टं लिम्पेत्पुनश्च तम् ।
नान्यलेपः प्रशस्यो हि स विष्णोरङ्गसम्मतः ॥ १०८ ॥
चन्दनार्द्रशरीरं च दृष्ट्वा विष्णुं पुरा किल । सौगन्ध्याल्लोभयामास नृपपुत्रःसमूढधीः
तस्य प्रीत्यै नियुक्तस्तु आकृष्याङ्गात्प्रलेपनम् । ददौ नृपकुमारायलिलिम्पेहृदिस्वके
तावत्प्रदेशं कुष्ठं वै श्वेतं तस्याऽभवत्क्षणात् ।
स आसीत्कुष्ठपाणिस्तु तस्मै यो दत्तवान्किल ॥ १११ ॥
ततो वर्षावधिष्ठायीलेपःपुण्यतमःस्मृतः । निर्माल्यानांप्रधानंतद्घ्राणाद्देहोविनाशनम्
पुरा दमनकं दैत्यं समुद्रोदकचारिणम् । बाधितारं जनानां वै मायाबलपराक्रमम् ॥
भगवानपि मायावी पितामहनिदेशतः । मत्स्यावतारेण विभुः प्रविश्य वरुणालयम्
अन्विष्याऽऽकृष्य वेलायां निष्पिपेष महीतले ।
मधोः शुक्ल चतुर्दश्यां पतितो दानवोत्तमः ॥ ११५ ॥
भगवत्करसम्पर्कात्सुगन्धिरभवत्तृणम् । तस्यैव नाम्नाऽतः सम्यग्जग्राहाश्चर्यमानसः
मालां कृत्वा हृत्प्रदेशमिलितांवनमालया । अचिन्तयत्तस्यगन्धंयावद्वस्तुचिरस्थितम्
तस्याऽपि गन्धः सर्वेषां पुष्पाणां सौरभापहः ।
वर्णस्तु भगवन्मूर्तेस्तुल्योऽभूत्स सुशोभनः ॥ ११८ ॥
तस्य माला भगवतः परमप्रीतिकारिणी । शुष्कापर्युषिता वाऽपिनदुष्टाभवतिकचित्
तस्य सुग्रथितां मालांदत्त्वादमनकाय्ये । उत्पादयेन्महाप्रीतिंविष्णोर्यामुक्तिदायिनीं
अङ्गापकर्षितां मालां भक्त्या यो धारयेन्नरः । हयमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम्
तुलसीकल्पितां मालां विष्णोरङ्गापकर्षिताम् ।
धारयेन्मूर्ध्नि कण्ठे च भक्तो यो विन्यसेद्धृदि ।

तावत्सङ्ख्यं वाजिमेधफलमव्यग्रमश्नुते ॥ १२२ ॥
निर्माल्यतुलसीपत्रं यावद्भक्षयते हरेः। तावज्जन्मसहस्रं तु विष्णुलोके महीयते ॥
हरेर्नैवेद्यमन्नं च तुलसीदलमिश्रितम्। प्रतिग्रासं सोमपानं फलं तत्सममश्नुते ॥
यावज्जीवं तु भुञ्जानो ध्रुवं मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १२५ ॥
अर्घ्यशेषादिकं विष्णोस्तथाऽऽचामनोदकम्।
पादोदकं स्नानवारि प्रत्येकं पापनाशनम् ॥ १२६ ॥
सर्वतीर्थाभिषेकाणां फलदं ग्रहनाशनम्। अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं भूतवेतालनाशनम् ॥
शवाद्यमेध्यसंस्पर्शदोषनाशनमुत्तमम्। सर्वदीक्षाव्रतफलप्रदमैश्वर्यवर्द्धनम् ॥ १२८ ॥
अकालमृत्युहरणं व्याधिव्यूहनिवर्हणम्। सुरागोमांसभक्ष्यादिपापसङ्घविनाशनम् ॥
एतैराप्लुतदेहस्तु शृणुयाद्यदि सूतकम्। नाशौचं विद्यते तस्य सर्वकर्माऽधिकारिणः
यावज्जीवं प्रतिज्ञाय यस्त्वेतान्येकमेव वा।
गृह्णीयाद्भूरि वा स्वल्पं मुच्येद्विष्णोः प्रसादतः ॥ १३१ ॥
एवं तत्र वसन्देवो लोकानुग्रहकाङ्क्षया। रममाणः श्रिया सार्द्धमनायासविमोचकः
निर्माल्यपादाम्बुनिवेदनीयदानै¹स्तदालोकनतत्प्रणामैः।
पूजोपहारैश्च विमुक्तिदाता क्षेत्रोत्तमेस्मिन्पुरुषोत्तमाख्ये ॥ १३३ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे भगवतःप्रसादनिर्माल्यादिमाहात्म्यकथनंनामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

---

¹वङ्गाक्षरमुद्रितपुस्तके "निवेदितान्नपातैः" इतिपाठः।

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवतःपार्श्वपर्यायणसमुत्सवविधिवर्णनम्

मुनय ऊचुः

मुने! त्वत्तः श्रुतं सम्यङ्माहात्म्यं जगदीशितुः। निर्माल्यप्रभृतीनांचयथावदनुपूर्वशः
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्यात्रान्तरफलानि वै। शृण्वतां तत्त्वतो ब्रूहि यथोद्देशःकृतःपुरा

जैमिनिरुवाच

सर्वथा वर्त्तते लोकहिताय पुरुषोत्तमः। नानागुणविकासैश्च नानारूपविचेष्टितैः॥३॥
नानारूपविलासेन नानात्मा च जगन्मयः। अहङ्कारं विना कर्मफलं नो द्विजसत्तमाः
अहङ्कारेण बध्यन्ते कारागारे भवाभिधे। बुद्ध्यहङ्कारयुक्तस्तु यत्कर्माऽऽरभते नरः
तस्यसद्गुणमाप्नोति फलं शुभमथाऽपरम्। बुद्धिस्तुत्रिविधातेषांगुणभेदेनभाविता
तत्र ये सात्त्विकाः सन्तः फलावाप्तिपराङ्मुखाः। भगवत्प्रीतये कर्मकुर्वतेतेमुमुक्षवः
परस्य स्पर्द्धया कीर्त्यै फलमुद्दिश्य वा पुनः। बहुवित्तव्ययायासै राजसं कर्म तन्वते
गतानुगतिका ये च दृष्टार्थैकपरायणाः। प्रसङ्गात्फलमिच्छन्तस्तामसं कर्म कुर्वते॥

सात्त्विकानां जगन्नाथः सर्वदा सर्वभावनः।
ध्यातो दृष्टः स्मृतो वाऽपि मुक्तिदाता न संशयः॥ १०॥

राजसास्तामसा ये वै मूढात्मानः फलैषिणः। उत्सवादिकृतं कर्ममन्यन्तेफलदायिते
सम्भूय बहवो विप्रा आरभन्तेऽल्पकं विधिम्। बहुलायासदुःखंयत्कर्मतेषांफलप्रदम्
तेषामुद्धरणार्थाय विश्वासाय दुरात्मनाम्। यात्रा नानाविधा विप्रा वर्षे वर्षे प्रवर्तयेत्
जन्मस्नानं महावेद्या उत्सवश्च प्रकीर्तितः। महायात्राद्वयं पुंसां कीर्तनात्पापनाशनम्
दर्शनं दक्षिणामूर्तेस्तथा च शयनोत्सवः। सर्वपापहरश्चैषामुत्सवो दक्षिणायने॥१५
अतः परं प्रवक्ष्यामि पार्श्वस्य परिवर्तनम्। शयितस्य जगद्भर्तुः परिवर्तयितुर्युगम्
नभस्यविमले पक्षे सम्प्राप्ते हरिवासरे। विष्णोः स्वापगृहद्वारि शनैर्गत्वा प्रविश्य च

नमस्कृत्वा जगन्नाथं पर्यङ्के शयितं मुदा। अवच्छाद्य शनैर्गत्वा पूजयेदुपचारकैः॥
प्रणम्य भक्त्या तत्पादौ गुह्योपनिषदैः स्तुवन्।
मन्त्रं चेमं पठन्देवं स्वापयेदुत्तरामुखम्॥ १९॥
देवदेव जगन्नाथ कल्पानां परिवर्तक !। परिवृत्तमिदं सर्वं येन स्थावरजङ्गमम्॥२०॥
यदिच्छाचेष्टितैरेव जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभिः। जगद्धिताय सुप्तोऽसि पार्श्वेन परिवर्त्तय
परिवर्त्तनकालोऽयंजगतः पालनाय ते। तवाऽऽज्ञयाऽयंशक्रोऽपिध्वजेतिष्ठन्समुत्सुकः
द्रष्टुं त्वत्पादकमलं विमुञ्चञ्जलदैर्जलम्। महीतलं प्लावयति प्रजापालनहेतुकम्॥२३॥
इति सम्प्रार्थ्य देवेशं वीप्सया तोषयेत्ततः। व्यजनैश्चामरैश्चैव वीजयेदनुकल्पकृत्
सुगन्धचन्दनैरस्य सर्वाङ्गं परिलेपयेत्। स्वादूनिक्षुविकारांश्च विकृतैः पायसैस्तथा
यावकानि च हृद्यानिफलानिविविधानिवै। स्वादूपदंशानन्यांश्चघृतपूपान्सपायसान्
पक्वताम्बूलपत्राणि सोपस्काराणि च द्विजाः।
शय्यागृहद्वारि विभोः शनैर्भक्त्या निवेदयेत्॥ २७॥
तस्मिन्दिने हरे रूपं भवेद्यदि महाफलम्। देवमुद्दिश्य यः कुर्यात्सर्वमक्षयतां व्रजेत्
स्नानं दानं जपो होमस्तपो जागरणं तथा। उपवासश्च नियमो व्रतान्तेद्विजतर्पणम्
साङ्गं व्रतमिदं कृत्वा विष्णुलोकमवाप्नुयात्।
यं यं कामयते चित्ते तं तमाप्नोत्यसंशयम्॥ ३०॥
अयं वः कथितो विप्राःपार्श्वपर्यायणोत्सवः। अनायासेनलोकानामक्षयःसुखदायकः
अतः परं वै शृणुत उत्थापनमहोत्सवम्। पूजयित्वा जगन्नाथं कौमुद्याख्येमहोत्सवे
अक्षक्रीडादिभिः पुष्पवस्त्रमाल्यानुलेपनैः।
ततोऽस्मिन्पौर्णमास्यायां रात्रावुत्सवसंयुतम्॥ ३३॥
नारिकेलादिभिर्द्रव्यैः पिष्टकैरर्चयेद्धरिम्। ततः प्रभाते सङ्कल्प्य कार्त्तिके व्रतमुत्तमम्
व्रतेन तेनैव नयेद्यावदेकादशी सिता। तस्यामुत्थापयेद्देवं सुषुप्तं जगदीश्वरम्॥३५॥
पूर्ववत्पूजयित्वा तु निशामध्ये जगद्गुरुम्। उत्थापयेदिमं मन्त्रमाह्वयञ्छनकैर्मुदा
उत्तिष्ठ देवदेवेश! तेजोराशे जगत्पते। वीक्षस्व सकलं देव प्रसुप्तं तव मायया॥३७॥

प्रफुल्लपुण्डरीकश्रीहारिणा नयनेन वै । त्वया दृष्टं जगदिदं पावित्र्यं परमेष्यति ॥३८

श्रौतस्मार्त्ताः क्रियाः सर्वाः प्रवर्त्तन्ते ततो ध्रुवम् ।
इत्युत्थाप्य जगन्नाथं वेणुवीणादिकस्वनैः ॥ ३६ ॥

वन्दिमागधसूतानां स्तुतिभिर्मङ्गलस्वनैः । शङ्खकाहालमुरजवादनैर्नृत्यगीतकैः ४०

जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्नयेत्तं नृत्यमण्डपम् ।
सुगन्धतैलेनाऽभ्यज्य स्नापयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ ४१ ॥

पञ्चामृतैर्नारिकेलरसैः फलरसैस्तथा । सुगन्धाऽऽमलकेनाऽथ यवकल्केन लेपयेत्
घर्षयेत्तुलसीचूर्णैर्लेपयेद्गन्धचन्दनैः । पुष्पाधिवासितैस्तोयैस्तथा कर्पूरवासितैः॥
कुशोदकै रत्नतोयैस्तथागन्धोदकैस्तथा । स्नाप्यमानंतथादेवंयेपश्यन्तिमुदान्विताः
क्षालयन्तिदृढंपङ्कंवहुजन्मोपपादितम् । ततः श्रीजगदीशस्य क्रोडेसम्वासयेद्द्विजाः
आपादान्मूर्धपर्यन्तं सर्वाङ्गं परिलेपयेत् । कुङ्कुमागुरुकस्तूरीकर्पूरैश्चन्दनान्वितैः॥
पाटलोदकसम्पिष्टैः कालागुरुरसाप्लुतैः । दत्त्वा च मालतीमालां चन्द्रचूर्णेनसंयुताम्
महोपचारैः सम्पूज्य विष्णुं नीराजयेत्ततः । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेत्परयामुदा
चराचरमिदं सर्वं त्वदेकशरणं विभो !। अनुग्रहामृतालोकैः पावयस्व जगद्गुरो !॥
नृत्यगीतैः प्रेक्षणकै रात्रिशेषं समापयेत् । शयनादुत्थितं देवं यः पश्यति गदाधरम्

निद्रां मोहमयीं भित्त्वा ज्योतिः शान्तं व्रजन्ति ते ।
सर्वान्कामानवाप्नोति यान्यान्कामयते हृदि ॥ ५१ ॥

अश्वमेधसहस्रस्य फलं साङ्गं लभेत वै । कपिलाऽलङ्कृताधेनुकोटिदानफलं तथा
पुण्यं चाप्नोति परमंसर्वतीर्थाभिषेकजम् । कार्त्तिक्यांपारणंकुर्याच्चातुर्मास्यव्रतस्यवै

दामोदरस्य प्रतिमां स्वर्णनिष्केण निर्मिताम् ।
यथाशक्तिकृतां वाऽपि शालग्रामशिलास्थिताम् ॥ ५४ ॥

चक्रमूर्तिं भगवतः पूजयेत्प्रयतात्मवान् । रचयेन्मण्डपं शुभ्रमेकदेशं गृहस्य वा ॥५५॥
अलङ्कुर्यात्पुष्पदामचामरैः सवितानकैः । भूमिभित्तीः सुधालेपैःस्तम्भैश्चित्रदुकूलकैः
कालागुरूणां धूपैश्च धूपयेत्तद्गृहं शुभम् । तन्मध्येमण्डलंकुर्यात्कलितकंवर्णकैःशुभैः

तदन्तः स्थपयेत्खट्वां करिदन्तमयीं शुभाम् । पट्टतूलीं तदुपरिवासयेत्पुरुषोत्तमम्
दामोदराकृतिं शङ्खपद्मपाणिं चतुर्भुजम् ।
लक्ष्मीमालिङ्ग्य पद्मस्थां क्रोडस्थां वामपाणिना ॥ ५६ ॥
भक्तेभ्यो दातुमुद्यन्तं वरं दक्षिणपाणिना । सुनासं सुललाटं च सुनेत्रं सुभ्रुतिद्वयम्
विशालवक्षसं देवं सर्वलावण्यसंयुतम् । सर्वालङ्काररुचिरं दिव्यपीतनिचोलिनम्
लक्ष्मीं पद्माकरांचापिताम्बूलंददतींतथा । पञ्चामृतैः स्नापयित्वावासो युग्मेनवेष्टयेत्
पूजयेदुपचारैस्तं यथाविभवविस्तरैः । ताम्रदीपान्मृन्मयान्वाज्वालयेद्गव्यसर्पिषा ॥
तैलेन वा शतं दीपवृक्षांश्चैव प्रदीपयेत् । ब्रह्माणं नारदादींश्च देवर्षींस्तत्र पूजयेत् ॥
दामोदरस्वरूपान्वै ब्राह्मणानपि पूजयेत् । वस्त्रयुग्मैर्माल्यगन्धैर्भक्ष्यभोज्यफलैस्तथा
तीर्थराजाभिषेकाङ्गं पूजाकर्म यथोचितम् । दामोदरस्य तेनैव विधिनेहाऽर्चनम्भवेत्
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण ब्रह्मादीनपि पूजयेत् । वेणुवीणादिकैर्गीतैः पुराणपठनेन च
महोत्सवं प्रकुर्वीत ततो जागरणेन च । ततः प्रभाते विमलेऽग्निकार्यञ्च समाचरेत्
अष्टाक्षरेणमन्त्रेण समिदाज्यचरूनपि । लाजान्मधुसमिन्मिश्राञ्जुहुयाच्चततः श्रियै
सूक्तेनाऽष्टोत्तरशतं ब्रह्मादीनां तदन्ततः । अष्टाहुतीर्वै जुहुयात्क्रमादेकैकशस्तिलैः ॥
ब्रह्माणं नारदं दक्षं वसिष्ठं गौतमं तथा । सनत्कुमारमत्रिं च भरद्वाजञ्च कश्यपम् ॥
दुर्वाससमगस्त्यञ्च महादेवं ततःपरम् । विख्याता वैष्णवा ह्येते विष्णुरूपानसंशयः
एतान्सम्पूजयन्विप्रान्विष्णुः प्रीणाति तत्क्षणात् ।
होमान्ते प्राशनं कृत्वा दद्यादाचार्यदक्षिणाम् ॥ ७२ ॥
सुवर्णभूषितां धेनुं वस्त्रं धान्यञ्च भक्तितः । प्रीतये वासुदेवस्यभोजयेद्द्विजपुङ्गवान्
सर्वोपचारसहितं दद्याद्दामोदरं ततः ॥ ७५ ॥
ॐ दामोदर! जगन्नाथ! त्वन्मयंविश्वमेव हि । त्वदाधारमिदंसर्वंत्वं धर्मःसर्वभावनः
त्वत्प्रसादात्व्रतञ्चीर्णं सुसम्पूर्णं तदस्तु मे ॥ ७६ ॥
दामोदरः प्रदाता च ग्रहीता च वृषध्वजः । प्रदीयते जगन्नाथः प्रीयतां मे जगद्गुरुः
इति मन्त्रं जपन्दद्यादाचार्याय सुरोत्तमम् । समाप्य पूजयेद्वत्सयास्तूयात्तंच प्रसादयत्

आचार्ये परितुष्टे तु तुष्टो भवति माधवः । तत्तद्द्रव्याणिच्च ततो दद्याद्विप्रेभ्य एवहि
ततः स्वयं वै भुञ्जीत इष्टैः शिष्टैः स्वबन्धुभिः ।
चातुर्मास्यव्रतं चेदं प्रतिष्ठाप्य विधानतः ॥ ८० ॥
यथोक्तफलसम्पन्नोविष्णुलोकमवाप्नुयात् । श्रुतिस्मृतिपुराणेषुनाऽतः परतरं व्रतम्
येनाऽनुष्ठितमात्रेण कृतकृत्योभवेन्नरः । विष्णोःप्रीतिकरंयाद्दृङ्नतथान्यद्व्रतं द्विजाः
तिलपात्रसहस्रैस्तु गवां चैवायुतायुतैः । कृष्णाजिनशतेनापि कन्यायामयुतेन च ॥
दत्त्वा यत्फलमाप्नोतिकृत्वैतद्व्रतमुत्तमम् । सार्द्धत्रिकोटितीर्थानामभिषेकफलं तथा
प्राप्नोति तत्फलं विप्रा यं यं कामयते नरः ॥ ८५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे श्रीपुरुषोत्तक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
चातुर्मास्यव्रतविधिर्नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

भगवतोनृसिंहस्यप्रावरणोत्सववर्णनम्

जैमिनिरुवाच

मार्गशीर्षेसितेपक्षेषष्ठ्याप्रावरणोत्सवम् । कृत्वाद्दृष्ट्वानरोभक्तयावैष्णवंलोकमाप्नुयात्
विधानं तस्य वक्ष्यामि श्रृणुध्वं मुनयोऽधुना ।
वासोऽधिवासं कुर्वीत पञ्चम्यां निशि कर्मवित् ॥ २ ॥
देवाग्रे मण्डपे कुर्यात्पद्ममष्टदलान्वितम् । दिक्पालान्पूजयेद्दिक्षु क्षेत्रपालं गणाधिपम्
चण्डप्रचण्डौ च वहिश्चतुर्दिक्षु प्रपूजयेत् । मध्ये पात्रं समाधाय प्रोक्षयेद्ब्रह्मवारिणा
द्विजान्स्वेनेतिमन्त्रेणच्छादयेद्दिव्यवाससा । सुधूपितंवस्त्रजातमेकविंशतिसंख्यकम्
तन्मध्ये स्थापयेन्मन्त्रंवैष्णवञ्चसमुच्चरन् । अन्येनवाससातद्विसमाच्छाद्यप्रयत्नतः

स्पृष्ट्वाजपेन्मन्त्रमिमंसंस्मरन्पुरुषोत्तमम् । आच्छादकोयोजगतांतेजसाविष्णुरव्ययः
वसनात्तस्य वस्त्र त्वं वस वासे जगत्पतेः ।
इन्द्रवोत्रस्त्वेति रक्षां विदध्यात्तस्य सर्वतः ॥ ८ ॥
पूजयेद्गन्धपुष्पाभ्यां ततो देवं प्रपूजयेत् । सर्वलेपम्प्रकुर्वीत नृत्यगीतैर्नयेन्निशाम् ॥
ततोऽरुणोदयेकाले प्रातःसन्ध्यासमीपतः । पुनःप्रपूजयेद्देवं पूर्ववत्सुसमाहितः ॥
ततस्तं पूजितंवस्त्रसमूहंवहिरानयेत् । कार्पासपट्टक्षौमाढ्यं तथैवाऽऽच्छादितं द्विजाः
छत्रध्वजपताकाभिश्चामरान्दोलनैस्तथा । गीतवादित्रनृत्यैश्च प्रसूनोत्किरणेन च ॥
प्रासादंत्रिःपरिभ्रम्यदेवंत्रिर्भ्रामयेत्ततः । आच्छादितंतदाकृष्यसंस्कुर्याद्वीक्षणादिभिः
सप्तभिः सप्तभिर्देवान्वासोभिः परिवेष्टयेत् । मुखवर्जं तु सर्वाङ्गं शीतप्रावरणद्विजाः
ताम्बूलञ्च निवेद्याऽथकर्पूरलतिकांतथा । दूर्वाऽक्षतैः प्रपूज्याऽथकुर्यान्नीराजनंविभोः
हिमागमे नृसिंहं ये प्रावृण्वन्तिसुचेलकैः । पश्यन्तिप्रावृतिंये वा नतेषांमोहसम्भृतिः
ते द्वन्द्ववातशीतोत्थभयंनाप्नुवते क्वचित् । विष्णोर्देवाधिदेवस्य इमंप्रावरणोत्सवम्
भक्त्या येवै प्रपश्यन्तिसर्वान्कामानवाप्नुयुः । भगवन्तंसमुद्दिश्य ब्राह्मणेभ्यःप्रदापयेत्
गुरुभ्यश्चाऽन्यदेवेभ्यो दीनानाथेभ्य एव च । शीतप्रावरणं दद्यात्सत्कृत्य परया मुदा
ददाति भगवान्प्रीतस्तस्मै वरमनुत्तमम् ॥ १६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
प्रावरणोत्सववर्णनंनाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

पुष्यस्नानमहोत्सववर्णनम्

जैमिनिरुवाच

पुष्यस्नानोत्सवं वक्ष्येयथोक्तम्ब्रह्मणापुरा । पुष्यर्क्षेणचसंयुक्ता पौर्णमासीयदाभवेत्
पौषेमासितथाकुर्यात्पुष्यस्नानोत्सवंहरेः । एकादश्यांप्रकुर्वीत ऐशान्यामङ्कुरार्पणम्
ततः प्रतिदिनं कुर्यात्प्रतिमायां हरेर्गृहे । नृत्यगीतोपहारैश्च प्रतिरात्रम्बलिं हरेत् ॥

चतुर्दशीनिशायां तु कुम्भानामधिवासनम् ।
एकाशीतिप्रमाणानां तथा स्वर्णमयाञ्छुभान् ॥ ४ ॥

गव्यसर्पिः प्रपूर्णांश्च स्थापयेदेकविंशतिम् । कारयेत्सर्वतोभद्रं मण्डलं पुरतो हरेः ॥
तन्मध्ये बृहदाधारं स्थापयेद्दर्पणं शुभम् । रात्रौ जागरणंकुर्याद्गीतनृत्यादिविस्तरैः
प्रभाते वह्निकार्यं च कुर्यात्तद्दैवतं द्विजाः । पालाशीभिःसमिद्भिस्तुचरुणासर्पिषातथा
ब्रह्मविष्णुशिवेभ्यस्तु प्रत्येकं तु सहस्रकम् । स्वलिङ्गमन्त्रैर्जुहुयात्तदन्तेपुरुषोत्तमम्
पूजयेदुपचारैस्तैरादर्शप्रतिबिम्बितम् । ततः पुरुषसूक्तेन कुम्भांस्तानभिमन्त्रयेत् ॥
तेनैवाऽच्छिद्रधारेण स्नापयेत्पुरुषोत्तमम् । पावमानीयकैर्देवाञ्छ्रीसूक्तेन ततः परम्॥
सर्पिः कुम्भैः स्नापयेच्च गायत्र्याच ततःपरम् । वैष्णव्यागन्धतोयेनश्रीसूक्तेनसमर्चयेत्
सहस्रधारया देवं ततोनिर्माल्यमुत्सृजेत् । देवाङ्गं लेपयेद्गन्धैश्चन्दनेन च विग्रहे ॥१२
यथास्थानं यथाशोभमलङ्कारांश्च योजयेत् । सुगन्धसुमनोमाल्यैर्भूषयेत्तदनन्तरम् ॥
अष्टायुधानिदेवस्य चक्रादीनि न्यसेत्पुरः । रत्नच्छत्रं समुच्छ्रित्यपूजयेत्पुरुषोत्तमम्

लक्ष्म्या युक्तं पुनर्विप्रा उपहारैः समृद्धिमत् ।
शङ्खेषु पूर्यमाणेषु स्निग्धगम्भीरनादिषु ॥ १५ ॥

चामरान्दोलव्यग्रासुवेश्यासुरुचिरासुच । माङ्गल्यगीतनृत्याद्यैःस्तुतिपाठेषुवन्दिनाम्
जयशब्दं प्रकुर्वत्सु द्विजातिषु मुहुर्मुहुः । दूर्वाक्षताञ्जलिभिस्त्रिभिः सम्पूज्य केशवम्

गोसर्पिर्दीपकैः स्वर्णपात्रकैरतिनिर्मलैः । नीराजयेज्जगन्नाथं कर्पूरयुतवर्तिभिः ॥ १८ ॥
स्वर्णपात्रस्थितं चारु ताम्बूलंसुपरिष्कृतम् । शनैःशनैर्मुखाभ्याशेप्रत्येकंविनिवेदयेत्
आचार्ये दक्षिणां दद्याद् ब्राह्मणांश्चैव पूजयेत् ॥ २० ॥
पुष्यस्नानोत्सवंपुण्यंयेपश्यन्तिमुदान्विताः । सम्पूर्णसर्वकामास्तेव्रजेयुर्वैष्णवंपदम्
राज्यभ्रष्टो लभेद्राज्यं सार्वभौमं च विन्दति । अपुत्रा मृतवत्सावापुत्रंदीर्घायुषंलभेत्
दारिद्र्यनाशनं धन्यं ब्रह्मवर्चसकारणम् । पुष्यस्नानंकीर्तितंवःश्रृणुध्वं चोत्तरायणम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशातिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
पुष्यस्नानमहोत्सववर्णनंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वरिंशोऽध्यायः

मकरसङ्क्रमणविधिवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

मृगराशिंसंक्रमतियदाभास्वान्द्विजोत्तमाः । उत्तराशांजिगमिषुस्तदास्यादुत्तरायणम्
तस्य संक्रमणार्द्धं च यावत्स्युर्विंशतिःकलाः । महापुण्यतमःकालःपितृदेवद्विजप्रियः
तत्र स्नात्वा विधानेन तीर्थराजजले नरः । नारायणं समभ्यर्च्य कल्पवृक्षं प्रणम्यच
प्रविश्य देवतागारं कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम् । मन्त्रराजेनसम्पूज्यदेवंश्रीपुरुषोत्तमम्
तथा बलं सुभद्रां च स्वमन्त्रेण प्रपूजयेत् । दृष्टोत्तरायणे देवं मुच्यते देहबन्धनात् ॥
विधानं तस्य वक्ष्यामिश्रृणुध्वंपावनंमहत् । संक्रान्तेपूर्वदिवसेनवांशालिंसुकुट्टिताम्
प्रासादपूर्वदेशे च स्थापयित्वाऽधिवासयेत् । नवेन वाससावेष्ट्यदूर्वासर्षपपुष्पकैः
पूजयित्वा मन्त्रयेद्वै कृष्णस्त्वामभिरक्षतु ।
तस्मिन्नेव निशायामे व्यतीते जगदीशितुः ॥ ८ ॥

प्रत्यर्चां सन्निधौ नीत्वाभावयेद्देवताधिया । उपचारावशिष्टाभ्यां पूजयेद्वै समाहितः
ततोनिर्माल्यवसनमालामस्यांनिधापयतेत् । महासमृद्धयातामर्चांत्रिर्देवम्भ्रामयेत्ततः
आन्दोलिकायामारोप्य प्रासादद्वारमानयेत् ।
त्रिविक्रमं विक्रमेण त्रैलोक्यक्रमणं विभुम् ॥ ११ ॥
विडम्वयन्तं तां लीलां प्रासादं भ्रामयेच्च तम् । त्रिरन्तेपुनरङ्केचसुसमृद्धयाशनैःशनैः
दीपिकाशतसंरुद्धतमसोवरणान्तरे । छत्रध्वजपताकाभिर्नृत्यवादित्रगीतकैः ॥ १३
तद्दर्शनपरिक्षीणपातकानां महात्मनाम् । न च चिह्नं शरीरेऽस्य नवाङ्के भ्रमणं ततः
अनुयान्ति तदा ये तं महामायं त्रिविक्रमम् । लभन्तेवाजिमेधस्य फलंते वैपदे पदे
प्रथमभ्रमणं दृष्ट्वा मुच्यते पञ्चपातकैः । मलिनीकरणैर्मुच्येद्द्वितीयं भ्रमणं द्विजाः
अपात्रीकरणैर्दृष्ट्वा तृतीयं भ्रमणं ध्रुवम् । उपपातकपापैश्च चतुर्थं मुच्यते ततः ॥
पुनः प्रभाते देवेशं प्रलिम्पेद्गन्धचन्दनैः । वस्त्राऽलङ्कारमाल्यैश्च भूषयित्वायथाविधि
पूजयेदुपचारैस्तं यथाशक्तिसमृद्धिमत् । नीराजयित्वा देवेशं तन्दुलानधिवासितान्
स्थालीषु शातकुम्भासु दधिखण्डाज्यमिश्रितान् ।
सनारिकेलशकलाञ्छृङ्गवेरदलान्वितान् ॥ २० ॥
प्रासादं त्रिः परिभ्रम्यनयेद्देवसमीपतः । पङ्क्तिशःस्थापयेदग्रेगन्धपुष्पाक्षतान्वितान्
जीवनं सर्वभूतानां जनकस्त्वंजगत्प्रभो !। त्वन्मयाः शालयोह्येतेत्वयैव जनिताःप्रभो
लोकानुग्रहणार्थाय गृहीतोचितविग्रह !। तव प्रीत्यै कृतानेतान्गृहाण परमेश्वर !॥२३
त्वयितुष्टे जगत्सर्वमनेन प्रभविष्यति । स्वाहाकारस्वधाकारवषट्कारादिवौकसाम्
आप्यायना भविष्यन्तितैरेवाऽऽप्यायितं जगत् । रक्षसर्वंजगन्नाथत्वन्मयंसचराचरम्
इति सम्प्रार्थ्य देवेशं शालिस्तस्वान्निवेदयेत् ।
तन्मयान्भक्षभोज्यांश्च दधिकुम्भान्सुगन्धिनः ॥ २६ ॥
कर्पूरखण्डमरिचचूर्णयुक्तान्निवेदयेत् । ब्राह्मणान्पूजयेद्भक्त्या देवदेवपुरःस्थितान् ॥
तेभ्यःप्रदद्याद्भक्त्या ताञ्छाल्यादीन्भगवद्धिया । इमंमहोत्सवंविप्राःपुराकल्पेचकश्यपः
सचसृष्टिं विनिर्माय भगवत्प्रीतयेऽकरोत् । येपश्यन्त्युत्सवंचैनंकश्यपेन विनिर्मितम्

सर्वदा सर्वकामैस्ते पूर्णाः शोचन्ति न द्विजाः।
उषित्वा त्रिदशैः सार्द्धं कल्पान्ते मोक्षमाप्नुयुः ॥ ३० ॥
महानसस्यसंस्कारं वह्नेः संस्कारमेवंच । अत्रापिकुर्यान्मुनयो वैश्वदेवं दिनेदिने ॥
आधानसंस्कृते वह्नौ भगवद्भुक्तये रमा । प्रत्यहं पाकमाधत्ते दिव्यरूपा तिरोहिता ॥
अस्मिन्महापुण्यतम उत्सवे परात्मनः । तुलापुरुषदानादि कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥
स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
सर्वमक्षयतां याति ह्युत्सवे चोत्तरायणे ॥ ३४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
मकरसङ्क्रमविधिवर्णनंनामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

दोलारोहणमहोत्सववर्णनम्

जैमिनिरुवाच

फाल्गुने मासि कुर्वीत दोलारोहणमुत्तमम् । यत्र क्रीडतिगोविन्दोलोकानुग्रहणायवै
प्रत्यर्चां देवदेवस्य गोविन्दाख्यां तु कारयेत् ।
प्रासादपुरतः कुर्यात्षोडशस्तम्भमुच्छ्रितम् ॥ २ ॥
चतुरस्रं चतुर्द्वारं मण्डपं वेदिकान्वितम् । चारुचन्द्रातपं माल्यचामरध्वजशोभितम्
भद्रासनं वेदिकायां श्रीपर्णीकाष्ठनिर्मितम् । फल्गूत्सवंप्रकुर्वीतपञ्चाहानित्र्यहाणिवा
फाल्गुन्यां पूर्वतो विप्राश्चतुर्दश्यां निशामुखे । वह्न्युत्सवंप्रकुर्वीतदोलामण्डपपूर्वतः
गोविन्दानुगृहीतं तु यात्राङ्गं तत्प्रकीर्तितम् । आचार्यवरणं कृत्वा वह्निनिर्मथनोद्भवम्
भूमिं संस्कृत्यविधिवत्तृणराशिंमहोच्छ्रयम् । सुसमंकारयित्वातुवह्नितत्रविनिक्षिपेत्

पूजयित्वा विधानेन कूष्माण्डविधिना हुनेत् ।
गोविन्दं पूजयित्वा तु भ्रामयेत्स ततो विभुम् ॥ ८ ॥
यत्नात्तं रक्षयेद्वह्निं यावद्यात्रा समाप्यते । प्रातर्यामे चतुर्दश्यां गोविन्दप्रतिमां शुभाम्
वासयित्वा हरेरग्रे पूजयेत्पुरुषोत्तमम् । उपचारावशिष्टैस्तु प्रत्यर्चामपि पूजयेत् ॥१०
ततोऽवरोप्यवसनंमालांचद्विजसत्तमाः !। अर्चायांविन्यसेन्मन्त्रीपरंज्योतिर्विभावयन्
ततः सा प्रतिमा साक्षाज्जायतेपुरुषोत्तमः । रत्नान्दोलिकयातांवैनयेत्स्नानस्यमण्डपम्
तत्र नानातूर्यनादैः शङ्खध्वनिपुरःसरम् । जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैः पुष्पवृष्टिभिरेव च ॥
छत्रध्वजपताकाभिश्चामरैर्व्यंजनैस्तथा । निरन्तरं दीपिकाभिस्तदाकुर्यान्महोत्सवम्
आगच्छन्ति तदा देवाः पितामहपुरोगमाः ।
द्रष्टुं चर्षिगणैः सार्द्धं गोविन्दस्य महोत्सवम् ॥ १५ ॥
भद्रासनेऽधिवास्यैव पूजयेदुपचारकैः । महास्नानस्य विधिना स्नपनं तस्य कारयेत्
पञ्चामृतैश्च सर्वैश्च तेषामन्यतमेन वा । स्नानान्ते गन्धतोयेन श्रीसूक्तेनाऽभिषेचयेत् ॥
सम्प्रोक्ष्य भूषयेद्देवंवस्त्राऽलङ्कारमाल्यकैः । नीराजयित्वा सम्पूज्य प्रासादं परिवेष्टयेत्
सप्तकृत्वस्ततो देवं दोलामण्डपमानयेत् । सुसंस्कृतायां रथ्यायांपताकातोरणदिभिः
अधोदेशे मण्डपं सप्तशो भ्रामयेत्पुनः ॥ १६ ॥
ऊर्द्ध्वदेशे पुनः सप्त स्तम्भवेद्यां च सप्त वै । यात्रावसाने च पुनर्भ्रामयेदेकविंशतिम्
इयं लीला भगवतः पितामहमुखेरिता । राजर्षिणेन्द्रद्युम्नेन कारिता पूर्वमेव हि ॥२१॥
फलपुष्पोपपन्नैश्च शाखिभिः परिकल्पिते । वृन्दावनान्तरे रम्ये मत्तभ्रमररराविणि ॥
कोकिलारावमधुरे नानापक्षिगणाकुले । नानोपशोभारचितनानागुरुसुधूपिते ॥ २३ ॥
प्रफुल्लकेतकीषण्डगन्धामोदिदिगन्तरे । मल्लिकाऽशोकपुन्नागचम्पकैरुपशोभिते ॥ २४
तत्काननान्तर्घटिते मण्डपे चारुतोरणे । भूषिते माल्यवसनचामरैरुपशोभिते ॥ २५ ॥
रत्नखट्वान्दोलिकायां तन्मध्ये वासयेत्प्रभुम् । सद्रत्नमुकुटं तारहारशोभितवक्षसम्
अनर्घ्यरत्नघटितकुण्डलोद्भासितश्रुतिम् । यथास्थानं यथाशोभं दिव्यालङ्कारमञ्जुलम्
विकचाम्बुजमध्यस्थं विश्वधात्र्या श्रिया युतम् ॥ २८ ॥

शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं वनमालिनम्। सुप्रसन्नं सुनासं तं पीनवक्षःस्थलोज्ज्वलम्
पुरोव्योमस्थितैर्देवैर्ब्रह्माद्यैर्नतमस्तकैः। कृताञ्जलिपुटैर्भक्त्या जयशब्दैरभिष्टुतम्॥३०
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च किन्नरैः सिद्धचारणैः। हाहाहूहूप्रभृतिभिः सत्वरं दिव्यगायनैः
अहम्पूर्विकया नृत्यगीतवादित्रकारिभिः। नेत्राऽम्बुजसहस्रैश्च पूज्यमानं मुदान्वितैः
किरद्भिः सर्वतो दिक्षु गन्धचन्दनजं रजः। उपवेश्याऽथ गोविन्दं पूजयेदुपचारकैः॥
वल्लवीवृन्दमध्यस्थं कदम्बतरुमूलगम्। हावहास्यविलासैश्च क्रीडमानं वनान्तरे॥
गोपीभिश्चैवगोपालैर्लीलान्दोलितयानगम्। चिन्तयित्वाजगन्नाथंविकिरेद्गन्धचूर्णकैः
सकर्पूरैः रक्तपीतशुक्लैर्दिक्षु समन्ततः। दिव्यवस्त्रैर्दिव्यमाल्यैर्दिव्यैर्गन्धैः सुधूपकैः॥

चामरान्दोलनैर्गीतैः स्तुतिभिश्च समर्चितम्।
आन्दोलयेद्दोलिकास्थं सप्तवारान्छनैः शनैः॥ ३७॥

तदा पश्यन्ति ये कृष्णंमुक्तिस्तेषांनसंशयः। ब्रह्महत्यादिपापानांपञ्चकानांक्षयोभवेत्
त्रिरेवं दोलयेद्देवं सर्वपापापनोदनम्। भक्त्यानुग्राहकं पुंसां भुक्तिमुक्त्येककारणम्॥
लीलाविचेष्टितं यस्य कृत्रिमं सहजं तथा। अंहःसङ्घक्षयकरं मूलाविद्यानिवर्त्तकम्
पश्यन्द्वितीयं हरति गोहत्याद्युपपातकम्। हरत्यशेषपापानि तृतीये नाऽत्र संशयः
दृष्ट्वा दोलायितं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते। आध्यात्मिकैराधिभौतैराधिदैवैर्विमुच्यते
इमां यात्रां कारयित्वा चक्रवर्ती भवेन्नृपः। ब्राह्मणस्तु चतुर्वेदी ज्ञानवाञ्जायते ध्रुवम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
दोलारोहणंनामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

सम्वत्सरेप्रतिमासंविष्ण्वादिद्वादशमूर्त्तिपूजनमहोत्सववर्णनम्

जैमिनिरुवाच

अत्रवःकथयिष्यामिव्रतंसाम्वत्सरंपरम् । सम्वत्सरस्यादिदिनेपौर्णमास्यांतुफाल्गुने
अनादिदेवस्य हरेर्मूर्त्तयो द्वादशैव याः । विष्ण्वादि नामप्रथिताः प्रतिमासं प्रपूजयेत्
एकैकां मूर्तिमेतासां मासेषु द्वादशस्वपि । प्रत्यहं पूजयेत्पुष्पैः फलैर्द्वादशभिस्तथा
अशोको मल्लिका चैव पाटलश्च कदम्बकम् । करवीरं जातिपुष्पं मालती शतपत्रकम्
उत्पलं चैव वासन्ती कुन्दं पुन्नागकं तथा । एतानि क्रमशो दद्यात्कुसुमानि हरेर्मुदा
दाडिमं नारिकेलञ्च आम्रञ्च पनसं तथा । खर्जूरं तृणराजञ्च प्राचीनामलकं तथा ॥६
श्रीफलं नागरगञ्च क्रमुकं करमर्दकम् । जातीफलञ्च क्रमशः फलान्येतानि वै ददेत्

भक्ष्यभोज्यानि चोष्याणि लेह्यानि मधुराणि च ।
आसनाद्यपचारांश्च दत्त्वा स्तुत्वा जगद्गुरुम् ॥ ८ ॥

सर्वव्यापिञ्जगन्नाथभूतभव्यभवत्प्रभो !। त्राहिमांपुण्डरीकाक्षविष्णो! संसारसागरत्
एकार्णवजले रौद्रे निरालम्बे पुरा मधुम् । अवधीर्विश्वरक्षार्थं मधुसूदन! रक्ष माम् ॥

त्रीन्विक्रमान्क्रमित्वा यो हत्वा दैत्यबलंमहत् ।
त्रैलोक्यं पालयामास त्रिविक्रम! नमोऽस्तु ते ॥ ११ ॥

कृत्वा वामनकं रूपमृग्यजुःसामगर्भकम् । मोहयित्वाऽद्भुतं रूपं तस्मै मायाविने नमः
यः श्रियं धारयेन्नित्यंहृदिभक्तेभ्यएव च । ददात्यपि श्रियंतस्मैश्रीधरायनमोऽस्तुते
इन्द्रियाणामधिष्ठाता यः सर्वेषां सदा प्रभुः । सुखैकहेतुर्भक्तानांहृषीकेश! नमोऽस्तुते
यन्नाभिपद्मसम्भूतं जगदेतच्चराचरम् । विधातुरासनं नित्यं पद्मनाभ ! नमोऽस्तुते ॥
यस्यैतत्त्रिगुणैर्बद्धं जगदेतच्चराचरम् । दाम्नाबद्धः स गोप्या तु दामोदर! नमोऽस्तुते

त्रैलोक्यविप्लवकरं हतवान्केशिदानवम् ।

ईशिता सर्वसौख्यानां त्राहि केशव माम्प्रभो ॥ १७ ॥
स्रष्टासससर्जभूतानिजगतामादिकारणम् । अचिन्त्यमहिमन्विष्णोनारायणनमोऽस्तुते
मायया यस्य विश्वं वै मोहितं यदनाघया । सर्वधर्मस्वरूपाय माधवाय नमो नमः
ज्ञानिनां ज्ञानगम्यस्त्वमगतीनां गतिप्रदः । सम्पूर्णमस्तुगोविन्दत्वत्प्रसादाद्व्रतंमम
प्रतिमासंपूजनान्ते मन्त्रैरेतैः कृताञ्जलिः । प्रार्थयेत्परयाभक्त्या भजनान्तं जनार्दनम् ॥
एवंसम्वत्सरं नीत्वा व्रतं वैमूर्तिपञ्जरम् । सम्पूर्णफलसिद्ध्यर्थंप्रतिष्ठाविधिमाचरेत्
सुवर्णनिर्मिता विष्णोर्मूर्तयोद्वादशैवतु । यथाशक्तिकृताःस्थाप्याःकुम्भेषुद्वादशस्वपि
आम्रपात्राच्छादितेषु साक्षात्तेषु पृथक्पृथक् । श्वेतवस्त्रावनद्धेषु गन्धपल्लववारिषु ॥
अष्टदिक्षुचतुर्दिक्षु सर्वतोभद्रमण्डले । स्थापनीयाश्च ते कुम्भास्तेषु पूज्याश्च मूर्तयः
द्वादशाक्षरमन्त्रेण उपचारैः पृथक्पृथक् ।
पञ्चामृतैश्च स्नपनं सर्वेषामादितो द्विजाः !॥ २६ ॥
गीतवादित्रनृत्याद्यैस्तथा ब्राह्मणपूजनैः । वस्त्रयुग्मैर्द्वादशभिश्छत्रोपानद्युगैस्तथा ॥
व्यजनैरुदकुम्भैश्च शयनीयैः सपीठकैः । गन्धैर्माल्यैः सुताम्बूलैर्मुद्रिकाकुण्डलैस्तथा
प्रदीपाः सर्पिषा ज्वाल्याद्वादशद्वादशक्रमात् । नीत्वात्रियामामित्थंवैप्रभातेवह्निकर्मच
समिदाज्यचरूणां वै प्रतिदेवं शतत्रयम् । अष्टोत्तरसहस्रं तु तिलैर्व्याहृतिभिस्ततः ॥
होमान्ते प्राशनंकृत्वा दद्यादाचार्यदक्षिणाम् । कपिला धेनवोदेयाःसालङ्काराश्चद्वादश
शतं चतुश्चत्वारिंशद्व्राह्मणान्भोजयेत्ततः । तद्वेववृन्दं सघटं सवितानं सचामरम् ॥
सर्वोपचारसहितमाचार्याय निवेदयेत् । व्रतराजमिमं कृत्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात्
गुण्डिचाद्यास्तु यायात्रा विष्णोर्द्वादश कीर्तिताः ।
तासां दर्शनजं पुण्यं व्रतेनाऽनेन लभ्यते ॥ ३४ ॥
ऐन्द्रं पदं सार्वभौमं चक्रवर्तित्वमेव च । अष्टैश्वर्यमवाप्नोति देवदेवप्रसादतः ॥ ३५॥
एतन्महापुण्यतमं नारदः कृततान्व्रतम् । कृत्वा द्वादश वर्षाणिजीवन्मुक्तोऽभवन्मुनिः
अन्ये च वैष्णवा ये वै चक्रुस्ते बहुशः पुरा ।
व्रतं नाऽतः परतरं भगवत्प्रीतिकारकम् ॥ ३७ ॥

धर्म्यंयशस्यमायुष्यंब्राह्मण्यंवंशवर्द्धनम् । भवन्तोऽपियतात्मानःकुर्वन्ति व्रतमुत्तमम्

इति श्रीस्कान्द महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे-सम्वत्सरज्येष्ठपञ्चकव्रतवर्णनंनाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

दमनकभञ्जिकाविधिवर्णनम्

मुनय ऊचुः

मुने! व्रतमिदं पुण्यं श्रुतं वै मूर्तिपञ्जरम् । अन्तःप्रमोदजननं महिम्ना च महत्तरम् ॥
यात्रा द्वादश पुण्या या उद्दिष्टा भगवत्प्रियाः । तासांद्वेअवशिष्टेनः कथयस्वमहामुने

जैमिनिरुवाच

वासन्तिकां समाख्यास्ये यात्रां दमनभञ्जिकाम् ।
यस्यां कृतायां दृष्टायां प्रीणाति पुरुषोत्तमः ॥ ३ ॥

पुरा यत्कथितं विप्रास्तृणं दमनकाह्वयम् । चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामाहरेत्तत्समूलकम् ॥ ४
तन्मध्ये मण्डलं कुर्यात्सुशुभं पद्मसञ्ज्ञितम् । तदन्तर्वासयेद्देवप्रत्यर्चांप्रतिपूजिताम्
युक्तां श्रीसत्यभामाभ्यां पूजयेद्विधिवच्च ताः । अर्द्धरात्रे तु कर्मेदंदेवदेवस्यकारयेत्
पुरानिशीथेऽपि विभुर्बभञ्ज दमनासुरम् । भङ्क्त्वा लेभेपरांप्रीतिं तदङ्गोत्थंचतत्तृणम्
तस्यामेव त्रयोदश्यां तृणं दैत्यं विभावयेत् । कृताञ्जलिपुटोभूत्वावाक्यंचेदमुदाहरेत्
अवधीर्दमनंदैत्यं पुरा त्रैलोक्यकण्टकम् । स एवेत्थं परिणतः पुरतस्तव तिष्ठति ॥
अस्योत्पत्तौ तदा प्रीतिरासीद्यातवमाधव !। अधुनाऽपि तथैवास्तांप्रीतिर्दमनभञ्जने
इत्युक्त्वा तृणमेके तुकरेदेवस्यदापयेत् । ततोऽवशिष्टां रात्रिंच नृत्यगीतादिभिर्नयेत्
ततश्चाऽभ्युदिते सूर्ये देवं तृणपुरःसरम् ।

नयेच्च जगदीशस्य समीपं द्विजसत्तमाः ॥ १२ ॥
उपचारैर्जगन्नाथं पूजयेत्पूर्ववत्ततः । हिरण्यकशिपुं हत्वा ह्यन्त्रमालां तदङ्गजाम् ॥
कृत्वा कण्ठे यथाऽप्रीणास्तथेदं दमनं तृणम् । तव प्रीत्यैतु भगवन्मयादत्तंतवाऽङ्गके
इत्युच्चार्य हरेर्मूर्ध्नि दद्याद्गन्धतृणं शुभम् । तदा दृष्ट्वा हरेर्वक्त्रपद्मंप्रीतिकरं मुदा ।
भवदुःखपरिक्षीणः सुखमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ १५ ॥
गृहीत्वा मूर्ध्नि तच्छाखां विष्णुमूर्ध्नोऽपकर्षिताम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो वसेद्विष्णुपुरे ध्रुवम् ॥ १६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
दमनकभञ्जिकाविधिवर्णनंनाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

भगवत्पूजाविधौदक्षप्रजापतिनाभगवतःप्रार्थनवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि यात्रामक्षयमोक्षदाम् । अनायासेन मूढानांवासनाबद्धचेतसाम्॥
वैशाखस्यामले पक्षे द्वितीयारात्रिमध्यतः । मण्डपंचचतुष्कोणंसुधालिप्तंसवेदिकम्
सुधौतवाससा कुर्यात्प्रतिसीरासमं ततः । साधुसोपानसंयुक्तंचारुचन्द्रातपान्वितम्
तन्मध्ये विन्यसेन्नूनं साधु भद्रासनोत्तमम् ।
तस्मिन्निचोलसञ्छन्ने विन्यसेत्स्वर्णभाजनम् ॥ ४ ॥
तस्यपश्चिमभागेवै स्वासीनोब्राह्मणःशुचिः । पात्रान्तरे तुगृह्णीयाच्चन्दनंपञ्चविंशतिम्
सुपिष्टंकृष्णस्नेहस्यगृह्णीयाच्चपलाधिकम् । अगुर्वर्द्धंकुङ्कुमं स्यात्कुङ्कुमार्द्धंचसिह्लकम्

कस्तूरिकाकर्पूरयोः प्रमाणं सिह्लसंमितम् । सर्वमेकत्र संपिष्यात्पाटलाद्रवचारिणा

पलद्वयं ततो दद्यादगुरुस्नेहमुत्तमम् । एकत्र लोडितां कृत्वा पूर्वपात्रे निधापयेत् ॥
आच्छाद्य केतकीपत्रैर्वेष्टयेच्चीनवाससा । गन्धस्ते सोममन्त्रेण रक्षेद्गरुडमुद्रया ॥९॥
एवं तु मण्डपे तस्मिन्साऽधिवासं निधापयेत् ।
अरुणोदयकालेऽथ नयेत्कृष्णस्य सन्निधिम् ॥ १० ॥
शङ्खचामरछत्राद्यैर्भ्रामयित्वा सुरालयम् । देवाग्रे स्थापयित्वा च पूजयेत्पुरुषोत्तमम्
उद्घाटयेत्ततोवस्त्रंदिव्यदृष्ट्यावलोकयेत् । प्रोक्षितं मन्त्रराजेन सङ्कुर्यात्ताडनादिभिः
गन्धपुष्पाक्षतैःपूज्यः श्रियःसूक्तेन लेपयेत् । श्रीशस्यसर्वगात्रेषु मृदुस्पर्शं शनैः शनैः
वैष्णवा जयशब्दैस्तंवर्द्धयन्तितदा हरिम् । नानासूक्तोपनिषदैर्विद्वांसस्तं स्तुवन्तिवै
वेणुवीणादिकैर्नृत्यगीतवाद्यैरनेकशः । व्यजनैश्चामरैश्छत्रैरन्यैर्नानोपहारकैः ॥ १५॥
सन्तोषयञ्जगन्नाथंतृतीयादौविलेपयेत् । यस्य चिन्तनमात्रेण तापा नश्यन्तिदेहिनाम्
सोऽसौ सन्दर्शनात्तापान्नृणां हन्ति तदा द्विजाः ।
अचिन्त्यो महिमा विष्णोरीदृक्वताद्भक्तया सदा ॥ १७ ॥
ततः सूक्ष्माम्बरैर्माल्यैर्भक्ष्यभोज्यादिपानकैः । द्रव्यैर्नानाविधैर्हृद्यैर्गव्यैरावर्तितैः शुभैः
ततः सम्पूजयेद्देवं ताम्बूलैश्च सुसंस्कृतैः ।
तस्मिन्काले तु ये कृष्णं भक्त्या पश्यन्ति मानवाः ॥ १६ ॥
न तेषां पुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि । विष्णोःस्वरूपमासाद्यविष्णुलोकेवसन्तिवै
पुरा कलियुगे विप्रा! दक्षो नाम प्रजापतिः ।
आध्यात्मिकादिसन्तापैः सुदीनान्वीक्ष्य मानवान् ॥ २१ ॥
तत्र गत्वा कृपायुक्तो महिमानं चकार वै । यथाविधि मयाप्रोक्तं स एव प्रथमंद्विजाः
प्रलिप्य चन्दनेनाऽङ्गंमाधवामलपक्षके । तृतीयायां जगन्नाथं स्तुतिमेतां मुदा जगौ

दक्ष उवाच

देवदेव जगन्नाथ ! सहजानन्द! निर्मल !। संसारार्णवसम्मग्नांस्त्राहि नः परमेश्वर !॥
नानाविधैश्च सन्तापैः सन्तप्तान्मानवानिमान् ।
ममानुक्रोशबुद्ध्या वै शुभदृष्ट्याऽमृतेन च ॥ २५ ॥

सन्तर्पय तृणाञ्छुष्कान्कृष्णमेघ ! नमोऽस्तु ते ।
कलिकल्मषसम्मूढानुद्धर्तुं जगताम्पते !॥ २६ ॥
अवतारोऽयमेतस्मिन्नीलाचलगुहान्तरे । चिरकालप्ररूढानां दुस्त्यजानां महांहसाम्
राशिं दग्धुं त्वमेवेशो दीनानाथ! कृपाकर !। त्वद्दर्शनमहायोगे यमाद्यष्टाङ्गवर्जिते ॥२८
येषां मतिः समुत्पन्ना चतुर्वर्गैकसाधने । न ते शोचन्ति दुष्पारे भवारण्ये महाभये ॥
कर्मानपेक्षंदेवेश! नाऽऽत्मज्ञानंविमोचकम् । इदं तेदर्शनंनाथ! विनाकर्माऽपि मोचयेत्
जयकृष्ण! जयेशान! जयाक्षर! जयाव्यय !। प्रसीदानुगृहाणेमान्दीनान्मूढान्विचेतसः
इति स्तुत्वा दण्डपातं पपात चरणाम्बुजे । प्रसीदेश प्रसीदेश प्रसीदेशेति घोषयन्॥
ततो जगाद भगवान्सुस्वरेण प्रजापतिम् । उत्तिष्ठवत्स ते दत्तं दुर्लभं यद्वरं त्वया
काङ्क्षितंमत्प्रसादेनभविष्यतिनसंशयः। मदनुग्रहोऽल्पपुण्यानांदुर्लभोविदितस्त्वया
मदङ्गजातोऽस्ति भवान्मां त्वं प्रार्थितवानसि ।
ममोत्सवेन सन्तोष्य ततस्ते प्रददाम्यहम् ॥ ३५ ॥
इमामक्षययात्रांयेभक्त्यापश्यन्तिहर्षिताः । तस्मिन्कालेयदिच्छन्तिमनसातदवाप्नुयुः
यथा सन्तापहरणं चन्दनेनाऽनुलेपनम् । तथोत्सवोऽयं मे दक्ष सन्तापत्रयनाशनः ॥
मत्प्रेरितमतिस्त्वंहिउत्सवंकृतवानसि । सङ्कल्पितोऽयंमनसादीनोद्धृत्यैमया ध्रुवम्
त्वयाऽभिकाङ्क्षितं सर्वं दास्याम्येव प्रजापते !।
द्वादशैता महायात्रा गुण्डिचाद्यास्तु पावनाः ॥ ३९ ॥
एकैका मुक्तिदाः सर्वा धर्मकामार्थवर्द्धनाः ॥ ४० ॥
तासामेकतमाम्वाऽपि यो भक्त्या चाऽवलोकयेत् ।
एकयाऽपि भवाब्धिं स तीर्त्वा विष्णुपदम्व्रजेत् ॥ ४१ ॥

जैमिनिरुवाच

इत्युदीर्य प्रजानाथं भगवान्स तिरोदधे ॥ ४२ ॥
दक्षः प्रजापतिः सोऽपि श्रद्दधानस्तदाज्ञया ।
सम्वत्सरं गिरौ स्थित्वा सन्ददर्श महोत्सवान् ॥ ४३ ॥

सर्वज्ञो ब्राह्मणो भूत्वाकौशिकस्यकुलोत्तमः। लोकान्प्रवर्तयामासयथाविधिमहेषुसः
विश्वासायाऽल्पवुद्धीनां यात्रावै परिकीर्तिताः। अयञ्चसाक्षात्परमब्रह्मरूपीजगद्गुरुः
प्रासादितः सुरेशेन लोकानुग्रहणाय वै ॥ ४५ ॥
यथा तथा दृष्टिपथं यातोमुक्तिप्रदोध्रुवम्। सर्वान्कामान्ददात्येव नारीणांनात्रसंशयः
सत्यप्रतिज्ञोभगवांस्तत्राऽऽस्तेमधुसूदनः। शोकं तरतियं दृष्ट्वा भवपाथोधिसम्भवम्
किं व्रतैः किं तपोदानैः किं कृच्छ्रैः क्रतुभिस्तथा ॥ ४७ ॥
किमष्टाङ्गेन योगेन किं साङ्ख्येन परेण च ॥ ४८ ॥
तीर्थराजजले स्नात्वा क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे। न्यग्रोधमूलवसतौ वसन्तं चर्मचक्षुषा
दृष्ट्वा दारुमयं ब्रह्म देहवन्धात्प्रमुच्यते ॥ ४९ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्येजैमिनिऋषिसम्वादे
भगवत्पूजाविधौदक्षकृतार्चावर्णनंनामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवतोनानामूर्त्तिनांसमाराधनेनविविधफलप्राप्तिवर्णनम्

मुनय ऊचुः

भगवन्सर्वशास्त्रज्ञ! श्रुतं परममद्भुतम्। यात्रारूपं भगवतो माहात्म्यं पापनाशनम् ॥१॥
यथाऽयं पूजितो देवःकामिभिः सर्वकामदः। भूत्युपासनया भूतिप्रदो ब्रूहितथाद्विजः

जैमिनिरुवाच

सर्वा विभूतयोविष्णोर्जगत्यस्मिंश्चराचराः। भूतिप्रदोविभूतिश्च स एकः परमेश्वरः
यथायथोपचरति तथा वै जायते नरः। एतावदस्य महिमा परिमातुं न शक्यते॥
यो यथा समुपास्ते तं तथा वै फलमाप्नुयात्।

एकः पन्थाश्चतुर्णां वै धर्मादीनां स दारवः ॥ ५ ॥
धर्मस्य पन्थागहनः सङ्कीर्णो बहुशासनैः ।
तत्त्वावधारणेनाऽस्य क्षमः कोऽपि द्विजोत्तमाः ॥ ६ ॥

अर्थकामोहितन्मूलावित्थंस्थूलगतीसदा । तेषां त्रयाणां भगवाननायासेन वृद्धिकृत्
धर्मोहि भगवान्विष्णुर्धर्ममूलमिदं जगत् । धर्मस्य जगतश्चापि प्रभुरेषजनार्दनः ॥ ८
पुरुषार्थमयेतस्मिन्भक्तिर्यस्यप्रतिष्ठिता । स सर्वकामतृप्तात्मा न शोचतिनकाङ्क्षति
त्रैलोक्यैश्वर्यदाताऽसौ शक्ररूपो ह्युपासितः । भावितोधातृरूपेण वंशवृद्धिकरोहरिः
सनत्कुमाररूपेण दीर्घमायुः प्रयच्छति । वृत्तिसम्पत्प्रदो ह्येष पृथुरूपेण भावितः॥११
गङ्गादितीर्थफलदोवाचस्पतिरुपासितः । अन्तस्तमः प्रणुदति भास्वद्रूपेण भावितः
सौभाग्यमतुलं दद्यादमृतांशुरुपासितः । विद्याष्टादशतत्त्वज्ञो वाक्पतित्वेन भावयन्
वाजिमेधादियज्ञानां फलदोऽयं सनातनः । यज्ञेश्वरस्वरूपेण भावितोऽयं जगन्मयः
ध्यातः कुबेररूपेण समृद्धिमतुलां ददेत् ॥ १५ ॥

एवं दयाम्बुधिरसौ तस्मिन्नीलाचले वसन् । दीनानाथानुग्रहाय दारुव्याजशरीरवान्
प्रयात तत्र भो विप्रा वसध्वं सुसमाहिताः । श्रीशपादाब्जयुगलं शरणं तत्प्रपद्यत
ऐहिकामुष्मिकान्भोगान्वाञ्छध्वं यदि शाश्वतान् ।
अन्ते मुक्तिं च कैवल्यां यथेच्छं तत्र प्राप्नुत ॥ १८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
भगवतोविविधमूर्त्युपासनया नानाकामप्राप्तिवर्णनंनाम
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

———

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

जैमिनिऋषिसम्वादे राज्ञेन्द्रद्युम्नेन राजाज्ञया विष्णुपूजाप्रचारवर्णनम्

मुनय उचुः

प्रासादस्यप्रतिष्ठान्त इन्द्रद्युम्नाय यद्वरान् । आज्ञापयामास हरिर्यात्रास्ताद्वादशापि च

त्वत्सकाशाच्छ्रुतं सर्वं ततः स पृथिवीपतिः।

किं चकार महाबुद्धिर्विष्णुभक्तोऽप्यवस्थितः ॥ २ ॥

जैमिनिरुवाच

वराँल्लब्ध्वाजगन्नाथात्साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणः । कृतकृत्यंसमेनेवाआत्मानं नरपुङ्गवः

यथाज्ञं कारयित्वावैयात्रास्ताः पुण्यमोक्षदाः । बहूपचारैर्बहुदा समभ्यर्च्यजगद्गुरुम्

गालराजं समादिश्य देवस्याऽऽज्ञां यथाविधि । इदं प्रोवाचमधुरं धर्मन्यायसमायुतम्

इन्द्रद्युम्न उवाच

राजन्बहुश्रुतोऽसि त्वं धर्मनिष्ठामुपागतः । भगवत्यपि भक्तिस्ते कर्मणामनसा गिरा

न ह्येकस्योपदेशाय भगवाननुशास्तिवै । चराचरगुरुर्ह्येष विश्वं तच्छिष्यतां गतम्

ममानुग्रहलक्ष्येण अवतीर्णो जगत्पतिः । उद्धृत्यैदीनमनसामत्रापिस्थास्यतेचिरात्

भक्त्या च श्रद्धयायुक्त एतदाज्ञां प्रवर्त्तय । प्रतिमाव्यवहारेण नैनं जानीहि भूमिप !॥६

प्रत्यक्षं ते यथा जातंत्रैलोक्यं भूमिमागतम्।

प्रासादान्तःप्रवेशे हि यस्याऽस्य जगदीशितुः ॥ १० ॥

पितामहाद्यास्त्रिदशाः सर्वे युगपदागताः । विश्वमूर्त्या वयं सर्वेजाता वै नष्टचेतनाः ॥

चराचरमयो ह्येष साक्षाद्दारुस्वरूपधृक् । कल्पवृक्षमिमं विद्धि भूगतं सर्वकामदम् ॥

उपास्यैनंहि लभते योयथाकामनाफलम् । यतन्तो बहुधा तंहि यतयो न विदन्तिवै

तमः पारे प्रतिष्ठितं किंस्विज्ज्योतिः स्वरूपिणम् ॥ १३ ॥

यतीनां धर्मनिष्ठानां शुद्धानामूर्ध्वरेतसाम् ।

अनन्यभक्तियुक्तानामेकः पन्थास्तु योगिनाम् ॥ १४ ॥
ग्रीष्मे शीते गभीरे वै निमज्ज्य सलिलाशये ।
परां निर्वृतिमाप्नोति तथाऽस्मिन्करुणाम्बुधौ ॥ १५ ॥
त्रितापदुःखं त्यजति सम्प्राप्ते पुरुषोत्तमे ॥ १६ ॥
न माता न पिता मित्रं न पत्नी न सुतस्तथा । शरणागतदीनानां यथायमुपकारकः ॥
तदेनं परिसेवस्व भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।
पौरैः प्रजाभिर्यात्रास्ताः समृद्धं परिवर्त्तय ॥ १८ ॥
साधारणो धर्मपन्था नृपाणां नृपसत्तम !। प्रवर्तितश्च पूर्वेण पाल्यतेऽनन्तरेण सः॥
नृसिंहं भज राजेन्द्र! उपचारैर्महर्द्धिभिः ।
पूजयस्व त्रिसन्ध्यं तं परं निर्वाणमाप्नुहि ॥ २० ॥
स्वकृतादुत्तमं प्राहुः परकृत्योपरक्षणम् । पालयेत्परदत्तं यः स्वदत्तादुत्तमं हि तत् ॥

जैमिनिरुवाच

कृताञ्जलिपुटःसोऽथश्वेतोनृपतिसत्तमः। मूर्ध्निजग्राहतद्वाक्यंमालामिवगुणान्विताम
इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिः प्रसाद्य पुरुषोत्तमम् । नारदेन सह श्रीमान्ब्रह्मलोकं जगाम ह
एतद्वः कथितं पुण्यं क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम् ।
तत्र नित्योषितस्याऽपि माहात्म्यं ब्रह्मदारुणः ॥ २४ ॥
यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या वाच्यमानंद्विजोत्तमाः । अश्वमेधसहस्रस्यफलंसोऽविकलंलभेत्
अर्द्धोदयस्तु यो योगः स्कन्देन परिकीर्तितः ।
तत्कोटिगुणितं पुण्यं विष्णोर्माहात्म्यकीर्त्तनात् ॥ २६ ॥
प्रातः प्रातर्यः शृणुयात्कपिलाशतदो भवेत् । गाङ्गैः पुष्करजैस्तोयैरभिषेकफलंलभेत्
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं सन्तानवर्द्धनम् । स्वर्गप्रतिष्ठागतिदं सर्वपापापनोदनम् ॥
एतद्रहस्यमाख्यातं पुराणेषु सुगोपितम् ।
वैष्णवेभ्यो विनाऽन्येषु न तु वाच्यं कदाचन ॥ २६ ॥
कुतर्कोपहता येन दुरधीतश्रुतागमाः । नास्तिका दाम्भिका नित्यं परदोषोपदर्शिनः

अवैष्णवा मोघजीवास्तेभ्यो गोप्यं सदैव हि ॥ ३० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्र माहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे राजेन्द्रद्युम्नेनभगवत्पूजाप्रचारवर्णनंनामाऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

---

*एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्रस्यसाक्षाद्विष्णुस्वरूपत्ववर्णनम्

स्कन्द उवाच

श्रुत्वेत्थं जैमिनिप्रोक्तं ब्रह्मणोदारुरूपिणः । माहात्म्यं सरहस्यंतन्मुनयः शौनकादयः

आनन्दं परमम्प्राप्य विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ।

रोमाञ्चाञ्चितदेहास्तु कृतकृत्यास्ततोऽभवन् ॥ २ ॥

अहोबतमहत्क्षेत्रंमोचकंहिसुगोपितम् । अस्माकंभाग्यसम्पत्त्यासाम्प्रतंविष्णुरूपिणा

साक्षाज्जैमिनिना स्पष्टीकृतं सर्वस्य गोचरम् ॥ ३ ॥

तस्मिन्क्षेत्रेस्थितंसाक्षाद्ब्रह्मरूपंप्रकाशते । मरणान्मुक्तिदं मूढाःकथंयान्तियमालयम्

अहो माया भगवतः सर्वत्र हि निरङ्कुशा । विष्णुब्रह्मस्वरूपस्य क्षेत्रञ्चापिहितंतथा

इदानीं तत्र यास्यामो निश्चयो न पुनर्यथा । वयं न पुनरेष्यामः पिण्डेवैपाञ्चभौतिके

ज्ञानैकजन्मसंसिद्धिर्यमाद्यष्टाङ्गयोगिनाम् । क्व गत्वापावनं क्षेत्रंजन्तोर्मुक्तिरसुक्षयात्

---

*इत उत्तरं कलिकातास्थवङ्गवासीमुद्रिते ग्रन्थे सार्धैकादशाऽध्यायात्मकः स्कन्दउवाच—श्रुत्वेत्थं (षट्चत्वारिंशाऽध्यायादारभ्य) यथायथा शक्तिरत्रसिद्धि-स्तस्यतथातथेत्यन्तः पाठः (सप्तपञ्चाशेऽध्याये एकचत्वारिंशच्छ्लोकपर्यन्तः) विशेष उपलभ्यते तत्पश्यताम् ।

इति चिन्तयतां तेषांमध्येजैमिनिशिष्यकः। मुनिरुद्दालकोनाम नाऽतितृप्तमनास्ततः
किञ्चिद्विवक्षुरगमज्जैमिनेरेवसन्निधिम्। गत्वाप्रणम्यसाष्टाङ्गंकृताञ्जलिपुटोऽभवत्
भगवन्! प्रष्टुमिच्छामिमयितेऽनुग्रहोमहान्। जानामित्वत्प्रसादेनमीमांसनमनुत्तमम्
अष्टादशसुविद्यासु वेदे सपरिबृंहणे। शाखासहस्रमतनोत्कृष्णद्वैपायनो मुनिः ॥११
ततः प्रकीर्णोवेदानांराशिरल्पकबुद्धिभिः। दुरूहःसहसाचाऽऽसीत्कृत्याकृत्येषुकर्मसु
तद् दृष्ट्वा कर्मशैथिल्यं स्वाध्यायोपप्लवस्तथा। तपोज्ञानगरिष्टेन भवताऽनुग्रहःकृतः

केचिन्मन्त्रात्मका वेदा केचित्कर्मप्रचोदकाः।
केचित्तु स्तुतिनिन्दाभ्यां विहीनास्तावकाः स्थिताः ॥ १४ ॥

स्तोत्रशास्त्रादिषुगताः सहायाश्च निबन्धकाः। वेदत्वंगमितास्तेतत्कर्मसाधनहेतवः
एवं मन्त्रात्मकं वेदमुपभाव्याऽथ ये परे। मन्त्रागमामन्त्रमात्रोपासनाःसर्वसिद्धिदाः
स्तुत्यर्थवादमूला हि स्तुतयो हि स्वरूपतः। वेदप्रवृत्तिद्वारेण तत्तदिष्टप्रसाधकाः ॥
विध्यनुवादमूलाये अग्निष्टोमेनचोदिताः। पूजाविध्युपहारादि साधनादिषु देशकाः ॥
एवम्महावेदराशिम्विभज्यतु सुबुद्धिना। कर्ममार्गंशुभाचारं व्यवस्थाप्यसमुज्ज्वलम्

मर्यादा रक्षिता लोके वेदाचारप्रवर्तनात् ॥ १६ ॥ ॥
तत्र सिद्धार्थवादार्थौ वेदान्ताख्या श्रुतिस्तु या ॥ २० ॥

अनाद्यविद्या संरूढं दृढमूलं सनातनम्। देहेन्द्रियादि विषयं भ्रमोच्छेदनसाधनम् ॥

श्रुत्वा मत्या निदिध्यास्य स्वरूपमात्मनस्तथा।
यत्साक्षात्करणं प्रोक्तं त्वया मुक्तिस्वरूपकम् ॥ २२ ॥

तदनेकजन्मसाध्यं दुर्लभंजन्मिनां सदा। शुकोवात्रामदेवोवा मुक्तइत्यस्ति संशयः
तदेतन्मुक्तिदं क्षेत्रं मरणाद्यत्त्वयोदितम्। अर्थवादस्वरूपम्वेत्येतन्मे संशयो महान् ॥
बहवोह्यर्थवादाहिभूत्युपासनवादकाः। साक्षात्कारम्विनामुक्तिर्नास्तीत्येतन्मतंश्रुतेः
धर्मशास्त्रेष्वपिमुने! निश्चितंभारतादिषु। तत्कथं मरणाल्लभ्यं क्षेत्रेऽस्मिन्पुरुषोत्तमे

जैमिनिरुवाच

गतमगतप्रदं कर्म साङ्गं श्रुत्या निवेदितम्। तत्तत्स्वरूपं जानामि एतत्क्षेत्रबहिष्कृतम्

यथासुगोपितं ब्रह्मतथेदंक्षेत्रमुत्तमम् । क्षेत्रं विष्णोस्तुजानीहियथाविष्णुस्तथैवतत्

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परञ्च यत् ।

तत्र यच्छब्दरूपं हि तत्तु नानार्थ संयुतम् ॥ २६ ॥

यस्मादर्थाज्जगदिदं सम्भूतं सचराचरम् । सोऽर्थो दारुस्वरूपेण क्षेत्रेजीवइवस्थितः

तस्मिन्क्षेत्रे यतात्मानो विलोक्य पापकञ्चुकम् ।

निर्मुच्य योगवद्याति त्यक्त्वा देहं हरेः पदम् ॥ ३१ ॥

नैतद्गुणफलं विप्र ! साक्षात्कारस्य चोदितम् ।

चाण्डालवेश्मनि मृतः श्वा विड्भुक् मुक्तिमेति यत् ॥ ३२ ॥

नाऽल्पभाग्यस्य पुंसोहि मरणं तत्र जायते । बहुजन्मसहस्रेषु मुक्त्यर्थं यतते तु यः॥

स क्षीणाशेषपापौघस्तत्र यातिनसंशयः । सतत्रम्रियमाणोऽपिसंयतात्माविवेकवान्

विज्ञाय क्षेत्रमाहात्म्यं भक्तिं कृत्वा जनार्द्दने ।

यः प्राणांस्त्यजते तस्य आत्मज्ञानम्प्रकाशते ॥ ३५ ॥

दीनार्तिहरणःश्रीशो म्रियमाणस्य तत्र वै । कर्णमूलेब्रह्मविद्यां कथयेन्नाऽत्रसंशयः ॥

तयाविनाशितमोहोऽसौसाक्षात्पश्यतितविभुम् । यत्रगत्वानपततिजननीजठरे पुनः

तत्र प्रविष्टो विप्राग्र्य! जलेजलमिवोक्षितम् । साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपेणभासते सचराचरे

नाऽऽत्मज्ञानं विनामुक्तिरेतदेव सुनिश्चितम् । विघ्नाश्चतत्रबहवोज्ञातृज्ञेयगताःद्विजाः

अभ्यस्याभ्यस्य बहुभिर्जन्मभिर्जितमानसैः । वेदविद्भिर्महद्दुःखैः प्राप्यतेतदुपासने ॥

अव्यक्तोपासनं विप्र ! दुर्लभं देहिनां सदा ।

श्रुत्वा विरमते कश्चिदारभ्याऽपि गुरोर्मुखात् ॥ ४१ ॥

गुरुशुश्रूषणे यत्नेन येषास्विप्र ! जायते । न तेषां ज्ञानसम्पत्तिर्जायते च कदाचन ॥

अष्टाङ्गयोगसम्पन्ना मनोमत्तगजं तु ये । आत्मवश्यंप्रकुर्वन्ति तेहितत्राऽधिकारिणः

एवम्बहुतिथे जन्मन्यतीते निश्चलस्मनः । आत्माकारं वृत्तिमेत्यभासते निर्मलं यदा

तदा मोक्षाधिकारोहि नाऽन्यथा विप्र जायते ॥ ४४ ॥

मोक्षस्वरूपम्वक्ष्यामि शृणु विप्र! विधानतः ।

मुनयोऽप्यत्र मुह्यन्ति तत्तु वक्ष्यामि निश्चयात् ॥ ४५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे पुरुषोत्तमक्षेत्रस्य साक्षाद्विष्णुस्वरूपत्वकथनंनामैकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मृतस्याऽऽत्मज्ञानलाभादिवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

शुद्धबोधस्वरूपो हि आत्मा सर्वस्य देहिनः ।
कूटस्थो निश्चलो विप्र! सान्द्रानन्दैकभावनः ॥ १ ॥
आद्यन्तरहितो नित्यः सर्वोपप्लववर्जितः । विभुःसर्वगतःसूक्ष्मआकाश इवनिष्क्रियः
षडूर्मिरहितः साक्षात्पञ्चक्लेशविवर्जितः । अनाद्यविद्यासञ्जातः वासनाऽपप्लुतेन वै
अहङ्कारसमुत्थेन चित्तेनाऽऽलिङ्गितोयदा । तदाभ्रान्तस्तदाकारं गृहीत्वा संसरेदयम्
सत्त्वेन रजसा चैव तमसा प्राकृतेन वै । त्रिविधेनगुणेनैष दृढबद्धस्तदाऽवशः ॥ ५ ॥
गन्धर्वनगराकारं पश्यन्प्राकृतविस्तरम् । पाञ्चभौतिकपिण्डेषु पञ्चविंशतिकारिषु
आत्माऽयमविकारोऽपि विकारीव विचेष्टते ।
दुःखार्णवे निमग्नोऽसौ बाध्यमानो य ऊर्मिभिः ॥ ७ ॥
भूताऽविष्टमनायद्वद्भूतचेष्टांविचेष्टते । तथाऽयमात्मासन्त्यज्यसच्चिदानन्दरूपताम्
चेष्टते मनसो वृत्तीर्बहुधाऽज्ञानमोहितः ॥ ८ ॥
तस्य मोक्षो विधातव्यो येन सुस्थोऽपि जायते ।
अकार्यश्रवणप्राप्यो नित्यमुक्तः स्वभावतः ॥ ९ ॥

निरावरण रूपस्य निर्मलाऽकाशभागिनः ।
भ्रान्त्याऽऽवृते विनाशो हि स्वाकारेऽवस्थितिर्भवेत् ॥ १० ॥
भ्रान्तेः सञ्जायतेसूक्ष्मोनिरूपाख्योहिपश्यति । नभस्तलंनभोनीलमितिसर्वैर्विभाव्यते
निर्मलेनिर्गुणेसान्द्राऽऽनन्दबोधस्वरूपिणि । परमात्मनिजायेतभ्रान्तिराविद्यिकीदृशी
स्वप्रत्यक्षेऽपि भ्रान्तिः स्यात्स्वकण्ठाभरणोपमा ।
तस्मान्मोक्षः कुतः कस्मात्कर्मणा विप्र ! जायते ॥ १३ ॥
ज्ञानेनाऽवकृते रूपे प्राप्यते तद्धि दुर्लभम् ॥ १४ ॥
तत्र क्षेत्रे हरेःक्षेत्रे ईश्वराऽनुग्रहेण वै । ज्ञानोदयस्तु सुलभः प्राणिनां संयमेन वै ॥
प्रसादेसर्वदुःखानांयस्यनाशोऽभिजायते । सदाप्रसन्नःक्षेत्रेऽस्मिन्म्रियमाणस्यसप्रभुः
अन्तिमो विग्रहो ह्येष क्षेत्रेयो न त्यजेदसून् । मुक्तिमुद्दिश्ययत्कर्मनतत्कर्मसमीरितम्
श्रावणादि यथाकर्म मुक्तये मूलसाधनम् । तथाऽत्रमरणंपुंसांसाक्षात्कैवल्यसाधनम्
यथा पर्वतसंरूढःपाषाणंतु दृढाश्रयम् । झटित्याऽऽकृष्यतेलोहमयस्कान्तमणिर्यथा
तत्र प्राणपरित्यागः सर्वकर्माणिदेहिनाम् । अनेकजन्मजातानि निर्बीजानिकरोतिवै
शुभाऽशुभफलासङ्गादात्मस्वरूपतामियात् । तेनैववद्धोभ्रमतिश्रृङ्खलावद्धकाकवत् ॥
वहित्रकाको हि यथा भ्रमन्नाऽऽकाशमण्डले ।
अनवाप्याऽन्यधिष्ण्यस्वै स्वधिष्ण्ये निश्चलो वसेत् ॥ २२ ॥
तथाऽयमात्मासर्वत्र वासनावसतोभ्रमन् । पञ्चविंशात्मकेपिण्डे गुणैर्बद्धः सदाभवेत्
तत्तत्क्षेत्रमहिम्नावै भगवत्करुणावशात् । प्राणत्यागात्परिक्षीणःसमस्तदृढवासनः ॥
विष्णुरूपमवाप्याऽसौ याति विष्णोः परम्पदम् ।
यत्र गत्वा पुनर्देहवन्धमेष न वाऽऽप्नुयात् ॥ २५ ॥
उद्दालकाऽत्र तेशङ्का नाऽर्थवादकृतास्तु वै । य आत्माभगवत्क्षेत्रेदेहवन्धम्परित्यजेत्
कथं स पुनरत्रैव देहवन्धमुपव्रजेत् । आत्मसन्न्यासयोगोऽयं योगिनामपिदुर्लभः ॥
द्वे एव साधने मुक्तेरात्मवृत्तिस्तुचेतसः । प्राणत्यागश्चेह तथा नाऽन्यथेत्यवधारय ॥
शिवोपदेशात्काश्यां तु प्राणत्यागोऽपि मोचकः ।

तेन ज्ञानेन हि पुमान् क्रमादभ्यासयोगतः ॥ २९ ॥

क्षीणकर्माविमुच्येत पुरैतद्विमलम्मतम् । अन्तर्हिता हि सा काशीगणेश्वरभयादभूत्

मयावःकथितम्पूर्वम्महादेवो यथाऽत्यजत् । काशिराजप्रसङ्गेन भगवत्परिभावितः ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
मृतस्यात्मज्ञानलाभादि वर्णनंनाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवद्भक्तयोर्विप्रयोरुपाख्यानम्

जैमिनिरुवाच

विशेषन्ते प्रवक्ष्यामि श्रृणु उद्दाल ! तत्त्वतः ।

अद्याऽपि काश्यां देवोऽपि स्थितवान् वृषभध्वजः ॥ १ ॥

युगत्रये तिष्ठतिस न तु घोरेकलौयुगे । अधर्मबहुले तस्मिन्कलौसाऽन्तर्हिताऽभवत्

अन्यान्यपि च तीर्थानि यथावन्न फलन्ति च ॥ २ ॥

चतुर्युगेषु सर्वेषु यथार्थफलदन्तु तत् । अत्र पापप्रवेशोहि कदाचिन्नोऽपजायते ॥

धर्मस्रष्टा हि भगवांस्तत्रतिष्ठतिसर्वदा । अविद्यादीनवृत्तीनां सुखोद्बोधाययत्नवान्

इदमेव परं सेव्यं चतुर्वर्गैकसाधनम् । विशेषान्मोचकं साक्षादनायासेन देहिनाम् ॥

पापिष्ठोऽत्यन्तदुश्चेष्टश्चाण्डालो वाऽन्त्यजोऽशुचिः ।

विद्वान् वा धार्मिकश्रेष्ठः सर्वे तत्र समा द्विज !॥ ६ ॥

देवा मरणमिच्छन्ति यत्र क्षेत्रे मुमुक्षवः । आत्मसाक्षात्कृतौमुक्तिस्तत्क्षेत्रेमरणादथ

विध्यर्थवादावेतौ हि नाऽर्थवादो न वा विधिः ॥ ८ ॥

न विधेयोऽपवर्गोहिकालग्रस्तामृतिस्तथा। अल्पाऽपिशङ्कामाभू त्तेतत्क्षेत्रेमरणम्प्रति
विश्वसन्ति न ते मूढाः ये संसारप्रवृत्तिकाः। अनाद्यविद्यासंसारप्रवृत्तौतच्चगोपितम्

साक्षात्कार आत्मनो यः स प्रसिद्धः श्रुतौ सदा।
तदर्थं यतमानाश्च योगिनोऽपि सदाऽऽसते ॥ ११ ॥
यवव्रीह्यादिवत्ते द्वे प्रधाने मुक्तिसाधिके॥ १२ ॥
योगात्प्रमुच्यते योगी त्वन्तरायावशाद्द्विजः।
चतुर्मध्ये त्यजन्प्राणान्निर्विघ्नम्मुक्तिभाग्भवेत् ॥ १३ ॥

आद्योमत्स्यावतारोहिप्राङ्मुखस्तत्रवर्तते। श्वेताख्योमाधवःप्रत्यक्श्वेतभूपप्रसादितः
चद्रसागरयोर्मध्यम्मुक्तिद्वारमकल्पयत्। तत्र त्यजन्नसून्मर्त्योनिर्विघ्नम्मुक्तिमाप्नुयात्
अत्र ते कथयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम्। चतुर्मुखस्यपुरतो दुर्वासायद्व्यजिज्ञपत्
सहि देवस्य रुद्रस्यअवतीर्णोऽशतःपुरा। आशैशवाद्ब्रह्मचारीतत्त्ववित्तपसांनिधिः
यदृच्छाभ्रमणोमर्त्यश्चतुर्दशजगत्स्वपि। कदाचित्पृथिवींयातो सत्याचारदिदृक्षया
मध्यदेशेददर्शाऽथब्राह्मणौमुनिसत्तमः। एकस्तयोस्तपोनिष्ठःस्वाध्यायाचारवान्गृही
अपरस्तु सदाचारो देवदेवस्य चक्रिणः। भक्तिश्चिकीर्षुश्चेष्टासुन तथाऽन्यासुवर्तते

स तु केनाऽपि बौद्धेन नास्तिकेन प्रलोभितः।
उच्छास्त्रवर्त्ती धनवान् विषयेष्वनुसज्जते ॥ २१ ॥

अथतौज्योतिषांवेत्ताजगामस्वार्थलिप्सया॥ परिपृष्टोऽथताभ्यांसआयुषःशेषमादरात्
तयोर्जगादगणकोविचार्यकुशलादिभिः। पक्षत्रिंशद्दिनान्तेवांप्राणत्यागोभविष्यति

तच्छ्रुत्वा चिन्तयाऽऽविष्टौ कथमावाम्भविष्यति।
मुक्तिक्षेत्रेऽन्यक्षेत्रे वा गृहे वा यत्र कुत्रचित् ॥
सम्वत्सर! विचार्यैतत्कथयस्व यथातथम् ॥ २४ ॥
एवमुक्तस्तु ताभ्यां स मुक्तिभावं विचिन्तयन्।
पूर्वस्य प्राह नद्यान्ते प्राणाः यास्यन्ति संक्षयम् ॥ २५ ॥

उत्तमां गतिमासाद्य देवभूय गमिष्यसि। इतरस्य तु विस्मेरःकैवल्यप्राप्तिमूचिवान्

त्वंविप्र! बहुभाग्योऽसिनिधनेतेबृहस्पतिः। स्वोच्चस्थोवर्ततेतेनब्रह्मनिर्वाणमेष्यसि
पुरुषोत्तमाख्यं भो विप्र ! क्षेत्रं परमपावनम्। यत्रप्रविष्टमात्रस्यसर्वार्थौघविनाशनम्
स्थितिं करोति भगवान् दारुरूपो दयानिधिः।
म्रियमाणस्य तस्मिन्स कैवल्यं सम्प्रयच्छति ॥ ३० ॥
इत्युक्तस्तेन स विप्रो भाग्योदयवशात्पुनः। पुनर्बभूवशुद्धात्माविष्णुभक्तिचिकीर्षया
तम्पूजयित्वा सत्कारैर्विससर्जमुदान्वितः।
केन मार्गेण वा तत्र कथं यास्यत्यचिन्तयत् ॥ ३१ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुशोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे भगवद्भक्तयोर्विप्रयोरुपाख्यानवर्णनंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवद्भक्तविप्रस्य प्राक् परित्यक्तपत्न्यासहसङ्गतिवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

इत्थं चिन्तयमानस्य तत्क्षेत्रगमनम्प्रति। प्राप्तवान्रुद्ररूपः सदुर्वासास्तपसांनिधिः
तं दृष्ट्वा सहसोत्थायब्राह्मणो हृष्टमानसः। पाद्यादिभिः समभ्यर्च्यसुखासीनं सुविष्टरे
प्रश्रयावनतो भूत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

ब्राह्मण उवाच

भगवन् ! भाग्यसम्पत्तेः परिपाकात्समागतः।
सदनम्मे ततो जातः कृतकृत्योऽस्मि निश्चितम् ॥ ३ ॥
भवादृशो ज्ञानविदः साक्षाद्धर्मस्वरूपिणः।

नाऽल्पभाग्यवतां पुंसां दृशः स्युरतिथयोध्रुवम् * ॥ ४ ॥

यदप्यहं कृतार्थोऽस्मि भवागमनभाग्यतः । तथाऽपिवाञ्छाम्यमृतंत्वदाज्ञावचनम्प्रति
इत्युक्तवन्तं दुर्वासा मुनिराह हसन्निव । विप्रवर्य! नवायोगिवर्यं त्वं किन्न भाषसे ॥

मासादूर्ध्वं त्वमस्माकमुपास्यः सम्भविष्यसि ।
उपस्थितापवर्गस्त्वं विना श्रुत्यादिसाधनैः ॥ ७ ॥

एवमुक्ते द्विजः प्राह मुने! त्वं सत्यवागसि । भवादृशानांरसनानस्वप्नेऽपिमृषाऽप्रिया॥
दासे मयि परीहासः किं वाऽनुग्रहभाषणम् । तत्त्वतोब्रूहि भगवन्न भयं मे ह्यनुग्रहात्॥
यथेच्छाचारदुष्टोऽहं न विवेकोऽल्पको मयि । न वासनाबद्धदृढं कर्मत्यजति मेमनः
इन्द्रियार्थोपभोगेच्छा क्षणंनच्यवतेमम । इहामुत्रफलाकाङ्क्षाप्राणयात्रांविना यदा
नोत्पद्यतेविनामुक्तावधिकारंविदुर्बुधाः। मुने! दृढममत्वोऽहंकथंप्राप्स्यामिनिर्वृतिम्
आत्यन्तिकदुःखहानिःकथंमे वाऽऽत्मसंविदः । अनुग्रहाद्भगवतो विनामेस्यात्कथंवद
विप्रवाक्यमिदंश्रुत्वादुर्वासाःपुनरब्रवीत् । यदवोचः स्वरूपं हि स्वस्यतन्नोमृषाध्रुवम्

तथा प्रवृत्तिस्ते येन तत्ते वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ १५ ॥

पूर्वजन्मनि त्वं विप्र! महाभागवतोऽभवत् । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुहृद्भिर्बन्धुभिः सह॥
माघेमासिगतस्तत्रक्षेत्रेश्रीपुरुषोत्तमे । तत्रतस्यां विष्णुतिथौस्नात्वासिन्धु जलेशुभे
सङ्क्षीणकल्मषस्त्वं हि उपोष्यकृतजागरः । उपचारैर्जगन्नाथंदारुरूपं समर्च्चयन्

कुन्दस्रग्भिः सुगन्धाभिः पूजयित्वा जगद्गुरुम् ।
प्रभाते च पुनः स्नात्वा समर्च्य जगतां पतिम् ॥ १६ ॥
तत्प्रीत्यै द्विजवर्येभ्यः प्रतिपाद्याऽऽसनादिकम् ।
ततश्च बन्धुभिः सार्द्धम्पुनरायाः स्वकं गृहम् ।
कर्म्मणा तेन मुक्तस्त्वं भाजनं प्रत्यपद्यथाः ॥ २० ॥

तत्क्षेत्रमुत्कलेदेशेदक्षिणोदधितीरगम् । सुगोप्यंब्रह्मणःशम्भोर्दुष्प्राप्यंस्वल्पभाग्यकैः
यत्कर्मपरिपाकेन त्वमाप हीदृशीं तनुम् । क्षीणपापोऽसि भगवद्दर्शनात्त्वंतदा द्विज

* "दृशोऽतिथयो ध्रुवम्" इतिशुद्धपाठः ।

निवर्त्तमानः स्वगृहं सङ्गदोषेण दूषितः । गत्वाऽन्नं प्रत्यहं भुक्त्वा तत्कर्मपरिपाकतः
पाषण्डसङ्गदुर्बुद्धिः स्वेच्छाचारो भवानभूत् ॥ २३ ॥
साम्प्रतं गृहजं वस्तुजातं दत्त्वा कुटुम्बके । तूर्णं प्रयाहि भगवत्पादमूलं सुदुर्लभम् ॥

जैमिनिरुवाच

इत्युक्तस्तेनमुनिनासद्विजो हृष्टमानसः । गृहक्षेत्रकुटुम्बेषु त्यक्तमोहो विवेकवान् ॥
निः ससारगृहात्तूर्णं चिन्तयन्पुरुषोत्तमम् । तेनैव मुनिना सार्द्धं जगाम पुरुषोत्तमम्॥
दिनद्वयान्तरे मार्गे दूरशून्ये व्रजन्मुनिः । चित्तशुद्धिपरीक्षार्थमन्तर्धानगतोऽभवत् ॥
पदानि कतिचिद्ग गत्वा स विप्रो दीनमानसः ।
दुर्वाससमनालोक्य कान्दिशीकोऽभवत्तदा ॥ २८ ॥
असहायो गमिष्यामिकाऽहंशून्यपथाव्रजन् । कुत्रदेशेमुनिःस्थानंत्यक्त्वामांवाकथंगतः
अनामन्त्र्य हि साधूनां नैष पन्थाः प्रवर्त्तते ॥ २९ ॥
परित्यज्य कुटुम्बंस्वंवेश्मतत्सुपरिच्छदम् । अप्राप्यमोचकंक्षेत्रंशून्येसीदामिहाकथम्
दैवज्ञः स तु भिक्षार्थी जीर्णो गणनकर्मणा ॥ ३१ ॥
तापसाश्छन्नरूपा हि वञ्चयन्तो जनान्बहून् ।
राक्षसा नाशयन्त्याऽऽशु मनुष्यानपकारिणः ॥ ३२ ॥
अविचार्य्य मया साङ्गं दृष्ट्वा दृष्ट्वा सुखप्रदम् ।
इत्थमाचरितं कर्म्म श्रेयः स्यान्मे कथं पुनः ॥ ३३ ॥
दैवेन वञ्चितं किम्वा करिष्याम्यात्मनो हितम् ।
त्रिशङ्कुवत्स्थितो मध्ये प्रान्तरे ह्यद्य विह्वलः ॥ ३४ ॥
स्वेच्छोपनीताविषयावर्तन्तेस्वगृहेमम । तान्परित्यज्यभीतोऽहंकयास्येभीतचौरवत्
इत्थं चिन्ताकुलः सोऽथ व्रजन् शून्यपथि श्वसन् ॥ ३५ ॥
भयातुरांस्पर्शतुष्टां बालांकाञ्चिदपश्यत । लावण्याम्बुधिरत्नंसासीमासौन्दर्यभूषणा
सर्वगात्राऽनवद्याङ्गीमोहनास्त्रं मनोभुवः ॥ ३७ ॥
तां दृष्ट्वा विस्मयाविष्टः सर्वश्रीरूपधारिणीम् । चिन्तयामासनैवकस्वेद्रष्टपूर्वाहिसुन्दरी

महानगरमध्येऽहं भ्रममाणो यदृच्छया। अवरोधेऽपि नृपतेः कान्ता नैदृक् सुशोभना
एकाऽपि लभ्यते येयं देवलोकेऽपि दुर्लभा। एवं शून्याटवीदेशं भूषयन्ती मनोहरा॥
दृष्टाऽपि या शुचं घोरां झटित्याकृष्यते मम ॥ ४० ॥
साऽपि तं निकटे दृष्ट्वा किञ्चित्सुस्थाकृतिस्तदा ।
स्थिता त्रपाऽनुरागाभ्यां भूषिता स्वैरतां गता ॥ ४१ ॥
अथोवाच द्विजोऽनङ्गपीडितोऽस्थिरमानसः ॥ ४२ ॥
का त्वं शुभे! कुतो वाऽस्मिन्कान्तारे समुपस्थिता ।
असहाया भयत्रस्ता दिव्यरूपा विभाव्यसे ॥ ४३ ॥
इत्युक्तवन्तं तं दृष्ट्वा वशचित्तं तदाऽब्रवीत् ।
कान्त! मा माऽन्यथा मंस्थास्त्वदीयाऽहं पुरा स्थिता ॥ ४४ ॥
दुर्दैवाद्दुष्टचित्तस्त्वं सवैमां शैशवेऽत्यजः। अवसं जनकस्याऽहं मन्दिरे चिरप्रवासिता
त्वां ध्यायन्ती दिवारात्रौ यौवनं निष्फलं गतम् ।
पितुर्गृहं मे निकटे श्रुत्वा त्वां निर्गतं गृहात् ॥ ४६ ॥
एकाकिनीभयोद्विग्नात्वत्सन्निधिमुपागता । अद्याप्यनुक्रोशय मां जीवितं रक्ष मे प्रभो!
उद्वाहितायायुवतेः परित्यागोऽसुखावहः । नरकाय गतिः पुंसामिति शास्त्रविनिश्चयः
एहि कान्त! व्रजाम्यद्य पितुर्गेहं सुखालयम् । यथाकामं मया सार्द्धं तत्र तिष्ठ चिरं प्रभो!
तया प्रबोधितश्चैवं स विप्रो हृष्टमानसः । जगाम तां पुरस्कृत्य अ(ह्य) दूरे श्वशुरालयम्
श्वशुरोऽपि च तं दृष्ट्वा सत्कृत्याऽऽशु प्रपूजयन् । स्वगृहे वेशयामास सर्वकामसमृद्धिभिः
रममाणस्तया सार्द्धं मासमात्रमुवास ह । एतत्सर्वं मुनेर्मायां न जानाति द्विजस्त्वयम्
व्रजंस्तु केवलं नित्यं क्षेत्रस्य निकटं ययौ ॥ ५३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
भगवद्भक्तविप्रस्य प्राक्परित्यक्तपत्न्यासहसङ्गतिर्नाम
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवद्भक्तविप्रस्यवैष्णवज्ञानलाभवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

द्वितीयेऽह्निदिवामध्येचतुर्मध्येप्रवेक्ष्यति । पूर्वेऽहनि ज्वरस्तस्यमहानासीत्सुदारुणः
तस्मिन् क्षेत्रे हरेश्चक्रंविष्णुपारिषदोगणः । यमस्यच सुघोरास्तेदूताःपाशादिपाणयः
युगपद्भवनं तस्य प्राप्तास्ते च परस्परम् ॥ २ ॥

यमदूता ऊचुः

कथम्भोवैष्णवा एनं पापसञ्चयकारिणम् । नेतुमिच्छथ वैकुण्ठं कथयध्वं भवादृशाः
अनेन कानि पापानि कृतानि न दुरात्मना । कथमेनं रक्षितुम्वै सुदर्शनमुपागतम् ॥
चक्रमेतद्द वैष्णवं दुष्टाचारनिषूदनम् ॥ ४ ॥

कथम्वाजडबुद्धित्वमुपागम्यसुबुद्धयः । निर्मलाःपार्षदाः विष्णोः पापसन्निधिमागताः
पुनः पुनर्वदत्यस्मद्राजा वैवस्वतोहि नः । नयतो वैष्णवान् पुंस ईशितारश्च ते मयि
अवलोकयितुं तान् हि नेशो स्वप्नेऽपि भोभटाः ।
तान्विष्णुरूपान् सेवन्ते वैष्णवाः पार्षदाः सदा ॥
सुदर्शनं चक्रवरं तस्य पार्श्वेऽवतिष्ठते ॥ ८ ॥
ये तु पापरता नित्यं विष्णुभक्तिपराङ्मुखाः ।
तेषामहं नियन्तेति स्थापितः प्रभविष्णुना ॥ ६ ॥

अहोऽसौ पापिनां श्रेष्ठो यमस्य वशमेष्यति । चित्रगुप्तेनकथितं नरकमसुसाक्षिणा
यमदूतवचः श्रुत्वा प्राहुर्वैष्णवपुङ्गवाः । मूढाः यूयं न बुद्धयध्वंक्रूरात्मानोविहिंसकाः
कः पापी धार्मिको वाऽपि को वा मोक्षाधिकारवान् ।
अस्य त्राता धार्मिको वै सदाचारः सुनिर्मलः ॥ १२ ॥

यज्ज्वादाता सत्यवादीनतथा वैष्णवोऽभवत् । कर्मण्यःकामनायुक्तःस्वगृहेचततेन च

महानगरमध्येऽहं भ्रमभाणोऽन्यदृच्छया। अवरोधेऽपि नृपतेः कान्ता नैदृक् सुशोभना
एकाऽपि लभ्यते येयं देवलोकेऽपि दुर्लभा। एवं शून्याटवीदेशं भूषयन्ती मनोहरा॥
दृष्टाऽपि या शुचं घोरां झटित्याकृष्यते मम ॥ ४० ॥
साऽपि तं निकटे दृष्ट्वा किञ्चित्सुस्थाकृतिस्तदा ।
स्थिता त्रपाऽनुरागाभ्यां भूषिता स्वैरतां गता ॥ ४१ ॥
अथोवाच द्विजोऽनङ्गपीडितोऽस्थिरमानसः ॥ ४२ ॥
का त्वं शुभे! कुतो वाऽस्मिन्कान्तारे समुपस्थिता ।
असहाया भयत्रस्ता दिव्यरूपा विभाव्यसे ॥ ४३ ॥
इत्युक्तवन्तं तं दृष्ट्वा वशचित्तं तदाऽब्रवीत् ।
कान्त! मा माऽन्यथा मंस्थास्त्वदीयाऽहं पुरा स्थिता ॥ ४४ ॥
दुर्द्वादुष्टचित्तस्त्वं सर्वैमां शैशवेऽत्यजः । अवसं जनकस्याऽहंमन्दिरे चिप्रवासिता
त्वां ध्यायन्ती दिवारात्रौ यौवनं निष्फलं गतम् ।
पितुर्गृहं मे निकटे श्रुत्वा त्वां निर्गतं गृहात् ॥ ४६ ॥
एकाकिनीभयोद्विग्नात्वत्सन्निधिमुपागता । अद्याप्यनुक्रोशय मांजीवितंरक्षमेप्रभो!
उद्वाहितायायुवतेः परित्यागोऽसुखावहः । नरकाय गतिः पुंसामितिशास्त्रविनिश्चयः
एहि कान्त! व्रजाम्यद्य पितुर्गेहं सुखालयम् । यथाकामं मया सार्द्धंतत्रतिष्ठचिरंप्रभो!
तया प्रबोधितश्चैवं स विप्रो हृष्टमानसः । जगाम तांपुरस्कृत्यअं (ह्य) दूरेश्वशुरालयम्
श्वशुरोऽपिचतं दृष्ट्वा सत्कृत्याऽऽशु प्रपूजयन् । स्वगृहे वेशयामाससर्वकामसमृद्धिभिः
रममाणस्तया सार्द्धंमासमात्रमुवास ह । एतत्सर्वं मुनेर्मायां न जानातिद्विजस्त्वयम्
व्रजंस्तु केवलं नित्यं क्षेत्रस्य निकटं ययौ ॥ ५३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
भगवद्भक्तविप्रस्य प्राक्परित्यक्तपत्न्यासहसङ्गतिर्नाम
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवद्भक्तविप्रस्यवैष्णवज्ञानलाभवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

द्वितीयेऽह्निदिवामध्येचतुर्मध्येप्रवेक्ष्यति । पूर्वेऽहनि ज्वरस्तस्यमहानासीत्सुदारुणः

तस्मिन् क्षेत्रे हरेश्चक्रंविष्णुपारिषदोगणः । यमस्यच सुघोरास्तेदूताःपाशादिपाणयः

युगपद्भवनं तस्य प्राप्तास्ते च परस्परम् ॥ २ ॥

यमदूता ऊचुः

कथम्भोवैष्णवा एनं पापसञ्चयकारिणम् । नेतुमिच्छथ वैकुण्ठं कथयध्वं भवादृशाः

अनेन कानि पापानि कृतानि न दुरात्मना । कथमेनं रक्षितुम्वै सुदर्शनमुपागतम् ॥

चक्रमेतद्ध वैष्णवं दुष्टाचारनिषूदनम् ॥ ४ ॥

कथम्वाजडवुद्धित्वमुपागम्यसुवुद्धयः । निर्मलाःपार्षदाः विष्णोः पापसन्निधिमागताः

पुनः पुनर्वदत्यस्मद्राजा वैवस्वतोहि नः । नयतो वैष्णवान् पुंस ईशितारश्च ते मयि

अवलोकयितुं तान् हि नेशो स्वप्नेऽपि भोभटाः ॥

तान्विष्णुरूपान् सेवन्ते वैष्णवाः पार्षदाः सदा ॥

सुदर्शनं चक्रवरं तस्य पार्श्वेऽवतिष्ठते ॥ ८ ॥

ये तु पापरता नित्यं विष्णुभक्तिपराङ्मुखाः ।

तेषामहं नियन्तेति स्थापितः प्रभविष्णुना ॥ ६ ॥

अहोऽसौ पापिनां श्रेष्ठो यमस्य वशमेष्यति । चित्रगुप्तेनकथितं नरकर्मसुसाक्षिणा

यमदूतवचः श्रुत्वा प्राहुर्वैष्णवपुङ्गवाः । मूढाः यूयं न बुद्ध्यध्वंक्रूरात्मानोविहिंसकाः

कः पापी धार्मिको वाऽपि को वा मोक्षाधिकारवान् ।

अस्य त्राता धार्मिको वै सदाचारः सुनिर्मलः ॥ १२ ॥

यज्ज्वादाता सत्यवादीतथा वैष्णवोऽभवत् । कर्मण्यःकामनायुक्तःस्वगृहेवर्ततेन च

महाज्वरोपस्पृष्टश्च सोऽपि मोहसमन्वितः । तन्नेतुमागता दूताःकथमत्र समागताः
निष्क्रान्तः स्वगृहादेवक्षेत्रेश्रीपुरुषोत्तमे । त्यक्ष्ये प्राणांश्चतुर्मध्येसङ्कल्पेन द्विजोत्तमः
तदारभ्यसमाज्ञप्ता वयं वै विश्वसाक्षिणा । दीनोद्धृतौ दयापक्षपातिनाप्रभुणाभटाः
एतस्य सन्निधौस्थानं भवतां न सहामहे । गदाचूर्णितमूर्धानो भविष्यथ न संशयः
यावत्ते कलहायन्ते यमदूताश्च वैष्णवाः । ध्वस्तमोहोऽभवद्विप्रो निशाचविरामसा

प्रातः प्राप चतुर्मध्यं दुर्वासाः सोऽपि च द्विजः ।
चिन्तयन् किं मया दृष्टं स्वप्ने चाऽत्यन्तकौतुकम् ॥ १६ ॥

कान्ताऽवलोकनाद्यन्तंस्वंचमोहमुपागतम् । दृष्ट्वाऽऽलिङ्ग्यभृशंतस्यारोदनंश्वशुरस्यतु

अहो भगवतो माया मामद्याऽपि त्यजेन्न हि ॥ २१ ॥

सर्वत्र ममतां त्यक्त्वा मुनिनागृहनिर्गतः । यावद्दुःखाद्यनुभवं स्वप्नेनजनुषाऽपिवा

इदानीमत्र सम्प्राप्तः किं करिष्यामि येन तत् ।
यास्यामि विष्णुसायुज्यं मुनिना सम्प्रकीर्तितम् ॥ २३ ॥

विचिन्त्येत्थंदिशःप्राप्ते सर्वत्रसमलोकयत् । पश्चात्स्थितंमुनिंस्मेरंददर्शप्रीतिसंयुतम्
दुर्बलः स समुत्थाय प्रणम्यशिरसामहीम् । जगामनोत्थातुमसौपुनःसामर्थ्यमाप्तवान्
विष्णुदूतपरिध्वस्तयमदूतैस्तु तैस्तदा । विज्ञापितोधर्मराजःसहसासमुपागतः
कूटमुद्गरपाशादिदण्डपट्टिशपाणिभिः । सन्दष्टौष्ठपुटैः क्रुद्धैः समन्तात्परिवेष्टितः ॥
चण्डारावमहाघण्टाभूषिते महिषे स्थितः । मृत्युकालप्रभृतिभिरुद्दीपितरुषोभृशम्
गृह्यतां गृह्यतामेष वध्यतां वध्यतामिति । तदग्रतोवचो दूराच्छुश्रुवे घोरदर्शनम् ॥
तच्छ्रुत्वा प्रेतराजस्य मर्यादातिक्रमं वचः । अमर्षणाविष्णुगणा प्राहुरुच्चैर्वचोभृशम्

अरे प्रेतगणाध्यक्षं नाऽऽत्मानं मन्यसे रुषा ।
कुत्राऽधिकारो भवतः स्वामिनो नः प्रकल्पितः ॥ ३१ ॥
ये प्रेताः सन्निधौ यान्तु मुक्तांस्तानवधारय ॥ ३२ ॥

अदूरदर्शी मूढात्मन् ! यदेनं प्रतिधावसि । एष प्रेतत्वनिर्मुक्तः साक्षाद्भगवतःप्रियः ॥

वटसागरयोर्मध्यं माधवाभ्यां सुरक्षितम् । क्षेत्रेमुक्तिप्रदे नूनं चतुर्मध्यविशेषतः ॥

कैवल्यस्मनसा यत्र कल्पितं प्रभविष्णुना। क्षीणकिल्बिषपुण्यायेतेषामत्रायुषःक्षमाः
अविज्ञायैतन्माहात्म्यंयम ! किं गर्जसेवृथा। अत्रसाक्षाज्जगन्नाथो दीनानामार्त्तिनाशनः
सुप्रसन्नमुखाम्भोजः करुणालम्बिबाहुधृक्। तस्मिक्षेत्रेरमेशस्यदेहभूते सदाऽव्यये ॥
यत्रतत्रसर्वदा ये प्राणांस्त्यजन्तिवैनराः। तेषाम्मुक्तिप्रदोदेवःसाक्षान्नारायणःस्वयम्

किन्नः स्मरन्ति वृत्तं यत्तवैवाऽत्र पुराऽभवत्।
काकः कैवल्यमुक्तोऽपि त्वरमाणो यदाऽगमत् ॥ ३६ ॥

यदाह त्वां रमानाथो नीलेन्द्रमणिविग्रहः। स एवाऽयंजगन्नाथो दारुरूपीरमाप्रभुः
महाराजाधिराजेन वैष्णवाग्र्येण धीमता। योगीश्वरेन्द्रद्युम्नेन हयमेधैः प्रसादितः ॥
त्रैलोक्यवासिभिः सिद्धदेवर्षियतिभूमिपैः। सार्धंसाक्षादब्जभुवा पूजितः परमेष्ठिना
अनादिसञ्चिताशेषपापतूलौघपावकः। दर्शनान्मुक्तिदो नृणां मरणादपि मुक्तिदः
न पश्यस्यभ्रतश्चक्रं दुष्टचक्रविनाशनम्। अपक्रामस्वाऽधिकारे तिष्ठदेव! चिराद्यम!

तेषामित्थम्प्रवदतां स निशम्य वचोऽमृतम्।
योद्धुकामः समुत्तस्थौ स्वगणेनोद्यतो यमः ॥ ४५ ॥

अत्रान्तरे द्विजाग्र्यस्यै शयानन्तमधोमुखम्। चतुर्मध्येशनैःकश्चिन्निन्येवैष्णवपुङ्गवः

यावन्मध्यङ्गतः सोऽथ श्वसन्विप्रोऽथ विह्वलः।
उत्सारयन्यमगणान्पाञ्चजन्यभवो ध्वनिः ॥
शुश्रुवे चाऽपतद्व्योम्नः पुष्पवृष्टिर्द्विजोपरि ॥ ४७ ॥

ततः पतगराजस्य पृष्ठासवपतो हरिः। शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गपद्मोद्यतभुजोत्तमः ॥ ४८

सुप्रसन्नमुखाम्भोजः सजलाम्बुदसन्निभः।
पीताम्बरधरः श्रीमान् कौस्तुभोद्भासिविग्रहः ॥ ४६ ॥

अवरुह्यखगात्तूर्णं कर्णमूले द्विजस्यवै। अनाद्यंविद्यातमसः प्रध्वंसनमनुत्तमम् ॥५०
दिदेश वैष्णवज्ञानं वामदेवः शुकोऽथवा। अवधूय वृथा ज्ञानं येन मोक्षमवापतुः ॥
ततस्तद्बोधसँल्लीनः द्रुढवासनतामसः। प्रत्यूषसोयथाभानुरुदियाय महोमहत् ॥
दुर्वासःप्रभृतीनाम्वै पश्यतामेव तत्क्षणात्। तज्ज्योतिर्भगवच्चक्र पद्मान्तरमवाप च

ततस्तिरोदधेदेवोह्यन्तर्यामी जगत्प्रभुः । दुर्वासाविस्मयाविष्टोब्रह्मणश्चान्तिकंययौः

इति श्रीस्कादे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
भगवद्भक्तविप्रस्य वैष्णवज्ञानलाभो नाम
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सागरस्नानादिमाहात्म्यवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

तदेतत्कथितं तत्र मोक्षसाधनमुत्तमम् । आत्मासाक्षात्कारमृते शरणं सर्वदेहिनाम् ॥
यथाहियुगभेदेन भक्त्या तन्नामकीर्त्तनम् । कलौमुक्तिप्रदं पुंसां तत्क्षेत्रे मरणं तथा ॥२

विष्णुसूक्ते श्रुतिः प्राह जानन्तस्तम्महेश्वरम् ।
विचरन्तोऽपि ते नाम त्वां यास्यामो हतांहसः ॥ ३ ॥
श्रुतिःस्मृतिर्भगवतो वाक्यं त्वमवधारय ॥ ४ ॥

आत्मबोधाश्रुतिःप्राहमुक्तितन्मूलिकास्मृतिः । मरणात्तत्र चप्राहनविरोधोव्यवस्थया
वाजिमेधेऽप्यनुष्ठानंबहुकालाऽऽत्मदुःखदम् । तज्ज्ञानञ्चतुल्यफलंविधानेद्वेव्यवस्थया
ये तत्र मृतिमाहात्म्यंनविदन्तिमहांहसः । बहुभिर्जन्मभिस्तेषामात्मज्ञानेन मोक्षणम्
अङ्गाङ्गिभावोनाऽप्येष आत्मज्ञानस्यतन्मतेः । येनाङ्गफलभूयस्त्वमनुवादनियामकम्
दीर्घायुषां बलवतां योगिनांबहुजन्मभिः । आत्मकारावृत्तिरेषानोद्दालकनतन्तृणाम्
जन्तूनाम्वा विह्वला तां न तत्क्षेत्रे मृतिस्तु सा ।
यथावानाऽऽत्मज्ञानेन कर्मणो वै समुच्चयः । तथातत्क्षेत्रमरणेनाऽऽत्मज्ञानसमुच्चयाः
यएते सृष्टिकर्त्तारः कश्यपाद्यामहर्षयः । सृष्टिप्रवर्त्तनार्थं हि तत्क्षेत्रं गोपयन्ति वै ॥

दुष्टात्मनां विनाशाय साधूनां रक्षणाय च । यदा यदाऽवतरतिसाक्षान्नारायणः प्रभुः
कश्चित्कालं क्षेत्रवरं दीनार्तकृपयाविभुः । प्रकाशयति विश्वात्मा पुनरावृणुते हिते
संसारस्य स्वभावोऽयं निमग्नोत्तीर्णवद् द्विज! ॥ १४ ॥
क्षेत्राणितीर्थभूतानिगङ्गादिसरितस्तथा । सागराः पर्वतशैलाश्चविलीयन्तेक्वचिद्द्विज!
प्रकाशन्ते च वर्द्धन्ते सृष्टिरेषा सनातनी ॥ १५ ॥
तथाहि सागरोह्येष ब्रह्मशापात्पुरा द्विज! । दशवर्षसहस्राणि निर्जलोऽभून्महार्णवः ॥
आकाशगङ्गा सलिलैः पश्चात्पूर्णो बभूव ह ॥ १६ ॥
यन्नामकीर्तनंभक्त्या सर्वपापापनोदनम् । प्रायश्चित्तान्यशेषाणि यथेदं क्षेत्रमुत्तमम् ॥
वेदादात्मस्वरूपस्यश्रवणंस्मरणंतथा । युक्तिभिश्चस्थिरीकृत्यनिदिध्यासश्चिरंतथा
ततस्तदाकारतया वृत्तिर्या चेतक्च स्थिरा ।
वहुजन्माभ्यासदुःखैर्विना ताम्मुक्तिमेति कः ॥ १६ ॥
क्षेत्रे तस्मिन्परेशस्य क्षेत्र भूते सनातने । चतुर्मध्ये त्यजन्प्राणान्यत्रतत्राऽपिनेच्छया
अत्रतेमाऽस्तु दुर्बुद्धिकृताशङ्का द्विजोत्तम! । अपराधमिमं श्रीशः सर्वथानसहेत वै ॥
पुरा वः कथितम्विप्र ! नैवेद्यहत्याऽपमानने ।
प्राणान्तिको महामोहो विदुषोऽभून्महागदः ॥ २२ ॥
अपरञ्च वदाम्यद्य माहात्म्यंतस्यदुर्लभम् । माघोमासःसुपुण्योवैस्नानात्स्वर्गप्रदायकः
ततोऽपि नर्मदा पुण्या त्रिदिवैरिन्द्रलोकदः ।
ततः शतगुणा गोदा रेवा तस्याः शताधिका ॥ २४ ॥
सागरो यत्र कुत्राऽपि सहस्रफलदो मतः ॥ २५ ॥
यानि तीर्थानि सन्तीह वायुप्रोक्तानि भूतले ।
तानि त्रिवेण्यां सन्तीति प्रयागे ब्रह्मभाषितम् ॥ २६ ॥
सिताऽसितेतत्रनरःस्नात्वामाघेसुपुण्यके । मकरस्थेदिनाधीशेत्रिभिर्दस्रै द्विजोत्तमः!
ब्रह्मलोकमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ २७ ॥
तस्मिन्मासे तु या शुक्ला भवेदेकादशी द्विजः ।

तस्यामत्रार्णवे स्नात्वा विधिवद्व यतमानसः ॥ २८ ॥

देवान्पितृंस्तर्पयित्वापूजयित्वाजगद्गुरुम् । मण्डलेसिकतामध्येतद्वयोग्यैरुपचारकैः

माधवप्रीतये दत्त्वा तिलपात्रमनुत्तमम् । एकविंशोत्तरकुलं भविष्यद्भूतमेव च ॥

अभ्युद्धरति शुद्धात्मा नाऽत्रकार्या विचारणा ॥ ३० ॥

तत आगत्य वाक्पूतो वटम्पूज्य प्रदक्षिणम् ।

कृत्वा प्रभोर्जगद्धातुः प्रविशेन्मन्दिरं ततः ॥ ३१ ॥

शरण्यम्मास्परित्राहि पतितम्भवसागरे ।

अव्याजकरुणासिन्धो! दीनबन्धो! नमोऽस्तु ते ॥ ३२ ॥

मुहुर्मुहुः प्रणम्येत्थं दारुब्रह्मपदान्तिकम् । नत्वा प्रदक्षिणं कृत्वा कुन्दपुष्पैः प्रपूजयेत्

यथाविभवतश्चाऽन्यैरुपचारैः श्रियःपतिम् । वैकुण्ठभवनेस्थित्वाविरिञ्चेरायुषः क्षये

तेनैव सह तत्रैव लीयते परमात्मनि ॥ ३४ ॥

माघ्यां दत्त्वा माधवाय चन्द्रचूडाऽवचूर्णिताम् ।

कुन्दैः प्रग्रथितां मालां विचित्रां गन्धशालिनीम् ॥ ३५ ॥

नानोपहारसहितां तदग्रे ब्राह्मणाञ्छुचिः । वस्त्रालङ्कारगन्धाद्यैः पूजयित्वा हरेर्धिया

तत्प्रीतये प्रदेयानि दानानि विविधानि च । कलौ हि सर्वकर्मभ्यो दानमेवप्रशस्यते

विद्वानपि धनैर्हीनो यदि स्याज्जपकीर्तनैः ।

प्रणमेद्धनवांश्चेत्स्याद्विष्णुर्मे प्रीयतामिति ॥ ३७ ॥

दद्यादलङ्कृतागावै सुवर्णं तिलपात्रगम् । श्रद्धयादीपमन्नानि वासांसि सुमनस्स्रजः

कर्पूराऽगुरुकस्तूरी चन्दनंकुङ्कुमंतथा । विष्णोःप्रीतिकरञ्चान्यत्स्वस्य चेष्टंहियद्भवेत्

माघ्यां माधवतोषायब्राह्मणेभ्योनिवेदयेत् । प्रयागे च कुरुक्षेत्रे उपरागे च भास्करे

गोकोटिदानजम्पुण्यं गां दत्त्वाऽलङ्कृतां शुभाम् ।

एकां द्विजाऽत्र लभते ततश्चाऽप्यधिकं फलम् ॥ ४१ ॥

वटसागरयोर्मध्ये क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ ४२ ॥

माघ्यां जानीहि यत्किञ्चिद् देयमेतत्सदा द्विज ॥ ४३ ॥

यः कश्चिद्ब्राह्मणोव्याससमश्चपरिकिर्तितः । अत्राऽपिदुर्लभंयोगंकीर्तयामिनिशामय
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्त-
र्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे सागरस्नानादि
माहात्म्यवर्णनंनाम चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पाखण्डकुलजातस्यकस्यचिद्विष्णुभक्तस्याख्यानवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

अस्यामेव गुरोर्वारः शोभनो योग उत्तमः । पितृदेवं यदा ऋक्षं धनिष्ठामूलगोविधुः
मीनेधनुषि सिंहेच कुलीरे तिष्ठते गुरुः । महामाघीति नामाऽयंयोगः परमदुर्लभः ॥
मुहूर्त्तमात्रं लभते पितृणां मुक्तिदायकः । तत्र श्राद्धं प्रकुर्वीतवाञ्छन्पितृविमोक्षणम्
नरकस्थादिवंयान्तिगयाश्राद्धेकृतेसुतैः । स्वर्गस्थावहुकालं तु प्रीतियुक्तावसन्ति वै

महामाघ्यां सुतोगत्वा सिन्धुतीरं समाहितः ।
स्नात्वा पितृंस्तर्पयित्वा तिलाम्भोभिर्मुदान्वितः ॥ ५ ॥
अन्येषाञ्चाऽपि नाम्ना वै दत्त्वा चाऽपि तिलोदकम् ।
पितॄन्नयति स्वर्गस्थान्नरकस्थांश्च सर्वशः ॥ ६ ॥
ब्रह्मणःसदनञ्चान्यान् योगः परमदुर्लभः ॥ ७ ॥

देवेभ्यस्तुवरं लब्ध्वा पवित्रं हि गयाशिरः । तत्क्षेत्रं देवदेवस्य वपुर्भूतं महात्मनः ॥
यत्र संसर्गमासाद्य क्षेत्रमन्यद्धि पावनम् ॥ ८ ॥

तत्र श्राद्धं प्रकुर्वाणःशुद्धद्रव्यैस्तुभक्तितः । मोचयेत्पिण्डदानेन देहवन्धात्पितॄन्सुतः
पितॄनुद्दिश्य यो दद्याद्दानानिविविधानिच । दातारंतत्पितॄंश्चाऽपिध्रुवंमोचयतेप्रभुः
पितृपाकस्य निष्पत्तिरुक्ता सागरवारिणा । पूजाच पुरुषाख्यस्य भवेच्चकोटिशोगुणः
अन्यदा तर्पणं स्नानं पूजनं सागराम्भसा । महामाघ्यान्तुसकलं कर्म्मकुर्यात्तदाम्भसा

गङ्गाम्भःस्नपनं विष्णोः पीत्वा पादोदकञ्च यत् ।
लोकोत्तरं लभेत्पुण्यं तत्सिन्धोर्जलपानतः ॥ १३ ॥
अश्वमेधावभृथजकोटिस्नानफलन्तु यत् ।
तस्यां स्नाने कृते सिन्धौ लभतेऽनुग्रहाद्धरेः ॥ १४ ॥
स्नात्वा सन्तर्प्य विधिवत् पितृदेवांश्च भक्तितः ।
श्राद्धं कृत्वा हविष्यैश्च दत्त्वा दानानि चैव हि ॥ १५ ॥
दृष्ट्वा सम्पूज्य विधिवत्साक्षाद् ब्रह्म सनातनम् ।
मातुः स्वस्य च भार्यायाः कुलानि च शतं शतम् ॥
विमोच्य तैरेव समं परे ब्रह्मणि लीयते ॥ १६ ॥
वंशानां भाग्यसम्पत्त्या तादृशो हि भवेत्सुतः ।
श्राद्धं यस्तु महामाघ्यां कुर्यात्श्री (च्छ्री) पुरुषोत्तमे ॥
श्राद्धं ये कुर्युस्तस्याम्वै यस्तु याति सदा सुतः ।
तिर्यग्योनिगतास्तस्य प्रोद्भूताः पादरेणुभिः ॥ १७ ॥
नयन्ति गत्वोषित्वाचपितरस्तंमुदान्विताः । पार्श्वतःपृष्ठतश्चाग्रेसमक्षाद्यः कुलोद्भवाः
आब्रह्मणो ये हि कुलत्रये च प्रयान्ति तस्मिन्पुरुषोत्तमाख्ये ।
सुदुर्लभे वर्षसहस्रके च देवर्षिसेव्ये च सुयोग उत्तमे ॥ १६ ॥
स कालोदुर्लभेलोकेनाऽल्पपुण्यैरवाप्यते । वित्तशाठ्यं न कुर्वीतप्राप्यतंयोगमुत्तमम्
विनश्वरं शरीरञ्चवित्तञ्चाऽपिशरीरिणाम् । यद्दत्त्वा ब्राह्मणकरेधनंकोटिगुणम्भवेत्
कामादकामतश्चाऽपिमोक्षंतत्रलभेद्ध्रुवम् । ज्ञानादपिभवेन्मुक्तिरितिवेदान्तगीःश्रुतिः
तत्रमन्त्राःप्रजप्तास्तुसुसिद्धास्युर्नृणांध्रुवम् । प्रीणितस्तुजगन्नाथःसर्वकामप्रदस्तदा
किमत्रवहुनोक्तेन कृतकृत्यो भवेन्नरः । दुश्चिकित्स्यमहाव्याधिविमुक्तःस्नानतोभवेत्
महापापैर्विमुक्तःस्याद् बुद्धिपूर्वकृते द्विज ! । किम्पुनःक्षुद्रपापैस्तुकालःखलुसुदुर्लभः ॥
प्रज्वलन्तंवह्निराशिं यथाप्राप्यातिदह्यते । तुलामाघकमेवं हि पापराशिस्त्रिधौतकः
तस्यांस्नात्वा सिन्धुजले दह्यतेतत्क्षणादपि । महामाघ्यांमहाक्षेत्रे महापुरुषदक्षिणे

महार्णवे नृणां स्नानं महापातकनाशनम् । कथितं श्रुतपूर्वन्ते दृष्टपूर्वं वदामि ते ॥
पाषण्डानां कुलेकश्चिदासीद्धार्मिक उत्तमः । धर्मशास्त्रार्थकुशलो विष्णुभक्तोदृढव्रतः
तत्पूर्वे तस्यकुलजाः पाषण्डानरकौकसः । तिर्यग्योनिगतायेच ते सर्वे वृन्दशोगताः
विज्ञापयामासुरित्थंपुत्रकाऽस्मान्समुद्धर । गयायांपिण्डदानेन वयमत्यन्तदुःखिताः
महामोहवशाद्येन विमुखा वयमीदृशाः । परं पराणां परमं नार्च्चयामस्तमोभयाः ॥

धर्म्ममार्गे प्रवृत्तानां कुर्वाणश्च प्रतिक्रियाम् ।
न जानीमो दुःखराशेः केन स्यात्संक्षयो भवेत् ॥ ३४ ॥

केवलं शुश्रुवामो वै गयाश्राद्धं कृतं सुतैः । उद्धारयतिवश्यांस्तु तिर्यश्चोनरकौकसः
तेषां तद्वचनंश्रुत्वा स गत्वाशास्त्रवित्तमः । विधिनाभक्तियुक्तेन गयायांशुचिभिर्धनैः

नानाविधानि श्राद्धानि चकाराऽङ्गं मुदान्वितः ।
ततस्ते नास्तिका वंश्यास्तथैवाऽतिप्रमोहिताः ॥ ३७ ॥

निमग्ना दुःखजलधौ प्रेतास्तिर्यग्गतास्तथा । परिवार्य्यपुनः पुत्रमूचुर्वंशत्रयोद्भवाः ॥
पुत्रक! श्राद्धमस्माकमुद्धारायकृतं मुहुः । सद्वृत्तेन त्वया शास्त्रमार्गतः सत्यमेव तत्
किमेतच्छ्राद्धमस्माकंदर्शनायाऽपिनाभवत् । सुभृशंताड्यमानानां लौहदण्डैःसमन्ततः

दृश्यन्ते पितरोऽन्येषां श्राद्धदानाद्ग गयाशिरे ।
विमानवरमारुह्य दिव्यलोकं प्रयान्ति ते ॥ ४१ ॥

समीपतोऽस्माकमेव दिव्यस्रग्गन्धभूषणाः । नाऽस्माकंहीयते पापं कृतैःश्राद्धशतैरपि
वयमेतन्न जानीमो धर्मशास्त्रबहिष्कृतान् । कथम्वादुःखविलयोभविष्यतिचनोध्रुवम्
त्वमस्माकं कुलेजातो वारिधेरिवचन्द्रमाः । त्वां विना गतिरस्माकंदृश्यतेनहिपुत्रक
दुःखार्णवनिमग्नानांपारं नेतुं त्वमेव नः । येन शक्तोविचार्यैतत्कुरुष्वाऽऽशुद्विजोत्तम!
पुत्र एको विक्रियते वंश्यानामुद्धृतौनृणाम् । पुत्रस्यैवाऽपचारेणनरकेऽपिपतन्तिते
तादृशो गुणवान्पुत्रः कुलेयेषां समुद्गतः । ईदृग्दुःखार्णवेतेषामुत्प्लुतिर्जायतेकथम्

सर्वे दुष्कृतकर्म्माणो यातना सुस्थिताश्च ये ।
सत्पुत्रेण गतिं यान्ति दिव्यां ते नाऽत्र संशयः ॥ ४८ ॥

इति दीनार्त्तवचनं पुत्र आकर्णयंस्तदा । न प्रत्युवाच पापिष्ठवंश्यान्वैस द्विजोत्तमः
केवलंचिन्तयामासदोलाचलितचेतसा । शास्त्रंप्रमाणंमर्त्यानां कृत्याकृत्यव्यवस्थितौ
तच्छास्त्रप्रस्थितो नित्यं वैपरीत्यं कथम्व्रजेत् ।
भवन्त एव पापिष्ठा वंश्या एते ममाऽधुना ॥ ५१ ॥
गयाश्राद्धंसर्वपापनोदनं शास्त्रचोदितम् । यथाविधिकृतं श्राद्धं शतं नैतेविमोचिताः
शास्त्रं प्रमाणं सर्वेषां कृत्याकृत्यविधौसदा । इतिसाक्षाद्भगवतोमुखपद्माद्विनिर्गतम्
एवं चिन्ताकुलमतेर्वाणीव्योमसमुद्भवा । अशरीरा जगादोच्चैस्तन्वानासंशयच्छिदा
ब्रह्मन्! सत्यं गयाश्राद्धं सर्वकल्मषनाशनम् । पितृणां दुर्गतिहरं ब्रह्मलोकगतिप्रदम्
न ते सामान्यपापानांश्रुतिविद्रावकाःसदा । अवजानन्तिसततमन्तर्यामिणमीश्वरम्
गयाश्राद्धैर्नकुशला एते श्रुतिबहिर्गताः । तेषां सन्ततिजातोऽसिनचवेदफलं लभेत्
ब्रह्मण्यमुज्ज्वलप्राप्तमुद्धर्त्तुं वंशजान्स्वकान् ।
यदि वाञ्छाऽसि भो विप्र! शृणु तत्त्वं रहस्यकम् ॥ ५८ ॥
पाषण्डानां समुद्धारः अविद्याविलयं तथा ।
उभयं सदृशं विद्धि तयोः कारणमुच्यते ॥ ५६ ॥
आत्मसाक्षात्कृतिर्वास्यात्क्षेत्रेश्रीपुरुषोत्तमे । महामाघ्यांपिण्डदानंलवणोदतटेऽथवा
कदाचिदपि पापानामात्मसाक्षात्कृतिर्भवेत् । तद्वंशदीपतत्रैव श्राद्धं कुरुमहामते ! ॥
द्रक्ष्यसि स्वदृशा तत्र मुक्तानां परमां गतिम् ॥ ६२ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
पाखण्डकुलजातस्यकस्यचिद्विष्णुभक्तस्याख्यानवर्णनंनाम
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

———

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शास्त्रीयविधिनाश्राद्धकरणवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

श्रुत्वेत्थमाकाशगिरं परमं हर्षमास्थितः । महामात्यांसमीपायांजगामक्षेत्रमुत्तमम्

पर्यन्तभूमौ क्षेत्रस्य प्रविशन्ददृशे स्वकान् ।

शुद्धसत्त्वान् शुभ्रवर्णान् निर्म्मलाम्बरधारिणः ॥ २ ॥

वैदिकज्ञानसंशुद्धवचसः क्षीणकल्मषान् । तमनुव्रजतः साक्षाद्दृष्यतश्च परस्परम् ॥

रुवतः साधुपुत्र! त्वं ध्रुवं नस्तारयिष्यसि ।

साधुव्यवसितंतात! यदत्राऽऽगच्छसिक्षितेः । पावनंपरमंस्थानंनिष्प्रत्यूहविमुक्तिदम्

सन्निधावागतानां न तमः सङ्क्षीयतेऽधुना ।

उद्यतो भास्करस्येव महेन्द्रककुभो भृशम् ॥ ५ ॥

सद्विजस्तागिरःश्रुत्वावंश्यानांविमलात्मनाम् । विस्मयं परमं लेभेक्षेत्रस्यमहिमप्रति

स्वगणेयगणाकीर्णां क्षेत्रमार्गमवाप्य तत् ।

चतुर्म्मुखविनिष्क्रान्तलोकं विधिविधानवित् ॥ ७ ॥

सत्यमेवाह यद्वाणी विद्या साऽऽकाशभाषिता ।

कथं मिथ्या वदेयुस्ते लोकानुग्राहकाः सुराः ।

सर्वेषां कर्म्मणां पाकं विदन्तस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ८ ॥

अहोमेजन्मनो भाग्यं पाषण्डकुलसन्ततेः । उद्धारणसमर्थोऽहमेतेषामपि योऽभवम्

गयाश्राद्धैर्बहुकृतैः कुयोनिगतयो जनाः । विशुद्धमतयस्ते मां भाषन्ते भास्करत्विषः

दिव्यदेहोऽहमप्यासं यदेते मोचिता मया ॥ ११ ॥

चिन्तयन्नितितैःसार्द्धंजनसम्बाधवर्त्मनि । शनैःशनैर्दुःखदुःखांतीर्थराजस्यसन्निधिम्

गत्वा स्नानमिदमानेन शास्त्रीयेण चकार सः ॥ १२ ॥

विधिवत्तर्पयित्वाऽथदेवानपि गणांस्तथा। श्राद्धंचक्रेमहाभक्त्यासमृद्धविधिनाद्विजः
श्राद्धावसाने देवेशं यावद्ध्यायति निश्चलम्। तावद्दिव्यविमानानिज्वलद्रत्नगणानिवै
चन्द्रसूर्यप्रकाशानि कामगानिनभोऽङ्गणे। विद्याधरैरप्सरोभिःपुष्पकैः वृष्टिप्रकीर्णकैः
समन्ताद्वेष्टितान्यस्यदृष्टिविषयामययुः। स्वर्णकिङ्किणिनादैश्चवीणाक्वाणैर्मनोहरैः

सञ्जातध्यानभङ्गोऽसौ पुनस्तानि ददर्श ह॥ १७॥
देवदूताः समागत्य सादरम्प्रणिपत्य च।
संस्तूय वाग्भिर्दिव्याभिस्तान् पितॄंस्तस्य पश्यतः॥ १८॥

ब्रह्मणोवचनाद्यूयं तस्यलोकं प्रयास्यथ। अहो! हन्तविमानानि ब्रह्मलोकागतानि वै
धन्येनाऽनेनवंश्येन विष्णुभक्तिपरेणच। महारौरवयोग्यानां युष्माकं तारणं कृतम्॥

पाखण्डानां न निर्म्मोक्षं संसाराध्वप्रवर्त्तिनाम्।
प्रवर्त्तितानां मोहेन अविद्यामूलसूनुना॥ २१॥

यद्यस्मिन् पावके क्षेत्रे न श्राद्धंवंशजैःकृतम्। तदानमोक्षोभवतिपापिष्ठानांहिशौनक!
महामाघीमहायोगो विष्णुना प्रभविष्णुना। प्रवर्त्तितः पापकृतामुद्धारायदयालुना॥
स्वरूपतोहिभगवानिन्द्रद्युम्नेन भावितः। महाक्रतोर्महादीक्षा महादुःखवती तदा॥
बहुवित्तव्ययायासबहुकालप्रसाधनम्। वाजिमेधसहस्रं हि नाल्पभाग्यस्यजायते॥
भगवदनुग्रहमृते इन्द्रद्युम्ननृपस्य च। न दृष्टं नश्रुतंकाऽपिशक्रस्याऽपि सुदुर्लभम्॥
ततोऽपिभगवानेषनिरुपाधिकृपाम्बुधिः। दीनानुग्रहकृद्देवो वात्सल्याम्बुधिचन्द्रमाः
सर्व्वकर्म्मादारणोऽसौदारुरूपी प्रकाशितः। तेनैव रूपेणवरानिन्द्रद्युम्नाय दत्तवान्
तत्क्षेत्रमपितद्देहं नात्रभिन्द्यान्मतिस्तव। रहस्यमेतत्कथितं मुक्तेः साधनमुत्तमम्॥

श्रवणादि चतुष्कं हि यथा मोक्षस्य साधनम्।
तथा चतुष्कमध्येऽस्मिन्क्षेत्रे प्राणविमोचनम्
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुज्यमुच्यते॥ ३०॥
तत्त्वसाक्षात्कृतेस्तत्र क्षेत्रे प्राणवियोजनात्।

ऋते न मोक्षो जन्तूनां द्वयमेवाऽपवर्गदम्॥ ३१॥

महामाघ्यां महायोगे श्राद्धं पितृविमुक्तिदम् । तत्र त्रयं दुर्लभं हि संसारे शौनक! ध्रुवम्
अर्द्धोदयादयो योगा ये पूर्व्वं प्रतिपादिताः ।
शतांशमपि तेनार्हा माघीयोगस्य शौनक ! ३३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे श्राद्धानुष्ठानस्याऽवश्यकर्त्तव्यताकीर्त्तनं नामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

———

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अर्द्धोदययोगमाहात्म्यवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । एते हि योगाः कथिताः पापिष्ठाऽऽश्वासकारकाः
दुःखेन चिरलब्धं यत्तीर्थम्वा योगएववा । तदेव ते हि मन्यन्ते पापिष्ठाः पापनाशनम्
प्रवर्त्तकः संसृतेस्तेन मोच्यन्ते हि विष्णुना । धार्म्मिकानां हि विश्वासस्तत्क्षेत्रे नित्यमेव हि
अष्टौ शतानि वर्षाणि कामभोगेषु लालसः । कण्डूर्नाममुनिः पूर्वं मोहितः स्वर्गवेश्यया
द्विजकर्म्माणि सन्त्यज्य तया रेमे दिवानिशम् । पश्चात्तापमुपागम्य तदेव क्षेत्रमुत्तमम्
गत्वा समाराध्य जगत्पतिं दारुस्वरूपिणम् ।
र्निव्वण्णमानसः स्तुत्वा पराङ्गतिमुपागतः ॥ ६ ॥
स्कन्दः पुरा महादेवं पप्रच्छ विनयान्वितः । पुरुषोत्तमस्य क्षेत्रस्य रहस्यं परमं वद ॥
नज्ञातं येन केनाऽपि चरे वा स्थावरेऽपि वा । त्वमेव भगवन् शम्भो! वेत्सि तत्क्षेत्रमुत्तमम्
बहुधा तत्र गत्वाऽपि साङ्गोपाङ्गं न यत्फलम् । लभ्यते चैकदिवसं सेविता वदमे पितः !
सर्वपापक्षयः पुंसां भवेत्काले कलौ कथम् । प्रायशो दुःखिता मर्त्याः प्राकृतैः पापसञ्चयैः
कथं नु सुखिनस्ते स्युः सकृत्कर्माऽशुसञ्चयात् ॥ १० ॥

एवंब्रूहि महादेव ! कर्म्मयत्स्यादनुत्तमम् । येनाऽनुष्ठितमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥
यो हि कश्चिदुपायोऽस्ति तन्मे वद सुनिश्चितम् ॥ १२ ॥

श्रीमहादेव उवाच

शृणु वत्स! प्रवक्ष्यामि सर्वपापभयापहम् । स्वर्गापवर्गदंपुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥
सर्वमांङ्गल्यजननं दुःखदुर्गविनाशनम् । सौख्यसौभाग्यसम्पत्तिधनसम्पत्तिवर्द्धनम्
आयुर्वृद्धिकरोपायं मया यत्सुविनिश्चितम् ॥ १४ ॥
माघे इन्दुक्षये पाते वारेऽर्के श्रवणा यदि । अर्द्धोदयः स विज्ञेयः सहस्रार्कग्रहैः समः
दिवैवयोगः शस्तोऽयंनचरात्रौकदाचन । नान्यःपुण्यतमःकालोयोऽर्द्धोदयसमो भवेत्
तावद्गर्ज्जन्ति पापानि सुबहूनिमहान्त्यपि । यावदर्द्धोदयोनैति सर्वपापापनोदनः ॥
अभूत्कालकृतो यो वै प्राकृतः पापसञ्चयः । अर्द्धं हरत्यतःप्राहुर्योगमर्द्धोदयम्बुधाः ॥
अर्द्धोदये महायोगे मुनिदैवतयाचिते । पापाऽन्धकारान्मुच्येन्तभवेयुर्विमला नराः ॥
अर्द्धोदये महापुण्ये सर्वं गङ्गासमञ्जलम् । यत्किञ्चित्कुरुतेदानं तद्दानं मेरुसन्निभम्
तदा दानानि देयानि भूदानप्रभृतीनिच । पापक्षयार्थिभिर्मर्त्यैःस्वर्गादिफलकाङ्क्षया
तुलापुरुषदस्तत्र सदाशिवपुरम्व्रजेत् । हिरण्यगर्भदोमर्त्यो गर्भवासं न चाप्नुयात् ॥
गोसहस्रप्रदोमर्त्यः सहस्राक्षपदम्व्रजेत् । एवमादीनि दानानि कृत्वासम्यग्विधानतः
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स नरः सुखमेधते ॥ २३ ॥

स्कन्द उवाच

प्रायशो हि कलौमर्त्या मन्दभाग्या महेश्वर! । अशक्ताभूमिदानादौमुच्यन्ते ते कथंनराः
तुलापुरुषदानेन भूमिदानेन यत्फलम् । हिरण्यगर्भदानेन गोसहस्रेण यत्फलम् ॥२५
एतेषां पुण्यफलदं सर्वदानञ्च शङ्कर ! । अनायासेन यद्यस्ति तद्दानं कथयस्व मे॥२६

ईश्वर उवाच

शृणु वत्स! महागुह्यंदानं तत्राऽतिपुण्यदम् । सर्वेषाञ्चैवदानानां यत्पुण्यफलदायकम्
वक्ष्याम्यहं महादानं नृणां पापभयापहम् ॥ २७ ॥
चतुःषष्टिपलं कांस्यमयं [illegible] तत्कारयेत् । चत्वारिंशत्पलंवाऽपि पलं विंशतिमेव वा

निधाय पायसं तत्र पद्ममष्टदलं लिखेत् । पद्मस्य कर्णिकायान्तु कर्षमात्रं सुवर्णकम्
तदभावे हि अर्द्धम्वातदर्द्धम्वाऽपिप्रक्षिपेत् । स्नात्वातत्र विधानेन यथाविध्युक्तमार्गतः
मन्त्रेणाऽनेन हे वत्स! स्नानंकुर्यादतन्द्रितः । सर्वसाधारणंमन्त्रं गोपनीयं परं मम
ओङ्कारं कामबीजम्वाविकारश्चततःपरम् । पुरुषन्तु ततः पश्चान्नमसोऽन्तेप्रकल्पयेत्
सर्वसिद्धिकरं पुण्यं मोक्षदं पापनाशनम् । शुद्धानां परमं शुद्धं योगिनांयोगदंशुभम्
पितॄंश्चतर्पयेद्धीमान्जलादुत्तीर्ययत्नतः । धौतवासाःशुचिर्भूत्वासूर्यायाऽर्घ्यंनिवेदयेत्
त्रयीमय! नमस्तुभ्यंदेवदेव दिवाकर!। पुराकृतश्चयत्पुण्यं तत्पुण्यञ्चाऽक्षयं कुरु ॥ ३५
कृत्वा तत्तण्डुलैः शुभ्रैः पद्ममष्टदलंशुभम् । अमृतं स्थापयेत्तत्र ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्
तेषाम्प्रीतिकरार्थाय श्वेतमाल्यैःसुशोभनैः । वस्त्रादिभिरलङ्कृत्यब्राह्मणायनिवेदयेत्
सद्वृत्ताय सुशान्ताय विधिज्ञाय कुटुम्बिने । पुष्पगन्धैरलङ्कृत्यदेवमेतत्त्रयीमयम्
सुवर्णपायसंपात्रंयस्मादेतत्त्रयीमयम् । आवयोस्तारकंयस्माद्गृहाणत्वंद्विजोत्तम!
दानैस्तीर्थैस्तपोभिश्चयत्कृतंसुकृतं मया । तत्पुण्यफलसंसिद्धिसुसम्पूर्णं तदस्तुमे
इदं दत्त्वा महादानं ततःसम्प्रार्थयेद्द्विजम् । मन्त्रेणाऽनेनगाङ्गेय ! सम्यगेकाग्रमानसः
पुष्टिर्मेधाबलारोग्यसम्पदायुष्यवर्द्धनम् । त्रयीमयोद्विजः साक्षाद् ब्रूहि मेपुण्यवर्द्धनम्

सम्यगित्थं कृतं येन तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ४२ ॥
सुवर्णमणिरत्नाढ्यां पञ्चाशत्कोटिविस्तृताम् ।
ससुद्रमेखलां पृथ्वीं सम्यग्दत्वा च यत्फलम् ॥
तत्फलं लभते मर्त्यः कृत्वा दानममन्त्रकम् ॥ ४४ ॥

एवं यः कुरुते दानमर्द्धोदयमहातिथौ । सर्वान्कामानवाप्नोति कार्त्तिकेय ! न संशयः
गोचर्ममात्रभूमिम्वादद्यादर्द्धोदये नरः । तदभावेयथाशक्त्या यो ददाति वसुन्धराम्

स चक्रवर्ती भवति प्रसादान्मम षण्मुख ! ॥ ४६ ॥
अर्द्धोदये गां बहुदुग्धदोग्ध्रीं सवत्सवस्त्राञ्च यथोक्तदक्षिणाम् ।
अलङ्कृताय द्विजपुङ्गवाय दत्त्वेति लोकं मम पापमुक्तः ॥ ४७ ॥

अधोगतिगतानन्यान्वंश्यानुद्दिश्यदुर्द्धरान् । तिलपात्रादिदानाद्यैस्तानुद्धरति सङ्कटात्

अर्द्धोदये भूमि-सुवर्ण-वस्त्र-गो-धान्यदाता द्विजपुङ्गवाय ।
अजस्रत्वमिन्द्रत्वमनामयत्वं महीपतित्वं लभते मनुष्यः ॥ ४६ ॥
दानान्यन्यानि सर्वाणिदद्यादर्द्धोदयेनरः । पितॄनुद्दिश्य यद्दत्तं तदक्षयफलं लभेत् ॥
श्राद्धमर्द्धोदये कुर्यात् पिण्डदानञ्च तर्पणम् । गयायामेवयत्पुण्यंतत्पुण्यं लभते नरः ॥
ये केचित् सुकृतस्तस्य प्रेतभूताः स्वकर्मभिः ।
स्वर्गं ते यान्ति गाङ्गेय! तत्रोद्दिश्य प्रदानतः ॥ ५२ ॥
गङ्गासागरयोर्मध्येगङ्गायमुनयोस्तथा । देवनद्याञ्च गङ्गायां प्रभासे पुष्करे तथा ॥५३
वाराणस्याञ्च यत्पुण्यं पुण्यक्षेत्रे तथैव च ।
दानमर्द्धोदये दत्त्वा तत्पुण्यं लभते नरः ॥ ५४ ॥
अर्द्धोदये नरःस्नात्वा सर्वतीर्थफलं लभेत् । पुण्यतीर्थजलेस्नात्वानरोमोक्षपदं व्रजेत्
एरसाधारणः प्रोक्तः सर्वत्रयोग उत्तमः । विशेषन्ते प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टोऽहंत्वयाऽनघ
कस्याऽप्येतन्नकथितं पुरायद्वेदगोपितम् । अर्द्धोदयो यदायोगोभवेज्ज्ञात्वानरोत्तमः
आढ्यो वाऽपि दरिद्रो वा वित्तशाठ्यञ्च दीनताम् ।
सन्त्यज्य हर्षसंयुक्तो भक्ति श्रीपुरुषोत्तमे ॥ ५८ ॥
कृत्वाप्रयत्नतो गच्छेत्क्षेत्रं श्रीपुरुषोत्तमम् । यस्यसङ्कीर्त्तनादेव लीयते पापसञ्चयः ॥
अर्द्धोदयो महायोगस्तत्क्षेत्रं पावनोत्तमम् । दारुव्याजं परंब्रह्म त्रयं तत्रैव संस्थितम्
नाऽतः परतरोयोगो मयाज्ञातोऽस्तिवत्सक!। पुराकल्पेह्ययंयोगोयुगेतुर्येऽभवत्किल
तदापृथ्वीगतालोकादेवाःसंसिद्धयस्तथा । पातालस्थाश्चभुजगाःसर्व्वएकत्रसंस्थिताः
तद्वै क्षेत्रवरं जग्मुर्मुदा भक्त्या च संयुताः ॥ ६२ ॥
तत्र स्नात्वा जगन्नाथं दारुब्रह्म सनातनम् ।
दृष्ट्वा सम्पूजयामासुर्ददुर्दानानि शक्तितः ॥ ६३ ॥
तदेव सत्यः सञ्जातो युगधर्म्मस्वरूपधृक् । आयुषोऽन्तेतुतेसर्वे परंनिर्व्वाणमाप्नुयुः
यान्यान्कामान्प्रार्थयन्तेमर्त्यादेवाश्च तत्रवै । तांस्तान्कामानवाप्नुयुर्दुर्लभानपिवत्सक
एतत्त्रयाणां संयोगो दुर्लभो भुविपापिनाम् । यम्प्राप्यलभतेमुक्तिमात्मज्ञानंविनानरः

एतद्रहस्यं परमं पुत्र! ते कथितम्मया। दशावतारक्षेत्रस्यमाहात्म्यञ्चसुगोपितम् ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डा-
न्तर्गतोत्कलखण्डे जैमिनिऋषिसम्वादेऽर्द्धोदययोगमाहात्म्यकीर्त्तनंनाम
सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्रस्यदशावतारक्षेत्रनाम्नाप्रसिद्धिकारणवर्णनम्

स्कन्द उवाच

पुरुषोत्तमसञ्ज्ञैवक्षेत्रस्यकथिता त्वया। दशावतारसञ्ज्ञाऽस्यकथमेतद्वदाऽञ्जसा॥

श्रीमहादेव उवाच

अव्यक्तरूपिणावत्स! विष्णुनाप्रभविष्णुना। युगेयुगेऽवताराहिक्रियन्तेलोकपालनात्
धर्मसंस्थापनावत्स! नित्यं नारायणस्य वै। स्वीकृताऽतःप्रभवतिरक्षायैधर्मशाखिनः
संसारचक्रव्यूहस्य अचिन्त्यमहिमस्य वै। कोवेत्तिरूपंतद्विष्णोःपरमंपदमव्ययम् ॥
प्रधानपुरुषातीतं गुणसङ्गविवर्जितम्। निर्मलं निष्कलं विष्णोःस्वरूपंकोऽनुबुध्यते
एवम्भूतोऽपि भगवान् यदालोकसिसृक्षया। प्रकृतिं स्वामधिष्ठायसम्भवेद्वैयुगेयुगे
ब्रह्मादीनवतारान् सकरोतिवहुधाविभुः। आद्योऽवतारोवेधास्यद्वितीयोऽहंतु पुत्रक!
तृतीयस्तु सनन्दाद्या गौतमाद्याश्चतुर्थकः। इन्द्राद्याः पञ्चमस्तस्यत्रयस्त्रिंशच्च देवताः
किमत्रवहुनोक्तेन चण्डालान्तं प्रपञ्चकम्। तस्यैवविष्णोरूपाणिनान्यथात्वंविचारय
तत्राऽपि लोकरक्षार्थं येऽवताराः कृताः पुरा। मत्स्याद्यादिव्यरूपावैपुरातेकथितामया
अत्रक्षेत्रवरे वत्स! तांस्तान्प्रकुरुते विभुः। एतद्धिपरमंस्थानं दिव्यं भौमञ्च कथ्यते
मूलायतनमेतद्धि सृष्टिपालनसंहृतेः।
अत्राऽवतीर्य भगवान् प्रयात्यन्यत्र कार्यतः ॥ १२ ॥

निष्पाद्य कृत्यं पृथ्व्याहि पुनरत्रैव तिष्ठति । अतोदशावताराणांदर्शनाद्यैस्तुयत्फलम्
तत्फलंलभते मर्त्यो दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम् । दशावतारसञ्ज्ञाऽस्यकथितापुत्र! ते मया
अन्यच्च ते वदिष्यामि क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम् । पुरोदितंन केनाऽपिज्ञातंवायेनकेनचित्
रहस्यं परमं ह्येतल्लोकाऽनुग्रहणं महत् । अनायासेनोद्धरणं पापिनां पापकर्म्मणाम्॥
अनादावत्रसंसारे लोकानांमर्त्यवासिनाम् । पापानि सुबहून्येवपुण्यस्त्वल्पीय एवच
यावत्कृतं पापमेभिस्त्रिविधं विषयेप्सुभिः । तत्र मध्ये एकमेव निरयायोपकल्पते ॥
अन्यत्सर्वं कूटरूपं तिष्ठत्येव क्रमागतम् । नरकान्ते पुनर्योनिंकुत्सितां याति मानवः
मर्त्योवाऽपि यदा पुत्र! जायतेदुःखितोभवेत् । दरिद्रःकृपणोरोगीभवेद्धर्मपराङ्मुखः
पापानि च पुनः कुर्यादवशः पापकृन्नरः । पापात्माकुरुतेपापं पुण्यात्मा पुण्यमेव च
पुण्यात्मनोऽपि च भवेत्प्रसङ्गात्कलुषार्ज्जनम् ॥ २२ ॥
यावतोऽपि निमेषांस्तु पापमेभिर्नृभिःकृतम् ।
तावद्वर्षसहस्राणि निरये दुःखभागिनः ॥ २३ ॥
एवं संसारबन्धेऽस्मिन्प्रायशः पापकारिणः ।
क्षमन्ते न च पापानि प्रायश्चित्तेन शोधितुम् ॥ २४ ॥
दुःखासहोमर्त्यलोको नाऽलं पापस्यशोधने । देहत्यागं विनाशुद्धिर्नमहापातकेऽस्यवै
एवमालोक्य भगवान्कृपालुः पापकारिणः । इदंक्षेत्रंससर्जाऽऽदौस्वमूर्त्तिसदृशंविभुः
युगपत्सर्वपापानां महापातकसञ्ज्ञिनाम् । अपात्रमलिनीकारिपापानांमयि यो नरः
अनायासेन संशुद्धिमीहते पापकृत्तमः ॥ २८ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डा-
न्तर्गतोत्कलखण्डे जैमिनिऋषिसम्वादे पुरुषोत्तमक्षेत्रस्यदशावतारक्षेत्र
नाम्नाप्रसिद्धिकारणवर्णनंनामाऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

———

ऊनषष्टितमोऽध्यायः

पुरुषोत्तमप्रीतिसाधकव्रतविशेषवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

श्रद्धया भक्तियोगेन श्रुत्वा शास्त्रार्थनिश्चयम् ।
सङ्कल्प्य गच्छेत्तत् क्षेत्रं ध्यायन् श्रीपुरुषोत्तमम् ॥ १ ॥

दृष्ट्वाप्रणम्य विधिवत्पूजयित्वा जगद्गुरुम् । इतः प्रभृतिजातानांजन्मिनांसर्वकर्मसु
अनन्तेषु सञ्चितानां पापानां गणनायुषाम् । युगपत्क्षयकामोऽहंत्वत्प्रसादाज्जनार्दनम्
व्रतेनत्वामर्चयिष्ये तदाज्ञापय मे प्रभो !। सन्तरेयं यथा पापसमुद्रं परमेश्वर !॥ ४ ॥
अनुजानीहि मां देव! लोकाऽनुग्रहकारक!। इतिसम्प्रार्थ्य देवेशं सङ्कल्प्य व्रतराजकम्
गृह्णीयात्पुण्यमासे तु कार्त्तिके देवसेविते । सौरभेयपयःशालिभोजनः परमः शुचिः

कुर्यात् त्रिषवणस्नानमन्वहं सागराम्भसि ।
वेदत्रयस्य यत्सारं पुरुषप्रतिपादकम् ॥ ७ ॥

पुरुषार्थैकहेतुर्यत्प्रोक्तं वेदविदाम्वरैः । पुरुषाख्यं हि यत्सूक्तं सर्व्वकल्मषनाशनम् ॥
आरोढुमिच्छतो विष्णुलोकं निःश्रेयकारणम् । तज्जपेत्प्रत्यहंपुत्र! पुटितं मुक्तिहेतुना
निर्व्वाणकाङ्क्ष्यमन्त्रेण द्विश्चतुर्वर्णकेन च । यद्वर्णरूपेणहरिर्मुखेषु परिवर्तते ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणेषु सिद्धमष्टाक्षरात्मकम् । आद्यन्तयोरपिजपेत्सूक्तस्य प्रतिमन्त्रकम्
एवमष्टोत्तरशतं प्रत्यहं सूक्तमुत्तमम् । जपेत्तदन्ते च पुनः पुरुषाख्यं समर्च्चयेत् ॥
षोडशैरुपचारैश्च वित्तशाठ्यं न कारयेत् । प्राणपण्येन कुर्व्वीतपापी भगवदर्च्चनम्॥

अमृते लोककर्त्तारं कः पापशमने क्षमः ।
दयालुः सर्वलोकानां सुहृद् बन्धुः स एव हि ॥ १४ ॥

कर्त्ता हर्त्ता च गोप्ता च स एव परमेश्वरः । भावशुद्ध्या जगन्नाथंतंवै सम्पूजयेच्च यः

किमन्यकर्मभिस्तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ।

आनुषङ्गफलान्यस्य भौमस्वर्गादिकंसुखम् ॥ १९ ॥
तदग्रे वह्निं संस्कृत्य पायसेन यजेद्धरिम् । अष्टाक्षरेण मन्त्रेण अष्टोत्तरसहस्रकम् ॥
ततो दिनान्ते च पुनर्नित्यकर्मावसानतः । पुनः सम्पूजयेद्देवं सूक्तेन पुरुषस्य वै ॥
नानोपहारैः पूर्वोक्तैर्नैवेद्यं पायसं ददेत् । व्रतासनन्त्वेतदेव तुलसीदलमिश्रितम् ॥
मौनी च स्थण्डिले सुप्त्वा चिन्तयित्वा जगद्गुरुम् ।
भक्तिं कुर्याद्द्ब्राह्मणेषु वैष्णवेषु विशेषतः ॥ २० ॥
जङ्गमामूर्त्तयस्त्वेते विष्णोर्ब्रह्मस्वरूपिणः । न जातु मिथ्यावचनं परद्रोहादिकन्तथा
सर्व्वात्मना जगन्नाथेभक्तिंकुर्यात्सुनिर्म्मलाम् । यथाशक्त्यापूजयेच्चसीरिणाभद्रयासह
भक्तिलभ्यो हि भगवान् स सदा भक्तवत्सलः ।
समाराध्यः स देवो हि ममोत्पादयिता हि सः ॥ २३ ॥
ब्रह्मणोऽपिपिता वत्स! न ततःपरमस्ति वै । सएवभगवान् लोकेऽनेकःसम्पद्यतेहरिः
निर्गुणोऽपि गुणासक्तः स्वेच्छया सृष्टिकृत्प्रभुः ।
ब्रह्मा तत्प्रभवो वत्स! किं कथङ्कारमूढधीः ॥ २५ ॥
तमेवशरणं प्राप्य तपस्तेपे चिरं महत् । ब्रह्मरूपी जगन्नाथस्ततः साक्षाद्द बभूव ह ॥
तपसोऽन्ते जगादेदं चतुर्म्मुखमुदारधीः । किमर्थं मत्प्रसूतोऽपि मूढत्वं समुपागतः ॥
साष्टाङ्गपातं प्रणमन्निदं वेधाव्यजिज्ञपत् । कुतोजातः किमर्थंवकिंकुर्यामितिमेमहान्
संशयोऽभूज्जगन्नाथ! तदाज्ञापय मे प्रभो !॥ २८ ॥
ततो निःश्वासजं वेदमुपदिश्य जगत्प्रभुः । अन्तर्दधे च सहसा दृश्यमानोऽपिवेधसा
ततश्चतुर्मुखोवेदसारं स मनसोऽसृजत् । मयासृष्टमिदंसर्व्वं भूतग्रामं चतुर्व्विधम् ॥
नान्तं न मध्यं विद्मोनयस्याऽहञ्चपितामहः । आवयोरक्षकोनित्यमैश्वर्याप्यायकश्चसः
तदाज्ञया तस्य भयाज्जगदेतच्चराचरम् । समर्यादं यथाधर्म्मं वर्तते स्वयमेव हि ॥
प्रजापतिस्वरूपेण स हि धर्म्मप्रवर्त्तकः । कर्म्मणः फलदाता हि फलभोक्तासएव हि
तस्मिन्प्रसन्ने सर्वाणि जायन्ते सुखदानि वै ।
मदाद्या देवताः सर्वास्तस्यैवाऽऽज्ञावशे स्थिताः ॥ ३४ ॥

तेनाऽन्तर्यामिणाऽऽज्ञप्ताः फलदा नाऽत्र संशयः ॥ ३५ ॥

किमत्रबहुनोक्तेन विट्कीटोपि तदाज्ञया । वर्त्तते मलसङ्घाते मुच्यते च तदाज्ञया ॥

एतस्याऽव्यक्तरूपस्यदीनानुग्रहधर्म्मिणः । व्यक्ततापन्नमूर्त्तेस्तु रहस्यं स्थानमुत्तमम्

क्षेत्रं तत्परमं सर्व्वमुक्तिक्षेत्रोत्तमं ध्रुवम् ॥ ३७ ॥

आदिष्टं हि मयाऽप्येतत्पुराऽऽराधयितुं प्रभुम् । व्रतमेतत्सर्वपापदावानलसमं महत्

चीर्णं पुरा मयैतद्धि मत्तः स्वायम्भुवो मनुः ।

आचचार ततोऽगस्त्यश्चतुर्थोऽस्यादि नाऽस्ति वै ॥ ३६ ॥

इति श्री स्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डा-

न्तर्गतोत्कलखण्डे जैमिनिऋषिसम्वादे पुरुषोत्तमप्रीतिसाधकव्रतविशेष-

विधिकथनंनामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

षष्टितमोऽध्यायः

श्रीजगन्नाथप्रतिष्ठाविधिवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

त्वदनुग्रहायकथितं रहस्यं व्रतमुत्तमम् । प्रतिष्ठां मे कथयतः शृणु वत्साऽवधानतः॥

एवं मासं व्रती नीत्वा निरतो व्रतकर्म्मणि ।

कार्त्तिक्यां नित्यजापान्ते पूजयित्वा जगद्गुरुम् ॥ २ ॥

आचार्यं वरयेच्छ्रेष्ठं वैष्णवं शास्त्रवित्तमम् । मुद्राकुण्डलवासोभिश्चन्दनैःशुभमाल्यकैः

पूजयित्वा जगन्नाथरूपं तं हि विचिन्तयेत् ।

प्रार्थयेत्प्राञ्जलिर्भूत्वा भगवद्भक्तिभावितः ॥ ४ ॥

भूदेव! भगवद्विष्णोर्जङ्गमात्मन् महामते !। पापार्णवनिमग्नं मां निराश्रयमचेतसम्

नानादुःखपरिध्वस्तं त्राहि मां शरणागतम् ।

प्रतिष्ठाप्य व्रतन्त्वेतद् यथाविधि चिदाम्वरः ॥ ६ ॥

प्रसाद्य देवदेवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ।

ज्योतिःस्वरूपञ्चहरिं पवित्रैर्विधिचोदितैः । सर्वपापापहःस्वामीयथामे प्रीयतामिति
एवंव्रतप्रार्थितः स ब्राह्मणो ध्यानतत्परः । सुलक्षणे हस्तकुण्डेविधिवत्संस्कृते ततः

वैष्णवाग्निं समाधाय प्रतिष्ठाविधिचोदितम्

पूजयित्वा हव्यवाहरूपनारायणं प्रभुम् ॥ ६ ॥

उपचारैः षोडशभिः सूक्तेन पुरुषस्य च । पलाशसमिधावह्नौ सौरभेयहविस्तथा ॥
पायसस्य मधुहविर्मिश्रितस्य पृथक् पृथक् । पञ्चपञ्चसहस्राणितथाकृष्णातिलानपि
जुहुयात्प्रणवाद्यन्तं स्वाहान्तेन समुच्चरन् । अष्टाक्षरेण मन्त्रेण साक्षान्नारायणात्मना

ऋत्विग्भिः सहितो मन्त्री व्रतिभिर्ब्रह्मणा सह ।

वसोर्धारां पातयन्वै पुरुषाग्नेयवैष्णवैः ॥ १३ ॥

सूक्तैः सुचित्रवर्णान्तैर्यजमानः कृताञ्जलिः । स्तुवीत पुरुषाख्येन पुरुषं जातवेदसम्

देवदेव ! जगन्नाथ ! संसारार्णवतारक ! ।

त्राहि मां घोरदुर्व्वारपापपाथोधिपातितम् १५ ॥

त्वमेव मां समुद्धर्तुमीशिषेदीनतारक !। अप्रमेय कृपाम्भोधे! मां विधेहिवृषात्मकम्

स्तुत्वेत्थं प्रज्वलन्तञ्च नारायणमनामयम् ।

सप्त प्रदक्षिणीकृत्य दण्डवत्प्रणमेत् क्षितौ ॥ १७ ॥

पुष्पाञ्जलीन् क्षिपेद्वह्नौ षोडशेन तु षोडश । सर्वपापविमुक्तंहि तदात्मानंविचिन्तयेत
पूर्णाहुतिं ततोदत्त्वा शेषकर्म्मसमापयेत् । पुराणं वैष्णवंविष्णोर्वाचयेदग्रतः शुचिः
बृहत्साम वामदेव्यं सामगाथान्तरं तथा । वैराजं सामगायेत त्रिसुपर्णं मथूत्तमम्

त्रिणाचिकेतञ्च तथा गायतोदान्तपुष्कलम् ॥ २१ ॥

अन्यैश्च स्तुतिगीताद्यैः श्रुतोपनिषदादिभिः ।

प्रीणयन् जगतामीशं नयेद्रात्रिं मुदान्वितः ॥ २२ ॥

ततः प्रभाते ते सर्व्वे यजमानपुरःसराः । आप्लाव्यत्तीर्थराजाम्भोगत्वाचवटमूलकम्

तं पूजयित्वा भगवद्रूपं कल्पवद् सुत !॥ २३ ॥

वैनतेयंपूजयित्वा गच्छेद् भगवदन्तिकम् । सर्वपापतमोऽर्केण सूक्तेन पुरुषस्य वै

पूजयित्वा विधिवद्दारुब्रह्मस्वरूपिणम् । प्रार्थये प्राञ्जलिर्भूत्वा यतमानः शुचिव्रतः

देव! त्वदङ्घ्रिनलिने पतितं पाहि मां प्रभो !।

तस्मिन् त्रिपापपाथोधौ निमग्नं हतचेतनम् ॥ २६ ॥

उद्धरस्व जगन्नाथ ! दीनोद्धरणतत्पर !। त्वत्प्रसादाद्व्रतंनाथसुफलं मेऽस्त्वसंशयम्

यथाऽहंनिर्म्मलो देव! त्वदङ्घ्रिनलिनाऽन्तिके ! ।

विशोको निवसामीश ! तत्कुरुष्व जगत्प्रभो ! ॥ २८ ॥

ततः प्रदक्षिणां कुर्याद्विष्णोर्नामसहस्रकम् । जपन्सूक्तं पौरुषञ्च प्रणमेद्देवमग्रतः ॥

हिरण्यगर्भेति जपन्द्वादशाक्षरगर्भितम् ।

ततो गृहं समागम्य वह्निकुण्डसमीपतः ॥ ३० ॥

पुनः प्रज्वाल्यदेवेशं पूजयेज्जातवेदसि । पूर्ववदुपचारैस्तु प्रणम्यच विसर्ज्जयेत् ॥३१

आचार्याय ततो दद्याद्दक्षिणां गां पयस्विनीम् ।

सवत्सां लक्षणोपेतां दक्षिणां स्वर्णभूषणैः ॥ ३२ ॥

वासोयुग्मं सहाऽर्घ्यश्चधान्यं कनकमेवच । मधुपूर्णं कांस्यपात्रंताम्रपात्रंघृतान्वितम्

तैलपात्रंपयः पात्रंदधिपात्रञ्चकांस्यतः । ब्राह्मणेभ्यस्ततोदद्याद्यथाशक्तिसदक्षिणम्

युग्मं दद्यात्षोडशभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च भक्तितः ।

भोजयेत्पायसैर्विप्रान्पूजितान्गन्धमाल्यकैः ॥ ३५ ॥

तेभ्योऽपि दद्याद्विधिवद्यथाशक्त्या च दक्षिणाम् ।

पूज्येष्टदेवताः सम्यग्वन्दयेद्भगवद्धिया ॥ ३६ ॥

दीनानाथविपन्नेभ्यो दद्यादन्नं दयान्वितः । स्वयं दिनान्तेभुञ्जीत इष्टैःशिष्टैश्चबन्धुभिः

एवं व्रतं समाख्यातं पुत्र! विशुध्यति शोभितम् ।

नाऽतः परतरं किञ्चित्सर्व्वपापापनोदनम् ॥ ३८ ॥

प्रायश्चित्तं व्रतस्याऽपि सर्वपापापनोदकम् ।

न चोद्यं (चोदि तं) क्वाऽपि शास्त्रे तदत्र परिनिष्ठितम् ॥ ३६ ॥
अनादिजन्मसम्भूतं पापार्णवमहातपम् । ततुं नान्यत्पुण्यमुखाऽस्ति व्रतानामममकर्म वै
अनेन विधिना कुर्याद् व्रतमेतत्सुदुर्लभम् ।
यथा यथा शक्तिरत्र सिद्धिस्तस्य तथा तथा ॥ ४१ ॥

*मुनय ऊचुः

भगवञ्जैमिने सर्वं वेदवेदाङ्गपारग !। त्वदनुग्रहतोऽस्माभिर्माहात्म्यं जगदीशितुः ॥
क्षेत्रराजस्य तस्यैव यात्राणां चैव सर्वशः । भगवद्भोजनोच्छिष्टप्राशनादिफलं तथा
इन्द्रद्युम्नस्य राज्ञो वै वृत्तान्तमतिदुर्लभम् । नीलमाधवरूपं तु दारुब्रह्मप्रकाशनम् ॥
श्रुतं त्वद्वदनाम्भोजाद्गलितंतद्यथाविधि ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तोहि वदताम्वर ! ॥४५
सर्वं विस्तरतो ब्रह्मन्वयं सर्वे मुदान्विताः । पुराणश्रवणस्यैव यदुक्तं फलमेव तत् ॥
को वा तस्य विधिश्चैव केन वा स्यात्तु साङ्गकम् ।
अस्मासु चेदनुक्रोशो यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ४७ ॥

जैमिनिरुवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठाः! यत्पृष्टं परया मुदा । तत्रमे प्रीतिरतुलाजाता रोमाञ्चकारिणी
तद्वः सर्वं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं सावधानतः । पुराणश्रवणारम्भे यथाविभवमात्मनः
आदौ सङ्कल्प्य विधिवद् ब्राह्मणं शुद्धवंशजम् ।
अव्यङ्गावयवं शान्तं स्वशाखं स्वपुरोधसम् ॥ ५० ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं भूषणैरतिशोभनैः । वस्त्रचन्दनमाल्याद्यैर्वृणुयात्पाठसंश्रुतौ ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ततःसम्प्रार्थयेद् द्विजम् ।

* इतः पर्यन्तःपाठः ,वङ्गवासीमुद्रितपुस्तकेऽधिक उपलभ्यते ।
मोहमयी (मुम्बई) लक्ष्मणपुर (लखनऊ) मुद्रितपुस्तकयोः मुनयऊचुरित्यारभ्य पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्यसमाप्तिपर्यन्तः पाठोविशिष्टाध्याये सन्निवेशितः वङ्गवासीमुद्रितपुस्तके त्वस्मिन्नेवाध्याये प्रचलति खण्डसमाप्तिपर्यन्तम् ।

त्वं विष्णुर्विष्णुरेव त्वं न तु भेदः कदाचन ॥ ५२ ॥

निर्विघ्नं मे भवत्वेव त्वत्प्रसादात्प्रसीदच । ततो वृतं ब्राह्मणञ्च बहुमूल्यासने शुभे॥

वासयित्वा च तस्यैवगलेमालां विनिक्षिपेत् । मस्तके पुष्पगर्भञ्चचन्दनैरनुलेपयेत्

यस्मात्तस्मिंश्च समये विप्रो व्याससमोमतः ।

तेनैव ब्राह्मणेनैव पुस्तके विष्णुरूपके ॥ ५५ ॥

कारयेद्व्यासपूजाञ्च श्रीखण्डागुरुपुष्पकैः । नानोपचारै रुचिरैर्भक्ष्यभोज्यादिकैरपि

भक्त्या चासनदानादिविधिः कार्यो दिने दिने ।

साम्प्रतं कथयाम्येवं श्रूयतां श्रोतृलक्षणम् ॥ ५७ ॥

गतानुगतिकानाञ्चनिवासार्थंतथाद्विजाः । आसनानि यथायोग्यं रचयित्वास्वयंतथा

शुभासनान्तरस्थो हि भवेदुत्कण्ठमानसः । अथवा संस्कृते देशे सर्वैःसह वसेद्भुवि

व्यासस्याऽग्रे निवसतिरासनेनोच्च एवच । कृतस्नानो मुदा युक्तो धारयञ्छुक्लवाससी

आचान्तः शङ्खचक्रादितिलकान्वितविग्रहः ।

मनसा भावयेद्विष्णुं विश्वासं कारयेद्भृशम् ॥ ६१ ॥

पुराणे ब्राह्मणे चैव देवे च मन्त्रकर्मणि । तीर्थे वृद्धस्य वचने विश्वासः फलदायकः

अतो मुनिवराःसर्वं पुण्यंविश्वासकारणम् । पाषण्डादिकसम्भाषंवृथालापप्रयत्नतः

पुराणश्रवणे काले सर्वचिन्ताञ्च वर्जयेत् ।

अनेन विधिना विप्राः! प्रत्यहं शृणुयान्मुदा ॥ ६४ ॥

ततः पाठे समाप्ते च करतालादिकैर्मुहुः । जयकृष्ण! जगन्नाथ! हर इत्यादिनामभिः

विस्तारयेद्यथाकाशे श्रूयते शब्द एव सः । एवञ्च प्रत्यहं कुर्यात्प्रीतये मुरवैरिणः

ततो ग्रन्थसमाप्तौच विष्णुप्रीणनतत्परः । विशेषाद्वस्त्रमाल्यादिचन्दनैर्भूषणैस्तथा ॥

भूषयेत्परया भक्त्या विप्रं व्याससमं द्विजाः !॥ ६७ ॥

आत्मशक्त्याप्रदद्याच्चदक्षिणाम्वैयथाविधि । ये ये प्रदद्युर्यद्यच्च मत्तस्तच्छृणुताऽधुना

राजानः करिणो दद्युः साऽलङ्कारान्सुलक्षणान् ।

क्षत्रिया एवमेवञ्च ते वै राजसमा मताः ॥ ६९ ॥

ब्राह्मणाः पुस्तकांश्चैवविष्णोरर्चाकरंडिकाः । कनकंरजतश्चैव धान्यं वस्त्रंस्वभक्तितः
विशश्च रत्नभूषाढ्यान्सिन्धुदेशोद्भवानपि ।
गाश्च लक्षणसंयुक्ताः सवत्साश्च पयस्विनीः ॥ ७१ ॥
अन्यच्च कनकाद्यश्च त्यजेर्युर्धर्मतत्परा । शूद्राः प्रदद्यः परया मुदा संयुतमानसाः ॥
वासांसि च सुवर्णं च धान्यं रत्नानि गास्तथा ।
नानाऽलङ्कारयुक्ताश्च घटोध्नीर्वालगर्भिणीः ॥ ७३ ॥
एवं वै दक्षिणां दद्याद्येनसन्तुष्यतेगुरुः । आत्मनःशक्तितोविप्राविचशाठ्यं नकारयेत्
शान्तिकं पौष्टिकं चैव व्रतोद्वाहादिकर्मच । मोक्षस्यसाधकं कर्म पुराणश्रवणं तथा
यज्ञादिकञ्च दानञ्च व्रतं नानाविधं तथा । यदिचेद्दक्षिणाहीनं तदा भवतिनिष्फलम्
असुराः कर्मणस्तस्यहरन्तिफलमेवतत् । यथास्त्रीणांचलावण्यंभर्तृस्नेहविवर्जितम्
युद्धात्पलायितानाञ्चपृष्ठंकृत्वाधनुष्मताम् । विनाधावनमश्वानां दुष्टत्वंहियथाद्विजाः
मूकत्वेनैव पाण्डित्यं सर्वशास्त्रविपश्चिताम् ।
हीनं दक्षिणया यद्यत्कर्म तद्वच्च निष्फलम् ॥ ७६ ॥
दानेन क्षीयतेयस्माद्दुरितानांकदम्बकम् । दक्षिणेतितथा विप्रागीयतेशास्त्रवेदिभिः
ततो विप्रान्भोजयेद्वै यथाशक्तिप्रकल्पितैः । कर्पूरेण च खण्डेन सर्पिषा पायसैर्युतैः
षड्विधैरन्नपानाद्यैः सुस्वादैरमृतोपमैः ।
तेभ्योऽपि स्वर्णवस्त्रादि यथाशक्त्या प्रदापयेत् ॥ ८२ ॥
एतद्वः कथितं सर्वं पुराणश्रवणस्यच । साङ्गोपाङ्गविधिश्चैव येनस्यात्सफलंत्विदम्
इदानीं भो मुनिश्रेष्ठाः! किमन्यज्ज्ञातुमिच्छथ ।

मुनय ऊचुः

अहोऽस्माकंमहाभाग्यंयत्पापौघविनाशनम् । पुराणश्रवणस्यैव फलमस्माभिरेव च
साङ्गोपाङ्गविधानञ्च श्रुतं त्वन्मुखपङ्कजात् ।
धन्याः स्म कृतपुण्याः स्म संसारे विगतज्वराः ॥ ८५ ॥
इदानामात्मशक्त्या वै दीयतेभवते मुने । दक्षिणाफलसम्प्राप्तौ प्रसन्नस्त्वंगृहाणच

इत्युक्तवन्तो मुनयो ह्यकिञ्चनाः समित्कुशं पुष्पफलाक्षतादिकम् ।
क्लृप्त्वा च तस्मै मुनयः सुमुक्ताः क्षेत्रोत्तमं जग्मुरतिप्रहर्षिताः ॥ ८७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्येजैमिनिऋषिसम्वादे
पुराणश्रवणसत्फलादिवर्णनंनामषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

समाप्तं श्रीपुरुषोत्तम (जगन्नाथ) क्षेत्रमाहात्म्यम् ।

——०:*:०——

॥ श्रीवद्रीनाथायनमः ॥

श्रीबद्रिकाश्रममाहात्म्यारम्भः

प्रथमोऽध्यायः

वदरिकाश्रमस्यसर्वतीर्थाधिकत्ववर्णनम्

शौनक उवाच

सूतसूतमहाभाग! सर्वधर्मविदाम्वर !। सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ! पुराणे परिनिष्ठित !॥ १॥
व्यासःसत्यवतीपुत्रोभगवान्विष्णुरव्ययः। तस्ययत्प्रियशिष्यस्त्वंत्वत्तोवेत्तानकश्चन
प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्वधर्मवहिष्कृते । जना वै दुष्टकर्माणः सर्वधर्मविवर्जिताः ॥
क्षुद्रायुषः क्षुद्रप्राणवलवीर्यतपः क्रियाः । अधर्मनिरताः सर्वे वेदशास्त्रविवर्जिताः ॥
तीर्थाटनतपोदानहरिभक्तिविवर्जिताः । कथमेषामल्पकानामुद्धारोऽल्पप्रयत्नतः ॥ ५ ॥
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणामुत्तमं तथा । मुमुक्षूणां कुतः सिद्धिःकुत्रवाऋषिसञ्चयः
कुत्रवाऽल्पप्रयत्नेन तपोमन्त्राश्च सिद्धिदाः । कुत्र वा वसतिश्रीमाञ्जगतामीश्वरेश्वरः

भक्तानामनुरक्तानामनुग्रहकृपालयः ॥ ७ ॥
एतदन्यच्च सर्वं मे परार्थैकप्रयोजनम् । ब्रूहि भद्राय लोकानामनुग्रहविचक्षण !॥ ८ ॥

सूत उवाच

साधुसाधुमहाभाग! भवान्परहिते रतः । हरिभक्तिकृतासक्तिप्रक्षालितमनोमलः ॥९॥
अथ मे देवकीपुत्रो हृत्पद्ममधिरोहति । प्रसङ्गात्तव विप्रर्षे! दुर्ल्लभः साधुसङ्गमः॥१०
हरति दुष्कृतसञ्चयमुत्तमां गतिमलं तनुते तनुमानिनाम् ।
अधिकपुण्यवशादवशात्मनां जगति दुर्लभसाधुसमागमः ॥ ११ ॥
हरति हृदयबन्धं कर्मपाशार्दितानां वितरति पदमुच्चैरल्पजल्पैकभाजाम् ।
जननमरणकर्मश्रान्तविश्रान्तिहेतुस्त्रिजगति मनुजानां दुर्ल्लभः सत्प्रसङ्गः॥

सूत उवाच

अयंप्रश्नःपुरासाधो!स्कन्देनाऽकारिसर्वतः । कैलाशशिखरेरम्यऋषीणांपरिशृण्वताम्
पुरतो गिरिजाभर्तुः कर्तुं निःश्रेयसं सताम् ॥ १३ ॥

स्कन्द उवाच

भगवन्सर्वलोकानांकर्त्ता हर्त्ता पिता गुरुः । क्षेमाय सर्वजन्तूनां तपसेकृतनिश्चयः ॥
कलिकाले ह्यनुप्राप्ते वेदशास्त्रविवर्जिते । कुत्र वा वसतिश्रीमान्भगवान्सात्वतांपतिः
क्षेत्राणि कानि पुण्यानि तीर्थानिसरितस्तथा । केनवाप्राप्यतेसाक्षाद्भगवान्मधुसूदनः
श्रद्दधानाय भगवन्कृपया वद मे पितः !॥ १६ ॥

श्रीमहादेव उवाच

बहूनि सन्ति तीर्थाणिक्षेत्राणि च षडानन !। हरिवासनिवासैकपराणि परमार्थिनाम्
काम्यानि कानिचित्सन्ति कानिचिन्मुक्तिदान्यपि ।
इहाऽमुत्रार्थदान्येव बहुपुण्यप्रदानि वै ॥ १८ ॥
गङ्गा गोदावरीरेवातपतीयमुनासरित् । क्षिप्रा सरस्वतीपुण्या गौतमीकौशिकीतथा
कावेरी ताम्रपर्णी च चन्द्रभागा महेन्द्रजा । चित्रोत्पला वेत्रवती सरयूःपुण्यवाहिनी
चर्मण्वती शतद्रूश्च पयस्विन्यस्त्रिसम्भवा ।

गण्डिका वाहुदा सर्वाः पुण्याः सिन्धुः सरस्वती ॥ २० ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदाश्चैताः सेव्यमाना मुहुर्मुहुः ।
अयोध्याद्वारिका काशी मथुराऽवन्तिका तथा ॥ २१ ॥
कुरुक्षेत्रं रामतीर्थं काञ्ची च पुरुषोत्तमम् । पुष्करं दर्दुरं क्षेत्रं वाराहं विधिनिर्मितम् ॥
वदर्य्याख्यं महापुण्यं क्षेत्रं सर्वार्थसाधनम् ॥ २३ ॥
अयोध्यां विधिवद्दृष्ट्वा पुरीं मुक्त्यैकसाधनीम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्ताः प्रयान्ति हरिमन्दिरम् ॥ २४ ॥
विविधविष्णुनिषेवणपूर्वकाचरितपूजननर्तनकीर्तनाः ।
गृहमपास्य हरेरनुचिन्तनाज्जितगृहार्जितमृत्युपराक्रमाः ॥ २५ ॥
स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामालयं शुचिः । न तस्यकृत्यंपश्यामिकृतकृत्योभवेद्यतः
द्वारिकायां हरिःसाक्षात्स्वालयं नैव मुञ्चति । अद्यापिभवनंकैश्चित्पुण्यवद्भिःप्रदृश्यते
गोमत्यां तु नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कृष्ण मुखाम्बुजम् ।
मुक्तिःप्रजायते पुंसो विना साङ्ख्यं षडानन !॥ २८ ॥
असीवरुणयोर्मध्ये पञ्चक्रोश्यां महाफलम् । अमरा मृत्युमिच्छन्तिकाकथाइतरेजनाः
मणिकर्ण्यां ज्ञानवाप्यांविष्णुपादोदकेतथा । ह्रदे पञ्चनदेस्नात्वानमातुः स्तनपोभवेत्
प्रसङ्गेनापि विश्वेशं दृष्ट्वा काश्यांषडानन !। मुक्तिःप्रजायतेपुंसांजन्ममृत्युविवर्जिता
वहुना किमिहोक्तेन नैतत्क्षेत्रसमं क्वचित् । तपोपवासनिरतो मथुरायां षडानन !
जन्मस्थानं समासाद्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३२ ॥
विश्रान्तितीर्थे विधिवत्स्नात्वा कृत्वा तिलोदकम् ।
पितॄनुद्धृत्य नरकाद्विष्णुलोकं प्रगच्छति ॥ ३३ ॥
यदि कुर्यात्प्रमादेनपातकं तत्र मानवः । विश्रान्तेस्नानमासाद्यभस्मीभवतितत्क्षणात्
अवन्त्यां विधिवत्स्नात्वाशिप्रायांमाधवेनराः । पिशाचत्वंनपश्यन्तिजन्मातरशतैरपि
कोटितीर्थे नरःस्नात्वाभोजयित्वाद्विजोत्तमान् । महाकालं हरंदृष्ट्वासर्वपापैःप्रमुच्यते
मुक्तिक्षेत्रमिदं साक्षान्मम लोकैकसाधनम् । दानाद्दरिद्रताहानिरिहलोके परत्र च ॥

कुरुक्षेत्रे रामतीर्थे स्वर्णं दत्त्वा स्वशक्तितः ।
सूर्योपरागे विधिवत्स नरो मुक्तिभाग्भवेत् ॥ ३८ ॥
ये तत्र प्रतिगृह्णन्ति नरा लोभवशङ्गताः । पुरुषत्वं न तेषां वै कल्पकोटिशतैरपि ॥
हरिक्षेत्रे हरिं दृष्ट्वा स्नात्वा पादोदके जनः । सर्वपापविनिर्मुक्तो हरिणा सह मोदते ॥
खगगणा विविधा निवसन्त्यहो ऋषिगणाः फलमूलदलाशनाः ।
पवनसंयमनक्रमनिर्जितेन्द्रियपराक्रमणा मुनयस्त्विह ॥ ४१ ॥
विष्णुकाञ्च्यां हरिः साक्षाच्छिवकाञ्च्यां शिवः स्वयम् ।
अभेदादुभयोर्भक्त्या मुक्तिः करतले स्थिता ।
विभेदजननात्पुंसां जायते कुत्सिता गतिः ॥ ४२ ॥
सकृद्दृष्ट्वा जगन्नाथं मार्कण्डेयह्रदे प्लुतः । विनाज्ञानेन योगेन न मातुः स्तनपो भवेत्
रोहिण्यामुदधौ स्नात्वा इन्द्रद्युम्नह्रदे तथा । भुक्त्वा निवेदितं विष्णोर्वैकुण्ठे वसतिं लभेत्
दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं शङ्खोपरि स्थितम् । चतुर्भुजत्वमायान्ति कीटा अपि न संशयः
कार्त्तिक्यां पुष्करे स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा सदक्षिणम् ।
भोजयित्वा द्विजान्भक्त्या ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४६ ॥
सकृत्स्नात्वा ह्रदे तस्मिन्यूपं दृष्ट्वा समाहितः । सर्वपापविनिर्मुक्तो जायते द्विजसत्तमः
षष्टिवर्षसहस्राणि योगाभ्यासेन यत्फलम् ।
सौकरे विधिवत्स्नात्वा पूजयित्वा हरिं शुचिः ॥ ४८ ॥
सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति । तीर्थराजं महापुण्यं सर्वतीर्थनिषेवितम् ॥
कामिनां सर्वजन्तूनामीप्सितं कर्मभिर्भवेत् ।
वेण्यां स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कृत्वा माधवदर्शनम् ।
भुक्त्वा पुण्यवतां भोगानन्ते माधवतां व्रजेत् ॥ ५० ॥
माघे मासि नरः स्नात्वा त्रिवेण्यां भक्तिभावितः ।
बदरीकीर्तनात्पुण्यं तत्समाप्नोति मानवः ॥ ५१ ॥
दशाश्वमेधिकं तीर्थं दशयज्ञफलप्रदम् । संक्षेपात्कथितं पुत्र! किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

स्कन्द उवाच

बदर्य्याख्यं हरेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । क्षेत्रस्य स्मरणादेव महापातकिनो नराः
विमुक्तकिल्बिषाः सद्यो मरणान्मुक्तिभागिनः ॥ ५३ ॥
अन्यतीर्थे कृतं येन तपः परमदारुणम् । तत्समा बदरीयात्रा मनसाऽपि प्रजायते ॥
बहूनि सन्ति तीर्थानि दिवि भूमौ रसातले । बदरीसदृशं तीर्थं न भूतं नभविष्यति
अश्वमेधसहस्राणित्रायुभोज्येचयत्फलम् । क्षेत्रान्तरे विशालायांतत्फलंक्षणमात्रतः
कृते मुक्तिप्रदा प्रोक्ता त्रेतायां योगसिद्धिदा ।
विशाला द्वापरे प्रोक्ता कलौ बदरिकाश्रमः ॥ ५७ ॥
स्थूलसूक्ष्मशरीरंतुजीवस्य वसतिस्थलम् । तद्विनाशयति ज्ञानाद्विशालातेनकथ्यते
अमृतं स्रवते या हि बदरीतरुयोगतः । बदरी कथ्यते प्राज्ञैर्ऋषीणां यत्र सञ्चयः ॥
त्यजेत्सर्वाणि तीर्थानि काले काले युगे युगे ।
बदरीं भगवान्विष्णुर्न मुञ्चति कदाचन ॥ ६० ॥
सर्वतीर्थावगाहेन तपोयोगसमाधितः । तत्फलं प्राप्यते सम्यग्बदरीदर्शनाद् गुह!॥६१
षष्टिवर्षसहस्राणि योगाभ्यासेन यत्फलम् । वाराणस्यां दिनैकेन तत्फलंबदरींगतौ
तीर्थानां वसतिर्यत्र देवानां वसतिस्तथा । ऋषीणां वसतिर्यत्र विशालातेनकथ्यते

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
बदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसम्वादे बदरिकाश्रमस्य
सर्वतीर्थाधिकत्वर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

अग्निकृतभगवत्स्तववर्णनम्

स्कन्द उवाच

कथमेतत्समुत्पन्नंकैर्वा क्षेत्रं निषेवितम् । कोवातस्याऽप्यधीशःस्यादेतद्विस्तरतोवद

शिव उवाच

अनादिसिद्धमेतत्तु यथा वेदा हरेस्तनूः । अधिष्ठाता हरिः साक्षान्नारदाद्यैर्निषेवितम्
पुराकृतयुगस्याऽऽदौ स्वीयां दुहितरंविधिः । रूपयौवनसम्पन्नांसतांयभितुमुद्यतः
तं दृष्ट्वा तादृशं रोषाच्छिरः खड्गेन पञ्चधा । चिच्छेदाऽहं कपालं तद्ब्रह्महत्यासमुद्यते
हस्तेकृत्वा जगामाऽऽशुतत्रतीर्थानिसेवितुम् । दिवि भूमौ चपातालेतपश्चरणपूर्वकम्
न गता ब्रह्महत्या मे कपालं तादृशं करे । तदा वैकुण्ठमगमं द्रष्टुं लक्ष्मीपतिं हरिम्
विनयावनतो भूत्वा नमस्कृत्य पुनः पुनः । सर्वमाख्यातवांस्तस्मैव्यसनं करुणात्मने
तस्योपदिष्टमादाय बदरीं समुपागतः । तत्क्षणाद्ब्रह्महत्या मे वेपमाना मुहुर्मुहुः ॥८॥
अन्तर्हितं कपालं तत्कराद्विगलितं मम । ततः प्रभृति तत्क्षेत्रं पार्वत्या सह सादरम्॥

तिष्ठामि तपआस्थाय ऋषीणां प्रीतिमावहन् ।
वाराणस्यां यथा प्रीतिः श्रीशैलशिखरे तथा ॥ १० ॥
कैलाशे शिवया सार्द्धं ततोऽनन्तगुणाधिका ।
अन्यत्रम रणान्मुक्तिः स्वधर्मविधिपूर्वकात् ॥ ११ ॥
बदरीदर्शनादेव मुक्तिः पुंसां करे स्थिता ।
हरेश्चरणसान्निध्यं यत्र वैश्वानरः स्वयम् ॥ १२ ॥

तत्रकेदाररूपेण मम लिङ्गं प्रतिष्ठितम् । केदारदर्शनात्स्पर्शादर्चनाद्भक्तिभावतः ॥
कोटिजन्मकृतं पापं भस्मीभवति तत्क्षणात् । कलामात्रेण तिष्ठामितत्रक्षेत्रेविशेषतः

कला पञ्चदशैवाऽत्र मूर्तिमध्ये ह्यवस्थितम् ॥ १५ ॥

जितकृतान्तभयाः शिवयोगिनः कृतमृगाजिनकृत्तिसुवाससः ।
वरविभूतिजटान्वितभूषणाः स्वयमुपासत एव जटाधरम् ॥ १६ ॥
फलदलाम्बुसमीरणतोषिताः शिवमनोजितमृत्युपरिश्रमाः ।
गिरिवरस्थितनिर्जितमानसाः प्रसरनिर्म्मलबुद्धिमहोदयाः ॥ १७ ॥
कमलकोमलकान्तिमुखाम्बुजाः शिवकृपाजितनिर्भरवैरिणः ।
करधृताञ्जलिमौलिशिवेक्षणाः शिवमुपासत एव निशामुखे ॥ १८
करधृतजपमालाः शान्तिसन्तोषभाजः कृतनतिपरनित्यप्रार्थनाश्चन्द्रमौलौ
हरचरणसरोजध्यानविज्ञानमूर्तिव्यथितजनमनोजाः सर्वभावान्वितान्तम् ॥

वाराणस्यां मृतानां च तारकं ब्रह्मसञ्ज्ञकम् । जनानां पूजनात्तत्र ममलिङ्गस्य जायते
वह्नितीर्थं परिभ्राजद्भगवच्चरणान्तिके । केदाराख्यं महालिङ्गं दृष्ट्वा नो जन्मभाग्भवेत्

स्कन्द उवाच

कथं वैश्वानरः श्रीमान्सर्वलोकैककारणम् । वदरीमनुसन्तस्थौ तन्मे वद महामते !॥

शिव उवाच

पुरा समाजः समभूदृषीणामूर्ध्वरेतसाम् । गङ्गा भगवती यत्र कालिन्द्या सह सङ्गता
दशाश्वमेधिकं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । बभूव तत्र भगवान्हुतभुक्प्रश्रयानतः
ऋषीणामग्रतः स्थित्वा प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥ २४ ॥

वैश्वानर उवाच

दृष्ट्वा दृष्टुं कदृग्ज्ञाना भवन्तो ब्रह्मवित्तमाः । दीनार्थे करुणापूर्णा हृदयार्द्रा दयालवः ॥
सर्वदुर्भक्षणोद्भूतपातकालिप्तचेतसः ।
कथं स्यान्निरयान्मुक्तिर्मम ब्रह्मविदुत्तमाः !॥ २६ ॥

सर्वेषामृषिवर्य्याणामाजगाम मुनीश्वरः । गङ्गाऽम्भसि समाप्लुत्यवाक्यंचेदमुवाच ह

व्यास उवाच

अस्त्येकः परमोपायो भवतः पापनिष्कृतौ । सर्वभक्षाख्यदोषस्य वदरीं शरणं श्रय
यत्राऽऽस्ते भगवान्साक्षाद्देवदेवो जनार्द्दनः । भक्तानामप्यभक्तानामग्रहा मधुसूदनः

तत्र गङ्गाऽम्भसि स्नात्वाकृत्वा प्रदक्षिणांहरेः । दण्डवत्प्रणिपातेनसर्वपापक्षयो भवेत्
ततोव्यासमुखाच्छ्रुत्वा ऋषीणामनुवादतः । उत्तराभिमुखो वह्निर्गन्धमादनमाययौ
ततो बदरिकां प्राप्य स्नात्वा गङ्गाम्भसि स्वयम् ।
नारायणश्रमं गत्वा नत्वा प्रोवाच भक्तिमान् ॥ ३२ ॥

अग्निरुवाच

विशुद्धविज्ञानघनं पुराणं सनातनं विश्वसृजां पतिं गुरुम् ।
अनेकमेकं जगदेकनाथं नमाम्यनन्ताश्रितशुद्धबुद्धिम् ॥ ३३ ॥
मायामयीं शक्तिमुपेत्य विश्वकर्त्तारमुद्दिश्य रजोपयुक्तम् ।
सत्त्वेन चाऽस्य स्थितिहेतुमुग्रमथो तमोभिर्ग्रसितारमीडे ॥ ३४ ॥
अविद्यया विश्वविमोहिताऽऽत्मा विद्यैकरूपं विततं त्रिलोक्याम् ।
विद्याश्रितत्वात्सकलज्ञमीशं त्वविद्यया जीवमहं प्रपद्ये ॥ ३५ ॥
भक्तेच्छयाऽऽविष्कृतदेहयोगमाभोगभोगार्पितयोगयोगम् ।
कौशेयपीताम्बरजुष्टशक्तिं विचित्रशक्त्यष्टमयेष्टमीडे ॥ ३६ ॥
अथ प्रसन्नो भगवांस्तुतः सर्वहृदिस्थितः ।
प्रोवाच मधुरं वाक्यं पावकं पावनार्थिनम् ॥ ३७ ॥

श्रीनारायण उवाच

वरं वरय भद्रन्ते वरदोऽहमुपागतः । स्तवेनाऽनेन तुष्टोऽस्मि विनयेन तवाऽनघ !॥

अग्निरुवाच

ज्ञातं भगवता सर्वं यदर्थमहमागतः । तथाऽपि कथयाम्येतदीश्वराज्ञानुपालनम् ॥ ३६
सर्वभक्षो भवाम्येव निष्कृतिस्तु कथम्भवेत् । अत्यन्तभयसम्पत्ति रेतस्माज्जायतेमम

श्रीनारायण उवाच

क्षेत्रदर्शनमात्रेण प्राणिनां नास्तिपातकम् । मत्प्रसादात्पातकंतुत्वयिमाऽस्तुकदाचन
ततः प्रभृति भूतात्मा पावकः सर्वतो भृशम् ।
कल्याऽवस्थितश्चाऽत्र सर्वदोषविवर्जितः ॥ ४२ ॥

य एतत्प्रातरुत्थायश्रृणोति श्रावयेच्छुचिः । अग्नितीर्थकृतस्नानंफलस्प्राप्नोत्यसंशयम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीबद्रिकाश्रममाहात्म्येऽग्निकृतभगवत्स्तुतिवर्णनं नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

अग्नितीर्थनारदशिलामार्कण्डेयशिलामाहात्म्यवर्णनम्

स्कन्द उवाच

भगवन्सर्वभूतेषु सर्वधर्मविशारद ! । अग्नितीर्थस्य माहात्म्यं कृपया वद मे पितः !॥

शिव उवाच

अतिगुह्यतमं तीर्थं सर्वतीर्थनिषेवितम् । संक्षेपात्कथयाम्येतत्त्वाऽऽदरवशादहम् ॥२
महापातकिनोयेचअतिपातकिनस्तथा । स्नानमात्रेण शुद्ध्यन्तिविनाऽऽयासेन पुत्रक!
प्रायश्चित्तेनयत्पापंनगच्छेन्मरणान्तिकम् । स्नानमात्रेणतीर्थस्यपावकस्यविशुद्ध्यति
अत्यन्तमलसम्बद्धं यथाशुद्ध्यति हाटकम् । तथाग्नितीर्थमासाद्यदेहीपापैर्विशुद्ध्यति
कुशाग्रेणोदबिन्दुं च पीत्वा वर्षत्रयं नरः । अन्यक्षेत्रे तपः कृत्वा तदत्र स्नानमात्रतः
ब्राह्मणान्भोजयित्वाऽस्मिन्यथाविभवसम्भवैः । दरिद्रताकुलेतेषांनकदाचित्प्रजायते
उपवासेन यः प्राणान्वह्नितीर्थे त्यजेन्नरः । स भित्त्वासूर्यलोकादीन्विष्णुलोकंप्रपद्यते
चान्द्रायणसहस्रैस्तु कृच्छ्रैःकोटिभिरेवच । यत्फलंलभतेमर्त्यस्तत्स्नानाद्वह्नितीर्थतः
पञ्चधा ये प्रकुर्वन्ति पापमस्मिन्षडानन !। जपेन पवनायामैर्विशुद्धिरिति मे मतिः ॥
ज्ञानेन मोहवशतः पापं कुर्वन्ति येऽधमाः । पैशाचीं योनिमायान्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश
अनाश्रमी चाश्रमी वा यावद्देहस्य धारणम् । न तीर्थे पावकेकुर्यात्पातकंबुद्धिपूर्वकम्
स्नानं दानं जपो होमः सन्ध्या देवार्चनं तथा ।

अत्राऽनन्तगुणं प्रोक्तमन्यतीर्थात्षडानन !॥ १३ ॥

बहूनि सन्ति तीर्थानि पावनानि महान्त्यपि । वह्नितीर्थसमं तीर्थं नभूतंनभविष्यति
न ब्रह्मा न शिवःशेषोन देवानचतापसाः । शक्नुवन्ति फलं नाऽलंवक्तुंपावकतीर्थजम्
किं तेषां बहुभिर्यज्ञैःकिं दानैर्नियमैर्यमैः । येषांपावकतीर्थेऽस्मिन्स्नानंदशदिनम्भवेत्

उपवासेन यः प्राणान्वह्नितीर्थे जयेन्नरः ।
उपवासत्रयं कृत्वा पूजयित्वा जनार्दनम् ।
नरः पावकतीर्थेऽस्मिन् स भवेत्पावकोपमः ॥ १७ ॥

शिलापञ्चकमध्यस्थं सान्निध्यं नित्यता हरेः । तत्रैव पावकं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम्

स्कन्द उवाच

कथंतत्र शिलाःपञ्च केन वा तत्र निर्मिताः । किंपुण्यंकिंफलंतासांवक्तुमर्हस्यशेषतः?

शिव उवाच

नारदी नारसिंही च वाराही गारुडी तथा ।
मार्कण्डेयीति विख्याताः शिलाः सर्वार्थसिद्धिदाः ॥२० ॥

नारदो भगवांस्तेपे तपः परमदारुणम् । दर्शनार्थं महाविष्णोःशिलायांवायुभोजनः
षष्टिवर्षसहस्राणिशिलायांवृक्षवृत्तिमान् । तदाऽसौभगवान्विष्णुस्तत्रब्राह्मणरूपधृक्
जगाम पुरतस्तस्य कृपया मुनिसत्तमम् । उवाच वचनं चारु किमिति क्लिश्यते ह्यृषे

किं वा तवेप्सितं ब्रूहि तपसा क्षीणकल्मष !॥

नारद उवाच

को भवान्विजनेऽरण्ये ममानुग्रहतत्परः । मनःप्रसन्नतामेति दर्शनात्ते द्विजोत्तम !॥२४
इत्युक्तो नारदेनाऽसौ शङ्खचक्रगदाधरः । पीताम्बरलसत्पद्मवनमालाविभूषणः ॥२५

श्रीवत्सकौस्तुभभ्राजत्कमलाविमलालयः ।
सुनन्दनप्रमुख्यैः स स्तूयमानो जनार्द्दनः ॥ २६ ॥

दर्शयामास रूपं स्वं नारदाय कृपार्दितः । तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय तनुं प्राण इवाऽऽगतः
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा नमस्कृत्य पुनः पुनः । तुष्टाव प्रपतो भूत्वा जगतामीश्वरेश्वरम्

नारद उवाच

य: सर्वसाक्षी जगतामधीश्वरो भक्तेच्छया जातशरीरसम्पदः ।
कृपामहाम्भोनिधिराश्रितानां प्रसीदतां पावनदिव्यमूर्तिः ॥ २६ ॥
हिताय लोकस्य सतां पुनर्मनः सुतोषणायाऽचिरमुत्कलादिभिः ।
प्रसन्नलीलाहसितावलोकनः प्रसीदतां सत्त्वनिकायमूर्तिमान् ॥ ३० ॥
कन्दर्पलावण्यविलाससुन्दरः प्रसन्नगम्भीरगिरेन्दिरोत्सवः ।
स्वमाश्रितानां वरकल्पपादपः प्रसीदतां दीनदयार्द्रमानसः ॥ ३१ ॥
यदङ्घ्रिपद्मार्चननिर्मलान्तरा ज्ञानासिना शातितबन्धहेतवः ।
विन्दन्ति यद्ब्रह्मसुखं गतक्लमाः प्रसीदतां दीनदयार्द्र मानसः ॥ ३२ ॥
संसारवाराब्धिविबद्धसेतुर्यः सृष्टिपालान्तविधानहेतुः ।
उपान्तनामा गुणलब्धमूर्तिः प्रसीदतां ब्रह्मसुखानुभूतिः ॥ ३३ ॥
य इन्द्रियाधिष्ठितभूतसूक्ष्माद्विकासहेतुर्द्युतिमद्वरिष्ठः ।
जीवात्मतां गच्छति मायया स्वया स एक ईशो भगवन्प्रसीदताम् ॥ ३४ ॥
स्वद्रुग्गुणैर्येन विलिप्यते महान्गुणाश्रयं येन च पाञ्चभौतिकम् ।
एकोऽपि नानागुणसम्प्रयुक्तः प्रसीदतां दीनदयालुवर्यः ॥ ३५ ॥
यस्याऽनुवर्तिनो देवा विपदां पदमम्बुधिम् ।
कृत्वा वत्सपदं स्वर्गे निरातङ्का वसन्ति हि ॥ ३६ ॥
नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च । प्रद्युम्नायाऽनिरुद्धाय सर्वभूतात्मने नमः ३७
अद्य मे जीवितं धन्यमद्य मे सफलं तपः । अद्य मे सफलं ज्ञानं दर्शनात्ते जनार्दन !॥

॥श्रीभगवानुवाच

तुष्टोऽहं तपसाऽनेन स्तोत्रेणतव नारद !। त्वत्तोभक्तो न मे कश्चित्त्रिषुलोकेषु विद्यते
वरं वरय भद्रं ते वरदोऽहं तवाग्रतः । मद्दर्शनात्ते कामः स्यात्संसिद्धो विद्धि नारद!

नारद उवाच

वरदो यदि मे देव! वरार्हो यदिवाऽप्यहम् । भक्तिं तवपदाम्भोजेनिश्चलांदेहिमेविभो!

मच्छिलासन्निधानं च नत्याज्यंतेकदाचन । मत्तीर्थदर्शनात्स्पर्शात्स्नानादाचमनात्तथा
देहैर्न युज्यते देहस्तृतीयस्तु वरो मम ॥ ४२ ॥

श्रीभगवानुवाच

एवमस्तु तव स्नेहात्तव तीर्थे वसाम्यहम् । चराचराणां जन्तूनां विदेहाय न संशयः
एवमुक्त्वा हरिः साक्षात्तत्रैवाऽन्तरधीयत । नारदोऽपिमहातेजादिनानि कतिचित्सह
वदरीमावसन्हृष्टो ययौ मधुपुरीं ततः ॥ ४४ ॥

स्कन्द उवाच

मार्कण्डेयशिलायास्तुमहिमानंवदस्वमे । किंपुण्यंकिंफलंतस्याः सञ्ज्ञाचतादृशीकथम्

शिव उवाच

पुरा त्रेतायुगस्यान्ते मृकण्डुतनयो महान् । स्वल्पायुषं निजं ज्ञात्वाजजापपरमंजपम्
द्वादशाक्षरमन्त्रेण पूजितो हरिरव्ययः । सप्तकल्पायुषं ज्ञात्वा तत्रैवाऽन्तरतो ययौ
मार्कण्डेयस्ततः श्रुत्वातीर्थाटनपरिश्रमम् । दर्शनं नारदस्याऽऽसीन्मथुरायां षडानन!
पूजितो वन्दितस्तेन नारदो मुनिसत्तमः । कथयामास माहात्म्यं वदर्या यत्र केशवः

नारद उवाच

किमिति क्लिश्यते साधोतीर्थाटनपरिश्रमैः । बदर्याख्यं महाक्षेत्रंसान्निध्यं नित्यदाहरेः
तत्र याहि यत्र साक्षाद्धरिं पश्यसि चक्षुषा ।
तच्छ्रुत्वा विस्मयोपेतो विशालामाययावृषिः ॥ ५० ॥
स्नात्वा शिलामुपविशञ्जजापाऽष्टाक्षरं परम् । ततः प्रसन्नोभगवांस्त्रिरात्र्यन्ते जनार्दनः
शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषणम् । तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रेमगद्गदया गिरा ॥
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा मार्कण्डेयो जनार्दनम् ॥ ५२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अशाश्वते च संसारे सारे ते चरणाम्बुजे । समुद्धारः कथं नृणां त्राहि मां परमेश्वर!
तापत्रयपरिभ्रान्तमनेकाज्ञानजृम्भितम् । संसारकुहरे भ्रान्तं त्राहि मां कृपयाऽच्युत!
अनेकयोनियन्त्रेषु निःसृतेस्तनुवेदनाम् । गर्भवासकृतां प्राप्तं त्राहि मां करुणाम्बुधे

कृमिभक्षितसर्वाङ्गं क्षुत्पिपासाकुलं च हि। आन्त्रमालाकुले गर्भे त्राहि मां मधुसूदन!

अमेध्यादिभिरालिप्तं निश्चेष्टश्रममाऽऽकुलम्।
स्मरन्तं निजकर्मोत्थं त्राहि मां मधुसूदन!॥ ५८॥

वचनादाननिःश्वासाशक्तं भयमुपागतम्। गर्भवासमहादुःखं त्राहि मां मधुसूदन!॥

जरामरणबाल्यादिदुःखसंसारपीडितम्। दुःखाब्धौ सुखबुद्धिमांकृपासिन्धोप्रपालय

कदचित्कृमितां प्राप्तं कदाचित्स्वेदजन्मिताम्।
कदाचिदुद्भिज्जत्वं च कदाचिन्नरतां गतम्॥ ६१॥

सर्वयोनिसमापन्नं विपन्नं विगतप्रभम्। अनाथं त्वां समापन्नं त्राहिमांकृपयाऽच्युत

एवं स्तुतस्ततः कृष्णो मार्कण्डेयेनधीमता। प्रीतस्तमाह विप्रर्षे!वरं मे व्रियतामिति

श्रीमार्कण्डेय उवाच

यदि तुष्टो भवान्मह्यं भगवन्दीनवत्सल। निश्चलां देहि मे भक्तिं पूजायांदर्शने तव
शिलायां तव सान्निध्यमेष एव वरो मम॥ ६४॥

सूत उवाच

तथेत्युक्त्वामहाविष्णुर्ययावन्तर्हितं द्विज!। मार्कण्डेयस्ततस्तुष्टोजगामपितुराश्रमम्

उपस्थानमिदं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्। शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो गोविन्देलभतेगतिम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
शिवकार्त्तिकेयसम्वादेअग्नितीर्थनारदशिलामार्कण्डेयशिलामाहात्म्य-
वर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

चतुर्थोऽध्यायः

गरुडशिलावाराहीशिलानारसिंहीशिलामाहात्म्यवर्णनम्

स्कन्द उवाच

वैनतेयशिलायास्तुमाहात्म्यं वद मेपितः !। किंपुण्यंकिंफलंचास्यअनुभावंचकिंभवेत्

शिव उवाच

कश्यपाद्विनतागर्भे महावलपराक्रमौ। गरुडारुणौ प्रजातौ द्वावरुणः सूर्यसारथिः ॥२

वदर्य्यां दक्षिणे भागे गन्धमादनश्रृङ्गके। गरुडस्तप आतेपे हरिवाहनकाम्यया ॥ ३ ॥

फलमूलजलाहारो निर्द्वन्द्वो जपतांवरः। पदैकेनोपसङ्क्रम्य भुवि जेपे निरामयः ॥ ४

त्रिंशद्वर्षसहस्राणि हरिदर्शन लालसः। ततस्तु भगवान्साक्षात्पीतवासा निजायुधः

आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः।
उवाच वचनं सम्यङ् मेघगम्भीरनिस्वनः ॥ ६ ॥

तथापि न वहिर्वृत्तिर्दध्मौ दरवरं ततः। तथापि न वहिर्वृत्तिर्गरुडस्य महात्मनः ॥

ततः प्रविश्य भगवानन्तरं पवनक्रमात्। वहिरुन्मुखतां चैव रचयन्वहिराविभौ ॥८॥

भगवन्तं हरिं दृष्ट्वा गरुडो गतसाध्वसः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गस्तुष्टाव विहिताञ्जलिः

गरुड उवाच

जयजयत्रिभुवनजनमनोभवनविदलिताघगुणसकलगीर्वाणवन्दितचरणकमलयुगल-परिमलवहलरिपुवनविभञ्जन विद्योतमान सकलसुरासुरमुकुटकोटिविलसितनिज-पीठकमल निरसितनिजजनहृदयतिमिरपटलवहल हिमकर इवत्रिविधसन्तापसन्दो-हहरणचरण जगदुदयस्थितिलयविलासविलसितत्रिविधमूर्तिकीर्तिविस्फूर्जितजग-दुदयसन्दोह दिनकर इव निजजनमानससरोजषट्पदविदितसकलवेदविद्योतमान-मानस निजजनमुनिजनवन्दितपदनखनीरपवित्रीकृतगीर्वाणमुनिमानसवन्दितचरण रजः प्रसादसारभत! जगतामभीष्ट! नमस्ते नमस्ते ॥

अपि च

अष्टशक्तिसहितो वनमाली पीतचैलकुसुमावलिशोभः ।
पङ्कजाकरविराजितपादः पातु मामवहितेन्द्रियवर्गः ॥ ११ ॥
भक्तहृत्कमलराजितमूर्तिर्दुष्टदैत्यदलनोत्थितकीर्तिः ।
बद्धसेतुरविताश्रितलोकः पातु मामनुदिनं भुवनेशः ॥ १२ ॥
स्थिरचलत्रिविधतापहिमांशुर्भासमानतरणिप्रतिभासः ।
एक एव बहुधा कृतवेषो माययाऽवतु महामतिरीशः ॥ १३ ॥
भक्तचिन्तनकृते कृतरूपः शैशवेन बहुशासितभूपः ।
वेदमार्ग उरुधाहितकारी रीतिरीशितुरियं गुणशाली ॥ १४ ॥
यज्ञभुग्घृदयबन्धनधारी विश्वमूर्तिरबलांशुकहारी ।
पालनेऽपि महताम्बहुदेहो रास एष तनुमानवतान्नः ॥ १५ ॥
प्रेमभक्तिपुरुषैरुपलभ्यः पूरुषः कृतसमस्तनिवासः ।
दास्यवृन्दहृदितो निजदासः प्रेक्षणैककरुणोऽवतु विश्वम् ॥ १६ ॥
कण्ठलम्बिततरक्षुनखाग्रक्लृष्टगोपरमणीकुचभारः ।
लीलया युवतिभिः कृतवेषः शेष एष भवतादुपशान्त्यै ॥ १७ ॥
दण्डपाणिरयमेव जनानां शासितात्मनियमोक्तहितानाम् ।
पावनाय महतामनुशाली विश्वदुःखशमनो भवतान्नः ॥ १८ ॥

एवं स्तुतस्ततः साक्षाद्गरुडेन महात्मना । पूजार्थमाजुहावैनां गङ्गां त्रिपथगामिनीम् ।
ततः पञ्चमुखी साक्षादाविरासीन्नगोपरि । तेनोदकेन पाद्यार्घं चकार विनतासुतः ॥
व्रियताम्वर इत्युक्तो गरुडो हरिणा ततः । तवैकवाहनः श्रीमान्बलवीर्यपराक्रमः ॥
अजेयो देवदैत्यानां स्यामहं ते प्रसादतः ॥ २१ ॥
इयं मन्नामविख्यातासर्वपापहराशिला । एतस्याःस्मरणात्पुंसांविषव्याधिर्नजायताम् ।
एवमुक्त्वा ततस्तूष्णीं बभूव विनतासुतः ।
ओमित्युक्त्वा ततो विष्णुरुवाचेदं वचो हितम् ॥ २३ ॥

बदरीं त्वं प्रयाहीति नारदेन निषेविताम्। स्नानं नारदतीर्थादावुपवासत्रयं शुचिः॥
कृत्वा मद्दर्शनं तत्र सुलभं ते भविष्यति ॥ २४ ॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुस्तडित्सौदामनी यथा।
गरुडस्तु ततः शीघ्रमागत्य बदरीं मुदा ॥ २५ ॥
वह्नितीर्थं समासाद्य शिलामाश्रित्यतत्परः। स्नात्वा नारदतीर्थेषु व्रतचर्यामथाकरोत्
ततस्तु नारदे तीर्थे दृष्ट्वा भगवतः स्थितिम्। नमस्कृत्य विधानेन तदाज्ञातः पुरंययौ
ततः प्रभृति त्रैलोक्ये गारुडीति शिलोच्यते ॥ २८ ॥

स्कन्द उवाच

वाराहीवदमाहात्म्यंकीदृशंहीश्वरेश्वर। किंपुण्यंकिं फलंतस्या अभिधानंतथाकथम्

शिव उवाच

रसातलात्समुद्धृत्य महीं दैवतवैरिणम्। हिरण्याक्षं रणे हत्वा बदरीं समुपागतः॥
आकल्पान्तंमहादेवोयोगधारणयास्थितः। बदर्यासौष्ठवादेव विदधे स्थितिमात्मनः
शिलारूपेण भगवान्स्थितिं तत्र चकारह। तत्रगत्वा तु मनुजः स्नात्वागङ्गाजलेऽमले
दानं दत्त्वा स्वशक्त्या वै गङ्गाम्भःशान्तमानसः।
अहोरात्रे स्थितो भूत्वा जपेदेकाग्रमानसः ॥ ३३ ॥
शिलायान्देवदृष्टिश्च तस्य पुंसः प्रजायते। बहुना किमिहोक्तेन यद्वदिष्यति साधकः॥
तत्तस्य सिध्यति क्षिप्रं यद्यपि स्यात्सुदुष्करम्॥ ३५ ॥

स्कन्द उवाच

नारसिंही शिलायास्तु माहात्म्यंवद मे प्रभो। त्वत्प्रसादान्महादेवदुर्लभंश्रुतवानहम्

शिव उवाच

हिरण्यकशिपुं हत्वा नखाग्रेणैव लीलया। क्रोधाग्निना प्रदीप्ताङ्गः प्रलयानलसन्निभः
तदा देवैः समागत्यस्थित्वादूरेदयालुभिः। स्तुतोऽसौ भगवान्देवोलीलयाधृतविग्रहः
तदा प्रसन्नो हरिरुग्रविक्रमः स्वतेजसा व्याप्तसुरासुरोत्तमः।
उवाच मत्तो वरमावृणीध्वं गीर्वाणनिर्वाणसुखैकहेतुम् ॥ ३८ ॥

तदा सुराणामधिपः स्वयंभूरुवाच वाक्यं स्मितशोभिताननः ।
रूपं तवाऽत्युग्रमशेषदेहिनां भयावहं संहर नारसिंह !॥ ४० ॥
अनेकधैतद्विधिवद्विधाय निधाय शैलादिषु दिव्यमूर्तिम् ।
उवाच किं वः प्रकरोमि कृत्यमहं प्रसन्नस्त्रिदशाः परन्तपाः ॥ ४१ ॥
ततोऽमरा ऊचुरनेन चैव रूपेण संक्षोभितविश्वमूर्ते !।
प्रशान्तमन्तःसुखहेतुवन्धि चतुर्भजत्वं वरमीप्सितं नः ॥ ४२ ॥
ततो हरिर्वीक्ष्य निरीक्षणेन दिव्येन विश्वं प्रययौ विशालाम् ।
गङ्गाजले क्रीडति विष्टचेताः सुरासुरेभ्यो भगवानुवाच ॥ ४३ ॥
ततोऽमराः शान्तभया अथैनं निरीक्ष्य देवं जलमध्यसंस्थम् ।
नत्वा परिक्रम्य तदा समाययुर्निरूढभावाः स्वपुरं ततः क्रमात् ॥ ४४ ॥
ततः समस्ता ऋषयस्तपोधनाः समाययुर्भक्तिभरावनम्राः ।
नृसिंहमत्यद्भुतविक्रमं हरिं समीडिरे वद्धकरा वचोभिः ॥ ४५ ॥

ऋषय ऊचुः

नमो नमस्ते जगतामधीश! विश्वेश! विश्वामय! विश्वमूर्ते !।
कृपाम्बुराशे भजनीयतीर्थपादाम्बुज! श्रीश दयाम्बिधेहि ॥ ४६ ॥
एकोऽसि नाना निजमायया स्वया घटे पयो यद्वदुपाधिभिन्नम् ।
भक्तेच्छयोपात्तविचित्रविग्रह! प्रसीद विश्वानन! विश्वभावन !॥ ४७ ॥
ततः प्रसन्नो भगवान्नृसिंहः सिंहविक्रमः । उवाच वचनञ्चारु वरं मे व्रियतामिति ॥

ऋषय ऊचुः

यदिप्रसन्नोभगवान्कृपयाजगताम्पते । विशालान परित्याज्यावरोऽस्माकमभीप्सितः
एवमस्तु ततः सर्वे स्वाश्रमं ह्यृषयोययुः ।
नृसिंहोऽपि शिलारूपी जलक्रीडापरोऽभवत् ॥ ५० ॥
उपवासत्रयं कृत्वा जपध्यानपरायणः । नृसिंहरूपिणं साक्षात्पश्यत्येव न संशयः ॥
य एतच्छ्रद्धया मर्त्यः शृणोति श्रावयञ्छुचिः ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो वैंकुण्ठे वसतिं लभेत् ॥ ५२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे-
बदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसम्वादे गरुडशिला-
वाराहीशिलानारसिंहीशिलामाहात्म्यवर्णनं नाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

———

पञ्चमोऽध्यायः

भगवतोविष्णोःपूजादर्शनादिविषयेविधिवर्णनम्

स्कन्द उवाच

किमर्थं भगवांस्तत्रवसतिश्रद्धयापुनः । किं पुण्यं किं फलं तस्य दर्शनस्पर्शनादिभिः
नैवेद्यभक्षणंचाऽपि महापूजाकृतेस्तथा । प्रदक्षिणस्य च फलं ब्रूहि मे कृपया पितः॥

शिव उवाच

पुरा कृतयुगस्यादौ सर्वभूतहिताय च । मूर्तिमान्भगवांस्तत्र तपोयोगसमाश्रितः ॥
त्रेतायुगे ह्यृषिगणैर्योगाभ्यासैकतत्परः । द्वापरे समनुप्राप्ते ज्ञाननिष्ठो हि दुर्लभः ॥४॥
ऋषीणां देवतानां च दुर्दर्शो भगवानभूत् । ततो ह्यृषिगणा देवा अलभ्यभगवद्गतिम्
स्वायम्भुवं पदं याता विस्मयाकुलचेतसः । तत्र गत्वा नमस्कृत्य ऊचुर्लोकेश्वरंमुदा
बृहस्पतिं पुरस्कृत्य ऋषयश्च तपोधनाः ॥ ६ ॥

देवा ऊचुः

नमस्ते सर्वलोकानामाश्रयः शरणार्तिहा । वृत्तिदः करुणापूर्णः पितामह सुरेश्वर ॥
निवेदनीया विपदः समुद्धर्ता पिताऽसि नः ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

किमर्थमागता यूयं विस्मयाकुलमानसाः । मिलिताश्च विविधैः साकंभूतागमनकारणम्

देवा ऊचुः

द्वापरे समनुप्राप्ते विशालायां विशालधीः । भगवान्दृश्यते नैव तत्र किं कारणं वद ॥
विशाला किं परित्यक्ता ततो वा क्व गतः स्वयम् ।
अपराधादुताऽस्माकं कथं चाऽसौ प्रसीदति ॥ १० ॥

ब्रह्मोवाच

नाहमेतद्विजानामिश्रुतं चाऽद्य मुखाद्धि वः । को हेतुर्दृक्पथातीतोभगवान्भवतांसुराः
आगच्छत वयं यामस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ ११ ॥
इत्युक्तास्ते पुरोधाय ब्रह्माणं त्रिदिवौकसः । ययुः क्षीराम्बुधेस्तीरमृषयश्चतपोधनाः
तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् । गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥

ब्रह्मोवाच

नमस्ते पुरुषाध्यक्ष ! सर्वभूतगुहाशय !। वासुदेवाऽखिलाधार! जगद्धेतो! जगन्मय !
त्वमेव सर्वभूतानां हेतुः पतिरुताऽऽश्रयः । मायाशक्तिमुपाश्रित्य विचरस्येकसुन्दर!
एको नानायते योऽसौ नटवज्जायतेऽव्ययः । व्यापकोऽपिकृपालुत्वाद्भक्तहृत्पद्मषट्पदः
ददाति विविधानन्दं तं वन्दे जगताम्पतिम् ॥ १६ ॥

देवा ऊचुः

विपद्वान्ते हुतभुग्जनानां गृहीतसत्त्वस्त्रिदशावनीशः ।
चराचरात्मा भगवाननन्ते कृपाकटाक्षैरवलोकतां नः ॥ १७ ॥
सकृद्यन्नामपीयूषरसपानपरः पुमान् । निःश्रेयसं तृणमिव मन्यते तं हरिं भजे ॥ १८॥
अविद्याप्रतिबिम्बत्वाज्जीवभावमुपागतः ।
विज्ञत्वादुपशान्तात्मा स पुनातु जगत्त्रयम् ॥ १९ ॥

गन्धर्वा ऊचुः

पिबन्ति ये हरेः पदाम्बुसङ्गलेशतः पयः पयो न ते पुनःपुनः पिबन्ति मातुरङ्कतः
प्रसङ्गतो यदाऽभिधासुधां निपीय मानवा,
मृताऽमृतं व्रजन्त्यधो न जातु यान्त्यशङ्किताः ॥ २० ॥

ततःस्तुतोहरिःसाक्षात्सिन्धोरुत्थायचाऽब्रवीत् । अलक्षितोऽपरैर्ब्रह्मापरंतद्वेदनापरः
ब्रह्मा तदुपधार्याऽथ नत्वा तस्मै दिवौकसः । बोधयामाससकलं सुराःशृणुतसादरम्
अन्तर्हितोऽसौ भगवान्दृष्ट्वा लोकान्कुमेधसः । श्रुत्वेत्थंवचनंतस्य सर्वेदेवादिवंययुः

ततोऽहं यतिरूपेण तीर्थान्नारदसञ्ज्ञकात् ।
उद्धृत्य स्थापयिष्यामि हरिं लोकहितेच्छया ॥ २४ ॥

यस्य दर्शनमात्रेण पातकानि महान्त्यपि । विलीयन्ते क्षणादेव सिंहं दृष्ट्वा मृगा इव
धर्माधर्मान्विजित्याऽथवद्रीशंविभंहरिम् । दृष्ट्वामुक्तिमुपायान्तिविनाऽऽयासंषडानन
त्यक्तप्रायाणि तीर्थानि हरिणा कलिकालतः । बदरींसमनुप्राप्यसाक्षादेवाऽवतिष्ठते
कलिकालमनुप्राप्य मुक्तिर्येषामभीप्सिता । द्रष्टव्या बदरीतैस्तुहित्वातीर्थान्यशेषतः
विना ज्ञानेन योगेन तीर्थाटनपरिश्रमैः । एकेन जन्मना जन्तुः कैवल्यं पदमश्नुते ॥
जन्मान्तरसहस्रैस्तुयेनचाऽऽराधितो हरिः । स गच्छेद्बदरींद्रष्टुं यत्र जन्तुर्नशोचति
बदरीबदरीत्युक्त्वा प्रसङ्गान्मनुजोत्तमः । संसारतिमिराबाधे दीपमुज्ज्वालयत्यसौ
यथा दीपावलोकेन तमोबाधा न जायते । तथैव बदरीं दृष्ट्वा पुंसो मृत्युभयं कुतः ॥
दर्शनाद्यस्य पापानि रुदन्त्यव्याहतानि च । मुक्तिमार्गमुपालक्ष्य तं वन्दे बदरीपतिम्
सशैलकानना भूमिर्दशधा दक्षिणीकृता । हरेः प्रदक्षिणं तद्वद्बदर्यां तत्पदेपदे ॥ ३४॥
अश्वमेधे तु यत्पुण्यं वाजपेयशतेन च । हरेः प्रदक्षिणातद्वद्बदर्यां तत्पदे पदे ॥३५॥
चतुर्मासे तु यत्पुण्यं ब्रह्माण्डदानतस्तथा । हरेः प्रदक्षिणं तद्वद्बदर्यां तत्पदेपदे ॥३६
अतिकृच्छ्रैर्महाकृच्छ्रैश्छान्दसैः सुकृतं भवेत् । हरेः प्रदक्षिणं तद्वद्बदर्यां तत्पदेपदे ॥
बदर्यां विष्णुनैवेद्यं सिक्थमात्रं षडानन !। अशनाच्छोधयेत्पापंतुषाग्निरिव काञ्चनम्
यदन्नं भगवानत्ति ऋषिभिर्नारदादिभिः । तत्सत्त्वशुद्धये सर्वैर्भोक्तव्यमविचारितम्

अमरा अपि यन्नूनं व्याजेनेच्छन्ति सर्वतः ।
भोक्तुं बदरिकां विष्णोर्नैवेद्यं यान्ति तत्पराः ॥ ४० ॥

भोजनानन्तरंविष्णोः प्रगच्छन्तिस्वमालयम् । प्रह्लादप्रमुखाभक्ताःप्रविशन्तिहरेःपदम्
बाल्ययौवनवार्द्धक्ये यत्पापं ज्ञानतः कृतम् । नैवेद्यभक्षणाद्विष्णोर्बदर्यां तद्विलीयते

प्राणान्तं यस्य पापस्य प्रायश्चित्तं प्रकीर्तितम् ।
विष्णोर्निवेदितं भुक्त्वा बदर्यां तन्निवर्त्तते ॥ ४३ ॥

तीर्थान्तरेषु यत्नेन मुक्तिं गच्छति मानवः । नैवेद्यभक्षणाद्विष्णोःसालोक्यंलभतेनरः
हृदि रूपं मुखे नाम नैवेद्यमुदरे हरेः । पादोदकं सनिर्माल्यं मस्तके यस्य सोऽच्युतः
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयंगुर्वङ्गनागमः । नैवेद्यभक्षणाद्विष्णोर्वदर्यांयान्ति सङ्क्षयम्
बदरीसदृशं क्षेत्रं नैवेद्यसदृशं वसु । नारदीयसमं क्षेत्रं न भूतं न भविष्यति ॥ ४७ ॥
बदरी यत्नतो गम्या भोक्तव्यं तन्निवेदितम् । द्रष्टव्योभगवान्वह्नितीर्थेस्नानंसुदुर्लभम्

पृथिव्यां यानि तीर्थानि व्रतानि नियमास्तथा ।
पादोदकं विशालायां पावनं पुरतो भवेत् ॥ ४९ ॥

किं तस्य दानैस्तपसा तीर्थाटनपरिश्रमैः । बदर्यां विष्णुपादोदबिन्दुमात्रं लभेद्यदि
प्रायश्चित्तानि जल्पन्ति तावदेव षडानन !। यावन्नलभ्यते विष्णोर्वदर्यां चरणोदकम्
अनायासेनयेषां वाञ्छामुक्तिपथेनृणाम् । कर्त्तव्यं तैः प्रयत्नेन विष्णोर्नैवेद्यभक्षणम्
ये नराःप्रतिगृह्णन्ति पापाः संसारभागिनः । यात्राकृतं फलं तेषां न कदाचित्प्रजायते
नैवेद्यनिन्दनाद्विष्णोर्निन्द्यन्ते ते तमोगताः । नैवेद्यभक्षणात्सत्त्वशुद्धिरेवन संशयः
नैवेद्यं स्वयमानीय ब्राह्मणान्भोजयन्ति ये । तुलापुरुषदानेन किं फलं ते कृतार्थिनः ॥
कुरुक्षेत्रं समासाद्य राहुग्रस्ते दिवाकरे । महादानेन यत्पुण्यं बदर्यां ग्रासमात्रतः ॥
बदरीक्षेत्रमासाद्य ग्रासमात्रं प्रयत्नतः । उपायोऽयं महांस्तत्र बदर्यां हरितोषणे ।

यतिभ्यो भोजनाद्विष्णोरपराध्यपि वल्लभः ॥ ५७ ॥

न विष्णोः सदृशो देवो न विशालासमापुरी । न भिक्षुसदृशंपात्रमृषितीर्थसमंन हि
चातुर्मास्यंप्रकुर्वन्ति ये नराःपुण्यशालिनः । तेषां पुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणाऽपिनशक्यते
भिक्षुकाणांफलं वाप्तिर्विशेषादिहकीर्त्यते । वेदान्तश्रवणात्पुण्यंदशधायत्प्रकीर्तितम्
बदरीदृष्टिमात्रेण भिक्षुकाणां तदिष्यते । चातुर्मास्ये विशेषेण कैवल्यफलभागिनः
न्यासिनो बदरीस्थाने विनायासेन पुत्रक !। येमूर्खाजाड्यमापन्नादम्भकाषायवाससः

बदरीदर्शनात्तेषां मुक्तिः करतले स्थिता ॥ ६२ ॥

ज्ञानिनोऽज्ञानिनोवापिन्यासिनोनियतव्रताः। द्रष्टव्याबदरीतैस्तुफलानिसमभीप्सुभिः
श्रुत्वाऽध्यायमिमं पुण्यं प्रसङ्गेनाऽपिमानवः। सर्वपापविनिर्मुक्तोविष्णुलोकेमहीयते
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
वदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसम्वादे तद्धाममाहात्म्यवर्णनं-
नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

ससरस्वतीसरिद्वर्णनम्वसुधारामाहात्म्यकथनम्

स्कन्द उवाच

कराद्विगलितं यत्र कपालं ते महेश्वर !। तस्य तीर्थस्यमाहात्म्यं कृपया वदमे पितः!

शिव उवाच

अतिगुह्यमिदं तीर्थं सुरासुरनमस्कृतम्। ब्रह्महाऽपि नरो यत्र स्नानमात्रेण शुद्ध्यति
पञ्चतीर्थानि तिष्ठन्ति कपाले पापमोचने। तत्र स्नानं तपोदानं सर्वमक्षयमिष्यते॥
पिण्डंविधायविधिवन्नरकात्तारयेत्पितॄन्। पितृतीर्थमिदम्प्रोक्तंगयातोऽष्टगुणाधिकम्
तिलतर्प्पणतो यान्ति पितरः स्वर्गमुत्तमम् ॥ ५ ॥
अहोरात्रं स्थिरो भूत्वा जपनिष्ठःसमाहितः। तस्येष्टसिद्धिर्महती तत्क्षणादेवजायते
पारलौकिककर्माणिसर्वाण्यक्षयतानिच। कपालमोचने तीर्थे नाऽधिकं पितृकर्मणि

स्कन्द उवाच

कुत्र वा ब्रह्मतीर्थम्वै फलं वा कीदृशं भवेत्। के वा तत्र वसन्तीहकृपयावदमे पितः!

शिव उवाच

एकदाविष्णुनाभ्यम्भोरुहस्थस्यप्रजापतेः। वेदान्मुखाम्बुजाद्धृत्वाजग्मतुर्मधुकैटभौ
ततो ह्युत्थायशयनात्सिसृक्षुरब्जसम्भवः। स्रष्टुंविनाऽऽगमंलोकेन शशाकहतस्मृतिः

तदा बदरिकामेत्य हरिणा प्रतिपालिताम् । तुष्टाव प्रणतो भूत्वा भगवन्तंसनातनम्

ततः कुण्डात्समुद्भूतो हयशीर्षो निजायुधः ।
पीताम्बरधरः शुक्लश्चतुर्बाहुः सुदृप्तदृक् ॥ १२ ॥

अत्यद्भुतः प्रकटकठोरलोचलनश्चलच्छटाविच्छुरितमेघडम्बरः ।
स्वतेजसा हतनिखिलप्रभाकुलः कृपान्वितो द्रुहिणपुरःसरोऽभवत् ॥ १३ ॥
निरीक्ष्य तं विधिरपि विस्मयाकुलः प्रणम्य च स्तुतिमकरोत्प्रसन्नदृक् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

नमः कमलनाभाय नमस्ते कमलाश्रय ! । नमस्ते कमलावास! विशालवनमालिने ॥
नमो विज्ञानमात्राय गुहावासनिवासिने । हृषीकेशाय शान्ताय तुभ्यं भगवते नमः ॥
स्वभक्तरक्षणकृते धृतदेहाय शार्ङ्गिणे । अनन्तक्लेशनाशाय गदिने ब्रह्मणे नमः ॥१७॥
संसारविविधासारनिवृत्तिकृतकर्मणे । रक्षित्रे सर्वजन्तूनां विष्णवेजिष्णवे नमः ॥
नमो विश्वम्भराशेषनिवृत्तगुणवृत्तये । सुरासुरवरस्तम्भनिवृत्तिस्थितिकीर्तये ॥१९॥

इतीरितः सुरपतिना महेश्वरो हृदि स्थितोऽखिलविदशेषकर्मभिः ।
ततोऽन्तरं सपदि गतो निबध्य तौ सुरद्रुहौ किल निजघान लीलया ॥ २० ॥

ततो निगममासाद्य ब्रह्मणोऽन्तिकमाययौ ।
दत्त्वा स्वनिगमं तस्मै स्वस्थोऽभूत्स समीडितः ॥ २१ ॥

ततःप्रभृतितत्तीर्थं ब्रह्मणा प्रकटीकृतम् । ब्रह्मकुण्डमितिख्यातंत्रिषु लोकेषु विश्रुतम्
यस्यदर्शनमात्रेणमहापातकिनो जनाः । विमुक्तकिल्बिषा सद्यो ब्रह्मलोकम्व्रजन्तिते
स्नानंकुर्वन्ति ये लोकाव्रतचर्य्यामथापि वा । ब्रह्मलोकमतिक्रम्यविष्णुलोकंव्रजन्तिते

स्कन्द उवाच

ततः किमकरोद्धाता लब्ध्वावेदाञ्जनार्द्दनात् । एतदन्यच्च सर्वम्मे कृपयावदसाम्प्रतम्

महादेव उवाच

चतुर्णामपि वेदानां दृष्ट्वा बदरिकाश्रमम् । मतिर्न जायते गन्तुं ब्रह्मणा सह पुत्रक ॥
ततस्तुविकलंदृष्ट्वाब्रह्माणंजनवासिनः । सिद्धास्तु विधिवत्स्तुत्वा प्रणिपत्येदमब्रुवन्

सिद्धा ऊचुः

आज्ञा भगवतःकार्या सर्वैः स्थावरजङ्गमैः । भगवान्सर्वजन्तूनां कर्त्ता हर्तापितागुरुः
स्थितिर्ब्रह्मान्तिकेवश्चहरिणैवाऽनुकल्पिता । निवृत्तिर्वर्तते चैषा तथाप्येतन्निरामयम्
एकान्तेद्रवरूपेण मूर्तिर्वोऽत्रावतिष्ठताम् । द्वितीया ब्रह्मणा सार्द्धं ब्रह्मलोकम्व्रजेत्पुनः
ततः सहृदया वेदा द्वैधीकृतात्मरूपकाः । ब्रह्मणा ब्रह्मलोकं ते ययुः सार्द्धं प्रहर्षिताः
ततस्त्रिलोकं विधिवत्ससर्ज चतुराननः । द्रवरूपेषु वेदेषु स्नानदानतपः क्रियाः

कृता विच्छेदिता न स्युर्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ३२ ॥

फलमुद्दिश्य कुर्वन्ति उपवासत्रयं नराः । चतुर्णामपिवेदानां व्याख्यातारोनसंशयः
अनुक्रमेण तिष्ठन्ति वेदाश्चत्वार एव च । ऋग्यजुः सामाथर्वाख्याभगवत्पार्श्ववर्तिनः
ये पुण्यवन्तोऽकलुषा वेदवेदाङ्गपारगाः । ते वेदघोषं विरलाः शृण्वन्त्यऽपिकलौयुगे
चतुर्णामपि वेदानामुदगस्ति सरस्वती । जप्ताऽथ सा नृणांहन्तिजडतांजलरूपिणी

सरस्वत्या जले स्थित्वा जपं कृत्वा समाहितः ।
मनोस्तस्य न विच्छेदः कदाचिदपि जायते ॥ ३७ ॥

वेदव्यासोऽपि भगवान्यत्प्रसादादुदारधीः । पुराणसंहितार्थज्ञोऽभवदत्र न संशयः ॥

त्रयाणामपि लोकानां हिताय जगताम्पतिः ।
स्थापयामास विधिना वाणीं वाग्विभवप्रदाम् ॥ ३९ ॥

दर्शनस्पर्शनस्नानपूजास्तुत्यभिवन्दनैः । सरस्वत्या न विच्छेदःकुलेतस्य कदाचन ॥
मन्त्रसिद्धिर्विशेषेण सरस्वत्यास्तटे नृणाम् । जपतामचिरेणैवजायतेनाऽत्र संशयः
बहुना किमिहोक्तेन वाणी वाग्विभवप्रदा । द्रवरूपधरा नृणां दर्शनात्पूतिरुज्ज्वला ॥
ततोऽर्वाग्दक्षिणे भागे द्रवधारेति विश्रुतम् । तीर्थमिन्द्रपदं यत्र तपश्चक्रे पुरन्दरः ॥
सुदारुणं तपः कृत्वा परितोष्यजनार्द्दनम् । पदमैन्द्रं समालेभे सुरासुरनमस्कृतम् ॥४४
तपोदानं जपो होमो व्रतानिनियमायमाः । तत्राऽनन्तगुणं प्रोक्तंतत्तीर्थमतिदुर्लभम्
प्रतिमासे त्रयोदश्यांशुक्लायांहरितोषगे । स्नात्वासुतीर्थेसुत्रामाच्छन्दंचोपेत्यसङ्गतः

उपवासद्वयं कृत्वा पूजयित्वा जनार्द्दनम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः शक्रलोके महीयते ॥

तत्रैव मानसोद्भेदः सर्वपापप्रणाशनः । दुर्लभः सर्वजन्तूनां यत्र ते स्युर्महर्षयः ॥४८

मानसंचिदचिद्ग्रन्थिमुद्ग्रथ्नन्तिचसर्वतः । मानसोद्भेदइत्याख्याऋषिभिःपरिगीयते

भिन्दन्ति हृदयग्रन्थींश्छिन्दन्ति बहुसंशयम् ।

कर्माणि क्षपयन्त्यस्मान्मानसोद्भेद इत्यभूत् ॥ ५० ॥

यदि भाग्यवशादत्र विन्दुमात्रंलभेन्नरः । तत्क्षणान्मुक्तिमाप्नोतिकिमतस्त्वधिकंभवेत्

गिरिदरीनिलये निवसन्त्यमी ऋषिगणाः फलमूलजलाशनाः ।

जितमनोविषयाः शितबुद्धयः कलिभयादिव पापभयाकुलाः ॥ ५२ ॥

फलसमीरणगह्वरनिर्झराश्रमभरादुपलब्धपटोत्तमाः ।

त्रिषवणक्रमनिर्जितदुर्जयेन्द्रियपराक्रमणा मुनयस्त्वमी ॥ ५३ ॥

साधनानि बहून्येव कायक्लेशकराण्यहो । सुलभं साधनं लोके मानसोद्भेददर्शनम्

यस्मिन्दिने जलं चैतल्लभते पुण्यवाञ्जनः । भवति व्याससदृशो यमपितृसमः क्रमात्

काम्यतीर्थमिदं नृणां कामनावशकृत्पुनः । अकामतस्तु मुक्तिः स्यादुभयोरेषनिश्चयः

यत्किञ्चित्प्रमादेन कामानां कुरुते नरः । फलं भुक्त्वा पुनर्मुक्तिर्भवत्येव न संशयः ॥

महरादिषु लोकेषुभुक्त्वाभोगान्यथेप्सितान् । भोगेभुक्तेपुनर्यातिकामनावशतोजनः

पुरुषार्थसमवाप्त्यै यतनीयं मनीषिभिः । मानसोद्भेदने तीर्थे नापेत्यत्रेति मे मतिः

मानसोद्भेदनात्प्रत्यग्दिशि सर्वमनोहरम् । वसुधारेतिविख्याततंतीर्थंत्रैलोक्यदुर्लभम्

त्रिलोक्यां सर्वतीर्थेभ्यः श्रेष्ठो बदरिकाश्रमः । श्रुत्वातन्नारदात्सर्वेवसवःसमुपागताः

त्रिंशद्वर्षसहस्राणि तपः परमदारुणम् । दलाम्बुप्राशनाश्चक्रुस्ततः सिद्धिमुपाययुः ॥

भगवद्दर्शनात्प्राप्तानन्दनिर्वृत्तविक्रमाः ।

हृदयानन्दसन्दोहप्रफुल्लितमुखाम्बुजाः ॥ ६३ ॥

दृष्ट्वा नारायणं देवं वरं लब्ध्वा मनोरमम् । हरिभक्तिसुखैश्वर्यं परं लब्ध्वामुदं ययुः

अत्र स्नात्वा जलं पीत्वा पूजयित्वा जनार्दनम् ।

इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते परमं पदम् ॥ ६५ ॥

अत्रपुण्यवतां ज्योतिर्द्दृश्यते जलमध्यतः । यद्दृष्ट्वा न पुनर्भूयो गर्भवासं प्रपद्यते ॥
येऽशुद्धपितृजाः पापाः पाषण्डमतिवृत्तयः । न तेषांशिरसिप्रायःपतन्त्यापःकदाचन

दिनत्रयं शुचिर्भूत्वा पूजयित्वा जनार्दनम् ।
उपोष्य भगवद्भक्त्यासिद्धान्पश्यन्ति साधवः ॥ ६८ ॥

ये तत्र चपलास्तथ्यं न वदन्ति च लोलुपाः । परिहासपरद्रव्यपरस्त्रीकपटाग्रहाः
मलचैलावृताऽशान्ताऽशुचयस्त्यक्तसत्क्रियाः । तेषांमलिनचित्तानांफलमत्रनजायते
ये तत्र साधकाः शान्ताचिरलाविधिवर्त्मगाः । तेषांजपस्तपोहोमोदानव्रतजपक्रियाः

क्रियमाणा यथाशक्त्या ह्यक्षय्यफलदायकाः ॥ ७२ ॥

यत्किञ्चिच्छुभकर्माणि क्रियमाणानि देहिनाम् । महदादिफलंदद्युर्निःश्रेयसमतनुमम्
श्रावणीयमिह किं फलाधिकं यत्र यान्ति विबुधाः फलार्थिनः ।

पूजितादनु हरेः प्रियार्थिनः स्वर्गमार्गनिरताः प्रमोदिनः ॥ ७४ ॥
यत्र सन्ति न च विघ्नकारिणः कर्मणां हरिभयात्सुसिध्यति ।
निर्विशन्ति च फलं विवेकिनः कर्ममार्गनिरताः सुदेहिनः ॥ ७५ ॥
ये पठन्त्यथ च पाठयन्त्यहो पुण्यतीर्थविषयं प्रकाशितम् ।
भक्तिभावसमलंकृताश्च ते सम्प्रयान्ति हरिमन्दिरं शुभम् ॥ ७६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
बदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसम्वादे वसुधारातीर्थमाहात्म्य-
वर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

पञ्चधारादितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

शिव उवाच

ततो नैर्ऋत्यदिग्भागे पञ्चधाराः पतन्त्यधः । प्रभासं पुष्करं चैव गयां नैमिषमेव च
कुरुक्षेत्रं विजानीहि द्रवरूपं षडानन !॥ १ ॥
पुरा ते ब्रह्मणः स्थानं गता मलिनरूपिणः । पापिनां पापदोषेण विकृताः कृतबुद्धयः
तत्र गत्वा नमस्कृत्य ब्रह्माणं लोकभावनम् । ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे निजागमनकारणम्
तच्छ्रुत्वा ध्यानमालम्ब्य प्रहस्य जगदीश्वरः ।
उवाच वचनं चारु स्मृत्वा बदरिकाश्रमम् ॥ ४
मा भैष्ट गच्छत क्षिप्रंहरेर्बदरिकाश्रमम् । यस्य निर्वेशमात्रेणसद्यः पुण्यम्भविष्यति
ततस्ते हर्षवेगेन नमस्कृत्य पितामहम् । जग्मुरुत्फुल्लनयना विशालाममितप्रभाम् ॥
यस्य निर्वेशमात्रेणतत्क्षणाद्विगतैनसः । ततोद्विरूपमास्थायस्वस्थानं ययुरुत्सुकाः
द्रवरूपेणचान्येनपञ्चतिष्ठन्तिनिर्मलाः । तेषु स्नात्वाविधानेन कृत्वानित्यक्रियांशुचिः
तत्तत्तीर्थफलं लब्ध्वा यात्यन्ते परमं पदम् । पञ्चोपवासनिरतः पूजयित्वाजनार्द्दनम्
इह भोगान्बहून्भुक्त्वा हरेःसालोक्यमाप्नुयात् ॥ १० ॥
ततस्तु विमलं तीर्थं सोमकुण्डाभिधंपरम् । तपश्चकार भगवान्सोमोयत्रकलानिधिः

स्कन्द उवाच

सोमकुण्डस्य माहात्म्यंवदमे वदताम्वर !। त्वत्प्रसादादहं श्रोतुमिच्छामि परमेश्वर!

शिव उवाच

पुरा त्रिनयनः श्रीमान्सोमः सम्प्राप्य यौवनम् ।
श्रुत्वा स्वर्वासिनां सौख्यं गन्धर्वेभ्यो मुहुर्मुहुः ॥
तदा स्वपितरं प्रायात्प्रष्टुं तल्लभते कथम् ॥ १३ ॥

सोम उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ! करुणामृतसागर !। कथं वा लभ्यते स्वर्गः सर्वेषामुत्तमोत्तमः ॥
ग्रहनक्षत्रताराणामोषधीनां पतिः प्रभो !। स्यामहं येन तं यत्नं कृपया वद मे पितः!॥

अत्रिरुवाच

तपसाऽऽराध्य गोविन्दंयमैर्वानियमैः सुत !। किं दुर्ल्लभंतु साधूनामिहलोकेपरत्र च
ततस्तु नारदाच्छ्रुत्वा क्षेत्रं परमनिर्मलम् । जगाम बदरीं नत्वा पितरं दिशमुत्तराम् ॥
तत्र गत्वाफलैर्मेध्यैर्विष्णोः पूजामकल्पयत् । जजाप परमं जाप्यमष्टाक्षरं मनोहरम्
अष्टाशीति सहस्राणि वर्षाणि भगवत्परम् । तपस्तेपेऽतिपरमं सर्वलोकभयावहम् ॥
ततस्तुष्टः समागत्य भगवान्भक्तवत्सलः । उवाच सोमं विधिवद्वरं वरय सुव्रत !॥
ततः सोमः समुत्थाय नमस्कृत्य पुनः पुनः । ग्रहनक्षत्रताराणामोषधीनामहं पतिः ॥
द्विजानामपि सर्वेषां भूयासं ते प्रसादतः ॥ २१ ॥

हरिरुवाच

वरमन्यं वृणुष्वाऽतो दुर्ल्लभंत्वं भवादृशाम् । वरान्नोवरयामासंतदा तं हिमजात्मज!
ततोऽतिविमनाः सोमः पुनस्तेपे तपो महत् । त्रिंशद्वर्षसहस्राणि देवमानेन पुत्रक!॥
तदाऽसौ करुणापूर्णहृदयो भगवानगात् । वरं वरय भद्रन्ते वरदोऽहं तवाऽग्रतः॥
सोमस्तु तादृशं वव्रे तच्छ्रुत्वाऽन्तर्दधे हरिः ॥ २४ ॥
ततोऽतिविमनाःसोमःपुनःस्तेपेतपोमहत् । चत्वारिंशत्सहस्राणितपस्तप्तं सुदुष्करम्
ततस्तुष्टो हरिःसाक्षाच्छङ्खचक्रगदाधरः । उवाचवचनञ्चारु सोमं श्रान्तं तपोनिधिम्
उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रन्ते वरम्वरय सुव्रत । तपसाऽऽराधितो नूनंत्वयाऽहं तपसां निधिः

सोम उवाच

यदि तुष्टो भवान्मह्यं भगवान्वरदर्षभः । ग्रहनक्षत्रताराणामाधिपत्यं प्रयच्छ मे ॥
तथौषधीनाम्विप्राणां यामिन्याश्च जगत्पते !॥ २८ ॥

श्रीभगवानुवाच

दुर्ल्लभम्प्रार्थितंवत्स वितरामितथाप्यहम् । एवमस्तु ततःसर्वे समागत्य दिवौकसः

अभिषिक्तवन्तो विधिवत्सोमं राजानमादृताः ॥ २९ ॥

ततोविमानमारूढो रथेन शुभ्रवाससा । अभिष्टुतः सुरैर्भूद्भिर्वृतो निशाकरः ॥३०
ततः प्रभृतितीर्थंतत्सोमकुण्डेतिदुर्ल्लभम् । यद्दृष्टिमात्रान्मनुजा गतदोषाभवन्तिहि
यत्स्पर्शनाद्यान्तिसोमलोकंविनिन्दिताः । यत्र स्नात्वाविधानेन सन्तर्प्य पितृदेवताः
सोमलोकंविनिर्भिद्य विष्णुलोकम्प्रपद्यते । उपवासत्रयं कृत्वा पूजयित्वाजनार्द्दनम्
न तेषां पुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि । त्रिरात्रेणस्थितोभूत्वा पूजयित्वाजनार्द्दनम्
जपं कुर्वन्विशेषेण मन्त्रसिद्धिः प्रजायते । कर्मणा मनसावाचा यत्कृतंपातकं नृभिः
तत्सर्वं क्षयमायाति सोमकुण्डेक्षणादिह । ततस्तु द्वादशादित्यतीर्थम्पापहरम्परम् ॥
यत्र तप्त्वापुनकृच्छ्रंकाश्यपःसूर्यतांययौ । दुर्ल्लभंत्रिपु लोकेषुतपःसिद्ध्येककारणम्
रविवारेषुसप्तम्यांसङ्क्रान्त्यांविधिवन्नरः। सप्तजन्मकृतात्पापात्स्नानमात्रेणशुद्ध्यति
पाराकंविधिवत्कृत्वा पूजनीयोजनार्द्दनः । सूर्यलोके सुखम्भुक्त्वा विष्णुलोकेमहीयते

महारोगाभिभूतस्तु स्नात्वा पीत्वा जलं शुचिः ।
रोगमुक्तोऽचिरादेव नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३९ ॥

चतुःस्रोतं परं तीर्थं विलोचनमनोहरम् । धर्मार्थकाममोक्षास्ते तिष्ठन्ति द्रवरूपिणः
हरेराज्ञाऽनुसारेण क्षेत्रेऽस्मिन्वैष्णवे स्वयम् । पुरुषार्थाद्रवीभूताभूतानां मुक्तिहेतवः

पूर्वादिदिक्षु क्रमसन्निविष्टा धर्मप्रधाना इव रूपभाजः ।
भजन्ति ये तान्क्रमसन्निविष्टान्प्रसन्नतैषां सततं भवेद्धि ॥ ४२ ॥
नाऽन्यत्र क्षेत्रे मिलिताः कथञ्चिच्चत्वार एते त्रिदशैरलभ्याः ।
तानग्रिमं जन्म जवेन लब्ध्वा पश्यन्ति पूर्वार्जितपुण्यपुञ्जाः ॥ ४३ ॥
ये दुर्जना दुर्जनसङ्गभाजः क्षमार्जवप्राणजयप्रधानाः ।
क्रीडामृगा ग्राम्यवधूजनानां न ते प्रपश्यन्त्यचिरात्पुमर्थान् ॥ ४४ ॥
तथैव पश्यन्त्यचिरेण तत्त्वज्ञानैकहेतूनपि तान्पुमर्थान् ॥ ४५ ॥

अत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः । पर्वणि प्रयताः स्नातुं समायान्ति षडानन!॥
ततः सत्यपदंनाम तीर्थं सर्वमनोहरम् । त्रिकोणाकारमेवैतत्कुण्डं कल्मषनाशनम् ॥

एकादश्यां हरिस्तत्र स्वयमायाति पावने ॥ ४७ ॥
तत्पश्चादृषयः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः । स्नातुमायान्ति विधिवत्कुण्डे सत्यपदाभिधे
गन्धर्वाप्सरसां यत्र मध्याह्ने हरिवासरे । गानं शृण्वन्ति विरलाःसत्यव्रतपरायणाः
दर्शनाद्यस्य तीर्थस्य पातकानि महान्त्यपि । पलायन्ते भयेनैव सिंहं दृष्ट्वा मृगा इव

स्वशाखोक्तविधानेन स्नानं कृत्वा विचक्षणः ।
सत्यलोकमवाप्नोति ततो नैःश्रेयसम्पदम् ॥ ५१ ॥
अहोरात्रं शुचिर्भूत्वा उपोष्य च जनार्द्दनम् ।
पूजयित्वा यथाशक्त्या स जीवन्मुक्तिभाजनः ५२ ॥
ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्चत्रिकोणस्थाःसमाहिताः ।
तपः कुर्वन्त्यनुदिनं सर्वलोकादितोषणम् ॥ ५३ ॥

त्रिकोणमण्डितं तीर्थं नाम्ना सत्यपदप्रदम् । दर्शनीयं प्रयत्नेन सर्वपापमुमुक्षुभिः ॥
जपंतपो हरिस्तोत्रंपूजांस्तुत्यभिवन्दनम् । माहात्म्यंकुर्वतांवक्तुं ब्रह्मणाऽपिनशक्यते
ततोऽतिविमलं नाम नरनारायणाश्रमम् । द्विविधं दृश्यते तत्र पाथः परमनिर्मलम्॥
उभाभ्यामुभयोःप्रीतिर्भवतीतिविनिश्चितम् । तत्रस्नात्वाप्रयत्नेनपूजयित्वाजनार्द्दनम्

सर्वपापविनिर्मुक्तस्तत्क्षणान्नाऽत्र संशयः ॥ ५७ ॥

ततो नारायणावासशिखरे विमलाकृति । तीर्थं पवित्रमुर्वश्या अभिव्यक्तिकरम्भवेत्

स्कन्द उवाच

अभिव्यक्तिः कथं तस्या उर्वश्याः शिखरे पितः !।
किम्पुण्यं किम्फलं तत्र परं कौतूहलम्वद ॥ ५६ ॥

शिव उवाच

धर्मस्य पत्नीमूर्त्यासीत्तस्यां जातौ षडानन !। नरनारायणौ साक्षाद्भगवानेव केवलम्
पित्रोराज्ञामनुप्राप्यतपोऽर्थं कृतमानसौ । उभयोर्नगयोस्तौ तु तपोमूर्तीइव स्थितौ
तौदृष्ट्वाविस्मितःशक्रःप्रेष्यामासमन्मथम् । सगणंतपसोध्वंसो यथास्याद्गन्धमादनम्
विक्रम्यधिधिवस्तु नारायणवलोदयम् । ज्ञात्वा हतमनस्कास्तानुवाच जगतीपतिः

हरिरुवाच

किमर्थमागता यूयमातिथ्यं गृह्यतामिति ॥ ६४ ॥

इत्युक्त्वाफलमूलानितेभ्योदत्त्वोर्वशींतथा । दत्त्वान्तर्धिमगादेवपश्यतांविघ्नकारिणीम्
ते तु गत्वा दिवं भीता शक्रायोचुर्बलं हरेः । शक्रस्तामुर्वशींप्राप्यहर्षेणैकयुतोऽभवत्
ततः प्रभृति तत्तीर्थमुर्वशी नामतः पृथक् । प्रसिद्धं यत्र भगवान्स्वयमास्ते तपोमयः
तत्र स्नात्वा विधानेन उपोष्यरजनिद्वयम् । पूजयित्वाहरिस्तत्र नरोनारायणोभवेत्
उर्वशीकुण्डमासाद्य कामनावशतो नरः । उर्वशीलोकमाप्नोति स्नानमात्रेण पुत्रक !॥
सदैव भगवांस्तत्र उर्वशीकुण्डसन्निधौ । भूतानांभावयन्भव्यं तपोमूर्तिर्व्यवस्थितः

आमोदं तदुपरि वै प्रभञ्जनोऽपि श्रीभर्तुर्वहति पदाम्बुजैकलब्धम् ।
यत्सङ्गात्कलियुगकल्मषातुराणामुत्सङ्गे न भवति पापभारपाकः ॥ ७१ ॥
यत्सङ्गाद्धर्षमुपावहत्पदश्रीनिर्विण्णो गिरिविवरेच्युतैकसेवी ।
श्रीभर्तुश्चरणयुगं वहन्समन्तादभ्येति प्रशममहस्तपः समीरे ॥ ७२ ॥
गीर्वाणानुपहसति स्वयेन पूर्णः कीटोऽपि प्रशमितदुर्नयो निरीहः ।
यत्रस्थः कुसुमनिवेदमात्मयोगपर्युष्टं जहदुपयास्यते पदं तत् ॥ ७३ ॥
यत्रेत्वा मुनिमतयो वहिः पदार्थान्नापश्यन्निहितपदाम्बुजैकभाजः ।
यत्रस्थः स्वयमपि गोपतिर्जनानामाधत्तेस्वपदमनुक्रमागतानाम् ॥ ७४ ॥

बहूनि सन्ति तीर्थानि गिरौ नारायणाश्रिते । सर्वपापहराण्याशु तान्यहं वेदनोजनः
संसारकुहरे घोरे यत्र स्थगितमात्मनः । उर्वशीकुण्डमासाद्य दिनमेकंवसेन्नरः ॥७६॥
उर्वशीदक्षिणे भागे आयुधानि जगत्पतेः । विद्यन्ते दर्शनात्तेषां न शस्त्रभयभाग्भवेत्
य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः । सर्वपापविनिर्मुक्तः सालोक्यं लभते हरेः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डे बदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसम्वादे पञ्चधारादितीर्थ-
माहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

मेरुसंस्थापनतीर्थादिधर्मक्षेत्रादिविविधतीर्थान्तमहत्त्ववर्णनम्

शिव उवाच

ब्रह्मकुण्डाद्दक्षिणतो नरावासगिरिर्महान् । यत्र भगवता मेरुः स्थापितो लोकसुन्दरः

स्कन्द उवाच

कथं भगवता मेरुः स्थापितो नरसन्निधौ । महत्कौतूहलं तात! कथ्यतां यदि रोचते

महादेव उवाच

यदा भगवतो वासो विशालायां समागतः । देवा महर्षयः सिद्धाःसविद्याधरचारणाः
विहाय मेरुशृङ्गाणि भगवद्दर्शनोत्सुकाः । भगवद्दर्शनाह्लादतिरस्कृतसुरालयाः ॥ ४ ॥
तदा तु भगवांस्तेषां सुखहेतोः षडानन ! । उत्पाट्यमेरुशृङ्गाणि करेणैकेन लीलया
स्थापयामास सर्वेषां भगवान्प्रीतिवर्द्धनः ॥ ५ ॥
ततः सर्वे समालोक्यगिरिं काञ्चननिर्मितम् । प्रसन्नास्तुष्टुवुः सर्वेनारायणमनामयम्

देवा ऊचुः

योऽस्मत्सुखाय भवविभ्रमणाय विभ्रल्लीलातनूःकनकशैलमिहाऽऽनिनाय।
जेता सुरार्द्दनशतं त्रिदशैकपक्षस्तस्मै विधेम नम उग्रतपःश्रियाय ॥ ७ ॥
यद्यत्करोति कृपया कृपणार्तितूलशैलाग्निराश्रितकृदेकविदाम्वरिष्ठः ।
स्वेनैव तेन करणेन स तुष्यतां नो यस्याऽन्वकारि पुरुषेण न केनचिद्धै ॥
अस्माकमुन्नतधियां विदधाति सम्यक्छिक्षां पितेव करुणो निजलाभपूर्णः ।
त्रैलोक्य रक्षणविचक्षणदृष्टिपातपूर्णामृताम्बुधिरसो विपदः प्रपायात् ॥ ९

ऋषय ऊचुः

येनाऽध्यस्तं भाति समस्तं जगदेकं क्रीडाभाण्डं सत्यतयाऽजस्यविभूम्नः
भातां वृन्दं यद्धृतनेत्र्याश्रितमूर्तिस्तस्मै नित्यं शाश्वत! तुभ्यं प्रणमाम॥१०

सिद्धा ऊचुः

यत्कृपालवत एव महान्तः सिद्धिमीयुरितरे भवभाजः ।
तेऽचिरेण भवभीमपयोधिं तीर्णवन्त इति नः सुमनीषा ॥ ११ ॥

विद्याधरा ऊचुः

विभो! सद्गुणग्राम! कल्याणमूर्ते !परेशान सम्मानसन्तानहेतो !।
भवत्पादपद्मासवस्वादमत्ताः कृतार्था न चित्रं भवत्यत्र किञ्चित् ॥ १२ ॥

ततस्तुष्टोऽथभगवांस्तेषामासीद्दिवौकसाम् । वरंवृणुध्वमित्युक्तास्तेप्रोचुर्वरदर्षभम्
परितुष्टो भवान्साक्षाद्देवदेवो रमापतिः । बदरी न त्वया त्याज्या न च मेरुः कदाचन
मेरुशृङ्गं प्रपश्यन्ति येजनाःपुण्ययभागिनः । तेषांवैत्वत्प्रसादेनमेरौवासःप्रजायताम्

तत्र भुक्त्वा चिराद्भोगान्भूयादन्ते लयस्त्वयि ।
एवमस्त्विति चाऽऽभाष्य तत्रैवाऽन्तर्हितो हरिः ॥ १६ ॥

ततः प्रभृति ते सर्वे मेरुशृङ्गविहारिणः । नरनारायणस्याऽन्ते पाल्यमाना मुहुर्मुहुः ॥
कदाचिद्दिवि तिष्ठन्ति कदाचिन्मेरुमध्यतः । निर्विशङ्का निरुद्वेगा ऋषयश्चतपोधनाः
भगवानपि तत्रैव नररूपेण तिष्ठति । धनुर्बाणधरः श्रीमांस्तपसा पावकोपमः ॥

आनन्दमृषिवृन्दस्य जनयंस्तप आस्थितः ॥१६ ॥

ततस्तु परमंतीर्थंलोकपालाभिवन्दितम् । यत्रसंस्थापयामासलोकपालान्हरिःस्वयम्

स्कन्द उवाच

कथं भगवता तत्र लोकपालाश्च स्थापिताः । महत्कौतूहलं तात कथयस्व महामते

शिव उवाच

एकदा मेरुमध्यस्थाश्रयानिह हरन्हरिः । देवानामृषिमुख्यानां चरितं द्रष्टुमुद्यतः ॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय नमस्कृत्य दिवौकसः । ऊचुस्ते विनयात्सर्वेप्रसीदभगवन्विभो
क्षणं विश्राम्यविधिवद्दृष्ट्वातांविरलांभुवम् । सान्निध्यमृषिदेवानामयुक्तंभावयन्मिथः
ततः प्रहस्य भगवानुवाच मधुसूदनः । लोकपालान्समाहूय नाऽत्र स्थेयं भवद्भिर्वैः
ऋषयस्तापसाःसिद्धास्त्वौकानिवसन्ति हि । भवद्भिर्धानामास्थानंपुरैवकल्पितंमया

ततःस त्वरितो गत्वा रम्ये गिरिवरेहरिः । लोकपालान्समाहूयस्थापयामासतान्गुह!
तत्रैव शैलदण्डेन हत्वाद्रिंजलकाङ्क्षया । क्रीडापुष्करणीं तेषां निर्ममे सुमनोहराम्॥
सस्त्रीका यत्र गीर्वाणा विचरन्ति निजेच्छया ।
गायन्ति स्वनुमोदन्ति गन्धर्वास्त्रिदिवौकसाम् ॥ २६ ॥
वनानि कुसुमामोदरम्याणि परिपोषतः । दिनानियत्रगच्छन्ति क्षणप्रायाणिदेहिनाम्
भगवानपि तत्रैव तेषामानन्दमावहन् । द्वादश्यां पौर्णमास्याञ्च स्वयमायातिमज्जने
तत्पश्चादृषयः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः । यत्रस्नात्वा विधानेन गुह! मध्याह्नकालतः ॥
असङ्गं परमं ज्योतिर्जले पश्यन्ति चक्षुषा ॥ ३२ ॥
सर्वतीर्थावगाहेन यत्फलम्परिकीर्तितम् । तत्फलंतत्क्षणादेव दण्डपुष्करिणीक्षणात्
यत्र काम्यानिकर्माणिसफलानिमनीषिणाम् । यत्रपिण्डप्रदानेनगयातोऽष्टगुणंफलम्
यज्ञो दानं तपः कर्म सर्वमक्षयमुच्यते । द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य ज्येष्ठे मासि षडानन!॥
तत्र स्नात्वा विधानेन कृतकृत्यो भवेद्यतः । बदरीतीर्थमध्ये तु गुप्तमेतत्सुरोत्तमैः ॥
न वाच्यं यत्र कुत्राऽपि तव प्रीत्या मयोदितम् ॥ ३६ ॥
वक्तव्यं किमिह बहुप्रभूतपुण्याः पश्यन्ति प्रथितमिदं सुरैकगुप्तम् ।
नाऽन्येषां कथमपि चेतसि प्रसङ्गाद्देवैः स्यादनुदिनचिन्तितं गुहैतत् ॥ ३७ ॥
येषाम्वै भगवति चेत्समग्रकर्मस्वाध्यायाभ्यसनविधिक्रमेण जातम् ।
पश्यन्ति त्रिभुवनदुर्ल्लभं सुतीर्थं दण्डोदं न भवति चाऽन्यथा सुदृष्टम् ॥ ३८ ॥
दण्डोदकात्परं तीर्थं न विष्णोः सदृशोऽमरः । विशालासदृशं क्षेत्रं नभूतंनभविष्यति
सेवनीया प्रयत्नेन विशाला च विचक्षणैः । य इच्छेत्सततं धाम भगवत्पार्श्ववर्ति वै

स्कन्द उवाच

गङ्गामाश्रित्य तीर्थानिकानि सन्तीहसत्पदे । श्रेयस्कराणिभूरीणिसंक्षेपात्तानिमेवद

महादेव उवाच

गङ्गायां यत्र संयोगो मानसोद्भेदसन्निधौ । तत्तीर्थं विमलं पुण्यं प्रयागादधिकं महत्
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि वायुभोजनतो भवेत् । तत्फलं स्नानमात्रेण गङ्गायां सङ्गमेनृणाम्

सङ्गमाद्दक्षिणे भागे धर्मक्षेत्रं प्रकीर्तितम्। यत्र मूर्त्यां श्रुतौ जातौ नरनारायणावृषी
तत्क्षेत्रं पावनं मर्त्ये सर्वेषामुत्तमोत्तमम्। धर्मस्तत्रैव भगवांश्चतुष्पादवतिष्ठति ॥४९
यत्रयज्ञास्तपोदानंयत्किञ्चित्क्रियतेनृभिः। तत्पुण्यस्यक्षयोनास्तिकल्पकोटिशतैरपि
ततो दक्षिणदिग्भाग उर्वशीसङ्गमाभिधम्। सर्वपापहरं पुंसां स्नानमात्रेण देहिनाम्
कूर्मोद्धारस्ततः साक्षाद्धरिभक्त्येकसाधनम्। स्नानमात्रेणभूतानां सत्त्वशुद्धिः प्रजायते
ब्रह्मावर्त्तस्ततः साक्षाद्ब्रह्मलोकैककारणम्। दर्शनादेव तीर्थस्य सर्वपापक्षयो भवेत् ॥
बहूनि सन्ति तीर्थानिदुर्गम्यानीहदेहिनाम्। संक्षेपात्कथितं वत्स! तवादरवशादिदम्
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः। सर्वपापविनिर्मुक्तः पदं विष्णोः प्रपद्यते ॥

राजा विजयमाप्नोति सुतार्थी लभते सुतम्।
कन्यार्थी लभते कन्यां कन्या विन्दति सत्पतिम् ॥ ५२ ॥
धनार्थी धनमाप्नोति सर्वकामैकसाधनम् ॥ ५३ ॥

मासमात्रं नरोभक्त्याशृणुयाद्यःसमाहितः। तस्याऽभीष्टसमावाप्तिर्दुर्लभाऽपि नसंशयः

आधिव्याधिभयं घोरं दारिद्र्यं कलहं तथा।
यस्य गेहेषु माहात्म्यं तत्रैतानि न कर्हिचित् ॥ ५५ ॥

नाऽपमृत्युर्न सर्पादि दौर्भाग्यञ्चापि वर्तते। दुःस्वप्नग्रहपीडा च परराष्ट्रभयं तथा
युद्धे यात्राप्रयाणे च पठनीयं प्रयत्नतः। विवाहे च विवादे च शुभकर्मणि यत्नतः ॥

पूर्णम्वाऽध्यायमात्रम्वा तदर्धम्वा विचक्षणैः।
सर्वकार्यप्रसिद्धिः स्यान्नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ५८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
बदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसम्वादे बदरिकाश्रमे मेरुसंस्था
पनतीर्थलोकपालतीर्थदण्डपुष्करिणीतीर्थधर्मक्षेत्रादिविविध-
तीर्थक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनंनामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इति श्रीस्कान्दे द्वितीये वैष्णवखण्डे तृतीयं बदरिकाश्रममाहात्म्यं समाप्तम् ॥२-३॥

—:o:—

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

* श्रीराधादामोदराभ्यांनमः *

कार्त्तिकमासमाहात्म्यारम्भः

प्रथमोऽध्यायः

कार्त्तिकमासव्रतप्रशंसनवर्णनम्

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

ऋषय ऊचुः

सूत! नः कथितम्पुण्यं माहात्म्यमाश्विनस्य च ।

भूयोऽन्यच्छ्रोतुमिच्छामः कार्त्तिकस्य च वैभवम् ॥ २ ॥

कलौ कलुषचित्तानां नराणांपापकर्मणाम् । संसाराब्धौनिमग्नानामनायासेनकागतिः

को धर्मःसर्वधर्माणामधिकोमोक्षसाधकः । इहाऽपि मुक्तिदो नृणामेतत्त्वंकथय प्रभो!

सूत उवाच

भवद्भिर्यदहं पृष्टस्तदेतत्पृष्टवान्मुनिः । नारदो ब्रह्मणः पुत्रो ब्रह्माणं तु जगद्गुरुम् ॥

तथैवसत्यभामाच श्रीकृष्णंजगदीश्वरम् । अपृच्छत्कार्तिकस्यैव वैभवं श्रवणोत्सुका

वालखिल्यैश्च ऋषिभिर्यदुक्तमृषिसंसदि । श्रीसूर्यारुणसंवादरूपेणाऽतिमनोहरम् ॥

कैलासे शङ्करेणैवकार्तिकस्यच वैभवम् । वर्णितं षण्मुखस्याऽग्रे नानाख्यानसमन्वितम्

पृथक्प्रतिनारदेनकथितंचमाहात्म्यकम् । कार्तिकस्य च विप्रेन्द्रा श्रुत्वाब्रह्ममुखात्पुरा

एकदा नारदोयोगी सत्यलोकमुपागतः । पप्रच्छ विनयेनैव सर्वलोकपितामहम् ॥

श्रीनारद उवाच

पापेन्धनस्य घोरस्य शुष्कार्द्रस्यच भूरिशः । को वह्निर्दहते ब्रह्मंस्तद्भवान्वक्तुमर्हति

नाऽज्ञातं त्रिषु लोकेषु ब्रह्माण्डान्तर्गतस्ययत् । विद्यतेतवदेवेशत्रिविधस्यसुनिश्चितम्

मासनाम्प्रवरो मासो देवानामुत्तमोत्तमः । तीर्थानि तद्विशेषेण कथयस्व पितामह!॥

ब्रह्मोवाच

मासानां कार्तिकः श्रेष्ठो देवानाम्मधुसूदनः। तीर्थंनारायणाख्यं हि त्रितयंदुर्लभंकलौ

नारद उवाच

भगवंस्तव दासोऽस्मि भक्तोऽस्मि हरिवल्लभः।
वैष्णवान्ब्रूहि मे धर्मान्सर्वज्ञोऽसि पितामह !॥ १५ ॥

आदौकार्तिकमाहात्म्यंवक्तुमर्हसिमेप्रभो !। दीपदानस्यमाहात्म्यंव्रतिनांनियमांस्तथा

गोपीचन्दनमाहात्म्यं तुलस्याश्च तथा विभो !।
धात्र्याश्चैव च माहात्म्यं विधिं स्नानादिकस्य च।
व्रतारम्भः कदा कार्य उद्यापनविधिं तथा॥ १७ ॥

यत्किञ्चिद्वैष्णवंधर्मं तत्सर्वंवक्तुमर्हसि। येनाऽहं त्वत्प्रसादेन पदं यास्याम्यनामयम्

सूत उवाच

इति पुत्रवचः श्रुत्वा ब्रह्मा हर्षसमन्वितः। राधादामोदरं स्मृत्वा प्रोवाचतनुजम्प्रति

ब्रह्मोवाच

साधुपृष्टं त्वया पुत्र! लोकोद्धरणहेतवे। कथयामि न सन्देहः कार्त्तिकस्य च वैभवम्

एकतःसर्वतीर्थानिसर्वेयज्ञाःसदक्षिणाः। कार्त्तिकस्यतुमासस्यकलानार्हन्तिषोडशीम्

एकतःपुष्करेवासः कुरुक्षेत्रे हिमालये। एकतः कार्त्तिकः पुत्र सर्वपुण्याधिको मतः॥

स्वर्णानि मेरुतुल्यानि सर्वदानानिचैकतः। एकतःकार्त्तिको वत्स! सर्वदाकेशवप्रियः

यत्किञ्चित्क्रियते पुण्यं विष्णुमुद्दिश्य कार्त्तिके।
तस्य क्षयं न पश्यामि मयोक्तं तव नारद !॥ २४ ॥

सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यंप्राप्यदुर्लभम्। तथाऽऽत्मानंसमादध्यान्नभ्रश्येतयथापुनः

दुष्प्राप्यं प्राप्य मानुष्यंकार्त्तिकोक्तंचरेन्नयः। धर्मं धर्मभृतांश्रेष्ठ! समातापितृघातकः

कार्त्तिकः खलुवै मासः सर्वमासेषु चोत्तमः। पुण्यानाम्परमं पुण्यं पावनानाञ्चपावनम्

अस्मिन्मासेत्रयस्त्रिंशद्देवाःसन्निहिता मुने। अत्रस्नानानिदानानिभोजनानिव्रतानिच

तिलधेनुं हिरण्यञ्च रजतं भूमिवाससी। गोप्रदानानि कुर्वन्ति सर्वभावेन नारद !॥

तानि दानानि दत्तानि गृह्णन्ति विधिवत्सुराः ।
यत्किञ्च दत्तं विप्रेन्द्र! तपश्चैव तथा कृतम् ॥ ३० ॥
तदक्षय्यफलं प्रोक्तं विष्णुना प्रभविष्णुना । पापानांमोक्षणञ्चैवकार्त्तिकेमासिशस्यते
तस्माद्यत्नेन विप्रेन्द्र ! कार्त्तिके मासि दीयते ।
यत्किञ्चित्कार्त्तिके दत्तं विष्णुमुद्दिश्य मानवैः ॥ ३२ ॥
तदक्षयं हि लभते अन्नदानं विशेषतः । यथा नदीनाम्विप्रेन्द्र शैलानाञ्चैव नारद !॥
उदधीनाञ्च विप्रर्षे! क्षयोनैवोपपद्यते । दानं कार्त्तिकमासेतु यत्किचिद्दीयते मुने !॥
न तस्याऽस्तिक्षयोविप्र! पापंयातिसहस्रधा । सम्प्राप्तंकार्त्तिकंदृष्ट्वापरान्नंयस्तुवर्जयेत्
दिने दिनेऽतिकृच्छ्रस्य फलम्प्राप्नोत्ययत्नतः ।
न कार्त्तिकसमो मासो न कृतेन समं युगम् ॥ ३६ ॥
न वेदसदृशं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम् । न चाऽन्नसदृशं दानं न सुखंभार्य्यासमम्
न्यायेनोपार्जितं द्रव्यं दुर्लभं दानकारिणाम् ।
दुर्लभं मर्त्यधर्माणां तीर्थे च प्रतिपादनम् ॥ ३८ ॥
कार्त्तिके मुनिशार्दूल! शालग्रामशिलार्चनम् । स्मरणं वासुदेवस्य कर्तव्यं पापभीरुणा
एतादृशं कार्त्तिकञ्च अकृतेनैव यो नयेत् । पूर्वं कृतस्य पुण्यस्य क्षयमाप्नोत्यसंशयम्

नारद उवाच

अशक्तेन कथं कार्यं कार्त्तिकव्रतमुत्तमम् । येन तत्फलमाप्नोति तन्मे वद पितामह ! ॥

ब्रह्मोवाच

अशक्तस्तु यदा मर्त्यस्तदैवं व्रतमाचरेत् । अन्यस्मैद्रविणं दत्त्वाकारयेत्कार्त्तिकव्रतम्
तस्मात्पुण्यंप्रगृह्णीत दानसङ्कल्पपूर्वकम् । द्रव्यदानेऽप्यशक्तश्चेद्यदा देवर्षिसत्तम !॥४३
तदा तेन प्रकर्तव्यं पानं तीर्थजलस्य च ।
तत्राऽप्यशक्तो यो मर्त्यस्तेन नित्यं हरेर्मुदा ॥ ४४ ॥
स्मरणं च प्रकर्तव्यं नाम्ना नियमपूर्वकम् । अखण्डितं तदा तेन कार्त्तिकव्रतजं फलम्
विष्णोः शिवस्य वा कुर्यादालये हरिजागरम् ।

शिवविष्णवोर्गृहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि ॥ ४६ ॥
दुर्गाटव्यां स्थितो वाऽथ यदि वाऽऽपद्गतो भवेत् ।
कुर्यादश्वत्थमूले तु तुलसीनां वनेष्वपि ॥ ४७ ॥

विष्णुनामप्रबन्धानां गायनंविष्णुसन्निधौ । गोसहस्रप्रदानस्य फलमाप्नोतिमानवः
वाद्यकृत्पुरुषश्चाऽपि वाजपेयफलं लभेत् । सर्वतीर्थावगाहोत्थं नर्तकः फलमाप्नुयात्
सर्वमेतल्लभेत्पुण्यमेतेषां द्रव्यदः पुमान् । श्रवणाद्दर्शनाद्वाऽपि षडंशं फलमाप्नुयात् ॥

आपद्गतो यदाऽप्यम्भो न लभेत्कुत्रचिन्नरः ।
व्याधितो वाऽथवा कुर्याद्विष्णोर्नाम्नाऽपि मार्जनम् ॥ ५१ ॥

उद्यापनविधिं कर्तुमशक्तो यो व्रतस्थितः । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्व्रतसम्पूर्तिहेतवे
अशक्तो दीपदानाय परदीपं प्रबोधयेत् । तस्य वा रक्षणं कुर्याद्वातादिभ्यः प्रयत्नतः

श्रीविष्णोः पूजनाऽभावे तुलसीधात्रिपूजनम् ।
सर्वाऽभावे व्रती कुर्याद् ब्राह्मणानां गवामपि
तस्याऽप्यभावे मनसि विष्णोर्नामाऽनुकीर्तनम् ॥ ५४ ॥

नारद उवाच

ब्रह्मन्! ब्रूहि विशेषेण धर्मान् कार्त्तिकसम्भवान् ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे कार्त्तिकव्रतप्रशंसावर्णनंनाम
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

कार्त्तिकव्रतधर्मनिरूपणम्

ब्रह्मोवाच

अथ कार्त्तिकमासस्य धर्मान्वक्ष्यामि नारद !। सम्प्राप्तं कार्त्तिकंदृष्ट्वापरान्नंयस्तुवर्जयेत्
स तु मोक्षमवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा । सर्वेषामेव धर्माणांगुरुपूजा परा मता
गुरुशुश्रूषया सर्वं प्राप्नोति ऋषिसत्तम !॥ २ ॥
गुरौ तुष्टे च तुष्टाः स्युर्देवाः सर्वे सवासवाः । गुरौरुष्टेचरुष्टाःस्युर्देवाःसर्वेसवासवाः
कार्त्तिके मासि सम्प्राप्ते कृत्वा कर्माणि भूरिशः ॥ ४ ॥
अकृत्वा गुरुशुश्रूषां नरकानेव विन्दति
यत्किञ्चिद्वा समादिष्टो गुरुणा तत्समाचरेत् ॥ ५ ॥
आज्ञप्तो गुरुणा विप्र! न तद्वाक्यं तु लङ्घयेत् । यदि दुःखादिकं प्राप्तंगुरुं तुशरणंव्रजेत्
मातृत्वे च पितृत्वे च गुरुमेव स्मरेद्बुधः । गुरौन प्राप्यतेयत्तन्नान्यत्राऽपिहिलभ्यते
गुरुप्रसादात्सर्वं तु प्राप्नोत्येव न संशयः । मेधावी कपिलश्चैव सुमतिश्च महातपाः
गौतमस्य गुरोः सम्यक्सेवयाऽमरतां गताः ॥ ८ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्त्तिके विष्णुतत्परः । गुरुसेवां प्रकुर्वीत ततोमोक्षमवाप्नुयात्
नरेभ्यो वैष्णवं धर्मं यो ददाति द्विजोत्तमः । ससागरमहीदाने तत्पुण्यं लभते हिसः
तिलधेनुं हिरण्यं च रजतं भूमिवाससी । गोप्रदानानि दास्यन्ति सर्वभावेन सुव्रत!
सर्वेषामेव दानानां कन्यादानं विशिष्यते । सहस्रेणेव धेनूनां शतं चाऽनडुहां समम्
दशानडुत्समं यानं दशयानसमो हयः । हयदानसहस्रेभ्यो गजदानं विशिष्यते ॥१३॥
गजदानसहस्राणां स्वर्णदानंच तत्समम् । स्वर्णदानसहस्राणांविद्यादानंच तत्समम्
विद्यादानात्कोटिगुणं भूमिदानं विशिष्यते । भूमिदानसहस्रेण गोप्रदानं विशिष्यते
गोप्रदानसहस्रेभ्यो ह्यन्नदानं विशिष्यते । अन्नाधारमिदंप्रोक्तं तस्माद्देयं तु कार्त्तिके ॥

परान्नवर्जनादेव लभेच्चान्द्रायणं फलम् ।
दिने दिनेऽतिकृच्छ्रस्य फलम्प्राप्नोति मानवः ॥ १७ ॥

कार्त्तिकेवर्जयेन्मासंसन्धानञ्चविशेषतः । राक्षसींयोनिमाप्नोतिसकृन्मांसस्यभक्षणात्
प्रवृत्तानां तु भक्ष्याणांकार्त्तिके नियमेकृते । अवश्यं विष्णुरूपत्वं प्राप्यतेमोक्षदंपदम्
ब्राह्मणेभ्यो महीं दत्वा ग्रहणे सूर्यचन्द्रयोः । यत्फलंलभतेवत्स! तत्फलंभूमिशायिनः
भोजनं द्विजदम्पत्योःपूजनं चविलेपनैः । कम्बलानिचरत्नानिवासांसि विविधानिच
तूलिकाश्च प्रदातव्याः प्रच्छादनपटैः सह । उपानहावातपत्रं कार्त्तिके देहि सुव्रत !॥
कार्त्तिकेक्षितिशायीचहन्यात्पापंयुगार्जितम् । जागरं कार्त्तिकेमासियःकरोत्यरुणोदये

दामोदराग्रे देवर्षे! गोसहस्रफलं लभेत् ।
नदीस्नानं कथा विष्णोर्वैष्णवानाञ्चदर्शनम् ॥ २४ ॥

नभवेत्कार्त्तिके यस्यहरेत्पुण्यं दशाब्दिकम् । पुष्करंयःस्मरेत्प्राज्ञःकर्मणा मनसागिरा
कार्त्तिके मुनिशार्दूल! लक्षकोटिगुणं भवेत् । प्रयागोमाघमासे तु पुष्करंकार्त्तिके तथा
अवन्ती माधवेमासिहन्यात्पापंयुगार्जितम् । धन्यास्तेमानवालोकेकलिकालेविशेषतः

ये कुर्वन्ति नरा नित्यं प्रीत्यर्थं हरिपूजनम् ।
तारितास्तैश्च पितरो नरकाच्च न संशयः ॥ २८ ॥

क्षीरादिस्नपनंविष्णोःक्रियतेपितृकारणात् । कल्पकोटिंदिवंप्राप्यवसन्तित्रिदिवैःसह
कार्त्तिकेनाऽर्चितोयैस्तुकृष्णस्तुकमलेक्षणः । जन्मकोटिषु विप्रेन्द्र! नतेषांकमलागृहे
अहो मुग्धा विनष्टास्ते पतिताःकलिकन्दरे । यैर्नाऽर्चितोहरिर्भक्त्याकमलैरसितैःसितैः
पद्मेनैकेन देवेशं योऽर्चयेत्कमलापतिम् । वर्षायुतसहस्रस्य पापस्य कुरुते क्षयम् ॥

पुष्कराऽर्चनयोगेन श्वेतो मुक्तिमवाप ह ॥ ३२ ॥

अपराधसहस्राणि तथा सप्तशतानि च । पद्मेनैकेन देवेशः क्षमते प्रणतोऽर्चितः ॥३३
तुलसीपत्रलक्षेण कार्त्तिके योऽर्चयेद्धरिम् । पत्रेपत्रे मुनिश्रेष्ठ! मौक्तिकं लभते फलम्॥
मुखेशिरसि देहेतु कृष्णोत्तीर्णांतुयोवहेत् । तुलसींकृष्णनिर्माल्यैर्योगात्रंपरिमार्जयेत्

सर्वरोगैस्तथा पापैर्मुक्तो भवति मानवः ॥ ३५ ॥

शङ्खोदकं हरेर्भक्तिर्निर्माल्यं पादयोर्जलम् । चन्दनं धूपशेषं च ब्रह्महत्यापहारकम् ॥
कार्त्तिकेमासि विप्रेन्द्रप्रातःस्नानपरायणः । विप्रेभ्यश्चाऽन्नदानं तुकुर्याच्छक्त्यनुसारतः
सर्वेषामेव दानानामन्नदानं विशिष्यते । अन्नेन जायते लोकनैह्यन्नेवाऽभिवर्द्धते ॥ ३८
अन्नं हि सर्वभूतानां प्राणभूतं परं विदुः । अन्नदः सर्वदो लोके सर्वयज्ञादिकृद्भवेत् ॥
तीर्थस्नानेनकिंतस्य देवयात्रादिनाऽपि किम् । सर्वं सम्पद्यते ब्रह्मन्नदानान्न संशयः
सत्यकेतुर्द्विजः पूर्वं चाऽन्नदानेन केवलम् । सर्वपुण्यफलम्प्राप्य मोक्षम्प्राप सुदुर्लभम्
कार्त्तिकव्रतनिष्ठस्तु कुर्याद्गोदानमुत्तमम् । व्रतं सम्पूर्णतां याति गोदानेन न संशयः
गोदानात्परमंदानं संसारार्णव तारकम् । नास्तिनारदलोकेऽस्मिन्सुशर्माब्राह्मणोयथा
कार्त्तिके मासिविप्रेन्द्र! दत्त्वा दानान्यनेकशः । हरिस्मृतिविहीनश्चेन्न पुनन्तिकदाचन
नामस्मरणमाहात्म्यं मयावक्तुं न शक्यते । पुष्करेण यथा पूर्वं नारकीयाश्च मोचिताः

गोविन्द! गोविन्द! हरे! मुरारे! गोविन्द ! गोविन्द! मुकुन्द! कृष्ण !।
गोविन्द! गोविन्द! रथाङ्गपाणे! गोविन्द! दामोदर! माधवेति ॥ ४६ ॥

श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ।
कार्त्तिकेयः पठेन्मर्त्यः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥ ४७ ॥

यैर्न श्रुतं भागवतं पुराणं नाऽऽराधितो वै पुरुषः पुराणः ।
हुतं मुखे नैव धरामराणां तेषां वृथा जन्म गतं नराणाम् ॥ ४८

कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र! यस्तु गीतां पठेन्नरः । तस्यपुण्यफलं वक्तुं ममशक्तिर्नविद्यते
गीतायास्तु समं शास्त्रं न भूतं न भविष्यति । सर्वपापहरानित्यंगीतैकामोक्षदायिनी
एकेनाऽध्यायपाठेन सर्वपापकृतोऽपि च । मुच्यन्ते नरकाद्घोराज्जडोवै ब्राह्मणो यथा

शालिग्राम शिलादानं यः कुर्यात्कार्त्तिके मुने!।
तस्य:पुण्यस्य विश्रान्तिर्विष्णुना न निरूपिता ॥ ५२ ॥

शालिग्रामं समभ्यर्च्य श्रोत्रियाय महामुने! । दानं यः कुरुतेविप्र! तस्यपुण्यफलंश्रृणु
सप्तसागरपर्यन्तं भूदानाद्यत्फलं भवेत् । शालिग्रामशिलादानात्तत्फलं समवाप्नुयात्
शालिग्रामशिलादानात्कार्त्तिके ... यथा । विधवा सधवा जातविवाहे पश्चमेऽहनि

तस्मात्तु कार्त्तिकेमासि स्नानदानपुरःसरम् । शालिग्रामशिलादानंकर्तव्यंनाऽत्रसंशयः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्येब्रह्मनारदसम्वादे कार्त्तिकव्रतधर्मनिरूपणं नाम
द्वितीयोऽध्यायः

तृतीयोऽध्यायः

कार्त्तिकवैभववर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भूयः शृणुष्व विप्रेन्द्र! कार्त्तिकस्य चवैभवम् । दशमीदिनमारभ्यदशम्यांतुसमापयेत
पौर्णमासीं समारभ्य पौर्णमास्यां समापयेत् ।
आश्विनस्य हरिदिनीं समारभ्य तु भक्तिमान् ॥ २ ॥
दामोदरं नमस्कृत्य कुर्यात्सङ्कल्पमादितः । दामोदर! नमस्तेऽस्तु सर्वपापविनाशन !
कार्त्तिकस्य व्रतं कर्तुमनुज्ञां दातुमर्हसि । निर्विघ्नं कुरुदेवेश आमासं पुरुषोत्तम !॥४
इतिसम्प्रार्थ्य विधिनाकार्त्तिकव्रतमाचरेत् । अनूरुं वदता प्रोक्तं भास्करेण श्रुतं मया
कलौ च स्वर्गगमनकारणं श्रूयतां हि तत् ॥ ५

सूर्य उवाच

द्वादशानां तु मासानां मार्गशीर्षोऽतिपुण्यदः ॥ ६ ॥
तस्मात्पुण्यफलः प्रोक्तो वैशाखो नर्मदातटे । ततोलक्षगुणः प्रोक्तः प्रयागेमाघमासकः
तस्मान्महाफलःप्रोक्तः कार्त्तिको जलमात्रके । एकतः सर्वदानानिव्रतानिनियमास्तथा
एकतः कार्तिकस्नानं ब्रह्मणा तुलया धृतम् । सन्ततिश्चैव सम्पत्तिः कलौयेषांप्रजायते
अवश्यं तैः कृतं विद्धिकार्त्तिकस्नानमादरात् । स्नानं चदीपदानं च तुलसीवनपालनम्
भूमिशय्या ब्रह्मचर्यं तथाद्विदलवर्जनम् । विष्णुसङ्कीर्तनं सत्यं पुराणश्रवणं तथा ॥

कार्त्तिकेमासिकुर्वन्तिजीवन्मुक्तास्तएवहि । नकार्त्तिकसमंधर्म्यमर्थ्यंनोकार्त्तिकात्परम्
न कार्त्तिकसमं काम्यं मोक्षदानं न कार्त्तिकात् । युधिष्ठिरेण धर्मार्थमर्थार्थं चभ्रुत्रेणच
श्रीकृष्णेन तु कामार्थं मोक्षार्थं नारदेन च । कृतमेतद्व्रतंतस्माच्छ्रेष्ठंकृष्णप्रियं च हि

अरुण उवाच

ब्रूहि भास्कर! सर्वात्मन्कदाऽऽरभ्यव्रतंकृतम् । सफलंजायतेसम्यक्काचपूज्याऽत्रदेवता

भास्कर उवाच

अहं विष्णुश्च शर्वश्चदेवीविघ्नेश्वरस्तथा । एकोऽहं पञ्चधाजातोनाट्येसूत्रधरो यथा
अस्माकं सर्व एवैतेभेदा विद्धिखगेश्वर !। तस्मात्सौरैश्चगाणेशैःशाक्तैःशैवैश्चवैष्णवैः
कर्तव्यं कार्त्तिकस्नानं सर्वपापापनुत्तये । सूर्यस्य प्रीतये कार्यं तुलासंस्थे दिवाकरे ॥
इषपूर्णां समारभ्ययावत्कार्त्तिकपूर्णिमा । तावत्स्नानं विधातव्यं शिवसन्तुष्टये नरैः
देवीपक्षं समारभ्य महारात्रिचतुर्दशी । तावत्स्नानं विधातव्यं देवी सम्प्रीयतामिति
गणपक्षं समारभ्य कृष्णा याकार्त्तिके भवेत् । चतुर्थी तावदेव स्यात्स्नानंगणपतुष्टये
एकादशींसमारभ्यआश्विनस्याऽसितेतराम् । एकादश्यांकार्त्तिकस्यशुक्लायांपरिपूर्यते
कृतं येन तु तस्य स्यात्परितुष्टो जनार्दनः ॥ २२ ॥
न कार्त्तिकसमो मासो न काशीसदृशी पुरी । न प्रयागसमं तीर्थं न देवः केशवात्परः
प्रसङ्गाद्वाबलात्कारैर्ज्ञात्वाज्ञात्वाकृतंभवेत् । स्नानंकार्त्तिकमासस्यनपश्येद्यमयातनाम्
स्नानार्थं चेन्न सामर्थ्यं दत्वाऽन्यस्मै धनादिकम् ।
स्नातस्य तस्य हस्तस्य ग्रहणात्पुण्यभाग्भवेत् ॥ २५ ॥
अथवाकार्त्तिकस्नानं ये कुर्वन्तिद्विजातयः । तेषांप्रावरणंदत्त्वास्नानजंफलमाप्नुयात्
राधादामोदरः पूज्यः कार्त्तिके तु विशेषतः ॥ २७ ॥
स्वर्णस्य वाऽथ रौप्यस्याऽप्यभावे शुल्वजामपि ।
मृज्जां वा चित्रजातां वाऽथ वा पिष्टविचित्रिताम् ॥ २८ ॥
दामोदरस्यराधायास्तुलस्योऽर्चयन्ति ये । मूर्तिं ते तु नराज्ञेयाजीवन्मुक्तानसंशयः
अपि पाप[illegible]कार्त्तिकस्नानतोनरः । मुक्तोऽवश्यंसमवतिमाऽत्रकार्याविचारणा

तुलस्यभावे कर्तव्यापूजा धात्रीतले खग !। मुख्यपूजाविधानं तु कर्तव्यं सूर्यमण्डले
अप्रत्यक्षाः सर्वदेवाः प्रत्यक्षो भगवानयम् । सर्वे देवाःकालवशाःकालकालोदिवाकरः
एतदाराधनेऽशक्तः प्रतिमां पूजयेन्नरः । प्रतिमातोऽधिकं पुण्यं ब्राह्मणस्य तु पूजने॥
दरिद्रो दानपात्रं स्याद्विद्यावांस्तुविशेषतः । विप्राभावेपूजनीयागावःकृष्णामनोहराः
विष्णोर्मूर्तिर्जङ्गमतः स्थावरा तु प्रशस्यते। शूद्रस्थापितमूर्तीनांनमस्कारंकरोतियः

पितृभिर्निरयं याति दशपूर्वैर्दशापरैः ॥ ३५ ॥
शूद्रार्चितस्य संस्पर्शाद्दहेदासप्तमं कुलम् ॥ ३६ ॥
तस्माद्विचार्य्य विप्रैर्या स्थापिता तां समर्चयेत् ।
ततोऽपि या देवताभिः कृता सा भुक्तिमुक्तिदा ॥ ३७ ॥
मूर्त्यभावे पूजनीयोऽश्वत्थो वाऽथ वटोऽथ वा ।
अश्वत्थरूपी विष्णुः स्याद्वटरूपी शिवो यतः ॥ ३८ ॥
कार्त्तिके तुलसीशाकं ताम्बूलं वा नराधमः ।
अज्ञानाज्ज्ञानतो वाऽपि भुञ्जानो निरयं व्रजेत् ॥ ३९ ॥
शालग्रामशिलाचक्रे नित्यं सन्निहितो हरिः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शालग्रामं प्रपूजयेत् ॥ ४० ॥

रुद्रशापवशाद्गावो विष्ठाभक्षणतत्पराः । तथाऽपि ताः पूजनीया लोकद्वयफलप्रदाः ॥

ब्रह्मांऽशकसमुद्भूते पालाशे यस्तु भोजनम् ।
कुर्यात्कार्तिकमासेऽसौ विष्णुलोकं प्रयास्यति ॥ ४२ ॥

अश्वत्थरूपी भगवान्वटरूपी सदाशिवः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकार्त्तिकेऽश्वत्थमर्चयेत् ॥
या नारी कार्त्तिके मासिलक्षंकुर्यात्प्रदक्षिणाः । राधादामोदरं पूज्य मन्दवारे च तत्तले
दम्पती भोजयेद्राधादामोदरस्वरूपिणौ । भोजयित्वा सपत्नीकान्पश्चाद्भुञ्जीतवाग्यता
वन्ध्याऽपि लभतेपुत्रमितरासांतुकाकथा। सदासन्निहितोविष्णुर्द्विपत्सुब्राह्मणेयथा
बोधिद्रुमे पादपेषु शालग्रामे शिलासु च । तस्मादश्वत्थमूलेवै कर्तव्यं विष्णुपूजनम्
अश्वत्थ पूजा स्पर्शेन कर्तव्या शनिवासरे । अन्यवारेऽश्वत्थसङ्गाद्दरिद्रो जायते नरः

स्नानं जागरणं दीपं तुलसीवनपालनम् । कार्त्तिके मासि कुर्वन्तिते नराविष्णुमूर्तयः
सम्मार्जनंविष्णुगृहेस्वस्तिकादिनिवेदनम् ।विष्णोःपूजांचयेकुर्युर्जीवन्मुक्तास्तुतेनराः

स्नानकालं प्रवक्ष्यामि तीर्थादिषु च यत्फलम् ।
स्नानधर्मांश्च ये केचित्तान्सर्वान्मे निबोधत ॥ ५१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे कार्त्तिकवैभववर्णनं नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

कार्त्तिकस्नानविधिनिरूपणम्

ब्रह्मोवाच

नाडीद्वयावशिष्टायांरात्र्यांगच्छेज्जलाशयम् । तुलसीमृत्तिकायुक्तः सवस्त्रकलशोमुने
आगत्य तोयनिकटे तीरे संस्थाप्यपात्रकम् । पादप्रक्षालनंकृत्वादेशकालादिचोच्चरेत्
स्मरेद्गङ्गादिकानद्योविष्णुशर्वादि देवताः । नाभिमात्रेजलेस्थित्वा मन्त्रमेतमुदीरयेत्
कार्त्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन ।। प्रीत्यर्थं तव देवेश! दामोदर! मया सह
नित्ये नैमित्तिके कृत्वाकार्त्तिकेपापनाशन । स्नानं चार्घं प्रदास्यामि निर्विघ्नंकुरुकेशव
तीर्थादिदेवताभ्यश्चक्रमादर्घ्यादिदापयेत् । गृहाणाऽर्घ्यंमया दत्तं राधया सहितोहरे!
नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने । नमस्तेऽस्तुहृषीकेश! गृहाणार्घ्यंनमोऽस्तुते
व्रतिनः कार्त्तिके मासि स्नातस्यविधिवन्मम । गृहाणाऽर्घ्यं मयादत्तंदनुजेन्द्रनिषूदन!
किरणा धूतपापा चपुण्यतोया सरस्वती । गङ्गा च यमुना चैव पञ्चनद्यः पुनन्तुमाम्
अन्यासाञ्च नदीनाञ्च दद्यादर्घ्यं यथाविधि । जाह्नवीस्मरणं कुर्यात्सर्वतीर्थेषु मानवः
नाऽन्यत्तीर्थं तुजाह्नव्याःस्मरणीयंकदाचन । एतान्मन्त्रान्समुच्चार्य मलस्नानंसमाचरेत्

मृत्स्नानं चपितृस्नानंगुरुस्नानंततः परम् । ततस्तुपावमानीभिरभिषिञ्चेत्स्वमस्तकम्
अघमर्षणकं कृत्वा स्नानाङ्गं तर्पणं तथा । ततः पुरुषसूक्तेन जलं शिरसि सिञ्चयेत् ॥

ततस्तु बहिरागत्य तीर्थं शिरसि निक्षिपेत् ।
तीर्थं पीत्वा त्रिवारन्तु तुलसीं गृह्य पाणिना ॥ १४ ॥

ततो जलाद्विनिष्क्रम्य चाञ्चलं पीडयेद्बहिः । यन्मयादूषितं तोयं शारीरमलसञ्चयैः
तद्दोषपरिहार्थं यक्ष्मणं तर्पयाम्यहम् । वस्त्रनिष्पीडनं कृत्वाकुर्याच्च तिलकादिकम्

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे कार्त्तिकस्नानजम्फलम् । अरुणं प्रतिसूर्येण यदुक्तं च सविस्तरम्

अरुण उवाच

कस्मिंस्तीर्थे विशेषेण फलं कार्त्तिकसम्भवम् ?।
क्षेत्रे वा एतदाऽऽख्याहि भगवन्स्नानयोगतः ॥ १८ ॥

सूर्य उवाच

यत्र कुत्राऽपि कर्तव्यंजलेस्नानंतु कार्तिके। उष्णोदकेन कर्तव्यंस्नानंकुत्राऽपिकार्त्तिके
ततो दशगुणं पुण्यं शीततोयनिमज्जनात् । ततः शतगुणं पुण्यं बहिःकूपोदके कृतम्
कूपात्सहस्रगुणितं फलं वापीनिषेकतः । ततोऽयुतगुणं पुण्यं तडागस्नानतो भवेत्
ततो दशगुणं पुण्यं निर्झरेषु निमज्जनात् । ततोऽधिकतरं पुण्यं नदीस्नानस्यकार्त्तिके
नद्या दशगुणं प्रोक्तं तीर्थस्नानं खगोत्तम !। ततो दशगुणं पुण्यं नद्योर्यत्र च सङ्गमः॥

नदीत्रयस्य संयोगे पुण्यस्याऽन्तो न विद्यते ।
सिन्धुः कृष्णा च वेणी च यमुना च सरस्वती ॥ २४ ॥

गोदावरी विपाशा च नर्मदा तमसा मही । कावेरी सरयूः शिप्रा तथा चर्मण्वतीनदी
वितस्ता वेदिकाशोणोवेत्रवत्यपराजिता । गण्डकीगोमती पूर्णा ब्रह्मपुत्रासरोवरम्
वाग्मती च शतद्रुश्च तथा वदरिकाश्रमः । दुर्लभाः कार्त्तिकेत्वेते तीर्थान्यथनिबोधमे

सर्वेभ्यश्च स्थलेभ्यश्च आर्यावर्तन्तु पुण्यदम् ।
कोल्हापुरी ततःश्रेष्ठा ततः काञ्चीद्वयं स्मृतम् ॥ २८ ॥

अनन्तसेनवसतिर्वराहक्षेत्रमेव च । चक्रक्षेत्रं ततः पुण्यं मुक्तिक्षेत्रं ततोऽधिकम् ॥२६
अवन्तिकाततः श्रेष्ठाततोबदरिकाश्रमः । अयोध्या च ततःश्रेष्ठागङ्गाद्वारंततोऽधिकम्
ततः कनखलं तीर्थं ततो मधुपुरी वरा । एकोऽपि कार्त्तिको मासो मथुरायमुनाजले
यैः स्नातस्तेतु वैकुण्ठेवहुकालंवसन्तिहि । राधादामोदरस्तत्रस्वयं स्नातस्तुकार्त्तिके

अतो मधुपुरी श्रेष्ठा यमुना च विशेषतः ॥ ३३ ॥

द्वारावती ततः श्रेष्ठा प्रत्यहं स्नाति केशवः । षोडशस्त्रीसहस्रेण सार्द्धं यादवसंयुतः
द्वारकायांमृत्तिकायास्तिलकोयेनमस्तके । धार्यतेऽसौनरो ज्ञेयो जीवन्मुक्तोनसंशयः

द्वारकास्नानमाहात्म्यं न वक्तुं शक्यते मया ॥ ३५ ॥
गोविन्दार्पितचित्तानां जायते पुण्यभास्करा ।
ततो भागीरथी श्रेष्ठा यत्र विन्ध्येन सङ्गता ॥ ३६ ॥
तस्माद्दशगुणं पुण्यं तीर्थराजेऽत्र जायते ॥ ३७ ॥

कलौ दशसहस्रान्ते विष्णुस्त्यक्ष्यतिमेदिनीम् । तदर्द्धंजाह्नवीतोयंतदर्धंदेवतागणाः
यावत्तिष्ठतिगङ्गाऽत्रतावत्तीर्थानिसन्तिच । स्वस्वस्थाने नृणास्पापंतावदेवहरन्तिच
यदैवगङ्गानष्टा स्यात्कोवातत्पापमाहरेत् । विचार्यैवं सुतीर्थानिगमिष्यन्ति धरातले

तस्मान्मुनीश्वराः सर्वे यावत्तिष्ठति जाह्नवी ।
तावच्च क्रियतां धर्मस्ततो भूमौ निलीयताम् ॥ ४१ ॥

समाधिं गृह्य सुदृढांयावत्कृतयुगम्भवेत् । अन्यथा कलिकालेन भ्रंशनीयोभवेत्सुधीः
ततः श्रेष्ठतरा काशी यस्यानाशो न जायते । यदाश्रयेण गङ्गाऽपि सर्वपापंव्यपोहति
काशिकाया नैव नाशो ब्रह्मण्यपि मृते सति । यद्दर्शनार्थंगङ्गाऽपिजाताचोत्तरवाहिनी

तस्याम्पञ्चनदं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ४४ ॥

आगते कार्त्तिकेमासिरौरवंनरकंगताः । आक्रोशन्तेतुपितरो वंशेऽस्माकम्भविष्यति
कश्चिद्भाग्यवतां श्रेष्ठो गत्वा पञ्चनदे शुभे । अस्माकं तर्पणं कुर्यान्नरकार्णवतारकम्
तीर्थराजादितीर्थानि प्राप्ते कार्त्तिकमासके । स्नानार्थं पञ्चगङ्गं तु समायान्तिनसंशयः
कृत्वातु लक्षपापानिस्नात्वापञ्चनदेशुभे । बिन्दुमाधवमभ्यर्च्य विलयंयान्तितत्क्षणात्

यैः स्नातं कार्त्तिके मासि सकृत्पश्चनदेशुभे । सर्वतीर्थकृतात्स्नानात्फलंकोटिगुणम्भवेत्

ब्रह्मोवाच

कार्त्तिके मासि कावेर्य्यां यः स्नानं कर्तुमिच्छति ।

तावता वै विमुक्ताऽघो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ५० ॥

कावेर्य्याश्चैव माहात्म्यं को वदेत्परमुत्तमम् । अत्र ते वर्णयिष्यामिइतिहासंपुरातनम्

कावेर्य्याविषयेब्रह्मन्सावधानमनाःशृणु । गौतम्या उत्तरे तीरे विष्णुपादाब्जसम्भवा

गङ्गा त्रैलोक्यपापघ्नीवर्ततेलोकपूजिता । सा गङ्गा चिन्तयामासकदाचित्पापशङ्किता

सर्वलोकाःसमागत्यमयिपापंत्यजन्ति हि । तत्पापन्तुकथं गच्छेदितिचिन्तापरातदा

प्रष्टुं जगाम कैलासं गिरिजावल्लभम्भवम् । तत्र दृष्ट्वा महारुद्रं प्रोवाच हरिपादजा ॥

गङ्गोवाच

महारुद्र! नमस्तेऽस्तु त्वांप्रष्टुमहमागता । सर्वेलोकाःसमागत्यमयिपापंत्यजन्तिहि

तत्पापन्तु मया सोढुं न शक्यं पार्वतीपते !। येनोपायेन तत्पापं नाऽऽगच्छेन्ममतद्वद

एवं गङ्गावचः श्रुत्वा प्रत्याह परमेश्वरः ।

रुद्र उवाच

पापनिर्हरणायाऽऽदौ पद्मनाभाङ्घ्रिपङ्कजात् ॥ ५८ ॥

प्रादुर्भूताऽसित्वंदेविकिमर्थंतप्यतेत्वया पापप्रहाराऽऽधिपत्यंकल्पितंतवविष्णुना

तथाऽपि पापनिर्हारउपायं ते ब्रवीम्यहम् । कवेश्च तनया देवी कावेरी सरिताम्वरा

सर्वोत्कृष्टाच सर्वेषां हरेर्बलवशात्तुसा । सर्वपापप्रहरणे सामर्थ्यं तत्र वर्तते ॥६१ ॥

कार्त्तिके मासि कावेर्य्यां यः स्नानं कुरुते नरः ।

स तु पापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परम्पदम् ॥ ६२ ॥

तस्मात्तां गच्छ देवि! त्वं ततः पापाद्विमोक्ष्यसे ।

इत्युक्ता सा तदाऽऽगच्छत्कावेरीं पापहारिणीम् ॥ ६३ ॥

तज्जलस्पर्शमात्रेण कार्त्तिके विष्णुपादजा । निर्धूतपातकागङ्गाजगामस्वनिकेतनम् ॥

कार्त्तिके प्रतिवर्षन्तु गङ्गा त्रैलोक्यपावनीम् ।

अनन्तसेनवसतिर्वराहक्षेत्रमेव च । चक्रक्षेत्रं ततः पुण्यं मुक्तिक्षेत्रं ततोऽधिकम् ॥२९
अवन्तिकाततः श्रेष्ठाततोवदरिकाश्रमः । अयोध्या च ततःश्रेष्ठागङ्गाद्वारंततोऽधिकम्
ततः कनखलं तीर्थं ततो मधुपुरी वरा । एकोऽपि कार्त्तिको मासो मथुरायमुनाजले
यैः स्नातस्तेतु वैकुण्ठेवहुकालंवसन्तिहि । राधादामोदरस्तत्रस्वयं स्नातस्तुकार्त्तिके

अतो मधुपुरी श्रेष्ठा यमुना च विशेषतः ॥ ३३ ॥

द्वारावती ततः श्रेष्ठा प्रत्यहं स्नाति केशवः । षोडशस्त्रीसहस्रेण सार्द्धं यादवसंयुतः
द्वारकायांमृत्तिकायास्तिलकोयेनमस्तके । धार्यतेऽसौनरो ज्ञेयो जीवन्मुक्तोनसंशयः

द्वारकास्नानमाहात्म्यं न वक्तुं शक्यते मया ॥ ३५ ॥

गोविन्दार्पितचित्तानां जायते पुण्यभास्करा ।

ततो भागीरथी श्रेष्ठा यत्र विन्ध्येन सङ्गता ॥ ३६ ॥

तस्माद्दशगुणं पुण्यं तीर्थराजेऽत्र जायते ॥ ३७ ॥

कलौ दशसहस्राऽन्ते विष्णुस्त्यक्ष्यतिमेदिनीम् । तदर्द्धंजाह्नवीतोयंतदर्धंदेवतागणाः
यावत्तिष्ठतिगङ्गाऽत्रतावत्तीर्थानिसन्तिच । स्वस्वस्थाने नृणाम्पापंतावदेवहरन्तिच
यदैवगङ्गानष्टा स्यात्कोवातत्पापमाहरेत् । विचार्यैवं सुतीर्थानिगमिष्यन्ति धरातले

तस्मान्मुनीश्वराः सर्वे यावत्तिष्ठति जाह्नवी ।

तावच्च क्रियतां धर्मस्ततो भूमौ निलीयताम् ॥ ४१ ॥

समाधिं गृह्य सुदृढांयावत्कृतयुगम्भवेत् । अन्यथा कलिकालेन भ्रंशनीयोभवेत्सुधीः
ततः श्रेष्ठतरा काशी यस्यानाशो न जायते । यदाश्रयेण गङ्गाऽपि सर्वपापंव्यपोहति
काशिकाया नैव नाशो ब्रह्मण्यपि मृते सति । यद्दर्शनार्थंगङ्गाऽपिजाताचोत्तरवाहिनी

तस्याम्पञ्चनदं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ४४ ॥

आगते कार्त्तिकेमासिरौरवंनरकंगताः । आक्रोशन्तेतुपितरो वंशेऽस्माकम्भविष्यति
कश्चिद्भाग्यवतां श्रेष्ठो गत्वा पञ्चनदे शुभे । अस्माकं तर्पणं कुर्यान्नरकार्णवतारकम्
तीर्थराजादितीर्थानि प्राप्ते कार्त्तिकमासके । स्नानार्थं पञ्चगङ्गं तु समायान्तिनसंशयः
कृत्वातु लक्षपापानिस्नात्वापञ्चनदेशुभे । विनष्टपापस्तत्क्षणात्

यैः स्नातं कार्त्तिके मासि सकृत्पश्चनदेशुभे । सर्वतीर्थकृतास्नानात्फलंकोटिगुणम्भवेत्

ब्रह्मोवाच

कार्त्तिके मासि कावेर्य्यां यः स्नानं कर्तुमिच्छति ।
तावता वै विमुक्ताऽघो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ५० ॥

कावेर्य्याश्चैव माहात्म्यं को वदेत्परमुत्तमम् । अत्र ते वर्णयिष्यामिइतिहासंपुरातनम्
कावेर्य्याविषयेब्रह्मन्सावधानमनाःश्रृणु । गौतम्या उत्तरे तीरे विष्णुपादाब्जसम्भवा
गङ्गा त्रैलोक्यपापघ्नीवर्ततेलोकपूजिता । सा गङ्गा चिन्तयामासकदाचित्पापशङ्किता
सर्वलोकाःसमागत्यमयिपापंत्यजन्ति हि । तत्पापन्तुकथं गच्छेदितिचिन्तापरातदा
प्रष्टुं जगाम कैलासं गिरिजावल्लभम्भवम् । तत्र दृष्ट्वा महारुद्रं प्रोवाच हरिपादजा ॥

गङ्गोवाच

महारुद्र! नमस्तेऽस्तु त्वांप्रष्टुमहमागता । सर्वेलोकाःसमागत्यमयिपापंत्यजन्तिहि
तत्पापन्तु मया सोढुं न शक्यं पार्वतीपते !। येनोपायेन तत्पापं नाऽऽगच्छेन्ममतद्वद
एवं गङ्गावचः श्रुत्वा प्रत्याह परमेश्वरः ।

रुद्र उवाच

पापनिर्हरणायाऽऽदौ पद्मनाभाङ्घ्रिपङ्कजात् ॥ ५८ ॥

प्रादुर्भूताऽसित्वंदेविकिमर्थंतप्यतेत्वया पापप्रहाराऽऽधिपत्यंकल्पितंतवविष्णुना
तथाऽपि पापनिर्हारउपायं ते ब्रवीम्यहम् । कवेश्च तनया देवी कावेरी सरिताम्वरा
सर्वात्कृष्टाच सर्वेषां हरेर्बलवशात्तुसा । सर्वपापप्रहरणे सामर्थ्यं तत्र वर्तते ॥६१॥

कार्त्तिके मासि कावेर्य्यां यः स्नानं कुरुते नरः ।
स तु पापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परम्पदम् ॥ ६२ ॥
तस्मात्त्वां गच्छ देवि! त्वं ततः पापाद्विमोक्ष्यसे ।
इत्युक्ता सा तदाऽऽगच्छत्कावेरीं पापहारिणीम् ॥ ६३ ॥

तज्जलस्पर्शमात्रेण कार्त्तिके विष्णुपादजा । निर्धूतपातकागङ्गाजगामस्वनिकेतनम् ॥

कार्त्तिके प्रतिवर्षन्तु गङ्गा त्रैलोक्यपावनीम् ।

स्नातुं भक्त्या समायाति कावेरीं पापहारिणीम् ॥ ६५ ॥
तज्जलस्पर्शमात्रेण कार्त्तिकेविष्णुपादजा । निर्धूतपातका गङ्गा जगामस्वनिकेतनम्
तस्माच्छस्तं तुलास्नानंकावेर्य्यांशस्यते बुधैः । यःकावेर्यांतुलास्नानंभक्त्यातुकुरुतेमुने
विमुक्तदुरितःसद्यस्ततो याति परां गतिम् ।
तस्मात्स्नानं तु कावेर्यांकार्त्तिके मासि शस्यते ॥ ६८ ॥
इतिहासमिमं श्रुत्वा कार्त्तिकव्रततत्परः । स कावेरी स्नानफलं प्राप्नोतिच पराङ्गतिम्
रात्रिशेषे भवेत्स्नानमुत्तमं विष्णुतुष्टिकृत् ।
सूर्योदये मध्यमं स्याद्यावान्नाऽऽस्ता तु कृत्तिका ॥ ७० ॥
तावदेव भवेत्स्नानमन्यथा तन्न कार्त्तिकम् ।
स्नानं स्त्रीभिर्विधातव्यं गृहीत्वाऽऽज्ञां धवस्य च ॥ ७१ ॥
अपृष्ट्वायत्कृतंधर्म्यं भर्तारंतत्क्षयं नयेत् । स्त्रीणांनास्त्यपरोधर्मो भर्तारं प्रोज्झ्यकञ्चन
कुर्यात्सहस्रपापानि भर्त्राऽऽज्ञां या समाचरेत् ।
सैषा धर्मवती लोके न जायेत व्रतादिना ॥ ७३ ॥
दरिद्रःपतितोमूर्खोदीनोऽपियदि चेत्पतिः । तादृशःशरणंस्त्रीणांतत्त्यागान्निरयंव्रजेत्
कलौ वत्स! मनुष्याणां शैथिल्यं स्नानकर्मणि ।
तथाऽपि कथयिष्यामि स्नानं कार्त्तिकमाघयोः ॥ ७५ ॥
यस्यहस्तौचपादौचवाङ्मनश्चसुसंयतम् । विद्यातपश्चकीर्तिश्च स तीर्थफलभाङ्नरः
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकश्छिन्नमानसः । हेतुवादीचपञ्चैते न तीर्थफलभागिनः
प्रातरुत्थाययो विप्र! तीर्थस्नायीसदाभवेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तःपरम्ब्रह्माऽधिगच्छति
स्नानं चतुर्विधम्प्रोक्तं स्नानविद्भिर्मनीषिभिः ।
वायव्यं वारुणं दिव्यं ब्राह्मञ्चेति तथा स्मृतम् ॥ ७६ ॥
वायव्यंगोरजःस्नानंवारुणंसागरादिषु । ब्राह्मंब्राह्मणमन्त्रोक्तंदिव्यम्मेघाऽम्बुभास्करम्
स्नानानाञ्चैवसर्वेषांविशिष्टं तत्रवारुणम् । ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्योमन्त्रवत्स्नानमाचरेत्
तूष्णीमेवहिशूद्रस्यस्त्रीणाञ्चैव तथास्मृतम् । बाला वा तरुणी वृद्धा नरनारीनपुंसकाः

पापैः सर्वैः प्रमुच्यन्ते स्नानात्कार्त्तिकमाघयोः ।
स्नाता वै कार्त्तिके लोकाः प्राप्नुवन्तीप्सितम्फलम् ॥ ८३ ॥

पुष्करे तीर्थवर्य्ये तु नन्दायाः सङ्गमे पुरा । प्रभञ्जनश्च मुक्तोऽभूत्तदैव व्याघ्रजन्मतः
नन्दायावचनेनैवकार्त्तिकेसापरं ययौ । एवंस्नानविधिःप्रोक्तः किम्भूयःश्रोतुमिच्छसि

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहियां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमाससमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे कार्त्तिकस्नानविधिनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

नित्यकर्म्मकथनम्

नारद उवाच

कदा स्नानं प्रकर्त्तव्यं कथं स्थेयंदिनावधि । आह्निकं तत्समाचक्ष्वविशेषेणपितामह!

ब्रह्मोवाच

रात्र्यां तुर्यांशशेषायामुत्तिष्ठेत्सर्वदा व्रती ।
विष्णुं स्तुत्वा वहुस्तोत्रैर्दिनकार्यम्विचारयेत् ॥ २ ॥

ग्रामनैर्ऋत्यदिग्भागे मलोत्सर्गंयथाविधि । ब्रह्मसूत्रं दक्षकर्णे स्थाप्य तत्रउदङ्मुखः
अन्तर्धायतृणंभूमौ शिरः प्रावृत्यवाससा । वक्त्रं नियम्यवस्त्रेणाऽसङ्गःसोदकभाजनः
कुर्यान्मूत्रपुरीषन्तु रात्रौचेद्दक्षिणामुखः । ततउत्थायचाऽऽगच्छेत्समीपं कलशस्यहि
गन्धलेपक्षयकरं मृत्तिकाशौचमाचरेत् । एका लिङ्गे करेतिस्र उभयोर्मृद्द्वयंस्मृतम्
मूत्रशौचे त्विदं ज्ञेयं विष्ठाशौचमतःशृणु । पञ्चापानेऽथवा सप्त दश वामकरे तथा
उभयोःसप्त दातव्याःपादयोर्मृत्तिकात्रयम् । एतच्छौचंगृहस्थस्यद्विगुणंब्रह्मचारिणः
वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनाञ्चचतुर्गुणम् । एतच्छौचं दिवाप्रोक्तं रात्रावर्द्धंसमाचरेत्

मार्गस्थस्य तदर्धं स्यात्स्त्रीशूद्राणां तदर्धकम् ।
शौचकर्मविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः ॥ १० ॥

दन्तजिह्वाविशुद्धिश्च ततः कुर्यादतन्द्रितः । आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजाः पशुवसूनि च
ब्रह्म प्रज्ञाञ्चमेधाञ्चत्वं नोदेहिवनस्पते !। दन्तकाष्ठन्तु गृह्णीयाद्द्वादशाङ्गुलसम्मितम्
क्षीरवृक्षस्यनग्राह्यं कार्पासस्य तथैव च । कण्टकस्य च वृक्षस्य दग्धवृक्षस्यचैवहि
सद्वासनं मृदुतरं दन्तधावनमादितः । उपवासे नवम्याञ्च षष्ठ्यां श्राद्धदिने रवौ ॥
ग्रहणे प्रतिपद्दर्शे न कुर्याद्दन्तधावनम् । कुर्याद्द्वादश गण्डूषाननुक्ते दन्तधावने ॥

दन्तान्विशोध्य विधिवन्मुखं सम्मार्ज्य वारिणा ।
ललाटे चोर्ध्वपुण्ड्रन्तु धृत्वा चाऽऽचम्य वारिणा ॥ १६ ॥

देवालये नदीतीरे राजमार्गे विशेषतः । दत्त्वाचाकाशदीपं तु तुलसी सन्निधावथ
गृहीत्वाऽर्चनसामग्रीमिष्टदेवगृहं व्रजेत् । ततो गायेतनृत्येत पूजां कृत्वा तु बुद्धिमान्
पठित्वाविष्णुनामानिकुर्य्यान्नीराजनंहरेः । नाडीद्वयावशिष्टांरात्र्यांगच्छेज्जलाशयम्
तन्त्रोक्तविधिनास्नानं कुर्याद्वैकार्त्तिकव्रती । वस्त्रनिष्पीडनंकृत्वाकुर्याच्चतिलकंतथा
ततः सन्ध्यामुपासीतस्वसूत्रोक्तेन वर्त्मना । ततःकार्योजपोदेव्या यावदर्कोदयोभवेत्
एतत्प्रोक्तं रात्रिशेषकृत्यंदैनमथोच्यते । यस्मिन्कृतेकार्त्तिकोऽयंसकलःसफलो भवेत्
विष्णोःसहस्रनामाऽऽद्यंसन्ध्यान्ते च पठेत्ततः । देवालयेसमागत्यपुनः पूजनमारभेत्
नृत्यगानादिकार्येषुप्रहरंदिवसं नयेत् । ततः पुराणश्रवणंयामार्धंसम्यगाचरेत् ॥२४॥
पौराणिकस्यपूजांतुतुलसीपूजनं तथा । कृत्वामाध्याह्निकंकर्मभुञ्जीतद्विदलोज्झितम्
बलिदानं वैश्वदेवमतिथीनांसमर्पणम् । कृत्वाभुङ्क्तेतुयोमर्त्यःकेवलंचाऽमृतं हि तत्
यथाशक्तिद्विजाभोज्याःप्रत्यहंवाऽथ पर्वणि । हविष्यभोजनंकुर्यादामिषं परिवर्जयेत्
भक्षयेत्तुलसीं वक्त्रशुद्ध्यर्थं तीर्थवारिणा । संसारव्यवहारेण दिनशेषं समापयेत्

सायंकाले पुनर्गच्छेद्विष्णोर्देवालयम्प्रति ।
सन्ध्यां कृत्वा प्रयुञ्जीत तत्र दीपान्यथाबलम् ॥ २६ ॥

विष्णुं प्रणम्य हरये कृत्वानीराजनं शुभम् । स्तोत्रपाठादिकं कुर्वन्नाचयामेतुजागरम्

यामे तु प्रथमेऽतीते निद्रां कुर्याद्विचक्षणः। ब्रह्मचर्यव्रतं कुर्याद्भार्यामीयादृतौ तथा
तया कामयमानो वा भार्यां गच्छेन्न दोषभाक्।
एवं प्रतिदिनं कुर्यादामासं तु यथाविधि ॥ ३२ ॥
एवंतुकार्त्तिकेमासियःकुर्यात्परमंव्रतम्। सर्वपापविनिर्मुक्तोयातिविष्णोःसलोकताम्
रोगापहं पातकनाशकृत्परं सद्बुद्धिदं पुत्रधनादिसाधकम्।
मुक्तेर्निदानं नहि कार्तिकव्रताद्विष्णुप्रियादन्यदिहाऽस्ति भूतले ॥ ३४॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डे कार्त्तिकमाससमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे नित्यकर्मकथनं नाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

कार्त्तिकव्रतनिरूपणम्

ब्रह्मोवाच

शृणुनारदवक्ष्यामिकार्त्तिकस्यव्रतंमहत्। यच्छ्रुत्वासर्वपापेभ्योमुक्तोमोक्षमवाप्स्यसि
कार्त्तिकेमासिसंप्राप्तेनिषिद्धानि च वर्जयेत्। तैलाभ्यङ्गं परान्नञ्च तथा वै तैलभोजनम्
फलानि बहुबीजानि धान्यानि द्विदलान्यपि।
वर्जयेत्कार्त्तिके मासि नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३ ॥
अलाबुं गृञ्जनञ्चैववृन्ताकंबृहतीफलम्। अन्नं पर्युषितञ्चाऽपि भिस्सटं चमसूरिकम्
पुनर्भोजनं माध्वं च परान्नंकांस्यभोजनम्। नखं चर्म च छत्राकंकाञ्जि दुर्गन्धमेव च
गणान्नं गणिकान्नञ्च तथा वै ग्रामयाजिनः। शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कं सूतकान्नं तथैव च॥
श्राद्धान्नमृतुमत्याश्च जातकं नामकं तथा। श्लेष्मातकफलं चैव वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती
निषिद्धेषु च पत्रेषु भोजनं नैव कारयेत्। मधुपलाशकदलीजम्बूप्लक्षमकुटिकाः॥

एतत्पत्रेषु भोक्तव्यं पुष्करे न कदाचन ॥ ८ ॥
कार्त्तिकेमासिसंप्राप्तेयः कुर्याद्वनभोजनम् । स यातिपरमंलोकं विष्णोर्देवस्य चक्रिणः
प्रातःस्नानं तु कर्तव्यं तथैव हरिपूजनम् । कथायाःश्रवणं चैव कार्त्तिके शस्यते मुने
गोपीचन्दनदानंतु गोदानंश्रोत्रियाय च । कर्तव्यं कार्त्तिकेमासितेन मोक्षमवाप्नुयात्
कदलीफलदानं तु दानंधात्रीफलस्य च । वस्त्रदानं तथाकुर्याच्छीतार्ताय द्विजन्मने
शाकादिदानंकुर्वीतचाऽन्नदानं विशेषतः । शालग्रामस्यदानं च कर्तव्यं तु द्विजन्मने
पौराणिकाय यो दद्यादामान्नं घृतपायसम् । स चैश्वर्यमवाप्नोतिशतब्राह्मणभोजनात्
कमलैःपूजयेद्यस्तुकार्त्तिकेकमलाप्रियम् । स तु पुण्यमवाप्नोतिनाऽत्रकार्या विचारणा
कार्त्तिके तुलसीपत्रं यो भक्त्या विष्णवेऽर्पयेत् ।
संसाराच्च विनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम् ॥ १६
कार्त्तिके केतकीपुष्पैरर्चयेद्गरुडध्वजम् । पूजितो जन्मसाहस्रं नाऽत्र कार्या विचारणा
शङ्खदानं तु यःकुर्यात्तथाचक्राङ्कितस्य च । तस्यपापानिनश्यन्ति दानमात्रान्न संशयः
गीतापाठं तु यःकुर्यात्कार्त्तिकेविष्णुवल्लभे । तस्य पुण्यफलम्वक्तुं नाऽलम्वर्षशतैरपि
श्रीमद्भागवतस्याऽपि श्रवणंयः समाचरेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छति
एकादश्यां निराहारमुपवासं करोति यः । पूर्वजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नाऽत्र संशयः
शालिग्रामस्य नैवेद्यं कोटियज्ञफलं लभेत् ।
अन्यदेवस्य नैवेद्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ २२ ॥
पूजाकाले तु देवस्यघण्टानादंकरोतियः । हरेस्तृप्तिं परां याति मनुजो नाऽत्र संशयः
परान्नं वर्जयेद्यस्तुकार्त्तिकेविष्णुतुष्टये । दामोदरस्यप्रीतिंससम्यक्प्राप्नोति मानवः
अध्वगंतुपरिश्रान्तंकालेच गृहमाऽऽगतम् । योऽतिथिंपूजयेद्भक्त्याजन्मसाहस्रनाशनम्
निन्दांकुर्वन्ति ये मूढावैष्णवानांमहात्मनाम् । पतन्तिपितृभिःसार्द्धंमहारौरवसञ्ज्ञके
दृष्ट्वा भागवतान्विप्रान्सम्मुखो न च याति हि ।
न गृह्णाति हरिस्तस्य पूजां द्वादशवार्षिकीम् ॥ २७ ॥

निन्दां भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य च ।

ततो नाऽपैति यः सोऽपि हरेः प्रियतमो नहि ॥ २८ ॥

प्रदक्षिणन्तु यः कुर्यात्कार्त्तिके केशवस्य हि । पदेपदे ऽश्वमेधस्यफलंप्राप्नोत्यसंशयः

दंडप्रणामं यः कुर्यात्कार्त्तिके केशवाऽग्रतः ।

राजसूयाऽश्वमेधानां फलम्प्राप्नोत्यसंशयः ॥ ३० ॥

कुटुम्बभोजनं चैव कार्त्तिके भक्तिसंयुतः । कारयेद्विप्रशार्दूल! तस्य पुण्यमनन्तकम्॥

परस्त्रीसङ्गमं यस्तुकार्त्तिकेकुरुते नरः । तस्यपापस्य विश्रान्तिर्यावद्वक्तुंन शक्यते

तुलसीमृत्तिकापुण्ड्रं ललाटे यस्य दृश्यते । यमस्तं नेक्षितुंशक्तः किमुदूता भयङ्कराः

शाकम्वा लवणम्वाऽपि यत्किञ्चिद्वा भविष्यति ।

तद्देयं कार्त्तिके मासि प्रीत्यर्थं शार्ङ्गधन्वनः ॥ ३४ ॥

इत्याद्या वहवो धर्माःकार्त्तिके विष्णुवल्लभाः । यथाशक्त्याप्रकुर्वीतधर्मंदेवस्यतुष्टिदम्

हरिसन्तुष्टये कार्यस्त्यागो वा स्वेष्टवस्तुनः । मासान्ते द्विजवर्यायदद्यात्तद्व्रतपूर्तये

सर्वव्रतानि चैकत्र सत्यव्रतमथैकतः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्यं भाषेत सर्वदा ॥

अन्यधर्मेष्वधिकृतिः कुलजातिविभागतः ।

अधिकारी कार्त्तिके तु सर्व एव जनो भवेत् ॥ ३८ ॥

गोग्रासः कार्त्तिकेमासि विशेषाद्यैस्तुदीयते । तेषांपुण्यफलंवक्तुं नशक्नोतिपितामहः

विष्णुदेवालयं प्रातः सम्मार्जयति कार्तिके । तस्य वैकुण्ठभवने जायते सुदृढं गृहम्

दद्यात्कार्तिकमासे तु धर्मकाष्ठानि भूरिशः ।

न तत्पुण्यस्य नाशोऽस्ति कल्पकोटिशतैरपि ॥ ४१ ॥

सुधादि लेपयेद्यस्तु कार्त्तिके विष्णुमन्दिरे ।

चित्रादिकं लिखेद्वाऽपि मोदते विष्णुसन्निधौ ॥ ४२ ॥

देवालयेवातीर्थेवा कृतो दुष्टैर्नृपैः करः । तं मोचयन्ति ये लोकास्तेषांधर्मः सनातनः

कार्त्तिकेमासि यो विप्रोगभस्तीश्वरसन्निधौ । शतरुद्रीजपंकुर्यान्मन्त्रसिद्धिःप्रजायते

वाराणस्यां तु यैः स्थित्वा त्रिवर्षं कार्त्तिकव्रतम् ।

लोपाङ्गं साङ्गं यैर्मर्त्यैः कृतं भवत्येकतत्परैः ॥ ४५ ॥

इहलोके फलं तेषां प्रत्यक्षं जायते किल । सम्पत्त्या चैवसन्तत्यायशोभिर्धर्मवुद्धिभिः

पलाण्डुं श्रृङ्गं मांसं च शय्यां सौवीरकं तथा ।
राजिकोन्मादिकञ्चाऽपि चिपिटान्नञ्च वर्जयेत् ॥ ४७ ॥

धात्रीफलं भानुवारे परदेशागमं तथा । तीर्थं विना सदैवेह वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती ॥

देववेदद्विजातीनां गुरुगोव्रतिनां तथा ।
स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती ॥ ४९ ॥

नरकस्यचतुर्दश्यां तैलाभ्यङ्गं च कारयेत् । अन्यत्र कार्त्तिकेमासि तैलस्नानंविवर्जयेत्

नालिकां मूलकं चैव कूष्माण्डञ्च कपित्थकम् ॥ ५० ॥

रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतिताऽव्रतिकैस्तथा । द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च नवदेत्सर्वदाव्रती

एभिर्दृष्टं च काकैश्च सूतिकान्नं च यद्भवेत् ।
द्विःपाचितं च दग्धान्नं नैवाऽद्याद्वैष्णवव्रती ॥ ५२ ॥

क्रमात्कूष्माण्डवृहतीतरुणीमूलकं तथा । श्रीफलं च कलिङ्गं चफलंधात्रीभवं तथा
नारिकेलमलाबुञ्च पटोलं बृहतीफलम् । चर्मवृन्ताकचवलीशाकं तुलसिजं तथा ॥
शाकान्येतानि वर्ज्यानि क्रमात्प्रतिपदादिषु । एवमेवहिमाघेऽपिकुर्य्याच्चनियमान्व्रती
कार्त्तिकव्रतिनः पुण्यं यथोक्तव्रतकारिणः । न समर्थो भवेद्वक्तुं ब्रह्मापीहचतुर्मुखः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे कार्त्तिकव्रतनिरूपणं नाम
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

दीपदानमाहात्म्यवर्णनम्

नारद उवाच

भगवन्कृतकृत्योऽस्मि तवपादसमाश्रयात् । श्रोतव्यं नेह भूयो मे विद्यते देवसत्तम!
तथाऽपि भगवन्किञ्चित्प्रष्टव्यंमेहृदिस्थितम् । त्वद्वाक्यामृतपीतस्यनमेतृप्तिर्हिजायते
दीपदानस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि ते प्रभो । येनचाऽपिपुरादत्तस्तद्वदस्वचतुर्मुख

ब्रह्मोवाच

प्रातःस्नात्वा शुचिर्भूत्वा दीपंदद्यात्प्रयत्नतः । तेनपापानि नश्येयुस्तमांसीवभगोदये
आजन्मयत्कृतं पापं स्त्रिया वा पुरुषेण च । तत्सर्वं नाशमायातिकार्त्तिके दीपदानतः
अत्र ते वर्णयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् । श्रवणात्सर्वपापघ्नं दीपदानफलप्रदम्
पुरा द्रविडदेशे तु ब्राह्मणो बुद्धनामकः । तस्यभार्याऽभवद्दुष्टा अनाचाररता मुने !॥

तस्याः संसर्गदोषेण क्षीणाऽऽयुर्मृतिमाप्तवान् ।
पत्यौ मृतेऽपि सा पत्नी अनाचारे विशेषतः ॥ ८ ॥

रताऽभून्न हि तस्यास्तु लज्जालोकापवादतः । सुतबन्धुविहीनासासदाभिक्षान्नभोजना
न संस्कारान्नमल्पं वा भुक्त्वा पर्युषिताशिनी । परपाकरतानित्यंतीर्थयात्रादिवर्जिता
कथायाः श्रवणं चैव न श्रुतंतु तया द्विज !। एकदा ब्राह्मणः कश्चित्तीर्थयात्रापरायणः
तस्या गृहं समागच्छद्विद्वान्वैकुत्सनामकः । अनाचाररतां तां तु दृष्ट्वा ब्रह्मर्षिसत्तमः

कोपेन रक्तचक्षुः संस्तामुवाचाऽसतीं स्त्रियम् ॥ १२ ॥

कुत्स उवाच

वक्ष्यामि साम्प्रतं मूढे! मद्वाक्यमवधारय ॥ १३ ॥

दुःखहेतुमिमं देहं पूयशोणितपूरितम् । पञ्चभूतात्मकञ्चैव किं च पुष्णासि दूतिके!
जलबुद्बुदवद्देहो नाशमायाति निश्चितम् । अनित्यं देहमाश्रित्यनित्यं त्वंमन्यसेहृदि

तस्मादन्तः स्थितं मोहं त्यज मूढे! विचारतः। स्मरसर्वोत्तमं देवंकुरुश्रवणमादरात्
कार्त्तिके मासि सम्प्राते स्नानदानादिकं कुरु। दामोदरस्यप्रीत्यर्थं दीपदानं तथाकुरु
लक्षवर्त्यादिकं चैव लक्षपद्मादिकं तथा। प्रदक्षिणां तु देवस्य नमस्कारं तथैव च॥
धारणं पारणं चैव कुरु भक्त्या हि कार्त्तिके। विधवानां व्रतमिदं सधवानां तथैव च
सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्। तत्राऽपि कार्त्तिके मासि दीयतां दीप उत्तमः॥
दीपो हरेः प्रियकरः कार्त्तिके मासिनिश्चितम्। महापातककृद्वापिदीपदानात्प्रमुच्यते
पुराकश्चिद्द्विजवरो नाम्ना हरिकरो ह्यभूत्। अधर्मविषयासक्तः शश्वद्वेश्यारतो द्विजः
पितृवित्तक्षयकरो वंशच्छेदे कुठारकः। कदाचित्तेन विधवे! द्यूते पितृधनं महत्॥

हारितं दुष्टसंसर्गात्ततो दुःखी स चाऽभवत्।
कदाचित्साधुसंसर्गात्तीर्थयात्राप्रसङ्गतः॥ २४॥

अयोध्यामागतोवत्से! महापापकरोद्विजः। कार्त्तिकेमासिसम्प्राप्तःश्रीमद्द्विजगृहेसदा
द्यूतव्याजेन तेनाऽऽशु दीपो दत्तो हरेः पुरः। ततःकालान्तरेविप्रोमृतोमोक्षमवाप्तवान्
महापातककृद्वाऽपि गतवानभयं हरिम्। तस्मात्त्वं कार्त्तिके मासि दीपदानं तथा कुरु

तथाऽन्यान्यपि दानानि कुरु भक्तिसमन्विता।
इत्यादिश्याथ तां कुत्सो जगामाऽन्यगृहं द्विजः॥ २८॥

साऽपिकुत्सवचःश्रुत्वापश्चात्तापेनसंयुता। व्रतंतुकार्तिकेमासिकरिष्यामीतिनिश्चिता
पतङ्गोदयवेलायां कार्त्तिकेस्नानमम्भसि। दीपदानं व्रतं चैव मासमेकं चकार सा॥
ततः कालान्तरे चैव गतायुर्मृतिमागता। दीपदानस्य माहात्म्यान्महापापकृदप्यसौ
स्वर्गमार्गं गतासास्त्रीकालेमोक्षमवापह। तस्मान्नारद! माहात्म्यंदीपदानस्यकोवदेत्
कार्त्तिके दीपदानं तु महापुण्यफलप्रदम्। कार्त्तिकव्रतनिष्ठो यो दीपदानादिकृन्नरः॥

दीपदानस्येतिहासं शृण्वन्वै मोक्षमाप्नुयात्॥ ३४॥

दीपदानस्य माहात्म्यं वक्तुं केनेह शक्यते। परदीपप्रबोधस्य माहात्म्यं शृणु नारद!॥

स्वस्याऽपि शक्तिराहित्ये परस्याऽपि प्रबोधनम्।
यः कुर्याल्लभते सोऽपि नाऽत्र कार्या विचारणा॥ ३६॥

दीपार्थं वर्तिकां तैलं पात्रं वा यो ददाति हि । सहायं वाऽथ कुरुतेददतांदीपमुत्तमम्
स तुमोक्षमवाप्नोतिनाऽत्रकार्याविचारणा । कार्त्तिकेदीपदानस्यमाहात्म्यंकोनुवर्णयेत्
स्वस्याऽपि शक्तिराहित्ये परदीपं प्रबोधयेत् ।
सोऽपि तत्फलमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३६ ॥
वेश्या चेन्दुमतीनाम तस्या गेहेऽथ मूषिका । परदीपप्रबोधेन मोक्षं प्रापसुदुर्लभम् ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परदीपं प्रबोधयेत् । तेन मोक्षमवाप्नोति मूषिकावन्न संशयः ॥
परदीपप्रबोधस्य फलमीदृग्विधं मुने ! । साक्षाद्दीपप्रदानस्य माहात्म्यं केन वर्ण्यते ॥

नारद उवाच

कार्त्तिके दीपदानस्य माहात्म्यञ्च मयाश्रुतम् । परदीपप्रबोधस्यमाहात्म्यमपिवैश्रुतम्
इदानीं श्रोतुमिच्छामि व्योमदीपस्य वैभवम् ॥ ४३ ॥

ब्रह्मोवाच

आकाशदीपमाहात्म्यं शृणुपुत्र! समाहितः । यस्य श्रवणमात्रेण दीपदाने मतिर्भवेत्
सम्प्राप्ते कार्त्तिके मासिप्रातःस्नानपरायणः । आकाशदीपंयोदद्यात्तस्यपुण्यं वदाम्यहम्
सर्वलोकाधिपोभूत्वासर्वसम्पत्समन्वितः । इहलोकेसुखंभुक्त्वाचान्तेमोक्षमवाप्नुयात्
स्नानदानक्रियापूर्वं हरिमन्दिरमस्तके । आकाशदीपो दातव्यो मासमेकं तु कार्त्तिके
कार्त्तिके शुक्लपूर्णायां विधिनोत्सर्जयेच्च तम् ॥ ४७ ॥
यः करोति विधानेनकार्त्तिकेव्योम्निदीपकम् । न तस्यपुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि
अत्र ते वर्णयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् । यस्य श्रवणमात्रेण व्योमदीपफलं लभेत्
पुरा तु निष्ठुरोनामलुब्धको लोककण्टकः । यमुनातीरवासी चकालमृत्युरिवाऽपरः
वने चरन्मृगान्सर्वान्हत्वा वृत्तिमकल्पयन् । पथिकान्बाधते नित्यं चोरवृत्त्याधनुर्धरः
कश्चिद्ग्रामं जगामाऽऽशु चौर्यार्थं कार्त्तिके मुने ! ।
तस्मिन्विदर्भनगरे राजा सुकृतिनामकः ॥ ५२ ॥
चन्द्रशर्माख्यविप्रस्य वचनात्कार्त्तिकेसुधीः । चकार व्योमदीपन्तुहरिमन्दिरमस्तके
दीपं दत्त्वा महाभक्त्याअशृणोच्चकथांनिशि । एतस्मिन्नेवकालेतुचौर्यार्थंसमुपागतः

राज्ञा दत्तं व्योमदीपं पश्यन्क्षणमतिष्ठत । तदानीं दैवयोगेन गृध्रो जवसमन्वितः॥
शीघ्रमागत्य जग्राह तैलपात्रं सदीपकम् । स्वमुखेनैव संगृह्य वृक्षाग्रं च समाश्रयत् ॥

तत्र पीत्वा तु तैलञ्च दीपं स्थाप्य स पक्षिराट् ।
वृक्षाग्रं तु समास्थाय क्षणमात्रमतिष्ठत ॥ ५७ ॥

तदानीं दैवयोगेन ग्रहीतुंपक्षिसत्तमम् । मार्जारोऽप्यारुहद्वृक्षं पक्षिणाऽधिष्ठितंतुतम्
तदग्रे मुखदीपञ्च पश्यन्क्षणमतिष्ठत । आकाशदीपमाहात्म्यं कथितं चन्द्रशर्मणा ॥
राज्ञे सुकृतिनाम्नेचतौ वै शुश्रुवतुःक्षणम् । खगमार्जारकौतत्र स्वस्वचाञ्चल्यदोषतः

मार्जारो जगृहे तत्र शाखान्तरगतं खगम् ।
दैवेन चोदितौ वृक्षाच्छिलायां पतितौ तदा ॥ ६१ ॥

भग्नगात्रौ मृतौ तत्र पक्षिमार्जारकौभुवि । दिव्यदेहसमायुक्तौ यानारूढौदिवङ्गतौ
तत्सर्वंलुब्धको दृष्ट्वा चौर्यार्थं समुपागतः । निवृत्तो दुष्टभावेन कथयन्तंकथांमुनिम्
चन्द्रशर्माणमाभाष्य इदं वचनमब्रवीत् । चन्द्रशर्मन्मया दृष्टं चौर्यार्थं ह्यागतेन च ॥
राज्ञा सुकृतिना दत्तं व्योमदीपं मनोहरम् । तदानीं दैवयोगेन खगः पात्रं प्रगृह्य च ॥
तैलं पीत्वा तु तत्पात्रं सदीपं तुमनोहरम् । वृक्षाग्रेस्थापयित्वाच तत्र क्षणमतिष्ठत
मार्जारोऽप्यागतस्तत्रग्रहीतुंपक्षिपुङ्गवम् । दैवेन प्रेरितौ तौ च उभे शाखेसमाश्रितौ

त्वन्मुखात्कथ्यमानां हि कथां शुश्रुवतुः क्षणम् ।
पश्चाच्चाञ्चल्यदोषेण मार्जारो ह्यग्रहीत्खगम् ॥ ६८ ॥
तौ वृक्षात्पतितौ मृत्युम्प्राप्तौ च क्षणमात्रतः ।
उभौ तौ दिव्यरूपौ च यानारूढौ दिवं गतौ ॥ ६६ ॥

तदाश्चर्यमहं दृष्ट्वा त्वां प्रष्टुं समुपागतः । तौ कौ पुराच मार्जारखगौ तद्वदभोद्विज
तिर्यग्योनिसमापन्नौमुक्तौकेनच कर्मणा । इतिलुब्धवचः श्रुत्वा चन्द्रशर्माऽब्रवीत्तदा

शृणु लुब्ध ! प्रवक्ष्यामि तयोर्वृत्तान्तमञ्जसा ।
मार्जारोऽपि पुरा पापी तथा श्रीवत्सगोत्रजः ॥ ७२ ॥

देवशर्माइतिप्रोक्तो देवद्रव्याऽपहारकः । अहो बलनृसिंहस्य पूजाकर्तृत्वमाप सः ॥

तस्मिन्देवालये प्राप्तं तैलं द्रव्यादिकं तथा। अपहृत्यच तेनैव कुटुम्बं पोषयत्यसौ ॥
आयुर्नीत्वैवमेवाऽसौ ततः पञ्चत्वमागतः। तस्मात्पापात्कालसूत्रं महारौरवरौरवम्
निरुच्छ्वासं तथा प्राप्य असिपत्रवनंक्रमात्। छिद्यमानो महाकायैर्यमदूतैर्भयङ्करैः ॥
अनुभूय च तान्सर्वान्ब्रह्मराक्षसतांगतः। ततस्तुश्वानयोनौच चण्डालोऽभूत्कुकर्मतः
एवं जन्मशतम्प्राप्य भूमौ मार्जारतांगतः। आकाशदीपमाहात्म्यंश्रुत्वेदानीं तु दैवतः
निर्मुक्ताऽखिलपापस्तु अगमद्धरिमन्दिरम् ॥ ७८ ॥
गृध्रोऽयं तु पुरा विप्रोमिथिलेवेदपारगः। शर्यातिरितिविख्यातोनाम्नालोकेमहाप्रभुः
दासीसङ्गं चकाराऽसौ वेश्यासङ्गं तथैवच। तेन दोषेण महता पञ्चत्वमगमत्तदा ॥
कुम्भीपाके महाघोरे स्थित्वा युगचतुष्टयम्। कर्मशेषेण भूमौच गृध्रत्वमगमत्तदा ॥
दैवेन चोदितो गृध्रस्तैलपानार्थमागतः ॥ ८२ ॥
दत्त्वा चाऽऽकाशदीपञ्च श्रुत्वा चैव हरेः कथाम्।
विध्वस्ताऽखिलपापस्तु जगाम हरिमन्दिरम् ॥ ८३ ॥
इत्येतत्सर्वमाख्यातं लुब्ध! गच्छ यथासुखम्।
व्याधोऽप्यस्य वचः श्रुत्वा गत्वा चैव स्वमन्दिरम् ॥ ८४ ॥
व्रतं चाऽऽकाशदीपस्य चकारविधिवन्मुने !। आयुःशेषंतदानीत्वाजगामहरिमन्दिरम्
सुनन्दोऽपि महाराज आश्चर्यं समुपागतः। चकार विधिना मासं चन्द्रशर्मोक्तमार्गतः
प्रातः स्नात्वा शुचिर्भूत्वाकार्त्तिके मासि वै नृपः।
कोमलैस्तुलसीपत्रैः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ॥ ८७ ॥
रात्रौ दद्याद् व्योमदीपं मन्त्रेणाऽनेन वै नृपः ॥ ८८ ॥
दामोदराय विश्वाय विश्वरूपधरायच। नमस्कृत्वा प्रदास्यामि व्योमदीपं हरिप्रियम्
निर्विघ्नं कुरु देवेश! यावन्मासः समाप्यते ॥ ८६ ॥
व्रतेनाऽनेन देवेश! त्वयिभक्तिः प्रवर्द्धताम्। इति मन्त्रेण राजाऽसौ दीपदानञ्चकारह
ब्राह्मे मुहूर्ते च पुनर्व्योमदीपं ददाति हि। विष्णोः पूजा कृताप्रातःप्रातःस्नानञ्चकारह
उत्सर्गस्य विधिं कृत्वा व्योम्निदीपं समाप्य च।

ब्राह्मणान्भोजयित्वा च व्रतं विष्णोः समापयत् ॥ ६२ ॥

तेन पुण्यप्रभावेण स राजा मुनिसत्तम !। शरदां शतसाहस्रमिह भोगान्मनोहरान्
सुपुत्रपौत्रस्वजनैर्बुभुजे सह भार्यया । ततश्चाऽन्ते द्विजवर विमानं सुमनोहरम् ॥६४
स्त्रीभिः सहः समारुह्य मोक्षमार्गं गतो मुने !। चतुर्भुजः पीतवासाः शङ्खचक्रगदाधरः॥

विष्णुलोके विष्णुरिव प्रोच्यमानः सदाऽमरैः ।
क्रीडयामास राजाऽसौ यथाकामं महामनाः ॥ ६६ ॥
तस्मात्तु कार्तिके मासि मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ।
आकाशदीपो दातव्यो विधानेन हरेः प्रियः ॥ ६७ ॥
दास्यन्ति ये कार्त्तिकमासि मर्त्या व्योम प्रदीपं हरितुष्टयेऽत्र ।
पश्यन्ति ते नैव कदाऽपि देवं यमं महाक्रूरमुखं मुनीन्द्र !॥ ६८ ॥
अथाऽन्यच्च प्रवक्ष्यामि व्योमदीपस्य वैभवम् ।
वालखिल्यैः पुरा प्रोक्तं तच्छृणुष्व द्विजोत्तम !॥ ६६ ॥

वालखिल्या ऊचुः

कृष्णादिमासक्रमतःकार्त्तिकस्याऽऽदिमासतः । आकाशदीपदानंतुकुर्वन्तुऋषिसत्तमाः
तुलायां तिलतैलेनसायंसन्ध्यासमागमे । आकाशदीपं यो दद्यान्मासमेकं निरन्तरम्
सश्रीकाय श्रीपतयेश्रिया न सवियुज्यते । आकाशदीपवंशस्तुविंशद्धस्तोत्तमोभवेत्

मध्यमो नवहस्तः स्यात्कनिष्ठः पञ्चहस्तकः ।
यथा दूरस्थितैर्लोकैर्दृश्यते तत्तथाऽऽचरेत् ॥ १०३ ॥

तथाऽभ्रादिकरण्डेषु दीपदानं विशिष्यते । वंशस्य नवमांशेनलम्बाकार्या पताकिका
मयूरपिच्छमुष्टिं वा कलशं चोपरिन्यसेत् । विष्णुप्रीतिकरोदीपःपितृद्धारस्यकारकः
एकादश्यास्तुलार्काद्वा दीपदानमतोऽपिवा । दामोदराय नभसि तुलायां लोलयासह
प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे । आकाशदीपसदृशं पितुरुद्धारकं नहि॥
हेलिकस्य च द्वौ पुत्रौ तत्रैकस्तु पिशाचकः । व्योमदीपपुण्दानान्मोक्षंप्राप्तसुदुर्लभम्
नमः पितृभ्यः प्रेतेभ्यो नमो धर्माय विष्णवे । नमो यमाय रुद्राय कान्तारपतये नमः

मन्त्रेणाऽनेनयेमर्त्याःपितृभ्यः खेतुदीपकम् । प्रयच्छन्तिगतायेस्युर्नरकेयान्तितेऽपिवै

उत्तमां गतिमित्थं ते दीपदानं मयेरितम् ॥ ११० ॥

लक्ष्मीसन्ततिसिद्ध्यर्थमारोग्याय प्रदीपयेत् ॥ १११ ॥

कार्त्तिकेकृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पञ्चसु । तिथीषूक्तः पूर्वरात्रे नृणां नीराजनाविधि

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु विशेषतः । कूटागारेषु चैत्येषु सभासु च नदीषु च ॥

प्राकारोद्यानवापीषु प्रतोलीनिष्कुटेषु च । मन्दुरासु विविक्तासु हस्तिशालासुचैवहि

प्रदोषसमये दीपान्दद्यादेवं मनोहरान् । कृतंयैः कार्त्तिके मासि दीपदानं विधानतः ॥

दृश्यन्ते ये रत्नभाजस्तेऽत एव प्रकीर्तिताः । दीपदानासमर्थश्चेत्परदीपं तु रक्षयेत् ॥

योवेदाभ्यासिने दद्याद्दीपार्थं तैलमादरात् । कोवा तस्य फलंवक्तुंभुवितिष्ठतिमानवः

दीपान्दद्याद्बहुविधान्कार्त्तिके विष्णुसन्निधौ ।

कार्त्तिकेमासि सम्प्राप्ते गगने स्वच्छतारके ॥ १७ ॥

रात्रौलक्ष्मीःसमायाति द्रष्टुं भुवनकौतुकम् । यत्रयत्रचदीपान्सा पश्यत्यब्धिसमुद्भवा

तत्रतत्र रतिं कुर्यान्नाऽन्धकारे कदाचन । तस्माद्दीपःस्थापनीयःकार्त्तिकेमासिवैसदा

लक्ष्मीरूपार्थिनां प्रोक्तं दीपदानंविशेषतः । देवाऽऽलयेनदीतीरे राजमार्गे विशेषतः ॥

निद्रास्थले दीपदातातस्यश्रीःसर्वतोमुखी । दुर्बलस्याऽऽलयंवीक्ष्यदीपशून्यंतुयोददेत्

विप्रस्यवाऽऽन्यवर्णस्य विष्णुलोकेमहीयते । कीटकण्टकसंकीर्णेदुर्गमे विषमस्थले

कुर्याद्यो दीपदानानि नरकं स न गच्छति ।

दद्याद्रात्रौ पञ्चनदे दीपं यो विधिपूर्वकम् ॥ १२४ ॥

तस्य वंशे प्रजायन्ते बालकाःकुलदीपकाः । पितृपक्षेऽन्नदानेनज्येष्ठाऽऽषाढेचवारिणा

कार्त्तिके तत्फलं तेषांपरदीपप्रबोधनात् । बोधनात्परदीपस्य वैष्णवानाञ्च सेवनात्

कार्त्तिके फलमाप्नोति राजसूयाऽश्वमेधयोः । पुराहरिकरोनाम द्विजःपापरतः सदा ॥

कृतं द्यूतप्रसङ्गेन दीपदानं हि कार्त्तिके । तेनपुण्यप्रभावेण स्वर्गं प्राप द्विजोत्तमः ॥

आकाशदीपदानेन पुरा वै धर्मनन्दनः । विमानवरमारुह्य विष्णुलोकं ययौ नृपः ॥

यःकुर्यात्कार्त्तिकेविष्णोःपुरःकर्पूरदीपकम् । प्रबोधिन्यांविशेषेणतस्यपुण्यंवदाम्यहम्

कुले तस्य प्रसूता ये पुरुषास्तेहरिप्रियाः । क्रीडित्वासुचिरंकालमन्तेमुक्तिंव्रजन्तिच
दीपको ज्वलते यस्य दिवा रात्रौ हरेर्गृहे । एकादश्यां विशेषेणसयातिहरिमन्दिरम्
लुब्धकोऽपि चतुर्दश्यां दीपंदत्त्वाशिवालये । भक्त्याविनापरेलिङ्गेशिवलोकंजगामसः
गोपः कश्चिदमावास्यां दीपं प्रज्वाल्य शार्ङ्गिणः ।
मुहुर्जयजयेत्युक्त्वा स च राजेश्वरोऽभवत् ॥ १३४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे दीपदानमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७

अष्टमोऽध्यायः

तुलसीमाहात्म्यवर्णनम्

नारद उवाच

भूयः कथय तृप्तिर्हि नास्ति मे कमलासन !। त्वद्वागमृतपानेन तृषा भूयः प्रवर्धते ॥१

ब्रह्मोवाच

प्रातः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कार्त्तिकेविष्णुतत्परः । देवंदामोदरंपूज्यकोमलैस्तुलसीदलैः
स तु मोक्षमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ २ ॥
भक्त्या विरहितोयस्तुसुवर्णादिभिरर्चयेत् । तस्यपूजांनगृह्णातिनाऽत्रकार्याविचारणा
सर्वेषामपि वर्णानां भक्तिरेषा परा स्तुता । भक्त्याविरहितंकर्मनविष्णोःप्रियकारणम्
भक्त्या सम्पूजितो नित्यं तुलस्यास्तु दलार्धतः ।
स्वयं प्रत्यक्षमायाति भगवान्हरिरीश्वरः ॥५ ॥
विष्णुदासः पुराभक्त्या तुलसीपूजनेनच । विष्णुलोकंगतःशीघ्रंचोलोगौणत्वमागतः
तुलस्याः श्रृणु महात्म्यं पापघ्नं पुण्यवर्द्धनम् ।
यत्पुरा विष्णुना प्रोक्तं रमायै तद्वदाम्यहम् ॥ ७ ॥

सम्प्राप्ते कार्त्तिकेमासि तुलस्याःपूजनं हरेः । येकुर्वन्तिनराभक्त्यातेयान्तिपरमं पदम्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तुलस्याः कोमलैर्दलैः । पूजनीयो महाभक्त्यासर्वक्लेशविनाशनः
रोपिता तुलसी यावत्कुरुते मूलविस्तरम् । तावद्युगसहस्राणिब्रह्मलोके महीयते ॥
तुलसीपत्रसंयुक्तजले स्नानं चरेद्यदि । सर्वपापविनिर्मुक्तो मोदते विष्णुमन्दिरे ॥
वृन्दावनं च कुरुते रोपणार्थं महामुने !। तावतैव विमुक्ताऽघो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥
तुलसीकाननं ब्रह्मन्गृहे यस्याऽवतिष्ठते । तद्गृहं तीर्थभूतं तु न यान्ति यमकिङ्कराः
सर्वपापहरं पुण्यं कामदं तुलसीवनम् । रोपयन्तिनराःश्रेष्ठास्तेनपश्यन्तिनभास्करिम्
तुलसीकाष्ठसंयुक्तं गन्धं यो धारयेन्नरः । तद्देहं न स्पृशेत्पापं क्रियमाणं तथैव च ॥
तुलसीविपिनच्छाया यत्र चैव भवेद्द्विज । तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यंपितॄणां तृप्तिहेतवे ॥

यन्मुखे तुलसीपत्रं कर्णे शिरसि दृश्यते ।
यमस्तं नेक्षितुं शक्तः किमु दूता भयङ्कराः ॥ १७ ॥
तुलस्या महिमां यस्तु शृणुयान्नित्यमादृतः ।
सर्वपापविमुक्तात्मा ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ १८ ॥

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । तुलस्या विषये ब्रह्मञ्छ्रवणात्पापनाशनम्
पुरा काश्मीरदेशे तु ब्राह्मणौ सम्बभूवतुः । हरिमेधसुमेधाख्यौविष्णुभक्तिपरायणौ
सर्वभूतदयायुक्तौ सर्वतत्त्वार्थवेदिनौ । कदाचित्तौ द्विजवरौ तीर्थयात्रापरायणौ ॥
गच्छन्तावेकतो विप्रौ कान्तारे श्रमविह्वलौ । तुलसीकाननं तत्र ददर्शतुररिन्दमौ ॥
तयोः सुमेधास्तद्दृष्ट्वा तुलसीकाननं महत् । प्रदक्षिणीकृत्यतदा ववन्दे भक्तिसंयुतः
दृष्ट्वा तद्धरिमेधास्तु उवाच परया मुदा । ज्ञातुं तुलस्या माहात्म्यं तत्फलञ्चपुनः पुनः ॥

हरिमेधा उवाच

किमर्थं विप्र! देवेषु तीर्थेषु च व्रतेषु च । स्थितेषु विप्रमुख्येषु प्रणामं कृतवानसि॥

सुमेधा उवाच

शृणु विप्र महाभाग! साधु वाक्यमुदीरितम् । आतपोबाधतेह्यावांगत्वैतद्वटसन्निधौ
तस्यच्छायां समाश्रित्य वक्ष्यामि ते यथार्थतः ।

एवमुक्तः सुमेधास्तु हरिमेधेन संयुतः ॥ २७ ॥
वटं जगाम धर्मज्ञो महत्कोटरसंयुतम् । तत्र विश्राम्य विप्रोऽसौ हरिमेधमुवाच ह
श्रूयतां विप्रशार्दूल! तुलस्यास्तूत्तमां कथाम् । परमेशप्रसादेन सञ्जाताया पयोनिधौ
पुरा दुर्वाससः शापाद्गतैश्वर्ये पुरन्दरे । ममन्थुः क्षीरजलधिं ब्रह्माद्याः ससुराऽसुराः ॥
ऐरावतः कल्पतरुश्चन्द्रमाः कमला तथा । उच्चैःश्रवा कौस्तुभश्चतथाधन्वन्तरिर्हरिः
हरीतक्यादयश्चाऽपि दिव्या ओषधयस्तथा ।
अजायन्त द्विजश्रेष्ठ ! लोकश्रेयोविधायकाः ॥ ३२ ॥
ततः पीयूषकलशमजरामरदायकम् । कराभ्यां कलशं विष्णुर्धारयन्सुतलं परम् ॥
अवेक्ष्य मनसा सद्यः परां निर्वृतिमाप ह ॥ ३३ ॥
तस्मिन्पीयूषकलश आनन्दास्रोदबिन्दवः । व्यपतंस्तुलसी सद्यः समजायतमण्डला
सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता ॥ ॥ ३५ ॥
तत्रोत्पन्नां तथा लक्ष्मीं तुलसीं च ददुर्हरेः । देवा ब्रह्मादयस्ते हि जगृहे भगवान्हरिः
ततोऽतीव प्रियकरा तुलसी जगतास्पतेः ॥ ३७ ॥
सा तु देवगणैः सर्वैर्विष्णुवत्पूज्यते प्रिया । नारायणो जगत्त्रातातुलसीतस्यवल्लभा
तस्मात्तस्यानमस्कारो मया विप्र! कृतस्ततः । इत्येवं वदतस्तस्यसुमेधस्यमहात्मनः
आराददृश्यत महद्विमानं सूर्यवर्चसम् । तदानीं वटवृक्षस्तु पपात पुरतो मुने !॥ ४०॥
तथैव तस्माद्वृक्षाच्चपुरुषौद्वौविनिर्गतौ । द्योतयन्तौदिशःसर्वास्तेजसासूर्यसन्निभौ
प्रणामं चक्रतुस्तौ हि हरिमेधसुमेधयोः । हरिमेधसुमेधौ तौतौ दृष्ट्वा भयविह्वलौ ॥
ऊचतुर्विस्मयाविष्टौ तावुभौ देवसन्निभौ ॥ ४३ ॥

हरिमेधसुमेधसावूचतुः

युवांकौ देवसङ्काशौ भवन्तौ सर्वमङ्गलौ । मन्दारमालां तरुणांधारयन्तौतथाऽमरौ
नमस्कार्यौ तथाऽऽवाभ्यां पूज्यौ च सुररूपिणौ ॥ ४४ ॥
इत्युक्तौ ब्राह्मणाभ्यां तावूचतुर्वृक्षनिर्गतौ । युवामेव पिता माताआवयोश्चतथागुरुः
बन्ध्वादयस्तथा चैव युवामेव न संशयः ।

ज्येष्ठ उवाच

अहं तु देवलोकस्य आस्तीकोनाम नामतः ॥ ४६ ॥
अप्सरोगणसंवीतः कदाचिन्नन्दनं वनम् । क्रीडार्थमगमं चाऽद्रौ विषयासक्तचेतनः
रेमिरे देववनिता यथाकामं मया सह । मुक्तामल्लिकमाल्यानिनिपेतुस्तानियोषिताम्
तपतो रोमशस्यैव तद्दृष्ट्वा कुपितोमुनिः । योषितांनाऽपराधोऽयंयासां वैपरतन्त्रता
अयमेव दुराचारः शापार्ह इति चाऽब्रवीत् । त्वं ब्रह्मराक्षसो भूत्वा वटवृक्षेचरेतिमाम्
प्रसादितो मया सोऽथ विशापमपि दत्तवान् ।
तुलसीपत्रमाहात्म्यं विष्णोर्नाम तथा द्विजात् ॥ ५१ ॥
यदाश्रृणोषिसद्यस्त्वंविमुक्तियास्यसेपराम् । इतिशप्तस्तुमुनिनाचिरकालंसुदुःखितः
वसाम्यत्र वटे दैवाद्भवद्दर्शनतोध्रुवम् । मुक्तिर्जाता विप्रशापाद्द्वितीयस्य कथां श्रृणु
अयं मुनिवरः पूर्वं गुरुशुश्रूषणे रतः । गुरोराज्ञामनादृत्य ब्रह्मराक्षसतां गतः ॥ ५४ ॥
युष्मत्प्रसादादधुना ब्रह्मशापाद्विमोचितः । तीर्थयात्राफलंचैवयुवाभ्यामिहसाधितम्
उत्तरोत्तरपुण्यानि वर्धन्ते च दिनेदिने । इत्युक्त्वा तौ मुनिवरौ प्रणम्यच पुनः पुनः
तावनुज्ञाप्य तौ धाम जग्मतुः परया मुदा । ततस्तौ तीर्थयात्रार्थं परमौ मुनिपुङ्गवौ
शंसन्तौ तुलसीं पुण्यां जग्मतुर्मुनिपुङ्गव ! । एवंनारदमाहात्म्यंतुलस्याःकोऽनुवर्णयेत्
तस्मान्नारदमासेऽस्मिन्कार्त्तिकेहरितुष्टिदे । कर्तव्यातुलसीपूजानाऽत्रकार्याविचारणा
एवमङ्गव्रतान्येव प्रोक्तानि मुनिसत्तम ! । उपाङ्गानि प्रवक्ष्यामिवालखिल्योदितानिच

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णव-
खण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे तुलसीमाहात्म्यवर्णनं
नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

एवमुक्तः सुमेधास्तु हरिमेधेन संयुतः ॥ २७ ॥
वटं जगाम धर्मज्ञो महत्कोटरसंयुतम् । तत्र विश्राम्य विप्रोऽसौ हरिमेधमुवाच ह
श्रूयतां विप्रशार्दूल! तुलस्यास्तूत्तमां कथाम् । परमेशप्रसादेन सञ्जाताया पयोनिधौ
पुरा दुर्वाससः शापाद्गतैश्वर्ये पुरन्दरे । ममन्थुः क्षीरजलधिं ब्रह्माद्याः ससुराऽसुराः ॥
ऐरावतः कल्पतरुश्चन्द्रमाः कमला तथा । उच्चैःश्रवा कौस्तुभश्चतथाधन्वन्तरिर्हरिः

हरीतक्यादयश्चाऽपि दिव्या ओषधयस्तथा ।
अजायन्त द्विजश्रेष्ठ ! लोकश्रेयोविधायकाः ॥ ३२ ॥

ततः पीयूषकलशमजरामरदायकम् । कराभ्यां कलशं विष्णुर्धारयन्सुतलं परम् ॥
अवेक्ष्य मनसा सद्यः परां निर्वृतिमाप ह ॥ ३३ ॥
तस्मिन्पीयूषकलश आनन्दाश्रोदबिन्दवः । व्यपतंस्तुलसी सद्यः समजायतमण्डला
सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता ॥ ॥ ३५ ॥
तत्रोत्पन्नां तथा लक्ष्मीं तुलसीं च ददुर्हरेः । देवा ब्रह्मादयस्ते हि जगृहे भगवान्हरिः
ततोऽतीव प्रियकरा तुलसी जगताम्पतेः ॥ ३७ ॥
सा तु देवगणैः सर्वैर्विष्णुवत्पूज्यते प्रिया । नारायणो जगत्त्रातातुलसीतस्यवल्लभा
तस्मात्तस्यानमस्कारो मया विप्र! कृतस्ततः । इत्येवं वदतस्तस्यसुमेधस्यमहात्मनः
आराददृश्यत महद्विमानं सूर्यवर्चसम् । तदानीं वटवृक्षस्तु पपात पुरतो मुने !॥ ४०॥
तथैव तस्माद्वृक्षाच्चपुरुषौद्वौविनिर्गतौ । द्योतयन्तौदिशःसर्वास्तेजसासूर्यसन्निभौ
प्रणामं चक्रतुस्तौ हि हरिमेधसुमेधयोः । हरिमेधसुमेधौ तौतौ दृष्ट्वा भयविह्वलौ ॥
ऊचतुर्विस्मयाविष्टौ तावुभौ देवसन्निभौ ॥ ४२ ॥

हरिमेधसुमेधसावूचतुः

युवांकौ देवसङ्काशौ भवन्तौ सर्वमङ्गलौ । मन्दारमालां तरुणांधारयन्तौतथाऽमरौ
नमस्कार्यौ तथाऽऽवाभ्यां पूज्यौ च सुररूपिणौ ॥ ४४ ॥
इत्युक्तौ ब्राह्मणाभ्यां तावूचतुर्वृक्षनिर्गतौ । युवामेव पिता माताआवयोश्चतथागुरुः

बन्ध्वादयस्तथा चैव युवामेव न संशयः ।

ज्येष्ठ उवाच

अहं तु देवलोकस्य आस्तीकोनाम नामतः ॥ ४६ ॥

अप्सरोगणसम्वीतः कदाचिन्नन्दनं वनम् । क्रीडार्थमगमं चाऽद्रौ विषयासक्तचेतनः
रेमिरे देववनिता यथाकामं मया सह । मुक्तामल्लिकमाल्यानिनिपेतुस्तानियोषिताम्
तपतो रोमशस्यैव तद्दृष्ट्वा कुपितोमुनिः । योषितांनाऽपराधोऽयंयासां वैपरतन्त्रता
अयमेव दुराचारः शापार्ह इति चाऽब्रवीत् । त्वं ब्रह्मराक्षसो भूत्वा वटवृक्षेचरेतिमाम्

प्रसादितो मया सोऽथ विशापमपि दत्तवान् ।

तुलसीपत्रमाहात्म्यं विष्णोर्नाम तथा द्विजात् ॥ ५१ ॥

यदाश्रृणोषिसद्यस्त्वंविमुक्तियास्यसेपराम् । इतिशप्तस्तुमुनिनाचिरकालंसुदुःखितः
वसाम्यत्र वटे दैवाद्भवद्दर्शनतोध्रुवम् । मुक्तिर्जाता विप्रशापाद्द्वितीयस्य कथां शृणु
अयं मुनिवरः पूर्वं गुरुशुश्रूषणे रतः । गुरोराज्ञामनादृत्य ब्रह्मराक्षसतां गतः ॥ ५४ ॥
युष्मत्प्रसादादधुना ब्रह्मशापाद्विमोचितः । तीर्थयात्राफलंचैवयुवाभ्यामिहसाधितम्
उत्तरोत्तरपुण्यानि वर्धन्ते च दिनेदिने । इत्युक्त्वा तौ मुनिवरौ प्रणम्यच पुनः पुनः
तावनुज्ञाप्य तौ धाम जग्मतुः परया मुदा । ततस्तौ तीर्थयात्रार्थं परमौ मुनिपुङ्गवौ
शंसन्तौ तुलसीं पुण्यां जग्मतुर्मुनिपुङ्गव !। एवंनारदमाहात्म्यंतुलस्याःकोऽनुवर्णयेत्
तस्मान्नारदमासेऽस्मिन्कार्त्तिकेहरितुष्टिदे । कर्तव्यातुलसीपूजानाऽत्रकार्याविचारणा
एवमङ्गव्रतान्येव प्रोक्तानि मुनिसत्तम ! । उपाङ्गानि प्रवक्ष्यामिवालखिल्योदितानिच

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णव-
खण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे तुलसीमाहात्म्यवर्णनं
नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

वत्सद्वादशीयमत्रयोदशीनरकचतुर्द्दशीदीपावलीकृत्यवर्णनम्

वालखिल्या ऊचुः

कृष्णः प्रोवाचधर्मायद्वादशींवत्ससञ्ज्ञिताम् । गोधूलिकालसंयुक्ताद्वादशींवत्सपूजने
वत्सपूजावटे चैव कर्तव्याप्रथमेऽहनि । सवत्सांतुल्यवर्णांचशालिनींगांपयस्विनीम्
चन्दनादिभिरालिप्य पुष्पमालाभिरर्चयेत् ॥ २ ॥
तद्दिने तैलपक्वं च स्थालिपक्वं युधिष्ठिर । गोक्षीरं गोघृतं चैवदधिक्षीरं चवर्जयेत्
दिनान्ते सूर्यबिम्बार्धादुभयत्र घटीदलम् । ततो नीराजनंकार्य्यंनिरीक्षेच्चशुभाऽशुभम्
नानादीपान्प्रकल्प्याऽऽदौ स्वर्णपात्रादिसंस्थितान् ।
नीराजयेद्दीपपूर्वं निरीक्षेत शुभाऽशुभम् ॥ ५ ॥
लापयित्वा सर्वदीपानुत्तराभिमुखान्न्यसेत् ।
मुख्या दीपा नव प्रोक्ता अन्यानपि च कल्पयेत् ॥ ६ ॥
ज्वाला चेद्दक्षिणासंस्था सतेजस्का शिखान्विता ।
स्थिरा चेत्सौख्यदा प्रोक्ता विपरीता तु दुःखदा ॥ ७ ॥
कार्त्तिके कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषुपञ्चसु । तिथिषूक्तःपूर्वरात्रे नृणां नीराजनाविधिः
पक्षं संसूचयत्यादिर्द्वितीयोमासमेव च । तृतीय ऋतुमेवेह चतुर्थस्त्वयनं तथा ॥
वर्षं तु पञ्चमो दीपः शुभाऽशुभं विनिर्णयेत् ॥ ६ ॥
सूर्यांशसम्भवा दीपा अन्धकारविनाशकाः ।
त्रिकाले मां दीपयन्तु दिशन्तु च शुभाऽशुभम् ॥ १० ॥
अभिमन्त्र्य च मन्त्रेण ततो नीराजयेत्क्रमात् ॥ ११ ॥
आदौ देवांस्ततो विप्रान्हस्तिनश्च तुरङ्गमान् ।

ज्येष्ठाञ्छ्रेष्ठाञ्जघन्यांश्च मातृमुख्याश्च योषितः ॥ १२ ॥

ततो नीराजितान्दीपान्स्वस्वस्थानेषु विन्यसेत् ।
रूक्षैर्लक्ष्मीविनाशः स्याच्छ्वेतैरन्नक्षयो भवेत् ॥
अतिरक्तेषु युद्धानि मृत्यु कृष्णशिखेषु च ॥ १३ ॥

एकाङ्गीनामगोपाला तयैतच्चव्रतं कृतम् । धनधान्यसमायुक्ता जाता वर्षत्रयेण सा ॥
तस्माद्गोपूजनंकार्यं द्वादश्यां कार्त्तिकस्यतु । एतद्गोव्रतमाहात्म्यंश्रुत्वा कुर्वन्तियेनराः
तेगोव्रतप्रभावेणनगोभिर्विच्युताभुवि । गोऽपराधःकृतोयःस्यात्सव्रताद्विलयम्व्रजेत्

वालखिल्या ऊचुः

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यांमासिचाऽऽश्वयुजे तथा । दीपोत्सवसमीपे तु व्रतमेतत्समाचरेत्
प्रातःस्नात्वात्रयोदश्यांकृत्वावैदन्तधावनम् । त्रिरात्रनियमं कृत्वागोविन्देभक्तितत्परः
कार्यएतद्व्रतस्यान्ते तथागोवर्द्धनोत्सवः । त्रिमुहूर्ताऽधिकाग्राह्यापरवेधोनदोषभाक्
आश्विनस्याऽसितेपक्षे त्रयोदश्यांनिशामुखे । यमदीपं वलिंदद्यादपमृत्युर्विनश्यति
पुराहेमनकस्यैव वालकश्चाऽपमृत्युतः । मुक्तोऽभूदाश्विनेकृष्णत्रयोदश्यां दयावशात्

दूता ऊचुः

यथानजीविताद्भ्रश्येदीदृशेतु महोत्सवे । तथोपायं ब्रूहि यम! कृपां कृत्वाऽस्मदग्रतः

यम उवाच

आश्विनस्याऽसितेपक्षेत्रयोदश्यांनिशामुखे । प्रतिवर्षंतु यो यद्याद्गृहद्वारेसुदीपकम्
मन्त्रेणाऽनेन भो दूताः समानेयःसनोत्सवे । प्राप्तेऽपमृत्यावपिचशासनं क्रियतां मम
मृत्युनापाशदण्डाभ्यांकालेनच मया सह । त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजःप्रीयतामिति
मन्त्रेणाऽनेनयोदीपं द्वारदेशे प्रयच्छति । उत्सवे चाऽपमृत्योश्च भयन्तस्य न जायते

वालखिल्या ऊचुः

पूर्वविद्धचतुर्दश्यामाश्विनस्य सितेतरे । पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥२७
अरुणोदयतोऽन्यत्ररिक्तायांस्नातियोनरः । तस्याऽब्दिकभवोधर्मोनश्यत्येवनसंशयः
तथाकृष्णचतुर्दश्यामाश्विनेऽर्कोदयेसुराः । यामिन्याःपश्चिमेयामेतैलाभ्यङ्गोविशिष्यते
यदा चतुर्दशीनस्यादुद्धिदिने-चेद्विधूदये । दिनद्वये भवेचाऽपि तदा पूर्वैव गृह्यते ॥३०

बलात्काराद्धठाद्वाऽपिशिष्टत्वान्नकरोतिचेत् । तैलाभ्यङ्गं चतुर्दश्यांरौरवं नरकं व्रजेत्
तैलेलक्ष्मीर्जलेगङ्गादीपावल्याश्चतुर्दशीम् । प्रातःस्नानं हि यः कुर्याद्यमलोकंनपश्यति
अपामार्गमथोतुम्बीं प्रपुन्नाडमथाऽपरम् । भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै
वारत्रयं त्रिवारश्च पठित्वा मन्त्रमुत्तमम् ॥ ३४ ॥
सीतालोष्टसमायुक्त! सकण्टकदलान्वित !। हर पापमपामार्ग! भ्राम्यमाणः पुनः पुनः
अपामार्गं प्रपुन्नाडं भ्रामयेच्छिरसोपरि ॥ ३५ ॥
स्नात्वाऽऽर्द्रवाससादद्याद्दीपकंमृत्युपुत्रयोः । शुनकौ श्यामशवलौ भ्रातरौयमसेवकौ
तुष्टौ स्यातां चतुर्दश्यां दीपदानेन मृत्युजौ ॥ ३६ ॥
इष्टबन्धुजनैः सार्द्धमेतत्स्नानं समाचरेत् । स्नानाङ्गतर्पणं कृत्वा यमं सन्तर्पयेत्ततः ॥
यमाय धर्मराजाय मृत्यवेचाऽन्तकायच । वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥३८
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने । वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय ते नमः ॥
चतुर्दशैतेमन्त्राःस्युःप्रत्येकञ्चनमोऽन्विताः । एकैकेनतिलैर्मिश्रान्दद्यात्त्रीनुदकाञ्जलीन्
यज्ञोपवीतिना कार्यं प्राचीनावीतिनाऽथवा ।
देवत्वञ्च पितृत्वञ्च यमस्याऽस्ति द्विरूपता ॥ ४१ ॥
जीवत्पिताऽपि कुर्वीत तर्पणंयमभीष्मयोः । नरकायप्रदातव्योदीपः सम्पूज्यदेवताः
अत्रैव लक्ष्मीकामस्य विधिः स्नाने मयोच्यते । इषे भूतेच दर्शेचकार्त्तिके प्रथमे दिने
यदा स्नाति तदाऽभ्यङ्गस्नानं कुर्याद्विधूदये ।
ऊर्ज्जशुक्लद्वितीयायां तिथौ च स्वातियुग्मगे ॥ ४४ ॥
मानवो मङ्गलस्नायीनैवलक्ष्याविद्युज्यते । दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावलिः स्मृता
इन्दुक्षयेऽपिसङ्क्रान्तौरवौपातेदिनक्षये । अत्राऽभ्यङ्गेन दोषाय प्रातःपापाऽपनुत्तये
मापपत्रस्य शाकञ्चै भुक्त्वा तस्मिन्दिनेनरः । प्रेताख्यायांचतुर्दश्यांसर्वपापैःप्रमुच्यते
इषासितचतुर्दश्यामिन्दुक्षयतिथावपि । दर्शादौ स्वातिसंयुक्ते तदा दीपावलिर्भवेत्
कुर्यात्सँल्लग्नमेतच्च दीपोत्सवदिनत्रयम् । महाराजोबलिः प्रोक्तस्तुष्टेन हरिणा तथा ॥
वरं याचस्व भद्रन्ते यद्यन्मनसि वर्तते । इति विष्णुवचः श्रुत्वा बलिर्वचनमब्रवीत्

आत्मार्थं किं याचनीयं सर्वं दत्तंमयातथा । लोकार्थं याचयिष्यामि शक्रश्चेद्देहितचमे
मयाऽद्य ते धरा दत्ता वामनच्छद्मरूपिणे ।
त्रिभिः पदैस्त्रिदिवसैःसा चाऽऽक्रान्ता यतस्त्वया ॥ ५२ ॥
तस्माद्भूमितले राज्यमस्तु घस्त्रत्रये हरेः ॥ ५३ ॥
मद्राज्ये ये दीपदानं भुवि कुर्वन्ति मानवाः । तेषांगृहे तवस्त्रीयं सदातिष्ठतुसुस्थिरा
मम राज्ये गृहे येषामन्धकारः पतिष्यति । लक्ष्मीसन्धानान्धकारः सदापततुतद्गृहे
चतुर्दश्यांश्च ये दीपान्नरकाय ददन्ति च । तेषां पितृगणाः सर्वे नरके न वसन्ति च
बलिराज्यं समासाद्ययैर्नदीपावलिः कृता । तेषां गृहे कथं दीपाः प्रज्वलिष्यन्तिकेशव
बलिराज्येतुयेलोकाः शोकाऽनुत्साहकारिणः । तेषां गृहेसदाशोकःपतेदितिनसंशयः
चतुर्दशीत्रये राज्यं बलेरस्त्विवति याचयेत् । पुरावामनरूपेण प्रार्थयित्वा धरामिमाम्
ददावतिथयेन्द्राय बलिं पातालवासिनम् । दत्तं दैत्यपतेरित्थं हरिणा तद्दिनत्रयम् ॥
तस्मान्महोत्सवं चाऽत्र सर्वथैव हि कारयेत् ॥ ६० ॥
महारात्रिः समुत्पन्ना चतुर्दश्यांमुनीश्वराः । अतस्तदुत्सवः कार्यःशक्तिपूजापरायणैः
बलिराज्यंसमासाद्ययक्षगन्धर्वकिन्नराः । औषध्यश्च पिशाचाश्चमन्त्राश्च मणयस्तथा
सर्व एव प्रहृष्यन्ति नृत्यन्तिचनिशामुखे । तत्तन्मंत्राश्चसिद्ध्यन्तिबलिराज्येनसंशयः
बलिराज्यं समासाद्य यथा लोकाः सुहर्षिताः ।
तद्दिनमध्ये तु लोकाःस्युर्हर्षिता भृशम् ॥ ६४ ॥
तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः । उल्काहस्तानराःकुर्युःपितृणांमार्गदर्शनम्
नरकस्थास्तुये प्रेतास्ते मार्गं तु व्रतात्सदा । पश्यन्त्येवनसन्देहःकार्योऽत्रमुनिपुङ्गवैः
आश्विनेमासिभूतादितिथयःकीर्तितास्त्रयः । दीपदानादिकार्येषुग्राह्यामध्याह्नकालिकाः
यदि स्युः सङ्गवादर्वागेताश्च तिथयस्त्रयः । दीपदानादिकार्येषु कर्तव्याः पूर्वसंयुताः

ऋषय ऊचुः

कौमोदिन्यास्तु माहात्म्यं प्रष्टुमिच्छामहे द्विजाः ।
तस्मिन्दिने तु किं भोज्यं कस्य पूजां तु कारयेत् ॥ ६६ ॥

किमर्थं क्रियते सा तु तस्या का देवता भवेत् । किं चतत्रभवेद्देयंकिन्नदेयं विशेषतः
प्रहर्षःकोऽत्रनिर्दिष्टः क्रीडातत्रप्रकीर्तिता । दीपावल्याःफलं सर्वं वदन्तु ऋषिसत्तमाः

बालखिल्या ऊचुः

ततःप्रभातसमयेत्वमायांतुमुनीश्वराः । स्नात्वादेवान्पितॄन्भक्त्यासम्पूज्याऽथप्रणम्यच
कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः । दिवातत्र न भोक्तव्यमृतेबालातुराज्जनात्
ततःप्रदोषसमयेपूजयेदिन्दिरांशुभाम् । कुर्यान्नानाविधैर्वस्त्रैःस्वच्छंलक्ष्म्याश्चमण्डपम्
नानापुष्पैःपल्लवैश्चचित्रैश्चाऽपिविचित्रितम् । तत्रसम्पूजयेल्लक्ष्मींदेवांश्चाऽपिप्रपूजयेत्
सम्पूज्यादेवनार्योऽपिवहुभिश्चोपचारकैः । पादसम्वाहनंकुर्याल्लक्ष्म्यादीनान्तुभक्तितः

अस्मिन्नहनि सर्वेऽपि विष्णुना मोचिताः पुरा ।
वलिकारागृहाद्देवा लक्ष्मीश्चाऽपि विमोचिता ॥ ७७ ॥

लक्ष्म्यासार्द्धंततोदेवाजग्मुःक्षीरोदधौपुनः । प्रसुप्ता बहुकालं ते सुखंतस्मान्मुनीश्वराः
रचनीयाः सूत्रगर्भाः पर्यङ्काश्च सुतूलिकाः । दुग्धफेनोपमैर्वस्त्रैरास्तृताश्च यथादिशम्
स्थापयेत्तान्सुरांल्लक्ष्मींवेदघोषसमन्वितः । लक्ष्मीर्दैत्यभयान्मुक्तासुखंसुप्ताऽम्बुजोदरे
अतोऽत्रविधिवत्कार्यातुष्ट्यै तु सुखसुप्तिका । तद्द्दिपद्मशय्यांयःब्रह्मासौख्यविवृद्धये

कुर्यात्तस्य गृहं मुक्त्वा तत्पद्मा क्वाऽपि न व्रजेत् ।
न कुर्वन्ति नरा इत्थं लक्ष्म्या ये सुखसुप्तिकाम् ॥ ८२ ॥

धनचिन्ताविहीनास्ते कथंरात्रौस्वपन्तिहि । तस्मात्सर्वप्रयत्नेनलक्ष्मींसम्पूजयेन्नरः
सतुदारिद्र्यनिर्मुक्तःस्वजातौस्यात्प्रतिष्ठितः । जातिपत्रलवङ्गैलात्वक्कर्पूरसमन्वितम्

पाचयित्वा गव्यदुग्धं सितां दत्त्वा यथोचिताम् ।
लड्डुकांस्तस्य कुर्वीत तांश्च लक्ष्म्यै समर्पयेत् ॥ ८५ ॥

अन्यच्चतुर्विधंभक्ष्यं दद्याच्छ्रीःप्रीयतामिति । अप्रबुद्धेहरौपूर्वं स्त्रीभिर्लक्ष्मींप्रबोधयेत्
प्रबोधसमये लक्ष्मींबोधयित्वाभुनक्तिया । पुमान्वा वत्सरं यावल्लक्ष्मीस्तंनैवमुञ्चति

अभयं प्राप्य विप्रेभ्यो विष्णुभीताः सुरद्विषः ।
क्षीराब्धौ तुष्टुवुर्ज्ञात्वा सुप्तां पद्माश्रितां श्रियम् ॥ ८८ ॥

त्वं ज्योतिः श्रीरवीन्द्वग्निविद्युत्सौवर्णतारकाः ।
सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्दीपज्योतिः स्थिते नमः ॥ ८६ ॥
यालक्ष्मीर्दिवसेपुण्येदीपावल्याश्चभूतले । गवांगोष्ठे तु कार्त्तिक्यांसालक्ष्मीर्वरदामम
दीपदानंततःकुर्यात्प्रदोषेचतथोल्मुकम् । भ्रामयेत्स्वस्यशिरसिसर्वाऽरिष्टनिवारणम्
दीपवृक्षास्तथा कार्याः शक्त्या देवगृहादिषु । चतुष्पथे श्मशानेच नदीपर्वतवेश्मसु ॥
वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु चत्वरेषु गृहेषुच । वस्त्रैः पुष्पैः शोभितव्याराजमार्गस्य भूमयः ॥
सर्वं पुर मलङ्कृत्य प्रदोषे तदनन्तरम् ।
ब्राह्मणान्भोजयित्वाऽऽदौ सम्भोज्यचबुभुक्षितान् ॥ ९४ ॥
अलङ्कृतेन भोक्तव्यं नववस्त्रोपशोभिना । ततोऽपराह्नसमये घोषयेन्नगरं नृपः ॥९५॥
अथराज्यंवलेर्लोकायथेच्छंक्रीड्यतामिति । यथेच्छं क्रीड्यतांवालाइत्याज्ञाप्यनृपेणतु
तेभ्यो दद्यात्क्रीडनकं ततः पश्येच्छुभाशुभम् । वलिराज्ये प्रकर्तव्यंयद्यन्मनसि वर्तते
जीवहिंसा सुरापानमगम्यागमनं तथा । चौर्यं विश्वासघातश्च पञ्चैतानि मुनीश्वराः!
वलिराज्ये तु नरकद्वाराण्युक्तानि सन्त्यजेत् ॥ ९८ ॥
ततोऽर्द्धरात्रसमये स्वयं राजा व्रजेत्पुरम् । अवलोकयितुं रम्यं पद्भ्यामेव शनैः शनैः
वलिराज्यप्रमोदश्च दृष्ट्वा स्वगृहमाव्रजेत् ॥ ९९ ॥
एवं गते निशीथे च जने निद्रार्द्धलोचने । एवं नगरनारीभिः शूर्पडिण्डिमवादनैः
निष्कास्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहाङ्गणात् ॥ १०० ॥
दण्डैकरजनीयोगे दर्शःस्यात्तु परेऽहनि । तदा विहाय पूर्वेद्युः परेऽह्नि सुखरात्रिका ॥
ये वैष्णवाऽवैष्णवाश्चवलिराज्योत्सवंनराः । नकुर्वन्तिवृथातेषांधर्माःस्युर्नात्रसंशयः
रात्रौजागरणं कुर्यात्पुराणपठनादिभिः । द्यूतेन वा हरेरग्रे गीतया वा तथैव च ॥१०२

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादेवत्सद्वादशीयमत्रयोदशीनरकचतुर्द्दशी दीपावलीकृत्यवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

कार्त्तिकदीपावलीमनुशुक्लप्रतिपन्माहात्म्यप्रतिपादनम्

ब्रह्मोवाच

प्रतिपद्यथ चाऽभ्यङ्गं कृत्वानीराजनं ततः । सुवेशः सत्कथागीतैर्दानैश्च दिवसंनयेत्
शङ्करस्तु पुरा द्यूतं ससर्ज सुमनोहरम् । कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु प्रथमेऽहनि सत्यवत् ॥
बलिराज्यदिनस्याऽपि माहात्म्यं शृणुतत्त्वतः । स्नातव्यंतिलतैले न नरैर्नारीभिरेवच
यदि मोहान्न कुर्वीत स यातियमसादनम् । पुरा कृतयुगस्यादौ दानवेन्द्रोबलिर्महान्
तेन दत्तावामनायाभूमिःस्वमस्तकान्विता । तदानीं भगवान्साक्षात्तुष्टोबलिमुवाचह
कार्त्तिकेमासिशुक्लायांप्रतिपद्यांयतोभवान् । भूमिंमेदत्तवान्भक्त्यातेनतुष्टोऽस्मितेऽनघ
वरंददामि ते राजन्नित्युक्त्वाऽदाद्वरं तदा । त्वन्नाम्नैवभवेद्राजन्कार्त्तिकीप्रतिपत्तिथिः
एतस्यां ये करिष्यन्ति तैलस्नानादिकार्चनम् । तदक्षयं भवेद्राजन्नात्रकार्याविचारणा
तदाप्रभृतिलोकेऽस्मिन्प्रसिद्धा प्रतिपत्तिथिः । प्रतिपत्पूर्वविद्धानो कर्तव्यातुकथञ्चन
तत्राभ्यङ्गं न कुर्वीत अन्यथामृतिमाप्नुयात् । प्रतिपद्यां यदा दर्शो मुहूर्तप्रमितोभवेत्
माङ्गल्यंतद्दिनेचेत्स्याद्वित्तादिस्तस्यनश्यति । बलेश्चप्रतिपद्दर्शाद्यदिविद्धं भविष्यति

तस्यां यद्यथ चाऽऽर्त्तिक्यं नारी मोहात्करिष्यति ।
नारीणां तत्र वैधव्यं प्रजानां मरणं ध्रुवम् ॥ १२ ॥

अविद्धा प्रतिपच्चेत्स्यान्मुहूर्तमपरेऽहनि । उत्सवादिककृत्येषुसैव प्रोक्ता मनीषिभिः
प्रतिपत्स्वल्पमात्राऽपियदिनस्यात्परेऽहनि । पूर्वविद्धातदाकार्याकृतानोदोषभाग्भवेत्
तद्दिने गृहमध्ये तु कुर्यान्मूर्तिं तदाङ्गणे । गोमयेन च तत्राऽपि दधितत्पुरतः क्षिपेत्
आर्तिक्यं तत्र संस्थाप्यएवंकुर्याद्विधानतः । अभ्यङ्गं ये न कुर्वन्तितस्यांतुमुनिपुङ्गव!
न माङ्गल्यं भवेत्तेषां यावत्स्याद्वत्सरं ध्रुवम् । योयादृशेनरूपेणतस्यांतिष्ठेच्छुभेदिने
आवर्षं तद्भवेत्तस्य तस्मात्मङ्गलमाचरेत् ।

यदीच्छेत्स्वशुभान्भोगान्भोक्तुं दिव्यान्मनोहरान् ॥ १८ ॥

कुर्याद्दीपोत्सवं रम्यं त्रयोदश्यादिकेषु च । शङ्करश्च भवानी च क्रीडयाद्यूतमास्थिते

गौर्या जित्वा पुरा शम्भुर्नग्नो द्यूते विसर्जितः ।

अतोऽर्थं शङ्करो दुःखी गौरी नित्यं सुखस्थिता ॥ २० ॥

द्यूतं निषिद्धं सर्वत्र हित्वाप्रतिपदंबुधाः । प्रथमं विजयोयस्यतस्यसम्वत्सरं सुखम्

भवान्याऽभ्यर्थितालक्ष्मीर्धेनुरूपेणसंस्थिता । प्रातर्गोवर्द्धनःपूज्योद्यूतंरात्रौसमाचरेत्

भूषणीयास्तदा गावो वर्ज्या वहनदोहनात् ॥ २३ ॥

गोवर्द्धन ! धराऽऽधार ! गोकुलत्राणकारक !।

विष्णुबाहुकृतोच्छ्राय! गवां कोटिप्रदो भव ॥ २४ ॥

यालक्ष्मीर्लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता । घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु ॥

अग्रतः सन्तु मे गावोगावो मे सन्तु पृष्ठतः । गावोमेहृदयेसन्तुगवांमध्ये वसाम्यहम्

इति गोवर्द्धनपूजा

सद्भावेनैव सन्तोष्य देवान्सत्पुरुषान्नरान् । इतरेषामन्नपानैर्वाक्यदानेन पण्डितान् ॥

वस्त्रैस्ताम्बूलधूपैश्च पुष्पकर्पूरकुङ्कुमैः । भक्ष्यैरुच्चावचैर्भोज्यैरन्तः पुरनिवासिनः ॥

ग्राम्यान्वृषभदानैश्च सामन्तान्नृपतिर्धनैः । पदातिजनसङ्घांश्च ग्रैवेयैः कटकैः शुभैः ॥

स्वनामाङ्कैश्च तान्राजा तोषयेत्सज्जनान्पृथक् ॥ २६ ॥

यथार्थं तोषयित्वा तु ततो मल्लान्नरांस्तथा । वृषभान्महिषांश्चैव युध्यमानान्परैःसह

राज्ञस्तथैवयोधांश्चपदातीन्समलङ्कृतान् । मञ्चाऽऽरूढः स्वयंपश्येन्नटनर्तकचारणान्

युद्धापयेद्वासयेच्च गोमहिष्यादिकञ्च यत् । वत्सानाकर्षयेद्गोभिरुक्तिप्रत्युक्तिवादनात्

ततोऽपराह्णसमयेपूर्वस्यां दिशि सुव्रत !। मार्गपालीं प्रबध्नाति दुर्गस्तम्भेऽथ पादपे

कुशकाशमयीं दिव्यांलम्बकैर्बहुभिःप्रिये । वीक्षयित्वागजानश्वान्मार्गपाल्यास्तलेनयेत्

गावो वृषांश्च महिषान्महिषीर्घण्टकोत्कटान् ।

कृतहोमैर्द्विजेन्द्रैस्तु बध्नीयान्मार्गपालिकाम् ॥ ३४ ॥

नमस्कारं ततः कुर्यान्मन्त्रेणानेनसुव्रत ! मार्गपालि ! नमस्तुभ्यं सर्वलोकसुखप्रदे !

तले तव सुखेनाश्वा गजा गावश्च सन्तु मे ॥ ३६ ॥
मार्गपालीतले पुत्र! यान्ति गावो महावृषाः ।
राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः ॥ ३७ ॥
मार्गपालीं समुल्लङ्घ्य नीरुजः सुखिनो हि ते । कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः
पूजां कुर्यात्ततः साक्षाद्भूमौ मण्डलके कृते । बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैः पञ्चरङ्गकैः
सर्वाभरणसम्पूर्णं विन्ध्यावलिसमन्वितम् । कूष्माण्डमयजम्भोरुमधुदानवसम्वृतम्
सम्पूर्णं हृष्टवदनं किरीटोत्कटकुण्डलम् । द्विभुजं दैत्यराजानं कारयित्वा स्वकेपुनः
गृहस्यमध्येशालायांविशालायांततोऽर्चयेत् । मातृभ्रातृजनैःसार्द्धंसन्तुष्टोबन्धुभिःसह
कमलैः कुमुदैः पुष्पैः कह्लारैरक्तकोत्पलैः । गन्धपुष्पान्ननैवेद्यैःसक्षीरैर्गुडपायसैः ॥४३
मद्यमांससुरालेह्यचोष्यभक्ष्योपहारकैः । मन्त्रेणाऽनेन राजेन्द्रः समन्त्री सपुरोहितः
पूजां करिष्यते यो वै सौख्यं स्यात्तस्य वत्सरम् ॥ ४४ ॥
बलिराज! नमस्तुभ्यं विरोचनसुत! प्रभो !। भविष्येन्द्र! सुराराते! पूजेयंप्रतिगृह्यताम्
एवम्पूजाविधानेन रात्रौ जागरणं ततः । कारयेद्वै क्षणं रात्रौ नटनृत्यकथानकैः ॥४६
लोकश्चाऽपि गृहस्याऽन्ते सपर्या शुक्लतन्दुलैः ।
संस्थाप्य बलिराजानं फलैः पुष्पैः प्रपूजयेत् ॥ ४७ ॥
बलिमुद्दिश्य वै तत्रकार्यं सर्वञ्च सुव्रत !। यानि यान्यक्षयाण्याहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः
यदत्र दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु । तदक्षयं भवेत्सर्वंविष्णोःप्रीतिकरंशुभम्
रात्रौ ये नकरिष्यन्ति तव पूजां बले नराः । तेषांचश्रोत्रियोधर्मःसर्वस्त्वामुपतिष्ठतु
विष्णुना च स्वयं वत्स! तुष्टेन बलये पुनः । उपकारकरं दत्तमसुराणां महोत्सवम्
एकमेवमहोरात्रं वर्षेवर्षे च कार्त्तिके । दत्तं दानवराजस्य आदर्शमिव भूतले ॥ ५२ ॥
यः करोति नृपो राज्येतस्यव्याधिभयंकुतः । सुभिक्षं क्षेममारोग्यंतस्यसम्पदनुत्तमा
नीरुजश्च जनाः सर्वे सर्वोपद्रववर्जिताः ॥ ५४ ॥
कौमुदी क्रियते यस्माद्भावं कर्तुं महीतले । यो यादृशेनभावेनतिष्ठत्यस्यां च सुव्रत!

हर्षदुःखादिभावेन तस्य वर्षं प्रयाति हि ॥ ५५ ॥

रुदिते रोदितं वर्षं प्रहृष्टे तु प्रहर्षितम् । भुक्तौभोग्यंभवेद्वर्षंस्वस्थे स्वस्थं भविष्यति
वैष्णवी दानवी चेयं तिथिः प्रोक्ता च कार्त्तिके ॥ ५७ ॥
दीपोत्सवं जनितसर्वजनप्रमोदं कुर्वन्ति ये शुभतया बलिराजपूजाम् ॥
दानोपभोगसुखबुद्धिमतां कुलानां हर्षं प्रयाति सकलं प्रमुदा च वर्षम् ॥ ५८ ॥
बलिपूजां विधायैवं पश्चाद्गोक्रीडनं चरेत् ॥ ५९ ॥
गवां क्रीडादिनेयत्ररात्रौदृश्येतचन्द्रमाः । सोमोराजापशून्हन्तिसुरभीपूज्यकांस्तथा
प्रतिपद्दर्शसंयोगे क्रीडनं तु गवाम्मतम् । परविद्धासु यः कुर्यात्पुत्रदारधनक्षयः ॥६१॥
अलङ्कार्यास्तदागावो गोग्रासादिभिरर्चिताः । गीतवादित्रनिर्घोषैर्नयेन्नगरबाह्यतः ॥
आनीय च ततः पश्चात्कुर्यान्नीराजनाविधिम् ॥ ६२ ॥
अथ चेत्प्रतिपत्स्वल्पा नारी नीराजनं चरेत् ।
द्वितीयायां ततः कुर्यात्सायं मङ्गलमालिकाः ॥ ६३ ॥
एवं नीराजनं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते । प्रतिपत्पूर्वविद्धैव यष्टिकाकर्षणे भवेत् ॥
कुशकाशमयीं कुर्याद्यष्टिकां सुदृढां नवाम् । देवद्वारे नृपद्वारेऽथवाऽऽनेया चतुष्पथे
तामेकतो राजपुत्रा हीनवर्णास्तथैकतः । गृहीत्वा कर्षयेयुस्ते यथासारंमुहुर्मुहुः ॥
समसङ्ख्याद्वयोःकार्यासर्वेऽपिबलवत्तराः । जयोऽत्रहीनजातीनांजयोराज्ञस्तुवत्सरम्
उभयोः पृष्ठतः कार्या रेखातत्कर्षकोपरि । रेखान्ते यो नयेत्तस्यजयोभवतिनाऽन्यथा
जयचिह्नमिदं राजा निदधीत प्रयत्नतः ॥ ६६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे कार्त्तिकशुक्लप्रतिपन्माहात्म्य वर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

यमद्वितीयामाहात्म्यंविशेषकृत्यवर्णनम्

नारद उवाच

भगवन्प्रष्टुमिच्छामि त्वामहं विनयान्वितः। तद्व्रतं ब्रूहिमेमर्त्योमृत्युंयेननपश्यति

ब्रह्मोवाच

यदि पृच्छसिविप्रेन्द्र! व्रतनामुत्तमं व्रतम्। व्रतं यमद्वितीयाख्यंशृणुत्वंमृत्युनाशनम्
कार्त्तिके मासि शुक्लायांद्वितीयायां मुनीश्वर!। कर्तव्यंतद्विधानेनसर्वमृत्युनिवारणम्
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय द्वितीयायांमुनीश्वर!। मनसाचिन्तयेदात्महितंनैवाऽहितंस्मरेत्
प्रातः स्नानं ततः कुर्याद्दन्तधावनपूर्वकम्। ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः॥५
कृतनित्यक्रियो हृष्टः कुण्डलाङ्गदभूषितः। औदुम्बरतरुं गत्वाकृत्वामण्डलमुत्तमम्
पद्ममष्टदलं कृत्वा तस्मिन्नौदुम्बरे शुभे। विधिं विष्णुं च रुद्रं चवरदाञ्चसरस्वतीम्
वीणापुस्तकसंयुक्तां पूजयेत्स्वस्थमानसः। चन्दनागरुकस्तूरीकुङ्कुमैर्द्विजसत्तम!॥
पुष्पैर्धूपैश्चनैवेद्यैर्नारिकेलफलादिभिः। ततोमृत्युविनाशार्थं सालङ्कारां पयस्विनीम्
विप्राय वेदविदुषे गां दद्याच्च सवत्सकाम्। अपमृत्युविनाशार्थं संसारार्णवतारकाम्
हेविप्र! तेत्विमांसौम्यां धेनुं सम्प्रददाम्यहम्। इतिमन्त्रेणगांदद्याद्विप्रायब्रह्मवादिने
तदलाभे तु विप्राय भक्त्या दद्यादुपानहौ। ततःपूजांसमाप्याऽथभक्तिमान् पुरुषोत्तमे

ज्ञातिश्रेष्ठान्वयोवृद्धान्सम्यग्भक्त्याऽभिवादयेत्।
नानाविधैः फलै रम्यैस्तर्प्पयेत्स्वजनानपि॥१३॥

ततःसोदरसम्पन्ना भगिनीयाभवेन्मुने!। तस्यागृहंसमागत्यसम्यग्भक्त्याऽभिवादयेत्

भगिनि! सुभगे! भद्रे त्वदङ्घ्रिसरसीरुहम्।
श्रेयसेऽथ नमस्कर्तुमागतोऽस्मि तवाऽऽलयम्॥ १५॥

इत्युक्त्वा भगिनीं तां तु विष्णुबुद्ध्याऽभिवादयेत्।

तदा तु भगिनी श्रुत्वा भ्रातुर्वचनमुत्तमम् ॥१६॥
भगिन्या भ्रातरं वाक्यंवक्तव्यंप्रतिनारद !। अद्यभ्रातरहंजाताऽत्वत्तोधन्याऽस्मिमङ्गला
भोक्तव्यं तेऽद्य मद्गेहेस्वायुषेकुलदीपकं !। कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां सहोदर
यमोयमुनयापूर्वं भोजितःस्वगृहेऽर्चितः। अस्मिन्दिनेयमेनाऽपिनारकीयाश्चमोचिताः
अपि बद्धाः कर्मपाशैः स्वेच्छया पर्यटन्ति ते ॥ १९ ॥
स्वसुर्नरो वेश्मनि यो न भुङ्क्ते यमद्वितीयादिनमत्र लब्ध्वा।
तम्पापिनं प्राप्य वयं सुहृष्टाः प्रभक्षयामोऽद्य च भक्ष्यहीनाः ॥ २० ॥
इति पापा रटन्तीह ब्रह्महत्यादयस्तथा। तस्माद्भ्रातर्मद्गृहेतु भोजनं कुरु कार्त्तिके
शुक्लायां तु द्वितीयायां विश्रुतायांजगत्त्रये। अस्यांनिजगृहेपुत्र! भुज्यते न बुधैरपि
इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा भगिनीं पूजयेद्व्रती। प्रहर्षात्सुमहाभाग! वस्त्रालंकारभूषणैः
अग्रजामभिवन्द्याऽथ आशिषश्च प्रगृह्यच। सर्वा भगिन्यःसन्तोष्या वस्त्रालङ्कारदानतः
अभावे स्वस्य तु स्वसुः पितृव्या स्वपितुः स्वसा।
तस्या गृहं समागत्य कुर्याद्भोजनमादरात् ॥ २५ ॥
एवं यः कुरुतेपुत्र! द्वितीयां यमनामिकाम्। अपमृत्युविनिर्मुक्तः पुत्रपौत्रादिभिर्वृतः
इह भुक्त्वा तु विपुलान्भोगानन्यान्यथेप्सितान्।
अन्ते मोक्षमवाप्नोति नान्यथा मद्वचो भवेत् ॥ २७ ॥
व्रतान्येतानि सर्वाणि दानानि विविधानि च।
गृहस्थस्यैव युज्यन्ते तस्माद्गार्हस्थ्यमाश्रयेत् ॥ २८ ॥
कथांयमद्वितीयाया व्रतस्थःश्रृणुयान्नरः। तस्यसर्वाणिपापानिनश्यन्तीत्याहमाधवः

सूत उवाच

कार्त्तिके च द्वितीयायां पूर्वाह्णे यममर्चयेत्। भानुजायां नरः स्नात्वायमलोकंनपश्यति
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु द्वितीयायांतु शौनक !। यमो यमुनयापूर्वंभोजितःस्वगृहेऽर्चितः
द्वितीयायां महोत्सर्गो नारकीयाश्च तर्पिताः।
पापेभ्यो विप्रमुक्तास्ते मुक्ताः सर्वे निबन्धनात् ॥ ३२ ॥

अत्राऽऽशिताश्च सन्तुष्टाः स्थिताः सर्वे यदृच्छया ।
तेषां महोत्सवो वृत्तो यमराष्ट्रसुखावहः ॥ ३३ ॥

अतो यमद्वितीयेयं त्रिषुलोकेषु विश्रुता । तस्मान्निजगृहे विप्र! न भोक्तव्यंततोबुधैः
स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं बलवर्द्धनम् । ऊर्जे शुक्लद्वितीयायांपूजितस्तर्पितो यमः
महिषासनमारूढो दण्डमुद्गरभृत्प्रभुः । वेष्टितः किङ्करैर्हृष्टैस्तस्मै याम्यात्मने नमः॥
यैर्भगिन्यःसुवासिन्योवस्त्रदानादितोषिताः । न तेषां वत्सरंयावत्कलहोनरिपोर्भयम्
धन्यं यशस्यमायुष्यं धर्मकामार्थसाधनम् । व्याख्यातं सकलं पुत्र! सरहस्यंमयाऽनघ

यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः सम्भोजितः प्रतितिथौ स्वसृसौहृदेन ।
तस्मात्स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति प्राप्नोति वित्तशुभसम्पदमुत्तमां सः॥

सूत उवाच

विशेषश्चाऽत्रसम्प्रोक्तोवालखिल्यैर्महर्षिभिः । तदहंसम्प्रवक्ष्यामिश्रृणुध्वंमुनिसत्तमाः

वालखिल्या ऊचुः

कार्त्तिकस्य सिते पक्षे द्वितीयायमसञ्ज्ञिता । तत्राऽपराह्णे कर्तव्यंसर्वथैवयमार्चनम्
प्रत्यहं यमुनाऽऽगत्य यमं सम्प्रार्थयत्पुरा । भ्रातर्मम गृहे याहि भोजनार्थं गणावृतः
अद्य श्वो वा परश्वो वा प्रत्यहं वदते यमः । कार्यव्याकुलचित्तानामवकाशो न जायते

तदैकदा यमुनया बलात्कारान्निमन्त्रितः ।
स गतः कार्त्तिके मासि द्वितीयायां मुनीश्वराः !॥ ४४ ॥

नारकीयजनान्मुक्त्वा गणैःसहरवेःसुतः । कृताऽऽतिथ्योयमुनयानानापाकाःकृताःखग!
कृताभ्यङ्गो यमुनया तैलैर्गन्धमनोहरैः । उद्वर्तनं लापयित्वा स्नापितः सूर्यनन्दनः॥

ततोऽलङ्कारकं दत्तं नाना वस्त्राणि चन्दनम् ।
माल्यानि च प्रदत्तानि मञ्चोपरि उपाविशत् ॥ ४७ ॥

पक्वान्नानि विचित्राणि कृत्वासास्वर्णभाजने । यमायाऽभोजयद्देवीयमुनाप्रीतमानसा
भुक्त्वा यमोऽपि भगिनीमलङ्कारैःसमर्चयत् । नानावस्त्रैस्ततःप्राह वरम्वरय भामिनि

इति तद्वचनं श्रुत्वा यमुना वाक्यमब्रवीत् ॥ ४६ ॥

यमुनोवाच

प्रतिवर्षं समागच्छ भोजनार्थं तु मद्गृहे ॥ ५० ॥

अद्यसर्वे मोचनीयाःपापिनोनरकाद्यम ! । येऽद्यैवभगिनीहस्तात्करिष्यन्तिचभोजनम्

तेषां सौख्यं प्रदेहि त्वमेतदेव वृणोम्यहम् ॥ ५१ ॥

यम उवाच

यमुनायां तु यः स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥ ५२ ॥

भुङ्क्ते च भगिनीगेहे भगिनीं पूजयेदपि । कदाचिदपि मद्द्वारंन स पश्यतिभानुजे!

वीरेशैशानदिग्भागेयमतीर्थम्प्रकीर्तितम् । तत्रस्नात्वाच विधिवत्सन्तर्प्यपितृदेवताः

पठेदेतानि नामानिआमध्याह्नंनरोत्तमः । सूर्यस्याऽभिमुखोमौनीहृतचित्तःस्थिरासनः

यमो निहन्ता पितृधर्मराजो वैवस्वतो दण्डधरश्च कालः ।

भूताधिपो दत्तकृतानुसारी कृतान्तमेतद्दशभिर्जपन्ति ॥ ५६ ॥

ततो यमेश्वरम्पूज्य भगिनीगृहमाव्रजेत् । मन्त्रेणाऽनेनच तया भोजितः पूर्वमादरात्

भ्रातस्तवानुजाताऽहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदंशुभम् । प्रीतयेयमराजस्य यमुनाया विशेषतः

ततः सन्तोष्य भगिनीं वस्त्रालङ्करणादिभिः ।

स्वप्नेऽपि यमलोकस्य भविष्यति न दर्शनम् ॥ ५६ ॥

नृपैः कारागृहे ये च स्थापितामम वासरे । अवश्यं ते प्रेषणीया भोजनार्थं स्वसुर्गृहे

विमोक्तव्या मया पापानरकेभ्योऽद्यवासरे । येऽद्यबन्दींकरिष्यन्तितेताड्याममसर्वथा

कनीयसी स्वसा नास्तितदाज्येष्ठागृहंव्रजेत् । तदभावेसपत्यायाःपितृव्यजागृहेततः

तदभावेमातृस्वसुर्मातुलस्याऽऽत्मजा तथा । सापत्नगोत्रसम्बन्धैः कल्पयेदथचाक्रमम्

सर्वाऽभावे माननीया भगिनीकाचिदेवहि । गोनद्याद्यथवातस्या अभावेसतिकारयेत्

तदभावेऽप्यरण्यानींकल्पयित्वासहोदराम् । अस्यांनिजगृहे देवि! नभोक्तव्यंकदाचन

ये भुञ्जते दुराचारा नरके ते पतन्ति च । एवमुक्त्वा धर्मराजो ययौ संयमिनीं ततः

तस्माद्दृषिवराः सर्वे कार्त्तिकव्रतकारिणः । भुञ्जते भगिनीहस्तात्सत्यंसत्यंनसंशयः

यमद्वितीयां यः प्राप्य भगिनीगृहभोजनम् । न कुर्याद्वर्षजंपुण्यंनश्यतीतिरवेः श्रुतिः

यातुभोजयतेनारी भ्रातरं भ्रातृके तिथौ । अर्च्चयेच्चाऽपिताम्बूलैर्नसावैधव्यमाप्नुयात्
भ्रातुरायुःक्षयोनूनं नभवेत्तत्र कर्हिचित् । अपराह्णव्यापिनी सा द्वितीया भ्रातृभोजने
अज्ञानाद्यदि वा मोहान्नभुक्तंभगिनीगृहे । प्रवासिना ह्यभावाद्वा ज्वरितेनाऽथ वन्दिना
एतदाख्यानकंश्रुत्वाभोजनस्यफलम्भवेत् । कार्त्तिकेतुविशेषेण धात्रीछायांसमाश्रितः
भोजनं कुरुते यस्तु स वैकुण्ठमवाप्नुयात् ॥ ७३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे यमद्वितीयामाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

धात्रीमाहात्म्यवर्णनम्

शौनक उवाच

कार्त्तिकस्य च माहात्म्यं महत्पुण्यफलप्रदम् ।
कदा धात्री समुत्पन्ना कथं सा ख्यातिमागता ॥ १ ॥
कस्मादियंपवित्राचकस्मात्पापप्रणाशिनी । आमर्दकीकृताकेनकथयस्वाऽत्रविस्तरात्

सूत उवाच

कथयामि द्विजश्रेष्ठ! यथाचेयं हि पुण्यदा । ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यांधात्रीपूजांसमाचरेत्
आमर्दकीमहावृक्षः सर्वपापप्रणाशनः । वैकुण्ठाख्यचतुर्दश्यां धात्रीछायां गतो नरः॥
पूजयेत्तत्र देवेशं राधया सहितं हरिम् । प्रदक्षिणां ततः कुर्याच्छतमष्टोत्तरं तथा ॥
सुवर्णरजतैर्वापि फलैरामलकैस्तथा । शतमष्टोत्तरं कुर्यादेकैकेन प्रदक्षिणाम् ॥ ६ ॥
साष्टाङ्गंप्रणतोभूत्वाप्रार्थयेत्परमेश्वरम् । धात्रीछायां समाश्रित्यश्रृणुयाच्चकथामिमाम्
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्यथाशक्त्यासदक्षिणम् । ब्राह्मणेषुच तुष्टेषु तुष्टोमोक्षप्रदोहरिः

अत्रतेकथयिष्यामिकथांपुण्यफलप्रदाम् । आमर्दकीफलं वक्तुं ब्रह्मा चाऽपि नपार्यते
एकार्णवे पुरा जाते नष्टे स्थावरजङ्गमे । नष्टे देवासुरगणे प्रणष्टोरगराक्षसे ॥ १० ॥
तत्र देवाधिदेवेशः परमात्मा सनातनः । जजाप ब्रह्म परममात्मनः परमाव्ययम् ॥११
ततोऽस्य ब्रह्म जपतो निरगाच्छ्वसितम्पुरः । तद्दर्शनाऽनुरागेण नेत्राभ्यामगमज्जलम्

प्रेमाश्रुभरनिर्भिन्नो भूमौ विन्दुः पपात सः ।
तस्माद्वि विन्दोः समुत्पन्नः स्वयं धात्रीनगो महान् ॥ १३ ॥

शाखाप्रशाखाबहुलः फलभारेण पीडितः । सर्वेषामेव वृक्षाणामादिरोहः प्रकीर्तितः॥
ब्रह्मा तमसृजत्पूर्वं तत्पश्चाच्चाऽसृजत्प्रजाः । देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगान् ॥१५॥
असृजद्भगवान्देवो मानुषांश्च तथाऽमलान् । आजग्मुस्तत्र देवास्तेयत्रधात्रीहरिप्रिया
तां दृष्ट्वा ते महाभागाः परमं विस्मयंगताः । न जानीम इमं वृक्षं चिन्तयन्तो मुहुर्मुहुः
एवं चिन्तयतां तेषांवागुवाचाऽशरीरिणी । आमर्दकी नगोह्येष प्रवरो वैष्णवो यतः
अस्यवै स्मरणादेव लभेद्गोदानजम्फलम् । दर्शनाद्द्विगुणं पुण्यं त्रिगुणं भक्षणात्तथा
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सेव्या आमर्दकी सदा । सर्वपापहराप्रोक्ता वैष्णवीपापनाशिनी
तस्या मूलेस्थितोविष्णुस्तदूर्ध्वंचपितामहः । स्कन्धेचभगवान्रुद्रःसंस्थितःपरमेश्वरः
शाखासु सवितारश्च प्रशाखासुच देवताः । पर्णेषु देवताः सन्ति पुष्पेषु मरुतस्तथा
प्रजानां पतयः सर्वे फलेष्वेवं व्यवस्थिताः । सर्वदेवमयी ह्येषा धात्रीवं कथितामया
अतः सा पूजनीयाच सर्वकामार्थसिद्धये । एकदा नारदोयोगी ब्रह्मणः पुरतः स्थितः

नमस्कृत्वा जगन्नाथं पप्रच्छाऽतीवविस्मितः ॥ २४ ॥

श्रीनारद उवाच

यथा प्रियं सुतुलसीकाननं सर्वदा हरेः । तथा धात्रीवनंमासे कार्त्तिके श्रीहरिप्रियम्

ब्रह्मोवाच

धात्रीवनेहरेःपूजाधात्रीछायासुभोजनम् । कार्त्तिकेमासि यःकुर्यात्तस्यपापंविनश्यति

तीर्थानि मुनयो देवाः यज्ञाः सर्वेऽपि कार्त्तिके ।
नित्यं धात्रीं समाश्रित्य तिष्ठन्त्यर्के तुलास्थिते ॥ २७ ॥

यत्किञ्चित्कुरुते पुण्यं धात्रीछायासु मानवः ।
तत्कोटिगुणितं भूयान्नाऽत्रकार्या विचारणा ॥ २८ ॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ २९ ॥

अयोध्यानगरेकश्चिद्वैश्यश्चाऽऽसीद्द्विजोत्तम!। पुत्रदारविहीनश्चदैवाद्दारिद्र्यपीडितः
भिक्षया चोदराग्निं स शमयामास नारद !। कदाचिद्वणिजोवैश्योययाचेक्षुत्प्रपीडितः
भिक्षाप्तचणकान्गृह्य धात्रीछायामगात्किल । तत्रतान्भक्षयामास कार्त्तिकेमासि नारद
केचिदुर्वरितास्तेषु चणकास्तत्र नारद !। वैश्येन तेन दत्ताहि क्षुत्क्षामाय द्विजातये॥
तेन पुण्यप्रभावेणराजाऽऽसीद्धनिकःक्षितौ । तस्माद्दानंप्रकर्तव्यं कार्त्तिकेमासिसर्वदा
धात्रीवने मुनिश्रेष्ठ ! सर्वकामार्थसिद्धये । धात्रीछायांसमाश्रित्यकार्त्तिकेचहरेःकथाम्

यः शृणोति स पापेभ्यो मुच्यते द्विजसूनुवत् ॥ ३५ ॥

नारद उवाच

कोऽभूद्द्विजसुतो ब्रह्मन्किम्पापं कृतवान्पुरा । तस्य जाताकथंमुक्तिरेतद्विस्तरतोवद

ब्रह्मोवाच

पुरा द्विजवरश्चासीत्कावेर्या उत्तरे तटे ॥ ३७ ॥

देवशर्मेति विख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः । तस्य पुत्रो दुराचारस्तमाह च पिता हितम्
इदानीं कार्त्तिको मासो वर्तते हरिवल्लभः । तत्र स्नानञ्च दानञ्च व्रतानि नियमान्कुरु
तुलसीपुष्पसहितां कुरु पूजां हरेःसुत !। दीपदानञ्च विविधं नमस्कारं प्रदक्षिणाम्
एवं पितुर्वचःश्रुत्वापुत्रःक्रोधसमन्वितः । पितरं प्राह दुष्टात्माचलदोष्ठो विनिन्दयन्

पुत्र उवाच

नकरिष्याम्यहंतात! कार्त्तिके पुण्यसङ्ग्रहम् । इति पुत्रवचःश्रुत्वासक्रोधःप्राहतंसुतम्
मूषको भवदुर्बुद्धे! वने वृक्षस्य कोटरे । इति शापभयाद्भीतो नत्वा पितरमब्रवीत् ॥
दुर्योनेर्ममुक्तिः स्यात्कथंतद्वदमेगुरो !। इतिप्रसादितोविप्रः प्राहनिष्कृतिकारणम्
यदोर्ज्जव्रतजं पुण्यं शृणोषि हरिवल्लभम् । तदातेभवितामुक्तिस्तत्कथाश्रवणात्सुत!
स पित्रा चैवमुक्तस्तु तत्क्षणान्मूषकोऽभवत् । बहुवर्षसहस्राणि गह्वरे विपिनेवसन्

एकदा कार्त्तिके मासि विश्वामित्रः सशिष्यकः ।
स्नात्वा नद्यां हरिश्चाऽर्च्य धात्रीछायां समाश्रितः ॥ ४७ ॥
कथयामास माहात्म्यं शिष्येभ्योश्चोर्ज्जसम्भवम् ।
तदा कश्चिद्दुराचारो व्याधोऽगान्मृगयां चरन् ॥ ४८ ॥
दृष्ट्वा ऋषिगणान्हन्तुं कृतेच्छः प्राणिघातकः । तेषां दर्शनमात्रेण सुबुद्धिरभवत्तदा॥
अथोवाचद्विजान्नत्वाभ्रमद्भिःक्रियतेऽत्रकिम् । तेनैवमुक्तोविप्रेन्द्रोविश्वामित्रस्तमब्रवीत्

विश्वामित्र उवाच

सर्वेषामेव मासानां कार्त्तिकः श्रेष्ठ उच्यते । तस्मिन्यत्क्रियतेकर्म वर्धते वटबीजवत्
कार्त्तिके मासि यः कुर्यात्स्नानंदानञ्चपूजनम् । विप्राणाम्भोजनञ्चैवतदक्षय्यफलंभवेत्
व्याधप्रयुक्तमाकर्ण्य धर्मञ्च ऋषिणा द्विजः । मौषकंदेहमुत्सृज्यदिव्यदेहोऽभवत्तदा
विश्वामित्रंप्रणम्याऽथस्ववृत्तान्तंनिवेद्यच। अनुज्ञातोऽथऋषिणाविमानस्थोदिवंययौ
विस्मितो गाधिपुत्रस्तु व्याधश्चैव विशेषतः ।
व्याधोऽप्यूर्जव्रतं कृत्वा जगाम हरिमन्दिरम् ॥ ५९ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्त्तिकेकेशवाऽग्रतः । धात्रीछायांसमाश्रित्यकथाश्रवणमाचरेत्
मूषकोऽपि च दुर्योनेर्मुक्तऊर्जकथाश्रुतेः । शृणुयाच्छ्रावयेद्यो वामुक्तिभागीन संशयः
धात्रीछायां समाश्रित्य वनभोजनमाचरेत् ।
आदौकृत्वातथास्नानमुदके वनसंस्थिते । कृत्वाकर्माणि नित्यानि माधवं पूजयेत्ततः
धात्रीछायां समाश्रित्य हरौ भक्तिसमन्वितः ।
शृणुयाच्च कथां दिव्यां मासमाहात्म्यशंसनीम् ॥ ५६ ॥
ततस्तु ब्राह्मणान्भक्त्याभोजयेद्ब्रह्मवित्तमान् । ततोभुञ्जीतविप्रेन्द्रस्वयंहरिमनुस्मरन्
एवं कृतं व्रते विप्र कार्त्तिके हरिवल्लभे । यत्पापं नश्यते पुत्र ! सावधानमनाः शृणु ॥
हरेर्नार्पितभोगाच्च भोजने सूर्यदर्शनात् । रजस्वलावाक्श्रवणात्पापाद्भोजनके तथा ॥
भोजनावसरे चान्यस्पर्शदोषस्तु यद्भवेत् । निषिद्धभोजनात्तस्माद्भोजनेचाऽन्नदूषणात्
शुद्धस्यापि तथा त्यागात्पुण्यकालेहरिप्रिये । एतैर्यत्साधितंपापंतत्सर्वंनश्यतिध्रुवम्

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धात्र्यां भोजनमाचरेत् ॥ ६५ ॥
कार्त्तिके मासि वै विप्रो धात्रीमालां तु यो वहेत् ।
तथैव तुलसीमालां तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ६६ ॥

धात्रीछायां समाश्रित्यदीपमालार्पणं नरः । करिष्यति विशेषेणतस्यपुण्यमनन्तकम्
राधादामोदरौ पूज्यौ तुलस्यधो विशेषतः । तुलस्यभावे कर्तव्यापूजाधात्रीतलेशुभा
धात्रीछायातले येन सकृद्भुक्तं तु कार्त्तिके । दम्पत्योर्भोजनं दत्तमन्नदोषात्प्रमुच्यते ॥
सम्पूर्णेकार्त्तिकेयस्तुसम्पूज्यामलकींशुभाम् । राधादामोदरप्रीत्यैभोजयित्वाच दम्पती

पश्चात्स्वयं तु भुञ्जीत न श्रीस्तस्य क्षयं व्रजेत् ॥ ७० ॥

यः कश्चिद्वैष्णवो लोकेधत्तेधात्रीफलं मुने !। प्रियोभवतिदेवानांमनुष्यणांचकाकथा
धात्रीफलविलिप्ताङ्गो धात्रीफलसमन्वितः । धात्रीफलकृताहारो नरोनारायणोभवेत्
धात्रीफलानि यो नित्यं वहते करसम्पुटे । तस्यनारायणो देवो वरमिष्टं प्रयच्छति
श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्यादामलकैर्नरः । तुष्यत्यामलकैर्विष्णुरेकादश्यां विशेषतः
नवम्यां दर्शेसप्तम्यांसङ्क्रान्तौ रविवासरे । चन्द्रसूर्योपरागे चस्नानमामलकैस्त्यजेत्

धात्रीछायां समाश्रित्य कुर्यात्पिण्डं तु यो नरः ।
प्रयान्ति पितरो मुक्तिं प्रसादान्माधवस्य तु ॥ ७६ ॥

मूर्ध्निपाणौमुखेचैवबाह्वोःकण्ठेतुयोनरः । धत्ते धात्रीफलं वत्स धात्रीफलविभूषितः
यावल्लुठति कण्ठस्था धात्रीमालानरस्य हि । तावत्तस्यशरीरेतुप्रीत्यालुठतिकेशवः
धात्रीफलंचतुलसीमृत्तिकाद्वारकोद्भवा । सफलं जीवितं तस्य त्रितयं यस्यवेश्मनि
यावद्दिनानि वहते धात्रीमालां कलौ नरः । तावद्युगसहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत्
मालायुग्मं वहेद्यस्तु धात्रीतुलसिसम्भवम् । यो नरःकण्ठदेशेतुकल्पकोटिंदिवंवसेत्
धात्रीछायां गतोयस्तु द्वादश्यांपूजयेद्धरिम् । तत्रैवभोजनंयस्तुब्राह्मणानांचकारयेत्
स्वयं च तत्र भुङ्क्ते यः सूपभक्ष्यादिकं तथा । न तस्य पुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि

तुलस्याश्चैव धात्र्याश्च फलैः पत्रैर्हरिं यजेत् ॥ ८४ ॥

तुलसी धात्रीयुक्ताहिसिक्तेसतिचकार्त्तिके । [illegible]

धर्मदत्तो द्विजः पूर्वं यथा मुक्तिमवाप ह ॥ ८६ ॥

नारद उवाच

कार्त्तिके मासि सा सेव्या पूजनाया सदा नरैः ।
चातुर्मास्ये न सेव्या सा इत्युक्तं भवता पुरा
तत्स्मात्सर्वमशेषेण कथयस्व ममाऽग्रतः ॥ ८७ ॥

ब्रह्मोवाच

कार्त्तिकेमासिविप्रर्षे! शुक्लायादशमीशुभा । तद्दिनाऽऽरभ्यसासेव्यादैवेपित्र्येचकर्मणि
दशम्यारभ्य तत्पत्रैः फलकैर्मधुसूदनम् ॥ ८८ ॥
पूजयन्तिनरा ये वै ते वै वैकुण्ठगामिनः । समाप्ते कार्त्तिकव्रते वनभोजनमाचरेत्
दशम्यांवाऽथद्वादश्यांपौर्णमास्यामथाऽपिवा । पञ्चम्यांवामहाभागवनभोजनमाचरेत्
सर्वोपस्करसंयुक्तो वृद्धवालैश्च संयुतः । वनं प्रवेशयेद्धीमान्धात्रीवृक्षैः सुशोभितम्
चूतैर्वकैस्तथाऽश्वत्थैः पिचुमन्दैः कदम्बकैः ।
न्यग्रोधतिन्तिणीवृक्षैः समन्तात्परिशोभितम् ॥ ६२ ॥
तत्रगत्वामहाप्राज्ञ पुण्याहं कारयेत्पुरा । वास्तुपीठं तथा पूज्यं धात्रीमूलेतुकारयेत्
वेदिकां चतुरस्राञ्च हस्तमात्रायतां शुभाम् । तथोपवेदिकां कृत्वा वेदिकाग्रेमहामते
उपवेशाय देवस्यह्यलं कार्यन्तु धातुभिः । वेदिकापश्चिमे भागे कारयेत्कुण्डमण्डपम्
मेखलात्रयसंयुक्तं पिप्पलच्छदसंयुतम् । हस्तमात्रायतं सौम्य एवं कुण्डंतु कारयेत्
पश्चात्स्नात्वाततोजप्त्वादेवपूजांसमाचरेत् । पश्चादग्निसमाधायहोमंकुर्याद्यथाविधि
पायसाऽऽज्यगुडसूपपालाशसमिधा तथा । ग्रहाणाम्वास्तुदेवेभ्यश्चरुं कृत्वाप्रयत्नतः
धात्रीशान्तिस्तथाकान्तिर्मायाप्रकृतिरेवच । विष्णुपत्नीमहालक्ष्मीरमामाकमलातथा
इन्दिरालोकमाताचकल्याणी कमलातथा । सावित्रीचजगद्धात्रीगायत्रीसुधृतिस्तथा
अन्तज्ञा विश्वरूपाच सुरूपा ह्यब्धिसम्भवा । प्रधानदेवताभिस्तु रक्षाहोमं समारभेत्
संसृष्टेति च मन्त्रेण ऋषभं मेति मन्त्रतः । अपूपं गुडसूपाभ्यां संयुतं जुहुयाद्धविः
अष्टोत्तरशतं हुत्वामूलमन्त्रेणपायसम् । ततो ग्रहादिदेवांस्तु यथासङ्ख्येन होमयेत्

धात्रीहोमे महाप्राज्ञ रक्षाहोमेतु पायसम्। ततःस्विष्टकृतं हुत्वा बलिदानं समाचरेत्
इन्द्रादिलोकपालांश्च रक्षा पूज्याप्रयत्नतः। धात्रीवृक्षस्य सर्वत्र वेदिका संयुतस्यच
सूपेन गुडमिश्रेणबलिं पश्चान्निवेदयेत्। देवि धात्रि! नमस्तुभ्यं गृहाण बलिमुत्तमम्
मिश्रितं गुडसूपाभ्यां सर्वमङ्गलदायिनि !। पुत्रान्देहि महाप्राज्ञान्यशोदेहि शुभप्रदम्

प्रज्ञां मेधाञ्च सौभाग्यं विष्णुभक्तिञ्च देहि मे।
नीरोगं कुरु मे नित्यं निष्पापं कुरु सर्वदा ॥ १०८ ॥

वर्चस्कंकुरु मां देवि! धनवन्तंतथाकुरु। इतितांप्रार्थयेद्देवींप्रादक्षिण्याद्बलिन्यसेत्
बलिप्रदानकालेतुयेकुर्वन्तिप्रदक्षिणम्। ते यान्तिविष्णुसालोक्यं पितृभिःसार्द्धमेवच

ततः पूर्णाहुतिं कृत्वा होमशेषं समापयेत् ॥ १११ ॥
धात्रीवृक्षस्य मूलस्थं मन्दस्मितरमापतिम्।
ये यान्ति विष्णुसायुज्यं ये पश्यन्तीह चक्षुषा ॥ ११२ ॥

वैश्वदेवं ततः कृत्वा पूजयेद्वनदेवताः। गन्धाक्षतांस्ततो दत्त्वा विप्रेभ्यः पद्मसम्भव॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयंभुञ्जीतबन्धुभिः। गृहम्प्रवेशयेत्पश्चाद्वृद्धान्बालादिकैःसह

ब्रह्मचारी भवेद्रात्रौ क्षितिशायी भवेत्ततः।
ग्रामस्थैश्च मिलित्वा च स्वयं वा कारयेद्बुधः ॥ ११५ ॥

सर्वपापविमुक्त्यर्थं वनभोजनमुत्तमम्। कृत्वैवं सकलं कर्म कृष्णाय च समर्पयेत्॥
अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयशतस्य च। यत्फलं समवाप्नोति तत्फलम्वनभोजने॥
अतोधात्रीमहाभागपवित्रापापनाशनी। धात्रीचैवनृणां धात्री धात्रीवत्कुरुतेक्रियाम्
ददात्यायुः पयःपानात्स्नानाद्धैर्धर्मसञ्चयम्। अलक्ष्मीनाशनंस्नानमात्रैर्निर्वाणमाप्नुयात्

विघ्नानि नैव जायन्ते धात्रीस्नानेन वै नृणाम् ॥ ११६ ॥

तस्मात्त्वं कुरु विप्रेन्द्र! धात्रीस्नानं हि यत्नतः। प्रयास्यसिहरेर्धामदेवत्वम्प्राप्यनारद
यत्रयत्र मुनिश्रेष्ठ धात्रीस्नानंसमाचरेत्। तीर्थेवाऽपि गृहेवाऽपि तत्रतत्र हरिःस्थितः
धात्रीस्नानेन विप्रर्षे! यस्यास्थीनिकलेवरे। प्रक्षाल्यन्ते मुनिश्रेष्ठनसगर्भगृहम्वसेत्
धात्रीजलेन विप्रेन्द्र! येषां केशाश्चरक्षिताः। ते नराः केशवं यान्ति नाशयित्वा कलेर्मलम्

धात्रीफलं महापुण्यं स्नानं पुण्यतमंस्मृतम् । पुण्यात्पुण्यतरंवत्सभक्षणे मुनिसत्तम
न गङ्गा न गया काशी न वेणी न च पुष्करम् ।
एकैव हि यथा पुण्या धात्री माधववासरे ॥ १२५ ॥
धात्रीस्नानं हरेर्नाम तथैवैकादशी सुत ! । गयाश्राद्धं तथा वत्स समानि मुनयोविदुः
संस्पृशन्यस्तु वै धात्रीमहन्यहनि मानवः । मुच्यते पातकैः सर्वैर्मनोवाक्कायसम्भवैः
धात्रीफलैरमावास्यासप्तमीनवमीषुच । रविवारे च सङ्क्रान्तौ न स्नायान्मुनिसत्तम
यस्मिन्गृहेमुनिवरधात्रीतिष्ठति सर्वदा । तस्मिन्गृहेनगच्छन्ति प्रेतकूष्माण्डराक्षसाः
धात्रीफलकृतां मालां कण्ठस्थां यो वहेन्नहि ।
स वैष्णवो न विज्ञेयो विष्णोर्भक्तिपरो यदि ॥ १३० ॥
न त्याज्या तुलसीमाला धात्रीमाला विशेषतः ।
तथा पद्माक्षमालाऽपि धर्मकामार्थमीप्सुभिः ॥ १३१ ॥
यावद्दिनानि वहते धात्रीमालां कलौनरः । तावद्युगसहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत्
सर्वदेवमयी धात्री वासुदेवमनःप्रिया । आरोपणीया सेव्या च पूजनीया सदानरैः
एतत्ते सर्वमाख्यातं धात्रीमाहात्म्यमुत्तमम् । श्रोतव्यश्च सदा भक्तैश्चतुर्वर्गफलप्रदम्
धात्रीछायां समाश्रित्य कार्त्तिकेऽन्नं भुनक्ति यः ।
अन्नसंसर्गजम्पापमावर्षं तस्य नश्यति ॥ १३५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादेधात्रीमाहात्म्यवर्णनं नाम
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

ससत्यभामापूर्वजन्मकथनंप्रयागप्रशंसनम्

सूत उवाच

श्रियः पतिमथामन्त्र्य गते देवर्षिसत्तमे। हर्षोत्फुल्लाऽऽनना सत्यावासुदेवमथाऽब्रवीत्

सत्यभामोवाच

धन्याऽस्मिकृतकृत्याऽस्मिसफलंजीवितं मम। दानंव्रतंतपोवाऽपि किंनुपूर्वंकृतंमया
येनाऽहं मर्त्यजादेवतवाङ्गार्द्धहराऽभवम्। भवान्तरे च किंशीलाकाचऽहंकस्यकन्यका
तवाऽहं वल्लभा जाता तद्वदस्व ममाऽखिलम्॥ ३॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणुष्वैकमनाः कान्ते! यथा त्वं पूर्वजन्मनि॥ ४॥

पुण्यव्रतं कृतवतीतत्सर्वं कथयामि ते। आसीत्कृतयुगस्यान्ते मायापुर्यांद्विजोत्तमः
आत्रेयो देवशर्मेति वेदवेदाङ्गपारगः। तस्यातिवयसश्चाऽऽसीन्नाम्ना गुणवतीसुता॥
अपुत्रः स स्वशिष्याय चन्दनाम्ने ददौ सुताम्। तमेवपुत्रवन्मेने स च तंपितृवद्वशी
तौ कदाचिद्वनं यातौ कुशेध्माहरणार्थिनौ। निहतौरक्षसातौ च कृतान्तसमरूपिणा
स्वस्वपुण्यप्रभावेण विष्णुलोकंगतावुभौ। ततोगुणवतीश्रुत्वा रक्षसा निहतावुभौ
पितृभर्तृजदुःखार्ता कारुण्यंपर्यदेवयत्। सा गृहोपस्करान्सर्वान्विक्रीयाशुचकर्मतत्
तयोश्चक्रेयथाशक्ति पारलौकींततःक्रियाम्। तस्मिन्नेव पुरे चक्रे वासंसामृतजीवनी
व्रतद्वयंतया सम्यगाजन्ममरणात्कृतम्। एकादशीव्रतं सम्यक्सेवनं कार्त्तिकस्यच॥

इत्थं गुणवती सम्यक्प्रत्यब्दं व्रतिनी ह्यभूत्।
कदाचित्सरुजा साऽथ कृशाङ्गी ज्वरपीडिता॥ १३॥

स्नातुं गङ्गां गताकान्तेकथंचिच्छनकैस्तदा। यावज्जलान्तरगताकम्पिताशीतपीडिता
तावत्साविह्वलाऽपश्यद्विमानं य.तमम्बरात्। अथसातद्विमानस्था वैकुण्ठभुवनंययौ

कार्त्तिकव्रतपुण्येन मत्सान्निध्यङ्गताभवत् । अथ ब्रह्मादिदेवानां यदा प्रार्थनया भुवम्
आगतोऽहंगणाः सर्वे यातास्तेऽपिमयासह । एते हि यादवाःसर्वे मद्गणाएवभामिनि
पिता ते देवशर्माऽभूत्सत्राजिदभिधो ह्ययम् ।
यश्चन्द्रनामा सोऽक्रूरस्त्वं सा गुणवती शुभा ॥ १८ ॥
कार्त्तिकव्रतपुण्येन बहुमत्प्रीतिदायिनी । मद्द्वारि यत्त्वयापूर्वं तुलसीवाटिका कृता
तस्मादयं कल्पवृक्षस्तवाङ्गणगतः शुभे !। आजन्ममरणात्पूर्वं यत्कृतंकार्त्तिकव्रतम् ॥
कदाचिदपि तेन त्वं मद्वियोगं न यास्यसि ।

सत्योवाच

मासानां तु कथं नाम स मासः कार्त्तिको वरः ॥ २१ ॥
प्रियस्ते देवदेवेश! कारणं तत्र कथ्यताम् ।

श्रीकृष्ण उवाच

साधु पृष्टं त्वया कान्ते श्रृणुष्वैकाग्रमानसा ॥ २२ ॥
पृथोर्वैन्यस्य ;सम्वादं महर्षेर्नारदस्य च । एवमेव पुरापृष्टो नारदः पृथुनाऽब्रवीत् ॥

नारद उवाच

शङ्खनामाऽभवत्पूर्वमसुरः सागरात्मजः । इन्द्रादिलोकपालानामधिकाराञ्जहार ह ॥
सुवर्णाद्रिगुहादुर्गसंस्थितास्त्रिदशादयः । तद्वीक्षयाम्बभूवुस्ते तदादैत्यो व्यचारयत्
हृताधिकारास्त्रिदशा मया यद्यपि निर्जिताः ।
लक्ष्यन्ते बलयुक्तास्ते करणीयं मयाऽत्र किम् ॥ २६ ॥
ज्ञातं तत्तु मया देवा वेदमन्त्रबलान्विताः । तान्हरिष्ये ततः सर्वे बलहीना भवन्तिवै
इति मत्वा ततो दैत्यो विष्णुमालक्ष्य निद्रितम् ।
सत्यलोकाज्जहाराऽऽशु वेदानादिस्वयम्भुवः ॥ २८ ॥
नीतास्तु तेन ते वेदास्तद्भयात्तेनिराक्रमन् । तोयानि विविशुर्यज्ञमन्त्रबीजसमन्विताः
तान्मार्गमाणःशङ्खोऽपिसमुद्रान्तर्गतोभ्रमन् । नददर्श तदादैत्यः क्वचिदेकत्रसंस्थितान्
अथ देवैः स्तुतो विष्णुर्बोधितस्तानुवाचह ।

विष्णुरुवाच

वरदोऽहं सुरगणा! गीतवाद्यादिमङ्गलैः ॥ ३१ ॥

ऊर्जस्य शुक्लैकादश्यां भवद्भिः प्रतिबोधितः ।

अतश्चैषा तिथिर्मान्या साऽतीव प्रीतिदा मम ॥ ३२ ॥

वेदा शङ्खहृताःसर्वे तिष्ठन्त्युदकसंस्थिताः । तानानयाम्यहं देवा हत्वा सागरनन्दनम्
अद्यप्रभृति वेदास्तु मन्त्रबीजसमन्विताः । प्रत्यब्दंकार्त्तिकेमासिविश्रमन्त्वप्सुसर्वदा
कालेऽस्मिन्येप्रकुर्वन्तिप्रातःस्नानंनरोत्तमाः । तेसर्वेयज्ञाऽवभृथैःसुस्नाताःस्युर्यसंशयः
अद्यप्रभृत्यहमपि भवामि जलमध्यगः । भवन्तोऽपि मया सार्द्धमायान्तु समुनीश्वराः

कार्त्तिकव्रतिनां चेन्द्र! रक्षा कार्या त्वया सदा ।

इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः शफरीतुल्यरूपधृक्

खात्पपात जले विन्ध्यवासिनः कस्य पश्यतः ॥ ३७ ॥

हत्वा शङ्खासुरं विष्णुर्बदरीवनमागमत् । तत्राऽऽहूय ऋषीन्सर्वानिदमाज्ञापयत्प्रभुः

विष्णुरुवाच

जलान्तरविशीर्णास्तान्यूयंवेदान्प्रमार्गथ । आनयध्वंचत्वरिताः सागरस्यजलान्तरात्

तावत्प्रयागं तिष्ठामि देवतागणसंयुतः ॥ ३९ ॥

नारद उवाच

ततस्तैस्सर्वमुनिभिस्तपोबलसमन्वितैः ॥ ४० ॥

उद्धृताश्च सबीजास्ते वेदायज्ञसमन्विताः । तेषु यावन्मितंयेनलब्धंतावद्धितस्यतत
स स एव ऋषिर्जातस्तत्तत्प्रभृतिपार्थिव !। अथ सर्वेऽपि सङ्गम्य प्रयागं मुनयोययुः

विष्णवे सविधात्रे ते लब्धान्वेदान्न्यवेदयन् ।

लब्ध्वा वेदान्समग्रांस्तु ब्रह्मा हर्षसमन्वितः ॥ ४३ ॥

अजयद्वाजिमेधेन देवर्षिगणसंयुतः । यज्ञान्ते देवताः सर्वे विज्ञप्तिं चक्रुरञ्जसा ॥ ४४

देवा ऊचुः

देवदेवजगन्नाथ! विज्ञप्तिं शृणुनः प्रभो । हर्षकालोऽयमस्माकं तस्मात्त्वं वरदो भव॥

स्थानेऽस्मिन्द्रुहिणो वेदान्नष्टान्प्राप पुनस्त्वयम् ।
यज्ञभागान्वयं प्राप्तास्त्वत्प्रसादाद्रमापते !॥ ४६ ॥
स्थानमेतद्धि न श्रेष्ठंपृथिव्यांपुण्यवर्धनम् । भुक्तिमुक्तिप्रदंचाऽस्तुप्रसादाद्भवतःसदा
कालोऽप्ययं महापुण्यो ब्रह्मघ्नाऽऽदिविशुद्धिकृत् ।
दत्ताऽक्षयकरश्चास्तु वरमेवं ददस्व नः ॥ ४८ ॥

विष्णुरुवाच

ममाप्येतद्वृतं देवा यद्भवद्भिरुदाहृतम् । तथास्तु सुलभं त्वेतद्ब्रह्मक्षेत्रमितिप्रथम्
सूर्यवंशोद्भवो राजा गङ्गामत्रानयिष्यति । सासूर्यकन्ययाचाऽत्रकालिन्द्यायोगमेष्यति
यूयं च सर्वे ब्रह्माद्यानिवसन्तु मयासह । तीर्थराजेति विख्यातं तीर्थमेतद्भविष्यति
सर्वपापानि नश्यन्ति तीर्थराजस्य दर्शनात् । सूर्ये मकरगे प्राप्ते स्नायिनां पापनाशनः
कालोऽप्येषमहापुण्यफलदोऽस्तुसदानृणाम् । सालोक्यादिफलंस्नानैर्माघेमकरगेरवौ

नारद उवाच

एवं देवान्देवदेवस्तदुक्त्वा तत्रैवाऽन्तर्धानमागात्सवेधाः ।
देवः सर्वेऽप्यंशकैस्तेऽप्यतिष्ठंश्चान्तर्धानं प्रापुरिन्द्रादयस्ते ॥ ५४ ॥
कार्त्तिकेतुलसीमूलेयोऽर्चयेद्धरिमीश्वरम् । भुक्त्वेहनिखिलान्भोगानन्तेविष्णुपुरंव्रजेत्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे सत्यभामापूर्वजन्मवृत्तान्तकथनपूर्वकप्रयागतीर्थ- प्रशंसाप्रसङ्गवर्णनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

जलन्धरोत्पत्तिवर्णनम्

पृथुरुवाच

यत्त्वया कथितंब्रह्मन्व्रतमूर्जस्यविस्तरात् । तत्रयातुलसीमूलेविष्णोःपूजात्वयोदिता

तेनाऽहं प्रष्टुमिच्छामि माहात्म्यं तुलसीभवम् ।
कथं साऽतिप्रिया तस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ २ ॥

कथमेषासमुत्पन्ना कस्मिन्स्थाने च नारद ।। एवं ब्रूहिसमासेन सर्वज्ञोऽसि मतो मम

नारद उवाच

शृणुराजन्नवहितो माहात्म्यं तुलसीभवम् । सेतिहासंपुरावृत्तंतत्सर्वं कथयामि ते ॥
पुरा शक्रः शिवंद्रष्टुमगात्कैलासपर्वतम् । सर्वदेवैः परिवृतो ह्यप्सरोगणसेवितः ॥
यावद्गतः शिवगृहं तावत्तत्र स दृष्टवान् । पुरुषंभीमकर्माणं दंष्ट्राऽऽननविभीषणम्
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भोः क्व गतो जगदीश्वरः । एवंपुनःपुनः पृष्टःसतदानोक्तवान्नृप!॥७

ततः क्रुद्धो वज्रपाणिस्तं निर्भर्त्स्य वचोऽब्रवीत् ।
रे मया पृच्छ्यमानोऽपि नोत्तरं दत्तवानसि ॥ ८ ॥

अतस्त्वांहन्मिवज्रेणकस्तेत्राताऽस्तिदुर्मते । इत्युदीर्यततोवज्रीवज्रेणाऽस्यहनद्दृढम्
तेनाऽस्यकण्ठो नीलत्वमगाद्वज्रं चभस्मताम् । ततो रुद्रः प्रजज्वाल तेजसाप्रदहन्निव
दृष्ट्वा बृहस्पतिस्तूर्णं कृताञ्जलिपुटोऽभवत् । इन्द्रं चदण्डवद्भूमौकृत्वास्तोतुंप्रचक्रमे

बृहस्पतिरुवाच

नमोदेवाधिपतये त्र्यम्बकाय कपर्दिने । त्रिपुरघ्नाय शर्वाय नमोऽन्धकनिषूदिने ॥
विरूपायाऽतिरूपाय बहुरूपाय शम्भवे । यज्ञविध्वंसकर्त्रे च यज्ञानां फलदायिने ॥
कालान्तकाय कालाय कालभोगिधराय च । नमो ब्रह्मशिरोहन्त्रे ब्राह्मणायनमोनमः

नारद उवाच

एवं स्तुतस्तदा शम्भुर्धिषणेन जगाद तम् । संहरन्नयनज्वालां त्रिलोकीदहनक्षमाम्
वरं वरय भो ब्रह्मन्प्रीतः स्तुत्याऽनया तव । इन्द्रस्यजीवदानेनजीवेति त्वं प्रथांव्रज

बृहस्पतिरुवाच

यदि तुष्टोऽसि देव ! त्वं पाहीन्द्रं शरणागतम् । अग्निरेष शमं यातु भालनेत्रसमुद्भवः

ईश्वर उवाच

पुनः प्रवेशमायाति भालनेत्रे कथं शिखी । एनं त्यक्ष्याम्यहंदूरे यथेन्द्रं नैव पीडयेत्

नारद उवाच

इत्युक्त्वा तं करेधृत्वाप्राक्षिपल्लवणार्णवे । सोऽपतत्सिन्धुगङ्गायाः सागरस्यचसङ्गमे
तावत्स बालरूपत्वमगात्तत्र रुरोद च । रुदतस्तस्य शब्देन प्राकम्पद्धरणी मुहुः ॥२०

स्वर्गाद्याः सत्यलोकान्तास्तत्स्वनाद्द बधिरीकृताः ।
श्रुत्वा ब्रह्मा ययौ तत्र किमेतदिति विस्मितः ॥ २१ ॥

तावत्समुद्रस्योत्सङ्गे तं बालं स ददर्श ह । दृष्ट्वाब्रह्माणमायान्तं समुद्रोऽपिकृताञ्जलिः
प्रणम्यशिरसा बालंतस्योत्सङ्गेन्यवेशयत् । भोब्रह्मन्सिन्धुगङ्गायांजातोऽयंममपुत्रक
जातकर्माऽऽदिसंस्कारान्कुरुष्वाऽद्य जगद्गुरो !॥ २२ ॥

नारद उवाच

इत्थं वदति पाथोधौ स बालः सागरात्मजः ॥ २४ ॥
ब्रह्माणमग्रहीत्कूर्चे विधुन्वंस्तं मुहुर्मुहुः । धुन्वतस्तस्य कूर्चे तु नेत्राभ्यामगमज्जलम्
कथञ्चिन्मुक्तकूर्चोऽथ ब्रह्मा प्रोवाच सागरम् ॥ २५ ॥

ब्रह्मोवाच

नेत्राभ्यां विधृतं यस्मादनेनैतज्जलं मम । तस्माज्जलन्धर इतिख्यातो नाम्नाभविष्यति
अनेनैवैष तरुणः सर्वशास्त्रास्त्रपारगः । अवध्यः सर्वभूतानां विनारुद्रं भविष्यति ॥
यत एष समुद्भूतस्तत्रैवाऽन्तं गमिष्यति ॥ २७ ॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वा शुक्रमाहूयराज्येतंचाभ्यषेचयेत् । आमन्त्र्यसरितांनाथंब्रह्मान्तर्धानमागतम्

अथ तद्दर्शनोत्फुल्लनयनः सागरस्तदा। कालनेमिसुतां वृन्दां मद्भार्यार्थमयाचत॥

ते कालनेमिप्रमुखास्ततोऽसुरास्तस्मै सुतां तां प्रददुःप्रहर्षिताः।

स चापि ताम्प्राप्य सुहृद्वरां वशां शशास गां शुक्रसहायवान्वली॥ ३१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमाससमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे जलन्धरोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ ४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

जलन्धरविजयप्राप्तिवर्णनम्

नारद उवाच

ये देवैर्निर्जिताः पूर्वं दैत्याः पातालसंस्थिताः।

तेऽपि भूमण्डलं याता निर्भयास्तमुपाश्रिताः॥ १॥

कदाचिच्छिन्नशिरसं राहुं दृष्ट्वा स दैत्यराट्। पप्रच्छभार्गवंतत्र तच्छिरश्छेदकारणम्

स शशंस समुद्रस्य मथनं देवकारितम्। रत्नापहरणंचैव दैत्यानाञ्च पराभवम्॥ ३॥

स श्रुत्वा क्रोधरक्ताक्षः स्वपितुर्मथनं तदा। दूतं सम्प्रेषयामास घस्मरं शक्रसन्निधौ

दूतस्त्रिविष्टपं गत्वा सुधर्मां प्राविशद्वराम्। जगादाखर्वमौलिस्तुदेवेन्द्रं वाक्यमद्भुतम्

घस्मर उवाच

जलन्धरोऽब्धितनयः सर्वदैत्यजनेश्वरः। दूतोऽहं प्रेषितस्तेन स यदाह शृणुष्वतत्

कस्मात्त्वया ममपिता मथितःसागरोऽद्रिणा। नीतानिसर्वरत्नानितानिशीघ्रंप्रयच्छमे

इति दूतवचः श्रुत्वाविस्मितस्त्रिदशाधिपः। उवाच घस्मरं रौद्रं भयरोषसमन्वितः

इन्द्र उवाच

शृणुदूतमयापूर्वंमथितःसागरोयथा। अद्रयोमद्भयात्त्रस्ताःस्वकुक्षिस्थाःकृतास्तथा

अन्येऽपिमद्विद्विषस्तेन रक्षिता दितिजाः पुरा। तस्माद्यत्तत्प्रजातंतुमयाप्यपहृतं किल
शङ्खोऽप्येवं पुरादेवानद्विषत्सागरात्मजः। ममाऽनुजेन निहतः प्रविष्टःसागरोदरम्॥
तद्गच्छ कथयस्वाऽस्य सर्वं मथनकारणम्।

नारद उवाच

इत्थं विसर्जितो दूतस्तदेन्द्रेणाऽगमद्भुवम्॥ १२॥
तदिदं वचनं सर्वं दैत्यायाऽकथयत्तदा। तन्निशम्य तदा दैत्योरोषात्प्रस्फुरिताऽधरः
दैत्यसेना समायुक्तो ययौयोद्धुं त्रिविष्टपम्। ततोयुद्धे महाञ्जातो देवदानवसंक्षयः
तत्र युद्धे मृतान्दैत्यान्भार्गवस्तूदतिष्ठपत्।
विद्यया मृतजीविन्या मन्त्रितैस्तोयविन्दुभिः॥ १॥
देवानपि तथायुद्धे तत्राऽजीवयदङ्गिराः। दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेःसपुनःपुनः
दृष्ट्वा देवांस्तथा युद्धे पुनरेव समुत्थितान्। जलन्धरःक्रोधवशोभार्गवंवाक्यमब्रवीत्

जलंन्धर उवाच

मयायुद्धे हता देवा उत्तिष्ठन्ति कथं पुनः। तव सञ्जीवनीविद्यानवाऽन्यत्रेतिविश्रुतम्

शुक्र उवाच

दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेरङ्गिराःसुरान्। जीवयत्येवतच्छीघ्रंद्रोणाद्रिंत्वमपाहर

नारद उवाच

इत्युक्तः स तु दैत्येन्द्रो नीत्वाद्रोणाचलं तदा। प्राक्षिपत्सागरेतूर्णंपुनरागान्महाहवम्
अथ देवान्हतान्दृष्ट्वा द्रोणाद्रिमगमद्गुरुः। तावत्तत्रगिरीन्द्रं तु न ददर्श सुरार्चितः॥
ज्ञात्वा दैत्यहृतंद्रोणंधिषणोभयविह्वलः। आगत्यदूराद्व्याजहे श्वासाऽऽकुलितविग्रहः
पलायध्वं हवाद्देवा नाऽयं जेतुं क्षमोयतः। रुद्रांशसम्भवोह्येष स्मरध्वंशक्रचेष्टितम्
श्रुत्वा तद्वचनं देवा भयविह्वलितास्तदा। दैत्येन वध्यमानास्ते पलायन्ते दिशोदश
देवान्विद्रावितान्दृष्ट्वा दैत्यैः सागरनन्दनः। शङ्खभेरीजयरवैः प्रविवेशाऽमरावतीम्॥
प्रविष्टेनगरीं दैत्ये देवाःशक्रपुरोगमाः। सुवर्णाद्रिगुहांप्राप्ता न्यवसन्दैत्यतापिताः॥
ततश्च सर्वेष्वसुरोऽधिकारेष्विन्द्रादिकानां विनिवेशयत्तदा।

शुम्भादिकान्दैत्यवरान्पृथक्पृथक्स्वयं सुवर्णाद्रिगुहामगात्पुनः ॥ २७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे जलन्धरविजयप्राप्तिर्नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥

षोडशोऽध्यायः

जलन्धरसदसिनारदागमनवर्णनम्

नारद उवाच

पुनरुत्थं समायान्तं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ।
भयप्रकम्पिताः सर्वे विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमुः ॥ १ ॥

नमो मत्स्यकूर्मादिनानास्वरूपैः सदा भक्तकार्योद्यतायाऽऽर्तिहन्त्रे ।
विधात्रादिसर्गस्थितिध्वंसकर्त्रे गदाशङ्खपद्मारिहस्ताय तेऽस्तु ॥ २ ॥

रमावल्लभायाऽसुराणां निहन्त्रे भुजङ्गारियानाय पीताम्बराय ।
मखादिक्रियापाककर्त्रे विकर्त्रे शरण्याय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः ॥ ३ ॥

नमो दैत्यसन्तापितामर्त्यदुःखाचलध्वंसदम्भोलये विष्णवे ते ।
भुजङ्गेशतल्पेशयायाऽर्कचन्द्रद्विनेत्राय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः ॥ ४ ॥

नारद उवाच

संकष्टनाशनं नाम स्तोत्रमेतत्पठेन्नरः । सकदाचिन्न सङ्कष्टैः पीड्यते कृपया हरेः ॥

इति देवाः स्तुतिं यावत्प्रकुर्वन्ति दनुजद्विषः ।
तावत्सुराणामापत्तिर्विज्ञाता विष्णुना तदा ॥ ६ ॥

सहसोत्थाय दैत्यारिः सक्रोधः खिन्नमानसः । आरूढोगरुडंवेगाल्लक्ष्मींवचनमब्रवीत्

श्रीभगवानुवाच

जलन्धरेण ते भ्रात्रा देवानां कदनं कृतम् । तैराहूतो गमिष्यामि युद्धायात्वरान्वितः

श्रीरुवाच

अहं ते वल्लभा नाथ भक्त्या च यदि सर्वदा। तत्कथं ते ममभ्रातायुद्धेवध्यः कृपानिधे

श्रीभगवानुवाच

रुद्रांशसम्भवत्वाच्च ब्रह्मणो वचनादपि। प्रीत्या च तवनैवाऽयं मम वध्यो जलन्धरः

नारद उवाच

इत्युक्त्वा गरुडारूढः शङ्खचक्रगदासिभृत्। विष्णुर्वेगाद्ययौयोद्धुंयत्रदेवाःस्तुवन्तिते

अथाऽरुणानुजात्युग्रपक्षवातप्रपीडिताः। वात्याविमर्दिता दैत्या बभ्रमुः खे यथा घनाः

ततो जलन्धरो दृष्ट्वा दैत्यान्वात्याप्रपीडितान्।
उद्वृत्तनयनः क्रोधात्ततो विष्णुं समभ्ययात्॥ १३॥

ततः समभवद्युद्धं विष्णुदैत्येन्द्रयोर्महत्। आकाशं कुर्वतोर्बाणैस्तदा निरवकाशवत्

विष्णुर्दैत्यस्यबाणौघैर्ध्वजं छत्रं धनुर्हयान्। चिच्छेद तं चहृदये बाणेनैकेन ताडयत्

ततो दैत्यः समुत्पत्य गदापाणिस्त्वरान्वितः। आहत्यगरुडंमूर्ध्निपातयामासभूतले

विष्णुर्गदां स्वखड्गेन चिच्छेद प्रहसन्निव। तावत्सहृदये विष्णुं जघानदृढमुष्टिना

ततस्तौ बाहुयुद्धेन युयुधाते महाबलौ। बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव जानुभिर्नादयन्महीम्

एवं तौ सुचिरं युद्धं कृत्वा विष्णुः प्रतापवान्।
उवाच दैत्यराजानं मेघगम्भीरनिःस्वनः॥ १६॥

विष्णुरुवाच

वरम्वरयदैत्येन्द्र प्रीतोऽस्मि तव विक्रमात्। अदेयमपि ते दद्मि यत्ते मनसि वर्तते

जलन्धर उवाच

यदि भावुक! तुष्टोऽसि वरमेनं ददस्व मे। मद्भगिन्या सहाऽद्यत्वं मद्गृहेसगणोवस

नारद उवाच

तथेत्युक्त्वा स भगवान्सर्वदेवगणैः सह। तदा जलन्धरपुरमगमद्रमया सह॥ २२॥

जलन्धरस्तु देवानामधिकारेषु दानवान्। स्थापयित्वा महाबाहुः पुनरागान्महीतलम्

देवगन्धर्वसिद्धेषु यत्किञ्चिद्रत्नसंयुतम्। तदात्मवशगं कृत्वाऽतिष्ठत्सागरनन्दनः॥

पातालभुवने दैत्यं निशुम्भं स महाबलम् । स्थापयित्वा सशेषादीनानयद्भूतलंबली
देवगन्धर्वसिद्धाद्यान्सर्पराक्षसमानुषान् । स्वपुरे नागरान्कृत्वा शशास भुवनत्रयम्
एवं जलन्धरः कृत्वा देवान्स्ववशवर्तिनः । धर्मेणपालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान्

न कश्चिद्व्याधितो नैव दुःखी नैव कृशस्तथा ।
न दीनो दृश्यते तस्मिन्धर्माद्राज्यं प्रशासति ॥ २८ ॥

एवं महीं शासति दानवेन्द्रे धर्मेण सम्यक्च दिदृक्षयाऽहम् ।
कदाचिदागामथ तस्य लक्ष्मीं विलोकितुं श्रीरमणञ्च सेवितुम् ॥ २६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे जलन्धरसभायां नारदाऽऽगमनवर्णनंनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

जलन्धरोपाख्यानेनारददैत्यसम्वादवर्णनम्

नारद उवाच

स मां प्रोवाच विधिवत्सम्पूज्याऽतीव भक्तिमान् ।
सम्प्रहस्य तदा वाक्यं स्नेहपूर्वं च वै नृप !॥ १ ॥

कुतआगम्यतेब्रह्मन्किञ्चिद्दृष्टंत्वया प्रभो !। यदर्थमिहचाऽऽयातस्तदाऽऽज्ञापयमां मुने

नारद उवाच

गतः कैलाशसिखरं दैत्येन्द्राहं यदृच्छया । तत्रोमया समासीनं दृष्टवानस्मि शङ्करम्
योजनायुतविस्तीर्णे ।कल्पवृक्षमहावने । कामधेनुशताकीर्णे चिन्तामणिसुदीपिते ॥
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं विस्मयो मेऽभवत्तदा । काऽपीदृशी भवेद्धिस्त्रैलोक्येवानवेतिच

तद तवाऽपि दैत्येन्द्र! समृद्धिः संस्मृता मया।

तद्विलोकनकामोऽस्मि त्वत्सान्निध्यमिहाऽऽगतः ॥ ६ ॥
त्वत्समृद्धिमिमां पश्यन्स्त्रीरत्नरहितां ध्रुवम् ।
तर्कयामि शिवादन्यस्त्रिलोक्यां न समृद्धिमान् ॥ ७ ॥
अप्सरोनागकन्याद्यायद्यपित्वद्वशेस्थिताः । तथाऽपितात पार्वत्या रूपेणसदृशाध्रुवम्
यस्या लावण्यजलधौ निमग्नश्चतुराननः । स्वधैर्यममुचत्पूर्वं तया काऽन्योपमीयते
वीतरागोऽपि हि यथा मदनारिःस्वलीलया । सौन्दर्यगहनेऽभ्रामि शफरीरूपया पुरा
यस्या पुनः पुनः पश्यन्रूपं धाताऽपि सर्जने ।
ससर्जाऽप्सरसस्तासां तत्समैकाऽपि नाभवत् ॥ ११ ॥
अतःस्त्रीरत्नसम्भोक्तुःसमृद्धिस्तस्यसावरा । तथा नतव दैत्येन्द्रसर्वरत्नाऽधिपस्यच
एवमुक्त्वा तमामन्त्र्य गते सति स दैत्यराट् । तद्रूपश्रवणादासीदनङ्गज्वरपीडितः ॥
अथ सम्प्रेषयामास सदूतं सिंहिकासुतम् ।
त्र्यम्बकायाऽपि च तदा विष्णुमायाविमोहितः ॥ १४ ॥
कैलासमगमद्राहुः कुर्वञ्छुक्लेन्दुवर्चसम् । कार्ष्ण्येन कृष्णुपक्षेन्दुवर्चसंस्वाङ्गजेनतम्
निवेदितस्तदेशाय नन्दिना प्रविवेश सः । त्र्यम्बकभ्रूलतासञ्ज्ञाप्रेरितोवाक्यमब्रवीत्

राहुरुवाच

देवपन्नगसेव्यस्य त्रैलोक्याधिपतेः प्रभोः । सर्वरत्नेश्वरस्य त्वमाज्ञां शृणु वृषध्वज!
श्मशानवासिनो नित्यमस्थिभारवहस्य च । दिगम्बरस्यते भार्याकथं हैमवतीशुभा
अहं रत्नाधिनाथोऽस्मि सा च स्त्रीरत्नसञ्ज्ञिका ।
तस्मान्ममैव सा योग्या नैव भिक्षाशिनस्तव ॥ १६ ॥

नारद उवाच

वदत्येवं तदाराहौ भ्रूमध्याच्छूलपाणिनः । अभवत्पुरुषो रौद्रस्तीव्राशनिसमस्वनः ॥
सिंहास्यः प्रललज्जिह्वःस ज्वलन्नयनोमहान् । ऊर्ध्वकेशः शुष्कतनुर्नृसिंहइवचाऽपरः
स तं खादितुमायान्तं दृष्ट्वाराहुर्भयातुरः । अधावत स वेगेन वहिः स च दधार तम्॥
स च राहुर्महाबाहो मेघगम्भीरयागिरा । उवाच देवदेवत्वं पाहि मां शरणागतम् ॥

ब्राह्मणं मां महादेव! खादितुं समुपागतः । महादेवोवचःश्रुत्वाब्राह्मणस्यतदाऽब्रवीत्
नैवाऽसौ वध्यतामेतिदूतोऽयंपरवान्यतः । मुञ्चेति पुरुषः श्रुत्वा राहुंतत्याजसोऽम्बरे
राहुं त्यक्त्वाऽथ पुरुषस्तदा रुद्रं व्यजिज्ञपयत् ।

पुरुष उवाच

क्षुधा मां बाधतेऽत्यन्तंक्षुत्क्षामश्चास्मिसर्वथा । किं भक्षयामिदेवेशतदाज्ञापयमांप्रभो

ईश्वर उवाच

भक्षयस्वाऽऽत्मनः शीघ्रं मांसं त्वं हस्तपादयोः ॥ २७ ॥

नारद उवाच

स शिवेनैवमाज्ञप्तश्चखाद पुरुषः स्वकम् । हस्तपादोद्भवंमांसं शिरःशेषोयथाऽभवत्
दृष्ट्वा शिरोऽवशेषं तं सुप्रसन्नस्तदा शिवः । उवाच भीमकर्माणं पुरुषञ्जातविस्मयः

ईश्वर उवाच

त्वं कीर्तिमुखसञ्ज्ञोहिभवमद्द्वारिगःसदा । त्वदर्चां ये न कुर्वन्ति नैवतेमेप्रियङ्कराः

नारद उवाच

तदाप्रभृति देवस्य द्वारिकीर्त्तिमुखः स्थितः । नार्चयन्तीह ये पूर्वं तेषामर्चावृथाभवेत्
राहुर्विमुक्तो यस्तेन सोऽपि तद्वर्बरेस्थले । अतः स वर्वरोद्भूतइति भूमौप्रथांगतः
ततः स राहुः पुनरेव जातमात्मानमस्मिन्निति मन्यमानः ।
समेत्य सर्वं कथयाम्बभूव जलन्धरायैव विचेष्टितं तत् ॥ ३३ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे
कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे जलन्धरोपाख्याने दूतवाक्य-
कथनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

जलन्धरोपाख्यानेरुद्रसेनापराभववर्णनम्

नादर उवाच

जलन्धरस्तुतच्छ्रुत्वाकोपाकुलितविग्रहः।निर्जगामाऽऽशुदैत्यानांकोटिभिःपरिवारितः

गच्छतोऽस्याऽग्रतः शुक्रो राहुर्दृष्टिपथेऽभवत् ।

मुकुटश्चाऽपतद्भूमौ वेगात्प्रस्खलितस्तदा ॥ २ ॥

दैत्यसैन्याऽऽवृतैस्तस्य विमानानां शतैस्तदा । व्यराजत नभःपूर्णं प्रावृषीवयथाघनैः

तस्योद्योगं तदा दृष्ट्वादेवाःशक्रपुरोगमाः । अलक्षितास्तदाजग्मुःशूलिनं तं व्यजिज्ञपुः

देवा ऊचुः

न जानासि कथंस्वामिन्देवापत्तिमिमांविभो । तदस्मद्रक्षणार्थायजहिसागरनन्दनम्

नारद उवाच

इति देववचः श्रुत्वा प्रहस्य वृषभध्वज !। महाविष्णुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥

ईश्वर उवाच

जलन्धरः कथं विष्णो!न हतः सङ्गरे त्वया ।

तद् गृहं चाऽपि यातोऽसि त्यक्त्वा वैकुण्ठमात्मनः ॥ ७ ॥

विष्णुरुवाच

त्वांशसम्भवत्वाच्चभ्रातृत्वाच्चतथा श्रियः । न मया निहतःसङ्ख्येत्वमेनंजहिदानवम्

ईश्वर उवाच

नायमेभिर्महातेजाः शस्त्रास्त्रैर्वध्यते मया । देवैः सहस्वतेजोंशं शस्त्रार्थं दीयतां मम

नारद उवाच

अथविष्णुमुखादेवाःस्वतेजांसिददुस्तदा । तान्यैक्यमागतानीशोदृष्ट्वा स्वंचामुचन्महः

तेनाऽकरोन्महादेवो सहसा शस्त्रमुत्तमम् । चक्रं सुदर्शनंनाम ज्वालामालातिभीषणम्

ततः शेषेण च तदा वज्रं च कृतवान्हरिः । तावज्जलन्धरो दृष्टः कैलासतलभूमिषु ॥१२
हस्त्यश्वरथपत्तीनां कोटिभिः परिवारितः । तं दृष्ट्वा लक्षिताजग्मुर्देवाःसर्वेयथागताः
गणाश्च समसज्जन्त युद्धायाऽतित्वरान्विताः ।
नन्दीभवक्त्रसेनानीमुखाः सर्वे शिवाज्ञया ॥ १४ ॥
अवतेरुर्गणा वेगात्कैलासाद्युद्धदुर्मदाः । ततः समभवद्युद्धं कैलासोपत्यका भुवि॥१५
प्रमथाधिपदैत्यानां घोरशस्त्रास्त्रसङ्कुलम् । भेरीमृदङ्गशंखौघनिःस्वनैर्वीरहर्षणैः ॥१६॥
गजाश्वरथशब्दैश्च नादिता भूर्व्यकम्पत । शक्तितोमरबाणौघमुसलप्रासपट्टिशैः ॥१७॥
व्यराजत नभः पूर्णमुल्काभिरिवसम्भृतम् । निहतैरथनागाश्वपत्तिभिर्भूर्व्यराजत ॥
वज्राहताचलशिरःशकलैरिवसम्भृता । प्रमथाहतदैत्यौघैर्दैत्याहतगणैस्तथा ॥ १९ ॥
वसासृङ्मांसपङ्काढ्या भूरगम्याऽभवत्तदा । प्रमथाहतदैत्यौघान्भार्गवः समजीवयत्
युद्धे पुनः पुनस्तत्र मृतसञ्जीविनीबलात् । तंदृष्ट्वा व्याकुलीभूतागणाःसर्वेभयान्विताः
शशंसुर्देवदेवाय तत्सर्वं शुक्रचेष्टितम् ॥ २१ ॥
अथ रुद्रमुखात्कृत्या बभूवाऽतीवभीषणा । तालजङ्घा दरीवक्त्रा स्तनापीडितभूरुहा
सा युद्धभूमिमासाद्यभक्षयन्तीमहासुरान् । भार्गवं स्वभगे धृत्वा जगामान्तर्हितानभः
विधृतं भार्गवं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यं गणास्तदा । अम्लानवदना हर्षान्निजघ्नुर्युद्धदुर्मदाः ॥
अथाऽभज्यत दैत्यानां सेना गणभयार्दिता । वायुवेगेनाहतेवप्रकीर्णा तृणसन्ततिः ॥
भग्नाङ्गणभयात्सेनां दृष्ट्वाऽमर्षयुता ययुः ।
निशुम्भशुम्भौ सेनान्यौ कालनेमिश्च वीर्यवान् ॥ २६ ॥
त्रयस्ते वारयामासुर्गणसेनां महाबलाः । मुञ्चन्तः शरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकाः ॥
ततो दैत्यशरौघास्ते शलभानामिव व्रजाः । रुरुधुः खं दिशःसर्वा गणसेनामकम्पयन्
गणाः शरशतैर्भिन्ना रुधिरासारवर्षिणः । वसन्ते किंशुकाभासा न प्राज्ञायत किञ्चन॥
पतिताः पात्यमानाश्च भिन्नाश्छिन्नास्तदा गणाः ।
त्यक्त्वा सङ्ग्रामभूमिं ते सर्वेऽपि विमुखाऽभवन् ॥ ३० ॥
ततः प्रभग्नं स्वबलं विलोक्य शैलादिलम्बोदरकार्तिकेयाः

त्वरान्विता दैत्यवरान्प्रसह्य निवारयामासुरमर्षिणस्ते ॥ ३१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे जलन्धरोपाख्याने रुद्र-
सेनापराभवोनामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

जलन्धरोपाख्यानेवीरभद्रपतनवर्णनम्

नारद उवाच

ते गणाधिपतीन्दृष्ट्वा नन्दीभमुखषण्मुखान् । अमर्षादभ्यधावन्त द्वन्द्वयुद्धाय दानवाः॥
नन्दिनं कालनेमिश्च शुम्भो लम्वोदरं तथा । निशुम्भः षण्मुखंवेगादभ्यधावतदंशितः
निशुम्भःकार्त्तिकेयस्य मयूरं पञ्चभिः शरैः । हृदि विव्याध वेगेन मूर्च्छितःसपपातच
ततः शक्तिधरः शक्तिं यावज्जग्राहरोषितः । तावन्निशुम्भोवेगेन स्वशक्त्यातमपातयत्
नन्दीश्वरः शरव्रातैः कालनेमिमवध्यत । सप्तभिश्चहयान्केतुं त्रिभिः सारथिमच्छिनत्
कालनेमिस्तु संक्रुद्धो धनुश्चिच्छेद नन्दिनः । तदपास्य स शूलेनतं वक्षस्यहनद्बली
स शूलभिन्नहृदयो हताश्वो हतसारथिः । अद्रेःशिखरमामुच्यशैलादिं सोऽप्यपातयत्
अथ शुम्भो गणेशश्च रथमूषकवाहनौ । युध्यमानौ शरव्रातैः परस्परमविध्यताम् ॥

गणेशस्तु तदा शुम्भं हृदि विव्याध पत्रिणा ।
सारथिं च त्रिभिर्वाणैः पातयामास भूतले ॥ ९ ॥
ततोऽतिक्रुद्धः शुम्भोऽपि वाणषष्ट्या गणाधिपम् ।
मूषकञ्च त्रिभिर्विद्ध्वा ननाद जलदस्वनः ॥ १० ॥

मूषकः शरभिन्नाङ्गश्चचाल दृढवेदनः । लम्बोदरश्च पतितः पदातिरभवन्नृप ॥ ११ ॥
ततो लम्बोदरः शुम्भं हत्वा परशुना हृदि । अपातयत्तदा भूमौ मूषकश्चारुहत्पुनः ॥

कालनेमिर्निशुम्भश्चाऽप्युभौलम्बोदरंशरैः । युगपज्जघ्नतुः क्रोधात्तोत्रैरिव महाद्विपम्
तम्पीड्यमानमालोक्य वीरभद्रो महाबलः । अभ्यधावत वेगेन भूतकोटियुतस्तदा ॥
कूष्माण्डभैरवाश्चाऽपि वेताला योगिनीगणाः ।
पिशाचयोगिनीसङ्घा गणाश्चाऽपि तमन्वयुः ॥ १५ ॥
ततः किलकिलाशब्दैः सिंहनादैः सुघर्घरैः । भेरीतालमृदङ्गैश्च पृथिवी समकम्पत ॥
ततो भूतान्यधावन्तभक्षयन्तिस्मदानवान् । उत्पतन्त्यापतन्तिस्म ननृतुश्चरणाङ्गणे
नन्दी च कार्त्तिकेयश्च समाश्वस्य त्वरान्वितौ ।
निजघ्नतू रणे दैत्यान्निरन्तरशरव्रजैः ॥ १८ ॥
छिन्नभिन्ना हतैर्दैत्यैःपतितैर्भक्षितैस्तदा । व्याकुलासाऽभवत्सेना विषण्णवदनातदा
प्रविध्वस्तां तदा सेनां दृष्ट्वा सागरनन्दनः । रथेनाऽतिपताकेन गणानभिययौ बली
हस्त्यश्वरथसंह्रादाः शंखभेरीस्वनास्तथा ।
अभवन्सिंहनादाश्च सेनयोरुभयोस्तदा ॥ २१ ॥
जलन्धरशरव्रातैर्नीहारपटलैरिव । द्यावापृथिव्योराच्छिन्नमन्तरं समपद्यत ॥ २२ ॥
गणेशं पञ्चभिर्विद्ध्वा शैलादिं नवभिः शरैः । वीरभद्रञ्चविंशत्या ननाद जलदस्वनः
कार्त्तिकेयस्तदा दैत्यं शक्त्या विव्याध सत्वरः ।
युयुधे शक्तिनिर्भिन्नः किञ्चिद्व्याकुलमानसः ॥ २४ ॥
ततः क्रोधपरीताक्षः कार्त्तिकेयंजलन्धरः । गदयाताडयामास स च भूमितलेऽपतत्
तथैव नन्दिनं वेगादपातयत भूतले । ततो गणेश्वरः क्रुद्धो गदां परशुनाऽहनत् ॥२६
वीरभद्रस्त्रिभिर्बाणैर्हृदि विव्याध दानवम् । सप्तभिश्चहयान्केतुं धनुश्छत्रंचचिच्छिदे
ततोऽतिक्रुद्धो दैत्येन्द्रः शक्तिमुद्यम्यदारुणाम् ।
गणेशं पातयामास रथश्चाढन्यमथाऽऽरुहत् ॥ २८ ॥
अभ्ययादथ वेगेन वीरभद्रं रुषान्वितः । ततस्तौसूर्यसङ्काशौ युयुधाते परस्परम् ॥
वीरभद्रः पुनस्तस्य हयान्बाणैरपातयत् । धनुश्चिच्छेद दैत्येन्द्रः पुप्लुवे परिघायुधः
स वीरभद्रं त्वरयाऽभिगम्य जघान दैत्यः परिघेण मूर्ध्नि ।

स चाऽपि वीरः प्रविभिन्नमूर्द्धा पपात भूमौ रुधिरं समुद्गिरन् ॥ ३१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे जलन्धरोपाख्याने वीरभद्रपतनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

जलन्धरोपाख्यानेशिवजलन्धरयुद्धवर्णनम्

नारद उवाच

पतितं वीरभद्रन्तु दृष्ट्वा रुद्रगणा भयात् । अगमंस्ते रणं हित्वा क्रोशमाना महेश्वरम्
अथ कोलाहलं श्रुत्वा गणानां चन्द्रशेखरः । अभ्ययाद्वृषभारूढः संग्राममप्रहसन्निव
रुद्रमायान्तमालोक्यसिंहनादैर्गणाः पुनः । निवृत्ताः सङ्गरे दैत्यान्निर्जघ्नुः शरवृष्टिभिः
दैत्याश्च भीषणं दृष्ट्वा सर्वे चैव विदुद्रुवुः । कार्त्तिकव्रतिनं दृष्ट्वा पातकानीव तद्भयात्
जलन्धरोऽथ तान्दैत्यान्निवृत्तान्प्रेक्ष्यसङ्गरे । रोषादधावच्चण्डीशंमुञ्चन्वाणान्सहस्रशः

शुम्भोनिशुम्भोऽश्वमुखः कालनेमिर्वलाहकः ।
खड्गरोमा प्रचण्डश्च घस्मराद्याः शिवं ययुः ॥ ६ ॥

वाणान्धकारसंछन्नं दृष्ट्वा गणवलं शिवः । वाणजालमवाच्छिद्यस्वबाणैरावृणोन्नभः
दैत्याश्च वाणवात्याभिः पीडितानकरोत्तदा । प्रचण्डवाणजालौघैरपातयत भूतले ॥

खड्गरोम्णः शिरः कायात्तदा परशुनाऽच्छिनत् ।
वलाहकस्य च शिरः खट्वाङ्गेनाऽकरोद्द्विधा ॥ ९ ॥
बद्ध्वा च घस्मरं दैत्यं पाशेनाऽभ्यहनद्भुवि ।
वृषभेण हताः केचित्केचिद्वाणैर्निपातिताः ॥ १० ॥

न शेकुरसुराःस्थातुं गजाःसिंहार्दिता इव । ततः क्रोधपरीतात्मा वेगाद्रुद्रं जलन्धरः

आह्वयामास समरे तीव्राशनिसमस्वनः ।

जलन्धर उवाच

युध्यस्व च मया सार्द्धं किमेभिर्निहतैस्तव ॥ १२ ॥

यच्च किञ्चिद्बलं तेऽस्तितद्दर्शयजटाधर !। इत्युक्त्वाबाणसप्तत्या जघानवृषभध्वजम्
तान्प्राप्तान्निशितैर्बाणैश्चिच्छेदप्रहसन्निव । ततोहयान्ध्वजंछत्रं धनुश्चिच्छेदशक्तिभिः

स च्छिन्नधन्वा विरथो गदामुद्यम्य वेगवान् ।

अभ्यधावच्छिवस्तावद्गदां बाणैर्द्विधाऽच्छिनत् ॥ १५ ॥

तथाऽपि मुष्टिमुद्यम्य ययौ रुद्रंजिघांसया । तावच्छिवेन बाणौघैःक्रोशमात्रमपाकृतः

ततो जलन्धरो दैत्यो मत्वा रुद्रं बलाधिकम् ।

ससर्ज मायां गान्धर्वीमद्भुतां रुद्रमोहिनीम् ॥ १७ ॥

ततो जगुश्च ननृतुर्गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः । तालवेणुमृदङ्गाद्यान्वादयन्ति स्म चाऽपरे
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यंरुद्रोनादविमोहितः । पतितान्यपि शस्त्राणि करेभ्यो न विवेद सः
एकाग्रीभूतमालोक्यरुद्रंदैत्योजलन्धरः ।कामार्तःसजगामाऽऽशुयत्रगौरीस्थिताऽभवत्

युद्धे शुम्भनिशुम्भाख्यौ स्थापयित्वा महाबलौ ।

दशदोर्दण्डपञ्चास्यस्त्रिनेत्रश्च जटाधरः ॥ २१ ॥

महावृषभमारूढः स बभूव जलन्धरः । अथो रुद्रं समायान्तमालोक्य भववल्लभा ॥
अभ्याययौ सखीमध्यात्तद्दर्शनपथेऽभवत् । यावद्ददर्श चार्वङ्गीं पार्वतीं दनुजेश्वरः
तावत्स्ववीर्यं मुमुचे जडाङ्गश्चाऽभवत्तदा । अथज्ञात्वा तदा गौरी दानवं भयविह्वला
जगामाऽन्तर्हिता वेगात्सा तदोत्तरमानसे । तामदृष्ट्वा ततो दैत्यः क्षणाद्विद्युल्लतामिव
जवेनाऽऽगात्पुनर्युद्धं यत्र देवो वृषध्वजः । पार्वत्यपि भयाद्विष्णुं सस्मारमनसातदा

तावद्ददर्श तं देवं सूपविष्टं समीपगम् ।

पार्वत्युवाच

विष्णो! जलन्धरो दैत्यः कृतवान्परमाद्भुतम् ॥ २७ ॥

तत्किं न विदितं तेऽतिचेष्टितं तस्य दुर्मतेः ।

विष्णुरुवाच

तेनैव दर्शितः पन्था वयमप्यन्वयामहे । २८ ॥

नाऽन्यथा स भवेद्वध्यः पातिव्रत्यसुरक्षितः ।

नारद उवाच

जगाम विष्णुरित्युक्त्वा पुनर्जालन्धरं पुरम् ॥ २९ ॥

अथ रुद्रश्च गंधर्वाऽनुगतः सङ्गरे स्थितः । अन्तधानं गतां मायां दृष्ट्वा स बुबुधे तदा

ततो भवो विस्मित मानसः पुनर्जगाम युद्धाय जलन्धरं रुषा ।

स चाऽपि दैत्यः पुनरागतं शिवं दृष्ट्वा शरौघैः समवाकिरद्रणे ॥ ३१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-खण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे जलन्धरोपाख्याने शिव-जलन्धरयुद्धवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

जलन्धरोपाख्यानेविष्णुनावृन्दापातिव्रत्यभङ्गवर्णनम्

नारद उवाच

विष्णुर्जलन्धरंगत्वा तद्दैत्यपुटभेदनम् । पातिव्रत्यस्यभङ्गायवृन्दायाश्चाऽकरोन्मतिम्

अथ वृन्दारका देवी स्वप्नमध्ये ददर्श ह । भर्तारंमहिषाऽऽरूढंतैलाभ्यक्तं दिगम्बरम्

कृष्णप्रसूनभूषाढ्यं क्रव्यादगणसेवितम् । दक्षिणाशागतंमुण्डं तमसाप्याऽऽवृतंतदा

स्वपुरं सागरे मग्नं सहसैवाऽऽत्मनासह । ततः प्रबुद्धासावालातत्स्वप्नंप्रविचिन्वती

ददर्शोदितमादित्यं सच्छिद्रं निष्प्रभं मुहुः ।

तदनिष्टमिति ज्ञात्वा रुदती भयविह्वला ॥ ५ ॥

कुत्रचिन्नाऽलभच्छर्म गोपुराट्टालभूमिषु । ततःसखीद्वययुता नगरोद्यानमागमत् ॥६॥

तत्राऽपिसाऽभ्रमद्बालानाऽलभत्कुत्रचित्सुखम् । वनाद्वनान्तरंयातानैववेदात्मनस्तदा
ततः सा भ्रमतीबाला ददर्शाऽतीवभीषणौ । राक्षसौसिंहवदनौदंष्ट्राऽऽननविभीषणौ
तौ दृष्ट्वा विह्वलाऽतीव पलायनपराऽभवत् ।
ददर्श तापसं शान्तं सशिष्यं मौनमास्थितम् ॥ ६ ॥
ततस्तत्कण्ठमावृत्यनिजांबाहुलतां भयात् । मुने! मां रक्षशरणमागताऽस्मीत्यभाषत
मुनिस्तां विह्वलां दृष्ट्वा राक्षसाऽनुगतां तदा । हुङ्कारेणैवतौघोरौचकार विमुखौरुषा
तौ हुंकारभयत्रस्तौ दृष्ट्वा च विमुखौ गतौ । प्रणम्य दण्डवद्भूमौवृन्दावचनमब्रवीत्

वृन्दोवाच

रक्षिताऽहंत्वयाघोराद्भयादस्मात्कृपानिधे !। किञ्चिद्विज्ञप्तुमिच्छामिकृपयातन्निशामय
जलन्धरोहि मद्भर्ता रुद्रं योद्धुं गतःप्रभो । स तत्राऽऽस्तेकथं युद्धेतन्मे कथयसुव्रत!

नारद उवाच

मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वमवैक्षत । तावत्कपी समायातौप्रणम्यचाग्रतःस्थितौ
ततस्तद्भ्रूलतासञ्ज्ञानियुक्तौगगनं गतौ । गत्वाक्षणार्द्धादागत्यप्रणतावग्रतःस्थितौ
शिरःकबन्धे हस्तौ च गृहीत्वा समुपस्थितौ ।
शिरःकबन्धेहस्तौच दृष्ट्वाऽब्धितनयस्यसा । पपात मूर्च्छिताभूमौभर्तृ व्यसनदुःखिता
कमण्डलूदकैः सिक्त्वा मुनिनाऽऽश्वासिता तदा ।
स्वभर्तृ भाले सा भालं कृत्वा दीना रुरोद ह ॥ १८ ॥

वृन्दोवाच

यः पुरा सुखसम्वादे विनोदयसि मां प्रभो !। सकथं न वदस्यद्यवल्लभां मामनागसम्
येन देवाःसगन्धर्वानिर्जिताविष्णुनासह । स कथं तापसेनाऽद्य त्रैलोक्यविजयीहतः

नारद उवाच

रुदित्वेति तदा वृन्दा तं मुनिं वाक्यमब्रवीत् ।

वृन्दोवाच

कृपानिधे! मुनिश्रेष्ठ! जीवयैनं मम प्रियम् ॥ २१ ॥

त्वमेवाऽस्य मुने! शक्तो जीवनाय मतौ मम ।

नारद उवाच

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रहसन्मुनिरब्रवीत् ॥ २२ ॥

मुनिरुवाच

नाऽयं जीवयितुं शक्तोरुद्रेणनिहतोयुधि। तथाऽपि त्वत्कृपाविष्टएनंसञ्जीवयाम्यहम्

नारद उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधेविप्रस्तावत्सागरनन्दनः । वृन्दामालिङ्ग्य तद्वक्त्रंचुचुम्बप्रीतमानसः

अथ वृन्दाऽपि भर्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा । रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरम्

कदाचित्सुरतस्यान्ते दृष्ट्वाविष्णुं तमेव च । निर्भर्त्स्य क्रोधसंयुक्तावृन्दावचनमब्रवीत्

वृन्दोवाच

धिक्त्वदीयं हरे! शीलं परदाराभिगामिनः ।

ज्ञातोऽसि त्वं मया सम्यङ् मायाप्रच्छन्नतापसः ॥ २७ ॥

यौत्वयामाययाद्वाःस्थौस्वकीयौदर्शितौमम । तावेवराक्षसौभूत्वाभार्यांतवहरिष्यतः

त्वं चाऽपिभार्यादुःखार्तोवनेकपिसहायवान् । भ्रमसर्पेश्वरेणाऽयंयस्तेशिष्यत्वमागतः

इत्युक्त्वा सा तदा वृन्दा प्राविशद्धव्यवाहनम् ।

विष्णुना वार्यमाणाऽपि तस्यामासक्तचेतसा ॥ ३० ॥

ततो हरिस्तामनु संस्मरन्मुहुर्वृन्दान्वितो भस्मरजोवगुण्ठितः ।

तत्रैव तस्थौ सुरसिद्धसङ्घैः प्रबोध्यमानोऽपि ययौ न शान्तिम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे जलन्धरोपाख्याने वृन्दाग्निप्रवेश-वर्णनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

जलन्धरोपाख्यानेशिवेनजलन्धरमुक्तिवर्णनम्

नारद उवाच

ततो जलन्धरो दृष्ट्वा रुद्रमद्भुतविक्रमम् । चकार मायया गौरीं त्र्यम्बकं मोहयन्निव॥१
रथोपरि च तां वद्धां रुदन्तीं पार्वतींशिवः । निशुम्भप्रमुखाद्यैश्चवध्यमानांददर्श सः
गौरीं तथाविधां दृष्ट्वा शिवोऽप्युद्विग्नमानसः ।
अवाङ्मुखः स्थितस्तूष्णीं विस्मृत्य स्वपराक्रमम् ॥ ३ ॥
ततोजलन्धरो वेगात्त्रिभिर्विव्याध सायकैः । आपुङ्खमग्नैस्तंरुद्रं शिरस्युरसि चोदरे
ततो जज्ञे स तां मायां विष्णुना च प्रबोधितः ।
रौद्ररूपधरो जातो ज्वालामालाऽतिभीषणः ॥ ५ ॥
तस्याऽतीव महारौद्रं रूपं दृष्ट्वा महासुराः । नशेकुःसम्मुखेस्थातुंभेजिरेतेदिशोदश
ततः शापं ददौ रुद्रस्तयोःशुम्भनिशुम्भयोः । ममयुद्धादपक्रान्तौगौर्यावध्योभविष्यथ
पुनर्जलन्धरो वेगाद्ववर्ष निशितैः शरैः । वाणान्धकारैः संछन्नं तदा भूमितलं महत् ॥
यावद्रुद्रश्च चिच्छेद तस्यवाणगणं जवात् । तावत्स परिघेणाऽऽशुजघानवृषभं वली
वृषस्तेन प्रहारेण परावृत्तोरणाङ्गणात् । रुद्रेणाऽऽकृष्यमाणोऽपिनतस्थौ रणभूमिषु
ततः परमसङ्क्रुद्धो रुद्रोरौद्रवपुर्धरः । चक्रंसुदर्शनंवेगाच्चिक्षेपाऽऽदित्यवर्चसम् ॥
प्रदहद्रोदसीवेगात्पपातवसुधातले । जहारतच्छिरःकायान्महदायतलोचनम् ॥ १२ ॥
रथात्कायः पपाताऽस्य नादयन्वसुधातलम् । तेजश्च निर्गतं देहात्तद्रुद्रेलयमागमत् ॥
वृन्दादेहोद्भवं तेजस्तद्गौर्यां विलयं गतम् । अथब्रह्मादयो देवा हर्षादुत्फुल्ललोचनाः
प्रणम्य शिरसा रुद्रं शशंसुर्विष्णुचेष्टितम् ।

देवा ऊचुः

महादेव! त्वया देवा रक्षिताः शत्रुजाद्भयात् ॥ १५ ॥

किञ्चिदन्यत्समुद्भूतं तत्र किं करवामहे ।
वृन्दालावण्यसम्भ्रान्तो विष्णुस्तिष्ठति मोहितः ॥ १६ ॥

ईश्वर उवाच

गच्छध्वं शरणं देवाविष्णोर्मोहापनुत्तये । शरण्यांमोहिनींमायांसावःकार्यंकरिष्यति

नारद उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवः सर्वभूतगणैस्तदा । देवाश्च तुष्टुवुर्मूलप्रकृतिं भक्तवत्सलाम्

देवा ऊचुः

यदुद्भवाः सत्त्वरजस्तमोगुणाः सर्गस्थितिध्वंसनिदानकारिणः ।
यदिच्छया विश्वमिदं भवाऽभवौ तनोति मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ १९ ॥
या हि त्रयोविंशतिभेदशब्दिता जगत्यशेषे समधिष्ठिता परा ।
यद्रूपकर्माणि जडास्त्रयोऽपि देवा न विद्युः प्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ २० ॥
यद्भक्तियुक्ताः पुरुषास्तु नित्यं दारिद्र्यभीमोहपराभवादीन् ।
न प्राप्नुवन्त्येव हि भक्तवत्सलां सदैव मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ २१ ॥

नारद उवाच

स्तोत्रमेतत्त्रिसंध्यं यः पठेदेकाग्रमानसः ।
दारिद्र्यमोहदुःखानि न कदाचित्स्पृशन्ति तम् ॥ २२ ॥

इत्थं स्तुवन्तस्तेदेवास्तेजोमण्डलमास्थितम् । ददृशुर्गगनंतत्रज्ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम्
तन्मध्याद्भारतीं सर्वे शुश्रुवुर्व्योमचारिणीम् ।

शक्तिरुवाच

अहमेव त्रिधा भिन्ना तिष्ठामि त्रिविधैर्गुणैः ॥ २४ ॥
गौरी लक्ष्मी स्वरा चेति रजः सत्त्वतमोगुणैः ।
तत्र गच्छत ताः कार्यं विधास्यन्ति च वः सुराः ॥ २५ ॥

नारद उवाच

शृण्वतामिति तां वाचमन्तर्धानमगान्महः देवानांविस्मयोत्फुल्लनेत्राणांतत्तदा नृप

ततः सर्वेऽपिते देवागत्वातद्वाक्यनोदिताः । गौरींलक्ष्मींस्वरांचैवप्रणेमुर्भक्तितत्पराः

ततस्तास्तान्सुरान्दृष्ट्वा प्रणतान्भक्तवत्सलाः ।

वीजानि प्रददुस्तेभ्यो वाक्यान्यूचुश्च भूमिप !॥ २८ ॥

देव्य ऊचुः

इमानि तत्र बीजानि विष्णुर्यत्राऽवतिष्ठते । निर्वपध्वं ततःकार्यं भवतांसिद्धमेष्यति

नारद उवाच

ततस्तु हृष्टाः सुरसिद्धसङ्घाः प्रगृह्य वीजानि विचिक्षिपुस्ते ।

वृन्दान्वितो भूमितले स यत्र विष्णुः सदा तिष्ठति सौख्यहीनः ॥ ३० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे जलन्धरमुक्तिकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

———

त्रयोविंशोऽध्यायः

धात्रीतुलस्युद्भववर्णनम्

नारद उवाच

क्षिप्तेभ्यस्तत्र बीजेभ्योवनस्पत्यस्त्रयोऽभवन् । धात्रीचमालतीचैवतुलसीचनृपोत्तम!

धात्र्युद्भवा स्मृताधात्रीमाभवामालतीस्मृता । गौरीभवाचतुलसीतमःसत्त्वरजोगुणाः

स्त्रीरूपिण्यौ वनस्पत्यौ दृष्ट्वा विष्णुस्तदा नृप !।

उत्तस्थौ सम्भ्रमाद् वृन्दारूपातिशयविभ्रमः ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा च याचतेमोहात्कामासक्तेनचेतसा । तंचाऽपितुलसीधात्र्यौरागेणैवव्यलोकताम्

यच्चलक्ष्म्यापुराबीजमीर्ष्ययैवसमर्पितम् । तस्मात्तदुद्भवानारीतस्मिन्नीर्ष्यापराऽभवत्

अतः सा बर्बरीत्याख्यामवापाऽथ विगर्हिताम् ।

धात्रीतुलस्यौ तद्रागात्तस्यप्रीतिप्रदे सदा ॥ ६ ॥
ततोविस्मृतदुःखोऽसौविष्णुस्ताभ्यांसहैव तु । वैकुण्ठमगमद्धृष्टःसर्वदेवनमस्कृतः
कार्त्तिकोद्यापने विष्णोस्तस्मात्पूजा विधीयते ।
तुलसीमूलदेशेऽस्य प्रीतिदा सा यतः स्मृता ॥ ८ ॥
तुलसीकाननं राजन्गृहे यस्याऽवतिष्ठते । तद्गृहं तीर्थरूपं तुनाऽऽयान्ति यमकिङ्कराः
सर्वपापहरं नित्यं कामदं तुलसीवनम् । रोपयन्तिनराःश्रेष्ठास्तेनपश्यन्तिभास्करिम्
दर्शनं नर्मदायास्तु गङ्गास्नानं तथैव च । तुलसीवनसंसर्गः सममेव त्रयं स्मृतम् ॥
रोपणात्पालनात्सेकाद्दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम् ।
तुलसीदहते पापं वाङ्मनःकायसञ्चितम् ॥ १२ ॥
तुलसीमञ्जरीभिर्यः कुर्याद्धरिहराऽर्चनम् । न स गर्भगृहंयाति मुक्तिभागी न संशयः
पुष्कराद्यानि तीर्थानिगङ्गाद्याःसरितस्तथा । वासुदेवादयोदेवास्तिष्ठन्तितुलसीदले
तुलसीमञ्जरीयुक्तो यस्तु प्राणान्विमुञ्चति । यमोऽपि नेक्षितुं शक्तो युक्तंपापशतैरपि
विष्णोः सायुज्यमाप्नोति सत्यं सत्यंनृपोत्तम ॥
तुलसी काष्ठजं यस्तु चन्दनं धारयेन्नरः ॥ १६ ॥
तद्देहं न स्पृशेत्पापं क्रियमाणमपीह यत् । तुलसीविपिनच्छाया यत्रयत्र भवेन्नृप ॥
तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं पितॄणां दत्तमक्षयम् । धात्रीफलविमिश्रैश्च तुलसीपत्रमिश्रितैः
जलैः स्नाति नरस्तस्य गङ्गास्नानफलं स्मृतम् । देवार्चनंनरःकुर्याद्धात्रीपत्रैःफलैस्तथा
सुवर्णमणिमुक्तौघैरर्चनस्याऽऽप्नुयात्फलम् ।
तीर्थानि मुनयो देवा यज्ञा सर्वेऽपि कार्त्तिके ॥ २० ॥
नित्यं धात्रीं समाश्रित्य तिष्ठन्त्यर्के तुलास्थिते ।
द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं तु कार्त्तिके ॥ २१ ॥
लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान् । धात्रीतुलस्योर्माहात्म्यमपिदेवश्चतुर्मुखः
न समर्थो भवेद्वक्तुं यथा देवस्य शार्ङ्गिणः ॥ २२ ॥
धात्रीतुलस्युद्भवकारणं यः शृणोति यः श्रावयते च भक्त्या ।

विधूतपाप्मा सह पूर्वजैः स्वैः स्वर्गं व्रजत्यग्र्यविमानसंस्थैः ॥ २३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे धात्रीतुलस्युत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

धर्मदत्तविप्रेतिहासवर्णनम्

पृथुरुवाच

यदूर्जव्रतिनः पुंसः फलं महदुदाहृतम् । तत्पुनर्ब्रूहिमाहात्म्यं केन चीर्णमिदं शुभम्॥१

नारद उवाच

आसीत्सह्याद्रिविषये करवीरपुरे पुरा । ब्राह्मणो धर्मवित्कश्चिद्धर्मदत्तेति विश्रुतः॥२
विष्णुव्रतकरः सम्यग्विष्णुपूजारतः सदा । कदाचित्कार्त्तिकेमासिहरिजागरणायसः
रात्र्यां तुर्यावशेषायां जगाम हरिमन्दिरम् । हरिपूजोपकरणान्प्रगृह्य व्रजता सदा४ ॥

तेन दृष्टा समायाता राक्षसी भीमदर्शना ।
तां दृष्ट्वा भयवित्रस्तः कम्पितावयवस्तदा ॥ ५ ॥

पूजोपकरणैः सर्वैपयोभिश्चाहनद्भयात् । संस्मृत्य तद्धरेर्नामतुलसीयुक्तवारिणा
तेन वै हतमात्रे तु पापं तस्या ह्यगाल्लयम् ॥ ६ ॥

अथ संस्मृत्य सा पूर्वजन्मकर्मविपाकजाम् । स्वां दशामब्रवीद्विप्रंदण्डवच्चप्रणम्यवै

कलहोवाच

पूर्वकर्मविपाकेन दशामेतां गताऽस्म्यहम् । तत्कथंनुपुनर्विप्रप्रयास्याम्युत्तमां गतिम्

नारद उवाच

तां दृष्ट्वा प्रणतां सम्यग्वदमानां स्वकर्म तत् । अतीवविस्मितोविप्रस्तदावचनमब्रवीत्

धर्मदत्त उवाच

केन कर्मविपाकेन त्वंदशामीदृशीं गता । कुत्रत्याका च किंशीला तत्सर्वं कथयस्वमे

कलहोवाच

सौराष्ट्रनगरे ब्रह्मन्! भिक्षुर्नामाऽभवद्द्विजः ।
तस्याऽहं गृहिणीपूर्वं कलहाख्याऽतिनिष्ठुरा ॥ ११ ॥
न कदाचिन्मयाभर्तुर्वचसाऽपिशुभंकृतम् । नाऽर्पितं तस्य मिष्टान्नं भर्तुर्वंचनशीलया॥
कलहप्रियया नित्यं मयोद्विग्नमना यदा । परिणेतुं यदाऽन्यां स मतिं चक्रे पतिर्मम ॥
ततो गरं समादाय प्राणास्त्यक्ता मया द्विज !।
अथ बद्ध्वा वध्यमानां मां निन्युर्यमकिङ्कराः ॥ १४ ॥
यमश्च मां तदा दृष्ट्वा चित्रगुप्तमपृच्छत ॥ १५ ॥

यम उवाच

अनया किं कृतं कर्म चित्रगुप्त! विलोकय । प्राप्नोत्वेषा च तत्कर्मशुभंवायदिवाऽशुभम्

कलहोवाच

चित्रगुप्तस्तदा वाक्यं भर्त्सयन्मामुवाच सः ।

चित्रगुप्त उवाच

अनया तु कृतं कर्म शुभं किञ्चिन्न विद्यते ॥ १७ ॥
मिष्टान्नं भुञ्जमानेयं न भर्तरि तदर्पितम् । अतश्च वल्गुलीयोन्यांस्वविष्ठादाऽवतिष्ठतु
भर्तुर्द्वेषात्तदाप्येषा नित्यं कलहकारिणी । विष्ठादां सूकरीं योनिंतस्मात्तिष्ठत्वियं हरे
पाकभाण्डे सदा भुङ्क्ते भुङ्क्ते चैकायतस्ततः ।
तस्मादेषा बिडाल्यस्तु स्वजाताऽपत्यभक्षिणी ॥ २० ॥
भर्तारमपि चोद्दिश्य ह्यात्मघातः कृतोऽनया ।
तस्मात्प्रेतशरीरेऽपि तिष्ठत्वेकाऽतिनिन्दिता ॥ २१ ॥
अतश्चैषा मरुद्देशं प्रापितव्या भटैरियम् । तत्र प्रेतशरीरस्था चिरं तिष्ठत्वियं ततः ॥
ऊर्ध्वं योनित्रयं चैषा भुनक्त्वशुभकारिणी ॥ २३ ॥

कलहोवाच

सोऽहं पञ्चशताब्दानि प्रेतदेहे स्थिता किल ।
क्षुत्तृड्भ्यां पीडिताऽऽविश्य शरीरं वणिजस्य च
आयाता दक्षिणं देशं कृष्णावेण्योश्च सङ्गमम् ॥ २४ ॥
तत्तारं संश्रिता यावत्तावत्तस्य शरीरतः । शिवविष्णुगणैर्दूरमपकृष्टाबलादहम् ॥
ततश्चुत्क्षामयाद्दृष्टो मया हि त्वं द्विजोत्तम !। त्वद्धस्ततुलसीवारिसंसर्गगतपापया
तत्कृत्यं कुरु विप्रेन्द्र कथं मुक्तिमियास्यहम् । योनित्रयादग्रभवादस्माच्च प्रेतदेहतः ॥
इत्थं विश्चित्य कलहावचनं द्विजाग्र्यस्तत्कर्मपाकभयविस्मयदुःखयुक्तः ।
तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्तवृत्तिर्ध्यात्वा चिरं स वचनं निजगाद दुःखात् ॥२८

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमाससमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे धर्मदत्तेतिहासकथनंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

धर्मदत्तोपाख्याने कलहामोक्षकथनम्

धर्मदत्त उवाच

विलयं यान्तिपापानितीर्थे दानव्रतादिभिः । प्रेतदेहस्थितायास्तेतेषुनैवाऽधिकारिता
तद्ग्लानिदर्शनादस्मात्खिन्नं च मम मानसम् ।
न वै निर्वृतिमायाति त्वामनुद्धृत्य दुःखिताम् ॥ २ ॥
तस्मादाजन्मचरितंयन्मयाकार्त्तिकव्रतम् ।तत्पुण्यस्याऽर्द्धभागेन सद्गतिंत्वमवाप्नुहि

नारद उवाच

इत्युक्त्वा धर्मदत्तोऽसौ यावत्तामभ्यषेचयत् । तुलसीमिश्रतोयेनश्रावयन्द्वादशाक्षरम्
तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलदग्निशिखोपमा । दिव्यरूपधरा जाता लावण्येनयथेन्दिरा

ततः सादण्डवद्भूमौ प्रणनामाऽथतंद्विजम् । उवाच सातदावाक्यैर्हर्षगद्गदभाषिणी

कलहोवाच

त्वत्प्रसादाद्द्विजश्रेष्ठ! विमुक्ता निरयादहम् ।
पापाब्धौ मज्जमानाया त्वं नौभूतोऽसि मे ध्रुवम् ॥ ७ ॥

नारद उवाच

इत्थं वदन्तीसा विप्रं ददर्शाऽऽयातमम्बरात् । विमानंभास्वरं युक्तंविष्णुरूपधरैर्गणैः

अथ सा तद्विमानाऽग्र्यं द्वाःस्थाभ्यामवरोपिता ।
पुण्यशीलसुशीलाभ्यामप्सरोगणसेविता ॥ ६ ॥

तद्विमानं तदाऽपश्यद्धर्मदत्तः सविस्मयः । पपातदण्डवद्भूमौदृष्ट्वातौविष्णुरूपिणौ
पुण्यशीलसुशीलौचतमुत्थाप्याऽऽनतंद्विजम् । अभिनन्द्यततोवाक्यमूचतुर्धर्मसंयुतम्

गणावूचतुः

साधुसाधुद्विजश्रेष्ठ! यस्त्वं विष्णुरतःसदा । दीनाऽनुकम्पीसर्वज्ञोविष्णुव्रतपरायणः
आबालत्वाच्छुभंत्वेतद्यत्त्वयाकार्त्तिकव्रतम् । कृतं तस्याऽर्द्धदानेनपुण्यंद्वैगुण्यमागमत्
जन्मान्तरशतोद्भूतं पापंतद्विलयं गतम् । स्नानैरेव गतं पापं यदस्याः पूर्वकर्मजम् ॥
हरिजागरणाद्यैश्च विमानमिदमास्थिता । वैकुण्ठं नीयतेसाधोनानाभोगयुतात्वियम्
दीपदानभवैः पुण्यैस्तेजःसारूप्यमास्थिता । तुलसीपूजनाद्यैश्च कार्त्तिव्रतकैः शुभैः
विष्णुसान्निध्यगा जाता त्वया दत्तैः कृपानिधे !॥ १६ ॥

त्वमप्यस्य भवस्यान्ते भार्याभ्यां सह यास्यसि ।
वैकुण्ठभुवनं विष्णोः सान्निध्यं च सरूपताम् ॥ १७ ॥

तेधन्याःकृतकृत्यास्तेतेषांचसफलोभवः । यैर्भक्त्याऽऽराधितोविष्णुर्धर्मदत्तयथात्वया
सम्यगाराधितोविष्णुःकिंनयच्छतिदेहिनाम् । औत्तानचरणिर्येनध्रुवत्वेस्थापितःपुरा
यन्नामस्मरणादेव देहिनो यान्ति सद्गतिम् ॥ २० ॥

ग्राहग्रस्तोहिनागेन्द्रोयन्नामस्मरणात्पुरा । विमुक्तःसन्निधिंप्राप्तोजातोऽयंजयसञ्ज्ञकः
यतस्त्वयाऽर्चितो विष्णुस्तत्सान्निध्यं प्रयास्यसि ।

बहून्यब्दसहस्राणि भार्याद्वययुतः किल ॥ २२ ॥
ततः पुण्यक्षयेजातेयदायास्यसिभूतलम् । सूर्यवंशोद्भवोराजाविख्यातस्त्वंभविष्यसि
नाम्ना दशरथस्तत्र भार्याद्वययुतः पुनः ।
तृतीययाऽनया चाऽपि या ते पुण्यार्द्धभागिनी ॥ २४ ॥
तत्राऽपितवसान्निध्यंविष्णुर्यास्यतिभूतले । आत्मानंतवपुत्रत्वेप्रकल्प्याऽमरकार्यकृत्
तव जन्मव्रतादस्माद्विष्णुसन्तुष्टिकारकात् ।
न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि वै ॥ २६ ॥
धन्योऽसि विप्राग्र्य! यतस्त्वयैतद्व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः ।
यदर्धभागात्सफला मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम् ॥ २७॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे धर्मदत्तोपाख्याने
कलहामोक्षकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

चोलराजविष्णुदासब्राह्मणाख्यानवर्णनम्

नारद उवाच

इत्थं तद्वचनं श्रुत्वा धर्मदत्तः सविस्मयः । प्रणम्य दण्डवद्भूमौ वाक्यमेतदुवाच ह

धर्मदत्त उवाच

आराधयन्ति सर्वेऽपि विष्णुं भक्तार्तिनाशनम् ।
यज्ञैर्दानैर्व्रतैस्तीर्थैस्तपोभिश्च यथाविधि ॥ २ ॥
विष्णुप्रीतिकरं तेषां किञ्चित्सान्निध्यकारकम् ।
यत्कृत्वा तानि चीर्णानि सर्वाण्यपि भवन्ति हि ॥ ३ ॥

गणावूचतुः

साधु पृष्टं त्वयाविप्रशृणुष्वैकाग्रमानसः । सेतिहासकथांपुण्यांकथ्यमानांपुराभवाम्
काञ्चिपुर्यां पुराचोलश्चक्रवर्तींनृपोऽभवत् । यस्याख्ययैव तद्देशाश्चोलाइतिप्रथांगताः
यस्मिञ्छासतिभूचक्रं दरिद्रोवाऽपिदुःखितः । पापबुद्धिःसरुग्वाऽपिनैवकश्चिदभून्नरः
यस्याप्युन्नतयज्ञस्य ताम्रपर्ण्यास्तटावुभौ । सुवर्णयूपैःशोभाढ्यावास्तांचैत्ररथोपमौ
स कदाचिदगाद्राजा ह्यनन्तशयनं द्विज !। यत्राऽसौजगतांनाथोयोगनिद्रामुपाश्रितः
तत्र श्रीरमणं देवं सम्पूज्य विधिवन्नृपः । मणिमुक्ताफलैर्दिव्यैः स्वर्णपुष्पैश्च शोभनैः
प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपविष्टः स तत्र वै। तावद् ब्राह्मणमायातमपश्यद्देवसन्निधौ ॥
देवार्चनार्थं पाणौ तुतुलस्युदकधारिणम् । स्वपुरीवासिनंतत्रविष्णुदासाह्वयं द्विजम्
स तत्राभ्येत्यविप्रर्षिर्देवदेवमपूजयत् । विष्णुसूक्तेन संस्नाप्य तुलसीमञ्जरीदलैः ॥१२

तुलसीपूजया तस्य रत्नपूजां पुरा कृताम् ।
आच्छादितां समालोक्य राजा क्रुद्धोऽब्रवीदिदम् ॥ १३ ॥

चोल उवाच

माणिक्यस्वर्णपूजाऽत्र शोभाढ्या या कृता मया ।
विष्णुदास! कथं सेयमाच्छन्ना तुलसीदलैः ॥ १४ ॥
विष्णुभक्तिं न जानासि वराकोऽसि मतो मम ।
यस्त्विमामतिशोभाढ्यां पूजामाच्छादयस्यहो ॥ १५ ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा सक्रोधः स द्विजोत्तमः ।
राज्ञो गौरवमुल्लङ्घ्य जगाद वचनं तदा ॥ १६ ॥

विष्णुदास उवाच

राजन्भक्तिं न जानासि गर्वितोऽसि नृपश्रिया ।
कियद्विष्णुव्रतं पूर्वं त्वया चीर्णं वदस्व तत् ॥ १७ ॥

गणावूचतुः

तद्ब्राह्मणवचः श्रुत्वा प्रहस्य स नृपोत्तमः । विष्णुदासं तदागर्वादुवाचवचनंद्विजम्

राजोवाच

इत्थं चेद्वदसे विप्र! विष्णुभक्त्याऽतिगर्वितः ।
भक्तिस्ते कियती विष्णोर्दरिद्रस्याऽधनस्य च ॥ १९ ॥
यज्ञदानादिकं नैव विष्णोस्तुष्टिकरं कृतम् । नाऽपि देवालयंपूर्वंकृतंविप्रत्वयाक्वचित्
ईदृशस्याऽपि ते गर्व एषतिष्ठतिभक्तितः । तच्छृण्वन्तुवचोमेऽद्यसर्वेऽप्येतेद्विजातयः
साक्षात्कारमहं विष्णोरेष वाऽऽदौ गमिष्यति ।
पश्यन्तु सर्वेऽपि ततो भक्तिं ज्ञास्यन्ति चावयोः ॥ २२ ॥

गणावूचतुः

इत्युक्त्वा सनृपोऽगच्छन्निजराजगृहं तदा । आरभद्वैष्णवंसत्रंकृत्वाऽऽचार्यंतुमुद्गलम्
ऋषिसङ्घसमाजुष्टं बह्वन्नं बहुदक्षिणम् । यच्च ब्रह्मकृतं पूर्वं गयाक्षेत्रे समृद्धिमत् ॥२४
विष्णुदासोऽपि तत्रैव तस्थौ देवालये व्रती ।
यथोक्तनियमान्कुर्वन्विष्णोस्तुष्टिकरान्सदा ॥ २५ ॥
माघोर्जयोर्व्रतं सम्यक्तुलसीवनपालनम् । एकादश्यां हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया
उपचारैः षोडशभिर्नृत्यगीतादिमङ्गलैः ।
नित्यं विष्णोस्तथा पूजां व्रतान्येतानि सोऽकरोत् ॥ २७ ॥
नित्यंसंस्मरणंविष्णोर्गच्छन्भुविस्वपन्नपि । सर्वभूतस्थितंविष्णुमपश्यत्समदर्शनः
माघकार्त्तिकयोर्नित्यं विशेषनियमानपि । अकरोद्विष्णुतुष्ट्यर्थंसोद्यापनविधिं तथा
एवं समाराधयतोः श्रियःपतिं तयोश्च चोलेश्वरविष्णुदासयोः ।
अगाद्धिकालः सुमहान्व्रतस्थयोस्तन्निष्ठसर्वेन्द्रियकर्मणोस्तदा ॥ ३० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे
कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे चोलराजविष्णुदासब्राह्मण-
विवादकथनंनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

चोलनृपेणसहविष्णुदासब्राह्मणस्यमुक्तिवर्णनम्

नारद उवाच

कदाचिद्विष्णुदासोऽथ कृत्वा नित्यविधिं द्विज !।

सपाकमकरोत्तावदहरत्कोऽप्यलक्षितः ॥ १ ॥

तमदृष्ट्वाऽप्यसौ पाकं पुनर्नैवाऽकरोत्तदा। सायंकालार्चनस्याऽसौव्रतभङ्गभयाद्द्विजः

द्वितीयेऽह्नि पुनःपाकं कृत्वा यावत्सविष्णवे। उपहारार्पणंकर्तुं गतःकोऽप्यहरत्पुनः

एवं सप्तदिनं तस्य पाकं कोऽप्यहरन्नृप !। ततः सविस्मयश्चाथ मनस्येवमधारयत्

अहोनित्यं समभ्येत्य कः पाकं हरते मम। क्षेत्रसंन्यासिनःस्थानंनत्याज्यंममसर्वथा

पुनःपाकंविधायाऽत्रभुज्यतेयदिचेन्मया। सायंकालाऽर्चनं चैव परित्याज्यंकथंभवेत्

यदिपाकंविधायैव भोक्तव्यं तु मया न तत्। अनिवेद्यहरौसर्वं वैष्णवैर्नैव भुज्यते ॥

उपोषितोऽहं सप्ताऽहं तिष्ठाम्यत्र व्रतस्थितः

अद्य संरक्षणं सम्यक्पाकस्याऽत्र करोम्यहम ॥ ८ ॥

इति पाकं विधायाऽसौ तत्रैवाऽलक्षितः स्थितः।

तावद्ददर्श चण्डालं पाकान्नहरणे स्थितम् ॥ ६ ॥

क्षुत्क्षामं दीनवदनमस्थिचर्माऽवशेषितम्।

तमालोक्य द्विजाग्र्योऽभूत्कृपयाऽन्वितमानसः॥ १० ॥

विलोक्याऽन्नहरं विप्रस्तिष्ठतिष्ठेत्यभाषत। कथमश्नासि तद्रूक्षं घृतमेतद्गृहाणभोः

इत्थं वदन्तं विप्राग्र्यमायान्तंस विलोक्य च। वेगादधावत्तद्भीत्यामूर्च्छितश्चपपातह

भीतंसंमूर्च्छितंदृष्ट्वाचण्डालंसद्विजाग्रणीः। वेगादभ्येत्यकृपयास्ववस्त्रान्तन्तैरवीजयत्

अथोत्थितंतमेवासौविष्णुदासोव्यलोकयत्। साक्षान्नारायणंदेवंशङ्खचक्रगदाधरम्

तं दृष्ट्वा सात्त्विकैर्भावैरावृतो द्विजसत्तमः। स्तोतुंचैवनमस्कर्तुंतदानाऽलम्बभूव सः

अथशक्रादयोदेवास्तत्रैवाभ्याययुस्तदा । गन्धर्वाप्सरसश्चाऽपिजगुश्चननृतुर्मुदा ॥१६
विमानशतसङ्कीर्णं देवर्षिशतसङ्कुलम् । गीतवादित्रनिर्घोषं स्थानंतदभवत्तदा ॥१७॥

ततो विष्णुः समालिङ्ग्य स्वभक्तं सात्विकव्रतम् ।
सारूप्यमात्मनो दत्त्वाऽनयद्वैकुण्ठमन्दिरम् ॥ १८ ॥

विमानवरसंस्थंतं गच्छन्तं विष्णुसन्निधिम् । दीक्षितश्चोलनृपतिर्विष्णुदासंददर्शसः
वैकुण्ठभुवनं यान्तं विष्णुदासंविलोक्यसः । स्वगुरुंमुद्गलंवेगादाहूयेत्थं वचोऽब्रवीत्

चोल उवाच

यत्स्पर्द्धया मयाचैवयज्ञादानादिकंकृतम् । सविष्णुरूपधृग्विप्रोयातिवैकुण्ठमन्दिरम्

दीक्षितेन मया सम्यकसत्रेऽस्मिन्वैष्णवे त्वया ।
हुतमग्नौ कृता विप्रा दानाद्यैः पूर्णमानसाः ॥ २२ ॥

नैवाऽद्यापि समेदेवःप्रसन्नोजायतेध्रुवम् । विष्णुदासस्यभक्त्यैवसाक्षात्कारंददौहरिः

तस्माद्दानैश्च यज्ञैश्च नैव विष्णुः प्रसीदति ।
भक्तिरेव परं तस्य निदानं दर्शने विभोः ॥ २४ ॥

गणावूचतुः

इत्युक्त्वाभागिनेयंस्वमभ्यषिञ्चन्नृपासने । आबाल्याद्दीक्षितो यज्ञे ह्यपुत्रत्वमगाद्यतः
तस्माद्द्याऽपि तद्देशेसदाराज्यांशभागिनः । स्वस्रेयाएवजायन्ते तत्कृतावधिवर्तिनः

यज्ञवाटं ततोऽभ्येत्य यज्ञकुण्डाग्रतः स्थितः ।
त्रिरुच्चैर्व्याजहाराऽऽशु विष्णुं संबोधयंस्तदा ॥ २७ ॥
विष्णो! भक्तिं स्थिरां देहि मनोवाक्कायकर्मभिः ।
इत्युक्त्वा सोऽपतद्वह्नौ सर्वेषामेव पश्यताम् ॥ २८ ॥
मुद्गलस्तु तदा क्रोधाच्छिखामुत्पाटयत्स्वकाम् ।
ततस्त्वद्याऽपि तद्गोत्रे मुद्गला विशिखा बभुः ॥ २९ ॥
तावदाविरभूद्विष्णुः कुण्डाग्नौ भक्तवत्सलः ।
समालिङ्ग्य विमानाग्र्यं समारोहयदच्युतः ॥ ३० ॥

त्वमालिङ्ग्याऽऽत्मसारूप्यंदत्त्वावैकुण्ठमन्दिरम् । तेनैवसहदेवेशोजगामत्रिदशैर्वृतः

नारद उवाच

यो विष्णुदासः स तु पुण्यशीलो यश्चोलभूपः स सुशीलनामा ।

एतावुभौ तत्समरूपभाजौ द्वाःस्थौ कृतौ तेन रमाप्रियेण ॥ ३२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे चोलविष्णुदासमुक्तिकथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

धर्मदत्तमोक्षप्राप्तिवर्णनम्

धर्मदत्त उवाच

जयश्च विजयश्चैव विष्णोर्द्वाःस्थौ श्रुतौ मया ।

किं नु ताभ्यां पुरा चीर्णं तस्मात्तद्रूपधारिणौ ॥ १ ॥

गणावूचतुः

तृणबिन्दोस्तु कन्यायां देवहूत्यांपुराद्विज !। कर्दमस्यतु द्वष्ट्यै वपुत्रौद्वौसम्बभूवतुः

ज्येष्ठो जयः कनिष्ठोऽभूद्विजयश्चैव नामतः ।

तस्यामेवाऽभवत्पश्चात्कपिलो योगधर्मवित् ॥ ३ ॥

जयश्च विजयश्चैव विष्णुभक्तिरतौ सदा । तौ तन्निष्ठेन्द्रियग्रामौ धर्मशीलौबभूवतुः

नित्यमष्टाक्षरीजाप्यौ विष्णुव्रतकरावुभौ ।

साक्षात्कारं ददौ विष्णुस्तयोर्नित्यार्चने सदा ॥ ५ ॥

मरुत्तेन कदाचित्तावाहूतौ यज्ञकर्मणि । जग्मतुर्यज्ञकुशलौ देवर्षिगणपूजितौ ॥ ६ ॥

जयस्तत्राऽभवद्ब्रह्मा याजकोविजयोऽभवत् । ततोयज्ञविधिंकृत्स्नंपरिपूर्णञ्चचक्रतुः

कलहोवाच

सोऽहं पञ्चशताब्दानि प्रेतदेहे स्थिता किल ।

क्षुत्तृड्भ्यां पीडिताऽऽविश्य शरीरं वणिजस्य च

आयाता दक्षिणं देशं कृष्णावेण्योश्च सङ्गमम् ॥ २४ ॥

तत्तारं संश्रिता यावत्तावत्तस्य शरीरतः । शिवविष्णुगणैर्दूरमपकृष्टाबलादहम् ॥

ततःक्षुत्क्षामयाद्दृष्टो मया हि त्वं द्विजोत्तम !। त्वद्धस्ततुलसीवारिसंसर्गगतपापया

तत्कृत्यं कुरु विप्रेन्द्र कथं मुक्तिमियाम्यहम् । योनित्रयाद्ग्रभवादस्माच्च प्रेतदेहतः ॥

इत्थं विश्चित्य कलहावचनं द्विजाग्र्यस्तत्कर्मपाकभयविस्मयदुःखयुक्तः ।

तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्तवृत्तिर्ध्यात्वा चिरं स वचनं निजगाद दुःखात् ॥२८

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे धर्मदत्तेतिहासकथनंनाम
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

धर्मदत्तोपाख्याने कलहामोक्षकथनम्

धर्मदत्त उवाच

विलयं यान्तिपापानितीर्थे दानव्रतादिभिः । प्रेतदेहस्थितायास्तेतेषुनैवाऽधिकारिता

तद्ग्लानिदर्शनादस्मात्खिन्नं च मम मानसम् ।

न वै निर्वृतिमायाति त्वामनुद्धृत्य दुःखिताम् ॥ २ ॥

तस्मादाजन्मचरितंयन्मयाकार्त्तिकव्रतम् ।.तत्पुण्यस्याऽर्द्धभागेन सद्गतिंत्वमवाप्नुहि

नारद उवाच

इत्युक्त्वा धर्मदत्तोऽसौ यावत्तामभ्यषेचयत् । तुलसीमिश्रतोयेनश्रावयन्द्वादशाक्षरम्

तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलदग्निशिखोपमा । दिव्यरूपधरा जाता लावण्येनयथेन्दिरा

ततः सादण्डवद्भूमौ प्रणनामाऽथतंद्विजम्। उवाच सातदावाक्यैर्हर्षगद्गदभाषिणी

कलहोवाच

त्वत्प्रसादाद्द्विजश्रेष्ठ! विमुक्ता निरयादहम्।
पापाब्धौ मज्जमानाया त्वं नौभूतोऽसि मे ध्रुवम्॥ ७॥

नारद उवाच

इत्थं वदन्तीसा विप्रं ददर्शाऽऽयातमम्बरात्। विमानंभास्वरं युक्तंविष्णुरूपधरैर्गणैः

अथ सा तद्विमानाऽग्र्यं द्वाःस्थाभ्यामवरोपिता।
पुण्यशीलसुशीलाभ्यामप्सरोगणसेविता॥ ६॥

तद्विमानं तदाऽपश्यद्धर्मदत्तः सविस्मयः। पपातदण्डवद्भूमौदृष्ट्वातौविष्णुरूपिणौ
पुण्यशीलसुशीलौचतमुत्थाप्याऽऽनतंद्विजम्। अभिनन्द्यततोवाक्यमूचतुर्धर्मसंयुतम्

गणावूचतुः

साधुसाधुद्विजश्रेष्ठ! यस्त्वं विष्णुरतःसदा। दीनाऽनुकम्पीसर्वज्ञोविष्णुव्रतपरायणः
आबाल्यात्वाच्छुभंत्वेतद्यत्त्वयाकार्त्तिकव्रतम्। कृतं तस्याऽर्द्धदानेनपुण्यंद्वैगुण्यमागमत्
जन्मान्तरशतोद्भूतं पापंतद्विलयं गतम्। स्नानैरेव गतं पापं यदस्याः पूर्वकर्मजम्॥
हरिजागरणाद्यैश्च विमानमिदमास्थिता। वैकुण्ठं नीयतेसाधोनानाभोगयुतात्वियम्
दीपदानभवैः पुण्यैस्तेजःसारूप्यमास्थिता। तुलसीपूजनाद्यैश्च कार्त्तिव्रतकैः शुभैः

विष्णुसान्निध्यगा जाता त्वया दत्तैः कृपानिधे!॥ १६॥
त्वमप्यस्य भवस्यान्ते भार्याभ्यां सह यास्यसि।
वैकुण्ठभुवनं विष्णोः सान्निध्यं च सरूपताम्॥ १७॥

तेधन्याःकृतकृत्यास्तेतेषांचसफलोभवः। यैर्भक्त्याऽऽराधितोविष्णुर्धर्मदत्तयथात्वया
सम्यगाराधितोविष्णुःकिंनयच्छतिदेहिनाम्। औत्तानचरणिर्येनध्रुवत्वेस्थापितःपुरा

यन्नामस्मरणादेव देहिनो यान्ति सद्गतिम्॥ २०॥

ग्राहग्रस्तोहिनागेन्द्रोयन्नामस्मरणात्पुरा। विमुक्तःसन्निधिप्राप्तोजातोऽयंजयसञ्ज्ञकः

यतस्त्वयाऽर्चितो विष्णुस्तत्सान्निध्यं प्रयास्यसि।

बहून्यब्दसहस्राणि भार्याद्वययुतः किल ॥ २२ ॥

ततः पुण्यक्षयेजातेयदायास्यसिभूतलम् । सूर्यवंशोद्भवोराजाविख्यातस्त्वंभविष्यसि

नाम्ना दशरथस्तत्र भार्याद्वययुतः पुनः ।

तृतीययाऽनया चाऽपि या ते पुण्यार्द्धभागिनी ॥ २४ ॥

तत्राऽपितवसान्निध्यंविष्णुर्यास्यतिभूतले । आत्मानंतवपुत्रत्वेप्रकल्प्याऽमरकार्यकृत्

तव जन्मव्रतादस्माद्विष्णुसन्तुष्टिकारकात् ।

न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि वै ॥ २६ ॥

धन्योऽसि विप्राग्र्य! यतस्त्वयैतद् व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः ।

यदर्धभागात्सफला मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम् ॥ २७॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे धर्मदत्तोपाख्याने
कलहामोक्षकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

चोलराजविष्णुदासब्राह्मणाख्यानवर्णनम्

नारद उवाच

इत्थं तद्वचनं श्रुत्वा धर्मदत्तः सविस्मयः । प्रणम्य दण्डवद्भूमौ वाक्यमेतदुवाच ह

धर्मदत्त उवाच

आराधयन्ति सर्वेऽपि विष्णुं भक्तार्तिनाशनम् ।

यज्ञैर्दानैर्व्रतैस्तीर्थैस्तपोभिश्च यथाविधि ॥ २ ॥

विष्णुप्रीतिकरं तेषां किञ्चित्सान्निध्यकारकम् ।

यत्कृत्वा तानि चीर्णानि सर्वाण्यपि भवन्ति हि ॥ ३ ॥

गणावूचतुः

साधु पृष्टं त्वयाविप्रशृणुष्वैकाग्रमानसः। सेतिहासकथांपुण्यांकथ्यमानांपुराभवाम्
काञ्चिपुर्यां पुराचोलश्चक्रवर्तीनृपोऽभवत्। यस्याख्ययैव तद्देशाश्चोलाइतिप्रथांगताः
यस्मिञ्छासतिभूचक्रं दरिद्रोवाऽपिदुःखितः। पापबुद्धिःसरुग्वाऽपिनैवकश्चिदभून्नरः
यस्याप्युन्नतयज्ञस्य ताम्रपर्ण्यास्तटावुभौ। सुवर्णयूपैःशोभाढ्यावास्तांचैत्ररथोपमौ
स कदाचिदगाद्राजा ह्यनन्तशयनं द्विज!। यत्राऽसौजगतांनाथोयोगनिद्रामुपाश्रितः
तत्र श्रीरमणं देवं सम्पूज्य विधिवन्नृपः। मणिमुक्ताफलैर्दिव्यैः स्वर्णपुष्पैश्च शोभनैः
प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपविष्टः स तत्र वै। तावद् ब्राह्मणमायातमपश्यद्देवसन्निधौ॥
देवार्चनार्थं पाणौ तुतुलस्युदकधारिणम्। स्वपुरीवासिनंतत्रविष्णुदासाह्वयं द्विजम्
स तत्राभ्येत्यविप्रर्षिर्देवदेवमपूजयत्। विष्णुसूक्तेन संस्नाप्य तुलसीमञ्जरीदलैः॥१२

तुलसीपूजया तस्य रत्नपूजां पुरा कृताम्।
आच्छादितां समालोक्य राजा क्रुद्धोऽब्रवीदिदम्॥ १३॥

चोल उवाच

माणिक्यस्वर्णपूजाऽत्र शोभाढ्या या कृता मया।
विष्णुदास! कथं सेयमाच्छन्ना तुलसीदलैः॥ १४॥
विष्णुभक्तिं न जानासि वराकोऽसि मतो मम।
यस्त्विमामतिशोभाढ्यां पूजामाच्छादयस्यहो॥ १५॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा सक्रोधः स द्विजोत्तमः।
राज्ञो गौरवमुल्लङ्घ्य जगाद वचनं तदा॥ १६॥

विष्णुदास उवाच

राजन्भक्तिं न जानासि गर्वितोऽसि नृपश्रिया।
कियद्विष्णुव्रतं पूर्वं त्वया चीर्णं वदस्व तत्॥ १७॥

गणावूचतुः

तद्ब्राह्मणवचः श्रुत्वा प्रहस्य स नृपोत्तमः। विष्णुदासं तदागर्वादुवाचवचनंद्विजम्

राजोवाच

इत्थं चेद्वदसे विप्र! विष्णुभक्त्याऽतिगर्वितः ।
भक्तिस्ते कियती विष्णोर्दरिद्रस्याऽधनस्य च ॥ १६ ॥
यज्ञदानादिकं नैव विष्णोस्तुष्टिकरं कृतम् । नाऽपि देवालयंपूर्वंकृतंविप्रत्वयाक्वचित्
ईदृशस्याऽपि ते गर्व एषतिष्ठतिभक्तितः । तच्छृण्वन्तुवचोमेऽद्यसर्वेऽप्येतेद्विजातयः
साक्षात्कारमहं विष्णोरेष वाऽऽदौ गमिष्यति ।
पश्यन्तु सर्वेऽपि ततो भक्तिं ज्ञास्यन्ति चावयोः ॥ २२ ॥

गणावूचतुः

इत्युक्त्वा सनृपोऽगच्छन्निजराजगृहं तदा । आरभद्वैष्णवंसत्रंकृत्वाऽऽचार्यंतुमुद्गलम्
ऋषिसङ्घसमाजुष्टं वह्वन्नं वहुदक्षिणम् । यच्च व्रह्मकृतं पूर्वं गयाक्षेत्रे समृद्धिमत् ॥२४
विष्णुदासोऽपि तत्रैव तस्थौ देवालये व्रती ।
यथोक्तनियमान्कुर्वन्विष्णोस्तुष्टिकरान्सदा ॥ २५ ॥
माघोर्जयोर्व्रतं सम्यक्तुलसीवनपालनम् । एकादश्यां हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया
उपचारैः षोडशभिर्नृत्यगीतादिमङ्गलैः ।
नित्यं विष्णोस्तथा पूजां व्रतान्येतानि सोऽकरोत् ॥ २७ ॥
नित्यंसंस्मरणंविष्णोर्गच्छन्भुविस्वपन्नपि । सर्वभूतस्थितंविष्णुमपश्यत्समदर्शनः
माघकार्त्तिकयोर्नित्यं विशेषनियमानपि । अकरोद्विष्णुतुष्ट्यर्थंसोद्यापनविधिं तथा
एवं समाराधयतोः श्रियःपतिं तयोश्च चोलेश्वरविष्णुदासयोः ।
अगाद्धिकालः सुमहान्व्रतस्थयोस्तन्निष्ठसर्वेन्द्रियकर्मणोस्तदा ॥ ३० ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे
कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे चोलराजविष्णुदासब्राह्मण-
विवादकथनंनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

चोलनृपेणसहविष्णुदासब्राह्मणस्यमुक्तिवर्णनम्

नारद उवाच

कदाचिद्विष्णुदासोऽथ कृत्वा नित्यविधिं द्विज !।
सपाकमकरोत्तावदहरत्कोऽप्यलक्षितः ॥ १ ॥

तमदृष्ट्वाऽप्यसौ पाकं पुनर्नैवाऽकरोत्तदा । सायंकालार्चनस्याऽसौव्रतभङ्गभयाद्द्विजः
द्वितीयेऽह्नि पुनःपाकं कृत्वा यावत्सविष्णवे । उपहारार्पणंकर्तुं गतःकोऽप्यहरत्पुनः
एवं सप्तदिनं तस्य पाकं कोऽप्यहरन्नृप !। ततः सविस्मयश्चाथ मनस्येवमधारयत्
अहोनित्यं समभ्येत्य कः पाकं हरते मम । क्षेत्रसंन्यासिनःस्थानंनत्याज्यंममसर्वथा
पुनःपाकंविधायाऽत्रभुज्यतेयदिचेन्मया । सायंकालाऽर्चनं चैव परित्याज्यंकथंभवेत्
यदिपाकंविधायैव भोक्तव्यं तु मया न तत् । अनिवेद्यहरौसर्वं वैष्णवैर्नैव भुज्यते ॥

उपोषितोऽहं सप्ताऽहं तिष्ठाम्यत्र व्रतस्थितः
अद्य संरक्षणं सम्यक्पाकस्याऽत्र करोम्यहम ॥ ८ ॥
इति पाकं विधायाऽसौ तत्रैवाऽलक्षितः स्थितः ।
तावद्ददर्श चण्डालं पाकान्नहरणे स्थितम् ॥ ९ ॥
क्षुत्क्षामं दीनवदनमस्थिचर्माऽवशेषितम् ।
तमालोक्य द्विजाग्र्योऽभूत्कृपयाऽन्वितमानसः॥ १० ॥

विलोक्याऽन्नहरं विप्रस्तिष्ठतिष्ठेत्यभाषत । कथमश्नासि तद्रूक्षं घृतमेतद्गृहाणभोः
इत्थं वदन्तं विप्राग्र्यमायान्तंस विलोक्य च । वेगादधावत्तद्भीत्यामूर्च्छितश्चपपातह
भीतंसंमूर्च्छितंदृष्ट्वाचण्डालंसद्विजाग्रणीः । वेगादभ्येत्यकृपयास्ववस्त्रान्तेनतंरवीजयत्
अथोत्थितंतमेवासौविष्णुदासोव्यलोकयत् । साक्षान्नारायणंदेवंशङ्खचक्रगदाधरम्
तं दृष्ट्वा सात्त्विकैर्भावैरावृतो द्विजसत्तमः । स्तोतुंचैवनमस्कर्तुंतदानाऽलम्बभूव सः

अथशक्रादयोदेवास्तत्रैवाभ्याययुस्तदा। गन्धर्वाप्सरसश्चाऽपिजगुश्चननृतुर्मुदा ॥१६
विमानशतसङ्कीर्णं देवर्षिशतसङ्कुलम् । गीतवादित्रनिर्घोषं स्थानंतदभवत्तदा ॥१७॥

ततो विष्णुः समालिङ्ग्य स्वभक्तं सात्त्विकव्रतम् ।
सारूप्यमात्मनो दत्त्वाऽनयद्वैकुण्ठमन्दिरम् ॥ १८ ॥

विमानवरसंस्थंतं गच्छन्तं विष्णुसन्निधिम् । दीक्षितश्चोलनृपतिर्विष्णुदासंददर्शसः
वैकुण्ठभुवनं यान्तं विष्णुदासंविलोक्यसः । स्वगुरुंमुद्गलंवेगादाहूयेत्थं वचोऽब्रवीत्

चोल उवाच

यत्स्पर्द्धया मयाचैवयज्ञादानादिकंकृतम् । सविष्णुरूपधृग्विप्रोयातिवैकुण्ठमन्दिरम्

दीक्षितेन मया सम्यक्सत्रेऽस्मिन्वैष्णवे त्वया ।
हुतमग्नौ कृता विप्रा दानाद्यैः पूर्णमानसाः ॥ २२ ॥

नैवाऽद्यापि समेदेवःप्रसन्नोजायतेध्रुवम् । विष्णुदासस्यभक्त्यैवसाक्षात्कारंददौहरिः

तस्माद्दानैश्च यज्ञैश्च नैव विष्णुः प्रसीदति ।
भक्तिरेव परं तस्य निदानं दर्शने विभोः ॥ २४ ॥

गणावूचतुः

इत्युक्त्वाभागिनेयंस्वमभ्यषिञ्चन्नृपासने । आबाल्याद्दीक्षितो यज्ञे ह्यपुत्रत्वमगाद्यतः
तस्मादद्याऽपि तद्देशेसदाराज्यांशभागिनः । स्वस्रेयाएवजायन्ते तत्कृतावधिवर्तिनः

यज्ञवाटं ततोऽभ्येत्य यज्ञकुण्डाग्रतः स्थितः ।
त्रिरुच्चैर्व्याजहाराऽऽशु विष्णुं संबोधयंस्तदा ॥ २७ ॥
विष्णो! भक्तिं स्थिरां देहि मनोवाक्कायकर्मभिः ।
इत्युक्त्वा सोऽपतद्वह्नौ सर्वेषामेव पश्यताम् ॥ २८ ॥
मुद्गलस्तु तदा क्रोधाच्छिखामुत्पाटयत्स्वकाम् ।
ततस्त्वद्याऽपि तद्गोत्रे मुद्गला विशिखा बभुः ॥ २९ ॥
तावदाविरभूद्विष्णुः कुण्डाग्नौ भक्तवत्सलः ।
समालिङ्ग्य विमानाग्र्यं समारोहयदच्युतः ॥ ३० ॥

तमालिङ्ग्याऽऽत्मसारूप्यंदत्त्वावैकुण्ठमन्दिरम् । तेनैवसहदेवेशोजगामत्रिदशैर्वृतः

नारद उवाच

यो विष्णुदासः स तु पुण्यशीलो यश्चोलभूपः स सुशीलनामा ।

एतावुभौ तत्समरूपभाजौ द्वाःस्थौ कृतौ तेन रमाप्रियेण ॥ ३२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे चोलविष्णुदासमुक्तिकथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

धर्मदत्तमोक्षप्राप्तिवर्णनम्

धर्मदत्त उवाच

जयश्च विजयश्चैव विष्णोर्द्वाःस्थौ श्रुतौ मया ।

किं नु ताभ्यां पुरा चीर्णं तस्मात्तद्रूपधारिणौ ॥ १ ॥

गणावूचतुः

तृणविन्दोस्तु कन्यायां देवहूत्यांपुराद्विज !। कर्दमस्यतु दृष्टयौ वपुत्रौद्वौसम्बभूवतुः

ज्येष्ठो जयः कनिष्ठोऽभूद्विजयश्चैव नामतः ।

तस्यामेवाऽभवत्पश्चात्कपिलो योगधर्मवित् ॥ ३ ॥

जयश्च विजयश्चैव विष्णुभक्तिरतौ सदा । तौ तन्निष्ठेन्द्रियग्रामौ धर्मशीलौवभूवतुः

नित्यमष्टाक्षरीजाप्यौ विष्णुव्रतकरावुभौ ।

साक्षात्कारं ददौ विष्णुस्तयोर्नित्यार्चने सदा ॥ ५ ॥

मरुत्तेन कदाचित्तावाहूतौ यज्ञकर्मणि । जग्मतुर्यज्ञकुशलौ देवर्षिगणपूजितौ ॥ ६ ॥

जयस्तत्राऽभवद्ब्रह्मा याजकोविजयोऽभवत् । ततोयज्ञविधिंकृत्स्नंपरिपूर्णंश्चचक्रतुः

मरुत्तोऽवभृथस्नातस्ताभ्यां वित्तं ददौ बहु ।
तत्समादाय तौ वित्तं जग्मतुः स्वाश्रमं प्रति ॥ ८ ॥
यजनाय पृथग्विष्णोस्तुष्ट्यर्थं तौततोमुनी । तद्धनंविभजन्तौहिपस्पर्धातेपरस्परम्
जयोऽब्रवीत्समो भागः क्रियतामितितत्रसः । विजयश्चाब्रवीन्नैतद्यल्लब्धंयेनतस्यतत्
ततोऽशपज्जयःक्रोधाद्विजयंलुब्धमानसम् । गृहीत्वानददास्येतत्तस्माद्ग्राहोभवेतितम्
विजयस्तस्य तं शापं श्रुत्वा सोऽप्यशपच्च तम् ।
मदभ्रान्तोऽशपस्त्वं मां तस्मान्मातङ्गतां व्रज ॥ १२ ॥
तत्तदाचख्यतुर्विष्णुं दृष्ट्वा नित्यार्चनेविभुम् । शापयोश्चनिवृत्तिंतौययाचातेरमापतिम्

जयविजयावूचतुः

भक्तावावांकथंदेवग्राहमातङ्गयोनिगौ । भविष्यावःकृपासिन्धोतच्छापोविनिवर्त्यताम्

श्रीभगवानुवाच

मद्भक्तयोर्वचोऽसत्यं न कदाचिद्भविष्यति । मयाऽपि नान्यथाकर्तुं शक्यते तत्कदाचन
प्रह्लादवचसास्तम्भेऽप्याविर्भूतो ह्यहं पुरा । तथाऽम्बरीषवाक्येनजातोगर्भे स्वयंकिल
तस्माद्युवामिमौ शापावनुभूय स्वयंकृतौ । लभेथांमत्पदंनित्यमित्युक्त्वाऽन्तर्दधेहरिः

गणावूचतुः

ततस्तौ ग्राहमातङ्गावभूतां गण्डकीतटे ।
जातिस्मरौ तु तद्योन्यामपि विष्णुव्रते स्थितौ ॥ १८ ॥
कदाचित्स गजःस्नातुंकार्त्तिकेगण्डकींगतः । तावज्जग्राहतंग्राहःसंस्मरञ्छापकारणम्
ग्राहग्रस्तो ह्यसौ नागः सस्मार श्रीपतिं तदा । तावदाविरभूद्विष्णुश्चक्रशङ्खगदाधरः
ततस्तौ ग्राहमातङ्गौ चक्रं क्षिप्त्वासमुद्धृतौ । दत्त्वैवनिजसारूप्यंवैकुण्ठमनयद्विभुः
ततः प्रभृति तत्स्थानं हरिक्षेत्रमितिस्मृतम् ।
चक्रसङ्घर्षणाद्यस्मिन्ग्रावाणोऽपि हि लाञ्छिताः ॥ २२ ॥
तावुभौ विश्रुतौ लोके जयश्च विजयस्तथा ।
नित्यं विष्णुप्रियौ द्वाःस्थौ पृष्टौ यौ हि त्वया द्विज ॥ २३ ॥

अतस्त्वमपि धर्मज्ञ! नित्यं विष्णुव्रते स्थितः।

त्यक्तमात्सर्यदम्भोऽपि भवस्त्वं समदर्शनः ॥ २४ ॥

तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नायी सदा भव। एकादशीव्रते तिष्ठ तुलसीवनपालकः ॥२५ ॥

ब्राह्मणानथ गाश्चाऽपि वैष्णवांश्चसदा भज। मसूरिकामारनालंवृन्ताकान्यपिखादमा

एवं त्वमपि देहान्ते तद्विष्णोः परमं पदम्। प्राप्नोषि धर्मदत्त! त्वं तद्भक्त्यैवयथावयम्

तावज्जन्म व्रतादस्माद्विष्णुसन्तुष्टिकारकात्।

न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि वै ॥ २८ ॥

धन्योऽसि विप्राग्र्य! यतस्त्वयैतद्व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः।

यदर्धभागाऽऽप्तफला मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम् ॥ २६ ॥

नारद उवाच

इत्थं तौ धर्मदत्तं तमुपदिश्य विमानगौ। तया कलहया सार्द्धं वैकुण्ठभवनंगतौ ॥

धर्मदत्तो ह्यसौ जातप्रत्ययस्तद्व्रते स्थितः।

देहाऽन्ते तद्विभोः स्थानं भार्याभ्यां संयुतोऽभ्ययात् ॥ ३१ ॥

इतिहासमिमं पुराभवं शृणुते श्रावयते च यः पुमान्।

हरिसन्निधिकारणीं मतिं लभतेऽसौ कृपया जगद्गुरोः ॥ ३२ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे धर्मदत्तमोक्षप्राप्ति-
कथनंनामाऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

ऊनत्रिंशोऽध्यायः

धनेश्वरयक्षजन्मप्राप्तिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा पृथुर्विस्मितमानसः। सम्पूज्यनारदं सम्यग्विससर्ज तदा प्रिये!॥
पुराऽवन्तीपुरे कश्चिद्विप्र आसीद्धनेश्वरः। ब्रह्मकर्मपरिभ्रष्टः पापकर्मा सुदुर्मतिः॥ २
देशाद्देशान्तरं गच्छन्क्रयविक्रयकारणात्। माहिष्मतींपुरीमागात्कदाचित्स धनेश्वरः
महिषेण कृता पूर्वं तस्मान्माहिष्मतीतिसा। यस्या वप्रगता भातिनर्मदापापनाशिनी
कार्त्तिकव्रतिनस्तत्र नानादेशाऽऽगतान्नरान्। स दृष्ट्वा विक्रयन्कुर्वन्मासमेकमुवास सः
स नित्यं नर्मदातीरे भ्रमन्विक्रयकारणात्। ददर्शब्राह्मणान्स्नानजपदेवार्चनेस्थितान्
कांश्चित्पुराणं पठतः कांश्चिच्चश्रवणे रतान्। नृत्यगायनवादित्रविष्णुश्रवणतत्परान्
उद्यापनविधौ सक्तान्कांश्चिज्जागरणे रतान्। विप्रगोपूजनरतान्दीपदानरतांस्तथा॥
ददर्श कौतुकाविष्टस्तत्र तत्र धनेश्वरः। नित्यं परिभ्रमंस्तत्र दर्शनस्पर्शभाषणात्

वैष्णवानां तथाविष्णोर्नामश्रावादि सोऽलभत्।
एवं मासं स्थितस्तस्या नर्मदायास्तटे द्विजः॥ १०॥

तावत्कृष्णाऽहिना दष्टो विह्वलःस पपातह। अथ देहपरित्यक्तं तम्बद्ध्वायमकिङ्कराः

यमाज्ञया कुम्भिपाके चिक्षिपुस्तं धनेश्वरम्।
यावत्क्षिप्तश्च तत्राऽसौ तावच्छीतलतां ययौ॥ १२॥

कुम्भीपाको यथावह्निः प्रह्लादक्षेपणात्पुरा। यमस्तु कौतुकं दृष्ट्वा पप्रच्छानीय तं ततः

तावदभ्यागतस्तत्र नारदः प्राह सत्वरम्।

नारद उवाच

नैवाऽयं निरयान्भोक्तुमर्हो ह्यरुणनन्दन!॥ १४॥

यस्मादन्तेऽस्य सञ्जातंकर्मयन्निरयापहम्। यत्पुण्यकर्मिणांकुर्याद्दर्शनस्पर्शभाषणम्

ततः षडंशमाप्नोति पुण्यस्य नियतं नरः। सख्यं तु तैस्तु संसर्गं कृतवान्वै धनेश्वरः

कार्त्तिकव्रतिभिर्मासं तेषां पुण्यांशभागयम् ॥ १७ ॥

तस्मादकामपुण्यो हि यक्षयोनिस्थितो ह्ययम्।

विलोक्य निरयान्सर्वान्पापभोगप्रदर्शकान् ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

इत्युक्त्वा गतवति नारदे स सौरिस्तद्वाक्यश्रवणाविबुद्धतत्सुकर्मा।

तं विप्रम्पुनरयतस्वकिङ्करेण तान्सर्वान्निरयगणान्प्रदर्शयिष्यन् ॥ १६ ॥

ततोधनेश्वरंनीत्वानिरयान्प्रेतपोऽब्रवीत् । दर्शयिष्यंस्तुतान्सर्वान्यमानुज्ञाकरस्तदा

प्रेतप उवाच

पश्येमान्निरयान्घोरान्धनेश्वर! महाभयान्। एषु पापकरा नित्यं पच्यन्ते यमकिङ्करैः

अकामात्पातकं शुष्कं कामादार्द्रमुदाहृतम्।

आर्द्रशुष्कादिभिः पापैर्द्विप्रकारानवस्थितान् ॥ २२ ॥

चतुराशीतिसंख्याकैःपृथग्भेदैरवस्थितान्। यत्प्रकीर्णमपाङ्क्तेयं मलिनीकरणं तथा

जातिभ्रंशकरं तद्वदुपपातक सञ्ज्ञकम्। अतिपापं महापापं सप्तधा पातकं स्मृतम् ॥

एभिः सप्तसु पच्यन्ते निरयेषु यथाक्रमम्। कार्त्तिकव्रतिभिर्यस्मात्संसर्गोह्यभवत्तव

तत्पुण्योपचयादेते निर्द्वृता निरयाः खलु।

श्रीकृष्ण उवाच

दर्शयित्वेति निरयान्प्रेतपस्तमथाऽहरत् ॥ २६ ॥

धनेश्वरं यक्षलोकं यक्षश्चाऽभूत्स तत्र हि। धनदस्याऽनुगःसोऽयं धनयक्षेतिविश्रुतः

सूत उवाच

इत्युक्त्वा वासुदेवोऽसौ सत्यभामामतिप्रियम्।

सायं सन्ध्याविधिं कर्तुं जगाम जननीगृहम् ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच

एवं प्रभावः खलु कार्त्तिकोऽयं मुक्तिप्रदो भुक्तिकरश्च यस्मात्।

प्रयान्त्यनेकार्जितपातकानि व्रतस्य सन्दर्शनतोऽपि मुक्तिम् ॥ २६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे धनेश्वरयक्षजन्मप्राप्तिवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

दत्तपुण्यपापफलप्राप्तिवर्णनपूर्वकंमासोपवासव्रतविधिकथनम्

नारद उवाच

अद्भुतोऽयंत्वयाप्रोक्तोमहिमाकार्त्तिकस्यतु । स्वस्यकर्तुमसामर्थ्यंकथमेतत्कृतम्भवेत्

ब्रह्मोवाच

नास्ति कर्तुं स्वसामर्थ्यमुपायात्प्राप्यते फलम् ।
द्रव्यं दत्त्वा ब्राह्मणाय गृह्णीयात्फलमुत्तमम् ॥ २ ॥
शिष्याद्वा भृत्यवर्गाद्वा स्त्रीभ्यो वाऽऽप्ताच्च कारयेत् ।
तस्मादपि फलं गृह्णन्फलभाग्जायते नरः ॥ ३ ॥

नारद उवाच

अदत्तान्यपि पुण्यानिप्राप्यन्तेकेनचित्क्वचित् । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुंकौतुकंममवर्तते

ब्रह्मोवाच

अदत्तान्यपि पुण्यानि लभन्ते पातकान्यपि । येनोपायेन तद्वच्मिश्रृणुष्वैकमनाद्विज!
सुकृतं वा दुष्कृतं वा कृतमेकेन यत्कृते । जायतेतस्य तद्राष्ट्रे त्रेतायां तु पुरो भवेत्
द्वापरे वंशमध्ये तु कलौ कर्तैवकेवलम् । अज्ञानाद्यत्कृतं कर्म बाल्येस्वप्नेतुतत्फलम्
अज्ञानाद्यच्चतारुण्येवाल्ये तस्य फलम्भवेत् । ज्ञानपूर्वंकृतं कर्म आजन्मान्तश्चतत्फलम्
षण्मासं पापिसङ्गेननरःपापीप्रजायते । पापिनां वा धर्मिणां वा संसर्गाद्दशमासिकम्

भोजनादेकपङ्क्तौचविंशांशःपुण्यपापयोः। एकासने द्वयोर्वासात्सहस्रांशेन लिप्यते
यो वै यस्यान्नमश्नाति स भुङ्क्ते तस्य किल्बिषम्।
जपादौ पापिसंसर्गात्षोडशांऽशो विनश्यति ॥ ११ ॥
परस्य स्तवनाद्यानादेकपात्रस्थभोजनात्। एकशय्याप्रावरणात्षष्ठांशःपुण्यपापयोः
पुरुषो हरते सर्वं भार्याया औरसस्य च। अर्द्धं शिष्याच्चतुर्थांशं पापम्पुण्यं तथैव च
भर्तुराज्ञाकरी नारी भर्तुरर्द्धं वृषं हरेत्। यद्धस्तपक्वं भुञ्जीयाद्दशांशं तदघं हरेत् ॥
वर्षाऽशनं तु यो दत्ते तदर्धांवस्यभागयम्। वर्षाशनार्द्धंपुण्यं तु भुङ्क्ते वर्षाशनीनरः
पुरोहितस्य षष्ठांशं पापं वा पुण्यमेव वा। यजमानो भुनक्त्येव तद्दशांशं पुरोहितः
उद्योगी चाऽनुमन्ता च यश्चोपकरणप्रदः। षष्ठांशं पुण्यपापानामुपद्रष्टा दशांशकम्
यद्धस्तात्कार्यते कर्म नान्नमस्मै प्रयच्छति।
विना भृतकशिष्याभ्यां षष्ठांशम्पुण्यमाहरेत् ॥ १८ ॥
व्यवहारात्तथाप्रीत्यानित्यंसम्भाषणादिभिः। दशांशम्पुण्यपापानां लभतेनात्रसंशयः
संसर्गपुण्ययोगेन एकदन्तो द्विजाधमः। नरकान्विविधान्दृष्ट्वा स्वर्गम्प्रापतदैव हि

नारद उवाच

ईदृशं कार्त्तिकव्रतमल्पायासं महत्फलम्। न कुर्वन्तिजनाःकेचित्किमर्थम्वै पितामह!

ब्रह्मोवाच

स्वसृष्टिवृद्धये वेधाधर्माऽधर्मौससर्ज ह। धर्ममेवाऽनुतिष्ठन्तः प्राप्नुवन्तिशुभाङ्गतिम्
अधर्ममनुतिष्ठन्तो यान्ति तेऽधोगतिंनराः। पुण्यकर्मफलंनाको नरकस्तद्विपर्ययः ॥
तयोः पालनकर्तारौ द्वावेव विधिनाकृतौ। शतक्रतुयमौ तौ च पुण्यपापानुसारिणौ
गुरुतल्पादयःपुत्राः कामस्यप्रथिताभुवि। क्रोधस्यपितृघाताद्यालोभस्य तनयाञ्छृणु
ब्रह्मस्वहरणाद्याश्च एते नरकनायकाः। कृता यमेन तैर्व्याप्ता मनुजा नहि कुर्वते ॥२६॥
व्रतादिधर्मकृत्यं यैस्तैर्मुक्तास्ते हि कुर्वते ॥ २७ ॥
श्रद्धा मेधा विघातिन्यौ वर्तते भुवि सर्वदा।
ताभ्यां व्याप्तस्तु मनुजः श्रीविष्णोः श्रवणादिकम् ॥ २८ ॥

न करोति सुदुर्मेधा येनाऽन्धं याति वै तमः । कृष्णेन सत्यभामायैयदुक्तं तद्वदामि ते
अध्यापनाद्याजनाद्वाऽप्येकपङ्क्त्यशनादपि । तुर्यांशं पुण्यपापानां परोक्षं लभते नरः
एकासनादेकयानान्निश्वासस्याङ्गसङ्गतः । षडंशं फलभागीस्यान्नियतम्पुण्यपापयोः
स्पर्शनाद्भाषणाद्वाऽपिपरस्यस्तवनादपि । दशांशम्पुण्यपापानांनित्यस्प्राप्नोतिमानवः
दर्शनश्रवणाभ्याञ्च मनोध्यानात्तथैव च । परस्य पुण्यपापानां शतांशं प्राप्नुयान्नरः
परस्य निन्दां पैशुन्यंधिक्कारञ्चकरोतियः । तत्कृतम्पातकम्प्राप्य स्वपुण्यंप्रददातिसः
कुर्वतःपुण्यकर्माणिसेवां यः कुरुते नरः । पत्नीभृतकशिष्येभ्योयदन्यःकोऽपिमानवः
तस्य सेवाऽनुरूपञ्च द्रव्यंकिञ्चिन्नदीयते । सोऽपि सेवानुरूपेणतत्पुण्यफलभाग्भवेत्
एकपङ्क्तिस्थितं यस्तु लङ्घयेत्परिवेषणम् । तत्पुण्यस्यषडंशञ्च लभेद्यस्तुविलङ्घितः

स्नानसन्ध्यादिकं कुर्वन्यः स्पृशेद्वाऽथभाषते ।
स कर्मपुण्यषष्ठांशं दद्यात्तस्मै विनिश्चितम् ॥ ३८ ॥

धर्मोद्देशेन यो द्रव्यमपरं याचते नरः । तत्पुण्यकर्मजं तस्य धनदस्त्वाप्नुयात्फलम् ॥
अपहृत्य परद्रव्यं पुण्यकर्म करोति यः । कर्मकृत्पापभाक्तत्र धनिनस्तद्भवं फलम् ॥
नाऽपकृत्य ऋणं यस्तु परस्य म्रियते नरः । धनी तत्पुण्यमादत्ते तद्धनस्याऽनुरूपतः
बुद्धिदाताऽनुमन्ताच यश्चोपकरणप्रदः । बलकृच्चाऽपि षष्ठांशं प्राप्नुयात्पुण्यपापयोः

प्रजाभ्यः पुण्यपापानां राजा षष्ठांशमुद्धरेत् ।
शिष्याद् गुरुः स्त्रियोभर्ता पिता पुत्रात्तथैव च ॥ ४३ ॥

स्वपतेरपि पुण्यस्ययोषिदर्धमवाप्नुयात् । चित्तस्याऽनुव्रताशश्वद्वर्तते तुष्टिकारिणी
परहस्तेन दानादि कुर्वन्तः पुण्यकर्मणः । विना भृतकपुत्राभ्यां कर्ता षष्ठांशमुद्धरेत्
वृत्तिदोवृत्तिसम्भोक्तुः पुण्यंषष्ठांशमुद्धरेत् । आत्मनोवापरस्याऽपियदिसेवांनकारयेत्

इत्थं ह्यदत्तान्यपि पुण्यपापान्यायान्ति नित्यम्परसञ्चितानि ।
कलौ त्वयम्वै नियमो न कार्यः कर्तैव भोक्ता खलु पुण्यपापयोः ॥ ४७ ॥
कलौ ज्ञानं दृढं नाऽस्ति कलौ गर्वेण सत्क्रिया ।
कलौ दम्भाऽन्वितो योगो नश्यत्येव न संशयः ॥ ४८ ॥

तपोनिष्ठः पुरा दम्भी सतीशुद्धप्रभावतः । पित्रोः पूजादर्शनेन चौर्जसेवी परंगतः

नारद उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामिव्रतानामुत्तमंव्रतम्। विधिंमासोपवासस्यफलञ्चाऽस्य यथोचितम्

ब्रह्मोवाच

साधु नारद! सर्वं ते यत्पृष्टं प्रब्रवेऽनघ । भक्त्या मतिमतांश्रेष्ठ ! शृणुष्व गदतो मम॥

सुराणां च यथा विष्णुस्तपताञ्चयथारविः । मेरुः शिखरिणांयद्वद्वैनतेयश्चपक्षिणाम्

श्रेष्ठं सर्वव्रतानांतुतद्वन्मासोपवासनम् । सर्वव्रतेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु चैव हि ॥

सर्वदानोद्भवं चैव यज्ञैश्च भूरिदक्षिणैः । न तत्पुण्यमवाप्नोति यन्मासपरिलङ्घनात् ॥

गुरोराज्ञांततोलब्ध्वाकुर्यान्मासोपवासनम् । अतिकृच्छ्रञ्चपाराकंकृत्वाचान्द्रायणंततः

मासोपवासंकुर्वीत ज्ञात्वादेहबलाबलम् । वानप्रस्थोयतिर्वाऽपि नारीवाविधवामुने !

मासोपवासं कुर्वीतगुरोर्विप्राज्ञया ततः । आश्विनस्याऽमले पक्षं एकादश्यामुपोषितः

व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु । अच्युतस्याऽऽलयेभक्त्यात्रिकालंपूजयेद्धरिम्

नैवेद्यधूपदीपाद्यैः पुष्पैर्नानाविधैरपि । मनसा कर्मणावाचा पूजयेद्‌ गरुडध्वजम् ॥

नरः स्वधर्मनिरतः सधवा च जितेन्द्रिया । नारी वाविधवासाध्वीवासुदेवंसमर्चयेत्

वस्त्वालोकनगन्धादिस्वादितं परिकीर्तितम् ।

अन्यस्य वर्जयेद्‌ ग्रासं ग्रासानां सम्प्रमोक्षणम्॥ ६१ ॥

गात्राभ्यङ्गंशिरोभ्यङ्गंताम्बूलंसविलोपनम् । व्रतस्थोवर्जयेत्सर्वंयच्चाऽन्यच्चनिराकृतम्

नव्रतस्थःस्पृशेत्कञ्चिद्विकर्मस्थंनचालपेत् । देवतायतनेतिष्ठन्गृहस्थश्चाऽऽचरेद्व्रतम्

कृत्वा मासोपवासं तु यथोक्तविधिना नरः । अन्यूनाधिकमेवं तुव्रतं त्रिंशद्दिनैरिति

ततोऽर्चयदेवपुण्यंद्वादश्यांगरुडध्वजम् । वस्त्रदानादिभिश्चैवभोजयित्वाद्विजोत्तमान्

दद्याच्च दक्षिणां तेभ्यः प्रणिपत्य क्षमापयेत् ।

विप्रान्क्षमापयित्वा तु विसृज्याऽभ्यर्च्य पूज्य च ॥ ६६ ॥

एवं मासोपवासान्ते वृत्वा विप्रांस्त्रयोदश । कारयेद्वैष्णवं यज्ञमेकादश्यामुपोषितः ॥

ततोऽनुभोजयेद्विप्रानमसत्कारपुरःसरम् ।

ताम्बूलवस्त्रयुग्मानि भोजनाऽऽच्छादनानि च ॥ ६८ ॥
योगपट्टानि सूत्राणि शय्यां सोपस्करां तथा ।
दत्त्वा चैव द्विजाग्रेभ्यः पूजयित्वा विसर्जयेत् ॥ ६९ ॥
विधिर्मासोपवासस्ययथावत्परिकीर्तितः । अतःपरंप्रवक्ष्यामिनवम्यादितिथौविधिम्
ऋषिभ्यो वालखिल्यैश्च प्रोक्तं तं शृणु नारद !॥ ७१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-खण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे दत्तपुण्यपापफलप्राप्ति-वर्णनपूर्वकंमासोपवासव्रतविधिकथनंनाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

कूष्माण्डनवमीतुलसीविवाहविधिवर्णनम्

बालखिल्या ऊचुः

कार्त्तिके शुक्लनवमी तत्राऽभूद्द्वापरं युगम् । पूर्वाऽपराह्णगाग्राह्याक्रमाद्दानोपवासयोः
अत्र कूष्माण्डको नाम हतो दैत्यस्तु विष्णुना ।
तद्रोमभिः समुद्भूता वल्ल्यः कूष्माण्डसम्भवाः ॥ २ ॥
तस्मात्कूष्माण्डदानेन फलमाप्नोति निश्चितम् ।
अस्यामेव नवम्यां तु कुर्यात्कृष्णोत्सवं नरः ॥ ३ ॥
स्वशाखोक्तेन विधिना तुलस्याः करपीडनम् । कन्यादानफलं तस्यजायतेनात्रसंशयः
कार्त्तिके शुक्लनवमीमवाप्य विजितेन्द्रियः । हरिं विधायसौवर्णं तुलस्यासहितंशुभम्
पूजयेद्विधिवद्भक्त्या व्रती तत्र दिनत्रयम् । एवंयथोक्तविधिना कुर्याद्वैवाहिकंविधिम्
ग्राह्यं त्रिरात्रमत्रैवनवम्याद्यनुरोधतः । मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या नवमी पूर्ववेधिता ॥
धात्र्यश्वत्थौ य एकत्र पालयित्वा समुद्वहेत् । ननश्यते तस्यपुण्यंकल्पकोटिशतैरपि

कनकस्यसुता पूर्वमेकादश्यां किशोरिका । चकारभक्तितःसायंतुलस्युद्वाहजंविधिम्
तेन वैधव्यदोषेण निर्मुक्ताऽऽसीत्सुलोचना ।
तस्मात्सायं प्रकर्तव्यस्तुलस्युद्वाहजो विधिः ॥ १० ॥
अवश्यमेव कर्तव्यः प्रतिवर्षं तुवैष्णवैः । विधितस्यप्रवक्ष्यामियथासाङ्गाक्रियाभवेत्
विष्णोस्तु प्रतिमां कुर्यात्पलस्य स्वर्णजां शुभाम् ।
तदर्द्धार्द्धं तदर्द्धार्द्धं यथाशक्त्या प्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥
प्राणप्रतिष्ठां कृत्वैव तुलसीविष्णुरूपयोः । ततउत्थापयेद्देवंपूर्वोक्तैश्च स्तवादिभिः
उपचारैः षोडशभिः पूजयेत्पुरुषोक्तिभिः । देशकालौ ततःस्मृत्वागणेशं तत्र पूजयेत्
पुण्याहंवाचयित्वाऽथनान्दीश्राद्धंसमाचरेत् । वेदवाद्यादिनिर्घोषैर्विष्णुमूर्तिंसमानयेत्
तुलसीनिकटे सा तु स्थाप्या चाऽन्तर्हिता पटैः ।
आगच्छ भगवन्देव! अर्चयिष्यामि केशव !॥ १६ ॥
तुभ्यं दास्यामि तुलसीं सर्वकामप्रदोभव । दद्यात्त्रिवारमर्घ्यञ्च पाद्यंविष्टरमेव च
तत आचमनीयञ्च त्रिरुक्त्वा च प्रदापयेत् । ततो दधिघृतं क्षीरंकांस्यपात्रपुटीकृतम्
मधुपर्कं गृहाणत्वं वासुदेव! नमोऽस्तुते । हरिद्रालेपनाभ्यङ्गकार्यं सर्वं विधाय च ॥
गोधूलिसमये पूज्यौ तुलसीकेशवौ पुनः । पृथक्पृथक्तथाकार्यौसम्मुखौमङ्गलंपठेत्
ईषदुद्दृश्ये भास्करे तु सङ्कल्पं तुसमुच्चरेत् । स्वगोत्रप्रवरानुक्त्वातथात्रिपुरुषादिकम्
अनादिमध्यनिधन! त्रैलोक्यप्रतिपालक !। इमां गृहाण तुलसीं विवाहविधिनेश्वर !
पार्वतीबीजसम्भूतां वृन्दाभस्मनि संस्थिताम् ।
अनादिमध्यनिधनां वल्लभां ते ददाम्यहम् ॥ २३ ॥
पयोघटैश्च सेवाभिःकन्यावद्वर्धितामया । त्वत्प्रियांतुलसींतुभ्यंददामित्वंगृहाणभोः
एवं दत्त्वा च तुलसीं पश्चात्तौ पूजयेत्ततः । रात्रौजागरणंकुर्याद्विवाहोत्सवपूर्वकम्
ततः प्रभातसमये तुलसीं विष्णुमर्चयेत् । वह्निसंस्थापनं कृत्वा द्वादशाक्षरविद्यया
पायसाऽऽज्यक्षौद्रतिलैर्जुहुयादष्टोत्तरंशतम् । ततःस्विष्टकृतंहुत्वादद्यात्पूर्णाहुतिं ततः
आचार्यञ्च समभ्यर्च्य होमशेषं समापयेत् ॥ २७ ॥

चतुरो वार्षिकान्मासान्नियमो येन यः कृतः ।

कथयित्वा द्विजेभ्यस्तत्तथाऽन्यत्परिपूरयेत् ॥ २८ ॥

इदं व्रतं मया देव! कृतं प्रीत्यै तव प्रभो !। न्यूनं सम्पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन

रेवतीतुर्यचरणे द्वादशीसंयुते नरः । नकुर्यात्पारणं कुर्वन्व्रतं निष्फलतां नयेत् ॥

ततो येषां पदार्थानांवर्जनं तु कृतं भवेत् । चातुर्मास्येऽथवाचोर्जेब्राह्मणेभ्यःसमर्पयेत्

ततः सर्वं समश्नीयाद्यद्यत्त्यक्तं व्रते स्थितम् ॥ ३१ ॥

दम्पतिभ्यां सहैवाऽत्र भोक्तव्यश्च द्विजैः सह ॥ ३२ ॥

ततो भुक्त्युत्तरं यानि गलितानि दलानि च ।

तानि भुक्त्वा तुलस्याश्च स्वयं पापैः प्रमुच्यते ॥ ३३ ॥

इक्षुदण्डं तथा धात्रीफलं कोलिफलं तथा ।

भुक्त्वा तु भोजनस्याऽन्ते तस्योच्छिष्टं विनश्यति ॥ ३४ ॥

एषु त्रिषु न भुक्तं चेदेकैकमपियेन तु । ज्ञेय उच्छिष्टआवर्षं नरोऽसौ नाऽत्र संशयः

ततः सायं पुनः पूज्याविक्षुदडैश्च शोभितैः । तुलसीवासुदेवौ च कृतकृत्यो भवेत्ततः

ततोविसर्जनं कृत्वा दत्त्वा दायादिकं हरेः । वैकुण्ठं गच्छभगवँस्तुलसीसहितःप्रभो

मत्कृतं पूजनं गृह्य सन्तुष्टो भव सर्वदा ॥ ३७ ॥

गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर !। यत्र ब्रह्मादयोदेवास्तत्रगच्छ जनार्दन !॥

एवं विसृज्य देवेशमाचार्याय प्रदापयेत् । मूर्त्यादिकंसर्वमेवकृतकृत्यो भवेन्नरः ॥

प्रतिवर्षं तु यः कुर्यात्तुलसीकरपीडनम् । भक्तिमान्धनधान्यैःसयुक्तोभवतिनिश्चितम्

इहलोके परत्राऽपि विपुलश्च यशोलभेत् ॥ ४० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे

कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे कूष्माण्डनवमीतुलसीविवाहविधि

वर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

कार्त्तिकेभीष्मपञ्चकव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

वालखिल्या ऊचुः

कार्त्तिकस्याऽमले पक्षे स्नात्वा सम्यग्यतव्रतः ।
एकादश्यां तु गृह्णीयाद् व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ॥ १ ॥
शरपञ्जरसुप्तेन भीष्मेण तु महात्मना । राजधर्मा मोक्षधर्मा दानधर्मास्ततः परम् ॥
कथिताः पाण्डुदायादैः कृष्णेनाऽपि श्रुतास्तदा ॥ २ ॥
ततः प्रीतेन मनसा वासुदेवेन भाषितम् ।
धन्यधन्योऽसि भीष्म त्वं धर्माः संश्राविताास्त्वया ॥ ३ ॥
एकादश्यां कार्त्तिकस्य याचितं च जलंत्वया । अर्जुनेनसमानीतंगाङ्गंवाणस्यवेगतः
तुष्टानितवगात्राणि तस्मादद्यदिनावधि । पूर्णान्तंसर्वलोकास्त्वांतर्पयन्त्वर्घ्यदानतः
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मम सन्तुष्टिकारकम् । एतद्व्रतं प्रकुर्वन्तुभीष्मपञ्चकसञ्ज्ञितम्
कार्त्तिकस्य व्रतं कृत्वा नकुर्याद्भीष्मपञ्चकम् । समग्रंकार्त्तिकव्रतंवृथातस्यभविष्यति
अशक्तश्चेन्नरो भूयादसमर्थश्च कार्त्तिके ।
भीष्मस्य पञ्चकं कृत्वा कार्त्तिकस्य फलं लभेत् ॥ ८ ॥
सत्यव्रताय शुचये गाङ्गेयाय महात्मने । भीष्मायैतद्ददाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे ॥९॥
सव्येनाऽनेन मन्त्रेण तर्पणं सार्ववर्णिकम् ॥ १० ॥
व्रताङ्गत्वात्पूर्णिमायां प्रदेयः पापपूरुषः । अपुत्रेण प्रकर्तव्यं सर्वथा भीष्मपञ्चकम् ॥
यः पुत्रार्थं व्रतं कुर्यात्सस्त्रीको भीष्मपञ्चकम् । प्रदत्वा पापपुरुषंवर्षमध्ये सुतं लभेत्
अवश्यमेवकर्तव्यंतस्माद्भीष्मस्यपञ्चकम् । विष्णुप्रीतिकरंप्रोक्तंमयाभीष्मस्यपञ्चकम्

सूत उवाच

शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे विशेषो भीष्मपञ्चके । कार्तिकेयायरुद्रेणपुराप्रोक्तःसविस्तरात्

ईश्वर उवाच

प्रवक्ष्यामि महापुण्यं व्रतं व्रतवतांवर !। भीष्मेणैतद्यतः प्राप्तं व्रतं पञ्चदिनात्मकम्
सकाशाद्वासुदेवस्यतेनोक्तंभीष्मपञ्चकम् । व्रतस्याऽस्यगुणान्वक्तुंकःशक्तःकेशवादृते
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु शृणुधर्मं पुरातनम् । वसिष्ठभृगुगर्गाद्यैश्चीर्णंकृतयुगादिषु ॥
अम्बरीषेण भोगाद्यैश्चीर्णं त्रेतायुगादिषु । ब्राह्मणैर्ब्रह्मचर्येण जपहोमक्रियादिभिः ॥
क्षत्रियैश्च तथा वैश्यैः सत्यशौचपरायणैः । दुष्करंसत्यहीनानामशक्यंबालचेतसाम्
दुष्करं भीष्ममित्याहुर्नशक्यं प्राकृतैर्नरैः । यस्मात्करोतिविप्रेन्द्र! तेनसर्वंकृतं भवेत्
व्रतं चैतन्महापुण्यं महापातकनाशनम् । अतो नरैः प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम्

कार्त्तिकस्याऽमले पक्षे स्नात्वा सम्यग्विधानतः ।
एकादश्यां तु गृह्णीयाद् व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ॥ २२ ॥

प्रातः स्नात्वा विशेषेण मध्याह्नेच तथा व्रती । नद्यांनिर्झरतोयेवासमालभ्यचगोमयम्
यवव्रीहितिलैःसम्यक्पितृन्सन्तर्पयेत्क्रमात् । स्नात्वामौनंनरःकृत्वाधौतवासादृढव्रतः
भीष्मायोदकदानञ्च अर्घ्यञ्चैवप्रयत्नतः । पूजा भीष्मस्य कर्तव्या दानं दद्यात्प्रयत्नतः
पञ्चरत्नं विशेषेण दत्वा विप्राययत्नतः । वासुदेवोऽपिसम्पूज्योलक्ष्मीयुक्तःसदाप्रभुः

पञ्चके पूजयित्वा तु कोटिजन्मानि तुष्यति ॥ २७ ॥

यत्किञ्चिद्ददते मर्त्यः पञ्चधातुप्रकल्पितम् । सम्वत्सरव्रतानां स लभते सकलंफलम्
कृत्वातूदकदानं तु तथाऽर्घ्यस्यचदापनम् । मन्त्रेणाऽनेन यःकुर्यान्मुक्तिभागीभवेन्नरः
वैयाघ्रपादगोत्राय साङ्कृत्यप्रवराय च । अनपत्याय भीष्माय उदकं भीष्मवर्मणे ॥
वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च । अर्घ्यं ददामि भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे ॥

इत्यर्घ्यमन्त्रः

अनेन विधिना यस्तु पञ्चकं तु समापयेत् । अश्वमेधसमं पुण्यं प्राप्नोत्यत्र न संशयः
पञ्चाऽहमपि कर्तव्यं नियमञ्च प्रयत्नतः । नियमेन विना यत्र न भाव्यं वरवर्णिना ॥
उत्तरायणहीनाय भीष्माय प्रददौ हरिः । उत्तरायणहीनेऽपि शुद्धलग्नं सुतोषितः ॥
ततः सम्पूजयेद्देवं सर्वपापहरं हरिम् । अनन्तरं प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम् ॥ ३५

स्नापयेतजलैर्भक्त्या मधुक्षीरघृतेन च। तथैव पञ्चगव्येन गन्धचन्दनवारिणा ॥ ३६ ॥
चन्दनेन सुगन्धेन कुङ्कुमेनाऽथ केशवम्। कर्पूरोशीरमिश्रेण लेपयेद्गरुडध्वजम् ॥ ३७
अर्चयेद्रुचिरैः पुष्पैर्गन्धधूपसमन्वितैः। गुग्गुलुं घृतसंयुक्तं दद्देत्कृष्णाय भक्तिमान् ॥
दीपकं तु दिवा रात्रौ दद्यात्पञ्चदिनानि तु। नैवेद्यं देवदेवस्य परमान्नं निवेदयेत् ॥
एवमभ्यर्चयेद्देवं संस्मृत्य चप्रणम्य च। ॐ नमो वासुदेवायेति जपेदष्टोत्तरं शतम्
जुहुयाच्च घृताऽभ्यक्तैस्तिलव्रीहियवादिभिः। षडक्षरेणमन्त्रेण स्वाहाकाराऽन्वितेनच

उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां प्रणम्य गरुडध्वजम्।
जपित्वा पूर्ववन्मन्त्रं क्षितिशायी भवेत्सदा ॥ ४२ ॥

सर्वमेतद्विधानं तु कार्यं पञ्च दिनानि तु। विशेषोऽत्रव्रतेह्यस्मिन्यदन्यूनं शृणुष्वतत्
प्रथमेऽह्नि हरेः पादौ पूजयेत्कमलैर्व्रती। द्वितीये बिल्वपत्रेण जानुदेशं समर्चयेत् ॥
ततोऽनुपूजयेच्छीर्षं मालत्या चक्रपाणिनः। कार्त्तिक्यांदेवदेवस्यभक्त्या तद्गतमानसः
अर्चित्वा तं हृषीकेशमेकादश्यां समासतः। निःप्राश्यगोमयंसम्यगेकादश्यामुपावसेत्
गोमूत्रं मन्त्रवद्भूमौ द्वादश्यां प्राशयेद्व्रती। क्षीरंचैवत्रयोदश्यांचतुर्दश्यांतथादधि
सम्प्राश्यकायशुद्ध्यर्थंलङ्घयित्वाचतुर्दिनम्। पञ्चमेदिवसेस्नात्वाविधिवत्पूज्यकेशवम्

भोजयेद्व्राह्मणान्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ ४८ ॥

पापबुद्धिं परित्यज्य ब्रह्मचर्येण धीमता। मद्यं मांसं परित्याज्यं मैथुनं पापकारणम्
शाकाहारेण मुन्यन्नैः कृष्णार्चनपरो नरः। ततो नक्तं समश्नीयात्पञ्चगव्यपुरःसरम्

एवं सम्यक्समाप्यं स्याद्यथोक्तं फलमाप्नुयात् ॥ ५१ ॥
मद्यपो यः पिबेन्मद्यं जन्मनो मरणाऽन्तिकम्।
एतद्भीष्मव्रतं कृत्वा प्राप्नोति परमस्पदम् ॥ ५२ ॥

स्त्रीभिर्वाभर्तृवाक्येनकर्तव्यंधर्मवर्धनम्। विधवाभिश्चकर्तव्यंमोक्षसौख्याऽतिवृद्धये
अयोध्यायाम्पुरा कश्चिदतिथिर्नाम वै नृपः। वसिष्ठवचनात्कृत्वा व्रतमेतत्सुदुर्लभम्

भुक्त्वेह निखिलान्भोगानन्ते विष्णुपुरं ययौ ॥ ५४ ॥

इत्थं कुर्याद्व्रतं नित्यं पञ्चकर्मा[illegible] वा पुनः

पयोमूलफलाऽऽहारैर्हविष्यैर्व्रततत्परः ॥ ५५ ॥
पौर्णमासीदिने प्राप्ते पूजां कृत्वा तु पूर्ववत् ।
ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या गाश्च दद्यात्सवत्सकाम् ॥ ५६ ॥
यद्भीष्मपञ्चकमिति प्रथितम्पृथिव्यामेकादशीप्रभृति पञ्चदशीनिरुद्धम् ।
उक्तं न भोजनपरस्य तदा निषेधस्तस्मिन्व्रते शुभफलं प्रददाति विष्णुः ॥५७॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे-कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे भीष्मपञ्चकव्रतमाहात्म्यवर्णनंनाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

प्रबोधिन्येकादश्यांसमुत्सवोद्वादशीतिथिकृत्यवर्णनञ्च

ईश्वर उवाच

प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं पापघ्नंपुण्यवर्धनम् । मुक्तिदंतत्त्ववुद्धीनां शृणुष्वसुरसत्तम
तावद्गर्जतिसेनानीर्गङ्गाभागीरथीक्षितौ । यावत्प्रयाति पापघ्नी कार्त्तिकेहरिबोधिनी
तावद्गर्जन्ति तीर्थानि आसमुद्रसरांसि वै ।
यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नाऽऽयाति कार्त्तिके ॥ ३ ॥
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्या यथाऽभवत् ॥
दुर्लभश्चैव दुष्प्राप्यं त्रैलोक्ये सचराचरे । तदपि प्रार्थितम्विप्र! ददाति प्रतिबोधिनी
ऐश्वर्यं सन्ततिं ज्ञानं राज्यञ्च सुखसम्पदः । ददात्युपोषिता विप्र हेलया हरिबोधिनी
मेरुमन्दरतुल्यानि पापान्युपार्जितानि च । एकेनैवोपवासेन दहते हरिबोधिनी ॥७॥
उपवासम्प्रबोधिन्यां यः करोति स्वभावतः ।
विधिना नरशार्दूल! यथोक्तं लभते फलम् ॥ ८ ॥

पूर्वजन्मसहस्रेषु पापं यत्समुपार्जितम् । जागरेण प्रबोधिन्यां दह्यते तुलराशिवत् ॥
शृणु षण्मुख! वक्ष्यामि जागरस्य च लक्षणम् । तस्य विज्ञानमात्रेणदुर्लभोनजनार्दनः
गीतम्वाद्यञ्च नृत्यञ्च पुराणपठनं तथा । धूपं दीपञ्च नैवेद्यं पुष्पगन्धाऽनुलेपनम् ॥

फलमर्घ्यं च श्रद्धा च दानमिन्द्रियसंयमम् ।
सत्याऽन्वितं विनिन्दं च मुदायुक्तं क्रियन्वितम् ॥ १२ ॥

साश्चर्यञ्चैव प्रोत्साहमालस्यादिविवर्जितम् । प्रदक्षिणादिसंयुक्तं नमस्कारपुरःसरम्
नीराजनसमायुक्तमनिर्विण्णेन चेतसा । यामेयामे महाभाग! कुर्वन्नीराजनं हरेः ॥१४
एतैर्गुणैः समायुक्तं कुर्याज्जागरणम्विभोः । एकाग्रमनसायस्तु न पुनर्जायते भुवि ॥

य एवं कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
जागरम्वासरे विष्णोर्लीयते परमात्मनि ॥ १६ ॥

पुरुषसूक्तेन यो नित्यंकार्त्तिकेऽथार्चयेद्धरिम् । वर्षकोटिसहस्राणि पूजितस्तेनकेशवः
यथोक्तेन विधानेन पञ्चरात्रोदितेन वै । कार्त्तिके त्वर्चयेन्नित्यं मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥
नमोनारायणायेति कार्त्तिकेयोऽर्चयेद्धरिम् । स मुक्तोनारकैर्दुःखैः पदंगच्छत्यनामयम्
हरेर्नामसहस्रञ्च गजराजस्य मोक्षणम् । कार्त्तिके पठते यस्तु पुनर्जन्म न विन्दति ॥
युगकोटिसहस्राणि मन्वन्तरशतानि च । द्वादश्यांकार्त्तिकेमासि जागरी वसतेदिवि

कुले तस्य च ये जाताः शतशोऽथ सहस्रशः ।
प्राप्नुवन्ति पदम्विष्णोस्तस्मात्कुर्वीत जागरम् ॥ २२ ॥

कार्त्तिके पश्चिमे यामे स्तवं गानंकरोति यः । श्वेतद्वीपे तु वसते पितृभिःसहसुव्रत
नैवेद्यदानं हरये कार्त्तिके दिनसङ्क्षये । युगानि वसते स्वर्गे तावन्ति मुनिसत्तमाः ॥
अक्षयं मुनिशार्दूल! मालतीकमलार्चनम् । अर्चयेद्देवदेवेशं स याति परमम्पदम् ॥२५॥
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु कृत्वाह्येकादशींनरः । प्रातर्दत्त्वाशुभान्कुम्भान्सयातिममर्मान्दिरम्
अत्रैव तु प्रकर्तव्यः प्रबोधस्तु हरेः खग !। हतः शङ्खासुरो दैत्यो नभसः शुक्लपक्षके ॥

एकादश्यां ततो विष्णुश्चातुर्मास्ये प्रसुप्तवान् ।
क्षीराम्भोधौ जागृतोऽसावेकादश्यां तु कार्त्तिके ॥ २८ ॥

अतः प्रबोधनं कार्यमेकादश्यां तु वैष्णवैः । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द! उत्तिष्ठ गरुडध्वज
उत्तिष्ठ कमलाकान्त! त्रैलोक्यं मङ्गलं कुरु ॥ २६ ॥
इत्युक्त्वा शङ्खभेर्यादि प्रातःकाले तु वादयेत् । वीणावेणुमृदङ्गादिनृत्यगीतादिकारयेत्
उत्थापयित्वा देवशं पूजां तस्य विधाय च । सायंकाले प्रकर्तव्यस्तुलस्युद्वाहजो विधिः
सर्वदैकादशी पुण्या विशेषात्कार्त्तिकी स्मृता ।
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ ३२ ॥
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति सम्प्राप्ते हरिवासरे । स केवलमघं भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते हरिवासरे
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्यादेकादशीव्रतम् । न कुर्याद्यदि मोहेन उपवासं नराधमः
नरके नियतं वासः पितृभिः सह तस्य वै । सूतके मृतके वाऽपि नोपवासं त्यजेद्बुधः
दशमीवेधसंयुक्ता त्याज्या चैकादशीव्रते । गान्धार्याऽपि पुरा तस्यामुपवासः कृतो गुरु
तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां वेधजां त्यजेत् । एकादशीमुपवसेत्स्नानदानपुरःसरम्
रुक्माङ्गदोऽपि राजर्षिर्मोहिन्याः सङ्गमेन च । इहलोके सुखं भुक्त्वा चाऽन्ते विष्णुपुरं ययौ
द्वादशी पुण्यदा प्रोक्ता सर्वाऽघौघविनाशिनी ।
किं दानैः किं तपोभिश्च किमु पोष्यैर्व्रतैश्च किम् ॥३६ ॥
किमिष्टैश्चैव पुत्रैश्च द्वादशी येन सेविता । गङ्गायां चैव दुर्भिक्षे प्रत्यहं कोटिभोजनात्
यत्फलं तदवाप्नोति द्वादश्यामेकभोजनात् । यद्दत्तं चार्हते दानं द्वादश्यां तु सिते शुभे
सिक्थे सिक्थे च वैकस्य कति ब्राह्मणभोजनम् । तदहं नैव जानामि महिमानं हि सुव्रत
शालग्रामशिलादानं यः कुर्याद्द्वादशीदिने । सप्तद्वीपवतीं भूमिं गङ्गायाञ्च रविग्रहे
दत्त्वा यत्फलमाप्नोति तत्फलं लभते नरः ।
पञ्चामृतैस्तु यो विष्णुं भक्त्या संस्नापयेद्द्विज ! । स सर्वकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते
शुक्ले कार्त्तिकमासस्य द्वादश्यां परमोत्सवे । प्रातरारभ्य यः कुर्यात्स्नानदानादिकं तथा
स तु मोक्षमवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ४१ ॥
द्वादश्यां कार्त्तिके मासि स्नानसन्ध्यादिकर्म च ।
कृत्वा दामोदरं पूज्य भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ ४२ ॥

यस्तस्यां सूपनैवेद्यं न ददाति नराधमः। नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम
तस्मात्सूपस्य नैवेद्यं द्वादश्यांकार्त्तिके शुभे। दद्याद्भक्तियुतोब्रह्मंश्चान्यथानरकं व्रजेत्
यस्तस्यां दम्पतीनां तु भोजनं कुरुते नरः। न तस्यफलविश्रान्तिर्मयावक्तुंतुशक्यते

धात्रीच्छायां गतो यस्तु द्वादश्यां पूजयेद्धरिम्।
तत्रैव भोजनं यस्तु ब्राह्मणानां तु कारयेत्॥ ५०॥

स्वयञ्च तत्र भुङ्क्ते यः सूपभक्ष्यादिकं तथा। न तस्य पुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि
एवं प्रातर्विधायाऽथ पूजां दामोदरस्य हि। रात्रौ पुनः प्रकर्तव्यं पूजाकर्म हरेर्द्विज

तुलसीसन्निधौ कृत्वा पताकाध्वजशोभितम्।
पुष्पमालासमाकीर्णं नानारत्नोपशोभितम्॥ ५३॥

मुक्तादामभिराच्छन्नं कृत्वा मण्डपमुत्तमम्। पूजयेद्विष्णुमव्यग्रस्तद्गतैकाग्रमानसः
पञ्चरात्रोक्तमार्गेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः। नवनीतं दधिक्षीरं तथैव च घनं घृतम्
विविधैः खाद्यनैवेद्यैर्जलेन च सुगन्धिना। युक्तं निवेदयेद्विष्णोस्ताम्बूलंसलवङ्गकम्
पुष्पाणि चविचित्राणिसुगन्धीनिबहूनिच। प्रोक्षयित्वाचविधिवदर्पयित्वादलैःशुभैः
तुलस्याश्चापि धात्र्याश्चफलैश्चाऽपिप्रपूजयेत्। नीराजनंततःकृत्वामन्त्रपुष्पंसमर्पयेत्

अभिषेकं विना सर्वपूजां कृत्वा विधानतः।
विष्णोः पूजां समाप्याऽथ ब्राह्मणानां प्रपूजनम्॥ ५९॥
कुर्याद्भक्तियुतो विप्र! दद्याच्चैव फलादिकम्।
ताम्बूलं च ततो दत्त्वा दक्षिणां शक्तितोऽर्पयेत्॥ ६०॥

ततो वृद्धान्पितृन्मातृःपूजयित्वाविधानतः। ततःस्वयंस्वभार्याभिर्नैवेद्यंभक्षयेत्सुधीः
इत्येवं तुविधानेनयःकुर्याद्द्वादशीव्रतम्। नतस्यलोकाः क्षीयन्ते कल्पकोटिशतैरपि
पुत्रपौत्रैः परिवृतो भुक्त्वा भोगान्मनोहरान्। भोगान्ते च व्रजेन्मोक्षमतीतकुलसप्तके

तस्मान्नारद! माहात्म्यं द्वादश्याः कार्त्तिकस्य च।
न मया शक्यते वक्तुं किमन्यैर्मनुजैरपि॥ ६४॥

द्वादश्या ह्युत्तमं पुण्यं माहात्म्यंयःपठेन्नरः। शृणुयाद्वामुनिश्रेष्ठ! सयातिपरमांगतिम्

राजर्षिरम्बरीषोऽपि चकारैतद्व्रतंशुभम् । यथाविधि तपोनिष्ठस्तेन मोक्षमवाप्तवान्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे प्रबोधनोत्सवद्वादशी-
तिथिकृत्यवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

व्रतोद्यापनविधिकथनम्

नारद उवाच

व्रतानामपि सर्वेषांब्रह्मन्नुद्यापनंश्रुतम् । अभावेतूद्यापनस्यफलंनैवऽऽप्नुयात्क्वचित्
कृतव्रतफलाप्त्यर्थं कुर्यादुद्यापनम्बुधः । अन्यथा निष्फलं याति कृतं व्रतमनुत्तमम्॥
कार्त्तिकेऽपि कृतंदेवव्रतानामुत्तमंव्रतम् । न तस्योद्यापनाऽभावेव्रतोक्तफलमाप्नुयात्
तस्मात्कार्त्तिकमासस्यचोद्यापनविधिं प्रभो !। वदमे शिष्यवर्याय प्रपन्नायाऽनुवर्तिने

ब्रह्मोवाच

अथोर्जोद्यापनं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् । तच्छृणुष्व महाभक्त्या सविधानं समासतः
ऊर्जे शुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती । व्रतसम्पूरणार्थाय विष्णुप्रीत्यर्थहेतवे ॥ ६

तुलस्या उपरिष्टात्तु कुर्यान्मण्डपिकां शुभाम् ।
कदलीस्तम्भसंयुक्तां नानाधातुविचित्रिताम् ॥ ७ ॥

दीपमाला चतुर्दिक्षु कार्या तत्र सुशोभना । सुतोरणाश्चतुर्द्वारः पुष्पचामरशोभिताः
द्वारेषु द्वारपालांश्च पूजयेन्मृण्मयान्पृथक् । जयश्च विजयश्चैव चण्डश्चैव प्रचण्डकः
नन्दश्चैव सुनन्दश्च कुमुदः कुमुदाक्षकः । एतांश्चतुर्षु द्वारेषु पूजयेद्भक्तिसंयुतः ॥ १०
तुलसीमूलदेशेतुसर्वतोभद्रसञ्ज्ञितम् । चतुर्भिर्वर्णकैःसम्यक्छोभाढ्यं समलङ्कृतम्
तस्योपरिष्टात्कलशं पूर्णरत्नसमन्वितम् । तत्रसम्पूजयेद्देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १२

कौशेयपीतवसनं लक्ष्म्या युक्तं प्रपूजयेत् । इन्द्रादिलोकपालांश्च मण्डपे पूजयेद्व्रती
तस्यामुपवसेद्भक्त्या शान्तः प्रणतमानसः । रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमङ्गलैः
गीतं कुर्वन्ति ये भक्त्याजागरेचक्रपाणिनः । जन्मान्तरशतोद्भूतैस्तेमुक्ताःपापसञ्चयैः

ततस्तु पूर्णिमायां तु सपत्नीकान्द्विजोत्तमान् ।
त्रिंशन्मितानथैकम्वा ब्राह्मणांश्च निमन्त्रयेत् ॥ १६ ॥

प्रातःस्नानं ततः कृत्वादेवपूजांतथैवच । स्थण्डिलञ्चततःकृत्वासमाधायाऽग्निमत्रहि
अतो देवीति मन्त्रेण जुहुयात्तिलपायसम् । प्रीत्यर्थं देवदेवस्य देवानाञ्च पृथक्पृथक्
होमशेषंसमाप्याऽथब्राह्मणान्पूज्यभक्तितः । ब्राह्मणेभ्योयथाशक्त्याप्रदद्याद्दक्षिणांनरः
ततो गां कपिलां तत्र पूजयेद्विधिवद्व्रती । सवत्सांगांतथादद्याद्विप्रायचकुटुम्बिने
गुरुं व्रतोपदेष्टारं वस्त्राऽलङ्कारभूषणैः । सपत्नीकं समभ्यर्च्यतांश्च विप्रान्क्षमापयेत्
युष्मत्प्रसादाद्देवेशः प्रसन्नोऽस्तु सदा मम । व्रतादस्माच्च यत्पापं सप्तजन्मकृतं मया

तत्सर्वं नाशमायातु स्थिरा मे चाऽस्तु सन्ततिः ।
मनोरथास्तु सफलाः सन्तु भक्तिर्हरौ भवेत् ॥ २३ ॥

सतां समागमो भूयान्ममजन्मनिजन्मनि । इतिक्षमाप्यतान्विप्रान्प्रसाद्यचविसर्जयेत्
प्रतिमां तां गुरोर्दद्यात्सवस्त्रां मुनिपुङ्गव । ततःसुहृद्गुरुयुतःस्वयंभुञ्जीतभक्तिमान्

द्वादश्यां प्रतिबुद्धोऽसौ त्रयोदश्यां युतः सुरैः ।
दृष्टोऽर्च्चितश्चतुर्दश्यां तस्मात्पूज्यस्तिथाविह ॥ २६ ॥

पूजयेद्देवदेवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया । पराऽत्र पौर्णमास्यां तु यात्रा स्यात्पुष्करस्य तु
वरान्दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपोऽभवत्ततः । तस्यां दत्तं हुतंजप्तंतदक्षय्यफलंभवेत्
कार्त्तिके मासि कर्तव्यो विधिरेषोहिनारद !। एवं यः कुरुतेसम्यक्कार्त्तिकस्यव्रतंनरः
यत्फलं तदवाप्नोति व्रतंकृत्वातुकार्त्तिके । तेधन्यास्तेसदापूज्यास्तेषांवैसफलोदयः

विष्णुभक्तिरता ये स्युः कार्त्तिके व्रतचारिणः ।
देहस्थितानि पापानि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ ३१ ॥

क यामोऽद्य भवत्येष यदुर्जव्रतकृन्नरः । इतिसर्वाणि पापानि रटन्तीह पुनःपुनः ॥३२

तस्मात्कार्त्तिकमासस्य सदृशं नहि विद्यते । सर्वपापस्य दहने अग्नेः सदृशउच्यते
ऊर्जोद्यापनमाहात्म्यं शृणुयाच्छ्रद्धयाऽन्वितः ।
श्रावयेद्वा पुमान्यस्तु विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ३४ ॥

नारद उवाच

ऊर्जे व्रतोद्यापनाद्वावशक्तः सिद्धिभाक्कथम् । कथंविमुच्यतेजन्तुर्दुःखसंसारसागरात्

ब्रह्मोवाच

शृणुयादूर्जमाहात्म्यं नियमेन शुचिः पुमान् । उद्यापनफलम्प्राप्य विष्णुलोके ःसेचसः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्रयां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे
कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे व्रतोद्यापनविधिकथनंनाम
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

वैकुण्ठचतुर्दशीत्रिपुरीपूर्णिमाविधानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

वैकुण्ठाख्यचतुर्दश्यामाहात्म्यंतेवदाम्यहम् । बालखिल्यैपुराःप्रोक्तंसंक्षेपेणशृणुष्वतत्

वालखिल्या ऊचुः

कार्त्तिकस्य सिते पक्षेचतुर्दश्यांसमागमत् । वैकुण्ठेशस्तु वैकुण्ठाद्वाराणस्यांकृतेयुगे
रात्र्यां तुर्यांशशेषायां स्नात्वाऽसौ मणिकर्णिके ।
गृहीत्वा हेमपद्मानां सहस्रम्वै ततोऽव्रजत् ॥ ३ ॥

अतिभक्त्या पूजयितुं शिवया सहितंशिवम् । विधाय पूजां वैश्वेशींततःपद्मैरपूजयत्
सहस्रसङ्ख्यां कृत्वादावेकनाम्ना ततः परम् । आरब्धां पूजनं तेन शिवस्तद्भक्तिमैक्षत

एकं पद्मं पद्ममध्यान्निलीयाऽऽत्तं हरेण तु । ततः पूजितवान्विष्णुरेकोनंकमलंत्वभूत्
इतस्ततस्तेन दृष्टं पद्मं तिष्ठति न क्वचित् । कमलेषुभ्रमो जातोऽथवा नामसु मे भ्रमः
क्षणं विचार्य स हरिर्न ज्ञेनामभ्रमोऽभवत् । पद्मे चैव भ्रमो जातो विचार्यैवं पुनः पुनः
सहस्रपद्मसङ्कल्पः पूजार्थन्तु कृतो मया । अर्च्यः कथं महादेव एकोनकमलैर्मया ॥६॥
यद्यानेतुंगमिष्यामि भङ्गःस्यादासनस्य तु । अतःपरंकिंविधेयंचिन्तोद्विग्नोहरिस्तदा
एकः प्रकार उत्पन्नोहृदयेऽस्यमुनीश्वराः ॥ पुण्डरीकाक्षइत्येवं मां वदन्ति मुनीश्वराः
नेत्रं मे पद्मसदृशं पद्मार्थे त्वर्पयाम्यहम् । इति निश्चित्य मनसा दत्त्वा तर्जनिकां सतु
नेत्रमध्यात्तदुत्पाट्य महादेवस्तु पूजितः । ततो महेश्वरस्तुष्टो वाक्यमेतदुवाच ह ॥

महादेव उवाच

त्वत्समो नास्ति मद्भक्तस्त्रैलोक्ये सचराचरे ।
राज्यं दत्तं त्रिलोक्यास्ते भव त्वं लोकपालकः ॥ १४ ॥

अन्यं वरय भद्रं ते वरं यन्मनसेप्सितम् । अवश्यमेव दास्यामिनात्रकार्या विचारणा

मद्भक्तिं तु समालम्ब्य ये द्विषन्ति जनार्दनम् ।
ते मद्द्वेष्या नरा विष्णो व्रजेयुर्नरकं ध्रुवम् ॥ १६ ॥

विष्णुरुवाच

त्रैलोक्यरक्षाकरणं ममादिष्टं महेश्वर । दुर्मदाश्च महासत्त्वा दैत्याः मार्याः कथं मया ॥

शिव उवाच

एतत्सुदर्शनं चक्रं महादैत्यनिकृन्तनम् । गृहाण भगवन्विष्णो मयातुभ्यं निवेदितम्
अनेन सर्वदैत्यानां भगवन्कदनं कुरु । एवं चक्रं हरेर्दत्त्वा ततो वचनमब्रवीत् ॥१९॥

शिव उवाच

वर्षे च हेमलम्बाख्ये मासे श्रीमति कार्त्तिके । शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामरुणाभ्युदयम्प्रति
महादेवतिथौ ब्राह्मे मुहूर्ते मणिकर्णिके । स्नात्वा वैश्वेश्वरं लिङ्गं वैकुण्ठादेत्यपूजितम्
सहस्रकमलैस्तस्माद्भविष्यतिममप्रिया । विख्याता सर्वलोकेषुवैकुण्ठाख्याचतुर्दशी
अन्यं वरं प्रयच्छामि शृणुविष्णोवचोमम । पूर्वरात्रेषु ते पूजा कर्तव्यासर्वजातिभिः

उपवासं दिवाकुर्यात्सायंकाले तवार्चनम् । पश्चान्ममार्चनंकार्यमन्यथानिष्फलम्भवेत्
ग्राह्या तु हरिपूजायां रात्रिव्याप्ता चतुर्दशी । अरुणोदयवेलायां शिवपूजां समाचरेत्
सहस्रकमलैर्विष्णुरादौ यैः पूजितोनरैः । पश्चाच्छिवः पूजितश्चेज्जीवन्मुक्तास्तएवहि

सायं स्नात्वा पञ्चनदे बिन्दुमाधवमर्चयेत् ।

स्नात्वा यो विष्णुकाञ्च्याम्वाऽनन्तसेनं समर्चयेत् ॥ २७ ॥

रुद्रकाञ्च्यां ततः स्नात्वाप्रणवेशंसमर्चयेत् । आदौस्नात्वा वह्नितीर्थेयजेन्नारायणंततः
रेतोदके ततः स्नात्वा केदारेशंसमर्चयेत् । आदौ स्नात्वासूर्यपुत्र्यांवेणीमाधवमर्चयेत्

जाह्नव्याञ्च ततः स्नात्वा सङ्गमेशं प्रपूजयेत् ।

सर्वाः श्रियस्तस्य वश्याः सत्यम्विष्णो! मयोदितम् ॥ ३० ॥

एवं तस्मै वरान्दत्त्वा ह्यन्तर्धानं ययौ शिवः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूज्यौहरिहरावुभौ
कलौदशसहस्राणि विष्णुस्त्यजतिमेदिनीम् । तदर्द्धं जाह्नवीतोयं तदर्द्धं ग्रामदेवताः
कार्त्तिक्यां पूर्णिमायांतुकुर्यात्त्रैपुरमुत्सवम् । दीपोदेयोऽवश्यमेवसायंकालेशिवालये
त्रिपुरोनामदैत्येन्द्रः प्रयागे तप आस्थितः । तपसा तस्य सन्तुष्टो ददौ ब्रह्मावरंपरम्

देवासुरमनुष्येभ्यो न ते मृत्युर्भविष्यति ।

इति लब्धवरो दैत्यो विश्वकर्मविनिर्मितम् ॥ ३५ ॥

त्रिपुराख्यं विमानं तमारुह्य भुवनत्रयम् । यदा वै पीडयामास तदा देवैः स्तुतो हरः
त्रिपुरं घातयामास बाणेनैकेन शत्रुहा । कार्त्तिक्यां पूर्णिमायां तु सर्वेदेवाःप्रतुष्टुवुः
तस्मिन्दिने सर्वदेवैर्दीपा दत्ता हराय च । सर्वथैव प्रदेयाश्च दीपास्तु हरतुष्टये ॥ ३८
विंशतिः सप्तशतकाः सहिता दीपवर्तयः । ददेद्दीपं पूर्णिमायां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
पौर्णमास्यां तु सन्ध्यायां कर्तव्यस्त्रिपुरोत्सवः । दद्यादनेनमन्त्रेणप्रदीपांश्चसुरालये

कीटाः पतङ्गा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः ।

दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्मभागिनो भवन्तु नित्यं श्वपचा हि विप्राः ॥ ४१ ॥

कार्यस्तस्मात्पौर्णमास्यां त्रिपुराय महोत्सवः ।

कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कुर्यात्स्वामिदर्शनम् ॥ ४३ ॥

सप्तजन्म भवेद्विप्रोधनाढ्यो वेदपारगः। अत्र कृत्वा वृषोत्सर्गं नक्ताच्छैवपुरं व्रजेत्॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे वैकुण्ठचतुर्दशीत्रिपुरीपूर्णिमा-व्रतविधानकथनंनाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

पुष्करिणीसञ्ज्ञिकान्तिमतिथित्रयमाहात्म्यपूर्वकंपुराणश्रवणमहिमवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यास्तिस्रस्तिथयः पुण्या अन्तिके शुक्लपक्षके।
कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र! पूर्णिमान्ताः शुभावहाः॥ १॥

अतिपुष्करिणीसञ्ज्ञासर्वपापक्षयावहा। कार्त्तिके मासि सम्पूर्णंयोवैस्नानं करोतिह तिथिष्वेतासुसःस्नानात्पूर्णमेवफलं लभेत्। सर्वेवेदास्त्रयोदश्यांगत्वाजन्तून्पुनन्तिहि

चतुर्दश्यां सयज्ञाश्च देवा जन्तून्पुनन्ति हि।
पूर्णिमायां सुतीर्थानि विष्णुना संस्थितानि हि॥ ४॥

ब्रह्मघ्नान्वासुरापान्वासर्वाञ्जन्तून्पुनन्तिहि। उष्णोदकेनयःस्नायात्कार्त्तिक्यादिदिनत्रये रौरवं नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश। आमासनियमाशक्तः कुर्यादेतद्दिनत्रये॥ तेन पूर्णफलं प्राप्यमोदते विष्णुमन्दिरे। यो वै देवान्पितॄन्विष्णुंगुरुमुद्दिश्यमानवः न स्नानादिं करोत्यद्धा स याति नरकं ध्रुवम्। कुटुम्बभोजनंयस्तुगृहस्थस्तुदिनत्रये सर्वान्पितॄन्समुद्धृत्य स याति परमम्पदम्। गीतापाठं तु यः कुर्यादन्तिमेचदिनत्रये दिनेदिनेऽश्वमेधानां फलमेति न संशयः। सहस्रनामपठनं यः कुर्यात्तु दिनत्रये॥ १० न पापैर्लिप्यते काऽपिपद्मपत्रमिवाऽम्भसा। देवत्वंमनुजैःकैश्चित्कैश्चित्सिद्धत्वमेवच तस्यपुण्यफलं वक्तुं कः शक्तोदिविवाभुवि। योवैभागवतंशास्त्रंशृणोतिचदिनत्रयम्

कैश्चित्प्राप्तो ब्रह्मभावो दिनत्रयनिषेवणात् । ब्रह्मज्ञानेन वा मुक्तिः प्रयागमरणेन वा
अथ वा कार्त्तिके मासि दिनत्रयनिषेवणात् । कार्त्तिके हरिपूजां तु यः करोति दिनत्रये
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि । कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र! सर्वमन्त्यदिनत्रये
पुण्यं तत्राऽपि वैशेष्यं राकायां वर्तते ऽनघ । प्रातःकाले समुत्थाय शौचं स्नानादिकं चरेत्

समाप्य सर्वकर्माणि विष्णुपूजां समाचरेत् ।
उद्याने वा गृहे वाऽपि कार्त्तिक्यां विष्णुतत्परः ॥ १७ ॥

मण्डपं तत्र कुर्वीत कदलीस्तम्भमण्डितम् । चूतपल्लवसम्वीतमिक्षुदण्डैः सुमण्डितम्
चित्रवस्त्रैः स्वलङ्कृत्य तत्र देवं प्रपूजयेत् । चूतपल्लवपुष्पाद्यैः फलाद्यैः पूजयेद्धरिम्
शृणुयादूर्जमाहात्म्यं नियमेन शुचिः पुमान् । सम्पूर्णमथवाऽध्यायमेकश्लोकमथाऽपि वा
मुहूर्तं वाऽपि शृणुयात्कथां पुण्यां दिने दिने । यदि प्रतिदिनं श्रोतुमशक्तः स्यात्तु मानवः
पुण्यमासेऽथवा पुण्यतिथौ संश्रृणुयादपि । तेन पुण्यप्रभावेन पापान्मुक्तो भवेन्नरः ॥

पुराणज्ञः शुचिर्दक्षः शान्तो विगतमत्सरः ।
साधुः कारुणिको वाग्मी वदेत्पुण्यां कथां सुधीः ॥ २३ ॥
व्यासासनं समारूढो यदा पौराणिको भवेत् ।
आसमाप्तेः प्रसङ्गस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ॥ २४ ॥

न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृते । देशे न द्यूतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ २५
श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नाऽन्यकार्येषु लालसाः । वाग्यताः शुचयो दक्षाः श्रोतारः पुण्यभागिनः

अभक्ता ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाऽधमाः ।
तेषां पुण्यफलं नाऽस्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि ॥ २७ ॥

पौराणिकश्च मासान्ते पूजयेद्भक्तितत्परः । गन्धमाल्यैस्तथा वस्त्रैरलङ्कारैर्धनेन च ॥

शृण्वन्ति च कथां भक्त्या न दरिद्रा न पापिनः ॥ २६ ॥

कथायां कीर्त्यमानायां ये गच्छन्त्यन्यतो नराः । भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च सम्पदः
उच्चासनसमारूढो न नरः प्रणतो भवेत् । विश्ववृक्षस्तथा स्वापे वने चाऽजगरो भवेत्

कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये नराः ।

कोट्यब्दं नरकान्भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः ॥ ३२ ॥

ये श्रावयन्ति मनुजाः कथां पौराणिकीं शुभाम् । कल्पकोटिशतं साग्रं तिष्ठन्ति ब्रह्मणः पदे

आसनार्थे प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः ।

कम्बलाजिनवासांसि मञ्चं फालकमेव वा ॥ ३४ ॥

परिधानीयवस्त्राणि प्रयच्छन्ति च ये नराः । भूषणादि प्रयच्छन्ति वसेयुर्ब्रह्मसद्मनि

वाचके परितुष्टे तु तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः । अतः सन्तोषयेद्भक्त्या भक्तिश्रद्धान्वितः पुमान्

तस्य पुण्यफलं पूर्णं भवत्येव न संशयः ॥ ३६ ॥

यत्फलं सर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम् । सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फलं विन्दते नरः ॥

कलौ युगे विशेषेण पुराणश्रवणादृते । नास्ति धर्मः परः पुंसां नास्ति मुक्तिपथः परः

पुराणश्रवणाद्विष्णोर्नास्ति सङ्कीर्तनात्परम् ॥ ३८ ॥

य एतदूर्जमाहात्म्यं शृणुयाच्छ्रावयेदपि । स तीर्थराजबदरीगमनस्य फलं लभेत् ॥

सर्वरोगापहं सर्वपापनाशकरं शुभम् ॥ ३९ ॥

श्रुत्वा चैकपदे यो वै अगस्त्यागमने रतः । कन्यास्त्रस्तोर्विक्रयिणमुभयं तु विमोचयेत्

माहात्म्यमेतदाकर्ण्य पूजयेद्यस्तु पाठकम् ।

गोभूहिरण्यवस्त्रैश्च विष्णुतुल्यो यतो हि सः ॥ ४१ ॥

धर्मशास्त्रं पुराणञ्च वेदविद्यादिकञ्च यत् । पुस्तकं वाचकायैव दातव्यं धर्ममिच्छता

पुराणविद्यादातारो ह्यनन्तफलभोगिनः ॥ ४३ ॥

इदं यः पठते भक्त्या श्रुत्वा चैवाऽवधारयेत् । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति

न कस्याऽपीदमाख्येयं श्रद्धाहीनाय दुर्मतेः ॥ ४५ ॥

अपूजयित्वा गुरुमग्रवुद्ध्या धर्मप्रवक्तारमनन्यबुद्धिः ।

भुक्त्वा तु भोगान्नरकेषु चैव ततो हि जन्मान्तरदुःखभोगी ॥ ४६ ॥

तस्मात्सम्पूजयेद्भक्त्या गुरुं तत्त्वावबोधकम् ।

माहात्म्यस्य च लेशोऽयं तव चोक्तो मयाऽनघ ! ॥ ४७ ॥

न शक्यते हि सम्पूर्णं वक्तुं वर्षशतैरपि । पुरा कैलासशिखरे पार्वत्यप्राकवाञ्छितः

कार्त्तिकस्य तु माहात्म्यं यावद्वर्षशतं वदन्। तथापि नान्तमगमदशक्तो विरराम ह
पुत्रार्थीचधनार्थीचराज्यार्थीस्वफलंलभेत्। किमत्रबहुनोक्तेनमोक्षार्थीमोक्षमाप्नुयात्

सूत उवाच

इत्युक्तो ब्रह्मणाचैव नारदः प्रेमनिर्भरः। भूयोभूयो नमस्कृत्य ययौ याद्दच्छिकोमुनिः
कथितं शङ्करेणाऽपि पुत्राय हितकाम्यया। पितुस्तद्वाक्यमाकर्ण्य षण्मुखोहर्षनिर्भरः
कृष्णेन सत्यभामायैकार्त्तिकस्यचवैभवः। कथितस्तेनसन्तुष्टासत्याव्रतमथाऽकरोत्

ऋषयो वालखिल्येभ्यः श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम्।
ऊर्जव्रतपरा जातास्तस्मादूर्जोऽतिवल्लभः॥ ५४॥

अधीत्यसर्वशास्त्राणिपयःसारमिवोद्धृतम्। नाऽनेनसदृशंशास्त्रं विष्णुप्रीतिकरंशुभम्

व्यास उवाच

इत्युक्त्वातानृषीन्सर्वान्सूतोवैधर्मवित्तमः। विररामततस्तेतुपूजाञ्चचक्रुस्तदाऽस्यच
ते पुनः स्वाश्रमङ्गत्वा हृष्टास्ते परमर्षयः। यथा सूतेनोपदिष्टं तथा चक्रुर्व्रतं शुभम्॥
अनेनविधिनायेवैकुर्वन्तिकार्त्तिकव्रतम्। ते सर्वपापनिर्मुक्तागच्छन्तिविष्णुमन्दिरम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
कार्त्तिकमाससमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे पुष्करिणीसञ्ज्ञकान्तिमतिथित्रय-
माहात्म्यकथनपूर्वकंपुराणश्रवणमहिवर्णनंनाम
षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

समाप्तमिदंश्रीकार्त्तिकमासमाहात्म्यम्॥

——:०:——

* श्रीगणेशायनमः *

अथमार्गशीर्षमाहात्म्यारम्भः

प्रथमोऽध्यायः

गोपीकृतमार्गशीर्षस्नानकथनम्

सूत उवाच

देवकीनन्दनं कृष्णं जगदानन्दकारकम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं वन्दे माधवं भक्तवत्सलम् ॥
श्वेतद्वीपे सुखासीनं देवदेवं रमापतिम् । चतुर्वक्त्रो नमस्कृत्य पप्रच्छ पितरन्तदा ॥

ब्रह्मोवाच

हृषीकेश! जगद्धातः! पुण्यश्रवणकीर्तन !। पृष्टं यद्ब्रूहि देवेश! सर्वज्ञ सकलेश्वर! ॥३॥

मासानां मार्गशीर्षोऽहमित्युक्तं भवता पुरा ।
तस्य मासस्य माहात्म्यं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ४ ॥

को देवस्तस्यकिंदानंकथं स्नानं विधिश्च कः । पुरुषैस्तत्रकिंकार्यंभोक्तव्यंकिंरमापते!
वक्तव्यंकिंतथापूजाध्यानमन्त्रादिकञ्चयत् । तत्र यत्क्रियते कर्म तत्सर्वंब्रूहिमेऽच्युत

श्रीभगवानुवाच

साधुपृष्टं त्वया ब्रह्मन्सर्वलोकोपकारिणा । यस्मिन्कृतेकृतं सर्वमिष्टापूर्तादिकम्भवेत्
सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नो मार्गशीर्षे कृते सुत !॥८
तुलापुरुषदानाद्यैर्यत्फलं लभते नरः । तत्फलम्प्राप्यते पुत्र! माहात्म्यश्रवणात्किल ॥
यज्ञाध्ययनदानाद्यैः सर्वतीर्थावगाहनैः । सन्न्यासेन च योगेननाऽहंवश्योऽभवंनृणाम्

स्नानेन व्रतेन च पूजनेन ध्यानेन मौनेन जपादिभिश्च ।

वश्यो यथा मार्गशिरे च मासि तथा न चान्येषु च गुह्यमुक्तम् ॥ ११ ॥
अन्यैर्धर्मादिभिः कृत्वा गोपितं मार्गशीर्षकम् ।
मत्प्राप्तेः कारणं मत्वा देवैः स्वर्गनिवासिभिः ॥ १२ ॥
ये केचित्पुण्यकर्माणो मम भक्तिपरायणाः । तेषामवश्यं कर्तव्यो मार्गशीर्षोमदापनः
मार्गशीर्षं न कुर्वन्ति ये नराभारताऽजिरे । पापरूपाश्च ते ज्ञेयाःकलिकालविमोहिताः
अष्टस्वपि च मासेषु यत्फलं लभते नरः । तत्फलं प्राप्यते वत्स माघेमकरगे रवौ ॥
माघाच्छतगुणं पुण्यं वैशाखेमासिलभ्यते । तस्मात्सहस्रगुणितं तुलासंस्थेदिवाकरे
तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं वृश्चिकस्थे दिवाकरे ।
मार्गशीर्षोऽधिकस्तस्मात्सर्वदा च मम प्रियः ॥ १७ ॥
उषस्युत्थाय यो मर्त्यः स्नानं विधिवदाचरेत् ।
तुष्टोऽहं तस्य यच्छामि स्वात्मानमपि पुत्रक !॥ १८ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीदं शृणुपुत्र! कथानकम् । नन्दगोपोमहात्मावैख्यातोयोभूतलेऽभवत्
तस्य वै गोकुले रम्ये गोपकन्या सहस्रशः । तासांचित्तश्चमद्रूपे लग्नमासीत्पुराऽनघ
तासां बुद्धिर्मयादत्ता मार्गशीर्षाऽवगाहने । ततस्ताभिःकृतंस्नानं प्रातःकालेयथाविधि
पूजा कृता हविष्यान्नं भुक्तं ताभिः कृता नतिः ।
एवं कृतेन विधिना प्रसन्नोऽहं ततोऽनघ !॥ २२ ॥
दत्तोमयाऽऽत्माहितासांतुष्टेनवैवरोकिल । तस्मान्नरैस्तुकर्तव्योमार्गशीर्षोयथाविधि

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे गोपीकृतमार्गशार्षस्नानफलकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

त्रिपुण्ड्रधारणविधिकथनम्

ब्रह्मोवाच

त्वयोक्तो विधिसंयुक्तोमार्ग.शीर्षोमदापनः । को विधिस्तस्य देवेश सर्वमेब्रूहिकेशव

श्रीभगवानुवाच

रात्रावन्तेसमुत्थायउपस्पृश्ययथाविधि । नमस्कृत्यगुरुंस्वीयंसंस्मरेन्मामतन्द्रितः
सहस्रनामभिर्भक्त्याकीर्तयेद्वाग्यतःशुचिः । बहिर्ग्रामात्समुत्सृज्यमलमूत्रं यथाविधि
शौचं कृत्वा यथान्यायमाचम्य प्रयतःशुचिः । दन्तधावनपूर्वञ्च स्नानंकृत्वायथाविधि
आदाय तुलसीमूलमृदं तत्पत्रसंयुताम् । मूलमन्त्रेणाऽभिमन्त्र्यगायत्र्या वा महामते
मन्त्रेणैवाऽनुलिप्ताङ्गः स्नायादप्स्वघमर्षणम् । अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वाजलैःस्नानंविधायते
तीर्थंप्रकल्पयेद्विद्वान्मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रवित् । ॐ नमोनारायणायेतिमूलमन्त्रउदाहृतः
दर्भपाणिस्तु विधिना आचान्तः पुरतः शुचिः । चतुर्हस्तसमायुक्तंचतुरस्रं समन्ततः

प्रकल्प्याऽऽवाहयेद्गङ्गामेभिर्मन्त्रैर्विचक्षणः ॥ ८ ॥
विष्णुपादप्रसूताऽसि वैष्णवी विष्णुदेवता ।
त्राहि नस्त्वमघादस्मादाजन्ममरणान्तिकात् ॥ ९ ॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि !॥ १० ॥

नन्दिनीत्येव ते नामदेवेषु नलिनीति च । दक्षपुत्री च विहगा विश्वगायोगिनां मता
विद्याधरी सुप्रसन्ना तथालोकप्रसादिनी । क्षेमा चजाह्नवीचैवशान्ताशान्तिप्रदायिनी
एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले सदापठेत् । सदा सन्निहितातत्र गङ्गात्रिपथगामिनी
सप्तवाराभिजप्तेन करसम्पुटयोजितम् । मूर्ध्नाकृताञ्जलिर्भूयस्त्रिचतुः पञ्च सप्त वा ॥

स्नानं कुर्यान्मृदा तद्वदामन्त्र्याऽनुविधानतः ॥ १४ ॥

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे । मृत्तिके! हर मे पापंयन्मयादुष्कृतंकृतम्
उद्धृताऽसि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना । नमस्ते सर्वभूतानांप्रभवाऽरणि! सुव्रते!॥
एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य च विधानतः । उत्थायवाससीशुक्ले कूलेवैपरिधायच
आचम्य तर्पयेद्देवान्पितॄंश्चैवऋषींस्तथा । निष्पीड्यवस्त्रमाचम्यधौतवस्त्रेणवेष्टितः
विमलां मृत्तिकां रम्यामादाय द्विजसत्तम !।
मन्त्रेणैवाऽभिमन्त्र्याऽथ ललाटादिषु वैष्णवः ॥
धारयेदूर्ध्वपुण्ड्राणि यथासङ्ख्यमतन्द्रितः ॥ १९ ॥
ब्रह्मन्द्वादशपुण्ड्राणिब्राह्मणःसततंवहेत् । चत्वारिभूभृतांपुत्र! पुण्ड्राणिद्वेविशांस्मृते
एकं पुण्ड्रं च नारीणां शूद्राणां च विधीयते ॥ २० ॥
ललाट उदरेकैव वक्षो वै कण्ठकूबरे । कुक्ष्योर्बाह्वोः कर्णयोश्चपृष्ठे त्रिके च वै शिरः
तिलका द्वादश प्रोक्ता ब्राह्मणस्यसदाऽनघ !॥ २१ ॥
ललाटे हृदि बाह्वोश्च क्षात्रः पुण्ड्राणिधारयेत् । ललाटेहृदयेवैश्योभालेवैशूद्रयोषिताम्
ललाटे केशवं ध्यानेन्नारायणमाथोदरे । वक्षःस्थले माधवश्च गोविन्दं कण्ठकूबरे
विष्णुश्च दक्षिणे कुक्षौ बाहौ च मधुसूदनम् । त्रिविक्रमं कर्णमूलेवामनंवामपार्श्वके
श्रीधरं वामबाहौ च हृषीकेशश्च कर्णके । पृष्ठे तु पद्मनाभः स्यात्त्रिकेदामोदरंन्यसेत्
तत्प्रक्षालनतोयेन वासुदेवं तु मूर्धनि । एवं कार्यं ब्राह्मणस्यक्षत्त्रियस्योपधारयेत्
ललाटे केशवं ध्यायेद्धृदये माधवं तथा । बाह्वोश्च उभयोर्वत्स ! स्मरेद्वै मधुसूदनम्
क्षत्त्रियस्य विधिः प्रोक्तो वैश्यकृत्यंनिशामय । ललाटेकेशवंध्यायेद्धृदयेमाधवंतथा
योषिच्छूद्रौ स्मरेताश्च केशवं भालदेशके । अनेन विधिना कुर्यात्पुण्ड्राणि ममतुष्टये
श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरंतथा । श्रीकरंपीतमित्याहुःश्वेतंमोक्षकरं शुभम्
एकान्तिनोमहाभागाः सर्वलोकहितेरताः । साऽन्तरालंप्रकुर्वन्तिपुण्ड्रं हरिपदाकृतिम्
मध्ये छिद्रेणसंयुक्तमेतद्धिहरिमन्दिरम् । ऊर्ध्वंसौम्यमृजुं सूक्ष्मंसुपार्श्वंसुमनोहरम्
निरन्तरालं यः कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाधमः ।
स हि तत्र स्थितं लक्ष्म्या सह माञ्च व्यपोहति ॥ ३३ ॥

अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु ये कुर्वन्ति द्विजाधमाः । तैर्ललाटे शुनः पादं निक्षिप्तं वै न संशयः
तस्माच्छिद्रान्वितं पुण्ड्रं महच्छिद्रं शुभान्वितम् ।
धारयेद् ब्राह्मणो नित्यं हरिसालोक्यसिद्धये ॥ ३५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे त्रिपुण्ड्रधारणविधिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

गोपीचन्दनादिशङ्खचक्राद्यायुधधारणतत्तन्मुद्राविधिधारणप्रकारकथनम्

ब्रह्मोवाच

पुण्ड्रं कतिविधं कार्यं प्रब्रूहि मम केशव ! । पुण्ड्राणां श्रवणेऽतीव कौतुकं मम जायते

श्रीभगवानुवाच

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि पुण्ड्रञ्च त्रिविधं स्मृतम् । तुलसीमृत्स्नया सार्धं श्रीगोपीचन्दनेन च
हरिचन्दनतः कार्यं पुण्ड्रं तत्र विचक्षणैः । श्रीकृष्णतुलसीमूलमृदमादाय भक्तिमान्
धारयेदूर्ध्वपुण्ड्राणि हरिस्तत्र प्रसीदति ॥ ३ ॥
गोपीचन्दनमाहात्म्यं निबोध गदतो मम ॥ ४ ॥
यो मृत्तिकां द्वारवतीसमुद्भवां करे समादाय ललाटपट्टके ।
करोति नित्यं नर ऊर्ध्वपुण्ड्रं क्रियाफलं कोटिगुणं तदा भवेत् ॥ ५ ॥
क्रियाविहीनं यदि मन्त्रहीनं श्रद्धाविहीनं यदि कालवर्जितम् ।
कृत्वा ललाटे यदि गोपिचन्दनं प्राप्नोति तत्कर्मफलं सदाऽव्ययम् ॥ ६ ॥
गोपीचन्दनसम्भवं सुरुचिरं पुण्ड्रं ललाटे द्विजो,
नित्यं धारयते यदि प्रतिदिनं रात्रौ दिवा सर्वदा ।

यत्पुण्यं कुरुजाङ्गले रविग्रहे माघे प्रयागे तथा,
तत्प्राप्नोति ततोऽधिकं मम गृहे सन्तिष्ठते देववत् ॥ ७ ॥
यस्मिन्गृहे तिष्ठति गोपिचन्दनं भक्त्या ललाटे मनुजो बिभर्ति चेत् ।
तस्मिन्गृहेऽहं निवसामि सर्वदा श्रियान्वितः कंसनिहा चतुर्मुख !॥ ८ ॥
यो धारयेद्द्वारवतीसमुद्भवां मृत्स्नां पवित्रां कलिकल्मषापहाम् ।
नित्यं ललाटे मम मन्त्रसंयुतां यमं न पश्येदपि पापसंयुतः ॥ ९ ॥
यस्याऽन्तकाले सुत! गोपिचन्दनं बाह्वोर्ललाटे हृदि मस्तके च ।
प्रयाति लोके कमलापतेर्मम गोबालघाती यदि ब्रह्महा स्यात् ॥ १० ॥
ग्रहा न पीड्यन्ति न रक्षसां गणा यक्षःपिशाचोरगभूतनायकाः ।
ललाटपट्टे सुत! गोपिचन्दनं सन्तिष्ठते यस्य मम प्रभावात् ॥ ११ ॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रमृजुं सौम्यंललाटेयस्यदृश्यते । सचण्डालोऽपिशुद्धात्मा पूज्यएवनसंशयः
अस्नातो यः क्रियाः कुर्यादशुचिः पापसंयुतः ।
गोपीचन्दनसम्पर्कात्पूतो भवति तत्क्षणात् ॥ १३ ॥
अशुचिर्वाप्यनाचारो महापापं समाचरेत् । शुचिरेव भवेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्राऽङ्कितोनरः
मत्प्रियार्थं शुभार्थं वा रक्षार्थं चतुरानन !। मत्पूजाहोमके चैव सायं प्रातः समाहितः
मद्भक्तो धारयेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रं भवापहम् ॥ १५ ॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्यो म्रियतेयदिकुत्रचित् । श्वपाकोऽपिविमानस्थोममलोकेमहीयते
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्यो यदायस्याऽन्नमश्नुते । तदाविंशत्कुलंतस्यनरकादुद्धराम्यहम्
वीक्ष्याऽऽदर्शे जले वाऽपि यो विदध्यात्प्रयत्नतः ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं महाभाग! स याति परमां गतिम् ॥ १८ ॥
अनामिका शान्तिदोक्ता मध्यमाऽऽयुष्करी भवेत् ।
अङ्गुष्ठः पुष्टिदःप्रोक्तस्तर्जनी मोक्षदायनी ॥ १९ ॥
गोपीचन्दनखण्डं तु यो ददाति च वैष्णवे । कुलमष्टोत्तरं तेन तारितं वै भवेच्छतम्
यज्ञो दानंतपोहोमःस्वाध्यायःपितृतर्पणम् । व्यर्थंभवतितत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रविनाकृतम्

यच्छरीरं मनुष्याणामूर्ध्वपुण्ड्रविनाकृतम् । तन्मुखं नैव पश्यामिश्मशानसदृशंहितत्

ऊर्ध्वपुण्ड्रं प्रकुर्वीत मत्स्यकूर्मादिधारणम् ।

कुर्याद्विष्णुप्रसादार्थं महाविष्णोरतिप्रियम् ॥ २३ ॥

यत्पुनः कलिकाले तुमत्पुरीसंम्भवांमृदम् । मत्स्यकूर्माऽङ्कितंचिह्नंगृहीत्वाकुरुतेनरः

देहे तस्य प्रविष्टंमांजानीहित्रिदशोत्तम !। तस्यमेनान्तरंकिञ्चित्कर्तव्यंश्रेयइच्छता

ममावतारचिह्नानि दृश्यन्ते यस्य विग्रहे । मर्त्यो मर्त्यो न विज्ञेयः सनूनंमामकीतनुः

पापं सुकृतरूपं तु जायते तस्य देहिनः । ममाऽऽयुधानिदृश्यन्तेलिखितानिकलौयुगे

उभाभ्यामपि चिह्नाभ्यां योऽङ्कितो मत्स्यमुद्रया ।

कूर्मया मामकं तेजो विक्षिप्तं तस्य विग्रहे ॥ २८ ॥

शङ्खश्च पद्मश्च गदां रथाङ्गं मत्स्यश्च कूर्मं रचितं स्वदेहे ।

करोति नित्यं सुकृतस्य वृद्धिं पापक्षयं जन्मशतार्जितस्य ॥ २६ ॥

नारायणायुधैर्नित्यं चिह्नितो यस्यविग्रहः । पापकोटिप्रयुक्तस्य किं तस्यकुरुते यमः

शङ्खोद्धारे च यत्प्रोक्तं वसता कोटिजन्मभिः । तत्फलं लभते शङ्खेप्रत्यहंदक्षिणेभुजे

यत्फलं पुष्करे प्रोक्तं पुण्डरीकाक्षदर्शनात् । शङ्खोपरि कृते पद्मेतत्फलंकोटिसम्मितम्

वामे भुजे गदा यस्य लिखिता दृश्यतेकलौ । गदाधरो गयापुण्यंप्रत्यहंतस्ययच्छति

यच्चानन्दपुरे प्रोक्तं चक्रस्वामिसमीपतः । गदाचक्रेच लिखितेतत्फलं लिङ्गदर्शने ॥

ममायुधाऽङ्कितं देहं गोपीचन्दनमृत्स्नया । प्रयागादिषुतीर्थेषु स गत्वाकिंकरिष्यति

यदा यदा प्रपश्येत देहं शङ्खादिचिह्नितम् । तदातदा प्रसन्नोऽहं पापं तस्य दहामि वै

तिष्ठते यस्य देहे तु अहोरात्रं दिने दिने । शङ्खचक्रगदापद्मलिखितं स मदात्मकः ॥

नारायणायुधैर्युक्तं कृत्वाऽऽत्मानं कलौयुगे । यत्पुण्यं कर्म कुरुते मेरुतुल्यं न संशयः

शङ्खायुधाऽङ्कितो भक्त्या यः श्राद्धं कुरुते सुत !।

विधिहीनं तु सम्पूर्णं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ ३६ ॥

यथाऽग्निर्दहते काष्ठं वायुना प्रेषितोभृशम् । तथादह्यन्तिपापानि दृष्ट्वा म आयुधानिवै

ममनामाङ्कितांमुद्रामष्टाक्षरसमन्विताम् । शङ्खादिस्वायुधैर्युक्तांस्वर्णरौप्यमयीमपि

धत्ते भगवतो यस्तु कलिकाले विशेषतः । प्रह्लादस्य समो ज्ञेयो नान्यथामम वल्लभः
यस्य नारायणीमुद्रा देहं शङ्खादिचिह्नितम् । धात्रीफलैःकृतामालातुलसीकाष्ठसम्भवा
द्वादशाक्षरमन्त्रस्तु नियुक्तानि कलेवरे । आयुधानि च विप्रस्य मत्समःसचवैष्णवः
शङ्खाङ्कितततनुर्विप्रो भुङ्क्ते वै यस्य वेश्मनि । तदन्नं स्वयमश्नामिपितृभिःसहपुत्रक

कृष्णायुधाऽङ्कितं दृष्ट्वा सन्मानं न करोति यः ।
द्वादशाब्दार्जितम्पुण्यं बाष्कलेयाय गच्छति ॥ ४६ ॥

कृष्णायुधाऽङ्कितोयस्तुश्मशानेम्रियतेयदि । प्रयागेयागतिःप्रोक्तासागतिस्तस्यमानद

ममाऽऽयुधैः कलौ नित्यं मण्डितो यस्य विग्रहः ।
तत्राऽऽश्रमं प्रकुर्वन्ति विबुधा वासवादयः ॥ ४८ ॥

यः करोति च मे पूजां मम शस्त्राङ्कितो नरः । अपराधसहस्राणिनित्यंतस्यहराम्यहम्
कृत्वाकाष्ठमयंबिम्बंममशस्त्रैः सुचिह्नितम् । योवाअङ्कयते देह तत्समोनास्तिवैष्णवः
अष्टाक्षराऽङ्किता मुद्रा यस्य धातुमयीकरे । शङ्खपद्मादिभिर्युक्तापूज्यतेऽसौसुरासुरैः
धृता नारायणी मुद्रा प्रह्लादेन पुरा करे । विभीषणेन बलिना ध्रुवेण च शुकेन च ॥

मान्धात्रा ह्यम्बरीषेण मार्कण्डेयमुखैर्द्विजैः ॥ ५२ ॥

शङ्खादिचिह्नितैः शस्त्रैर्देहं कृत्वा च मानद !। एवमाराध्य मां प्राप्तं समीहितफलंमहत्
गोपीचन्दनमृत्स्नयालिखितोयस्यविग्रहः । शङ्खचक्रादिपद्माऽङ्कोदेहे तस्यवसाम्यहम्
सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यमायसमेव च । चक्रं कृत्वा तु मेधावी धारयीतविचक्षणः

द्वादशारं तु षट्कोणं वलित्रयविभूषितम् ॥ ५५ ॥

एवं सुदर्शनं चक्रं कारयीत विचक्षणः । उपवीतादिवद्धार्याः शङ्खचक्रगदाः सदा ॥
ब्राह्मणैश्च विशेषेण वैष्णवैश्च विशेषतः । उपवीतं शिखा यद्वच्चक्रं लाञ्छनसंयुतम्
चक्रलाञ्छनहीनस्य विप्रस्यविफलम्भवेत् । मम चक्राऽङ्कितोदेहःपवित्र इतिवैश्रुतिः
चक्राऽङ्किताय दातव्यं हव्यंकव्यं विचक्षणैः । मम चक्राऽङ्ककवचमभेद्यं देवदानवैः

अजेयं सर्वभूतानां शत्रूणां रक्षसामपि ॥ ५६ ॥

मम चक्राऽङ्ककवचं शरीरे यस्य तिष्ठति । नाऽशुभं विद्यते तस्य गृहपुत्रादिकस्य हि

दक्षिणे च भुजे विप्रोविभृयाद्वैसुदर्शनम् । सव्ये च शङ्खम्बिभृयादिति वेदविदोविदुः
तत्तन्मन्त्रेण मन्त्रज्ञः प्रतिष्ठाप्य पृथक्पृथक् ॥ ६२ ॥
ललाटे च गदा धार्या मूर्ध्नि चापं शरस्तथा । नन्दकञ्चैव हृन्मध्ये शङ्खचक्रे भुजद्वये
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चक्रादीन्धारयेत्सदा । धारणानन्तरम्ब्रूयात्तत्र चैवं द्विजोत्तमः ॥
पुत्रमित्रकलत्रादिर्यः कश्चिन्मत्परिग्रहः । सह देहेनसर्वोऽसौ विष्णुप्रीत्यैमयाऽर्पितः
पश्चात्स्वधर्ममास्थाय तिष्ठेदाजीवनं मम ।
भक्त्या चाऽव्यभिचारिण्या सर्वदाऽऽप्तमनोरथः ॥ ६६ ॥
शङ्खचक्राङ्कितं दृष्ट्वा ये निन्दन्ति नराधमाः । अवलोक्य मुखन्तेषामादित्यमवलोकयेत्
श्रीकृष्णनाम चोच्चार्य शुद्धो भवति नान्यथा ॥ ६७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे गोपीचन्दनादिशङ्खचक्राद्यायुधधारण-तत्तन्मुद्राधारणप्रकारकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

शङ्खपूजाविधिकथनम्

ब्रह्मोवाच

तप्तचक्राङ्कितं कृत्वा ह्यात्मानमथ दीक्षितम् । पद्माक्षतुलसीमालं किं फलं ब्रूहिकेशव

श्रीभगवानुवाच

तुलसीकाष्ठसम्भूतांयोमालांवहतेद्विजः । अप्यऽशौचोऽप्यनाचारोमामेवैतिनसंशयः
धात्रीफलकृता माला तुलसीकाष्ठसम्भवा । दृश्यते यस्य देहे तु स वै भागवतो नरः
तुलसीदलजांमालांकण्ठस्थांवहतेतुयः । ममासौ प्रीतिदो ज्ञेयः सततं मत्परो द्विवौकसाम्

तुलसीदलजां मालां धात्रीफलकृतामपि । ददातिपापिनांमुक्तिंकिम्पुनर्मम सेविनाम्
तुलसीदलजां मालां ममोत्तीर्णां वहेत्तु यः । पत्रेपत्रेऽश्वमेधानां दशानांलभतेफलम्
तुलसीकाष्ठसम्भूतां यो मालां वहतेनरः । फलं यच्छाम्यहंवत्स प्रत्यहं द्वारकोद्भवम्

निवेद्य भक्त्या मां मालां तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ।
वहते यो नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम् ॥ ८ ॥

सदा प्रीतमनास्तस्य अहं प्राणवरोहि सः । तुलसीकाष्ठसम्भूतां यो मालांवहतेनरः

प्रायश्चित्तं न तस्याऽस्ति नाऽशौचं तस्य विग्रहे ॥ ६ ॥

तुलसीकाष्ठसम्भूतं शिरसः काष्ठभूषणम् । बाहौ करे च मर्त्यस्यदेहेयस्य समेप्रियः
तुलसीकाष्ठमालभिर्भूषितः पुण्यमाचरेत् । पितॄणां देवतानाञ्चपुण्यं कोटिगुणम्भवेत्
तुलसीकाष्ठमालां तु प्रेतराजस्य दूतकाः । दृष्ट्वा नश्यन्ति दूरेण वातोद्धूतंयथा दलम्

यद्गृहे तुलसीकाष्ठं पत्रं शुष्कमथाऽऽर्द्रकम् ।
भवन्ति तद्गृहे नैव पापं सङ्क्रमते कलौ ॥ १३ ॥

तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितो भ्रमतेभुवि । दुःस्वप्नंदुर्निमित्तञ्च न भयंशात्रवंक्वचित्
धारयन्ति न ये मालां हैतुकाः पापबुद्धयः । नरकान्न निवर्तन्ते दग्धाकोपाग्निनामम

तस्माद्धार्या प्रयत्नेन माला तुलसिसम्भवा ।
पद्माक्षनिर्मिता भक्त्या फलैर्धात्र्या सुपुण्यदा ॥ १६ ॥
तदूर्ध्वपुण्ड्रशङ्खाद्यैर्युक्तस्तुलसिमूलके ।
सन्ध्योपास्त्यादिकं कुर्यात्कुशपाणिर्हि मां स्मरन् ॥ १७ ॥

कृतसन्ध्यादिको भक्तस्ततः सम्पूजयेच्च माम् । गुरुश्चेत्तत्रवर्तेतआदौगत्वानमेद्गुरुम्
किञ्चिद्दत्त्वोपायनं च दण्डवत्प्रणमेन्मुदा । आचम्यैकाग्रमनसा पूजामण्डपमाविशेत्
उपविश्याऽऽसने रम्येकृष्णाजिनकुशोत्तरे । सम्यकपद्मासनासीनोभूतशुद्धिंसमाचरेत्
प्राणायामत्रयं कृत्वामन्त्रेण च जितेन्द्रियः। उदङ्मुखस्ततः कृत्वाहृत्पङ्कजमनुत्तमम्

विकासं तस्य कुर्वीत विज्ञानरविणा हृदि ॥ २१ ॥

कर्णिकायां न्यसेच्चाऽर्कं शशिनंचाग्निमेवच । त्रयं त्रयात्मकेतस्मिंश्चिन्तयेद्वैष्णवोनरः

नानारत्नमयं पीठं तेषामुपरि विन्यसेत् ॥ २२ ॥

तस्मिन्मृदुश्लक्ष्णतरं बालार्कसदृशद्युति। अष्टैश्वर्यदलंपद्मं मन्त्राक्षरमयं न्यसेत् ॥
तस्मिन्देवं समासीनं कोटिशीतांशुसन्निभम्। चतुर्भुजंमहापद्मशङ्खचक्रगदाधरम् ॥
पद्मपत्रविशालाक्षंसर्वलक्षणलक्षितम्। श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कंपीतवस्त्रान्वितंचमाम्

विचित्राभरणैर्युक्तं दिव्यमण्डनमण्डितम्।
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं दिव्यपुष्पोपशोभितम् ॥ २६ ॥

तुलसीकोमलदलवनमालाविभूषितम्। कोटिबालार्कसदृशं कान्तंदिव्यश्रिया सह ॥
सर्वलक्षणलक्षिण्यासमाश्लिष्टतनुं शिवम्। एवंध्यात्वाजपेन्मन्त्रंसमाहितमनाःशुचिः
सहस्रं शतवारम्वा यथाशक्तिजपेन्मनुम्। मनसैवाऽर्चनं कृत्वा ततो विधिवदाचरेत्
सम्प्रदायाऽनुरोधेन शङ्खंस्थाप्य ममाऽग्रतः। दूर्वाङ्कुरैश्चपुष्पैश्चगन्धोदेनच पूरितम्

दक्षिणे गन्धपुष्पाणां पात्रं स्थाप्यं च देशिकैः।
वामभागे न्यसेत्कुम्भं वस्त्रपूतं सुवासितम् ॥ ३१ ॥

पुरतो ममघण्टां च दिक्षुदीपान्नियोजयेत्। अन्यत्सर्वंसाधनंचयथास्थानेषुविन्यसेत्
अर्घ्यपाद्याऽऽचमनीयमधुपर्कस्यकारणात्। विन्यसेत्पुरतो मह्यं चत्वार्यमत्रकाणिवै

सिद्धार्थाऽक्षतपुष्पाणि कुशाग्रं तिलचन्दनम्।
फलं यवाश्चतुर्वक्त्र ! अर्घ्यपात्रे विनिःक्षिपेत् ॥ ३४ ॥

दूर्वाविष्णुपदी श्यामा पद्मञ्चैव चतुर्थकम्। पाद्यपात्रे न्यसेत्पुत्र! देशिको मम तुष्टये
कङ्कोलञ्च लवङ्गञ्च फलंमालतिसम्भवम्। कुर्याद्वै श्रद्धया पुत्र! पात्रआचमनीयके ॥

गव्यं पयो दधि मधु घृतं खण्डसमन्वितम्।
मधुपर्कस्य पात्रे वै दद्याद्वै श्रद्धयाऽर्चकः ॥ ३७ ॥

उक्तानां द्रव्यजातीनामलाभे पत्रपुष्पयोः। तत्तद्भावनया कुर्यात्सर्वदा विधिकोविदः
करन्यासं ततः कुर्यादङ्गन्यासं तथैव च। पञ्चाङ्गं वा षडङ्गं वा विन्यसेत्सम्प्रदायतः
ममाऽनुस्मरणं कार्यमात्मानं मत्समं स्मरेत्। पूजारम्भे चतुर्वक्त्र! मङ्गलं तु पठेन्नरः

अथसम्पूजयेच्छङ्खं पाञ्चजन्यं ममप्रियम्। यस्य सम्पूजनाद्वत्स आनन्दःपरमोमम

शङ्खस्य पूजने वत्स! मन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥ ४१ ॥
त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुनाविधृतः करे । निर्मितःसर्वदेवैश्चपाञ्चजन्यनमोऽस्तुते
तवनादेन जीमूतावित्रसन्ति सुराऽसुराः । शशाङ्काऽयुतदीप्ताभ! पाञ्चजन्यनमोऽस्तुते
गर्भादेवारिनारीणां विलीयन्ते सहस्रधा । तव नादेन पातालेपाञ्चजन्य! नमोऽस्तुते
दर्शनेनैव शङ्खस्य किं पुनः स्पर्शने कृते । विलयं यान्ति पापानि हिमवद्भास्करोदये
नत्वा शङ्खं करे धृत्वा मन्त्रैरेभिस्तु वैष्णवः ।
यः स्नापयति मां भक्त्या तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ४६ ॥
सुवासितेन तैलेन कुर्यादभ्यञ्जनं ततः । कस्तूर्या चन्दनेनैव कुर्यादुद्वर्तनादिकम् ॥
सुगन्धवासितैस्तोयैः स्नाप्य मन्त्रयुतैं शुभैः ।
अर्घ्यं दत्त्वा ततो वत्स! पाद्यमाचमनीयकम् ॥
मधुपर्कं ततो दद्यादथ सर्वोपचारकान् ॥ ४८ ॥
वस्त्रैराभरणैर्दिव्यैरलङ्कृत्य यथाविधि । पुष्पैः सम्पूजयेत्पीठं तत्र देवं निधाय च ॥
वस्त्राऽलङ्कारगन्धादीनर्पयेच्छ्रद्धया मम । नैवेद्यं विविधं दद्यात्पायसाऽपूपमिश्रितम्
सकर्पूरञ्च ताम्बूलं भक्त्या चैव निवेदयेत् ॥ ५० ॥
सुरभीणि चपुष्पाणिभक्तयासम्यङ्निवेदयेत् । धूपं दशाङ्गमष्टाङ्गं दीपञ्चसुमनोहरम्
परिणीय प्रणम्याऽथ स्तुत्वा स्तुतिभिरादरात् ।
शाययित्वा तु पर्यङ्के मङ्गलार्घ्यं निवेदयेत् ॥ ५२ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांद्वितीये वैष्णवखण्डे
मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे शङ्खपूजाविधिकथनंनाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

पञ्चामृतस्नानमाहात्म्यवर्णनपूर्वकंशङ्खपूजनफलकथनम्

ब्रह्मोवाच

पञ्चामृतस्य स्नपनाद्यत्फलं लभते हरेः । शङ्खोदकेन यत्किञ्चित्तन्मे ब्रूह्यजिताऽच्युत॥

श्रीभगवानुवाच

क्षीरस्नानम्प्रकुर्वन्ति ये नराममर्मूर्द्धनि । शताश्वमेधजम्पुण्यं विन्दुना विन्दुनास्मृतम्
क्षीराद्दशगुणं दध्ना घृतेनैव दशोत्तरम् । मधुनातद्दशगुणं सितया तु ततोऽधिकम्
गन्धपुष्पोदके मन्त्रं सर्वोत्कृष्टं प्रशस्यते ॥ ३ ॥

द्वादश्यां पञ्चदश्यां वा गव्येन पयसा मम । स्नापनं देवशार्दूल ! महापातकनाशनम्
दध्यादीनां विकाराणांक्षीरतः सम्भवो यथा । तथैव शेषकामानां क्षीरस्नपनतोमम
क्षीरस्नानेन सौभाग्यं दध्ना मिष्टान्नभोजनम् ।
घृतेन स्नापयेद्यो मां नरो मम पुरम्व्रजेत् ॥ ६ ॥

मधुना सितया यस्तु कारयेन्मार्गशीर्षके । स राजा जायतेलोके पुनः स्वर्गादिहागतः
गजाश्वरथसम्पूर्णं स राज्यं लभते भुवि । कारयेन्मार्गशीर्षे वै यः क्षीरस्नापनं मम
स्वर्गे लोके स जयति चन्द्रेन्द्ररुद्रमारुतान् । क्षीरस्नानं परं श्रेष्ठं मार्गशीर्षे च पुत्रक!
क्षीरस्नपनमाहात्म्यं वर्चस्कं पुष्टिवर्धनम् । दौर्भाग्यं विलयंयाति क्षीरस्नानेनमे सुत
स्नापयेन्मार्गशीर्षे मांयोवैपञ्चाऽमृतेन तु । स नशोच्यो भवेज्जन्तुर्बन्धुना भुविमानद!
कपिलाक्षीरमादाय यः स्नापयति मां सुत । कपिलाशतदानस्यफलम्प्राप्नोतिमानवः
शङ्खे तीर्थोदकं कृत्वा यः स्नापयति देशिकः ।
विन्दुनाऽपि सहोमासे स्वकुलं तारयेद्धि सः ॥ १३ ॥
कापिलं क्षीरमादाय शङ्खे कृत्वा च मानवः ।
यः स्नापयति मां भक्त्या सर्वतीर्थफलं लभेत ॥ १४ ॥

शङ्खे कृत्वा तु पानीयं साक्षतं कुशसंयुतम् ।
यः स्नापयेत्सहोमासे सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥ १५ ॥
शङ्खाष्टकेन यः स्नानं कारयेन्मार्गशीर्षके । भक्त्या भगवतः श्रेष्ठो मम लोके महीयते॥
शङ्खषोडशकेनाऽथ यः स्नापयति मे सुत !। स पापमुक्तः सुचिरं स्वर्गलोके महीयते
चतुर्विशतिसङ्ख्याकैः शङ्खैर्यः स्नापयेच्च माम् ।
इन्द्रलोके चिरं स्थित्वा स राजा भुवि जायते ॥ १८ ॥
शङ्खाऽष्टोत्तरशतेनैव स्नापयेन्मार्गशीर्षके । शङ्खेशङ्खेसुवर्णस्यफलंप्राप्नोति मानवः
मार्गशीर्षे भक्तिमान्यः कृत्वा शङ्खध्वनिं हि माम् ।
स्नापयेत्पितरस्तस्य स्वर्गंतावत्प्रतिष्ठिताः ॥ २० ॥
अष्टोत्तरसहस्रन्तु शङ्खस्नानं तु यश्चरेत् । सगणोमुक्तिमाप्नोतियावदाभूतसम्प्लवम्
नित्यं संस्नापयेद्योमांशङ्खेनसुरसत्तम !। गङ्गास्नानफलम्प्राप्य नित्यं नन्दति देववत्
शङ्खे तोयं समादाययःस्नापयतिमांसुत । नमोनारायणेत्युक्त्वामुच्यतेसर्वकिल्विषैः
कृत्वा पादोदकं शङ्खे वैष्णवानां महात्मनाम् ।
यो ददाति तिलोन्मिश्रं चान्द्रायणफलं लभेत् ॥ २४ ॥
नाद्यं तडागजम्वाऽपि वापीकूपादिकञ्च यत् । गाङ्गेयं जायतेसर्वंजलंशङ्खकृतञ्चयत्॥
गृहीत्वामम पादाम्बुशङ्खेकृत्वातुवैष्णवः । योवहेच्छिरसानित्यंसमुनिस्तपताम्वरः
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि मम वैवाऽऽज्ञया सुत !।
शङ्खे तानि वसन्तीह तस्माच्छङ्खो वरः स्मृतः ॥ २७ ॥
साम्बुं शङ्खेकरेधृत्वामन्त्रैरेतैस्तुवैष्णवः । यःस्नापयेन्मार्गशीर्षेतुष्टस्तस्यभवाम्यहम्
शङ्खादौ चन्द्रदैवत्यं कुक्षौ वरुण देवता । पृष्ठे प्रजापतिश्चैव अग्रे गङ्गा सरस्वती ॥
तेषामुच्चारपूर्वन्तु स्नापयेन्मामतन्द्रितः । तस्यपुण्यस्यसङ्ख्यांवैकर्तुं नैवसुराःक्षमाः
पुरतो ममदेवेश सपुष्पः सजलाक्षतः । शङ्खस्त्वभ्यर्चितस्तिष्ठेत्तस्यश्रीःसर्वतोमुखी
विलेपनेन सम्पूर्णं शङ्खं कृत्वा तु मां भजेत् । तदा मे परमा प्रीतिर्भवेद्वैशतवार्षिकी

शङ्खे कृत्वा तु पानीयं सपुष्पं सजलाक्षतम् ।

अर्घ्यं ददाति यो मां वै तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ३३ ॥
अर्घ्यं कृत्वा स्वयं शङ्खे यः करोति प्रदक्षिणाम् ।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ ३४ ॥

भ्रामयित्वा च मे मूर्ध्निमन्दिरंशङ्खवारिणा । प्रोक्षयेद्वैष्णवोयस्तुनाशुभंतद्गृहेभवेत्
नाऽऽध्रयो न क्लमस्तस्यनारकंनभयंक्वचित् । यस्यपादोदकं शङ्खेकृतं मूर्धानमालभेत्
ग्रहा रक्षांसिकूष्माण्डपिशाचोरगदानवाः । दृष्ट्वाशङ्खोदकं मूर्ध्नि विद्रवन्तिदिशोदश
वादित्रनिनदैरुच्चैर्गीतमङ्गलनिःस्वनैः । यःस्नापयतिमांभक्त्या जीवन्मुक्तोभवेद्दिसः

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे शङ्खपूजनफलकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

भगवतेतुलसीकाष्ठचन्दनार्पणफलवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

घण्टानादस्य माहात्म्यं चन्दनस्य तथाऽच्युत ।
यत्फलं लभते स्वामिस्तत्सर्वम्ब्रूहि तत्त्वतः ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

स्नानार्चनक्रियाकाले घण्टानादं करोति यः । पुरतो मम देवेश तस्य पुण्यफलं शृणु
वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च । वसते मामके लोके अप्सरोगणसेवितः
सर्ववाद्यमयी घण्टा सर्वदेवमयी यतः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन घण्टानादं तु कारयेत्
सर्ववाद्यमयी घण्टा सर्वदा मम वल्लभा । वादनाल्लभते पुण्यं यज्ञकोटिशतोद्भवम् ॥ २
घण्टावादः सदा कार्यः पूजाकाले विशेषतः । मन्वन्तरसहस्राणि मन्वन्तरशतानिच

प्रीतो भवामि सततं घण्टानादेन पुत्रक ! । भेरीशङ्खनिनादेन घण्टानादान्वितेन च
मृदङ्गशङ्खेन युतं प्रणवेन समन्वितम् । अर्चनं मम देवेश! सततं मोक्षदं नृणाम् ॥ ८
यत्र तिष्ठेत पुरतो घण्टानादान्विता मम । अर्चिता वैष्णवैर्यत्र तत्र मां विद्धि पुत्रक!
वैनतेयाऽङ्किता घण्टा सुदर्शनयुताऽथवा । ममाग्रे स्थापयेद्यस्तु तस्यपापं हराम्यहम्
मदीयार्चनवेलायां घण्टानादंकरोति यः । नश्यन्तितस्यपापानिशतजन्मार्जितान्यपि
स्वापकाले प्रकुर्वीतघण्टानादं स्वभक्तितः । ममैवाऽर्चनवेलायां फलंकोटिगुणाद्भवम्
ये मामर्चन्ति देवेशं सुपर्णोपरिसंस्थितम् । शङ्खपद्मगदायुक्तं सचक्रं च श्रियायुतम्
किं करिष्यन्ति ते तीर्थैर्देवतानां च दर्शनैः । किं यज्ञैर्व्रतैर्वापिकिंदानैःकिमुपोषणैः
मूर्तिर्नारायणी यैश्च मामकी गरुडोपरि । स्थापिताते कलौयान्तिकल्पकोटिपदंमम
ममाऽग्रे स्थापयेद्यस्तु प्रासादेऽथगृहेऽथवा । तीर्थकोटिसहस्राणितत्रतिष्ठन्तिदेवताः
यस्तु पूजयते धन्यो गरुडोपरि संस्थितम् । एकादश्यांतथारात्रौवासनासंयुतोमम
कृत्वा गीतञ्च नृत्यञ्च तारयेन्नरकात्पितॄन् ॥ १७ ॥
पुनश्च कथयिष्यामि शृणु घण्टामहं सुत !॥ १८ ॥
मम नामाङ्किता घण्टा पुरतो या च तिष्ठति । अर्चितावैष्णवीयत्रतत्रमांविद्धिपुत्रक
यस्तु वादयते घण्टां वैनतेयविचिह्निताम् । धूपे नीराजने स्नाने पूजाकाले विलेपने
ममाऽग्रे प्रत्यहं वत्स! प्रत्येकं लभतेफलम् । मखायुतंगोऽयुतं चचान्द्रायणशतोद्भवम्
विधिबाह्यकृता पूजा सफलाजायतेनृणाम् । घण्टानादेनतुष्टोऽहंप्रयच्छामिस्वकंपदम्
नागाऽरिचिंह्निता घण्टा रथाङ्गेन समन्विता । वादनात्कुरुतेनाशंजन्मकोटिभयस्यवै
गरुडेनाऽङ्कितां घण्टांदृष्ट्वाऽहं प्रत्यहं मुदा । प्रीतिं करोमिदेवेशलक्ष्मींप्राप्ययथाऽधनः
घण्टादण्डस्यशिरसिसुचक्रं स्थापयेत्तु यः । मत्प्रियंवैनतेयस्वा स्थापितं भुवनत्रयम्
घण्टानादं स चक्रञ्च अन्तकाले शृणोति यः ।
पापकोटियुतस्याऽपि नश्यन्ति यमकिङ्कराः ॥ २६ ॥
सर्वदोषाःप्रणश्यन्तिघण्टानादेन वै सुत । देवतानां स रुद्राणां पितॄणामुत्सवोभवेत

अभावे वैनतेयस्यचक्रस्याऽपि न संशयः । घण्टानादेन भक्तानां प्रसादं प्रकरोम्यहम्

गृहे यस्मिन्भवेन्नित्यंघण्टानागारिसंयुता। सर्पाणां न भयं तत्रनाग्निविद्युत्समुद्भवम्
यस्य घण्टा गृहे नास्ति शङ्खो न पुरतो मम। कथं भागवतो ज्ञेयः कथंभवतिवल्लभः
चन्दनस्य प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं तवपुत्रक!। यस्मिन्कृतेभवेत्प्रीतिर्ममात्यन्तंनसंशयः
सचन्दनं सकुसुमं कर्पूरागुरुमिश्रितम्। मृगनाभिसमायुक्तं जातीफलसमन्वितम्॥
तुलसीचन्दनोपेतंममात्यन्तसुखावहम्। यो ददातिहिमांनित्यं तुलसीकाष्ठसम्भवम्

युगानि वसते स्वर्गे ह्यनन्तानि नरोत्तमः।
महाविष्णोःकलौ भक्त्या दत्त्वा तुलसिचन्दनम्॥ ३४॥

अर्चयेन्मालतीपुष्पैर्नभूयः स्तनपो भवेत्। तुलसी काष्ठसम्भूतं चन्दनं यच्छते मम
दहामि पातकं सर्वं पूर्वजन्मशतैः कृतम्। सर्वेषामेव देवानां तुलसीकाष्ठचन्दनम्॥

पितॄणाञ्च विशेषेण सदऽभीष्टं यथा मम॥ ३७॥

श्रीखण्डं चन्दनं तावच्छ्रेष्ठं कृष्णागुरुं तथा। यावन्नदीयते मह्यं तुलसीकाष्ठचन्दनम्
तावत्कस्तूरिकामोदः कर्पूरस्य सुगन्धिता। यावन्नदीयते मह्यं तुलसीकाष्ठचन्दनम्

कलौ यच्छन्ति ये मह्यं तुलसीकाष्ठचन्दनम्।
मार्गशीर्षशुभे मासे ते कृतार्था न संशयः॥ ४०॥

यो हि भागवतो भूत्वाकलौतुलसिचन्दनम्। नार्पयेद्वैसहोमासे नाऽसौभागवतोनरः
कुङ्कुमागुरुश्रीखण्डकर्दमैर्मम विग्रहम्। आलिम्पेद्वैसहोमासे कल्पकोटिं वसेद्दिवि
कर्पूरागुरुमिश्रेण चन्दनेनाऽनुलिम्पयेत्। मृगदर्पं विशेषेण अभीष्टं च सदा मम॥

विलेपयति यो मां वै शङ्खे कृत्वा तु चन्दनम्।
मार्गशीर्षे तदा प्रीतिं करोमि शतवार्षिकीम्॥ ४४॥

सेवते तुलसीपत्रैर्नित्यमामलकैश्च यः। मार्गशीर्षे सदाभक्त्या स लभेद्वाञ्छितंफलम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे भगवते तुलसीकाष्ठचन्द-
नार्पणफलकथनंनाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

सप्तमोऽध्यायः

जातीपुष्पश्रैष्ठ्यकथनपूर्वकं विष्णुकण्ठेतत्सहस्रपुष्पाङ्कितमाला-स्थापनफलवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

माहात्म्यं वद देवेश! पुष्पजातिसमुद्भवम् । येनयेन चपुष्पेण यत्फलं लभते नरः ॥१

श्रीभगवानुवाच

शृणुपुत्रप्रवक्ष्यामिमाहात्म्यंपुष्पसम्भवम् । येन पुष्पेण मे प्रीतिर्भवेत्सम्यङ्नसंशयः
मल्लिका मालतीचैव यूथिकाचातिमुक्तका । पाटलाकरवीरश्च जयन्ती विजयातथा ॥
कुब्जकस्तबकश्चैव कर्णिकारं कुरण्टकः । चम्पकश्चातकः कुन्दो बाणःकर्चूरमल्लिका
अशोकस्तिलकश्चैव तथैवाऽपरयूथिकः । अमी पुष्पप्रकारास्तु शस्ता मे पूजने सुत!
केतकीपत्रपुष्पञ्च भृङ्गराजस्तथैव च । तुलसीपत्रपुष्पञ्च सद्यः प्रीतिकरं मम ॥ ६ ॥

पद्मान्यम्बुसमुत्थानि रक्तनीलोत्पले तथा ।
सितोत्पलं सहोमासे ममाऽत्यन्तं हि वल्लभम् ॥ ७ ॥

तान्येवच प्रशस्तानि कुसुमानि च मे सुत !। यानिस्युर्वर्णयुक्तानि रसगन्धयुतानिच

निर्गन्धान्यपि शस्तानि कुसुमानि मतानि मे ।
सुरभीणि तथाऽन्यानिवर्जयित्वा तु केतकीम् ॥ ६ ॥

बाणश्च चम्पकाऽशोकं करवीरश्चयूथिका । पारिभद्रं पाटला च बकुलं गिरिशालिनी
बिल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं भृङ्गिरजस्यच । तमालामलकीपत्रं शस्तं मे पूजने सुत !॥
पुष्पैररण्यसम्भूतैः पत्रैर्वा गिरिसम्भवैः । अपर्युषितनिश्छिद्रैःप्रोक्षितैर्जन्तुवर्जितैः ॥
अथारामोद्भवैर्वापि पुष्पैः सम्पूजयेच्च माम् । पुष्पजातिविशेषेण भवेत्पुण्यं विशेषतः
तपःशीलगुणोपेते पात्रे वेदस्य पारगे । दश दत्त्वा सुवर्णानि यत्फलं लभते नरः ॥

तत्फलं लभते मर्त्यः सह कुसुमदानतः ॥ १४ ॥

द्रोणपुष्पे तथैकस्मिन्मह्यं च विनिवेदिते । दश दत्त्वा सुवर्णानिफलं तदधिकं सुत!

पुष्पात्पुष्पान्तरे भेदो यथाऽऽसीत्तन्निबोध मे ॥ १६ ॥

द्रोणपुष्पसहस्रेभ्यःखादिरन्तुविशिष्यते। खादिरात्पुष्पसाहस्राच्छमीपुष्पंविशिष्यते शमीपुष्पसहस्रेभ्यो विल्वपुष्पंविशिष्यते। विल्वपुष्पसहस्रेभ्योवकपुष्पंविशिष्यते

वकपुष्पसहस्रेभ्यो नन्द्यावर्तम्विशिष्यते ।

नन्द्यावर्तसहस्राद्धि करवीरं विशिष्यते ॥ १६ ॥

करवीरसहस्रस्य कुसुमं श्वेतमुत्तमम् । करवीरश्वेतपुष्पात्पालाशं पुष्पमुत्तमम् ॥ पालाशपुष्पसाहस्रात्कुशपुष्पं विशिष्यते । कुशपुष्पसहस्राद्धि वनमाला विशिष्यते

वनमाला सहस्राद्धि चम्पकश्च विशिष्यते ।

चम्पकस्य पुष्पशतादशोकं पुष्पमुत्तमम् ॥ २२ ॥

अशोकपुष्पसाहस्रात्सेवन्ती पुष्पमुत्तमम् । सेवन्तीपुष्पसाहस्रात्कुजकंपुष्पमुत्तमम् कुजपुष्पसहस्राद्धि मालतीपुष्पमुत्तमम् । मालतीपुष्पसाहस्रात्सन्ध्यापुष्पंविशिष्यते

सन्ध्यापुष्पसहस्राद्धि त्रिसन्ध्यापुष्पमुत्तमम् ॥ २५ ॥

त्रिसन्ध्यारक्तसाहस्रात्त्रिसन्ध्याश्वेतमुत्तमम् ।

त्रिसन्ध्याश्वेतसाहस्रात्कुन्दपुष्पं विशिष्यते ॥ २६ ॥

कुन्दपुष्पसहस्राद्धि जातीपुष्पं विशिष्यते ।

सर्वासां पुष्पजातीनां जातीपुष्पमिहोत्तमम् ॥ २७ ॥

जातीपुष्पसहस्रेण यच्छेन्मालां सुशोभनाम् ।

मह्यं यो विधिवद्दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २८ ॥

कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानिच । मत्पुरे वसते नित्यं मम तुल्यपराक्रमः येषां सन्ति चपुष्पाणिप्रशस्तानिममाऽर्चने । तेषांपत्राणिशस्तानितदभावेफलानिच

एतैः पत्रैश्च पुष्पैश्च फलैश्चाऽपि तथा हि माम् ।

अर्चन् दशसुवर्णस्य प्रत्येकं फलमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥

एताभिःपुष्पजातीभिःसदामासेऽर्चयन्तिये । भक्तिंददामि तेषाम्वै तुष्टःसन्नात्रसंशयः

धनम्पुत्रांस्तथादारान्यत्किञ्चिद्वाञ्छतेहि सः । तत्तद्ददामिदेवेश पुष्पैरेभिःप्रतोषितः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे जातीपुष्पश्रैष्ठ्यकथनपूर्वकं विष्णुकण्ठे तत्सहस्रपुष्पाङ्कितमालास्थापनफलवर्णनं सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

तुलसीपत्रधूपदीपमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्रीमत्तुलसिमाहात्म्यंयथावद्वर्णयप्रभो !। यस्याःसन्निधिमात्रेणप्रीतिर्भवतितेऽधिका

श्रीभगवानुवाच

मणिकाञ्चनपुष्पाणि तथामुक्तामयानिच । तुलसीपत्रदानस्यकलांनार्हन्तिषोडशीम्

तुलसीमञ्जरीभिर्यः कुर्याद्वै मम पूजनम् । न स गर्भगृहं यायान्मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥

आरोप्य तुलसीं वत्स! पूजयेत्तद्दलैश्च माम् । दिवि सम्मोदमानः सश्वेतद्वीपेचमेगृहे

श्रीमत्तुलस्यार्चयते सकृद्धि मां पत्रैः सुगन्धैर्विमलैरखण्डितैः ।
यस्तस्य पापं पटसंस्थितं तदा निरीक्षयित्वा परिमार्जयेद्यमः ॥ ५ ॥
तुलसी न येषां मम पूजनार्थं सम्पादितैकादशिपुण्यवासरे ।
धिग्यौवनंजीवितमर्थसन्ततिस्तेषां सुखं नेह च दृश्यते परे ॥ ६ ॥

लिङ्गमभ्यर्चितं दृष्ट्वा सहोमासे च मामकम् । तुलसीपत्रनिकरैर्मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥

नित्यमभ्यर्चयेद्यो वै तुलस्यामां रमेश्वरम् । महापापानिनश्यन्तिकिंपुनश्चोपपातकम्

वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम् । न वर्ज्यंतुलसीपत्रंनवर्ज्यजाह्नवीजलम्

तावद्गर्जन्ति पुष्पाणि मालत्यादीनिभोः सुत !। यावन्नप्राप्यतेपुण्यातुलसीममवल्लभा

सकृदभ्यर्चयेद्यो मां विल्वपत्रेण मानवः । मुक्तिभागी निरातङ्कोममपार्श्वगतोभवेत्
विल्वपत्राच्छमीपत्राज्जातीपत्रात्सरोरुहात् । वल्लभं तुलसीपत्रं कौस्तुभादधिकंमम
अभिन्नपत्रा तुलसी हृद्या मञ्जरिसंयुता । क्षीरोदार्णवसम्भूता पद्मेवेयं सदा मम ॥
अकृष्णाऽप्यथवाकृष्णातुलसीममवल्लभा । सितावाऽप्यसितावापिद्वादशीवल्लभायथा
गृहीत्वा तुलसीपत्रं भक्त्यायो मां समर्चयेत् । अर्चितं तेन सकलं सदेवासुरमानुषम्
तावद्गर्जन्ति रत्नानि कौस्तुभादीन्यनन्तशः । यावन्न प्राप्यते कृष्णतुलसीकृष्णमञ्जरी
कृष्णं कृष्णतुलस्या हियोभक्त्यापूजयेन्नरः । सयातिभुवनंशुभ्रंयत्रविष्णुः श्रिया सह

ममाऽर्चनार्थं भिक्षूणां यच्छन्ति तुलसीदलम् ।
अन्येषामपि भक्तानां यान्ति ते पदमव्ययम् ॥ १८ ॥
तुलसी कृष्णगौरा या तया यो मां समर्चयेत् ।
नरो याति तनुं त्यक्त्वा वैष्णवीं शाश्वतीं गतिम् ॥ १६ ॥

ब्रह्मोवाच

धूपदानस्य माहात्म्यं दीपस्याऽपि च केशव । यत्फलंलभतेमर्त्यस्तन्मेब्रूहियथार्थतः

श्रीभगवानुवाच

शृणु पुत्र! प्रवक्ष्यामि धूपदानस्य यत्फलम् । दीपदास्य माहात्म्यं ममप्रीतिकरंपरम्
अगुरुञ्च सकर्पूरं दिव्यचन्दनसौरभम् । दत्त्वा मां वै सहोमासे कुलानांतारयेच्छतम्
कृष्णागुरुसमुत्थेन धूपेन च ममाऽलयम् । धूपयेद्वैष्णवो यस्तु समुक्तोनरकाऽर्णवात्
माहिषं गुग्गुलंयस्तुआज्ययुक्तंसशर्करम् । धूपं ददाति योवैमांतस्येच्छांप्रददाम्यहम्
गुग्गुलोहन्त्यशेषाणि अरिष्टानिचधूपितः । कामान् नानाविधांश्चैवअगुरुःसम्प्रयच्छति
देहं गेहं पुनात्यैत्र धूपस्त्वगुरुसम्भवः । नाशयेद्यक्षरक्षांसि धूपः सर्जरसोद्भवः ॥ २६
जातिपुष्पमथैलाच गुग्गुलश्च हरीतकी । कूटः सर्जरसश्चैव गुडः सैलाच्छडस्तथा

नखयुक्तानि चैतानि दशाङ्गो धूप उच्यते ॥ २७ ॥
धूपं दशाङ्गं यदि चेत्करोति मासे सहे मे अतिवल्लभे च ।
ददामि कामानतिदुर्लभानपि बलञ्च पुष्टिं सुतदारभक्तिम् ॥ २८ ॥

मुस्ताधूपे मानुषाणां प्रियत्वं माङ्गल्यकं वश्यकरं गुडस्य ।
कुर्यात्सहोमासि ममाऽग्रतो यो विहाय पापानि स मां समाप्नुयात् ॥
न भयं विद्यते तस्यदिव्यभौमान्तरिक्षजम् । ममधूपावशेषेणयस्याऽङ्गंपरिमार्जितम्
न चापद्विद्यते तस्य भवन्तिसम्पदोऽखिलाः । धूपेकृतेसहोमासेममाग्रेश्रद्धयाऽनिशम्
धूपः सुरूपतां धत्ते धूपः पावनमुत्तमम् । वनस्पतिरसो दिव्यः परमः पावनः शुचिः
अतः परं प्रवक्ष्यामि दीपमाहात्म्यमुत्तमम् । यस्मिन्कृते नरोयातिवैकुण्ठंनात्रसंशयः
बहुवर्तिसमायुक्तं घृतपूरसमन्वितम् । कुर्याद्वारार्तिकं यो वै कल्पकोटिं दिवं वसेत्
नीराजनं तु यः पश्येत्सहोमासे ममाऽग्रतः । सप्तजन्म भवेद्विप्रो ह्यन्ते च परमस्पदम्
कर्पूरेण तु यः कुर्याद्भक्त्या चैव ममाग्रतः । आरार्तिकंद्विजश्रेष्ठ! प्रविशेन्मामनन्तकम्
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं यत्कृतं पूजनं मम । सर्वं सम्पूर्णतामेति कृते नीराजने सुत !॥
यः करोति सहोमासे कर्पूरेण च दीपकम् । अश्वमेधमवाप्नोति कुलञ्चैव समुद्धरेत्
ममाऽग्रे वै द्विजानाञ्च दीपं दद्याच्चतुष्पथे । मेधावी ज्ञानसम्पन्नश्चक्षुष्माञ्जायते नरः
घृतेन वाऽथ तैलेन दीपं प्रज्वालयेन्नरः । सहोमासे ममाऽग्रे च तस्य पुण्यफलं शृणु
विहाय सकलं पापं सहस्रादित्यसन्निभः । ज्योतिष्मता विमानेन मम लोकेमहीयते
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दीपं दद्याद्विचक्षणः । तञ्च दत्वा विहिंसेद्यः स पतेन्नरके ध्रुवम्
दीपंयोवैहरेत्पापीलोभाद्द्वेषाद्द्विजोत्तम । तद्दीपहरणात्सोऽपिमूकोऽन्धश्चप्रजायते
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे दीपमाहात्म्यवर्णनं
नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

नैवेद्यविधिकथनम्

ब्रह्मोवाच

नैवेद्यस्य विधिं ब्रूहि देव! मे तत्त्वतः प्रभो !। अन्नं कतिविधश्चैष्टंव्यञ्जनादीन्यशेषतः

श्रीभगवानुवाच

साधु पृष्टं त्वया वत्स! ममप्रीतिकरम्परम् । वक्ष्यामितेऽन्नपानादिव्यञ्जनादीन्यशेषतः
आदौ हिरण्मयं पात्रंतदभावे च राजतम् । तदभावेच पालाशं विस्तीर्णम्बहुसुन्दरम्
कचोलाः शतशः कार्याः पात्रे वैपरितोऽनघ !। तन्मध्येव्यञ्जनादेयानानाफलमयाःशुभाः
पायसश्चन्द्रसङ्काशं पात्रे वैशर्करायुतम् । भक्तं कुमुदसङ्काशं मुद्गान्काचप्रभान् ञ्छुभान्
नानाव्यञ्जनसंरुद्धंत्रिभिः पङ्क्तिभिरेव च । निम्बूरसेन चन्द्रेण फलमूलयुतेन च ॥

वैकृताश्च तदा कार्याः शतशो भोजने मम ।
द्राक्षास्तु मिश्रिताश्चूतकरमर्दकृताः शुभाः ॥ ७ ॥

मरीचपिप्पलीसार्द्रकैलाचन्द्रकसंयुताः । क्वाथिताः कथिकाःकार्याःशतशोभोजनेमम
प्रलेहनास्तथा कार्याःकचोलशतसङ्कुलाः । नानाकुसुमसम्मोदयुक्ताः सहसि मे प्रिया
मण्डका वर्तुला रम्याः समाः सर्वत्रविन्दुवत् । सितयासहितेनाऽथदुग्धेनक्वथितेनच
मधुवर्णेन गव्येन युक्तेतस्मिन्सुभोजने । कचोले सुप्रभे वत्स! स्थितंकाञ्चनसुप्रभम्
घृतं सुवासितं प्रीत्या देयंहि मम भोजने । तत्र गोधूमपात्रेणचन्द्रकेणहिचोज्ज्वलम्

सौवाह्लिकाः पूरिकास्तु शतच्छिद्राः सवेष्टिकाः ।
अपूपाश्च तथा क्षीरप्रकारांस्तु प्रकारयेत् ॥ १३ ॥

मणयः सूत्रसञ्ज्ञाश्च मालतीकुसुमादयः । पर्पटा वर्पटारम्या माषकूष्माण्डसम्भवाः
वटकान्नवधा रम्यान्कुर्यान्मासे सहेमम । द्विधा जातामरीचैश्च पूरिता द्रोणकेशुभाः
युक्तेन लवणेनाऽतिशुद्धतैलेन पूरिताः । कुङ्कुमाभाः स्नेहहीनाः सक्षता इव दुर्जनाः ॥

दधिदुग्धयुताः केचिच्चिञ्चिणीचूतसम्भवाः । द्राक्षारसयुताः केचित्तथैवेक्षुरसैर्युताः
राजिका जलमध्यस्थास्तथाऽन्ये सितयासह । रसैश्चतुर्विधैश्चान्यैर्वटकानवधामताः
वज्रप्रभाऽनुकणिकाचारवीजसुखारिकैः । शकलैर्नारिकेलस्य लवङ्गशतसंयुताः ॥१६

घृतक्षीरसिताद्यास्ताः कटाहे सुप्रलोडिताः ।
लब्धासितादिकृसररम्यास्निग्धाश्चफेणिकाः ॥ २० ॥

पराकिकासु वै पक्वाः कृताश्चन्द्रेणपोलिकाः । मोदकास्तत्रवैकार्याश्चारवीजभवाःपरे
सितयासहिताःकार्याअन्येदुग्धेननिर्मिताः । नारिकेलफलैश्चाऽन्येवृक्षनिर्यासनिर्मिताः
वदामैश्चशुभाश्चाऽन्यैतिलैश्चकणवीजकैः । ईदृशान्मोदकांश्चान्यांस्तुग्रन्थर्थममकारयेत्
अर्शोघ्नं मोचनीकन्दं तथाऽऽर्द्रंकरमर्दकम् । नारिङ्गं चिञ्चिणीकञ्चकङ्कोलफलमेवच
दशारं त्रिपुरीजातं शुभं निम्बफलं विसम् । तिन्दूफलं लवङ्गञ्च श्रीफलं तिलकंलुति
वल्कलं वंशकारीरं यथा कायफलं वलम् । द्राक्षाफलंचूतफलंरम्यंकण्टकिनीफलम्
धात्रीफलं शुक्तिभवं फलमम्वाभवं तथा । रम्भाफलं पिप्पली च मरीचाश्च मनोहराः
शुद्धसर्षपतैलेन लवणेन सुवेधितम् । तथा राजिकया विद्धं त्रिभिर्वर्षैर्घटे स्थितम्
एवम्विधानि जातानि व्यञ्जनानि च मानद !। कर्तव्यानिसहोमासेममप्रीतिकराणिवै
एतादृशे भोजने चेद्सामर्थ्यं भवेद्यदि । एवं कार्यं तदा तेन सङ्क्षेपेण शृणुष्व मे

लड्डूकमेकं घृतपूरमेकं फेनद्वयं कोकरसत्रयञ्च ।
घृतप्लुतं मण्डकषोडशानां वटाष्टदायी नरकं न पश्येत् ॥ ३१ ॥
अर्द्धाढकं सुचिरपर्युषितञ्च दुग्धं खण्डस्य षोडशपलानि शशिप्रभस्य ।
सर्पिष्पलं मधुफलं मरिचं द्विकर्षं शुण्ठ्याःपलार्धमथवाऽर्धपलं चतुर्णाम् ॥ ३२ ॥
श्लक्ष्णे पटे ललनया मृदुपाणिघृष्टां कर्पूरधूलिधवलीकृतभाण्डसंस्थाम् ।
एतां शुभां रसवतीं प्रकरोति यो वै कामान्ददामि सकलान्मनुजस्य तस्य

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे नैवेद्यविधिकथनंनाम

नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दशमोऽध्यायः

पूजाविधिसमापनंतदुद्यापनंतत्फलवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नैवेद्यानन्तरं तात! किंकर्तव्यं नृभिः प्रभो !। यत्कर्तव्यं सहोमासेतत्सर्वं ब्रूहितत्त्वतः

श्रीभगवानुवाच

अथ भुक्तवते दत्त्वा जलैः कर्पूरवासितैः। आचमनञ्च ताम्बूलं चन्दनं करमार्जनम्
पुष्पाञ्जलिं ततः कुर्याद्भक्त्याऽऽदर्शं प्रदर्शयेत्। नीराजनंततः कार्यं कार्पूरंविभवे सति
समर्प्य मुकुटादीनि भूषणानि विचक्षणः। ततः पश्चान्महाभाग! प्रकल्प्यच्छत्रचामरे
प्रसादसुमुखं ध्यात्वा श्यामसुन्दरविग्रहम्। जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीतस्तुतिभिःप्रभुम्
शङ्खरौप्यमयी माला काञ्चनी च विशेषतः। पद्माक्षैश्चैव सुभगैर्विद्रुमैर्मणिमौक्तिकैः
रचितेन्द्राक्षकैर्माला तथैवाङ्गुलिपर्वभिः। पुत्रजीवमयी माला शस्ता वै जपकर्मणि
न च क्रमन्न च हसन्न पार्श्वमवलोकयन्। न पदा पदमाक्रम्य करप्राप्तशिरास्तथा
नोत्तिष्ठन्मन्मनु विद्वान्न जपेद्व्यग्रमानसः। जपकाले न भाषेत व्रतहोमार्चनादिषु
गृहेष्वेकगुणं जाप्यं गोष्ठे दशगुणं भवेत्। नदीतीरे शतंविद्यादन्यगारेदशाऽधिकम्
तीर्थादिषु सहस्रं स्यादनन्तं ममसन्निधौ। एवंकृत्वासहोमासेयःकुर्याच्चप्रदक्षिणाम्
सप्तद्वीपवतीपुण्यं लभते स पदेपदे। पठन्नामसहस्रं तु अथवा नाम केवलम् ॥ १२ ॥
एका प्रदक्षिणा भक्त्या दहेत्पापंसदाऽऽह्निकम्। प्रदक्षिणीकृतातेनसप्तद्वीपावसुन्धरा
दिनसप्तोद्भवं पापं मम तिस्रः प्रदक्षिणाः। तत्क्षणान्नाशयन्त्येव पापंदेहेदशाऽऽह्निकम्
कृताःप्रदक्षिणायेनएकविंशति भक्तितः। भ्रूणहत्यादिपापानिनाशमायान्तितत्क्षणात्
अष्टोत्तरशतं येन कृता भक्त्या प्रदक्षिणाः। तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः समाप्तवरदक्षिणैः
प्रदक्षिणीकृता तेन तावद्वारं वसुन्धरा। मातुः प्रदक्षिणास्तद्वद्गभूतधात्रीप्रदक्षिणाः
शालग्रामशिलायाश्च समेतत्त्रयं स्मृतम्। एको दण्डप्रपातश्च सहे सप्तप्रदक्षिणाः

सममेतद्द्वयं नोवा दण्डपातो विशिष्यते । प्रदक्षिणे दण्डपातं यः करोति सदामम
सहोमासे विशेषेण आकल्पं स वसेद्दिवि । कल्पादनन्तरं तात चक्रवर्ती प्रजायते
चिरायुर्धनवान्भोगी दानवान्धर्मवत्सलः । सहस्रनामपठनात्पापं नश्येत्त्रिधा कृतम्
अथ किं वहुनोक्तेन श्रृणु गुह्यञ्च मे सुत !। दामोदरेति नाम्नावै भवेत्प्रीतिर्ममाऽतुला
गुणसम्बन्धि मन्नाम कृतंमात्रा यशोदया । यदामेदधिभाण्डस्यस्फोटनंगोकुलेकृतम्
तदा यशोदया गाढम्बद्धो दाम्ना ह्युलूखले । ततः प्रभृति मे नाम ख्यातं दामोदरेतिच
नमो दामोदरायेति जपेद्यः सुसमाहितः । सूर्योदये शुचिर्भूत्वा त्रिसहस्रं दिनेदिने॥
सार्द्धलक्षत्रयं यावत्तत उद्यापयेद्बुधः । तर्पणं हवनं चैव ब्रह्मभोज्यं दशांशतः ॥ २६

एवं यः कुरुते भक्त्या तस्य यच्छामि वाञ्छितम् ।
धनं धान्यं तथा दारान्पुत्रांश्चाऽन्यच्च वाञ्छितम् ॥ २७ ॥

त्रिसत्येन मया चोक्तं श्रद्धत्स्व त्वं महामते !। मन्त्रराजमिमम्पुत्रकृपयामेप्रकाशितम्
दामोदरायेति पठन्नित्यं कुर्यात्प्रदक्षिणम् । दण्डपातं तथा पुत्र! अष्टाङ्गेनसमन्वितम्

पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा ।
मनसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते ॥ ३० ॥

शिरोमत्पादयोःकृत्वावाहुभ्याञ्चपरस्परम् । प्रपन्नं पाहिमामीशभीतंमृत्युग्रहाऽर्णवात्
पश्चाच्छेषां मया दत्तां शिरस्याधाय सादरम् । एवं ब्रूयात्ततो वत्स! ममपूजाप्रपूर्त्तये
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन !। यत्पूजितंमयादेव! परिपूर्णं तदस्तु मे॥३२
मृदङ्गवाद्येन समं प्रणवेन सुसंयुतम् । एवं कार्यं सहोमासे नृत्यं पुण्यप्रदं नृणाम् ॥
गीतं वाद्यञ्च नृत्यञ्च तथापुस्तकवाचनम् । पूजाकाले चतुर्वक्त्र! सर्वदा ममच प्रियम्
गीतवाद्याद्यभावे च ममनामसहस्रकम् । स्तवराजं तथा पुत्र! गजेन्द्रस्यच मोक्षणम्
अनुस्मृतिश्च गीता च स्तवनं पञ्चधा मतम् । पञ्चस्तवं महाभाग! ममप्रीतिकरंपरम्
पादोदकम्पिबेद्योवै शालग्रामसमुद्भवम् । पञ्चगव्यसहस्रैस्तुप्राशितैः किम्प्रयोजनम्
शालग्रामशिलातोयंयःपिवेद्विन्दुनासमम् । मातुःस्तन्यंपुनर्नैवसपिवेन्मुक्तिभाङ्नरः
अशौचनैव विद्येत सूतके मृतकेऽपि च । येषां पादोदकं मूर्ध्नि प्राशनं ये प्रकुर्वते ॥

अन्तकालेऽपि यस्येदं दीयते पादयोर्जलम् ।
सोऽपि सद्गतिमाप्नोति सदाचारबहिष्कृतः ॥ ४१ ॥
अपेयं पिबते यस्तु भुङ्क्ते यद्यप्यभोजनम् । अगम्यागमनो योवैपापाचारश्च यो नरः
सोऽपि पूतो भवत्याशु सद्यः पादाम्बुधारणात् ।
चान्द्रायणात्पादकृच्छ्रादधिकम्पादयोर्जलम् ॥ ४३ ॥
अगुरुं कुङ्कुमं वाऽपि कर्पूरञ्चाऽनुलेपनम् । ममपादाम्बुसंस्पृष्टं तद्वै पावनपावनम् ॥
दृष्टिपूतन्तु यत्तोयम्भवेद्वै विप्रसत्तम !। तद्वैपापहरं नृणां किम्पुनः पादयोर्जलम् ॥
प्रियस्त्वं मेऽग्रजः पुत्रोविशेषेण च मत्प्रियः । तदर्थंकथितंसर्वंरहस्यंयन्ममेस्थितम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे पूजाविधिसमापनन्तदुद्यापनन्तत्फल-कथनयोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

एकादशीमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एकादश्याश्च माहात्म्यं मूर्तीनाञ्च विधानकम् । सर्वंब्रूहिममस्वामिन्कृपयाभूतभावन

श्रीभगवानुवाच

शृणुष्वद्विजशार्दूल! कथांपापप्रणाशिनीम् । यांश्रुत्वायातिविलयंपापंब्रह्मवधादिकम्
काम्पिल्ये नगरे राजा वीरबाहुरिति स्मृतः । सत्यवादी जितक्रोधोब्रह्मज्ञोममतत्परः
भाववान्स दयाशीलो रूपवान्बलवान्नरः । भक्तो भागवतानाञ्च सदा मम कथारुचिः
सदा मम कथाऽऽसक्तः सदा जागरणप्रियः ।
दाता विद्वान्क्षमाशीलो विक्रमी विजितेन्द्रियः ॥ ५ ॥

विजयी रणशीलश्च ऋद्ध्या च धनदोपमः। पुत्रवान्पशुमांश्चैव स्वदारनिरतस्तथा॥
तस्य भार्या कान्तिमतीरूपेणाऽप्रतिमाभुवि। पतिव्रतामहासाध्वीममभक्तिरतासदा
तया सह विशालाक्षो बुभुजे मेदिनींयुवा। मुक्त्वैकंमांमहाबाहो नान्यज्जानातिदैवतम्
एकस्मिन्दिवसे पुत्र! भारद्वाजो महामुनिः। समागतो गृहे तस्य वीरबाहोर्महात्मनः
दृष्ट्वा समागतं दूराद्भारद्वाजं महामुनिम्। स्वागतं कारयामास दत्त्वार्घ्यं विधिवत्तदा
आसनं कल्पयामास स्वयमेव महीपतिः। प्रणम्य परया भक्त्या तस्थौ मुनिवराग्रतः

राजोवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं दिनम्। अद्यमे सफलं राज्यमद्य मे सफलं गृहम्
प्रसन्नोममविप्रर्षे परमात्मा जनार्दनः। यत्त्वं समागतो ह्यद्यगृहे योगिवरस्तथा

मुक्तोऽहं पापकोट्याऽद्य यत्त्वयाऽहं निरीक्षितः।
राज्यं लक्ष्मीर्गजाऽश्वाश्च मया तुभ्यं निवेदिताः॥ १४॥

वैष्णवोऽसि मुनिश्रेष्ठ! नास्त्यदेयं मया तव। मेरुतुल्यंभवेत्सर्वंवैष्णवस्यवराटिका
नाऽऽयाति हि गृहेयस्यवैष्णवो वैद्विजोत्तमः। तद्दिनंविफलं तस्यकथितंब्राह्मणैर्मम
विष्णुभक्ताश्च ये केचित्सर्वे वर्णाद्विजातयः। कथितं ममगार्ग्येणगौतमेनसुमन्तुना
ये त्वभक्ता हृषीकेशे पिशाचास्ते हि मानवाः। महापातकलिप्तास्तेयेभुञ्जन्तिहरेर्दिने
शिवव्रतसहस्रैस्तु सौरैर्ब्राह्मैश्च कोटिभिः। यत्फलं कविभिः प्रोक्तंवासरैकेनतद्धरेः
गर्वमुद्वहतेतावत्तिथिर्ब्राह्मीच शाङ्करी। यावन्नायाति विप्रेन्द्र द्वादशी च मम प्रिया
तावत्प्रभावस्ताराणां यावन्नोदयते शशी। तिथिस्तथाचविप्रेन्द्र यावन्नायातिद्वादशी
नारदेन पुराप्रोक्तं वसिष्ठेन ममाऽग्रतः। त्वं वेत्ता सर्वधर्माणां वैष्णवानांमहामुने!

भारद्वाज उवाच

साधुपृष्टं महाभाग! यत्त्वंभक्तोऽसि वैष्णवः। सासुप्रजामहीधन्यायत्त्वंरक्षसिभूमिप!
तस्मिन्राष्ट्रे न वस्तव्यं यत्र राजा न वैष्णवः। वरं वासो वनेतीर्थेनतुराष्ट्रे त्ववैष्णवे
यत्रभागवतोराजासम्प्रशास्तिचमेदिनीम्। वैकुण्ठमितिमन्तव्यंतद्राष्ट्रम्पापवर्जितम्

चक्षुर्हीनं यथा देहं पतिहीना यथा स्त्रियः। द्वादशी दशमीयुक्तातथा राष्ट्रमवैष्णवम्

यथा पुत्रो महीपाल मातापित्रोरपोषकः । द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम्

दानहीनो यथा राजा ब्राह्मणो रसविक्रयी ।

द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ २८ ॥

दन्तहीनो यथा हस्ती पक्षहीनो यथा खगः । द्वादशी दशमीयुक्तातथाराष्ट्रमवैष्णवम्

प्रतिग्रहार्थं वेदादि द्रव्यार्थं सुकृतं यथा । द्वादशी दशमी युक्तातथाराष्ट्रमवैष्णवम्

दर्भहीना यथा सन्ध्या यथा श्राद्धमदक्षिणम् ।

द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३१ ॥

सशिखश्च यथा शूद्रः कपिलाक्षीरपायकः । द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम्

शूद्रश्च ब्राह्मणीगामी हेमघ्नो धर्मदूषकः । द्वादशा दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम्

हरिसूर्यादि वृक्षाणां यथा छेदो नरोत्तम !। द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम्

यथऽऽहुतिर्मन्त्रहीना मृतवत्सापयो यथा । द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम्

सकेशा विधवा यद्वद्व्रतं स्नानविवर्जितम् । द्वादशीदशमीयुक्तातथा राष्ट्रमवैष्णवम्

स राजा प्रोच्यते सद्भिर्योभक्तोमधुसूदने । तद्राष्ट्रं वर्धते नित्यं सुखी भवति सप्रजः

दृष्टिर्मेसफलाराजन्यन्मयात्वं निरीक्षितः । अद्य मे सफला वाणी जल्पतेयात्वयासह

दूरमेव हि गन्तव्यं श्रूयते यत्र वैष्णवः । दर्शनात्तु भवेत्पुण्यं तीर्थस्नानसमुद्भवम् ॥

स त्वं राजन्मया दृष्टो विष्णुभक्तिरतः शुचिः ।

स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव नराधिप ! ॥ ४० ॥

एतस्मिन्नन्तरे राज्ञ्या कान्तिमत्यानमस्कृतः । भारद्वाजोमुनिश्रेष्ठःप्रवरःसर्वयोगिनाम्

अवैधव्यं वरारोहे! भक्ताभव स्वभर्त्तरि । निश्चला केशवे भक्तिः सदा भवतु ते शुभे॥

एतस्मिन्नन्तरे राजा भरद्वाजं महामुनिम् । उवाच प्रीणयन्वाचा मेघनादगभीरया ॥

राजोवाच

विपुला मे कथं लक्ष्मीः किं कृतंपूर्वजन्मनि । सर्वम्ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ! कृपायदिममोपरि

एतन्मया कथं प्राप्तं राज्यं निहतकण्टकम् । पुत्रो वै गुणवाञ्छ्रेष्ठः प्रियाचसुमनोहरा

मच्चित्ता मद्गतप्राणा चिन्तयन्ती जनार्दनम् ।

कोऽहं मुने ! कथञ्चैषा कश्च धर्मो मया कृतः ॥ ४६ ॥

किञ्चाऽनयाऽपिचार्वङ्ग्यामम पत्न्याकृतम्मुने । केनपुण्येन मेलक्ष्मीर्मृत्युलोकेसुदुर्लभा
अशेषा भूमिपालावै वर्तन्ते यस्य मे वशे । विक्रमश्चाऽप्रतिहतं शरीरारोग्यता तथा ॥
ममाऽपि विपुलंतेजो नकश्चित्सहतेमुने !। इच्छाम्यद्य प्रतिज्ञातुं यथा चेयमनिन्दिता

मयाऽपि सुकृतं विप्र! किं कृतं पूर्वजन्मनि ।

इति पृष्टो नरेन्द्रेण पूर्वजन्मविचेष्टितम् ॥ ५० ॥

स्वपत्न्याश्चेष्टितञ्चैव सम्पदाञ्चैवकारणम् । योगोत्थं सुचिरंकालं तथाविन्दतमानसे
विज्ञातमेतन्नृपते! पूर्वजन्मविचेष्टितम् । तव पत्न्याश्च राजर्षे ! शृणुष्व कथयाम्यहम्

भारद्वाज उवाच

शृणु भूपाल सकलंयस्येदं कर्मणःफलम् । त्वमासीः शूद्रजातीयोजीवहिंसापरायणः
नास्तिको दुष्टचारित्रः परदारप्रधर्षकः । कृतघ्नो दुर्विनीतश्च सुष्ठ्वाचारविवर्जितः ॥
इयं वा भवतो भार्यापूर्वमप्यायतेक्षणा । कर्मणामनसा वाचानान्यदस्यास्त्वयाविना
पतिव्रता महाभागा भजमाना निरन्तरम् । भावं न कुरुते दुष्टं तवोपरि तथा सति !

सखिभिस्त्वं परित्यक्तो बन्धुभिः पापकर्मकृत् ।

क्षयं जगाम चाऽर्थो यः सञ्चितस्तव पूर्वजैः ॥ ५७ ॥

नष्टे द्रव्ये फलाऽऽकाङ्क्षी त्वमासीर्जगतीपते !।

पूर्वकर्मविपाकेन कृषिश्च विफला गता ॥ ५८ ॥

ततो वित्ते परिक्षीणे परित्यक्तश्च बान्धवैः ।

क्षीयमाणाऽपि साध्वीयमत्यजत्त्वां न भामिनी ॥ ५६ ॥

त्वं भगःसर्वकामेभ्योगतवान्निर्जनेवने । हत्वाजीवाननेकांश्च नकाराऽऽत्मविपोषणम्
एवं प्रवृत्तस्य तव सह पत्न्या तदा नृप । गतानि बहुवर्षाणि पापवृत्त्या महीतले ॥
अन्यस्मिन्वासरेराजन्मार्गभ्रष्टोमहामुनिः । न दिशंविदिशम्वेत्ति देवशर्माद्विजोत्तमः
क्षुत्तृषापीडितोऽत्यर्थं मध्याह्नगदिवाकरे । पतितो वनमध्ये तु मार्गभ्रष्टो महीपते !॥
दया जाता च ते भूप दृष्ट्वा दुःखेन पीडितम् । ब्राह्मणं ब्रह्मजातं गृहीतवान् करेण वै

उत्थाप्य पतितम्भूमौ त्वयोक्तंहितदानृप । प्रसादंकुरुविप्रर्षेआगच्छत्वंममाऽऽश्रमम्
जलपूर्णं तडागञ्च पद्मिनीखण्डमण्डितम् । वृक्षैर्मनोहरैर्युक्तं फलैः पुष्पैर्मनोरमैः ॥६६
स्नात्वा सुशीतलेतोयेकृत्वाकर्मचनैत्यकम् । कुरुविप्र फलाहारं पिववारिसुशीतलम्
सुखेन कुरु विश्राममंमयासंरक्षितः स्वयम् । विप्रेन्द्र! तृप्तिपर्यन्तंवस त्वं च ममाश्रमे॥
उत्तिष्ठ त्वंद्विजश्रेष्ठप्रसादंकर्तुमर्हसि । लब्धसञ्ज्ञस्तदा विप्रः श्रुत्वाशूद्रस्यभाषितम्
करे जग्राह तं शूद्रं गतो यत्र जलाशयः । उपविष्टो महाबाहो छायामाश्रित्य तत्तटे ॥
स्नानञ्चकार विधिवत्पूजयामास केशवम् । तर्पयित्वापितृन्देवान्पपौनीरंसुशीतलम्
विश्रान्तो वृक्षमूलेऽभूद्देवशर्माद्विजोत्तमः । साष्टाङ्गं मुनये कृत्वा नमस्कारंसहस्त्रिया
शूद्रस्तु परयाभक्त्याप्रोवाचमुनिसन्निधौ । आवयोस्तरणार्थायअतिथिस्त्वंसमागतः
दर्शनात्तव विप्रर्षे! जातःपापस्यसंक्षयः । प्रिये फलानिस्वादूनिप्रयच्छाऽस्मैद्विजातये
मृदूनि रसयुक्तानि सुपक्वानि प्रियाणि च ॥ ७४ ॥

ब्राह्मण उवाच

त्वामहंनैवजानामि स्वज्ञातिकथयस्वमे । नाज्ञातस्यहिभोक्तव्यं ब्राह्मणस्याऽपिपुत्रक

शूद्र उवाच

शूद्रोऽहंद्विजशार्दूल! नकार्यःसंशयस्त्वया । आत्मजैर्दुर्जनैर्विप्र! परित्यक्तःस्वबन्धुभिः
तयोः सम्वदतोरेवं शूद्रपत्न्या फलानि च । दत्तानितस्मैविप्राय तेन भुक्तानितानिवै
अभूत्प्रीतमना विप्रः पीत्वा नीरं सुशीतलम् ।
सुखं सम्प्राप्य स मुनिर्विश्रान्तस्तरुमूलके ॥ ७८ ॥
सचशूद्रःसपत्नीकोभुत्तवाचपुनरागतः । स्वागतं ते मुनिश्रेष्ठ! कुतस्त्वमिहचाऽऽगतः
शून्याटवीं द्विजश्रेष्ठ! दुष्टसत्त्वभयाकुलाम् ।
निर्मनुष्यां दुःखयुक्तां दिवारात्रभयानकाम् ॥ ८० ॥

ब्राह्मण उवाच

ब्राह्मणोऽहं महाभाग! प्रयागगमनम्प्रति । अहमज्ञायमार्गेण प्रविष्टो दारुणे वने ॥ ८१
मम पुण्यप्रभावेण जातोऽसित्वन्नरः । जीवितं मे त्वया दत्तं ब्रूहिकिंकरवाणिते

भवानपि कुतः प्राप्तो निर्मनुष्येवनेखलु । कोभवान्कारणंकिंस्वित्कथयस्वममाऽग्रतः

शूद्र उवाच

विदर्भनगरी राज्ञा भीमसेनेन रक्षिता । वासो मम महाराष्ट्रे शूद्रोऽहं पापलम्पटः
स्वकर्मविहितो धर्मो मया त्यक्तोद्विजोत्तम !। त्यक्तोऽहंबन्धुवर्गैणततोऽहंवनमागतः

कृत्वा जीववधं नित्यं जीवेऽहं भार्यया सह ।
साम्प्रतं पातकात्सम्यङ् निर्विण्णोऽस्मि महामुने ! ॥ ८६ ॥

कुरुष्वाऽनुग्रहं किञ्चित्पापयुक्तस्य मे प्रभो !। मम पुण्यप्रभावेणआगतस्त्वंद्विजोत्तम
न पश्यामि यथा सौरिं पत्न्या सह महामुने !। उपदेशप्रभावेण प्रसादं कर्तुमर्हसि
नन्यदिच्छम्यहं किञ्चिन्मुक्त्वा देवं जनार्दनम् । कुरुष्वाऽनुग्रहं मेऽद्यप्रसादमृषिसत्तम

भारद्वाज उवाच

इति तेन समापृष्टो देवशर्मा द्विजाग्रणीः । शूद्रेण परया भक्त्या प्रहसन्वाक्यमब्रवीत्

इहि श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वाद एकादश्याख्याने
राज्ञःपूर्वजन्मवृत्तकथनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

सराजपूर्वभववृत्तमखण्डैकादशीविधिवर्णनम्

देवशर्मोवाच

तवेदृशी मतिर्जाता सहसा केशवोपरि । एतस्मान्मे गतं पापं पूर्वजन्मशतोद्भवम्
विनाव्रतैर्विनातीर्थैर्मुक्तस्त्वंपापकोटिभिः । ममाऽऽतिथ्येनभक्त्या चजातंतवहरेःपदम्
तेन पुण्यप्रभावेण मतिर्जाता तवेदृशी । ध्यात्वा सञ्चिन्त्यमनसाज्ञातपूर्वविचेष्टितम्

पूर्वजन्मनि विप्रस्त्वमवन्त्यां धर्मतत्परः । सदाऽध्यायनशीलश्चसुशीलश्च सदाव्रती
एका तु द्वादशी विष्णोः कृताच दशमीयुता । तत्पापस्यप्रभावेणसमस्तंसुकृतंगतम्
सर्वं तद्विफलं जतं तथा शूद्रापतिर्द्विजः । बहुवर्षसहस्राणि प्राप्ता नरकयातनाः ॥ ६॥
तस्मादेवं त्वयापूर्वं कृतं दुष्टं चिरं बहु । कृता तु दशमीमिश्रा तिथिर्विष्णोर्महात्मनः
तेन शूद्रो भवाञ्जातः पापे तव मतिस्तथा । धर्मे न रमते चित्तं दशमीवेधदूषितम्
विदर्भनगरे वत्स! अस्ति ते पुत्रिकासुतः । कृतं तेन विधानोक्तं हरेरैकादशीव्रतम्
प्रदत्तं तेन तत्पुण्यमखण्डैकादशीव्रतम् । धर्मोपरि मतिर्जाता जातः पापस्य सङ्क्षयः
तेन पुण्यप्रभावेण एकादश्या व्रतेन च । दशमीवेधजं पापं यमेन परिमार्जितम्
इह जन्मनि यत्पापं जन्मायुतकृतानि च । मार्जितानि यमेनैव पापानि तव साम्प्रतम्
तयोर्विवदतोरेवं विष्वक्सेनः समागतः । वर्णावर स्वागतं ते तुष्टस्तेऽहं जनार्दनः
विप्रस्याऽऽतिथ्यहेतुत्वाज्ज्ञातः पापस्यसङ्क्षयः । परदत्तेन पुण्येन एकादश्या व्रतेनच
दशमीवेधजं पापं तव शूद्र लयं गतम् । व्रतं कृत्वा ददौ पुण्यं दौहित्रस्तेनतारितः
पत्न्या सह महाभाग! वैनतेयं समारुह । इत्युक्त्वा देवदेवेन विमाने स्थापितस्तदा
स्वर्गं ततः सपत्नीकः शूद्रत्वेन नृपोत्तम !। देवशर्मा तु विप्रो वै तीर्थराजं ययौपुनः

एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्त्वया परिपृच्छितम् ।
अखण्डैकादशीपुण्यात्प्राप्तस्याऽऽतिथ्यकारणात् ॥
विष्णुभक्तिमती भार्या राज्यं निहतकण्टकम् ॥ १८ ॥

राजोवाच

ब्रह्मन्नखण्डैकादश्या विधिंसम्यक्समादिश । विष्णोःसम्प्रीणनार्थायप्रसादंकर्तुमर्हसि

ऋषिरुवाच

शृणुष्वनृपशार्दूलएकादश्याविधिंशुभम् । पुराऽऽसीद्भगवान्विष्णुर्नारदाययदुक्तवान्
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि उद्यापनविधिं शुभम् । मार्गशीर्षादिमासेषु द्वादशीषु नरोत्तम
व्रतं शुभमिदं कार्यमखण्डैकादशीव्रतम् । दशम्याञ्चैव नक्तञ्च एकादश्यामुपोषणम्
द्वादश्यामेकभुक्तञ्च अखण्डा इति कथ्यते । दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे

तद्धि नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम् ।
कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणकान्कोद्रवांस्तथा ॥ २४ ॥
शाकं मधु परान्नञ्च पुनर्भोजनमैथुने । विष्णुभक्तो नरो वाऽपि दशम्यां दशवर्जयेत्
दशम्या विधिरुक्तोऽयमेकादश्यास्तथाश्रृणु । असकृज्जलपानञ्च हिंसा शौचमसत्यता
ताम्बूलं दन्तकाष्ठञ्च दिवा शयनमैथुने । द्यूतं क्रीडा निशि स्वापःपतितैःसहभाषणम्
एकादश्यां दशैतानि विष्णुभक्तस्तु वर्जयेत् ॥ २७ ॥
अद्यमेस्त्रीसुखंनास्तिभोजनंनास्तिकेशव । प्रीत्यर्थं तव देवेश नियमस्तु दिवानिशि
सुप्तेन्द्रियैस्तु वैक्लव्यं भोजनं यच्च मैथुनम् । दन्तान्तरविलग्नान्नं क्षमस्वपुरुषोत्तम
उपावृत्तस्तु पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह । उपवासःसविज्ञेयोनशरीरस्यशोषणम्
पूर्वोक्तानि दशैतानि परान्नं चतथामधु । द्वादश्यांविष्णुभक्तोवैवर्जयेन्मर्दनादिकम्
अद्य मे द्वादशी पुण्या पवित्रा पापनाशिनी । पारणञ्च करिष्यामि प्रसीदगरुडध्वज
विष्णोः सन्तोषणार्थाय यो मया नियमः कृतः ।
अद्याऽहं भोजयिष्यामि त्वत्प्रसादाद्द्विजोत्तमम् ॥ ३२ ॥
अनेन विधिना कुर्याद्यावद्वर्षं समाप्यते । सम्पूर्णे तु ततो वर्षे कुर्यादुद्यापनं बुधः
आदौ मध्येतथाचान्तेव्रतस्योद्यापनंस्मृतम् । उद्यापनंनकुर्याद्यःकुष्ठीचान्धश्चजायते
तस्मादुद्यापनं कुर्याद्यथाविभवसारतः । क्रियते शुक्लपक्षे च मासे मार्गशिरे शुभे
आमन्त्र्य द्वादशमितान्ब्राह्मणान्विधिकोविदान् ।
त्रयोदशं सपत्नीकमाचार्यं विधिकोविदम् ॥ ३७ ॥
यजमानः शुचिः स्नात्वा श्रद्धायुक्तो जितेन्द्रियः ।
पादशौचार्घवस्त्राद्यैराचार्यादींस्ततोऽर्चयेत् ॥ ३८ ॥
आचार्यस्तु ततः कृत्वा मण्डलम्वर्णकैःशुभैः । चक्राब्जंसर्वतोभद्रंश्वेतवस्त्रेणवेष्टितम्
जलपूर्णंच कुम्भं तु पञ्चरत्नसमन्वितम् । पञ्चपल्लवसंयुक्तं कर्पूरागुरुवासितम् ॥ ४०
वेष्टितं रक्तवस्त्रेण ताम्रपात्रेण संयुतम् । वेष्टितं पुष्पमालाभिर्मण्डलोपरि विन्यसेत्

तस्योपरि न्यसेद्देवं लक्ष्मीनारायणं नृप !। सौवर्णी प्रतिमाकार्या एककर्षप्रमाणतः॥

वाहनाऽऽयुधसंयुक्ताप्रमाणश्चतुरङ्गुलम् । किम्वाशक्त्याप्रकुर्वीतवित्तशाठ्यम्विवर्जयेत्
ततः संस्थापयेन्मूर्ति मण्डले द्वादशैव हि । मासानामधिपः पूज्यश्चाखण्डव्रतहेतवे ॥
मण्डलात्पूर्वदिग्भागे शङ्खं संस्थापयेच्छुभम् ।
त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे ॥
निर्मितः सर्वदेवैस्त्वं पाञ्चजन्य! नमोऽस्तु ते ॥ ४५ ॥
ततस्तुस्थण्डिलंकार्यं मण्डलादुत्तरां दिशम् । सङ्कल्प्यहवनंकार्यंमन्त्रैर्वेदोक्तवैष्णवैः
स्वस्थानेस्थापयेद्विष्णुंस्थापयँश्चहरिंप्रति । पूजयेत्पुरुषसूक्तेनमन्त्रैःपौराणिकैःशुभैः
नैवेद्यार्थञ्च वै कार्या मोदका बहवोऽपि च । धूपदीपोपहाराणि कृत्वा नीराजनं ततः
यक्षकर्दमेन सम्पूज्य ततः कुर्यात्प्रदक्षिणाम् । स्वस्तिवाचनकैर्विप्रैर्नमस्कारं ततोनृप
ततस्तु ब्राह्मणैः कार्यआचार्यक्रमशो जपः । जपश्च पावमानीयो मण्डलब्राह्मणं मधु
तेजोऽसि शुक्रजं वाचंब्रह्मसामादनन्तरम् । पवित्रवन्तंसूर्यस्यविष्णोर्महसिसंहिताम्
जपान्ते कलशे विष्णुं सोपाङ्गमुपरि न्यसेत् । दिवसस्योदये चैवहोमंकुर्यादनुक्रमम्
संस्थाप्य प्रथमं पात्रम्पूजयित्वा विधानतः । स्तवनञ्च ततो होमः कर्तव्यश्चरुपूर्वकः
स्वगृह्योक्तविधानेन यजनाग्निक्रियापरः । चरुद्वयञ्च कुर्वीत पायसं वैष्णवं चरुम् ॥
जुहुयात्पुरुषसूक्तेन चरोः षोडश चाऽऽहुतीः । तथा चतुर्गृहीतेन घृतयुक्तांवराहुतिम्
प्रादेशमात्राः पालाशसमिधश्चघृतप्लुताः । इदं विष्णुर्वचतिमन्त्रेणहोतव्याःकर्मसिद्धये
शतमेकं तु जुहुयाद्द्विगुणाश्च तिलाऽऽहुतीः । कृते च वैष्णवे होमेग्रहयज्ञंसमारभेत्
समिद्भिश्चरुहोमञ्च तिलहोमं क्रमेण तु ।
उभयोः स्वस्तिकं वाच्यं ततः पूजां समाचरेत् ॥ ५८ ॥
ऋत्विजां चततोदद्याद्धेन्वादिग्रहदक्षिणाः । देवस्यतृप्त्यैदद्याच्चब्राह्मणाययथाविधि
गां वै पयस्विनीं दद्याद्वृषभञ्च सुशोभनम् । ब्राह्मणानां ततोदद्यात्त्रयोदशपदानिच
आचार्यं तु सपत्नीकं वस्त्रैश्च परितोषयेत् । तोषयित्वा महादानैस्तं सार्धञ्चसमर्पयेत्
पञ्चविंशतिकुम्भांश्च सोदकान्वस्त्रवेष्टितान् । ब्राह्मणांश्चततो दद्यात्कृतेपारणके निशि
भूरिदानञ्चदातव्यं बन्धूनामिष्टभोजनम् । पूर्णपात्रं ततो दद्यादाचार्याय सदक्षिणम् ॥

पूर्णपात्रप्रदानेन कार्यं सम्पूरितं भवेत् । उपवासव्रतश्चैव स्नानं तीर्थफलं भवेत् ॥ ६४
विप्रैःसम्भाषितं तस्यसम्पूर्णंतद्भवेत्फलम् । वित्तशक्तिर्यदैनास्तितकृतश्चैकादशीव्रतम्
स्वशक्त्या चैव कर्तव्यं तथा चोद्यापनादिकम् ।
एतत्ते सर्वमाख्यातमखण्डैकादशीव्रतम् ॥ ६६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमासमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादेऽखण्डैकादशीव्रतकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

सषड्विंशतिगुणयुक्तजागरणवर्णनमेकादशीमाहात्म्यम्

श्रीभगवानुवाच

शृणुपुत्र! प्रवक्ष्यामि जागरस्य च लक्षणम् । येनविज्ञातमात्रेणसुलभोऽहंसदा कलौ
गीतं वाद्यञ्च नृत्यञ्च पुराणपठनं तथा । धूपं दीपञ्च नैवेद्यं पुष्पं गन्धानुलेपनम् ॥ २ ॥
फलार्पणञ्च श्रद्धां च दानमिन्द्रियसंयमम् । सत्यान्वितंविनिद्रञ्चमुदामद्यजनान्वितम्
साश्चर्यं चैवसोत्साहं पापालस्यादिवर्जनम् । प्रदक्षिणासमायुक्तं नमस्कारपुरःसरम्
नीराजनसमायुक्तमतिहृष्टेन चेतसा । यामेयामे महाभाग ! कुर्यादारार्तिकं मम ॥ ५
षड्विंशद्गुणसंयुक्तमेकादश्यां च जागरम् । यः करोति नरोभक्त्यानपुनर्जायते भुवि
य एवं कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः । जागरं परया भक्त्यासलीनोजायते मयि
दष्टाः कलिभुजङ्गेन स्वपन्तेये दिने मम । कुर्वन्ति जागरं नैव मायापाशविमोहिताः
प्राप्याप्येकादशीयेषां कलौ जागरणं विना । ते विनष्टानसन्देहोयस्माज्जीवितमध्रुवम्
उद्धृतं नेत्रयुग्मञ्च दत्त्वा वै हृदये पदम् । कृतं ये नैव पश्यन्ति पापिनो ममजागरम्

अभावे वाचकस्याऽथ गीतं नृत्यञ्च कारयेत् । वाचके सति देवेश पुराणंप्रथमं पठेत्
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेय शतस्य च । पुण्यं कोटिगुणं पुत्र मम जागरणे कृते ॥
पितृपक्षे मातृपक्षे भार्यापक्षे च मानद !। कुलान्युद्धरते चैतन्मम जागरणे कृते ॥१३॥

उपोषणदिने विघ्ने प्रारब्धे जागरे सति ।

विहाय स्थानं तत्राऽहं शापं दत्त्वा व्रजाम्यहम् ॥ १४॥

अविद्धवासरे ये मे प्रकुर्वन्ति हि जागरम् । तेषां मध्येप्रहृष्टः सन्नृत्यंवैप्रकरोम्यहम्
यावद्दिनानि कुरुते जागरं मम सन्निधौ । युगाऽयुतानि तावन्ति वसते ममवेश्मनि
न गयापिण्डदानेन न तीर्थर्बहुभिर्मखैः । पूर्वजा मुक्तिमायान्ति विनैकादशिजागरात्
यः कुर्याज्जागरे पूजां कुसुमैर्मम वासरे । पुष्पेपुष्पेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः
यः कुर्याद्दीपदानञ्च रात्रौ जागरणे मम । निमिषे निमिषे पुत्र! लभते गोऽयुतं फलम्
यो दद्याज्जागरे पुत्र! हविष्यान्नसमुद्भवम् । नैवेद्यं लभते पुण्यं शालिशैलसमुद्भवम् ॥
पक्वान्नानि च यो दद्यात्फलानि विविधानि च । जागरेमेचतुर्वक्त्रलभतेगोशतंफलम्
कर्पूरेण च ताम्बूलं ददाति मम जागरे । मद्भक्तो मत्प्रसादेन सप्तद्वीपाऽधिपो भवेत्
जागरे मम देवेश यः कुर्यात्पुष्पमण्डपम् । स पुष्पकविमानेन क्रीडते मम सद्मनि ॥

जागरे मे तु यो धूपं सकर्पूरं सगुग्गुलम् ।

ददाति दहते पापं जन्मलक्षसमुद्भवम् ॥ २४ ॥

स्नापयेज्जागरे यो मां दधिक्षीरघृताम्बुभिः । भोगानिह लभेद्वैस ह्यन्तेच परमांगतिम्

दिव्याऽम्बराणि यो दद्यात्फलानि विविधानि च ।

स चिरम्वसते स्वर्गे तन्तुसंख्यासमानि वै ॥ २६ ॥

दद्यादाभरणं यो मे हेमजं रत्नसम्भवम् । सप्तकल्पान्निवसते मदुत्सङ्गे प्रियो मम
घृतेन दीपकं यो मे गव्येन च विशेषतः । ज्वालयेज्जागरेरात्रौ निमिषे गोयुतम्फलम्
जागरे मे चतुर्वक्त्र! कर्पूरेण च दीपकम् । योज्वालयेतनीराजंकपिलादानजम्फलम्
यः पुनः कुरुते दीपं गीतं नृत्यञ्च पूजनम् । शतक्रतुसमं पुण्यं व्रतैर्दानशतैरपि ॥३०॥
स्वयं यः कुरुते गीतं विलज्जोनृत्यतेयदि । स लभेन्निमिषार्धेन कोटियज्ञकृतम्फलम्

निवारयति यो गीतं नृत्यं जागरणे मम । षष्टियुगसहस्राणि पच्यते रौरवादिषु ॥
नृत्यमानस्य मर्त्यस्य ये केचिन्निकटेगताः । विमुक्ताधर्मराजेन मुक्तायान्तिचमत्पदम्
नृत्यमानस्य मर्त्यस्य उपहासं करोति यः । जागरे याति निरयं यावदिन्द्राश्चतुर्दश
जागरेममयःकुर्याद्भक्त्यापुस्तकवाचनम् । श्लोकसंख्यायुगान्येव स वसेन्ममसन्निधौ
प्रदक्षिणाप्रदानेन यत्फलं कथितम्बुधैः । न तत्कोटिमखैः पुण्यं युगसङ्ख्यैरवाप्यते
दीपमालां ममाग्रे वै यः कुर्याज्जागरे सुत !। विमानकोटिसंयुक्त आकल्पम्वसतेदिवि
मम बालचरित्राणि जागरे पठते हि यः । युगकोटिसहस्राणि श्वेतद्वीपे वसेन्नरः ॥
तस्माज्जागरणं कार्यं पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ ३६ ॥
योगीताम्पठतेरात्रौ ममनामसहस्रकम् । वेदोक्तानांपुराणानां जागरात्पुण्यमाप्नुयात्
धेनुदानं तु यः कुर्याज्जागरे मम पुत्रक !। लभते नात्र सन्देहः सप्तद्वीपवतीफलम् ॥
सर्वेषामेव पुण्यानां महत्पुण्यं महीतले । द्वादशीजागरम्पुत्र प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥४२॥
जागरं ये च कुर्वन्ति कर्मणा मनसा गिरा । न तेषां पुनरावृत्तिर्मम लोकात्कथञ्चन
प्रोत्साहयित्वा लोकान्यः कुरुते जागरं निशि ।
प्राप्नोति चक्रवर्तित्वं सत्यं मे व्याहृतं सुत! ॥ ४४ ॥
संमानिताःककुत्स्थेन रात्रौजागरकारिणः । स्वशक्त्या चैवदानेन प्राप्तंराज्यं सुदुर्लभम्
ये केचिद्गायका विप्रा वादका नर्तकाश्च ये । नर्तकीसहिता यान्ति ममलोके सनातने
दुर्योनिषु गतैः सर्वैः कृत्वा जागरणं मम । सम्प्राप्तं पृथिवीशत्वं कामुकैर्मुनिसत्तम!
निष्कामा मुक्तिमापन्नाः श्वपचाद्याश्च जागरात् ।
विवेको नास्ति वर्णानां मम जागरकारिणाम् ॥ ४८ ॥
न कलौ पावनं ध्यानं न कलौ जाह्नवीजलम् ।
न कलौ पावनं जाप्यं मुक्त्वैकं जागरं मम ॥ ४६ ॥
द्वादशीदिवसेप्राप्ते ये कुर्वन्तिहिजागरम् । ते धन्यास्ते कृतार्था वैकलिकालेनसंशयः
न भूयान्मानुषे लोके द्वादशी विमुखोनरः । अतीतानागतान्वाऽपि पातयेन्नरके हि सः
वरमेको गुणयुक्तः किं जातैर्बहुभिः सुतैः । द्वादशीजागरात्सर्वांस्तारयेद्यो हिपूर्वजान्

माहात्म्यंपठतेभक्त्वामयोक्तंजागरोद्भवम् । द्वादशीसम्भवःपुत्रःकुलानांतारयेच्छतम्
अगम्यागमने पापमभक्ष्यस्यापि भक्षणे । पापम्विलयमायाति कृते जागरणे सुत !॥
अज्ञानाद्यत्कृतम्पापं ज्ञात्वायत्पातकंकृतम् । पूर्वजन्मार्जितं पापमिह जन्मनि यत्कृतम्

सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि मनसाचिन्तितान्यपि ।
द्वादश्यां वै चतुर्वक्त्र रात्रौ जागरणे कृते ॥ ५६ ॥
द्वादशीजागरेणैव मुक्तिं गच्छन्ति मानवाः ॥ ५७ ॥

न तत्पुण्यं कुरुक्षेत्रे प्रयागे वसतांकलौ । माहात्म्यं वसतां पुंसां यत्फलंद्वादशीषुच
नाऽश्वमेधसहस्रैस्तु तीर्थकोट्यवगाहनात् । तत्फलं प्राप्यते पुत्र द्वादशीजागरे कृते

पठेद्वा शृणुयाद्वाऽपि माहात्म्यं द्वादशीभवम् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा स लभेच्छाश्वतीं गतिम् ॥ ६० ॥
सर्वे दुष्टाः समस्ताश्च सौम्यास्तस्य सदा ग्रहाः ।
सन्ततेर्न वियोगस्तु द्वादशी यस्य कारणम् ॥ ६१ ॥

मम कीर्तिरुचिर्नित्यं न विपद्येत कर्हिचित् । रणेराजकुले चैव सर्वदा विजयी भवेत्
धर्मोपरि मतिर्नित्यं भक्तिर्मयि सुनिर्मला । पातकं नैव लिप्येतद्वादशीभक्तितोनरम्
प्रेतत्वं नैव तस्याऽस्ति कृते जागरणे मम । एकादश्या विहीनस्य परलोकगतिर्नहि

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कलौ कार्यं हि तद्दिनम् ॥ ६४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
मार्गशीर्षमाससमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वाद एकादशीव्रतजागरणफलकथनं
नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

———

चतुर्दशोऽध्यायः

मत्स्योत्सवमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीभगवानुवाच

ततः प्रभाते द्वादश्यांकार्योमत्स्योत्सवोबुधैः । मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे यथाविध्युपचारतः
अथ मार्गशिरे मासेदशम्यांनियतात्मवान् । कृत्वादेवार्चनं धीमानग्निकार्यंयथाविधि

शुचिवासाः प्रसन्नात्मा हव्यमन्नं सुसंस्कृतम् ।
पक्त्वा पञ्चपदे गत्वा पुनः शौचन्तु पादयोः ॥ ३ ॥

कृत्वाऽष्टाङ्गुलमानं तु क्षीरवृक्षसमुद्भवम् । भक्षयेद्दन्तकाष्ठं तु ततश्चाचम्य यत्नतः

दृष्ट्वाऽऽकाशानि सर्वाणि ध्यत्वा वै मां गदाधरम् ।
शङ्खचक्रगदापाणिं किरीटं पीतवाससम् ॥ ५ ॥

प्रसन्नवदनाऽम्भोजं सर्वलक्षणलक्षितम् । ध्यात्वापुनर्जलं हस्तेगृहीत्वा भानुमध्यगम्
ध्यात्वाऽर्घ्यं दापयेत्तत्र करतोयेन मानवः । एवमुच्चारयेद्वाचं तस्मिन्काले चतुर्मुख !॥

एकादश्यां निराहारः स्थित्वाऽहनि परे ह्यहम् ।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष! शरणं मे भवाऽच्युत !॥ ८ ॥

एवमुक्त्वा ततो रात्रौ मम मूर्तेश्चसन्निधौ । जपेन्नारायणायेति स्वयं तत्र विधानतः
ततः प्रभाते विमलां नदींगत्वासमुद्रगाम् । इतराम्वातडागम्वा गृहेवानियतात्मवान्
आनीय मृत्तिकां शुद्धां मन्त्रेणाऽनेनमानवः । वन्दयेद्देवदेवेशं तदा शुद्धो भवेन्नरः॥
धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि! सर्वदा । तेन सत्येन मे पापं यांवन्मोचय सुव्रते!

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि दैवतैः ।
तेनेमां मृत्तिकां स्पृष्टामाऽऽलभामि त्वयोद्धृताम् ॥ १३ ॥
त्वयि नित्यं रसाः सर्वे स्थिता वरुण ! सर्वदा ।

तेनेमां मृत्तिकां प्लाव्य पूतां कुरुष्व मा चिरम् ॥ १४ ॥

एवं मृदं तथा तोयं प्रसाद्याऽऽत्मानमालभेत् ।
त्रिःकृत्वाऽशेषमृदया पिण्डमालिप्य वै जले ॥ १५ ॥

तस्मिन्नरः सदासम्यङ्नक्रकच्छपदूरतः । स्नात्वाचावश्यकं कृत्वा पुनर्मम गृहम्व्रजेत्
तत्राऽऽराध्य महायोगिन्देवं नारायणंहरिम् । केशवायनमःपादौकटिं दामोदराय च
जानुयुग्मं नृसिंहाय उरः श्रीवत्सधारिणे । कण्ठेकौस्तुभनाभाय वक्षः श्रीपतये तथा
त्रैलोक्यविजयायेति बाहुं सर्वात्मने शिरः । रथाङ्गधारिणेवक्त्रं श्रीकरायेतिवारिजम्
गम्भीरायेति च गदामम्भोजं शान्तमूर्तये । एवमभ्यर्च्य देवेशं देवं नारायणम्प्रभुम् ॥

पुनस्तस्याऽग्रतः कुम्भांश्चतुरः स्थापयेद् बुधः ।
जलपूर्णान्समाल्यांश्च सितचन्दनलेपितान् ॥ २१ ॥

चूतपल्लवसंयुक्तान्सितवस्त्रावगुण्ठितान् । छादितांस्ताम्रपात्रैश्च तिलपूर्णैश्च काञ्चनैः
चत्वारस्तु समुद्राश्चकलशाःसम्प्रकीर्तिताः । तेषांमध्येशुभम्पीठंस्थापयेद्वस्त्रगर्भितम्
तस्मिन्सुवर्णं रौप्यं वा ताम्रंवा दारवंतथा । अलाभेसर्वपात्राणांपालाशंपात्रमिष्यते

तोयपूर्णञ्च तत्कृत्वा तस्मिन्पात्रे ततो न्यसेत् ।
सौवर्णं मत्स्यरूपञ्च कृत्वा देवं जनार्दनम् ॥ २५ ॥

देवदेवाङ्गसंयुक्तं श्रुतिस्मृतिविभूषितम् । तत्राऽनेकविधैर्भक्ष्यैःफलैःपुष्पैश्चशोभितम्
गन्धैर्धूपैश्च वस्त्रैश्च अर्चयित्वा यथाविधि । रसातलगता वेदायथादेव त्वयोद्धृताः
मत्स्यरूपेण तद्वन्मां भवादुद्धर केशव !। एवमुच्चार्य तस्याऽग्रे जागरं तत्र कारयेत्
यथाविभवसारेण प्रभाते विमले तथा । चतुर्णां ब्राह्मणानाञ्च चतुरो दापयेद्घटान् ॥
पूर्वञ्च बह्वृचे दद्याच्छान्दोग्ये दक्षिणं तथा । यजुःशाखान्वितेदद्यात्पश्चिमंघटमुत्तमम्
उत्तरं कामतो दद्यादेष एव विधिः स्मृतः । ऋग्वेदः प्रीयतां पूर्वे सामवेदस्तु दक्षिणे
यजुर्वेदः पश्चिमतो ह्यथर्वश्चोत्तरेण तु । अनेन क्रमयोगेन प्रीयतामिति वाचयेत् ॥३२
मत्स्यरूपं तुसौवर्णमाचार्यायनिवेदयेत् । गन्धधूपादिवस्त्रैस्तुसम्पूज्यविधिवत्क्रमात्
यस्त्विमं सरहस्यञ्चमन्त्रेणैवोपपादयेत् । विधानंविधिवद्दत्त्वादाताकोटिगुणोत्तरम्
प्रतिपाद्यगुरुं यस्तु मोहाद्विप्रतिपद्यते । स जन्मकोटिनरके पच्यते पुरुषाधमः ॥ ३५

विधानस्य प्रदाता यो गुरुरित्युच्यते बुधैः । एवंदत्त्वाविधानेनद्वादश्यांमांसमर्चयेत्
विप्राणां भोजनं दद्याद्यथाशक्त्या च दक्षिणाम् ।
भूरिणा परमान्नेन ततः पश्चात्स्वयं नरः ॥ ३७ ॥
भुञ्जीतसहितो विप्रैर्वाग्यतःसंयतेन्द्रियः । अनेनविधिनायस्तुकुर्यान्मत्स्योत्सवंनरः
तस्यपुण्यफलंचाऽग्रेशृणुसत्यवताम्वर । यदि वक्त्रसहस्राणां सहस्राणिभवन्ति हि
आयुश्च ब्रह्मणा तुल्यं लभेद्यदि महाव्रत !। तदा वै ह्यस्य धर्मस्य फलं कथयितुंभवेत्
य इमं श्रावयेद्भक्त्या द्वादशीकल्पमुत्तमम् । शृणोति वा स पापैस्तुसर्वैरेव विमुच्यते

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांद्वितीये वैष्णवखण्डे-
मार्गशीर्षमासमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे मत्स्योत्सवकथनंनाम
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीविष्णुप्रीत्यर्थदानभोजनादिमहत्त्ववर्णनपुरःसरंश्रीनाममाहात्म्यम्

श्रीभगवानुवाच

ये त्वया वै कृताःप्रश्नाःपूर्वंप्रश्नविदांवर । तान्वर्णयिष्येक्रमशोनिशामयसुनिश्चितम्
सहोमासे च देवो वै कीर्तियुक्तो हि केशवः । तस्य पूजाप्रकर्तव्यायथापूर्वंप्रभाषितम्
ब्राह्मणं केशवं स्मृत्वा तत्पत्नींकीर्तिमेवच । दम्पतीविधिवत्पूज्यौवस्त्राभरणधेनुभिः
दम्पती पूजितौ वत्स पूजितोऽहंनसंशयः । तस्मादवश्यं सम्पूज्यौदम्पतीममतुष्टिदौ
दानञ्चविविधं कार्यंमम तुष्टिकरं परम् । गोदानं भूमिदानञ्च स्वर्णदानं विशेषतः ॥
वस्त्रदानं तथा शय्या तथाऽलङ्करणानि च । सन्नदानं प्रकर्तव्यं मम सन्तोषकारकम्
सर्वेषामेवदानानां विशेषश्च विषकं स्मृतम् । वसुन्धरा तथा धेनुर्विद्यादानं तथैव च

दत्ते दानत्रिके वत्स भवेत्प्रीतिर्ममाऽतुला । तस्मान्नरैस्तुकर्तव्यंसहोमासेत्रिकंशुभम्
स्नानस्य च विधिः सम्यक्पुरैवोक्तोमयाऽनघ । पूजाख्नानञ्चदानञ्चविधिरेषनसंशयः
मार्गशीर्षं समग्रं तु एकभक्तेन यः क्षिपेत् ।
भोजयेद्यो द्विजान्भक्त्या स मुच्येद्व्याधिकिल्बिषैः ॥ १० ॥
कृषिभागी बहुधनो बहुधान्यश्च जायते । किमत्र बहुनोक्तेन शृणु गुह्यं परं मम ॥११
हुतभुग्ब्राह्मणश्चैव वदनं मम मानद । ब्राह्मणाख्यं मुखं श्रेष्ठं न तथा हव्यवाहनः ॥१२
ब्राह्मणाख्ये मुखे पुत्र! हुतं कोटिगुणं भवेत् ।
अग्न्याख्यं ब्राह्मणाधीनं स्वतन्त्रा ब्राह्मणाः किल ॥ १३ ॥
सशर्करं घृतयुतं पायसं शशिसन्निभम् । होतव्यं ब्राह्मणमुखे मम तुष्टिकरं सुत ॥१४
शुमण्डलमोदककोकरसं सुत! फेनिकया घृतपूरयुतम् ।
यज विप्रमुखे मम तुष्टिकरं यदि चेच्छसि दारसुतादिसुखम् ॥ १५ ॥
कुमुदेन समप्रभसौरभदं शुभभक्तयुतं त्वथ मुद्गयुतम् ।
सुरभीकृतपुष्कलसर्पिसमं कुरु विप्रमुखे हवनं हि सहे ॥ १६ ॥
पयसा सह सर्पिषि च क्वथितं बहुखारिकखारफलैः सितया ।
सह कर्पूरनारिफलेन समं युतसीकरकं सुत! शुभ्रकरम् ॥ १७ ॥
व्यञ्जनानि च शुभ्राणि मनोज्ञानिप्रियाणिच । कर्त्तव्यानिसहोमासेब्राह्मणार्थेचतुर्मुख!
प्रियाशिखरिणीकार्या चान्यत्तेषां प्रियञ्चयत् । कृत्वैवंभोजयेद्विप्राञ्छ्रद्धयापरयासुत
रसास्वादनपूर्वं हि भुञ्जते वै यथायथा । तथातथा मम प्रीतिर्जायते भुवि दुर्लभा
तस्मात्तत्तथा कार्यं यथातुष्यन्तिब्राह्मणाः । तुष्टैस्तैश्चाऽप्यहंतुष्टोभवामीहनसंशयः
श्रद्धत्स्व त्वं चतुर्वक्त्र! न ते मिथ्या ब्रवीम्यहम् ।
एतद्गुह्यं मया प्रोक्तं श्रेयोऽर्थं तव मानद !॥ २२ ॥
आक्रोशयन्ति यदि ते अथवा प्रहरन्ति चेत् । तथापि तेनमस्यावैममप्रीत्याहिमानद
एवं कार्यं सदा पुत्र मार्गशीर्षे विशेषतः । यदुक्तं भवता ब्रह्मन्भोक्तव्यं किंशृणुष्वतत्
भोक्तव्यं मम मम चोच्छिष्टंममभक्तिपरायणैः । पवित्रकरणंपुत्रपापिनामपिमुक्तिदम्

ममाशनस्य शेषञ्च योभुनक्तिदिनेदिने । सिक्थेसिक्थेभवेत्पुण्यंचान्द्रायणशतोद्भवम्
अवशिष्टं ततोच्छिष्टं भक्तानां भोजनद्वयम् ।
नाऽन्यद्वै भोजनं तेषां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ २७ ॥
अनर्पयित्वा यो भुङ्क्ते अन्नपाकञ्च यत् । श्वानविष्ठासमं चान्नं पानञ्च मदिरासमम्
तस्मान्मामर्पयेत्पुत्र अन्नपानादि चौषधम् । भक्षयेत्परयाभक्त्याअशुचेःशुचिकारकम्
तीर्थयज्ञादिकफलं कलिदोषविनाशनम् । ममोच्छिष्टं सुगतिदमपि दुष्कृतकर्मणाम्
अन्येषां दैवतानाञ्च न गृह्णीयाच्च भक्षितम् । अभक्तानाञ्च पक्वान्नं भुक्त्वाचनरकंव्रजेत्
वक्तव्यमेव यत्प्रोक्तं तच्छृणुष्व समाहितः । कथयिष्ये तव प्रीत्या अपि गुह्यतरंमम
मम नाम प्रवक्तव्यं सहे चैव विशेषतः । कृष्णकृष्णेति वक्तव्यं मम प्रीतिकरं परम्
प्रतिज्ञैषा च मे पुत्र न जानन्ति सुरासुराः । मनसा कर्मणा वाचा यो मे शरणमागतः
स हि सर्वमवाप्नातिकामनामिहलौकिकीम् । सर्वोत्कृष्टञ्चवैकुण्ठंमत्प्रियांकमलामपि
कृष्णकृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ।
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ॥ ३६ ॥
विनोदेनाऽपि दम्भेन मौढ्याल्लोभाच्छलादपि ।
यो मां भजत्यसौ वत्स! मद्भक्तोनाऽवसीदति ॥ ३७
ये वै पठन्ति कृष्णेति मरणे पर्युपस्थिते । यदि पापयुताः पुत्रनपश्यन्तियमंक्वचित्
पूर्वे वयसिपापानिकृतान्यपिचकृत्स्नशः । अन्तकालेचकृष्णेतिस्मृत्वामामेत्यसंशयम्
नमः कृष्णाय महते विवशोऽपि वदेद्यदि । ध्रुवं पदमवाप्नोति मरणे पर्युपस्थिते
श्रीकृष्णेति कृतोच्चारैः प्राणैर्यदि वियुज्यते । दूरस्थः पश्यति चतंस्वर्गतंप्रेतनायकः
श्मशाने यदि रथ्यायां कृष्णकृष्णेति जल्पति । म्रियतेयदिचेत्पुत्रमामेवैतिनसंशयः
दर्शनान्मम भक्तानां मृत्युमाप्नोतियःक्वचित् । विनामत्स्मरणात्पुत्रमुक्तिमेतिसमानवः
पापानलस्य दीप्तस्य भयंमा कुरुपुत्रक । श्रीकृष्णनाममेघोत्थैःसिच्यतेनीरबिन्दुभिः
कलिकालभुजङ्गस्य तीक्ष्णदंष्ट्रस्य किं भयम् ।
श्रीकृष्णनामदारूत्थवह्निदग्धः स नश्यति ॥ ४० ॥

पापपावकदग्धानां कर्मचेष्टावियोगिनाम् । भेषजंनास्तिमर्त्यानांश्रीकृष्णस्मरणंविना
प्रयागे वै यथा गङ्गा शुक्लतीर्थे च नर्मदा । सरस्वती कुरुक्षेत्रे तद्वच्छ्रीकृष्णकीर्तनम्
भवाम्भोधिनिमग्नानांमहापापोर्मिपातिनाम् । नगतिर्मानवानाञ्चश्रीकृष्णस्मरणंविना

मृत्युकालेऽपि मर्त्यानां पापिनां तदनिच्छताम् ।
गच्छतां नाऽस्ति पाथेयं श्रीकृष्णस्मरणं विना ॥ ४६ ॥

तत्र पुत्र! गया काशी पुष्करंकुरुजाङ्गलम् । प्रत्यहंमन्दिरेयस्यकृष्णकृष्णेतिकीर्तनम्
जीवितं जन्मसाफल्यंमुखं तस्यैव सार्थकम् । सततंरसनायस्यकृष्णकृष्णेतिजल्पति
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् । बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥ ५२
नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्दहने मम । तावत्कर्तुं न शक्नोतिपातकंपातकीजनः
नाऽपविद्धं भवेत्तस्य शरीरं नैव मानसम् । न पापंनचवैक्लव्यंकृष्णकृष्णेतिकीर्तनात्
श्रीकृष्णेति वचः पथ्यं न त्यजेद्यःकलौ नरः । पापामयोवैन भवेत्कलौतस्यैवमानसे
श्रीकृष्णेति प्रजल्पन्तंदक्षिणाशापतिर्नरम् । श्रुत्वामार्जयतेपापंतस्यजन्मशतार्जितम्
चान्द्रायणशतैः पापंपराकाणांसहस्रकैः । यन्नापयातितद्यातिकृष्णकृष्णेतिकीर्तनात्

नान्याभिर्नामकोटीभिस्तोषो मम भवेत् क्वचित् ।
श्रीकृष्णेति कृतोच्चारे प्रीतिरेवाऽधिकाधिका ॥ ५८ ॥

चन्द्रसूर्योपरागैस्तु कोटीभिर्यत्फलं स्मृतम् ।
तत्फलं समवाप्नोति कृष्णकृष्णेति कीर्तनात् ॥ ५६ ॥

गुरुदाराभिगमनं हेमस्तेयादिपातकम् । श्रीकृष्णकीर्तनाद्याति घर्मतप्तं हिमंयथा

युक्तो यदि महापापैरगम्यागमनादिभिः ।
मुच्यते चान्तकालेऽपि सकृच्छ्रीकृष्णकीर्तनात् ॥ ६१ ॥

अविशुद्धमना यस्तु विनाप्याचारवर्तनात् ।
प्रेतत्वं सोऽपि नाप्नोति अन्ते श्रीकृष्णकीर्तनात् ॥ ६२ ॥

मुखे भवतु माजिह्वाऽसतीयातुरसातलम् । नसाचेत्कलिकालेयाश्रीकृष्णगुणवादिनी
स्ववक्त्रे परवक्त्रे च वन्ध्या जिह्वासमाः । कुरुतेयाकलौपुत्र श्रीकृष्णगुणकीर्तनम्

पापवल्लीमुखेतस्य जिह्वारूपेण कीर्त्यते । या नवक्तिदिवारात्रौश्रीकृष्णगुणकीर्तनम्

पततां शतखण्डा तु सा जिह्वा रोगरूपिणी ।
श्रीकृष्णकृष्णकृष्णेति श्रीकृष्णेति न जल्पति ॥ ६६ ॥

श्रीकृष्णनाममाहात्म्यं प्रातरुत्थाययः पठेत् । तस्याऽहंश्रेयसांदाताभवाम्येवनसंशयः

श्रीकृष्णनाममाहात्म्यं त्रिसन्ध्यं हि पठेत्तु यः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति स मृतः परमां गतिम् ॥ ६८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे श्रीकृष्णनाममाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

भगवद्ध्यानपुरस्सरंभागवतश्रैष्ठ्यमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीभगवानुवाच

शृणु ध्यानं चतुर्वक्त्र! वक्ष्यामि प्रीतिमानसः । श्रुतेनैवचसौभाग्यंलभतेमानवोभुवि

अथ श्रीमदुद्यानसम्वीतहैमस्थलोद्भासिरत्नस्फुरन्मण्डपान्तः ।
लसत्कल्पवृक्षोदितोद्दीप्तरत्नस्थलाधिष्ठिताम्भोजपीठाऽधिरूढम् ॥ २ ॥

महानीलनीलाभमत्यन्तबालं गुडस्निग्धवक्त्रान्तविस्रस्तकेशम् ।
अलिव्रातपर्याकुलोत्फुल्लपद्मप्रमुग्धाननं श्रीमदिन्दीवराक्षम् ॥ ३ ॥

चलत्कुण्डलोल्लासितोत्फुल्लगल्लं सुघोणं सुशोणाधरं सुस्मितास्यम् ।
अनेकोल्लसत्कण्ठभूषालसन्तं वहन्तं नखं पौण्डरीकं सुनेत्रम् ॥ ४ ॥

समुद्यद्धूसरोरःस्थलं धेनुधूल्या सुपुष्टाङ्गमष्टापदाकल्पदीप्तम् ।

कटीरस्थले चारुजङ्घोरुयुग्मे पिनद्धं क्वणत्किङ्किणीजालदाम्ना ॥ ५ ॥
हसन्तं लसद्बन्धुजीवप्रसूनप्रभापाणिपादाम्बुजोदारकान्त्या ।
करे दक्षिणे पायसं वामहस्ते दधानं नवं शुद्धहैयङ्गवीनम् ॥ ६ ॥
महीभारभूताऽमरारातियूथाऽनलं पूतनादीन्निहन्तुं प्रवृत्तम् ।
प्रभुं गोपिकागोपवृन्देन वीतं सुरेन्द्रादिभिर्वन्दितं देवदेवम् ॥ ७ ॥
प्रगे पूजयित्वा त्वनुस्मृत्य कृष्णं भुजङ्गेन्द्रवज्रादिभिर्भक्तिनम्रः ।
सिताम्भोजहैयङ्गवीनैश्च दध्ना विमिश्रेण दुग्धेन सम्प्रीणयेत्तम् ॥ ८ ॥
इति प्रातरेवाऽर्चयेदच्युतं यो नरः प्रत्यहं शश्वदास्तिक्ययुक्तः ।
लभेत्सोऽचिरेणैव लक्ष्मीं समग्रामिह प्रेत्य शुद्धं परं धाम भूयात् ॥ ९ ॥

मन्त्रश्चोक्तःपुरापुत्रआदौलोकमनोहरः । श्रीमद्दामोदराख्योहि श्रृणुतस्याधिकारिणः
अयोग्याय न दातव्यो मन्त्रराजस्त्वयासुत !। यत्नेनगोपनीयश्चरहस्यंशीघ्रसिद्धिदम्
अलसंमलिनंक्लिष्टंदम्भमोहसमन्वितम् । दरिद्रं रोगिणं क्रुद्धं रागिणम्भोगलालसम्
असूयामत्सरग्रस्तं शठं परुषवादिनम् । अन्यायेनाऽर्जितधनं परदाररतं सदा ॥ १३ ॥
विदुषां वैरिणं नित्यमज्ञं पण्डितमानिनम् । भ्रष्टव्रतं क्लिष्टवृत्तिं पिशुनं दुष्टमानसम्
बह्वाशिनं क्रूरचेष्टमग्रगण्यं दुरात्मनाम् । कृपणं पापिनं रौद्रमाश्रितानां भयङ्करम् ॥
एवमादिगुणैर्युक्तं शिष्यं नैव परिग्रहेत् । गृह्णीयाद्यदि तद्दोषः प्रायो गुरुमुपस्पृशेत्
अमात्यदोषो राजानंजायादोषःपतिंयथा । तथा शिष्यकृतोदोषोगुरुं प्राप्नोत्यसंशयम्
तस्माच्छिष्यं गुरुर्नित्यं परीक्ष्यैव परिग्रहेत् । कायेन मनसा वाचा गुरुशुश्रूषणेरतम्
अस्तेयवृत्तिमास्तिक्ययुक्तं मोक्षकृतोद्यमम् । ब्रह्मचर्यरतं नित्यं दृढव्रतमकल्मषम् ॥
प्रसन्नहृदयं शुद्धमशठं विमलाशयम् । परोपकारनिरतं स्वार्थे च विगतस्पृहम् ॥२०॥
स्वचित्तवित्तदेहैस्तु परितोषकरं गुरोः । आश्रितानांतथा पुत्र! परितोषकरंशुचिम्
ईदृग्विधाय शिष्याय मन्त्रं दद्यात्तु नाऽन्यथा ।
यद्यन्यथा वदेत्तस्मिन्देवताशाप आपतेत् ॥ २२ ॥
श्रृणु पुत्र! प्रवक्ष्यामिगुरोरपि च लक्षणम् । एभिस्तु लक्षणैर्युक्तोगुरुरेवभवेन्नृणाम्

समचेताः प्रशान्तात्मा विमन्युश्च सुहृन्नृणाम् ।
साधुर्महान्समो लोके स गुरुः परिकीर्तितः ॥ २४ ॥

मम व्रतधरो नित्यं वैष्णवानां सुसम्मतः । मदाश्रयकथासक्तो ममोत्सवरतःसदा ॥

कृपासिन्धुः सुपूर्णार्थः सर्वसत्त्वोपकारकः ।
निःस्पृहः सर्वतः सिद्धःसर्वविद्याविशारदः ॥ २६ ॥

सर्वसंशयसंछेत्ताऽनलसो गुरुरादृतः । ब्राह्मणः सर्वकालज्ञः कुर्यात्सर्वेष्वनुग्रहम् ॥ पूर्वोक्तलक्षणैर्युक्तः शिष्यईदृग्विधाद्गुरोः । गृह्णीयात्पुत्र! तन्मन्त्रं मार्गशीर्षे मदायने वैष्णवानाम्व्रतानाञ्चकुर्यात्स्वीकरणम्बुधः । मत्प्रियंश्रृणुयाच्छश्वच्छ्रीमद्भागवतंपरम् श्रीमद्भागवतंनाम पुराणंलोकविश्रुतम् । श्रृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो मम सन्तोषकारणम् नित्यं भागवतं यस्तु पुराणम्पठते नरः । प्रत्यक्षरम्भवेत्तस्य कपिलादानजम्फलम् ॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् । पठते श्रृणुयाद्यस्तुगोसहस्रफलंलभेत् यः पठेत्प्रयतो नित्यं श्लोकं भागवतं सुत !। अष्टादशपुराणानां फलमाप्नोति मानवः नित्यं मम कथा यत्र तत्र तिष्ठन्तिवैष्णवाः । कलिबाह्यानरास्ते वैयेऽर्चयन्तिसदामम वैष्णवानां तु शास्त्राणियेऽर्चयन्तिगृहेनराः । सर्वपापविनिर्मुक्ताभवन्ति सुरवन्दिताः

येऽर्चयन्ति गृहे नित्यं शास्त्रं भागवतं कलौ ।
आस्फोटयन्ति वल्गन्ति तेषाम्प्रीतो भवाम्यहम् ॥ ३६ ॥

यावद्दिनानि हे पुत्र ! शास्त्रं भागवतं गृहे । तावत्पिबन्तिपितरःक्षीरंसर्पिर्मधूदकम् ॥

यच्छन्ति वैष्णवे भक्त्या शास्त्रं भागवतं हि ये ।
कल्पकोटिसहस्राणि मम लोके वसन्ति ते ॥ ३८ ॥

येऽर्चयन्ति सदा गेहेशास्त्रंभागवतं नराः । प्रीणितास्तैश्चविबुधायावदाऽऽभूतसम्प्लवम् श्लोकार्धश्लोकपादम्वा वरं भागवतं गृहे । शतशोऽथसहस्रैश्चकिमन्यैःशास्त्रसङ्ग्रहैः न यस्य तिष्ठते शास्त्रं गृहे भागवतं कलौ । न तस्य पुनरावृत्तिर्याम्यपाशात्कदाचन कथं स वैष्णवो ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ । गृहेनतिष्ठतेयस्यश्वपचादधिकोहिसः सर्वस्वेनाऽपि लोकेश! कर्तव्यः शास्त्रसंग्रहः । वैष्णवस्तुसदाभक्त्यातुष्ट्यर्थंममपुत्रक

यत्रयत्र भवेत्पुण्यं शास्त्रं भागवतं कलौ । तत्रतत्रसदैवाऽहं भवामि त्रिदशैः सह
तत्र सर्वाणि तीर्थानि नदीनदसरांसि च ।
यज्ञाः सप्तपुरी नित्यं पुण्याः सर्वे शिलोच्चयाः ॥ ४५ ॥
श्रोतव्यं मम शास्त्रं हि यशोधर्मजयार्थिना । पापक्षयार्थं लोकेश!मोक्षार्थं धर्मबुद्धिना
श्रीमद्भागवतं पुण्यमायुरारोग्यपुष्टिदम् । पठनाच्छ्रवणाद्वाऽपिसर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
न शृण्वन्ति न हृष्यन्ति श्रीमद्भागवतं परम् ।
सत्यं सत्यं हि लोकेश तेषां स्वामी सदा यमः ॥ ४८ ॥
न गच्छति यदा मर्त्यःश्रोतुंभागवतंसुत !। एकादश्यांविशेषेणनाऽस्तिपापरतस्ततः
श्लोकंभागवतञ्चाऽपिश्लोकार्धंपादमेववा । लिखितन्तिष्ठतेयस्यगृहेतंस्यवसाम्यहम्
सर्वाऽऽश्रमाऽभिगमनं सर्वतीर्थाऽवगाहनम् । नतथा पावनं नृणां श्रीमद्भागवतं यथा
यत्रयत्र चतुर्वक्त्र!श्रीमद्भागवतं भवेत् । गच्छामि तत्रतत्राऽहं गौर्यथा सुतवत्सला॥
मत्कथावाचकं नित्यं मत्कथाश्रवणे रतम् । मत्कथाप्रीतमनसंनाऽहंत्यक्ष्यामितंनरम्
श्रीमद्भागवतं पुण्यं दृष्ट्वा नोत्तिष्ठते हि यः । साम्वत्सरंतस्यपुण्यं विलयंयातिपुत्रक
श्रीमद्भागवतंदृष्ट्वा प्रत्युत्थानाभिवादनैः । सम्मानयेत तं दृष्ट्वा भवेत्प्रीतिर्ममाऽतुला ॥
दृष्ट्वाभागवतं दूरात्प्रक्रमेत्सम्मुखं हि यः । पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥
उत्थायप्रणमेद्यो वै श्रीमद्भागवतं नरः । धनं पुत्रांस्तथा दारान्भक्तिञ्च प्रददाम्यहम् ॥
महाराजोपचारैस्तु श्रीमद्भागवतंसुत !। शृण्वन्ति ये नराभक्त्यातेषांवश्योभवाम्यहम्
ममोत्सवेषु सर्वेषु श्रीमद्भागवतम्परम् । शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या मम प्रीत्यैचसुव्रत
वस्त्रालङ्करणैः पुष्पैर्धूपदीपोपहारकैः । वशीकृतोह्यहं तैश्च सत्स्त्रिया सत्पतिर्यथा ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
मार्गशीर्षमासमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे भागवतश्रैष्ठ्यमाहात्म्यवर्णनंनाम
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

मथुरामाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कस्मिन्क्षेत्रे हिदेवेशमार्गशीर्षोऽधिकःस्मृतः। किं फलञ्चभवेत्तस्मिन्नेतत्सर्वंवदप्रभो

श्रीभगवानुवाच

मथुरेतिसुविख्यातमस्ति क्षेत्रम्परं मम। सुरम्याच प्रशस्ता चजन्मभूमिः प्रियामम
पदेपदे तीर्थफलं मथुरायाश्चतुर्मुख !। यत्रयत्र नरः स्नातो मुच्यते घोरकिल्बिषात्॥
सर्वधर्मविहीनानां पुरुषाणां दुरात्मनाम्। नरकार्तिहरा पुत्र! मथुरा पापनाशिनी॥४
कृतघ्नश्च सुरापश्च चौरोभग्नव्रतस्तथा। मथुरां प्राप्य मनुजोमुच्यते घोरपातकात्॥
सूर्योदये तमो नश्येद्यथा वज्रभयान्नगाः। तार्क्ष्यंदृष्ट्वा यथा सर्पा मेघा वातहता यथा
तत्त्वज्ञानाद्यथा दुःखं हरिं दृष्ट्वा यथा गजाः। तथा पापानिनि श्यन्तिमथुरादर्शनात्सुत
श्रद्धया भक्तियुक्तस्तु दृष्ट्वा मधुपुरीं नरः। ब्रह्महाऽपि विशुध्येतकिंपुनस्त्वन्यपातकी
मथुरांस्नातुकामस्य गच्छतस्तु पदेपदे। निराशानि व्रजन्त्येव पापानि च शरीरतः॥
अनुषङ्गेण गच्छन्ति वाणिज्येनाऽपिसेवया। मथुरास्नानमात्रेणदिवंयान्तिगतांहसः
नामाऽपि गृह्णतामस्याः सदा मुक्तिर्न संशयः। सदाकृतयुगं तत्र सदाचैवोत्तरायणम्

यः शृणोति चतुर्वक्त्र! माथुरं मम मन्दिरम्।
अन्येनोच्चारिते सद्यः सोऽपि पापात्प्रमुच्यते॥ १२॥

त्रिरात्रमपि ये तत्र वसन्ति मनुजाः सुत !। तेषां पुनन्तिसंदृष्टाः स्पृष्टाश्चरणरेणवः
यथा तृणसमूहं तु ज्वलयन्ति स्फुलिङ्गकाः। तथामहान्ति पापानिदहते मथुरा पुरी
स्नानेन सर्वतीर्थानां यः स्यात्सुकृतसञ्चये। ततोऽधिकतरं प्रोक्तामथुरासर्वमण्डले
चतुर्णामपि वेदानां पुण्यमध्ययनाच्चयत्। तत्पुण्यं जायतेतत्रमथुरांस्मरतां नृणाम्
अन्यत्र हि कृतं पापं तीर्थमासाद्य नश्यति। तीर्थेषु यत्कृतंपापं वज्रलेपो भविष्यति

मथुरायां कृतं पापं मथुरायां प्रणश्यति । धर्मार्थकाममोक्षाख्यंस्थित्वा तत्र लभेन्नरः
अन्यत्र दशभिर्वर्षैः प्रारब्धं भुज्यते हि यत् । किल्बिषं चचतुर्वक्त्रमाथुरेदशभिर्दिनैः
दिविनैव न पाताले नान्तरिक्षे न मानुषे । समं तु मथुरायां हि प्रियं मम सदैव हि
सर्वेषामेव तीर्थानां माथुरं परमं महत् । बालक्रीडनरूपाणि कृतानि सह गोपकैः ॥
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि त्रिंशद्वर्षशतानि च । यत्फलं भारतेवर्षे तत्फलं मथुरां स्मरन् ॥
सन्निहत्यां तु यत्पुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे । ततोऽधिकंलभेत्पुत्र! मथुरायांदिनेदिने
पूर्णवर्षसहस्रे तु तीर्थराजे तु यत्फलम् । तत्फलं लभते पुत्र सहोमासे मधोः पुरे ॥
पूर्णवर्षसहस्रे तु वाराणस्याञ्च यत्फलम् । तत्फलं लभते पुत्र मथुरायां सहोदिने

गोदावरीद्वारकयोर्नरो यः क्षेत्रे कुरूणां क्षितिदायको यः ।
षण्मासकात्साधयते गयायां समं भवेन्नो दिनमेकमाथुरम् ॥ २६ ॥
न द्वारका काशिकाञ्ची न माया गदाधरो यस्य समं न तीर्थम् ।
सन्तर्पिता यद्यमुनाजलेन वाञ्छन्ति नो वै पितरः पिण्डदानम् ॥ २७ ॥

मथुरायां प्रकुर्वन्तिपुरीसाधारणीदृशम् । येनरास्तेऽपिविज्ञेयाःपापराशिभिरन्विताः
न दृष्टा मथुरा येन दिदृक्षा यस्य जायते । यत्र तत्र मृतस्याऽपि माथुरेजन्म जायते

भूमे रजांसि गणयेत्कालेनाऽपि चतुर्मुख !।
माथुरे यानि तीर्थानि तेषां सङ्ख्या न विद्यते ॥ ३०

कुरु भोः कुरु भो वासंमथुराख्यांपुरींप्रति । वसामिसततंतस्यांगोपकन्याभिरावृतः
रेरेसंसारमग्नाश्च शिष्यामे शृणुताऽपरे । यदीच्छथसुखंसान्द्रं वासं कुरुत मत्पुरीम्
अहोलोको महानन्धो नेत्रयुक्तो न पश्यति । माथुरेविद्यमानेऽपिसंसृतिं भजते सदा
मानुषीं योनिमतुलां लब्ध्वा भाग्यस्य योगतः । वृथैवायुर्गतंतेषांन दृष्टा मथुरापुरी
अहो मतेः सुदौर्बल्यमहोभाग्यस्य दुर्विधिः । अहोमोहस्य महिमा मथुरानैवसेव्यते
मथुरां तु परित्यज्य योऽन्यत्र कुरुतेमतिम् । मूढोभ्रमतिसंसारेमोहितोममकायया

मथुरामपि सम्प्राप्य योऽन्यत्र कुरुते स्पृहाम् ।
दुर्बुद्धेस्तस्य किंवाच्यं सोऽज्ञानेन विजृम्भितः ॥ ३१ ॥

मात्रा पित्रा परित्यक्ता ये त्यक्ता निजबन्धुभिः ।
येषां क्वाऽपि गतिर्नास्ति तेषां मम पुरी गतिः ॥ ३८ ॥
पापराशिभिराक्रान्ता ये दारिद्र्यपराजिताः ।
येषां क्वाऽपि गतिर्नास्ति तेषां मम पुरी गतिः ॥ ३९ ॥
सारात्सारतरं स्थानं गुह्याद्गुह्यतरम्परम् । गतिमन्वेषमाणानां मथुरा परमा गतिः
न तत्पुण्यैर्नतद्दानैर्नतपोभिर्न तु स्तवैः । न लभ्यं विविधैर्योगैर्लभ्यं मदनुभावतः॥
मयि येषां स्थिराभक्तिर्भूयसी येषुमत्कृपा । तेषामेव हि धन्यानांमथुरायांभवेद्गतिः
या गतिर्योगयुक्तस्य ब्रह्मज्ञस्य मनीषिणः । सागतिस्त्यजतःप्राणान्मथुरायांनरस्यच
काश्यादिपुर्यो यदि सन्ति लोके तासां तु मध्ये मथुरैव धन्या ।
या जन्ममौञ्जीव्रतमुक्तिदानैर्नृणां चतुर्धा विदधाति मुक्तिम् ॥ ४४ ॥
न योगैर्या गतिर्लभ्या मन्वन्तरशतैरपि । अन्यत्र हेलया साऽत्र लभ्यतेमत्प्रसादतः
न पापेभ्यो भयं यत्र न भयं यत्र वै यमात् । न गर्भवासभीर्यत्र तत्क्षेत्रंकोनसंश्रयेत्
मथुरायाञ्च यत्पुण्यं तत्पुण्यस्य फलं शृणु । मथुरायां समासाद्य मथुरायांमृताहिये
अपि कीटपतङ्गाद्या जायन्ते ते चतुर्भुजाः ।
कूलात्पतन्ति येवृक्षास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ ४८ ॥
मूका जडान्धबधिरास्तपोनियमवर्जिताः । कालेनैव मृता ये च ममलोकंव्रजन्तिते
सर्पदष्टाः पशुहताः पावकाम्बुविनाशिताः । लब्धाऽपमृत्यवोये च माथुरेममलोकगाः
सत्यं सत्यं मुनिश्रेष्ठ! ब्रुवे शपथपूर्वकम् । सर्वाभीष्टप्रदं नान्यन्मथुरायाः समंक्वचित्
त्रिवर्गदा कामिनां या मुमुक्षूणां च मुक्तिदा ।
भक्तीच्छोर्भक्तिदा कस्तां मथुरां नाऽऽश्रयेद् बुधः ॥ ५२ ॥
एतादृशी मधुपुरी कर्त्तव्या मार्गशीर्षके । तदभावे पुष्करं हि कर्तव्यं विधिपूर्वकम्
ज्येष्ठं हि ब्रह्मणः कुण्डं मध्यं कुण्डञ्च वैष्णवम् ।
कनिष्ठं रुद्रदैवत्यमिति जानीहि बुद्धिमन् !॥ ५४ ॥
एषु स्नानञ्च दानञ्च श्राद्धञ्च विधिपूर्वकम् । पूजा च महती कार्याममप्रीतिकरासुत !

पूर्णा या तु भवेत्पुत्र सहोमासे मम प्रिया । तस्यांयत्क्रियतेपुण्यंममप्रीतिकरंभवेत्
गोदानमन्नदानञ्च हेमदानञ्च पुत्रक! । धरादानञ्च कर्तव्यं पूर्णायां विधिपूर्वकम् ॥५७
सहोमासे हि पूर्णायां सन्नदानञ्चकारयेत् । यत्किञ्चित्क्रियतेपूर्णंतदक्षय्यफलंभवेत्
ब्रह्मभोज्यं हि कर्तव्यं यथाविभवसारतः । पूर्णायामेव कर्तव्य उत्सवो व्रतपूर्त्तये ॥
यादृशी मथुरापुत्र! सहोमासे ममप्रिया । न तथा तीर्थराजाद्यास्तदभावे च पुष्करम्
पुष्करे मथुरायां वै पूर्णा कार्याविचक्षणैः । यत्रकुत्रापिवाकार्याविधियुक्ताच्चपूर्णिमा
स्नानं दानं तथा पूजां पूर्णायां न करोति यः । षष्टिवर्षसहस्राणि पच्यतेरौरवादिषु
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मान्या पूर्णा विचक्षणैः । मार्गशीर्षेणसंयुक्ताअनन्तफलदायिनी

यथा मे कथितं वत्स! मार्गशीर्षं मम प्रियम् ।
करोति यो नरोभक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ६४ ॥

तीर्थायुतेषुयत्पुण्यंयत्पुण्यंव्रतकोटिभिः । सर्वयज्ञेषुयत्पुण्यं तत्पुण्यं समवाप्नुयात्
अपुत्रो लभतेपुत्रं निर्धनो धनमेव च । विद्यार्थी च तथा विद्यांरूपार्थीरूपमाप्नुयात्

ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्त्रियो विजयी भवेत् ।
वैश्यो निधिपतित्वञ्च शूद्रः शुद्ध्येत पातकात् ॥ ६७ ॥

यद्दुर्लभञ्च दुष्प्राप्यं त्रिषुलोकेषु मानद !। तत्सर्वंप्राप्नुयान्मर्त्यः सहोमासेनसंशयः
यद्यप्येतेषु कामेषु सक्ता ये मानवाः सुत !। तुष्टाह्यन्ते चतुर्वक्त्र! नकामाहां महाभुज
सुदुर्लभा हिसद्भक्तिर्मम वश्यकरीशुभा । सा वै सम्प्राप्यते पुत्र सहोमासे श्रुते तथा
ममप्रीतिकरं मासं सर्वदामम वल्लभम् । सर्वं सम्प्राप्यतेऽमुष्मान्मत्प्रसादाच्चतुर्मुख!

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
मार्गशीर्षमासमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे मथुरामाहात्म्यवर्णनं नाम
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

समाप्तमिदंमार्गशीर्षमासमाहात्म्यम्

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

अथभागवतमाहात्म्यारम्भः

प्रथमोऽध्यायः

शाण्डिल्योपदिष्टव्रजभूमिमाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच

श्रीसच्चिदानन्दघनस्वरूपिणे कृष्णाय चानन्तसुखाभिवर्षिणे ।
विश्वोद्भवस्थाननिरोधहेतवे नुमो वयं भक्तिरसाप्तयेऽनिशम् ॥ १ ॥

नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् । कथामृतरसास्वादकुशला ऋषयोऽब्रुवन् ॥

ऋषय ऊचुः

वज्रं श्रीमाथुरे देशे स्वपौत्रंहस्तिनापुरे । अभिषिच्यगतेराज्ञि तौ कथं किञ्चचक्रतुः

सूत उवाच

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

महापथं गते राज्ञि परीक्षित्पृथिवीपतिः । जगाम मथुरां विप्रा वज्रनाभदिदृक्षया

पितृव्यमागतं ज्ञात्वा वज्रः प्रेमपरिप्लुतः । अभिगम्याभिवाद्याथनिनायनिजमन्दिरम्

परिष्वज्य स तं वीरः कृष्णैकगतमानसः । रोहिण्याद्या हरेः पत्नीर्ववन्दायतनागतः

तामिः सम्मानितोऽत्यर्थं परीक्षित्पृथिवीपतिः ।
विश्रान्तः सुखमासीनो वज्रनाभमुवाच ह ॥ ८ ॥

श्रीपरीक्षिदुवाच

तात! त्वत्पितृभिर्नूनमस्मत्पितृपितामहः । उद्धृता भूरिदुःखौघादहञ्च परिरक्षितः

न पारयाम्यहं तात साधु कृत्वोपकारतः । त्वामतः प्रार्थयाम्यङ्ग सुखं राज्येऽनुज्यताम्

कोशसैन्यादिजा चिन्ता तथारिदमनादिजा ।

मनागपि न कार्या ते सुसेव्याः किन्तु मातरः ॥ ११ ॥

निवेद्य मयि कर्तव्यं सर्वाधिपरिवर्ज्जनम् । श्रुत्वैतत्परमप्रीतो वज्रस्तं प्रत्युवाच ह

श्रीवज्रनाभ उवाच

राजन्नुचितमेतत्ते यदस्मासु प्रभाषते । त्वत्पित्रोपकृतश्चाहं धनुर्विद्याप्रदानतः ॥१३॥

तस्मान्नाल्पाऽपि मे चिन्ता क्षात्रं दृढमुपेयुषः ।

किन्त्वेका परमा चिन्ता तत्र किञ्चिद्विचार्य्यताम् ॥ १४ ॥

माथुरेत्वभिषिक्तोऽपिस्थितोऽहंनिर्ज्जनेवने । क्वगतावैप्रजाऽत्रत्यायत्रराज्यम्प्ररोचते

इत्युक्तोविष्णुरातस्तुनन्दादीनांपुरोहितम् । शाण्डिल्यमाजुहावाशु वज्रसन्देहनुत्तये

अथोटजंविहायाऽऽशुशाण्डिल्यःसमुपागतः । पूजितोवज्रनाभेननिषसादाऽऽसनोत्तमे

उपोद्घातं विष्णुरातश्चकाराशु ततस्त्वसौ । उवाचपरमप्रीतस्तावुभौ परिसान्त्वयन्

श्रीशाण्डिल्य उवाच

शृणुतं दत्तचित्तौ मेरहस्यंव्रजभूमिजम् । व्रजनंव्याप्तिरित्युक्तयाव्यापनाद्व्रजउच्यते

गुणातीतं परब्रह्म व्यापकं व्रज उच्यते । सदानन्दम्परं ज्योतिर्मुक्तानां पदमव्ययम्

तस्मिन्नन्दात्मजः कृष्णः सदानन्दाङ्गविग्रहः ।

आत्मारामश्चाऽऽप्तकामः प्रेमाक्तैरनुभूयते ॥ २१ ॥

आत्मा तु राधिकातस्यतयैवरमणादसौ । आत्मारामतयाप्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः

कामास्तु वाञ्छितास्तस्य गावो गोपाश्च गोपिकाः ।

नित्याः सर्वे विहाराद्या आप्तकामस्ततस्त्वयम् ॥ २३ ॥

रहस्यं त्विदमेतस्य प्रकृतेः परमुच्यते । प्रकृत्या खेलतस्तस्य लीलाऽन्यैरनुभूयते

सर्गस्थित्यप्ययायत्ररजःसत्त्वतमोगुणैः । लीलैवंद्विविधातस्यवास्तवीव्यावहारिकी

वास्तवी तत्स्वसम्वेद्या जीवानां व्यावहारिकी ।

आद्यां विना द्वितीया न द्वितीया नाद्यगा क्वचित् ॥ २६ ॥

आवयोर्गोचरेयन्तु तल्लीला व्यावहारिकी । यत्र भूरादयोलोकाभुवि माथुरमण्डलम्
अत्रैव व्रजभूमिः सा यत्र तत्त्वं सुगोपितम् । भासते प्रेमपूर्णानांकदाचिदपिसर्वतः
कदाजिद्द्वापरस्याऽन्तेरहोलीलाधिकारिणः । समवेतायदाऽत्रस्युर्यथेदानींतदाहरिः
स्वैःसहावतरेत्स्वेषुसमावेशार्थमीप्सिताः । तदा देवादयोऽप्यन्येऽवतरन्तिसमन्ततः

सर्वेषां वाञ्छितं कृत्वा हरिरन्तर्हितोऽभवत् ।
तेनाऽत्र त्रिविधा लोकाः स्थिताः पूर्वं न संशयः ॥ ३१ ॥

नित्यास्तल्लिप्सवश्चैवदेवाद्याश्चेतिभेदतः । देवाद्यास्तेषुकृष्णेन द्वारिकाम्प्रापिताःपुरा
पुनर्मौलशमार्गेण स्वाधिकारेषु चापिताः । तल्लिप्सूंश्च सदाकृष्णप्रेमानन्दैकरूपिणः
विधायस्वीयनित्येषुसमावेशितवांस्तदा । नित्याःसर्वेऽप्ययोग्येषुदर्शनाभावताङ्गताः

व्यावहारिकलीलास्थास्तत्र यन्नाधिकारिणः ।
पश्यन्त्यत्रागतास्तस्मान्निर्ज्जनत्वं समन्ततः ॥ ३५ ॥

तस्माच्चिन्तानतेकार्यावज्रनाभ!मदाज्ञया । वासयात्रबहून्ग्रामान्संसिद्धिस्तेभविष्यति
कृष्णलीलानुसारेणकृत्वानामानिसर्वतः । त्वया वासयताग्रामान्संसेव्याभूरियम्परा
गोवर्द्धने दीर्घपुरे मथुरायां महावने । नन्दिग्रामे बृहत्सानौकार्या राजस्थितिस्त्वया

नद्यद्रिद्रोणकुण्डादिकुञ्जान्संसेवतस्तव ।
राज्ये प्रजाः सुसम्पन्नास्त्वञ्च प्रीतो भविष्यसि ॥ ३६ ॥

सच्चिदानन्दभूरेषा त्वया सेव्या प्रयत्नतः । तवकृष्णस्थलान्यत्र स्फुरन्तुमदनुग्रहात्

वज्र! संसेवनादस्या उद्धवस्त्वां मिलिष्यति ।
ततो रहस्यमेतस्मात्प्राप्स्यसि त्वं समातृकः ॥ ४१ ॥
एवमुक्त्वा तु शाण्डिल्यो गतः कृष्णमनुस्मरन् ।
विष्णुरातोऽथ वज्रश्च परां प्रीतिमवापतुः ॥ ४२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे
श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये शाण्डिल्योपदिष्टव्रजभूमिमाहात्म्यवर्णनंनाम

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

गोवर्द्धनसमीपेपरीक्षिदादीनामुद्धवदर्शनवर्णनम्

श्रीऋषय ऊचुः

शाण्डिल्ये तौ समादिश्य परावृत्ते स्वमाश्रमम् ।
किं कथं चक्रतुस्तौ तु राजानौ सूत तद्वद ॥ १ ॥

श्रीसूत उवाच

ततस्तुविष्णुरातेनश्रेणीमुख्याःसहस्रशः । इन्द्रप्रस्थात्समानाय्यमथुरास्थानमापिताः
माथुरान्ब्राह्मणांस्तत्रवानरांश्चपुरातनान् । विज्ञायमाननीयत्वंतेषुस्थापितवान्स्वराट्

वज्रस्तु तत्सहायेन शाण्डिल्यस्याऽप्यनुग्रहात् ।
गोविन्दगोपगोपीनां लीलास्थानान्यनुक्रमात् ॥ ४ ॥
विज्ञायाऽभिधयाऽऽस्थाप्य ग्रामानावासयद्बहून् ।
कुण्डकूपादिपूर्तेन शिवादिस्थापनेन च ॥ ५ ॥

गोविन्दहरिदेवादिस्वरूपाऽऽरोपणेन च । कृष्णैकभक्तिस्वे राज्ये ततान च मुमोदह
प्रजास्तुमुदितास्तस्य कृष्णकीर्तनतत्पराः । परमानन्दसम्पन्नाराज्यं तस्यैव तुष्टुवुः
एकदाकृष्णपत्न्यस्तुश्रीकृष्णविरहातुराः । कालिन्दींमुदितांवीक्ष्यपप्रच्छुर्गतमत्सराः

श्रीकृष्णपत्न्य ऊचुः

यथा वयं कृष्णपत्न्यस्तथा त्वमपि शोभने । वयंविरहदुःखार्तास्त्वंनकालिन्दितद्वद

तच्छ्रुत्वा स्मयमाना सा कालिन्दी वाक्यमब्रवीत् ।
सापत्न्यं वीक्ष्य तत्तासां करुणापरमानसा ॥ १० ॥

श्रीकालिन्द्युवाच

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्माऽस्ति राधिका ।
तस्या दास्यप्रभावेण विरहोऽस्मान्न संस्पृशेत् ॥ ११ ॥

आवयोर्गोचरेयन्तु तल्लीला व्यावहारिकी । यत्र भूरादयोलोकाभुवि माथुरमण्डलम्
अत्रैव व्रजभूमिः सा यत्र तत्त्वं सुगोपितम् । भासते प्रेमपूर्णानांकदाचिदपिसर्वतः
कदाचिद्द्वापरस्याऽन्तेरहोलीलाधिकारिणः । समवेतायदाऽत्रस्युर्यथेदानींतदाहरिः
स्वैःसहावतरेत्स्वेषुसमावेशार्थमीप्सिताः । तदा देवादयोऽप्यन्येऽवतरन्तिसमन्ततः

सर्वेषां वाञ्छितं कृत्वा हरिरन्तर्हितोऽभवत् ।
तेनाऽत्र त्रिविधा लोकाः स्थिताः पूर्वं न संशयः ॥ ३१ ॥

नित्यास्तल्लिप्सवश्चैवदेवाद्याश्चेतिभेदतः । देवाद्यास्तेषुकृष्णेन द्वारिकाम्प्रापिताःपुरा
पुनर्मौलशमार्गेण स्वाधिकारेषु चापिताः । तल्लिप्सूंश्च सदाकृष्णप्रेमानन्दैकरूपिणः
विधायस्वीयनित्येषुसमावेशितवांस्तदा । नित्याःसर्वेऽप्ययोग्येषुदर्शनाभावताङ्गताः

व्यावहारिकलीलास्थास्तत्र यन्नाधिकारिणः ।
पश्यन्त्यत्रागतास्तस्मान्निर्ज्जनत्वं समन्ततः ॥ ३५ ॥

तस्माच्चिन्तानतेकार्यावज्रनाभ!मदाज्ञया । वासयात्रबहून्ग्रामान्संसिद्धिस्तेभविष्यति
कृष्णलीलानुसारेणकृत्वानामानिसर्वतः । त्वया वासयताग्रामान्संसेव्याभूरियम्परा
गोवर्द्धने दीर्घपुरे मथुरायां महावने । नन्दिग्रामे बृहत्सानौकार्या राजस्थितिस्त्वया

नद्यद्रिद्रोणकुण्डादिकुञ्जान्संसेवतस्तव ।
राज्ये प्रजाः सुसम्पन्नास्त्वञ्च प्रीतो भविष्यसि ॥ ३६ ॥

सच्चिदानन्दभूरेषा त्वया सेव्या प्रयत्नतः । तवकृष्णस्थलान्यत्र स्फुरन्तुमदनुग्रहात्

वज्र! संसेवनादस्या उद्धवस्त्वां मिलिष्यति ।
ततो रहस्यमेतस्मात्प्राप्स्यसि त्वं समातृकः ॥ ४१ ॥
एवमुक्त्वा तु शाण्डिल्यो गतः कृष्णमनुस्मरन् ।
विष्णुरातोऽथ वज्रश्च परां प्रीतिमवापतुः ॥ ४२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे
श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये शाण्डिल्योपदिष्टव्रजभूमिमाहात्म्यवर्णनंनाम
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

गोवर्द्धनसमीपेपरीक्षिदादीनामुद्धवदर्शनवर्णनम्

श्रीऋषय ऊचुः

शाण्डिल्ये तौ समादिश्य परावृत्ते स्वमाश्रमम् ।
किं कथं चक्रतुस्तौ तु राजानौ सूत तद्वद ॥ १ ॥

श्रीसूत उवाच

ततस्तुविष्णुरातेनश्रेणीमुख्याःसहस्रशः । इन्द्रप्रस्थात्समानाय्यमथुरास्थानमापिताः
माथुरान्ब्राह्मणांस्तत्रवानरांश्चपुरातनान् । विज्ञायमाननीयत्वंतेषुस्थापितवान्स्वराट्
वज्रस्तु तत्सहायेन शाण्डिल्यस्याऽप्यनुग्रहात् ।
गोविन्दगोपगोपीनां लीलास्थानान्यनुक्रमात् ॥ ४ ॥
विज्ञायाऽभिधयाऽऽस्थाप्य ग्रामानावासयद्बहून् ।
कुण्डकूपादिपूर्तेन शिवादिस्थापनेन च ॥ ५ ॥
गोविन्दहरिदेवादिस्वरूपाऽऽरोपणेन च । कृष्णैकभक्तिस्वे राज्ये ततान च मुमोदह
प्रजास्तुमुदितास्तस्य कृष्णकीर्तनतत्पराः । परमानन्दसम्पन्नाराज्यं तस्यैव तुष्टुवुः
एकदाकृष्णपत्न्यस्तुश्रीकृष्णविरहातुराः । कालिन्दींमुदितांवीक्ष्यपप्रच्छुर्गतमत्सराः

श्रीकृष्णपत्न्य ऊचुः

यथा वयं कृष्णपत्न्यस्तथा त्वमपि शोभने । वयंविरहदुःखार्तास्त्वंनकालिन्दितद्वद
तच्छ्रुत्वा स्मयमाना सा कालिन्दी वाक्यमब्रवीत् ।
सापत्न्यं वीक्ष्य तत्तासां करुणापरमानसा ॥ १० ॥

श्रीकालिन्द्युवाच

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्माऽस्ति राधिका ।

तस्या दास्यप्रभावेण विरहोऽस्मान्न संस्पृशेत् ॥ ११ ॥

तस्या एवांऽशविस्ताराः सर्वाः श्रीकृष्णनायिका ।
नित्यसम्भोग एवास्ति तस्याः साम्मुख्ययोगतः ॥ १२ ॥
सएवसाससैवास्तिवंशीतत्प्रेमरूपिका । श्रीकृष्णनखचन्द्रालिसङ्गाच्चन्द्रावलीस्मृता
रूपान्तरंचगृह्णानांतयोःसेवातिलालसा । रुक्मिण्यादिसमावेशोमयाऽत्रैवविलोकितः
युष्माकमपिकृष्णेनविरहोनैवसर्वतः । किन्तुएवं न जानीथ तस्माद्व्याकुलतामिताः
एवमेवात्र गोपीनामक्रूरावसरे पुरा । विरहाभास एवासीदुद्धवेन समाहितः ॥ १६ ॥
तेनैव भवतीनां चेद्भवेदत्र समागमः । तर्हि नित्यं स्वकान्तेन विहारमपिलप्स्यथ ॥

श्रीसूत उवाच

एवमुक्तास्तु ताः पत्न्यः प्रसन्नां पुनरब्रुवन् । उद्धवालोकनेनात्मप्रेष्ठसङ्गमलालसाः ॥

श्रीकृष्णपत्न्य ऊचुः

धन्याऽसि सखि! कान्तेन यस्या नैवाऽस्ति विच्युतिः ।
यतस्ते स्वार्थसंसिद्धिस्तस्या दास्यो बभूविम ॥ १६ ॥
परन्तूद्धवलाभे स्यादस्मत्सर्वार्थसाधनम् ।
तथा वदस्व कालिन्दि! तल्लाभोऽपि यथा भवेत् ॥ २० ॥

श्रीसूत उवाच

एवमुक्तातुकालिन्दीप्रत्युवाचाथतास्तथा । स्मरन्तीकृष्णचन्द्रस्यकलाषोडशरूपिणी
साधनभूमिर्वदरी व्रजता कृष्णेन मन्त्रिणे प्रोक्ता ।
तत्रास्ते स तु साक्षात्तद्वयुनं ग्राहयंल्लोकान् ॥ २२ ॥
फलभूमिर्व्रजभूमिर्दत्ता तस्मै पुरैव सरहस्यम् ।
फलमिह तिरोहितं सत्तदिहेदानीं स उद्धवोऽलक्ष्यः ॥ २३ ॥
गोवर्द्धनगिरिनिकटे सखीस्थले तद्रजःकामः ।
तत्रत्याङ्कुरवल्लीरूपेणाऽऽस्ते स उद्धवो नूनम् ॥ २४ ॥
आत्मोत्सवरूपत्वं हरिणा तस्मै समर्पितं नियतम् ।

तस्मात्तत्र स्थित्वा कुसुमसरःपरिसरे सव्रजाभिः ॥ २५ ॥

वीणावेणुमृदङ्गैः कीर्तनकाव्यादिसरससङ्गीतैः ।
उत्सव आरब्धव्यो हरिरतलोकान्समानाय्य ॥ २६ ॥
तत्रोद्धवावलोको भविता नियतं महोत्सवे वितते ।
यौष्माकीणामभिमतसिद्धिं सविता स एव सवितानाम् ॥ २७ ॥

श्रीसूत उवाच

इति श्रुत्वा प्रसन्नास्ताः कालिन्दीमभिवन्द्य तत् ।
कथयामासुरागत्य वज्रम्प्रति परीक्षितम् ॥ २८ ॥

विष्णुरातस्तु तच्छ्रुत्वा प्रसन्नस्तद्युतस्तदा । तत्रैवागत्य तत्सर्वं कारयामासत्वरम्
गोवर्धनाददूरेण वृन्दारण्ये सखीस्थले । प्रवृत्तः कुसुमाम्भोधौ कृष्णसङ्कीर्तनोत्सवः
वृषभानुसुताकान्तविहारे कीर्तनश्रिया । साक्षादिव समावृत्ते सर्वेऽनन्यदृशोऽभवन्

ततः पश्यत्सु सर्वेषु तृणगुल्मलताचयात् ।
आजगामोद्धवः स्रग्वी श्यामः पीताम्बरावृतः ॥ ३२ ॥

गुञ्जामालाधरो गायन्वल्लवीवल्लभं मुहुः । तदागनमतो रेजे भृशं सङ्कीर्तनोत्सवः
चन्द्रिकामगतोयद्वत्स्फाटिकाट्टालभूमणिः। अथसर्वेसुखाम्भोधौमग्नाःसर्वंविसस्मरुः
क्षणेनागतविज्ञानाद्दृष्ट्वा श्रीकृष्णरूपिणम् । उद्धवं पूजयाञ्चक्रुः प्रतिलब्धमनोरथाः ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये गोवर्द्धनपर्वतसमीपे परीक्षिदादीनामुद्धवदर्शनवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

———

तृतीयोऽध्यायः

श्रीमद्भागवतमाहात्म्येपरीक्षिदुद्धवसम्वादवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

अथोद्धवस्तु तान्दृष्ट्वा कृष्णकीर्तनतत्परान्। सत्कृत्याथ परिष्वज्यपरीक्षितमुवाचह

उद्धव उवाच

धन्योऽसि राजन्कृष्णैकभक्त्या पूर्णोऽसि नित्यदा।

यस्त्वं निमग्नचित्तोऽसि कृष्णसङ्कीर्तनोत्सवे ॥ २ ॥

कृष्णपत्नीषु वज्रे च दिष्ट्या प्रीतिः प्रवर्तिता। तवोचितमिदंतातकृष्णदत्ताङ्गवैभव

द्वारकास्थेषु सर्वेषु धन्या एते न संशयः। येषां व्रजनिवासाय पार्थमादिष्टवान्प्रभुः

श्रीकृष्णस्य मनश्चन्द्रो राधास्यप्रभयान्वितः। तद्विहारवनं गोभिर्मण्डयन्रोचतेसदा

कृष्णचन्द्रः सदा पूर्णस्तस्य षोडश याः कलाः।

चित्सहस्रप्रभाभिन्ना अत्रास्ते तत्स्वरूपता ॥ ६ ॥

एवं वज्रस्तु राजेन्द्र! प्रपन्नभयभञ्जकः। श्रीकृष्णदक्षिणे पादे स्थानमेतस्य वर्तते

अवतारेऽत्रकृष्णेनयोगमायाऽतिभाविता। तद्बलेनात्मविस्मृत्यासीदन्त्येतेनसंशयः

ऋते कृष्णप्रकाशं तु स्वात्मबोधोन कस्यचित्।

तत्प्रकाशस्तु जीवानां मायया पिहितः सदा ॥ ६ ॥

अष्टाविंशे द्वापरान्ते स्वयमेव यदा हरिः। उत्सारयेन्निजां मायां तत्प्रकाशोभवेत्तदा

सतुकालो व्यतिक्रान्तस्तेनेदमपरं शृणु। अन्यदातत्प्रकाशस्तुश्रीमद्भागवाद्भवेत्

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं यत्रभागवतैर्यदा। कीर्त्यतेश्रूयतेचापिश्रीकृष्णस्तत्रनिश्चितम्

श्रीमद्भागतं यत्र श्लोकं श्लोकार्द्धमेव च। तत्रापि भगवान्कृष्णो वल्लवीभिर्विराजते

भारतेमानवं जन्म प्राप्य भागवतं न यैः। श्रुतं पापपराधीनैरात्मघातस्तु तैः कृतः ॥

श्रीमद्भागवतंशास्त्रंनित्यंयैपरिसेवितम्। पितुर्मातुश्चभार्यायाःकुलपङ्क्तिःसुतारिता

विद्याप्रकाशो विप्राणां राज्ञां शत्रुजयो विशाम् ।

धनं स्वास्थ्यञ्च शूद्राणां श्रीमद्भागवताद्भवेत् ॥ १६ ॥

योषितामपरेषाञ्च सर्ववाञ्छितपूरणम् । अतोभागवतं नित्यं कोन सेवेत भाग्यवान्
अनेकजन्मसंसिद्धः श्रीमद्भागवतं लभेत् । प्रकाशो भगवद्भक्तेरुद्भवस्तत्र जायते
साङ्ख्यायनप्रसादाप्तं श्रीमद्भागवतं पुरा । बृहस्पतिर्दत्तवान्मे तेनाऽहं कृष्णवल्लभः
आख्यायिकाञ्चतेनोक्तां विष्णुरात! निबोधताम् ।ज्ञायतेसम्प्रदायोऽपियत्रभागवतश्रुतेः

श्रीबृहस्पतिरुवाच

ईक्षाञ्चक्रे यदा कृष्णो माया पुरुषरूपधृक् । ब्रह्माविष्णुःशिवश्चापिरजःसत्त्वतमोगुणैः
पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरधिकारांस्तदादिशत् । उत्पत्तौ पालने चैव संहारे प्रक्रमेण तान्

ब्रह्मा तु नाभिकमलादुत्पन्नस्तं व्यजिज्ञपत् ।

श्रीब्रह्मोवाच

नारायणादिपुरुष! परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥

त्वया सर्गे नियुक्तोऽस्मि पापीयान्मां रजोगुणः ।

त्वत्स्मृतौ नैव बाधेत तथैव कृपया प्रभो ! ॥ २४ ॥

श्रीबृहस्पतिरुवाच

यदातु भगवांस्तस्मैश्रीमद्भागवतं पुरा । उपदिश्याऽब्रवीद्ब्रह्मन्सेवस्वैनत्स्वसिद्धये
ब्रह्मातु परमप्रीतस्तेन कृष्णाप्तयेऽनिशम् । सप्तावरणभङ्गाय सप्ताहं समवर्तयत् ॥२६॥
श्रीभागवतसप्ताहसेवनाप्तमनोरथः । सृष्टिं वितनुते नित्यं ससप्ताहः पुनःपुनः ॥ २७॥
विष्णुरप्यर्थयामास पुमांसं स्वार्थसिद्धये । प्रजानां पालनेपुंसा यदनेनापिकल्पितः

श्रीविष्णुरुवाच

प्रजानां पालनं देव! करिष्यामियथोचितम् । प्रवृत्त्याचनिवृत्त्याचकर्मज्ञानप्रयोजनात्
यदायदैव कालेन धर्मग्लानिर्भविष्यति । धर्मं संस्थापयिष्यामि ह्यवतारैस्तदा तदा

भोगार्थिभ्यस्तु यज्ञादिफलं दास्यामि निश्चितम् ।

मोक्षार्थिभ्यो विरक्तेभ्यो मुक्तिं पञ्चविधां तथा ॥ ३१ ॥

येऽपि मोक्षं न वाञ्छन्ति तान्कथं पालयास्यहम् ।
आत्मानञ्च श्रियञ्चाऽपि पालयामि कथं वद ॥ ३२ ॥
तस्माअपि पुमानाद्यः श्रीभागवतमादिशत् । उवाच च पठस्वैनत्तव सर्वार्थसिद्धये
ततो विष्णुःप्रसन्नात्मापरमार्थकपालने । समर्थोऽभूच्छ्रियामासिमासिभागवतंस्मरन्
यदा विष्णुः स्वयं वक्ता लक्ष्मीश्च श्रवणे रता । तदा भागवतश्रावोमासेनैवपुनःपुनः
यदा लक्ष्मीः स्वयंवक्त्रीविष्णुश्चश्रवणेरतः । मासद्वयंरसास्वादस्तदातीवसुशोभते
अधिकारे स्थितो विष्णुर्लक्ष्मीर्निश्चिन्तमानसा ।
तेन भागवतास्वादस्तस्या भूरि प्रकाशते ॥ ३७ ॥
अथ रुद्रोऽपि तं देवं संहाराधिकृतः पुरा । पुमांसं प्रार्थयामासस्वसामर्थ्यविवृद्धये

श्रीरुद्र उवाच

नित्ये नैमित्तिके चैव संहारे प्राकृते तथा । शक्तयो मम विद्यन्ते देवदेव मम प्रभो
आत्यन्तिके तु संहारे मम शक्तिर्न विद्यते । महद्दुःखंममैतत्तु तेनत्वाम्प्रार्थयाम्यहम्

श्रीवृहस्पतिरुवाच

श्रीमद्भागवतं तस्मा अपि नारायणो ददौ । स तुसंसेवनादस्यजिग्येचापितमोगुणम्
कथा भागवती तेन सेविता वर्षमात्रतः । लये त्वात्यन्तिकेतेनाऽवापशक्तिंसदाशिवः

उद्धव उवाच

श्रीभागवतमहात्म्य इमामाख्यायिकांगुरोः । श्रुत्वाभागवतंलब्ध्वामुमुदेऽहंप्रणम्यतम्
ततस्तुवैष्णवींरीतिंग्रहीत्वामासमात्रतः । श्रीमद्भागवतास्वादोमयासम्यङ्निषेवितः
तावतैव बभूवाऽहं कृष्णस्यदयितःसखा । कृष्णेनाथ नियुक्तोऽहं व्रजे स्वप्रेयसीगणे
विरहार्त्तासु गोपीषु स्वयं नित्यविहारिणा । श्रीभागवतसन्देशोमन्मुखेनप्रयोजितः
तं यथामति लब्ध्वाताआसन्विरहवर्जिताः । नाज्ञासिषंरहस्यंतच्चमत्कारस्तुलोकितः
स्वर्वासं प्रार्थ्य कृष्णञ्च ब्रह्माद्येषु गतेषु मे । श्रीमद्भागवते कृष्णस्तद्रहस्यंस्वयंददौ
पुरतोऽश्वत्थमूलस्य चकार मयि तद्दृढम् । तेनाऽत्र व्रजवल्लीषु वसामि बदरींगतः
तस्मान्नारदकुण्डेऽत्रतिष्ठामिस्वेच्छयासदा । कृष्णप्रकाशोभक्तानांश्रीमद्भागवताद्भवेत्

तदेषामपिकार्य्यार्थंश्रीमद्भागवतंत्वहम् । प्रवक्ष्यामिसहायोऽत्रत्वयैवानुष्ठितोभवेत्

श्रीसूत उवाच

विष्णुरातस्तु श्रुत्वा तदुद्धवं प्रणतोऽब्रवीत् ।

श्रीपरीक्षिदुवाच

हरिदास! त्वया कार्यं श्रीभागवतकीर्तनम् ॥ ५२ ॥

आज्ञाप्योऽहं यथा कार्य्यं सहायोऽत्र मया तथा ।

श्रीसूत उवाच

श्रुत्वैतदुद्धवो वाक्यमुवाच प्रीतमानसः ॥ ५३ ॥

उद्धव उवाच

श्रीकृष्णेन परित्यक्ते भूतले बलवान्कलिः । करिष्यति परंविघ्नंसत्कार्येसमुपस्थिते

तस्माद्दिग्विजयं याहि कलिनिग्रहमाचर । अहंतुमासमात्रेणवैष्णवींरीतिमा थितः

श्रीमद्भागवतास्वादं प्रचार्य त्वत्साहायतः ।

एतान्सम्प्रापयिष्यामि नित्यधाम्नि मधुद्विषः ॥ ५६ ॥

श्रीसूत उवाच

श्रुत्वैवं तद्वचो राजा मुदितश्चिन्तयातुरः । तदाविज्ञापयामास स्वाभिप्रायं तमुद्धवम्

श्रीपरीक्षिदुवाच

कलिं तुनिग्रहीष्यामितात! तेवचसिस्थितः । श्रीभागवतसम्प्राप्तिकथंममभविष्यति

अहं तु समनुग्राह्यस्तव पादतले श्रितः ।

श्रीसूत उवाच

श्रुत्वैतद्वचनं भूयोऽप्युद्धवस्तमुवाच ह ॥ ५६ ॥

उद्धव उवाच

राजंश्चिन्ता तुतेकाऽपिनैवकार्य्याकथञ्चन । तवैवभगवच्छास्त्रेयतोमुख्याधिकारिता

एतावत्कालपर्य्यन्तं प्रायो भागवतश्रुतेः । वार्तामपि न जानन्तिमनुष्याःकर्मतत्पराः

त्वत्प्रसादेनबहवोमनुष्याभारताजिरे । श्रीमद्भागवतप्रातींसुखम्प्राप्स्यन्तिशाश्वतम्

नन्दनन्दनरूपस्तु श्रीशुको भगवानृषिः । श्रीमद्भागवतं तुभ्यं श्रावयिष्यत्यसंशयः
तेनप्राप्स्यसिराजंस्त्वंनित्यंधामव्रजेशितुः । श्रीभागवतसञ्चारस्ततोभुविभविष्यति
तस्मात्त्वं गच्छ राजेन्द्र! कलिनिग्रहमाचर ।

श्रीसूत उवाच

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य गतो राजा दिशां जये ॥ ६५ ॥
वज्रस्तु निजराज्येशं प्रतिबाहुं विधाय च । तत्रैव मातृभिः साकंतस्थौभागवताशया
अथ वृन्दावने मासं गोवर्द्धनसमीपतः । श्रीमद्भागवतास्वादस्तूद्धवेन प्रवर्तितः ॥६७
तस्मिन्नास्वाद्यमाने तु सच्चिदानन्दरूपिणी । प्रचकाशे हरेर्लीला सर्वतः कृष्णएवच
आत्मानञ्च तदन्तःस्थं सर्वेऽपि ददृशुस्तदा । वज्रस्तु दक्षिणे दृष्ट्वा कृष्णपादसरोरुहे
स्वात्मानं कृष्णवैधुर्यान्मुक्तस्तद्भुव्यशोभत ।
ताश्चतन्मातरः कृष्णे रासरात्रिप्रकाशिनि ॥ ७० ॥
चन्द्रेकलाप्रभारूपमात्मानंवीक्ष्यविस्मिताः । स्वप्रेष्ठविरहव्याधिविमुक्ताःस्वपदंययुः
येऽन्ये च तत्रतेसर्वेनित्यलीलान्तरंगताः । व्यावहारिकलोकेभ्यःसद्योऽदर्शनमागताः
गोवर्द्धननिकुञ्जेषु गोषु वृन्दावनादिषु । नित्यं कृष्णेन मोदन्ते दृश्यन्ते प्रेमतत्परैः

श्रीसूत उवाच

य एतां भगवत्प्राप्तिं शृणुयाच्चाऽपि कीर्तयेत् । तस्यवैभगवत्प्राप्तिर्दुःखहानिश्चजायते

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीभागवतमाहात्म्ये परीक्षिदुद्धवसम्वादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये वक्तृश्रोतृश्रद्धावर्णनम्

श्रीऋषय ऊचुः

साधुसूत! चिरञ्जीवचिरमेवं प्रशाधि नः । श्रीभागवतमाहात्म्यमपूर्वं त्वन्मुखाच्छ्रुतम्
तत्स्वरूपप्रमाणञ्च विधिश्च श्रवणे वद । तद्वक्तुर्लक्षणं सूतश्रोतुश्चापि वदाऽधुना ॥ २

श्रीसूत उवाच

श्रीमद्भागवतस्याऽथश्रीमद्भगवतः सदा । स्वरूपमेकमेवास्तिसच्चिदानन्दलक्षणम्
श्रीकृष्णासक्तभक्तानां तन्माधुर्य्यप्रकाशकम् ।
समुज्जृम्भति यद्वाक्यं विद्धि भागवतं हि तत् ॥ ४ ॥
ज्ञानविज्ञानभक्त्यङ्गचतुष्टयपरं वचः । मायामर्दनदक्षञ्च विद्धिभागवतं च तत् ॥ ५ ॥
प्रमाणं तस्य को वेदह्यनन्तस्याक्षरात्मनः । ब्रह्मणेहरिणातद्दिक्चतुःश्लोक्याप्रदर्शिता
तदानन्त्यावगाहेन स्वेप्सितावहनक्षमाः । त एव सन्तिभोविप्राब्रह्मविष्णुशिवादयः
मितबुद्ध्यादिवृत्तीनां मनुष्याणां हिताय च ।
परीक्षिच्छुकसम्वादो योऽसौ व्यासेन कीर्तितः ॥ ८ ॥
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो योऽसौ भागवताभिधः । कलिग्राहगृहीतानां सएवपरमाश्रयः
श्रोतारोऽथनिरूप्यन्तेश्रीमद्विष्णुकथाश्रयाः । प्रवराअवराश्चेतिश्रोतारोद्विविधामताः
प्रवराश्चातकोहंसःशुकोमीनादयस्तथा । अवरावृकभूरुण्डवृषोष्ट्राद्याः प्रकीर्तिताः ॥
अखिलोपेक्षया यस्तुकृष्णशास्त्रश्रुतौव्रती । सचातकोयथाऽम्भोदमुक्तेपाथसिचातकः
हंसः स्यात्सारमादत्ते यः श्रोता विविधाच्छ्रुतात् ।
दुग्धेनैक्यङ्गतात्तोयाद्यथा हंसोऽमलं पयः ॥ १२ ॥
शुकःसुष्ठुमितंव्यक्तिव्यासंश्रोतृंश्चहर्षयन् । सुपाठितःशुकोयद्वच्छिक्षकंपार्श्वगानपि
शब्दं नानिमिषो जातु करोत्यास्वादयन्नम् ।

श्रोता स्निग्धो भवेन्मीनो मीनः क्षीरनिधौ यथा ॥ १५ ॥
यस्तुदन्त्रसिकाञ्छ्रोतॄन्विरौत्यज्ञो वृको हि सः ।
वेणुस्वनरसासक्तान्वृकोऽरण्ये मृगान्यथा ॥ १६ ॥
भूरुण्डःशिक्षयेदन्याञ्छ्रुत्वानस्वयमाचरेत् । यथाहिमवतःशृङ्गेभूरुण्डाख्योविहङ्गमः
सर्वं श्रुतमुपादत्ते सारासारान्धधीर्वृषः । स्वादुद्राक्षां खलिञ्चापि निर्विशेषंयथावृषः
स उष्ट्रो मधुरं मुञ्चन्विपरीते रमेत यः । यथानिम्बंचरत्युष्ट्रोहित्वाऽऽम्रमपितद्युतम्
अन्येऽपिवहवो भेदा द्वयोर्भृङ्गखरादयः । विज्ञेयास्तत्तदाचारैस्तत्तत्प्रकृतिसम्भवैः
यः स्थित्वाऽभिमुखम्प्रणम्य विधिवत्त्यक्तान्यवादो हरे-
र्लीलाः श्रोतुमभीप्सतेऽतिनिपुणो नम्रोऽथ क्लृप्ताञ्जलिः ।
शिष्यो विश्वसितोऽनुचिन्तनपरः प्रश्नेऽनुरक्तः शुचि-
र्नित्यं कृष्णजनप्रियो निगदितः श्रोता स वै वक्तृभिः ॥ २१ ॥
भगवन्मतिरनपेक्षः सुहृदो दीनेषु सानुकम्पो यः ।
वहुधा बोधनचतुरो वक्ता सम्मानितो मुनिभिः ॥ २२ ॥
अथ भारतभूस्थाने श्रीभागवतसेवने । विधिं शृणुत भोविप्रा येनस्यात्सुखसन्ततिः
राजसं सात्त्विकं चापि तामसं निर्गुणं तथा । चतुर्विधं तु विज्ञेयं श्रीभागवतसेवनम्
सप्ताहं यज्ञवद्यत्तु सश्रमं सत्वरं मुदा । सेवितं राजसंतत्तु वहुपूजादिशोभनम् ॥ २५
मासेन ऋतुना वापि श्रवणं स्वादसंयुतम् । सात्त्विकं यदनायासंसमस्तानन्दवर्द्धनम्
तामसं यत्तुवर्षेणसालसंश्रद्धयाऽयुतम् । विस्मृतिस्मृतिसंयुक्तंसेवनंतच्चसौख्यदम्
वर्षमासदिनानां तु विमुच्य नियमाग्रहम् । सर्वदा प्रेमभक्त्यैव सेवनं निर्गुणं मतम् ॥
पारीक्षितेऽपि सम्वादे निर्गुणंतत्प्रकीर्तितम् । तत्रसप्तदिनाख्यानंतदायुर्दिनसङ्ख्यया
अन्यत्र त्रिगुणं चापि निर्गुणं च यथेच्छया । यथा कथञ्चित्कर्तव्यंसेवनंभगवच्छ्रुतेः
येश्रीकृष्णविहारैकभजनास्वादलोलुपाः । मुक्तावपिनिराकाङ्क्षास्तेषांभागवतंधनम्
येऽपि संसारसन्तापनिर्विण्णा मोक्षकाङ्क्षिणः । तेषां भवौषधंचैतत्कलौसेव्यंप्रयत्नतः

ये चाऽपि विषयारामाः संसारिकसुखस्पृहाः ।

तेषां तु कर्ममार्गेण या सिद्धिः साऽधुनाकलौ ॥ ३३ ॥
सामर्थ्यधनविज्ञानाभावाद्त्यन्तदुर्ल्लभा । तस्मात्तैरपिसं सेव्या श्रीमद्भागवती कथा
धनं पुत्रांस्तथादारान्वाहनादियशोगृहान् । असापत्न्यञ्च राज्यञ्च दद्याद्भागवती कथा
इह लोके वरान्भुक्त्वा भोगान्वैमनसेप्सितान् । श्रीभागवतसङ्गेनयात्यन्तेश्रीहरेःपदम्
यत्र भागवती वार्ता ये च तच्छ्रवणे रताः । तेषां संसेवनं कुर्याद्देहेन च धनेन च ३७
तदनुग्रहतोऽस्यापि श्रीभागवतसेवनम् । श्रीकृष्णव्यतिरिक्तंयत्तत्सर्वंधनसञ्ज्ञितम्
कृष्णार्थीति धनार्थीति श्रोता वक्ता द्विधा मतः ।
यथा वक्ता तथा श्रोता तत्र सौख्यं विवर्द्धते ॥ ३६ ॥
उभयोर्वैपरीत्येतु रसाभासेफलच्युतिः । किन्तुकृष्णार्थिनांसिद्धिर्विलम्बेनापिजायते
धनार्थिनस्तु संसिद्धिर्विधिसम्पूर्णतावशात् ।
कृष्णार्थिनोऽगुणस्यापि प्रेमैव विधिरुत्तमः ॥ ४१ ॥
आसमाप्ति सकामेन कर्तव्यो हि विधिः स्वयम् ।
स्नातो नित्य क्रियां कृत्वा प्राश्य पादोदकं हरेः ॥ ४२ ॥
पुस्तकञ्च गुरुञ्चैत्र पूजयित्वोपचारतः । ब्रूयाद्वा शृणुयाद्वापि श्रीमद्भागवतं मुदा ॥
पयसा वा हविष्येण मौनम्भोजनमाचरेत् । ब्रह्मचर्य्यमधःसुप्तिंक्रोधलोभादिवर्ज्जनम्
कथान्ते कीर्तनं नित्यं समाप्तौ जागरं चरेत् ।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु दक्षिणाभिः प्रतोषयेत् ॥ ४५ ॥
गुरवे वस्त्रभूषादि दत्त्वा गाश्च समर्पयेत् । एवं कृते विधाने तु लभतेवाञ्छितं फलम्
दारागारसुताञ्राज्यं धनादि च यदीप्सितम् । परन्तुशोभतेनात्रसकामत्वंविडम्बनम्
कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत्प्रेमानन्दफलप्रदम् । श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये वक्तृश्रोतृश्रद्धा निरूपणंनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
समाप्तमिदं श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम् ।

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

अथवैशाखमासमाहात्म्यारम्भः

प्रथमोऽध्यायः

सवैशाखमासप्रशंसनं तन्मासस्नानमाहात्म्यवर्णनम्

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्

सूत उवाच

भूयोऽप्यङ्गभुवं राजा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । पुण्यं माधवमाहात्म्यं नारदं पर्यपृच्छत

अम्बरीष उवाच

सर्वेषामपि मासानांत्वत्तो माहात्म्यमञ्जसा । श्रुतं मया पुरा ब्रह्मन्यदाचोक्तंतदात्वया

वैशाखः प्रवरो मासो मासेष्वेतेषु निश्चितम् ।

इति तस्माद्विस्तरेण माहात्म्यं माधवस्य च ॥ ३ ॥

श्रोतुं कौतूहलं ब्रह्मन्कथं विष्णुप्रियोह्यसौ । के च विष्णुप्रियाधर्मामासेमाधवल्लभे

तत्राऽप्यस्य तु कर्तव्याः के धर्मा विष्णुवल्लभाः ।

किं दानं किं फलं तस्य कमुद्दिश्याऽऽचरेदिमान् ॥ ५ ॥

कैर्द्रव्यैः पूजनीयोऽसौ माधवो माधवागमे । एतन्नारद! विस्तार्य मह्यंश्रद्धावतेवद ॥

श्रीनारद उवाच

मया पृष्टः पुरा ब्रह्मामासधर्मान्पुरातनान् । व्याजहारपुराप्रोक्तं यच्छ्रियै परमात्मना

ततो मासा विशिष्योक्ताः कार्त्तिको माघ एव च ।

माधवस्तेषु वैशाखं मासानामुत्तमं व्यधात् ॥ ८ ॥

मातेव सर्वजीवानां सदैवेष्ट प्रदायकः । दानयज्ञव्रतस्नानैः सर्वपापविनाशनः ॥ ६ ॥
धर्मयज्ञक्रियासारस्तपःसारःसुरार्चितः । विद्यानां वेदविद्येव मन्त्राणां प्रणवोयथा
भूरुहाणां सुरतरुर्धेनूनां कामधेनुवत् । शेषवत्सर्वनागानां पक्षिणां गरुडो यथा ॥
देवानां तु यथाविष्णुर्वर्णानांब्राह्मणो यथा । प्राणवत्प्रियवस्तूनां भार्येवसुहृदांयथा
आपगानां यथा गङ्गा तेजसांतुरविर्यथा । आयुधानां यथा चक्रं धातूनांकाञ्चनंयथा
वैष्णवानांयथारुद्रोरत्नानांकौस्तुभोयथा । मासानां धर्महेतूनां वैशाखश्चोत्तमस्तथा

नाऽनेन सदृशो लोके विष्णुप्रीतिविधायकः ।
वैशाखस्नाननिरते मेषे प्रागर्यमोदयात् ॥ १५ ॥

लक्ष्मीसहायो भगवान्प्रीतिं तस्मिन्करोत्यलम् । जन्तूनांप्रीणनंयद्वदन्नेनैवहिजायते
तद्वद्वैशाखस्नानेन विष्णुः प्रीणात्यसंशयम् । वैशाखस्नाननिरताञ्जनान्दृष्ट्वाऽनुमोदते ॥
तावतापिविमुक्तोऽघैर्विष्णुलोकेमहीयते । सकृत्स्नात्वामेषसंस्थेसूर्येप्रातःकृताह्निकः

महापापैर्विमुक्तोऽसौ विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ।
स्नानार्थं मासि वैशाखे पादमेकं चरेद्यदि ॥ १६ ॥
सोऽश्वमेधायुतानाश्चफलमाप्नोत्यसंशयम् ।
अथवाकूटचित्तस्तुकुर्यात्सङ्कल्पमात्रकम् ॥ २० ॥

सोऽपिक्रतुशतंपुण्यं लभेदेव न संशयः । यो गच्छेद्धनुरायामं स्नातुं मेषगते रवौ ॥

सर्ववन्धविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात ।
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि च ॥ २२ ॥
तानि सर्वाणि राजेन्द्र! सन्ति वाह्येऽल्पके जले ।
तावल्लिखितपापानि गर्जन्ति यमशासने ॥ २३ ॥

यावन्न कुरुते जन्तुर्वैशाखे स्नानमम्भसि । तीर्थादिदेवताःसर्वा वैशाखेमासिभूमिप!
वहिर्जलं समाश्रित्यसदासन्निहितानृप । सूर्योदयं समारभ्य यावत्षड्घटिकावधि ॥

तिष्ठन्ति चाऽऽज्ञया विष्णोर्नराणां हितकाम्यया ।
तावन्नागच्छतां पुंसां शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥

स्वस्थानं यान्ति राजेन्द्र! तस्मात्स्नानं समाचरेत् ॥ २६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे वैशाखमासप्रशंसापूर्वक-वैशाखस्नानमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

वैशाखेनानादानफलमाहात्म्यवर्णनम्

नारद उवाच

न माधवसमोमासो न कृतेन युगं समम् । न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गयासमम्
न जलेन समं दानं नसुखंभार्ययासमम् । न कृषेस्तु समं वित्तं न लाभोजीवितात्परः
न तपोऽनशनात्तुल्यंनदानात्परमंसुखम् । न धर्मस्तु दयातुल्यो नज्योतिश्चक्षुषासमम्
न तृप्तिरशनात्तुल्या न वाणिज्यं कृषेः समम् । न धर्मेणसमं मित्रं न सत्येन समंयशः
नारोग्यसममुत्थानं न त्राता केशवात्परः । न माधवसमं लोके पवित्रं कवयोविदुः ॥
७ माधवः परमो मासः शेषशायिप्रियःसदा । अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु मासं माधववल्लभम्
तिर्यग्योनिं स यात्याशुसर्वधर्मवहिष्कृतः । अव्रतेनगतो येषां माधवोमर्त्यधर्मिणाम्
इष्टापूर्तं वृथा तेषां धर्मो धर्मभृताम्वरः । प्रवृत्तानांतुभक्ष्याणां माधवेऽनियमेकृते ॥
अवश्यंविष्णुसायुज्यंप्राप्नोत्येवनसंशयः । सन्तीहवहुवित्तानि व्रतानिविविधानिच
देहाऽऽयासकराण्येव पुनर्जन्मप्रदानि च । वैशाखस्नानमात्रेण न पुनर्जायते भुवि ॥
सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति माधवे जलदानतः ॥
जलदानासमर्थेन परस्याऽपि प्रबोधनम् । कर्तव्यं भूतिकामेन सर्वदानाधिकं हितम्
एकतः सर्वदानानि जलदानं हि चैकतः । तुलामारोपितं पूर्वं जलदानं विशिष्यते ॥
मार्गेऽध्वगानां यो मर्त्यः प्रपादानंकरोतिहि । सकोटिकुलमुद्धृत्यविष्णुलोकेमहीते

देवानां च पितृणाञ्च ऋषीणां राजसत्तम! । अत्यन्तप्रीतिदं सत्यं प्रपादानं न संशयः
प्रपादानेन सन्तुष्टा येनाऽध्वश्रमकर्षिताः । तोषितास्तेनदेवाश्चब्रह्मविष्णुशिवादयः

सलिलं सलिलेच्छूनां छत्रं छायामपीच्छताम् ।
व्यजनं व्यजनेच्छूनां वैशाखे मासि भूमिप! ॥ १७ ॥

जलं छत्रं च व्यजनं दानं येषां विशिष्यते । माधवे मासि सम्प्राप्तेब्राह्मणायकुटुम्बिने

अदत्त्वोदककुम्भञ्च चातको जायते भुवि ॥ १६ ॥

योदद्याच्छीतलं तोयं तृषार्ताय महात्मने । तावन्मात्रेण राजेन्द्र! राजसूयायुतं लभेत्
घर्मश्रमार्तविप्राय वीजयेद्व्यजनेन यः । तावन्मात्रेण निष्पापो विहगाधिपतिर्भवेत्
अदत्त्वा व्यञ्जनं भूप ! वैशाखे तु द्विजातये । वातरोगशताकीर्णा नरकानेव विन्दति

यो वीजयेत्पटेनाऽपि पथि श्रान्तं द्विजोत्तमम् ।
तावताऽथ विमुक्तोऽसौ विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ २३ ॥

यस्तालव्यजनं वाऽपि दत्त्वा शुद्धेन चेतसा । विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोकंसगच्छति
सद्यः श्रमहरं पुण्यं न दद्याद्व्यजनं नरः । नारकीं यातनां भुक्त्वाकश्मलोजायतेभुवि
आध्यात्मिकादिदुःखानांशान्तयेमनुजेश्वर । छत्रं दद्यात्प्रयत्नेनवैशाखेमासिवासकृत्
अच्छत्रदो नरो यस्तु वैशाखे माधवप्रिये । छायाहीनो महाक्रूरः पिशाचोभुविजायते
यो यद्यात्पादुके दिव्ये माधवेमाधवप्रिये । यमदूतौतिरस्कृत्यविष्णुलोकंसगच्छति
पादत्राणं तु यो दद्याद्वैशाखे माधवागमे । न तस्यनारको लोको नक्लेशाऐहिकाश्चये
पादुके याचमानाययोदद्याद्ब्राह्मणाय च । सभूपालोभवेद्भूमौकोटिजन्मस्वसंशयम्
अनाथमण्डपं मार्गे श्रमहारि करोति यः । तस्य पुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणाऽपिन शक्यते
मध्याह्ने ब्राह्मणं प्राप्तमतिथिंभोजयेद्यदि । न तस्यफलविश्रान्तिर्ब्रह्मणाऽपिनिरूपिता

सद्यः स्वाप्यायनं नृणामन्नदानं नराधिप! ।
तस्मान्नान्नेन सदृशं दानं लोकेषु विद्यते ॥ ३३ ॥

मार्गश्रान्ताय विप्राय प्रश्रयं प्रददाति यः । तस्यपुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणाऽपि नशक्यते

दारापत्यगृहादीनि वासोऽलङ्कारभूषणम् । असह्य नाशनतः पुंसः सद्यांभुक्तवतोध्रुवम्

तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति । वैशाखे येन चादत्तं मार्गश्रान्ते च भूसुरे
सपिशाचोभवेद्भूमौस्वमांसान्येव खादति । यथाविभूतिदातव्यंतस्मादन्नंद्विजातये
अन्नदो मातृपित्रादीन्विस्मारयतिभूमिप । तस्मादन्नंप्रशंसन्तिलोकास्त्रैलोक्यवर्तिनः
मातरः पितरश्चापि केवलं जन्महेतवः । आनन्दं पितरं लोके वदन्ति च मनीषिणः॥
अन्नदेसर्वतीर्थानि अन्नदे सर्वदेवताः । अन्नदे सर्वधर्माश्चतिष्ठन्त्यरिधराजय ॥ ४० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे दाननिरूपणंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

विविधदानमाहात्म्यवर्णनम्

नारद उवाच

योमर्त्यो द्विजवर्यायपर्यङ्कंतु ददाति हि । यत्रस्वस्थःसुखंशेतेशीतानिलनिषेवितः
धर्मसाधनभूते हि देहे नैरुज्यमाप्नुते । तं दत्त्वा सकलं तापं निरस्य गतकल्मषः ॥२
अखण्डपदवीं याति योगिनामपिदुर्लभाम् । वैशाखेधर्मतप्तानांश्रान्तानांतुद्विजन्मनाम्
दत्त्वा श्रमापहं दिव्यं पर्यङ्कं मनुजेश्वर । न जातु सीदते लोकेजन्ममृत्युजरादिभिः॥
गृहीत्वा ब्राह्मणोयत्रशेतेचाजीवमास्थितः । आसीनेसकलंपापं ज्ञानतोऽज्ञानतःकृतम्
विलयं याति राजेन्द्र! कर्पूर इव चाऽग्निना । शयने ब्रह्मनिर्वाणंसनरोयातिनिश्चितम्
यो दद्यात्कशिपुंमासे वैशाखे स्नानवल्लभे । सर्वभोगसमायुक्तस्तस्मिन्नेव हि जन्मनि
सान्वयो वर्तते नूनं रोगादिभिरनाहतः । आयुष्यं परमारोग्यं यशोधैर्यञ्च विन्दति
नाऽधार्मिकः कुले तस्य जायते शतपौरुषम् ।
भुक्त्वा तु सकलान्भोगांस्ततः पञ्चत्वमेष्यति ॥ ६ ॥

निर्धूताखिलपापस्तु ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति । श्रोत्रियाय द्विजेन्द्राय यो दद्यादुपवर्हणम्
सुखं निद्रा विनायेनन नृणांजायतेक्वचित् । सर्वेषामाश्रयोभूत्वाभुविसाम्राज्यमश्नुते
पुनः सुखी पुनर्भोगी पुनर्धर्मपरायणः । आसप्तजन्म राजेन्द्र! जायते सर्वतो जयी ॥
पश्चात्सप्तकुलैर्युक्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते । तार्णं कटं तु यो दद्यात्कटमन्यदथापि वा
तत्र शेते स्वयं विष्णुर्यत्रस्थः परमेश्वरः । यथा जलगताचोर्णा नजलैर्भिद्यतेक्वचित्
तथा संसारगो जन्तुः संसारे न च बध्यते । आसने शयने सक्तः कटदः सर्वतःसुखी
प्रश्रये शयनार्थाय योदद्यात्कटकम्बलम् । तावन्मात्रेणमुक्तःस्यान्नात्रकार्याविचारणा
निद्रया हीयते दुःखं निद्रया हीयते श्रमः । सा निद्राकटसंस्थस्यसुखंसञ्जायतेध्रुवम्
योदद्यात्कम्बलंराजन्वैशाखेमाधवाऽऽगमे । अपमृत्योःकालमृत्योर्मुक्तोजीवतिवैशतम्
दद्याद्वस्त्रं सूक्ष्मतरं द्विजेन्द्रे वर्मकर्शिते । पूर्णमायुः समाप्नोति परत्र च परां गतिम्
अन्तस्तापहरं दिव्यंकर्पूरं तु द्विजातये । दत्त्वा मोक्षमवाप्नोतिदुःखशान्तिञ्चविन्दति

कुसुमानि च यो दद्यात्कुङ्कुमञ्च द्विजातये ।
सार्वभौमो भवेद्राजा सर्वलोकवशङ्करः ॥ २१ ॥

पुत्रपौत्रादिभोगांश्चभुक्त्वामोक्षमवाप्नुयात् । त्वगस्थिगतसन्तापंसद्योहरतिचन्दनम्
तापत्रयविनिर्मुक्तस्तद्दत्त्वा मोक्षमाप्नुयात् । औशीरंचाम्बकंकौशंयोदद्याज्जलवासितम्
सर्वभोगेषु राजेन्द्र! स तुदेवसहायवान् । पापहानिं दुःखहानिंप्राप्यनिर्वृतिमाप्नुयात्
गोरोचं मृगनाभिञ्च दद्याद्वैशाखधर्मवित् । तापत्रयविनिर्मुक्तः परंनिर्वाणमृच्छति ॥
ताम्बूलञ्च सकर्पूरं यो दद्यान्मेषगे रवौ । सार्वभौमसुखं भुक्त्वा परं निर्वाणमृच्छति
शतपत्रीञ्च यूथीञ्च मेषमासे ददन्नरः । स सार्वभौमो भवति पश्चान्मोक्षञ्च विन्दति

केतकीं मल्लिकां वाऽपि यो दद्यान्माधवाऽऽगमे ।
सतु मोक्षमवाप्नोति मधुशासनशासनात् ॥ २८ ॥

पूगीफलं तु यो दद्यात्सुगन्धन्तु द्विजातये । नारिकेलफलं राजंस्तस्य पुण्यफलंशृणु
सप्त जन्म भवेद्विप्रोधनाढ्योवेदपारगः । पश्चात्सप्तकुलैर्युक्तो विष्णुलोकंसगच्छति

विश्राममण्डपं यस्तु कृत्वा दद्याद् द्विजन्मने ।

तस्य पुण्यं फलं वक्तुं नाऽहं शक्नोमि भूपते! ॥ ३१ ॥

सुच्छायामण्डपंयस्तुसिकताऽऽकीर्णमञ्जसा । सप्रपंकारयेद्यस्तुसतुलोकाधिपोभवेत्
मार्गोद्यानं तडागं वाक्कूपंमण्डपमेव च । यः करोति सधर्मात्मातस्यपुत्रैस्तुकिंफलम्
कूपस्तडाग मुद्यानं मण्डपश्च प्रपा तथा । सद्धर्मकरणं पुत्रः सन्तानं सप्तधोच्यते॥
एतेष्वन्यतमाभावे नोर्ध्वं गच्छन्तिमानवाः । सच्छास्त्रश्रवणंतीर्थयात्रासज्जनसङ्गतिः
जलदानं चान्नदानमश्वत्थारोपणं तथा । पुत्रश्चेति च सन्तानं सप्तेमेऽतिविदो विदुः

नासन्ततिर्लभेल्लोकान्कृत्वा धर्मशतान्यपि ।
तस्मात्सन्तानमन्विच्छेत्सन्नानेष्वेकतो व्रजेत् ॥ ३७ ॥
पशूनां पक्षिणाञ्चैव मृगाणाञ्चैव भूरुहाम् ।
नोर्ध्वलोकं सुखं याति मनुष्याणां तु का कथा ॥ ३८ ॥

पूगीफलसमायुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम् । कर्पूरागुरुसंयुक्तं दद्त्ताम्बूलमुत्तमम् ॥३६

शारीरैः सकलैः पापैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः ।
ताम्बूलदो यशो धैर्यं श्रियमाप्नोति निश्चितम् ॥ ४० ॥
रोगी दत्त्वा विरोगः स्यादरोगी मोक्षमाप्नुयात् ।
वैशाखे मासि दद्यात्तक्रं तापविनाशनम् ॥ ४१ ॥

विद्यावान्धनवान्भूमौ जायते नात्र संशयः । न तक्रसदृशंदानं घर्मकालेषु विद्यते॥
तस्मात्तक्रं प्रदातव्यमध्वश्रान्तद्विजातये । जम्बीरखुरसोपेतं लसल्लवणमिश्रितम् ॥
यस्तक्रमरुचिघ्नन्तुदत्त्वामोक्षमवाप्नुयात् । यो दद्याद्दधिखण्डं तु वैशाखेघर्मशान्तये
तस्य पुण्याफलंवक्तुंनाऽहंशक्नोमिभूमिप । यो दद्यात्तण्डुलान्दिव्यान्मधुसूदनवल्लभे
स लभेत्पूर्णमायुष्यं सर्वयज्ञफलं लभेत् । यो घृतं तेजसो रूपं गव्यंदद्याद्द्विजातये

सोऽश्वमेधफलम्प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे ॥ ४६ ॥

उर्वारुगुडसंमिश्रं वैशाखे मेषगे रवौ । सर्वपापविनिर्मुक्तः श्वेतद्वीपे वसेद्ध्रुवम् ॥

यश्चेक्षुदण्डं सायाह्ने दिवा तापोपशान्तये ।

ब्राह्मणाय च यो दद्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ४८ ॥

वैशाखेपानकंदत्त्वासायाह्नेश्रमशान्तये । सर्वपापविनिर्मुक्तोविष्णोःसायुज्यमाप्नुयात्
सफलं पानकं मेषमासे सायंद्विजातये । दद्यात्तेन पितॄणां तु सुधापानं न संशयः ॥
वैशाखेपानकंचूतसुपक्कफलसंयुतम् । तस्य सर्वाणि पापानि विनाशंयान्तिनिश्चितम्
यो दद्याच्चैत्रदर्शे तु कुम्भं पूर्णन्तु पानकैः । गयाश्राद्धशतं तेन कृतमेव न संशयः ॥
कस्तूरीकर्पुरोपेतं मल्लिकोशिरसंयुतम् । कलशं पानकैः पूर्णं चैत्रदर्शे तुमानवः ॥
दद्यात्पितॄन्समुद्दिश्य स षण्णवतिदो भवेत् ॥ ५३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे दाननिरूपणंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

वैशाखधर्मप्रशंसनवर्णनम्

नारद उवाच

तैलाभ्यङ्गं दिवा स्वापं तथा वै कांस्यभोजनम् ।
खट्वानिद्रां गृहे स्नानं निषिद्धस्य च भक्षणम् ॥ १ ॥
वैशाखे वर्जयेदष्टौ द्विभुक्तं नक्तभोजनम् । पद्मपत्रे तु यो भुङ्क्ते वैशाखे व्रतसंस्थितः
स तु पापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकञ्च गच्छति ।
वैशाखे मासि मध्याह्ने श्रान्तानां तु द्विजन्मनाम् ॥
पादावनेजनं कुर्यात्तद्व्रतं सुव्रतोत्तमम् ॥ ३ ॥
अध्वश्रान्तंद्विजं यस्तुमध्याह्नेस्वगृहागतम् । उपवेश्याऽऽसनेरम्येकृत्वापादावनेजनम्
धृत्वा शिरसि ताश्चापो विध्वस्ताखिलबन्धनः ।
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितम् ॥ ६ ॥

अस्नायी वाऽप्यपत्राशी वैशाखं तु नयेद्यदि ।
रासभीं योनिमासाद्य पश्चादश्वतरो भवेत् ॥ ७ ॥
दृढाङ्गो रोगहीनश्च तथा स्वस्थोऽपि मानवः ।
वैशाखे तु गृहे स्नात्वा चाण्डालीं योनिमाप्नुयात् ॥ ८ ॥
वैशाखेमासिराजेन्द्रमेषसंस्थे दिवाकरे । न करोति बहिःस्नानं श्वानयोनिशतंव्रजेत्
अस्नात्वा वाऽप्यदत्त्वा च वैशाखोयेननीयते । सपिशाचोभवेन्नूनमवैशाखोदधोव्रजेत्
यो न दद्याज्जलं चान्नं वैशाखे लोभमानसः । पापहानिं दुःखहानिं नैवाप्नोतिन संशयः
नदीस्नानं तु यः कुर्याद्वैशाखे विष्णुतत्परः ।
जन्मत्रयार्जितात्पापान्मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ १२ ॥
समुद्रगनदीस्नानं कुर्यात्प्रातर्भगोदये । सप्तजन्मार्जितैः पापैस्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥
कुर्यादुषसि यः स्नानं सप्तगङ्गासुमानवः । कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः
जाह्नवी वृद्धगङ्गा च कालिन्दी च सरस्वती ।
कावेरी नर्मदा वेणी सप्तगङ्गाः प्रकीर्तिताः ॥ १५ ॥
देवखातेषु यः कुर्यात्प्रातर्वैशाखमज्जनम् । जन्मारभ्य कृतात्पापान्मुच्यते नात्रसंशयः
वैशाखे मासिसम्प्राप्ते योवापीष्ववगाहनम् । प्रातःकुर्यान्महाराज! महापातकनाशनम्
अपिगोष्पदमात्रेषु बहिःस्थेषु जलेषु च । तिष्ठन्ति सरितः सर्वा गङ्गाद्याइतिनिश्चयः
इति जानन्समाप्नोति सर्वतीर्थाधिकं फलम् ॥ १८ ॥
क्षीरं रसाधिकंक्षीरादधिकंदधिभूमिप! । दध्नोऽधिकंघृतंयद्वदूर्जो मासोऽधिकस्तथा
कार्त्तिकादधिकोमाघो माघाद्वैशाख उत्तमः ।
तस्मिन्मासे कृतो धर्मो वर्द्धते वटबीजवत् ॥ २० ॥
आढ्यो वाऽतिदरिद्रोवा परतन्त्रोऽथ वा नरः । यद्वस्तुलभतेतेन तद्दातव्यं द्विजातये
कन्दमूलफलं शाकं लवणं गुडमेव च । कोलं पत्रं जलं तक्रमानन्त्यायोपकल्पते २२
नाऽदत्तं लभते काऽपि ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि ॥ २३ ॥

दानेन हीनो हि भवेदकिञ्चनो निष्किञ्चनत्वाच्च करोति पापम् ।

पापादवश्यं नरकम्प्रयाति दातव्यमस्मात्सुखमिच्छता तदा ॥ २४ ॥
यथा गृहं सर्वगुणोपपन्नं परिच्छदैर्हीनमशोभनं तथा ।
मासेषु धर्मः सकलेष्वनुष्ठितो वैशाखहीनस्तु वृथैव याति ॥ २५ ॥
यथैव कन्या सकलैश्च लक्षणैर्युक्ताऽपि जीवत्पतिलक्षणा न हि ।
क्रियाऽपि साङ्गा सकलाऽपि राजन्वैशाखहीना तु वृथैव तां विदुः ॥ २६ ॥
दयाविहीनास्तु यथा गुणा वृथा वैशाखधर्मेण विना तथा क्रियाः ।
शाकं तु यद्वल्लवणेन हीनं न रोचते सर्वगुणोपपन्नम् ॥ २७ ॥
वैशाखहीनं तु तथैव पुण्यं न साधुसेव्यं न फलाप्तिहेतुः ।
यद्वन्न भूषासहिताऽपि शोभते वस्त्रेण हीना ललना सुरूपा ।
क्रियाकलापः सुकृतोऽपि पुम्भिर्न भासते तन्मधुमासहीनम् ॥ २८ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन येन केनाऽपि जन्तुना । धर्मो वैशाखमासे तु कर्तव्य इति निश्चयः
मधुसूदनमुद्दिश्य मेषसंस्थे दिवाकरे। प्रातःस्नात्वाऽर्चयेद्विष्णुमन्यथा नरकम्व्रजेत्
कश्चिन्महीरथोराजाकामासक्तोजितेन्द्रियः । वैशाखस्नानयोगेनवैकुण्ठंगतवान्स्वयम्
वैशाखः सफलो मासो मधुसूदनदैवतः । तीर्थयात्रातपोयज्ञदानहोमफलाधिकः ॥३२

प्रार्थनामन्त्रः ।

मधुसूदन देवेश! वैशाखे मेषगे रवौ । प्रातः स्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरुमाधव! ॥

अर्घ्यमन्त्रः ।

वैशाखे मेषगे भानौ प्रातः स्नानपरायणः । अर्घ्यं तेऽहं प्रदास्यामिगृहाण मधुसूदन !
गङ्गाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि च ह्रदाश्च ये । प्रगृह्णीतमयादत्तमर्घ्यंसम्यक्प्रसीदथ
ऋषभः पापिनां शास्ता त्वं यमः समदर्शनः । गृहाणाऽर्घ्यंमयादत्तंयथोक्तफलदोभव
इतिचार्घ्यंसमर्प्याथपश्चात्स्नानंसमाचरेत् ।वाससीपरिधायाऽथकृत्वाकर्माणिसर्वशः
मधुसूदनमभ्यर्च्य प्रसूनैर्माधवोद्भवैः । श्रुत्वाविष्णुकथां दिव्यामेतन्मासप्रशंसिनीम्
कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुक्तो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ३६ ॥

न जातु म्रियते भूमौ न स्वर्गे न रसातले । न गर्भे जायते क्वापि तन्मयः स तपो भवेत्

वैशाखेकांस्यभोजीयस्तथाचाश्रुतसत्कथः। नस्नातो नापि दाताचनरकानेवगच्छति
ब्रह्महत्यासहस्रस्य पापं शाम्येत्कथञ्चन। वैशाखे येन न स्नातं तत्पापं नैव गच्छति
स्वाधीनेन स्वकायेनजलेस्वातन्त्र्यवर्तिनि। स्वाधीनजिह्वयोच्चार्यंहरिरित्यक्षरद्वयम्
नकुर्याद्यदिवैशाखे प्रातःस्नानं नराधमः। जीवन्नैव स पञ्चत्वमागतो नाऽत्र संशयः
येन केनाप्युपायेन माधवे मधुसूदनम्। नार्चयेद्यदि मूढात्मा शौकरीं योनिमाप्नुयात्
योऽर्चयेत्तुलसीपत्रैर्वैशाखे मधुसूदनम्। नृपो भूत्वा सार्वभौमःकोटिजन्मसुभोगवान्
पश्चात्कोटिकुलैर्युक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४६ ॥
विविधैर्भक्तिमार्गैश्चविष्णुं सेवेतयोव्रतैः। सगुणंनिर्गुणंवाऽपिनित्यंध्यायेदनन्यधीः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्येनारदाम्बरीषसम्वादे वैशाखधर्मप्रशंसानाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

वैशाखश्रेष्ठत्वनिरूपणम्

अम्बरीष उवाच

वैशाखःसर्वधर्मेभ्यस्तपोधर्मेभ्यएवच। सकथंसर्वमासेभ्योदानेभ्योऽप्यधिकोऽभवत्

नारद उवाच

तद्वक्ष्यामि महाप्राज्ञ! शृणु चैकमना भव। कल्पान्तेदेवराड्विष्णुःशेषशायीमहाप्रभुः
कुक्षिस्थलोकसङ्घोऽयं स शेते प्रलयार्णवे। अनेको ह्येकतांप्राप्यभूतिभिर्योगमायया
निमेषस्यावसानेतु श्रुतिभिर्बोधितस्ततः। कुक्षिस्थजीवसङ्घानांरक्षांचक्रेदयानिधिः
तत्तत्कर्मफलप्राप्त्यै सृष्टिं स्रष्टुं मनो दधे। तस्य नाभेरभूत्पद्मं सौवर्णं भुवनाश्रयम्
ब्रह्माणं जनयामास वैराजं पुरुषाह्वयम्। तस्मिन्ससर्ज भगवान्भुवनानि चतुर्दश ॥ ६

भिन्नकर्माशयान्प्राणिसङ्घांश्च विविधान्बहून् ।
त्रिगुणान्प्रकृतिं लोके मर्यादाश्चाधिपांस्तथा ॥ ७ ॥
वर्णाश्रमविभागांश्च धर्मक्लृप्तिश्च सोऽकरोत् ।
वेदैश्चतुर्भिस्तन्त्रैश्चसहितान्स्मृतिभिस्तथा ॥ ८ ॥

पुराणोरितिहासैश्च स्वाज्ञारूपैर्महेश्वरः । ऋषीन्प्रवर्तकांश्चक्रे धर्मगुप्त्यै महाप्रभुः ॥
तैःप्रवर्तितधर्मास्तुवर्णाश्रमविभागजाः ।प्रजाःश्रद्दधिरेसर्वाःस्वोचितान्विष्णुतोषदान्

तांस्तु प्रवर्तमानांस्तु स्वाश्रमान्द्रष्टुमीश्वरः ।
हृदिस्थोऽप्यव्ययः साक्षाद्विभीषार्थं परीक्षया ॥ ११ ॥

अनूनान्कुशलान्यत्रधर्मान्कुर्वन्तिवैप्रजाः । सकालःकोभवेद्विद्वानितिसञ्चिन्तयत्प्रभुः
वर्षाकालोमयासृष्टःसीदन्त्यस्ताइमाः प्रजाः । तत्रानूनान्नकुर्वन्तिधर्मान्पङ्काद्युपद्रुताः
तान्दृष्ट्वा कोप एव स्यात्तेषु तुष्टिर्नमे भवेत् । मयेक्षिता न सीदन्तुतस्मात्तानवलोकये
शरद्यपि तथा पूर्तिः कर्षणान्नैव जायते । केचित्पक्वफलासक्ताः केचिद्वृष्टिभिरर्दिताः
केचिच्छीतार्दिताश्चैव तान्दृष्ट्वा रोष एव मे । वैगुण्यं पश्यतश्चैच न मेतोषोऽभिजायते
उत्थापनं तुनेच्छन्ति प्रातर्हेमन्त आगते । कोपो मेऽनुत्थितान्दृष्ट्वाप्रातः सूर्योदयेसति
शिशिरेऽपि तथैवार्ताः प्रातःकालइमाःप्रजाः । तथापक्वफलादानाशक्ताह्यनिशमञ्जसा
पुनःशीतार्दिताःप्रातःस्नानार्थमितिचिन्तिताः । तेषांतुकर्मलोपःस्यान्नैवपूर्तिःकथञ्चन

प्रेक्षायाः समयो नाऽयमिति चिन्ताऽऽकुलो विभुः ।
वसन्तसमयं मेने सर्वापत्तिनिवारकम् ॥ २० ॥

स्नाने दाने तथा यागे क्रियायां भोगएव च । नानाधर्मविधाने चह्यनुकूलस्त्वयंह्यृतुः
अप्रयासेनलभ्यानिद्रव्याण्यसुभृतां ध्रुवम् । येन केनापि द्रव्येणतुष्टिस्तनुभृतां भवेत्
विष्णोराधारभूतानां तद्द्रव्यं धर्मसाधनम् । वसन्तेसकलंद्रव्यंप्राणिनांतुसुखावहम्
दानयोग्यं धर्मयोग्यंभोगयोग्यंतुसर्वशः । निर्धनानांतुपङ्ग्वादि विकलानांमहात्मनाम्
द्रव्याणिच सुलभ्यानिजलादीनिनसंशयः । द्रव्यैरेतैःस्वात्महितंधर्मंकुर्वन्तिमत्प्रियाः

पत्रैः पुष्पैः फलैरन्यैः शाकैश्चापि प्रियोक्तिभिः ।

स्रक्ताम्बूलैश्चन्दनाद्यैःपादप्रक्षालनादिभिः ॥ २६ ॥
प्रश्रयाद्यैरहो तेषां वरदोऽहमितीरयन् । सञ्चिन्त्य भगवान्विष्णुः प्रतस्थे रमयासह
वनानि सर्वतः पश्यन्विकसत्कुसुमानि च । हृष्टपुष्टजनाकीर्णमत्तालिद्विजसेवितम्॥
आश्रमाणां महार्हाणां वनग्रामनिवासिनाम् ।
प्राङ्गणादीनि रम्याणि ह्युद्यानानि स्थलानि च ॥ २६ ॥
रमायै दर्शयन्विष्णुः सह देवैर्मुनीश्वरैः । सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरोरगराक्षसैः॥
स्तूयमानोऽभ्यगाद्गेहान्वर्णाश्रमनिवासिनाम् ।
मीनादिकर्कटान्तं वै सतिष्ठन्रमया सुरैः ॥ ३१ ॥
सार्द्धं प्रतीक्ष्यपुरुषान्कृताकृतसपर्यया । तत्र धर्मवतां पुंसां ददातीष्टान्मनोरथान्
मत्तान्न सहते पुंसो हरत्यायुर्धनादिकम् । यदि कुर्वन्ति वैशाखे सपर्यां स्परमात्मनः
तत्रापि चलमूर्तीनां साधूनांयत्र वै विभुः । मासेष्वन्येषु यज्जातं कर्मलोपंसहिष्यति
यथा देशागतं भूपं दृष्ट्वा जानपदाःप्रजाः । यदि तं चोपतिष्ठन्ति प्रश्रयाद्यैर्महार्हणैः॥
तदा करादिकं न्यूनं पूर्णंजानाति पार्थिवः । पुनरप्यधिकं चेष्टंतुष्टोदास्यतिनिश्चितम्
तदा त्वकृतपूजानां दण्डं तेषां करोतिच । तथाविष्णुःस्वकीयानांवैशाखेमाधवागमे
सपर्यां कुर्वतां पुंसां ददातीष्टान्मनोरथान् । अकुर्वतां तथा पुंसां धनादीनिहरत्यलम्
धर्मगोप्तुर्महाविष्णोर्देवदेवस्यशार्ङ्गिणः । परीक्षाकालएवाऽयंतस्मान्मासोत्तमोह्ययम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे-
वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे वैशाखश्रेष्ठत्वनिरूपणंनाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

———

षष्ठोऽध्यायः

जलदानमाहात्म्येगृहगोधिकाख्यानवर्णनम्

नारद उवाच

वैशाखेऽध्वगतप्तानां तृषार्तानां महीपते! । जलदानमकुर्वाणस्तिर्यग्योनिमवाप्नुयात्
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । विप्रस्य गृहगोधायाः सम्वादं परमाद्भुतम् ॥
पुरा चेक्ष्वाकुवंशेऽभूद्धेमाङ्ग इति भूमिपः । ब्रह्मण्यश्चवदान्यश्चजितामित्रोजितेन्द्रियः
यावत्यो भूमिकणिका यावन्तोजलविन्दवः । यावन्त्युडूनिगगनेतावतीरददात्सगाः
येनेष्टेयज्ञदर्भैश्च भूमिर्वर्हिष्मती शुभा । गोभूतिलहिरण्याद्यैस्तोषिता वहवो द्विजाः ॥
तेनादत्तानि दानानि न विद्यन्त इति श्रुतम् । तेनादत्तं जलं चैकं सुखलभ्यधियानृप
वोधितोब्रह्मपुत्रेण वसिष्ठेन महात्मना । अमौल्यं सर्वतो लभ्यं तद्दाताकिंफलं लभेत्

दुर्बुद्ध्या हेतुवादैश्च न जलं दत्तवान्द्विजे ।
अलभ्यदाने पुण्यं स्यादिति वाक्यं सुयुक्तिमत् ॥ ८ ॥
स आनर्च द्विजान्व्यङ्गान्दरिद्रान्वृत्तिकर्शितान् ।
नार्चयच्छ्रोत्रियान्विप्रांस्तत्त्वज्ञान्ब्रह्मवादिनः ॥ ९ ॥
प्रख्यातान्पूजयिष्यन्ति सर्वे लोका महार्हणाः ।
अनाथानामविद्यानां व्यङ्गानां च द्विजन्मनाम् ॥ १० ॥
दरिद्राणां गतिः का वा तस्मात्ते मे दयास्पदम् ।
इति दुर्धीरपात्रेषु दत्तवान्किमपि स्वयम् ॥ ११ ॥

तेन दोषेण महता चातकत्वं त्रिजन्मसु । एकजन्मनि गृध्रत्वं श्वाऽभवत्सप्तजन्मसु
पश्चान्नृपगृहे जातो भूपोऽयंगृ हगोधिका । श्रुतकीर्त्याख्यभूपस्यमिथिलाधिपतेर्नृप
गृहद्वारप्रतोल्याञ्च वर्ततेकीटकाशनता । सप्ताशीतिषु वर्षेषु स्थितं तेन दुरात्मना ॥

विदेहाधिपतेर्गेहे कदाचिदृषिसत्तमः ।

श्रुतदेव इति ख्यातः श्रौतो मध्याह्न आगतः ॥ १५ ॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय जातहर्षो नराधिपः । मधुपर्कादिभिःपूज्यतस्यपादावनेजनीः ॥
अपो मूर्ध्ना वहन्क्षिप्रंतदोत्सिक्तैश्चबिन्दुभिः । दैवोपदिष्टकालेनप्रोक्षितागृहगोधिका
सद्यो जातस्मृतिरभूत्स्मृतकर्मादिदुःखिता । त्राहित्राहीतिचुक्रोशब्राह्मणंगृहमागतम्

तिर्यग्जन्तुरवं श्रुत्वा ब्राह्मणो विस्मितोऽवदत् ।
कुतः क्रोशसि गोधे! त्वं दशेयं केन कर्मणा ॥ १९ ॥
त्वं देवः पुरुषः कश्चिन्नृपो वाऽथ द्विजोऽथ वा ।
कस्त्वं ब्रूहि महाभाग! त्वामद्याऽहं समुद्धरे ॥ २० ॥

इत्युक्तः स नृपः प्राह श्रुतदेवं महामतिम् । अहमिक्ष्वाकुकुलजो वेदशास्त्रविशारदः ॥
यावत्यो भूमिकणिका यावन्तस्तोयबिन्दवः । यावन्त्युडूनिगगनेतावतीरददंस्मगाः
सर्वे यज्ञा मयाचेष्टाःपूर्तान्याचरितानि मे । दानान्यपिचदत्तानिधर्मराजस्त्वनुष्ठितः ॥
तथापि दुर्गतिर्जाता मम चोर्ध्वगतिं विना । त्रिवारंचातकत्वंमेगृध्रत्वंचैकजन्मनि ॥
सप्तजन्मस्वलर्कत्वं प्राप्तं पूर्वं मया द्विज ! । सिञ्चताऽनेन भूपेन त्वपः पादावनेजनीः
बिन्दवो दूरमुत्क्षिप्तास्तैः सिक्तोऽहंऽकथञ्चन । तेनजन्मस्मृतिरभूत्सर्वपाप्माहतश्चमे

गोधाजन्मानि भाव्यानि ह्यष्टाविंशतिकानि मे ।
दृश्यन्ते दैवसृष्टानि बिभ्ये तैर्जन्मभिर्भृशम् ॥ २७ ॥

न कारणं प्रपश्यामि तन्मे विस्तरतोवद । इत्युक्तःसऋषिःप्राहज्ञात्वाविज्ञानचक्षुषा ॥
शृणु भूप ! प्रवक्ष्यामि तव दुर्योनिकारणम् । न जलं तु त्वयादत्तंवैशाखेमाधवप्रिये

तज्जलं सुलभं मत्वा ह्यमूल्यमिति निश्चितम् ।
नाध्वगानां द्विजातीनां घर्मकालेऽप्यजानता ॥ ३० ॥

तथा पात्रं समुत्सृज्य ह्यपात्रेप्रतिदत्तवान् । ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्यनहिभस्मनिहूयते ॥

बहुधा वर्णितस्याऽपि सौगन्ध्यादियुतस्य च ।
कण्टकान्वितवृक्षस्य न कुर्वन्ति समर्चनम् ॥ ३२॥

विशिष्टानां पादपानामश्वत्थःसेव्यतांगतः । तुलसींतुसमुत्सृज्यबृहतीपूज्यतेनुकिम्

अनाथत्वं पूज्यतायां न प्रयोजकतामियात् ।
पङ्ग्वाद्या येऽप्यनाथा हि दयापात्रं हि केवलम् ॥ ३४ ॥
तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठाः श्रुतिशास्त्रविशारदाः । विष्णुरूपाः सदा पूज्या नेतरेतुकदाचन
तत्रापि ज्ञानिनोऽत्यर्थं विप्रा विष्णोः सदैव हि ।
ज्ञानिनामपि भूपाल! विष्णुरेव सदा प्रियः ॥
तस्माज्ज्ञानी सदा पूज्यः पूज्यात्पूज्यतरः स्मृतः ॥ ३६ ॥
अवज्ञा साधुवृत्तानामिहाऽमुत्र चदुःखदा । सेवावै महतां पुंसां पुमर्थानांहिकारणम्
कोट्योऽप्यन्धजातीनां न पश्यन्ति यथाऽयथम् ।
एवं मन्दायुतानां तु सङ्गतिर्नार्थदा भवेत् ॥ ३८ ॥
नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः । ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेवसाधवः
न साधुसेवनात्क्वाऽपि सीदन्ते तैः सुशिक्षिताः ।
जन्ममृत्युजराद्यैर्वा सुधयाऽऽप्यायिता यथा ॥ ४० ॥
न जलं तु त्वया दत्तं साधवो वा न सेविताः । तेनतेदुर्गतिश्चेयम्प्राप्ताचेक्ष्वाकुनन्दन!
वैशाखे मत्कृतं पुण्यं तुभ्यं दास्यामिशान्तये । भूतम्भव्यंभवद्येनकर्मजातं विजेष्यसि
इत्युक्त्वाऽप उपस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम् ॥ ४३ ॥
यदा दत्तम्ब्राह्मणेन स्नानञ्चैकदिने कृतम् ।
तेनध्वस्ताऽखिलाघस्तु त्यक्त्वातां गृहगोधिकाम् ॥ ४४ ॥
दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्रग्वस्त्रभूषणः । पश्यतामेव भूतानां मैथिलस्य गृहान्तरे
बद्धाञ्जलिपुटोभूत्वा परिक्रम्यप्रणम्यच । अनुज्ञातो ययौराजा स्तूयमानोऽमरैर्दिवम्
तत्र भुक्त्वामहाभोगान्वर्गायुतमतन्द्रितः । सपत्रचेक्ष्वाकुकुलेकाकुत्स्थोऽभून्महाप्रभुः
सप्तद्वीपवतीपालो ब्रह्मण्यःसाधुसम्मतः । देवेन्द्रस्य सखा विष्णोरंश एव महाप्रभुः
बोधितस्तु वसिष्ठेन वैशाखोक्तान्मनोरमान् ।
अनुष्ठायाऽखिलान्धर्मांस्तेन ध्वस्ताखिलाऽशुभः ॥ ४६ ॥
दिव्यं ज्ञानं समासाद्य विष्णोः सायुज्यमाप्तवान् ।

वैशाखः शुभदस्तस्मात्पुम्भिः सर्वैरनुष्ठितः ॥ ५० ॥
आयुर्यशः पुष्टिदोऽयं महापापौघनाशनः । पुमर्थानां निदानञ्च विष्णुः प्रीणात्यनेनतु
चातुर्वर्ण्यनरैः सर्वैश्चतुराश्रमवर्तिभिः । अनुष्ठेयो महाधर्मो वैशाखे माधवागमे ॥५२॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे गृहगोधिकाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

सभागव्रतधर्मनिरूपणंपिशाचमोक्षवर्णनम्

नारद उवाच

राजा तदद्भुतंदृष्ट्वामैथिलोधर्मवित्तमः । कृताञ्जलिः सुखासीनंविस्मितोवाक्यमब्रवीत्

मैथिल उवाच

दृष्टमेतन्महाश्चर्यं साधूनां चरितंतथा । येन धर्मेण मुक्तोऽभूद्राजा चेक्ष्वाकुनन्दनः ॥
तं धर्मं विस्तरेणैव श्रोतुं कौतूहलं हि मे । मह्यं श्रद्धावते विद्वन्कृपया विस्तराद्वद
इतिराज्ञासुसम्पृष्टःश्रुतदेवो महामनाः । साधुसाध्विवतिसम्भाष्य व्याजहारनृपोत्तमम्

श्रुतदेव उवाच

सम्यग्व्यवसिताबुद्धिस्तवराजर्षिसत्तम।वासुदेवप्रियान्धर्माञ्छ्रोतुंयस्मान्मतिस्तव
बहुजन्मार्जितं पुण्यं विना कस्यापि देहिनः । वासुदेवकथालापे मतिर्नैवोपजायते ॥
यूने राजाधिराजाय जातेयं मतिरीदृशी । शुद्धं भागवतं मन्ये तेनत्वां साधुसत्तमम्
तस्मात्तुभ्यं ब्रुवे सौम्य! धर्मान्भागवताञ्छुभान् ।
याञ्ज्ञात्वा मुच्यतेजन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ ८ ॥
यथा शौचं यथा स्नानं यथा सन्ध्या च तर्पणम् ।

अग्निहोत्रं यथा श्राद्धं तथा वैशाखसत्क्रियाः ॥ ६ ॥

वैशाखे माधवे धर्मानकृत्वा नोर्ध्वगो भवेत् । न वैशाखसमोधर्मो धर्मजातेषु विद्यते
सन्त्येव वहवो धर्माः प्रजाश्चाराजका इव । उपद्रवैश्च लुप्यन्ति नात्रकार्याविचारणा
सुलभाः सकलाधर्माःकर्तुंवैशाखचोदिताः । उदकुम्भंप्रपादानंपथिच्छायादिनिर्मितिः
उपानत्पादुकादानं छत्रव्यजनयोस्तथा। तिलयुक्तमधोर्दानं गोरसानां श्रमापहम्
वापीकूपतडागादिकरणं पथिकाश्रयम् । नारिकेलेक्षुकर्पूरकस्तूरीदानमेव च ॥ १४॥
गन्धानुलेपनं शय्याखट्वादानं तथैव च । तथा चूतफलं रम्यमुर्वारुकरसायनम् ॥
दानं दमनपुष्पाणां तथा सायं गुडोदकम् । चित्राण्यन्नानिपूर्णायांदध्यन्नंप्रत्यहंतथा
ताम्बूलस्य सदा दानं चैत्रदर्शे करीरकम् । रवावनुदिते सूर्ये प्रातः स्नानं दिनेदिने
मधुसूदनपूजा च कथायाः श्रवणं तथा । अभ्यङ्गवर्जने चैव तथा वै पत्रभोजनम् ॥
मध्येमध्ये श्रमार्तानां वीजनं व्यजनेन च । सुगन्धैः कोमलैः पुष्पैःप्रत्यहं पूजनं हरेः
फलं दध्यन्ननैवेद्यं धूपदीपौ दिनेदिने । नो ग्रासं वृषपत्नीनां द्विजपादावनेजनम् ॥

गुडनागरदानं च धात्रीपिष्टप्रदापनम् ।
पथिकानां प्रश्रयं च दानं तन्दुलशाकयोः
एते धर्माः प्रशस्ता हि वैशाखे माधवप्रिये ॥ २१ ॥
तथा च विष्णोः कुसुमार्पणं हरेः पूजाचकालोचितपल्लवाद्यैः ।
दध्यन्ननैववेद्यनिवेदनञ्च समस्तपापौघविनाशहेतुः ॥ २२ ॥
नारी पुष्पैर्माधवं नाऽर्चयेद्या कालोत्पन्नैर्मन्दिरे वा गृहे वा ।
पुत्रं सौख्यं क्वाऽपि नाऽऽप्नोति हन्ति चायुर्भर्तुः स्वात्मनो वा महात्मन् ॥
रमासहाये माधवे मासि विष्णौ परीक्षायै धर्मसेतोः प्रजानाम् ।
गृहं याते मुनिभिर्दैवतैश्च काले पुष्पैर्नार्चयेद्यस्तु मूढः ॥ २४ ॥
समूढात्मा रौरवम्प्राप्य पश्चाद्यायाद्योनिं राक्षसीं पञ्चवारम् ।
जलं चान्नं सर्वदा देयमस्मिन्क्षुधार्तानां प्राणिनां प्राणहेतुः ॥ २५ ॥
तिर्यग्जन्तुर्जायते वार्यदानादन्नादानाज्जायते वै पिशाचः ।

अन्नादाने चाऽनुभूतां कथान्ते ह्यहं वक्ष्ये चाद्भुताम्भूमिपाल! ॥ २६ ॥
रेवातीरे मत्पिताऽभूत्पिशाचः स्वमांसाशा क्षुत्तृषाश्रान्तगात्रः ।
छायाहीने शाल्मलीवृक्षमूले ह्यन्नाभावान्नष्टचैतन्य एषः ॥ २७ ॥
क्षुधा तृषा कर्मणा यस्य वह्वी सूक्ष्मं छिद्रं कण्ठनालस्य चाऽऽसीत् ।
मांसं चान्तः कण्ठमध्ये निषण्णं कुर्यात्पीडां प्राणपर्यन्तमेव ॥ २८ ॥
जलं दृष्ट्वा कालकूटप्रकल्पं कौप्यं शीतं वाऽपि कासारसंस्थम् ।
तस्यास्तीरे चागतं दैवयोगाद्गङ्गायात्राकारणान्मार्गमध्ये ॥ २९ ॥
दृष्ट्वाऽद्भुतं शाल्मलीवृक्षमूले त्रुट्वा त्रुट्वा भक्षयन्तं स्वमांसम् ।
क्रोशन्तं तं बहुधा शोचमानं क्षुधातृषाव्याधितं कर्मभिः स्वैः ॥ ३० ॥
स मां हन्तुं प्राद्रवत्पापकर्मा मत्तेजसा निहतो दुद्रुवे च ।
तं चाऽब्रवं कृपया क्लिन्नचित्तो मा भैष्ट त्वं ह्यभयं मे हि दत्तम् ॥ ३१ ॥
कस्त्वं तात! ब्रूहि सद्योऽत्र हेतुं कृच्छ्रादस्मान्मोचये मा विषीद ।
इत्युक्तो मां प्राह पुत्रं त्वजानन्पुरानर्तें भूवराख्ये पुरे च ॥ ३२ ॥
नाम्ना मैत्रः साङ्कृतेर्गोत्रजोऽहं तपोविद्यादानयज्ञादिनिष्ठः ।
मयाऽधीताध्यापिताः सर्वविद्याः कृतो मया सर्वतीर्थाऽवगाहः ॥ ३३ ॥
दत्तं नाऽन्नं मासि वैशाखसञ्ज्ञे लोभाद्भिक्षामात्रमप्येव काले ।
शोचे चाऽहं प्राप्य पैशाचयोनिं नाऽन्यो हेतुः सत्यमेवोक्तमङ्ग! ॥ ३४ ॥
पुत्रोऽधुना वर्तते मद्गृहे च भूरिख्यातिः श्रुतदेवाऽभिधानः ।
वाच्यां तस्मै मद्दशा चाऽऽत्मजाय वैशाखान्नादानतोऽभूत्पिशाचः ॥ ३५
दृष्टस्तीरे ते पिता नर्मदाया नोर्ध्वं गतो वर्तते वृक्षमूले ।
खादन्मांसं स्वीयमेवाऽन्वखिद्यत्पितुर्मुक्त्यै मासि वैशाखसञ्ज्ञे ॥ ३६ ॥
प्रातः स्नात्वा पूजयित्वा च विष्णुं निर्व्याजान्मां तर्पयित्वा जलैश्च ।
देयं चान्नं द्विजवर्ये गुणाढ्ये मुक्तो यो वै याति विष्णोः पदञ्च ॥ ३७॥
इत्थं चोक्तं त्वत्पुरस्ताद्वदेति दया चैषा मत्कृते नाऽस्य शङ्का ।

भद्रं भूयात्सर्वतो मङ्गलं ते श्रुत्वा चाऽहं भाषितं मे पितुश्च ॥ ३८ ॥
दुःखात्कायं दण्डवत्पातयित्वा भृशार्तोऽहं पादयोर्भूरिकालम् ।
निन्दन्निन्दन्भूयहं बाष्पनेत्रः पुत्रोऽहं ते तात! दैवागतोऽहम् ॥ ३६ ॥
कर्मभ्रष्टो भूसुराणां विनिन्द्यो नाऽभूद्यस्मात्क्लेशमोक्षः पितॄणाम् ।
आख्याहि त्वं कर्मणा केन मुक्तोभविता वै तत्करोमि द्विजेन्द्र! ॥ ४० ॥
ततः प्राह प्रीतसर्वान्तरात्मा यात्रां कृत्वा शीघ्रमागत्य गेहम् ।
प्राप्ते मासे मेषसंस्थे च भानौ निवेद्याऽन्नं विष्णवे त्वं गुणाढ्यम् ॥४१॥
दानं देहि द्विजवर्ये महात्मंस्तस्मान्मोक्षो भविता सान्वयस्य ।
पित्राऽऽदिष्टः कृतयात्रः स्वगेहे प्राप्याऽकरं माधवे चाऽन्नदानम् ॥ ४२ ॥
तस्मान्मुक्तो मत्पिता मां समेत्य यानारूढो ह्यभिनन्द्याऽऽशिषा च ।
गतो लोकं श्रीपतेर्दुर्विभाव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ॥ ४३ ॥
तस्माद्दानं सर्वशास्त्रेषु चोक्तं तुभ्यं प्रोक्तं धर्मसारं सुधर्म्यम् ।
किमन्यत्ते श्रोतुमिच्छा वदस्व श्रुत्वा सर्वं ते वदामीति सत्यम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे पिशाचमोक्षप्राप्तिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

दाक्षायण्यपमानेदक्षयज्ञविध्वंसपूर्वकपार्वतीजन्मादिकामदहनवर्णनम्

मैथिल उवाच

ब्रह्मन्निक्ष्वाकुतनयो जलाऽदानाच्चचातकः। त्रिवारमभवत्पश्चान्मद्गृहेगोधिका तथा
कर्मानुगुणमेतद्धियुक्तं तस्याऽकृतात्मनः। सतामसेवनात्तस्य गृध्रत्वं सारमेयता ॥ २
सप्तवारमिति प्रोक्तं तन्मे भाति च नोचितम्। सन्तोनदूषितास्तेननतथाकृपणाअपि
तस्मादसेविनस्तस्य फलाऽभावोभवेद्ध्रुवम्। नानर्थकरणाभावादिदं हिपरपीडनम्
अनिमित्तमिदं कस्मात्कुयोनित्वमवाप्तवान्।
तदेतं संशयं छिन्धि शिष्यस्याऽऽत्मप्रियस्य च ॥ ५ ॥
इति राज्ञा सुसम्पृष्टःश्रुतदेवो महायशाः। साधुसाध्विवतिसम्भाष्यवचोव्याहर्तुमादधे

श्रुतदेव उवाच

श्रणुराजन्प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टं तु त्वयाऽनघ! शिवायै चशिवेनोक्तंकैलासशिखरेऽमले
सृष्ट्वेमान्सकलाँल्लोकान्पश्चात्तेषामवस्थितिम्।
आमुष्मिकीमैहिकीञ्च द्विविधां पर्यकल्पयत् ॥ ८ ॥
हेतुत्रयञ्च प्रत्येकं हेतुस्थित्यै महाप्रभुः। जलसेवा चान्नसेवा सेवा चैवौषधस्य च ॥
यत्र चैते महाभाग! ह्यैहिकस्थितिहेतवः। एवमामुष्मिके राजंस्त्रयएवेरिताः श्रुतौ ॥
साधुसेवा विष्णुसेवा सेवाधर्मपथस्य च। पुरा सम्पादिता ह्येते परलोकस्य हेतवः
गृहे सम्पादितं यद्वत्पाथेयं पद्धतौ यथा। ऐहिका हेतवो राजन्सद्यः सम्पादितार्थदाः
किं चेष्टमपिसाधूनांमनसोयदिदुस्सहम्। कुतश्चित्कारणाद्राजंस्तच्चानर्थायकल्पते
अप्रियं किमु वक्तव्यं दुःखहेतुरिति स्फुटम्। अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासंपुरातनम्
पापघ्नं महदाश्चर्यं श्रण्वतां रोमहर्षणम्। यज्ञदीक्षामुपगतः पुरा दक्षः प्रजापतिः ॥
आह्वानार्थं भूतपतेरगमद्रजताचलम्। तं दृष्ट्वा नोत्थितः शम्भुस्तस्यैव हितकाम्यया

सर्वामरगुरुश्चाऽहं छन्दोगम्यः सनातनः । भृत्या ह्येतेबलिहराश्चन्द्रेन्द्राद्याः सुरेश्वराः
स्वामी भृत्याय नोत्तिष्ठेत्स्वभार्यायै पतिस्तथा ।
गुरुः शिष्याय नोत्तिष्ठेदिति शास्त्रविदां मतम् ॥ १८ ॥
नसम्वन्धो गुरुत्वेचकारणंत्वितिवैश्रुतिः । वलंज्ञानंतपःशान्तिर्यत्रचैवाऽधिकम्भवेत्
स गुरुश्चेतरेषां च नीचा ईयुश्च प्रेष्यताम् ।
उत्तिष्ठन्ति च स्वाम्याद्या भृत्यादीन्यदि चाऽऽग्रहात् ॥ २० ॥
आयुर्वित्तं यशस्तेषां सद्यो नश्यतिसन्ततिः । तस्मादहंतुनोत्तिष्ठे प्रियोऽयंश्वशुरोमम
इति तस्य हितान्वेषी नोच्चचालाऽऽसनाद्विभुः ।
नोत्थितं तु मृडं दृष्ट्वा कुपितोऽभूत्प्रजापतिः ॥ २२ ॥
अनिन्दद्वहुधा तस्मै पुरतो गिरिजापतेः । अहो दर्पमहो दर्प दरिद्रस्याऽकृतात्मनः ॥
यस्यवित्तं वहुवया वृषश्चर्मावशेषितः । अत एव कपालास्थिधरः पाखण्डगोचरः ॥
वृथाऽहङ्कारिणोदैवंकुतोदास्यतिमङ्गलम् । लोकेकृत्येनकर्माणिशुचीनीतिविदोविदुः
धत्ते दरिद्रः शीतार्तःपवित्रंचगजाजिनम् । वेश्मश्मशानंयस्यस्याद्भुजङ्गःकिलभूषणम्
न धीरताऽपिच ज्ञानंवृकात्तस्मात्पलायिते । भूतप्रेतपिशाचादिदुर्जनैःसङ्गतोऽनिशम्
न कुलं श्रूयते क्वाऽपि नाऽसौ वैसाधुसम्मतः । वृथाविश्रम्भितः पूर्वंनारदेनदुरात्मना
येनाऽहं वोधितः प्रादां कन्यां चैतांसतीं मम । पृथग्धर्मगता चैषा सुखंवसतुतद्गृहे
नास्माभिःश्लवनीयोऽसौमत्सुताऽपिकथञ्चन । यथाकुलालकलशश्चण्डालस्यवशंगतः
इति दक्षो विमूढात्मा ह्युमांनाहूय तंमृडम् । वहुधा तंविनिर्भर्त्स्यंतूष्णीमेवगृहंययौ
यज्ञवाटं ततो गत्वा ऋत्विग्भिर्मुनिभिः सह । ईजे यज्ञविधानेन निन्दन्नेव महाप्रभुम्
ब्रह्मविष्णू विहायैव सर्वे देवाः समागताः । सिद्धचारणगन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः
तदा देवी सती पुण्या स्त्रीचाञ्चल्यात्प्रलोभिता ।
उत्सुका चोत्सवं द्रष्टुं वन्धूंस्तत्र समागतान् ॥ ३४ ॥
निवार्यमाणारुद्रेणतरलास्त्रीस्वभावतः । प्रत्युक्ताऽपिपुनश्चैवगन्तव्यमितिनिश्चितम्
स निन्दति सदामात्वेवदमांवरवर्णिनि! । तच्चासह्यश्रुत्वंश्रुत्वाकायंसत्यंप्रहास्यसि

असह्यमपि सोढव्यं मयाऽपि गृहमिच्छता । मयायथा कृतंदेवि तथा त्वं नैववर्तसे
तस्मान्मा गच्छशालांवैनशुभं तु भवेद्ध्रुवम् । इत्येवं बोधितादेवीचापल्यंपुनरागमत्
निश्चक्रामसती गेहादेकाकी पादचारिणी । तां दृष्ट्वा वृषभस्तूर्ण्णीं पृष्ठेदेवीमुवाहसः
कोटिशो भूतसङ्घाश्चह्यनुजग्मुः सतीं तदा । यज्ञवाटं तु सागत्वापत्नीशालां ययौपुरा
तूष्णीमास सतीं दृष्ट्वा खेदात्तस्माद्विनिर्गता ।
पतिवाक्यं तु संस्मृत्य जगामोत्तरवेदिकाम् ॥ ४१ ॥
पिता सभ्याश्च तां दृष्ट्वा स्थितास्तूर्ण्णीं हताशिषः ।
सारुद्राहुतिपर्यन्तंपश्यन्तीपितृचेष्टितम् ।
त्यक्त्वा रुद्रञ्च जुह्वन्तमुवाचाऽश्रुकुलेक्षणा ॥ ४२ ॥
देव्युवाच
महदुल्लङ्घनं पुंसां नप्रायः श्रेयसे भवेत् । लोककर्ता लोकभर्ता सर्वेषां प्रभुरव्ययः॥
एवम्भूतस्य रूद्रस्य कथं नो दीयतेहविः । जातांनकिन्तेदुर्बुद्धिर्हरन्त्यन्येसमागताः
न चेद्दृशा महात्मानः किमेषां विमुखोविधिः ॥ ४५ ॥
इत्येवं भाषमाणां तां पूषा देवो जहास ह । श्मश्रूणां चालनं चक्रे भृगुर्हतशुभस्तथा
भुजपादोरुकक्षाणां स्फालनं चक्रिरे परे । बहुधा निन्दनं चक्रे तत्पिताहतभाग्यवान्
तच्छ्रुत्वा रुद्रभार्या सा कोपाकुलितमानसा । प्रायश्चित्तंश्रुतेःकर्तुं देहंतत्याजसासती
होमाग्नौ वेदिकामध्ये सर्वेषामेव पश्यताम् ॥ ४८ ॥
हाहाकारो महानासीद्दुद्रुवुः प्रमथा द्रुतम् । आचख्युर्देवदेवाय वृत्तान्तमखिलं तदा
तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय रुद्रःकालान्तकोपमः । जटामुत्पाट्यहस्तेनभूतलेतामताडयत्
ततोऽभवन्महाकायो वीरभद्रो महाबलः । सहस्रबाहुरभवत्कालान्तकसमप्रभः ॥ ५१
बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा व्याजहारहरं तदा । मत्सृष्टिस्तु यदर्थंते तदर्थंमां नियोजय ॥
इत्युक्तः प्राह तं क्रुद्धो धूर्जटिश्च पुरःस्थितम् ॥ ५३ ॥
हन त्वं निन्दकं दक्षं यदर्थे मत्प्रिया हता । भूतसङ्घास्तु गच्छन्तु सहैतेन महाबलाः
इत्यादिष्टा भगवता ययुर्यज्ञमहीं तदा । जघ्नुः सर्वान्महावीरान्देवासुरनरादिकान्

पूष्णश्च हसतो दन्ताञ्जटाभूश्च बभञ्ज ह । श्मश्रूण्युत्पाटयाञ्चक्रे भृगोतस्यस्वदुरात्मनः
यद्यद्दारुफालितं पूर्वं तत्तच्चिच्छेद वीर्यवान् । ततो दक्षशिरो हतुं बहूद्योगं चकार ह
मुनिमन्त्रप्रगुप्तं तु नैवं कृन्तति तद्बलात् । हरो ज्ञात्वातुचिच्छेदस्वयमेत्यदुरात्मनः
एवं मखगतान्हत्वा साऽनुगः स्वालयं ययौ । हतावशिष्टाः केचित्तुब्रह्माणं शरणंययुः
तैरन्वितो ययौ ब्रह्माकैलासंतुशिवालयम् । ततोरुद्रंसान्त्वयित्वावचोभिर्विविधैरपि
तेनैव सहितः प्रागाद्यज्ञवाटं महाप्रभुः । तेनैवोज्जीवयामास सर्वान्यज्ञसमागतान् ॥
ख्यात्यै प्रादादजमुखं दक्षस्य तुतदा शिवः । अजश्मश्रूण्यदाच्छम्भुर्भृगवेतुमहात्मने

पूष्णश्च दन्तान्न प्रादात्पिष्टादश्च चकार ह ।
तदगङ्गानां व्यतिकरं केषाञ्चिदपि वै शिरः ॥ ६३ ॥

शिवमापुश्च ते सर्वे ब्रह्मणा च शिवेन च । पुनः प्रवर्तितो यज्ञो यथापूर्वं महात्मनः ॥
यज्ञान्तेसर्वदेवाश्च जग्मुस्ते स्वंस्वमालयम् । नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं तु कृत्वा रुद्रोमहातपाः
तेपे गङ्गातटे रुद्रः पुन्नागतरुमूलगः । दक्षात्मजासती देवी त्यक्तदेहा पतिव्रता ॥६६॥
जज्ञे हिमाद्रेर्मेनक्यां ववृधे तस्य वेश्मनि । एतस्मिन्नेव माले तु तारकाख्योमहासुरः
स तीव्रतपसाऽऽराध्य ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् । अवध्यत्वं वरं वव्रे देवासुरनरोरगैः ॥
आयुधैरस्त्रसङ्घैश्च सर्वैरेव महाबलैः । रुद्रपुत्रं विना दैत्यो ह्यवध्यः सकलैरपि ॥ ६९
इति तस्मैवरंप्रादाद्ब्रह्मालोकपितामहः । अस्त्रीकत्वादपुत्रत्वाद्रुद्रस्येतितथास्त्विति

वरं गृहीत्वा स्वगृहं प्राप्य लोकान्बबाध ह ।
दासा देवा मार्जनादौ दास्यो देव्यश्च तद्गृहे ॥ ७१ ॥

ततस्तत्पीडिता देवा ब्रह्माणं शरणंययुः । तैःपीडांवर्णितांश्रुत्वावेधाःप्राहसुरानिदम्
वरप्रदानकालेऽहं रुद्रपुत्रं विना सुराः । नान्यैर्वध्य इति प्रादां वरं तस्मै दुरात्मने ॥
पुरा सती रुद्रपत्नी सत्रे त्यक्तकलेवरा । जाता हिमवतः पुत्री पार्वतीति चयांविदुः
रुद्रो हिमवतः पृष्ठे तपश्चरति दुश्चरम् । योजयध्वं च पार्वत्या रुद्रं लोकेश्वरं प्रभुम्
पुनर्देवेन्द्रसदने सङ्गतैरमरेश्वरैः । धिषणेनाऽपि सम्मन्त्र्य देवेन्द्रः पाकशासनः ॥७६
तस्मात् च स कार्यार्थं नारदं स्मरमेवच । तत्राऽऽगतौततस्तौतुबलभिद्वाक्यमब्रवीत्

हिमवन्तं भवान्गत्वा वचसा तं निबोधय । पुत्री तव प्राग्दक्षस्य हरपत्नी सुतासती
तपश्चरति ते शृङ्गे वियुक्ता दशकन्यया । मृडस्तस्य सपर्यायैविनियोजयतत्प्रियाम्
तस्यैव पत्नी भविता स एव भविता पतिः ।
इत्याऽऽदिष्टो मघोना च नारदोपेत्य तं गिरिम् ॥ ८० ॥
तथैव कारयामास देवेन्द्रेणोदितं यथा । पश्चात्कामं समाहूय मघवानिदमाह च॥
देवानां च हितार्थाय तथा मृडहिताय च । वसन्तेन समायुक्तो गत्वा रुद्रतपोवनम्
गुणान्विजृम्भयित्वा तु वासं तान्द्वच्छयावहान् ।
यदा सन्निहिता देवी पार्वती तु मृडस्य च ॥ ८३ ॥
तदा प्रयुज्यत्वंबाणान्मोहयस्वमहाप्रभुम् । तयोस्तुसङ्गमेजातेकार्यंनोऽद्धाभविष्यति
इत्यादिष्टः स्मरस्तूर्णं प्रतस्थे बाढमित्यथ । सवसन्तः सरतिकः सानुगस्तद्वनंययौ
अकाले तु वसन्ततुं जृम्भयित्वा स्वशक्तितः । तद्वने सर्वतोरम्येमन्दाऽनिलनिषेविते
कदाचिद्देवदेवोऽपि पार्वत्याश्च सपर्यया ।
प्रीतः स्वाङ्कं समारोप्य किञ्चिद्व्याहर्तुमारभत् ॥ ८७॥
प्राणप्रियासङ्गमस्य कालोऽयमिति निश्चितः । पेशलं धनुरादाय स तस्थौहरपृष्ठतः
कृत्वा जवनिकां वृक्षं बाणमेकं मुमोच ह । द्वितीयमपि संधाय चक्रे मोक्तुंमहोद्यमम्
अथ क्षुब्धमना भूत्वामृडश्चिन्तामवाप ह । न मे मनश्चलेत्क्वापि केनवाकश्मलीकृतम्
इतिचिन्ताकुलोवामेपार्श्वेकामंददर्श ह । क्रुद्धोन्मील्य ललाटाक्षंस्वाङ्काद्देवीमपास्यच
तस्याक्ष्णः समभूदग्निस्तीक्ष्णो लोकविभीषणः ।
तेनदग्धोऽभवत्सद्यो मन्मथः सशरासनः ॥ ९२ ॥
कार्यसिद्धिश्च पश्यन्तो दुद्रुवुश्चामरादिवम् । शङ्कमानाः स्वदण्डञ्चवसन्तोरतिरेवच
निमील्य लोचने भीता देवी दूरं प्रदुद्रुवे । सन्निधानं स्त्रियोहर्तुं मृडोऽप्यन्तरधीयत
रुद्रस्येष्टं प्रकुर्वाणो देवश्च मनसो हितम् । लेभेऽनर्थमनिर्वृत्तं विप्रियंकुर्वतस्तुकिम्
तस्मादिक्ष्वाकुतनयः साधूनामप्रियः सदा ।
तस्मात्सन्महितां सेवां नाकरोन्मन्दधीः सताम् ॥ ९६ ॥

अनुभूतंमहद्दुखंतस्माद्दुर्योनिरेव च । तस्मात्कुर्यात्तुसाधूनांसेवांसर्वार्थसाधिनीम्
रुद्रस्याऽप्रियकारित्वात्स्मरोभाविनिजन्मनि । दुःखंतुवहुलं लेभेजन्मकालेमहाप्रभुः
इतिहासमिमंपुण्यंयेश्रृण्वन्तिदिवानिशम् ।जन्ममृत्युजरादिभ्योमुच्यन्तेनाऽत्रसंशयः

इहि श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे दाक्षायण्यपमाने दक्षयज्ञ-विध्वंसपूर्वकपार्वतीजन्मादिकामदहनवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥८ ॥

नवमोऽध्यायः

रतिविलापानन्तरं कुमारोत्पत्तिप्रसङ्गवर्णनम्

मैथिल उवाच

तस्य दग्धस्य कामस्य कस्माज्जन्माऽभवद्विभो! ।
किं दुःखमभवत्तस्मिन्कर्मणः सह लङ्घनात् ॥ १ ॥
एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्छ्रोतुं कौतूहलं हि मे ।

श्रुतदेव उवाच

कुमारजन्म वक्ष्यामि श्रवणात्पापनाशनम् ॥ २ ॥
यशस्यं पुत्रदं धर्म्यं सर्वरोगविनाशनम् । शम्भुनातु हते कामे तत्पत्नी रतिसञ्ज्ञिका
मुमोह पुरतो दृष्ट्वापतिं भस्मावशेषितम् । जातसञ्ज्ञा मुहूर्तेन विललापच चित्रधा ॥
यद्विलापाद्वनं चापि समदुःखमभूत्तदा । तच्चिताग्नौ स्वकायंतुत्यक्तुकामाचमाधवम्
पत्युः सखायं सस्मार कर्तुं तात्कालिकीं क्रियाम् ।
स आगतश्चितिं कर्त्तुं वीरपत्न्या महाप्रभुः ॥ ६ ॥
स तुत्रस्तःसखींदृष्ट्वाक्षणंमूर्च्छापरोऽभवत् । रतिंतुसान्त्वयामाससान्त्वैर्बहुविधैरपि

पुत्रतुल्योऽस्मिते भद्रे स्थितेमयिचनाऽर्हसि । कार्यंत्यक्तुंधर्महेतुमित्याद्यैर्बहुधाऽपिसा
नैव स्थातुंमनश्चक्रेतेनसंस्तम्भितारतिः । दृष्ट्वादाढर्यं वसन्तोऽपिचितिञ्चक्रेसरित्तटे
साऽवगाह्ययुनद्यांच कृत्वाकार्याणिसर्वशः । सन्नियम्येन्द्रियग्रामंनिवेश्यात्मनिचंमनः
चितिमारोढुमारेभे ततो जाताऽशरीरवाक् । मा प्रवेशय कल्याणि! वह्निंपतिपरायणा

भविष्यति च ते पत्युर्हराद्विष्णोश्च यादवात् ।
जन्मद्वयं क्रमेणैव तत्र चोत्तरजन्मनि ॥ १२ ॥
भैष्म्यां कृष्णान्महाविष्णोः प्रद्युम्नाख्यो भविष्यति ।
वसिष्यसि त्वञ्च शापाद्ब्रह्मणः शम्बरालये ॥ १३ ॥
प्रद्युम्नाख्येन ते पत्या सङ्गतिश्च भविष्यति ।
इत्युक्त्वा विररामाऽथ वाणी चाऽऽकाशगोचरा ॥ १४ ॥
श्रुत्वा तां तु निवृत्ताऽभून्मरणे कृतनिश्चया ।
ततो देवाः समाजग्मुः स्वार्थे कामे हते हरात् ॥ १५ ॥

रत्या कृतं प्रपश्यन्तोगुर्विन्द्राग्निपुरोगमाः । तां ते निवर्तयामासुर्वरेण महतासतीम्
अनङ्गोऽपिभवेत्साऽङ्गोमृतएवाऽक्षिगोभवेत् । इतितां तुविनिर्वर्त्यधर्मंचोपदिदेशिरे
पूर्वकल्पे त्वयं राजा सुन्दराख्यो महाप्रभुः । त्वमेव पत्नीतत्राऽपिरजःसङ्करकारिणी
तेनेयश्च दशाऽभूत्ते कुर्विदानींचनिष्कृतिम् । मन्दाकिन्यांतुवैशाखेप्रातःस्नानंतदाकुरु
मधुसूदनमभ्यर्च्यकथां दिव्यां तथा शृणु । अशून्यशयनंनाम व्रतमारभ भामिनि ॥
धर्मेणाऽनेन ते भद्रे व्रतेनाऽपि च माधवे । नूनं ते भवितापत्युरुपलब्धिर्न संशयः ॥

इति तस्यै वरं दत्त्वा देवा जग्मुर्यथाऽऽगताः ।
तथाकृच्छ्रान्निवृत्ता सा देवी कामसती तथा ॥ २२ ॥

गङ्गाऽवगाहनं चक्रेमेष संस्थेदिवाकरे । अशून्यशयनंनामव्रतञ्चाऽपि महामनाः ॥२३
तेनपुण्यप्रभावेन सद्यः कामोऽक्षिगोचरः । अभूत्तस्यै महाराज लोकेचावार्यवीर्यवान्
पूर्वकल्पेऽप्ययमपि राजा धर्मपरायणः । वैशाखोक्तान्महाधर्मान्नाकरोत्तेन वै स्मरः ॥
देहहानिंप्रपेदेऽसौ पुत्रोऽपि परमात्मनः । वृथानीतं तु वैशाखंमेषसंस्थे दिवाकरे ॥

अवस्थेयं च देवानां मनुष्याणां तु का कथा ।
त्र्यम्बकेऽन्तर्हिते पश्चान्निराशा गिरिकन्यका ॥ २७ ॥
तूष्णीं स्थितां तदाभ्रान्ता तां दृष्ट्वा हिमवान्गिरिः ।
चकितः स्वगृहं निन्ये दोर्भ्यां तां परिरभ्य च ॥ २८ ॥

रूपौदार्यगुणान्दृष्ट्वा हरस्यैव महात्मनः । स एव मे पतिर्भूयादितितन्निष्ठमानसा ॥
गङ्गोपकूलमापेदेतपस्तप्तुंधृतव्रता । निवारिताऽपि सा देवी पित्रा मात्रा स्वकैर्जनैः
अर्चयन्ती महालिङ्गं निराहारा जटाधरा । दिव्यवर्षसहस्रान्ते प्रत्यक्षोऽभून्महेश्वरः ॥
भूत्वावर्ण्यपिसायाह्नेपर्णशालामुखेविभुः । स्वनिष्ठमनसोदाढर्यं वाक्यैर्नानाविधैरपि
ज्ञात्वा वरादरं भद्रे वरयेति महाप्रभुः । सा वव्रेऽथ पतिं रुद्रं त्वं भवेति वरानना
स तथैव वरंदत्त्वाऋषीन्सस्मारसप्तच । आजग्मुस्तेऽपिमुनयःस्थिताःप्राञ्जलयःपुरः

ऋषीणां ज्ञापयामास कन्या प्रष्टुं हिमालयम् ।
तथाऽदिष्टा भगवता कन्यार्थं हिमवद्गृहम् ॥ ३५ ॥

प्रापुर्विहायसा सर्वे द्योतयन्तो दिशोदश । प्रत्युज्जगामसगिरिःसप्ततान्ब्रह्मवित्तमान्

सम्पूज्य विधिवत्सर्वान्सुखासीनानपृच्छत ।
धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि यद्भवन्तो गृहाऽऽगताः ॥ ३७ ॥

भवदागमनं मन्येममजन्मफलंत्विति । नकृत्यंविद्यतेऽस्माभिःपूर्णार्थानांमहात्मनाम्
तथाऽपि ब्रूतकार्यंवोयत्कर्तव्यंमयाऽधुना । इत्युक्तास्तेतथाप्रोचुर्हिमवन्तंमहागिरिम्
त्वयास्वसदृशं वाक्यमुक्तं गिरिपते ! दृढम् । अस्मदागमने हेतुं वक्ष्यामस्ते महोदये
कन्याते पार्वतीनाम पूर्वं दक्षात्मजा सती । जाता तव कुमारी या यज्ञे त्यक्तकलेवरा

अस्याः पाणिग्रहे दक्षः शम्भुर्नाऽन्यो जगत्त्रये ।
देयासाशम्भवे देवी भवताऽऽनन्त्यमिच्छता ॥ ४२ ॥

पूर्वजन्मसहस्रेषु भवता सुकृतं कृतम् । इदानीं तव दिष्ट्या तु परिपाकमुपागतम्
तेषां तद्वचनं श्रुत्वासंहृष्टाऽऽत्मामहागिरिः । व्याजहारपुनर्वाक्यंपुत्रीवल्कलधारिणी
गङ्गातीरे निराहारा तपस्तपति दुश्चरम् । काङ्क्षमाणा पतिंशम्भुं तस्याइष्टमिदंत्विति

दत्ता कन्या मया तस्मै त्र्यम्बकायमहात्मने। शीघ्रं गत्वाभवन्तस्तुयत्रशम्भुर्महाप्रभुः
प्रीत्या हिमवता दत्तां गृहाणेति निवेद्य च। भवन्त एवकुर्वन्तुचैतद्वैवाहिकींक्रियाम्

इत्युक्तास्ते हिमवता तमामन्त्र्य शिवं ययुः।
लक्ष्म्याद्या योषितः सर्वा विष्ण्वाद्या देवता अपि ॥ ४८ ॥

षण्मातरोऽथ मुनयोद्रष्टुं जग्मुर्महोत्सवम्। शिवःसर्वामरगणैर्मुनिभिर्मातृभिस्तथा
अन्वितो वृषभारूढः प्रमथानां गणैर्वृतः। भेरीशङ्खमृदङ्गाद्यैः काहलीपटहादिकैः
ब्रह्मघोषैर्वन्दिभिश्च प्राविशद्धिमवत्पुरीम्। सुमुहूर्ते शुभे लग्ने शुभग्रहनिरीक्षिते

विवाहमकरोच्छैलः प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
महोत्सवस्तदा चाऽऽसीत्त्रिलोक्यां प्राणिनां नृप! ॥ ५२ ॥

महोत्सवे निवृत्ते तु शङ्करो लोकशङ्करः। रेमे स्वच्छन्दया देव्या लोकधर्मानुवर्तकः
ऋद्धिमद्धिमवद्गेहे देवेन्द्रभवनोपमे। शर्वर्यानन्दिनीतीरे वनराजिषु शङ्करः ॥ ५४॥
मत्तालिद्विजसन्नादमयूररवमण्डिते। दिव्यवर्षसहस्राणि रेमे स्वच्छन्दया विभुः

स्त्रीणामिन्द्रवराभावात्तस्मिन्काले नृपोत्तम!।
पुंसः सङ्गात्पुनर्गर्भो नारीणां स्रवति ध्रुवम् ॥ ५६ ॥

प्रत्यहं रमणाद्देव्यां नाभूद्गर्भो हराद्भव। देवानामभवच्चिन्ता पुत्रलाभाद्धाराद्विभो
सर्वे सङ्गत्यसम्मन्त्र्यमिथएवंबभाषिरे। कामीवाऽभूद्रतौनित्यंसक्तोदेव्याहरःस्वराट्

नाऽस्माकं सिद्ध्यते कार्यं नित्यं गर्भस्य संस्रवात्।
पुना रतिर्यथा नाऽभूत्तथाऽस्माभिर्विधीयताम् ॥ ५६ ॥

मिथ एवं तु सम्भाष्यव्यचिन्वन्क्षणमत्रते। अग्निंकृत्येविनिश्चित्यह्यूचुर्मानपुरःसरम्
अग्ने मुखं त्वं देवानां त्वं बन्धुर्गतिरेव च। इदानीमपि गच्छ त्वं रमते यत्र वै हरः
रत्यन्तेदर्शयाऽऽत्मानंपुनारतिर्यथानवै। त्वां दृष्ट्वा व्रीडिता देवी तपश्चापसरेद्ध्रुवम्

शिष्यो भूत्वा तु रत्यन्ते पृच्छ तत्त्वं स्मरान्तकम्।
तत्त्वसम्प्रश्नव्याजेन कालम्बहु नय प्रभो! ॥ ६३ ॥

बहुकाले गते देवी कुमारं प्रसविष्यति। देवैरेवं प्रार्थितोऽग्निरोमित्युक्त्वा हरंययौ

वीर्योत्सर्गात्पूर्वमेव गतो वह्नी रतान्तरे। तं दृष्ट्वाव्रीडिता देवी विवस्त्रा विमनाययौ
रतिं विहाय त्वरया ततो रुद्रोऽतिकोपितः। वह्निं प्राह गृहाणेदमभिसृष्टन्तु दुर्मते
मद्वीर्यं दुःसहं पाप रतौविघ्नस्त्वयाऽभवत्। उत्सृजामि मद्वीर्यं त्वन्मुखेहव्यवाहन!
इत्युक्त्वोत्सृष्टवान्वीर्यंहव्यवाहमुखेहरः। तद्धृत्वादह्यमानःसन्स्वोदरेवीर्यमुल्वणम्
चिन्तयानो ययौधामदेवानांयज्ञपूरुषः। कथंचित्प्राणतो मुक्तो देवेभ्यस्तन्न्यवेदयत्
देवा वह्नीरितं श्रुत्वाहर्षशोकौसमाययुः। स्थितं वीर्यमितिह्लादं कथं तुप्रसवोभवेत्

इति दुःखं तदा चाऽऽसीद्वह्नेः कुक्षौ तु शाम्भवम्।
ववृधे तेज आक्षिप्तं दश मासा गतास्तदा॥ ७१॥

नाऽपश्यत्प्रसवोपायं वहुदुःखपरायणः। देवान्वै शरणम्प्राप गर्भमोचनहेतवे॥ ७२॥
तेदेवावह्निनासाकंप्रापुर्गङ्गांयशस्विनीम्। गङ्गास्तोत्रेणते स्तुत्याप्रार्थयामासुरञ्जसा
त्वं माता सर्वदेवानां त्वमेवजगताम्पतिः। देवातार्थन्तुत्वंभद्रेधत्स्वतेजस्तुशाम्भवम्
तद्वह्नेर्वर्द्धते गर्भो नास्तीत्वात्प्रसवोऽस्य च। तस्मादेनञ्च नः सर्वान्समुद्धर दयांकुरु

इत्येवं प्रार्थिता देवी तथास्त्विति वचोऽब्रवीत्।
देवास्तु वह्नये प्राहुर्मन्त्रं गर्भविमोचनम्॥ ७६॥

तन्मन्त्राद्गर्भमाकृष्य व्यसृजद्धव्यवाहनः। गङ्गायांशाम्भवंतेजोभास्वल्लोकसुदुःसहम्

सा चोढ्वा कतिचिन्मासान्न शशाक ततः परम्।
निर्जला तत्प्रभावेण स्फुटद्रक्तकलेवरा॥ ७८॥

वहुदुःखाऽऽकुला देवी पातिव्रत्यप्रभावतः। उज्जहार स्वोदरस्थं गर्भं लोकैकपावनी
शरकाण्डे तु चिक्षेप दह्यमानं समन्ततः। शरकाण्डैस्तु सम्भिन्नः षोढाभिन्नोवभूवह

षट्कृत्तिकाः समाजग्मुर्ब्रह्मणा चोदितास्तदा।
शरकाण्डे विनिर्भिन्नं षोढा सन्धाय शाम्भवम्॥ ८१॥
षण्मुखं पुरुषं कृत्वा त्वेकदेहमिति स्फुटम्।
कृत्तिका विधिनाऽऽज्ञप्तास्तं तथा चक्रिरे दृढम्॥ ८२॥

तद्देहं पुरुषाकारं षण्मुखं शरकाण्डगम्। अरक्ष्यमाणमेवासीच्छरकाण्डेषु वै चिरम्

एकदा वृषभाऽऽरूढौ पार्वतीपरमेश्वरौ । श्रीशैलं गन्तुमनसौ तत्स्थलं परिजग्मतुः ॥
तदासीत्पार्वती देवीः सद्यः स्नुतपयोधरा ।
विस्मिता चावदद्रुद्रं स्नुतौ कस्मात्पयोधरौ ॥ ८५ ॥
कारणम्ब्रूहिविश्वात्मन्नित्युक्तस्तुहरोऽब्रवीत् । शृणुदेविप्रवक्ष्यामिपुत्रोऽधोवर्ततेतव
त्वयि वीर्यमनुत्सृष्टंप्रागेवाऽऽगाद्धविर्वहः । तंदृष्ट्वाव्रीडितात्वंवैप्रविष्टाचस्थलान्तरम्
मया कोपाद्वह्निमुखे विसृष्टं वीर्यमुल्बणम् ।
देवानाञ्च प्रसादेन गङ्गायां व्यसृजद्विभुः ॥ ८८ ॥
गङ्गाच दह्यमाना सा व्यक्षिपच्च शरान्तरम् । तत्र षोढाप्रभिन्नन्तुमातृभिश्चदृढीकृतम्
पुरुषाकृतिमापेदे तं दृष्ट्वा ते स्तनौ स्नुतौ । पालनीयं महावीर्यंविष्णुनासमविक्रमम्
अयमेवौरसः पुत्रस्तव भाति विनिश्चितम् ।
तस्माद्गृहाण शीघ्रं त्वं तेनाऽऽख्यातिरतीव ते ॥ ९१ ॥
इत्याऽऽज्ञप्ता शम्भुना सा तमादायाऽर्भकं द्रुतम् ।
अङ्कमारोप्य तं देवी पाययामास सा स्तनौ ॥ ९२ ॥
देवेन मोहिता देवी पुत्रस्नेहपराऽभवत् । पुनः कैलासमगमत्प्रभुणा सह शाङ्करी ॥
लालयन्ती सुतं देवी सन्तोषं परमं ययौ । एवं कुमारजननं वर्णितं ते मयाऽद्भुतम्
यः इदं शृणुयान्नित्यं कुमारजननं शुभम् । पुत्रपौत्राभिवृद्धिं तु लभते नाऽत्र संशयः
महद्दुःखंतु जननेहरस्याऽपियतोऽभवत् । प्रीत्यानुश्रुतवैशाखधर्मोऽप्यप्रतिमोभवेत्
तस्माद्वैशाखधर्मो हि सर्वाघौघविनाशनः । अवैधव्यप्रदः पुण्यः सर्वसम्पद्विधायकः
अनङ्गोऽपिहिसाङ्गत्वंयत्प्रभावात्समाप्तवान्।अस्नात्वाचाप्यदत्त्वाचवैशाखोयस्यवैयतः
अपि धर्मकृतो वाऽपिभवेद्दुःखपरम्परा । सर्वधर्म हितःस्याच्चयद्येकोऽयमनुष्ठितः
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे कुमारोत्पत्तिकथनं नाम
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

अशून्यशयनव्रतवर्णनपूर्वकंछत्रदानप्रशंसनेहेमकान्तस्य ब्रह्महत्यादिपापशमनवर्णनम्

मैथिल उवाच

यत्कामपत्नीचरितमशून्यशयनव्रतम् । देवोपदिष्टं तस्याऽस्य विधानम्ब्रूहिभूसुर! ॥
किंदानं को विधिस्तस्यपूजनं किं फलं तथा । एतदाचक्ष्वभूदेव!श्रोतुं कौतूहलंहिमे

श्रुतदेव उवाच

शृणु भूयः प्रवक्ष्यामि व्रतं पापप्रणाशनम् । अशून्यशयनं नाम रमायै हरिणोदितम्
येन चीर्णेनदेवेशोजीमूताऽऽभःप्रसीदति । लक्ष्मीभर्त्ताजगन्नाथःसमस्ताऽघौघनाशनः
अकृत्वायस्त्विदंराजन्व्रतं पातकनाशनम् । गार्हस्थ्यमनुवर्तेततस्येदं निष्फलम्भवेत्
श्रावणे शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां महीपते! । अशून्यशयनाख्यं तद्ग्राह्यं व्रतमनुत्तमम् ॥
चातुर्मास्येतुसम्प्राप्तेहविष्याशीभवेन्नरः । चतुर्भिःपारणं मासैःसम्यङ्निष्पाद्यतेप्रभो
लक्ष्मीयुक्तो जगन्नाथः पूजनीयो जनार्दनः । पारगे दिवसे प्राप्ते भक्ष्यश्चैवचतुर्विधम्
उपायनं च दातव्यंब्राह्मणायकुटुम्बिने । सौवर्णीं राजतींचापिमूर्तिंकुर्यान्मनोरमाम्
पीताम्बरधरांदिव्यां वनमालाविभूषिताम् । शुक्लपुष्पैः सुगन्धैश्च पूजयेत्पुरुषोत्तमम्
शय्यादानैर्वस्त्रदानैर्विप्राणाम्भोजनैस्तथा । दम्पत्योर्भाजनैश्चैव दक्षिणाभिःप्रपूजयेत्
एवं तु चतुरो मासान्पूजयित्वा जनार्दनम् । मार्गशीर्षादिमासेषु पूजयेत्पूर्ववद्धरिम्
रक्तवर्णं हरिंध्यायेद्रुक्मिणीसहितं तथा । चैत्रादींश्चतुरो मासानेवं सम्पूजयेत्ततः
भूम्या सह स्थितं देवमर्चयेद्भक्तिपूर्वकम् । सनन्दनाद्यैर्मुनिभिः स्तूयमानमकल्मषम्
आषाढस्य च मासस्य द्वितीयायां समापयेत् । अष्टाक्षरेण मन्त्रेण जुहुयादनले शुभे
मार्गशीर्षादिमासानां पारणेभूमिपालक! । जुहुयाद्विष्णुगायत्र्या चैत्रादीनांनिबोधय
पौरुषेण च मन्त्रेण जुहुयादनले शुभे । पञ्चामृतं पायसञ्च ह्यपूपं घृतपाचितम् ॥१७॥

एवं क्रमेणद्रव्याणि प्रतिमासुनिबोधय । सौवर्णीं प्रतिमांदद्याल्लक्ष्मीनारायणस्यच
सौवर्णीम्मध्यमे दद्यात्कृष्णस्य परमात्मनः ।
राजतीं त्वन्तिमे दद्याद्वराहस्य महात्मनः ॥ १९ ॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चान्नामभिः केशवादिभिः । वस्त्रयुग्मैरलङ्कारैर्यथावित्तानुसारतः ॥
अर्चयित्वा ततो दद्यादपूपान्घृतपाचितान् । उपायनार्थं विप्रेभ्योद्वादशभ्योनिवेदयेत्
आचार्याय ततो दद्यात्प्रतिमां पूर्वकल्पिताम् ।
शय्यांसङ्कल्पितां पूर्णां सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥ २२ ॥
तस्यामभ्यर्च्य विधिवल्लक्ष्मीनारायणम्परम् ।
कांस्यपात्रेण सहितामपूपैर्बहुभिस्तथा ॥ २३ ॥
वस्त्रालङ्कारसहितां दक्षिणाभिस्तथैवच । ब्राह्मणाय विशिष्टाय वैष्णवाय कुटुम्बिने
दातव्या विधिवत्पूज्य ब्राह्मणांश्चाऽपि भोजयेत् ।
दानमन्त्रः
लक्ष्म्या अशून्यं शयनं यथा तव जनार्दन! ॥ २५ ॥
शय्याममाप्य शून्या स्याद्दानेनाऽनेनकेशव । एवंसम्प्रार्थ्यदेवेशंस्वयम्भोजनमाचरेत्
पुरुषो वा सती वाऽपि विधवा वा समाचरेत् ।
अशून्यशयनार्थञ्च कर्त्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥ २७ ॥
एवं तव मया ख्यातं विस्तरान्नृपसत्तम! । सुप्रसन्ने जगन्नाथे भवेयुर्विविधाः प्रजाः
तस्मिंस्तुष्टे तु देवेशे देवानामपिदुर्लभाः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन व्रतमेतत्समाचरेत् ॥
अवश्यं गन्तुकामेनतद्विष्णोःपरमंपदम् । एवमुक्तं मया सर्वं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि
इत्युक्तस्तेन राजर्षिः पुनरप्याह तंमुनिम् । वैशाखे छत्रदानस्य माहात्म्यं विस्तराद्वद
शृण्वतोऽपि न तृप्तिर्मे वैशाखोक्ताञ्छुभावहान् ॥ ३२ ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा यशस्यं पुण्यवर्द्धनम् । प्रत्युवाच महाभागं श्रुतदेवो महायशाः
श्रुतदेव उवाच
वैशाखे घर्मतप्तानां मानवानां महात्मनाम् । ये कुर्वन्त्यातपत्राणतेषांपुण्यमनन्तकम्

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । वैशाखधर्ममुद्दिश्य पुरा कृतयुगे कृतम् ॥३५

वङ्गदेशे पुरा कश्चिद्धेमकान्त इति श्रुतः । कुशकेतोः सुतो धीमान्राजाशस्त्रभृतांवरः

एकदा मृगयाऽऽसक्तो गहनं वनमाविशत् ॥ ३६ ॥

तत्र नानाविधान्हत्वा मृगान्क्रोडादिकान्बहून् ।

श्रान्तो मध्याह्नवेलायां मुनीनामाश्रमं ययौ ॥ ३७ ॥

तदा शतर्चिनोनाम ऋषयः शंसितव्रताः । समाधिस्था नजानन्तिबाह्यकृत्यञ्चकिञ्चन

तान्दृष्ट्वा निश्चलान्विप्रान्क्रुद्धो हन्तुं मनो दधे । भूपंनिवारयामासशिष्याणामयुतंतदा

दुर्बुद्धे शृणु नो वाक्यं गुरवस्तु समाधिगाः ।

नो जानन्ति वहिः कृत्यं तस्मात्क्रोधं न चाऽर्हसि ॥ ४० ॥

ततः शिष्यानुवाचेदं वचनंक्रोधविह्वलः । यूयंकुरुध्वमातिथ्यमध्वश्रान्तस्यमेद्विजाः

एवमुक्ताश्च भूपेन शिष्या ऊचुस्तदा नृपम् । नाऽऽज्ञप्तागुरुभिर्भूपवयं भिक्षाशिनःपुनः

गुरुतन्त्राः कथंकर्तुमातिथ्यन्तेवयंक्षमाः । प्रत्याख्यातोनृपःशिष्यैस्तान्हन्तुंधनुराददे

मृगदस्युभयाद्भिभ्यो बहुधा रक्षितामया । ते मामेवोपशिक्षन्ति मया दत्तप्रतिग्रहाः

एतेमांन विजानन्ति कृतघ्ना भूरिमानिनः । अतोपिमेनदोषःस्यादेतान्वैह्याततायिनः

एवं विक्रुद्धमानः सञ्छरान्मुञ्चञ्छरासनात् । तान्विद्रुतानुद्रुत्यजघ्नेशिष्यशतत्रयम्

दुद्रुवुर्भयतः सर्वेविहायाऽऽश्रममञ्जसा । विद्राविते‌षुशिष्येषुवलादाश्रमसंस्थितान्

सम्भाराञ्जगृहुः शीघ्रं सैनिकाः पापबुद्धयः । यथेष्टं भोजनं चक्रुर्नृपेणैवानुमोदिताः

ततः सेनाऽऽवृतो राजपुरीमागाद्दिनात्यये । कुशकेतुस्ततःश्रुत्वातनयस्यविचेष्टितम्

पुरान्निर्यातयामास गर्हयन्गर्हयन्सुतम् । राज्यानर्हं क्षमाहीनं स्वदेशादपि भूमिपः

पित्रा त्यक्तस्ततो राजाहेमकान्तोऽतिविह्वलः । वनंविवेशगहनंहत्याभिश्चसुपीडितः

बहुकालमवासीच्च गह्वरे निर्जने वने । आहारं कल्पयामास व्याधधर्ममुपाश्रितः

न क्वाऽपि स्थितिमापेदे हत्यायाऽभिद्रुतो भृशम् ।

अष्टाविंशतिवर्षाणि गतान्यस्य दुरात्मनः ॥ ५२ ॥

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन त्रितोनाम महामुनिः । तस्मिन्नरण्ये वैशाखे रवौ मध्यन्दिने गते

गच्छन्नातपविक्रान्तस्तृषया चाऽपि पीडितः ।
क्वचिद्वृक्षविहीने तु प्रदेशे मूर्च्छितोऽभवत् ॥ ५५ ॥

दैवाद्दृष्ट्वा हेमकान्तस्त्रितं नाममहामुनिम् । तृषार्तं मूर्च्छितं श्रान्तं कृपां चक्रेनृपाधमः
ब्रह्मपत्रैस्तदा छत्रं कृत्वा चाऽऽतपवारणम् । मुनेर्जग्राह शिरसि ह्यलावुस्थं जलंददौ
लब्धसञ्ज्ञोऽभवत्तेन ह्युपचारेण वै मुनिः । पत्रच्छत्रं क्षत्रदत्तं गृहीत्वा गतविक्लमः
ग्रामं कचिच्छनैःप्राप्यकिञ्चिदाप्यायितेन्द्रियः । तेनपुण्यप्रभावेणब्रह्महत्याशतत्रयम्
विनष्टमभवत्तस्य क्षणादेव महात्मनः । ततो विस्मयमापन्नो हेमकान्तो महारथः
वहुधा पीडयमानस्य ब्रह्महत्याःकथङ्गताः । केनाऽपि निष्कृताह्येताःकगताःकेनहेतुना
इत्येवंचिन्तयामासब्रह्महत्याविमोचनम् । एवंचाऽज्ञस्थितेराज्ञियमदूताअथाऽऽगमन्
नेतुमेनं महात्मानं हेमकान्तं वने स्थितम् । ग्रहणीं जनयामासुः प्राणान्हर्तुंमहात्मनः
तदा प्राणवियोगार्तः पुरुषांस्त्रीन्ददर्श ह । यमदूतान्महाघोरानूर्ध्वकेशान्भयङ्करान्
चिन्तयानःस्वमर्माणितूष्णीमासीत्तदानृपः । छत्रदानप्रभावेणजाताविष्णुस्मृतिर्नृप
तेनस्मृतो महाविष्णुर्विष्वक्सेनंस्वमन्त्रिणम् । उवाचतूर्णंत्वंगच्छयमदूतान्निवारय
वैशाखधर्मनिरतं हेमकान्तन्तु पालय । निष्पापमेनं मद्भक्तं पित्रे देहि पुरं गतः ॥ ६७॥
मदीरितेन वाक्येन कुशकेतुञ्च वोधय । सर्वधर्म्मोज्झितो वाऽपिब्रह्मचर्यादिवर्जितः
वैशाखधर्मनिरतो मत्प्रियः स्यान्न संशयः । कृतागाश्चाऽपित्वत्पुत्रोमुनित्राणपरायणः
वैशाखे छत्रदानेन निष्पापो नाऽत्र संशयः । तेन पुण्यप्रभावेण शान्तोदान्तश्चिरायुषः
शौर्यौदार्यगुणोपेतस्त्वत्समोऽयं गुणैरपि । तस्मादेनं राज्यभारेसंस्थापयमहावलम्

विष्णुनैवं समाज्ञप्तमित्यादिश्य नृपोत्तमम् ।
पितुर्वशे हेमकान्तं स्थाप्याऽऽयाहि च मां पुनः ॥ ७२ ॥

इत्यादिष्टो भगवता विष्वक्सेनो महावलः । हेमकान्तं समासाद्य यमदूतान्निवार्यच
पाणिना शन्तमेनैव पस्पर्शाङ्गेषु भूमिपम् । भगवद्भक्तसंस्पर्शाद्धतव्याधिःक्षणादभूत्
विष्वक्सेनस्ततस्तेन सह तस्य पुरीं ययौ । तं दृष्ट्वाविस्मितोभूत्वाकुशकेतुर्महाप्रभुः
ननामशिरसा भक्त्या दण्डवत्पतितो भुवि । गृहं प्रवेशयामास पार्षदं परमात्मनः ॥

स्तुत्वाचविविधैःस्तोत्रैःपूजयामासवैभवैः । तस्मैप्रीतमनाःप्राहविष्वक्सेनोमहाबलः
हेमकान्तं समुद्दिश्ययदुक्तं विष्णुना पुरा । तच्छ्रुत्वा कुशकेतुश्चपुत्रंराज्ये निवेश्यच ॥
विष्वक्सेनाभ्यनुज्ञातः सभार्यो वनमाविशत् ।
विष्वक्सेनो हेमकान्तमनुमन्त्र्याऽभिपूज्य च ॥ ७९ ॥
श्वेतद्वीपं ययौ धीमान्विष्णुपार्श्वे महामनाः ।
हेमकान्तस्ततो राजा वैशाखोक्ताञ्छुभावहान् ॥ ८० ॥
विष्णुप्रीतिकरान्धर्मान्प्रतिवर्षं चकार ह ।
ब्रह्मण्यो धर्ममार्गस्थः शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः ॥ ८१ ॥
दयालुः सर्वभूतेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । प्रवृद्धः सर्वसम्पद्भिः पुत्रपौत्रादिभिर्वृतः ॥
भुक्त्वा भोगान्समस्तांश्च विष्णुलोकमवाप्तवान् ॥ ८३ ॥
नेक्षे तु वैशाखसमांश्च धर्मान्सुखप्रयत्नान्बहुपुण्यहेतून् ।
पापेन्धनाद्यग्निनिभान्सुलभ्यान्धर्मार्थमोक्षान्तपुमर्थहेतून् ॥ ८४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे छत्रदानप्रशंसने हेमकान्तस्य ब्रह्महत्यादि पापशमनवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

वैशाखधर्मवर्णनेकीर्त्तिमद्राजविजयवर्णनम्

मैथिल उवाच

वैशाखधर्माः सुलभाः पुण्यराशिविधायकाः । विष्णुप्रीतिकराःसद्यःपुमर्थानांतुहेतवः
न प्रख्याताः कथं लोके शाश्वताः श्रुतिचोदिताः ।
प्रख्याताराजसाधर्मास्तामसाअपि भूरिशः ॥ २ ॥

दुर्घटा बहुयत्नाश्च बहुद्रव्यव्ययावहाः । केचिन्माघं प्रशंसन्तिचातुर्मास्यापरे जगुः ॥
व्यतीपातादिधर्मांश्च वर्णयन्तीह भूरिशः । एतद्विवेकं विस्तार्य श्रोतुकामाय मे वद

श्रुतदेव उवाच

शृणु भूप! प्रवक्ष्यामि न प्रख्याताइमे कथम् । इतरेषां च धर्माणांकथंख्यातिश्चभूतले
राजसास्तामसाभूमौवहवःकामुकाजनाः । इच्छन्त्यैहिकभोगांस्तेपुत्रपौत्रादिसम्पदः

क्वचित्कथञ्चन क्वाऽपि जनेष्वेकोऽतिकृच्छ्रतः ।
स्वर्गाय यतते लोके तस्माद्यज्ञादिसत्क्रियाः ॥ ७ ॥

कुरुतेऽतिप्रयत्नेन मोक्षं नोपासते नरः । क्षुद्राशाभूरिकर्माणोजनाः काम्यानुपासते ॥
प्रख्याता राजसा धर्मास्तामसाअपितेनवै । नख्याताःसात्त्विकाधर्माहरिप्रीतिकराइमे
निष्कामिकाइमे धर्माह्यैहिकाऽऽमुष्मिकप्रदाः । नजानन्तिजनामूढामोहितादेवमायया
यथाऽऽधिपत्ये सम्प्राप्ते सर्वसिद्धोमनोरथः । मोहनार्थं स्थलं प्राप्तमाधिपत्येनहीयते
कारणञ्च प्रवक्ष्यामि गोपनेभूतलेऽञ्जसा । यद्वैशाखोक्तधर्माणांसात्त्विकानांनृणामिह
सार्वभौमःपुराकाश्यामिक्ष्वाकुकुलभूषणः । कीर्तिमानितिविख्यातोनृगपुत्रोमहायशाः
जितेन्द्रियो जितक्रोधोब्रह्मण्यो राजसत्तमः । एकदा मृगयासक्तोवसिष्ठाश्रममाययौ

गच्छन्मार्गे ददर्शाऽसौ वैशाखे घर्मनिष्ठुरे ।
भूयोभयः कार्यमाणाञ्छिष्यांस्तस्यमहात्मनः ॥ १५ ॥

क्वचित्प्रपां प्रकुर्वन्ति छायामण्डपमेव च । तटप्रपातं निस्तीर्यवापींकुर्वन्तिनिर्मलाम्

सूपविष्टान्क्वचिद्वृक्षे व्यजनैर्वीजयन्ति च ।
क्वचिद्ददुर्हीक्षुदण्डान्क्वचिद्गन्धान्क्वचित्फलम् ॥ १७ ॥

मध्याह्ने छत्रदानञ्च सायाह्ने पानकस्य च । क्वचिद्यच्छन्ति ताम्बूलं नेत्रेकर्पूरलेपनम्
सुच्छाये चवनेकेचित्सुसंमृष्टाऽङ्गणेषुच । केचिद्दास्तरयन्त्यद्धावालुकानिहितानिच

कुर्वन्त्यान्दोलिकां राजन्वृक्षशाखावलम्बिनीम् ।
के यूयमिति पप्रच्छ वासिष्ठा इति तेऽब्रुवन् ॥ २० ॥

किमेतदिति पप्रच्छ धर्मा वैशाखचोदिताः । पुमर्थहेतव इमे क्रियन्तेऽस्माभिरञ्जसा

वसिष्ठस्याऽऽज्ञया चेति तेऽब्रुवन्नृपसत्तमम् । एतदाचरणेपुंसांकिंफलंकस्तुतुष्यति
एतद्विस्तार्य मे ब्रूत यूयं सम्यग्यथाश्रुतम् । इतिराज्ञातुसम्पृष्टाःप्रत्यूचुस्तेमहीपतिम्
गुरोराज्ञाक्रमेणैव कुर्वतां पथिसत्क्रियाः । नास्माकमवकाशोऽत्रगुरुंपृच्छयथोचितम्
स वेत्ति तत्त्वतो नूनं धर्मानेतान्महायशाः । इतिशिष्यैर्वसिष्ठस्यप्रयुक्तस्तुद्रुतंययौ
वसिष्ठस्याऽश्रमं पुण्यंविद्यायोगोपबृंहितम् । समायान्तंनृपंवीक्ष्यवशिष्ठःप्रीतमानसः

आतिथ्यं विधिवच्चक्रे सानुगस्यमहात्मनः ।
सूपविष्टःकृताऽऽतिथ्यःप्रीतःपप्रच्छ तं गुरुम् ॥ २७ ॥

राजोवाच

मार्गे दृष्टं महाश्चर्यं त्वच्छिष्यैश्च कृतं शुभम् । मया पृष्टश्चतैर्नोक्तंक्रियमाणंशुभावहम्

नास्माकमवकाशोऽत्र ह्येतद्धर्मप्रशंसने ।
कर्तव्या चक्रियाऽस्माभिर्गुरुणायाचचोदिता ॥ २९ ॥
गुरुं गच्छेति तैरुक्तआगतोऽहं तवाऽन्तिकम् ।
मृगयाऽऽसक्तचित्तेन श्रान्तेनाऽऽतिथ्यमिच्छता ॥ ३०॥
दृष्टं मार्गे त्विदं पुण्यं तव शिष्यैश्चकारितम् ।
जिज्ञासाऽऽसीत्ततःश्रोतुं धर्मानेतान्मुनीश्वर! ॥ ३१ ॥

त्वमादिरादिमान्धर्मान्समाचरसिवैयतः । तान्धर्माञ्छ्रोतुकामाय शिष्यायप्रणतायच
श्रद्दधानाय मे ब्रूहि विस्तरान्मुनिपुङ्गव । इतीक्ष्वाकुकुलीनेनराज्ञा पृष्टो महायशाः ॥

मनसा तोषमापेदे सम्यक्पृष्टोऽधुनाऽमुना ।
अहो व्यवसितावुद्धी राजंस्तेऽद्य सुशिक्षिता ॥ ३४ ॥

यस्माद्विष्णुकथायाञ्चतद्धर्माचरणेऽपि च । मतिरात्यन्तिकीजातासुकृतंफलितंतव
इति सम्भाष्यराजानंजातहर्षस्तत्रमब्रवीत् । शृणुभूप प्रवक्ष्यामियत्पृष्टोऽहंत्वयाऽधुना
यस्यश्रवणमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः । सर्वधर्मान्परित्यज्यवर्ततेविषयात्मकः ॥
वैशाखस्नाननिरतः स प्रियो मधुविद्विषः । साङ्गान्धर्माननुष्ठाय वैशाखो येन नादृतः
स्नानदानार्चनैःपुण्यैस्तस्यदूरतरोहरिः । अस्नाप्य चाऽप्यदत्त्वा च वैशाखो येननीयते

कर्मणा स तु चाण्डालो नाऽत्र कार्या विचारणा ।
वैशाखोक्तैर्महाधर्मैर्येन चाऽऽराधितो हरिः ॥ ४० ॥
तैश्च तोषं समायातिप्रददातिसमीहितम् । लक्ष्मीभर्त्ता जगन्नाथो ह्यशेषाघौघनाशनः
धर्मैःसूक्ष्मैश्चप्रीणातिनप्रयासैर्धनैरपि । भक्त्यासम्पूजितोविष्णुः प्रददातिसमीहितम्
तस्माद्राजन्सदा भक्तिः कर्तव्या मधुविद्विषः ।
जलेनाऽपि जगन्नाथः पूजितः क्लेशहा हरिः ॥ ४३ ॥
परितोषं व्रजत्याशु तृषार्त्तः सलिलैर्यथा । महदप्यल्पदं कर्म तथा ह्यल्पञ्च भूरिदम्
कर्मणाऽल्पत्वभूरित्वे न हेतू महदल्पके । किन्तु कर्मस्वरूपञ्च गहना कर्मणो गतिः
वैशाखोक्ता इमे धर्माः स्वल्पाऽऽयासकृता अपि ।
बहुव्ययविनाशाश्च विष्णोः प्रीतिकराः शुभाः ॥ ४६ ॥
तस्मात्त्वमपि भूपालवैशाखोक्तान्समाचर । त्वद्राष्ट्रीयैर्जनैःसर्वैःकारयेमाञ्छुभावहान्
न करोतिचयोधर्मान्वैशाखोक्तान्नराधमः । बहुधाशिष्यमाणोऽपिसदण्ड्यस्तवभूपते
इत्यावश्यकतां सम्यक्छास्त्रैर्व्युत्पाद्य तस्य च ।
पश्चाद्वैशाखनिर्दिष्टान्धर्मान्प्रोवाच सर्वशः ॥ ४९ ॥
श्रुत्वा तान्सकलान्धर्मान्गुरुं सम्पूज्य भक्तितः ।
स राजागृहमागत्य सर्वान्धर्मांश्चकार ह ॥ ५० ॥
भक्तिमान्केशवे राजन्देवदेवे निरञ्जने । नाऽन्यं पश्यति देवेशात्पद्मनाभान्महीपतिः
भेरीमुद्घाष्य मातङ्गं स्वराष्ट्रेऽघोषयद्भटैः । अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिर्न हिपूर्यते
प्रातर्नस्नातिमेषस्थेसूर्येसर्वोऽपियोजनः। समेदण्डयश्चवध्यश्च निर्यास्याविषयाद्ध्रुवम्
पितावा यदिवा पुत्रो भर्यावाऽथसुहृज्जनः । वैशाखधर्महीनश्च निर्ग्राह्योदस्युवन्मया
दातव्यंविप्रमुख्येभ्यःस्नात्वाप्रातर्जलेशुभे । प्रपादानादिधर्मांश्चकुरुध्वं शक्तितोऽनघाः
विप्रश्च धर्मवक्तारं ग्रामेग्रामे न्यवेशयत् । पञ्चानामपि ग्रामाणामकरोदधिकारिणम्
दण्डार्थं त्यक्तधर्माणांदशवाजिनिषेवितम् । एवं प्रवृत्तः सर्वत्रसार्वभौमस्यशासनात्
प्रवृद्धो धर्मवृक्षोऽयं सर्वदेशेषु विस्तरात् । ये केचिन्निधनं यान्ति भूपालविषये नराः

प्रमादाच्च नृपश्रेष्ठ! ते यान्ति हरिमन्दिरम् । अवश्यंवैष्णवोलोकःप्राप्यतेमानवैर्ध्रुवम्
व्याजेनाऽपि सकृत्स्नातःप्रातर्मेषगतेरवौ । सर्वपापविनिर्मुक्तोयातिविष्णोःपरंपदम्
न प्राप्नोति यमं धर्मं सकृद्वैशाखस्नानतः । वैलेख्यमगमद्राजा रविसूनुस्तदा नृप!

लेख्यकर्मणि विश्रान्तश्चित्रगुप्तोऽभवत्तदा ।
मार्जितानि च लेख्यानि पुरा पापोद्भवानि च ॥ ६२ ॥
गच्छद्भिर्वैष्णवं लोकं स्वकर्मस्थैर्जनैः क्षणात् ।
शून्यास्तु नरकाः सर्वे पापिप्राणिविवर्जिताः ॥ ६३ ॥

अग्रयानोऽभवन्मार्गोवैशाखस्यप्रभावतः । सर्वेऽपिविमलाकाराजनायान्तिहरेःपदम्

दिवौकसान्तु ये लोकाः शून्याः सर्वे तथाऽभवन् ।
शून्ये त्रिविष्टपे जाते शून्येषु नरकेषु च ॥ ६५ ॥

नारदो धर्मराजानं गत्वा चेदमुवाच ह । नाऽऽक्रन्दः श्रूयते राजन्प्राक्क्रुतोनरकेयथा

तथा न क्रियते लेख्यं किञ्चिद्दुष्कृतकर्मणाम् ।
चित्रगुप्तो मुनिरिव स्थितोऽयं मौनसंस्थितः ॥ ६७ ॥
कारणं ब्रूहि राजेन्द्र! न यान्ति तव मन्दिरम् ।
मनुष्याः पापकर्माणो मायादम्भविवर्धिताः ॥ ६८ ॥

एवमुक्ते तु वचने नारदेन महात्मना । प्राह वैवस्वतो राजा किञ्चिद्दैन्यसमन्वितः
योऽयं नारद! भूपालःपृथिव्यांसाम्प्रतंस्थितः । सोऽतिभक्तोहृषीकेशेपुराणपुरुषोत्तमे
प्रबोधयति वैशाखधर्मे भेरीस्वनेन च । अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिर्न हि पूर्यते

यो वै ह्यकृतवैशाखः स मे दण्ड्यो न संशयः ।
तद्भयाद्धि जनाः सर्वे नोल्लङ्घन्ति कदाचन ॥ ७२ ॥

गच्छन्ति वैष्णवं धामकर्मणातेननारद! । वैशाखसेवनाल्लोकायास्यान्तिहरिमन्दिरम्

तेन राज्ञा मुनिश्रेष्ठ! मार्गो लुप्तो ममाऽधुना ।
कृता हि नरकाः शून्या लोकाश्चपि दिवौकसाम् ॥ ७४ ॥
विश्रान्तो लेखको लेखे लिखितं मार्जितं जनैः ।

वैशाखमासधर्मस्य माहात्म्यं त्वीदृशं मुने! ॥ ७५ ॥
ब्रह्महत्यादिपापानि विमुक्तानि जनैर्द्विज! ।
कृत्वा वैशाखकृत्यानि यान्ति विष्णोः परंपदम् ॥ ७६ ॥
सोऽहं काष्ठसमो जातो नकश्चिन्ममगोचरः । युद्धंकृत्वातुतंहन्मिसर्वथाऽद्यमहाबलम्
अकृत्वा स्वामिकार्यं तु निर्व्यापारो यदि स्थितः ।
तस्य वित्तं समश्नाति स याति नरकं ध्रुवम् ॥ ७८ ॥
यदिदैवादवध्योऽयंतदाब्रह्माणमेत्यच । निवेद्यतस्मैतत्सर्वंपश्चात्स्वस्थस्थितिर्भवम्
इत्युक्त्वाद्विजमामन्त्र्य सानुगः प्रययौ भुवम् ।
स कालो महिषारूढो दण्डमुद्यम्य भीषणम् ॥ ८० ॥
मृत्युरोगजराद्यैश्च पार्षदैश्च महोत्कटैः । पञ्चाशत्कोटिसङ्ख्याकैर्यमदूतैर्वृ तस्ततः
स तूर्णं तस्य राजर्षे रुरोध सकलांपुरीम् । शङ्खंदध्मौमहाघोरं सर्वलोकभयङ्करम्
तच्छ्रुत्वा स तु राजर्षिर्ज्ञात्वावैवस्वतंयमम् । ससज्जीकृतसर्वस्वःपत्तनान्निर्ययौरुषा
तयोर्युद्धमभूत्तत्र भीषणं रोमहर्षणम् । मृत्युं कालं तथा रोगं यमं दूतपतिं तथा
जित्वा क्षणेन राजर्षिर्द्रावयामास रोषतः । ततः क्रुद्धो यमो राजास्वयमभ्येत्यतंरुषा
युयोध बहुभिर्बाणैः सिंहनादंचकार ह । चकर्तराजातस्याऽपिकार्मुकंविशिखैस्त्रिभिः
पुनश्चर्मासिमादाय यमोहन्तुमथाऽऽगमत् । तं दृष्ट्वातुनृपःक्रुद्धःपुनश्छित्वाऽसिचर्मणी
निचखान ललाटे च शरं कालोरगप्रभम् । यमस्तेनाऽऽहतः क्रुद्धस्ततोदण्डमुपाददे
ब्रह्मास्त्रेण च सम्मन्त्र्य दण्डं तस्मै मुमोच ह ॥ ८८ ॥
हाहाकारोमहानासीज्जनानांपश्यतांतदा । तदाविष्णुःस्वभक्तस्य रक्षार्यै प्राहिणोदरि
विष्णुमुक्तं तदा चक्रं शीघ्रमागत्य तद्रणे । यमदण्डेन संयुध्य तद्ब्रह्मास्त्रं निवार्य च
यमं हन्तुमथाऽऽरेभे सहस्रारंमहाद्भुतम् । देवभक्तस्ततो भीतस्तदाऽस्तौच्चक्रमञ्जसा
सहस्रार नमस्तेऽस्तु विष्णुपाणिविभूषण । त्वं सर्वलोकरक्षार्थै हरिणा च धृतं पुरा
त्वां याचेऽद्य यमं त्रातुं विष्णुभक्तं महाबलम् ॥ ९३ ॥
नृणां देवद्रुहां कालस्त्वमेव हिन चाऽपरः । तस्मादेनं यमं रक्ष कृपां कुरु जगत्पते

नृपेणैवं स्तुतं चक्रं यमं हित्वा नृपान्तिकम् । पुनर्ययौमहाराज! देवानांपश्यतांदिवि
ततो यमोऽतिनिर्विण्णो ब्रह्मणः सदनं ययौ । स ददर्शसमासीनं मूर्तामूर्तजनैर्वृतम्
ध्रुवाश्रयं जगद्वीजं सर्वलोकपितामहम् । उपास्यमानं विबुधैर्लोकपालैर्दिगीश्वरैः
इतिहासपुराणाद्यैर्वेदैर्विग्रहसंस्थितैः । मूर्तिमद्भिः समुद्रैश्च नदीभिश्च सरोवरैः॥६८
देहवद्भिस्तथा वृक्षैरश्वत्थाद्यैरशेषितैः । वापीकूपतडागैश्च मूर्तिमद्भिश्च पर्वतैः ॥ ९९
अहोरात्रैस्तथाप क्षैर्मासैःसम्वत्सरैस्तथा । कलाकाष्ठानिमेषैश्चऋतुभिश्चाऽयनैर्युगैः
संकल्पैश्च विकल्पैश्च निमिषोन्मेषणैस्तथा । ऋक्षैर्योगैश्च करणैःपूर्णिमाभिःसुसंक्षयैः
सुखैर्दुःखैर्भयैश्चैव लाभाऽलाभैर्जयाजयैः । सत्त्वेन रजसा चैव तमसा च समन्वितम्
शान्तमूढाऽतिप्रौढैश्च विकारैः प्राकृतैरपि । वायुना देवदेवेनश्लेष्मपित्तादिभिर्वृतम्
तेषां मध्येऽविशत्सौरिःसव्रीडाद्यवधूर्यथा । विलोकयन्धरापृष्ठंम्लानवक्त्रंव्यदर्शयत्

सम्प्रविष्टं यमं दृष्ट्वा सकाशस्थं सहानुगम् ।
विस्मितास्ते मिथः प्रोचुः किमर्थं भास्करिस्त्विह ॥ १०५ ॥

सम्प्राप्तोलोककर्तारंद्रष्टुं देवंपितामहम् । निर्व्यापारःक्षणमपियोऽयंनास्तिरवेःसुतः

सोऽयमभ्यागतः कस्मात्कच्चित्क्षेमं दिवौकसाम् ।
आश्चर्याऽतिशयोऽयश्च सम्मार्जितपटस्त्वयम् ॥ १०७ ॥

लेखकस्तमनुप्राप्तो दैन्येन महताऽन्वितः । न कदाचित्पटो ह्यस्यमार्जितोधर्मभीरुणा
यन्न दृष्टं श्रुतं वाऽपि तदिहाऽद्य प्रपद्यते । एवमुच्चरतां तेषां भूतानां भूतशासनः ॥

निष्पपाताऽग्रतो भूमौ ब्रह्मणो रविनन्दनः ॥ १०६ ॥

कृत्तमूलोयथा शाखी त्राहित्राहीतिवै रुदन् । परिभूतोऽस्मिदेवेशसम्मार्जितपटःकृतः

त्वयि नाथे न विफलं पश्यामि कमलासन! ॥ १११ ॥

एवमुक्त्वा हि निश्चेष्टो बभूवनृपसत्तम! । ततः कोलाहलःशब्दः सभायां समजायत
यो हि खेदयतेमर्त्यान्सर्वांस्थावरजङ्गमान् । सर्वैरुदतिदुःखार्तःकस्माद्वैवस्वतोयमः
जनसन्तापकर्त्ता यःसोचिराद्यात्यशोभनम् । नहिदुष्कृतकर्त्ता हिनरःप्राप्नोतिशोभनम्
ततोनिवारयामास वायुस्तेषां वचस्तदा । लोकानां समवेतानां मतंज्ञात्वासवेधसः

निवार्य लोकान्मार्तण्डि शनैरुत्थापयन्मरुत् ।
भुजाभ्यां शालपीनाभ्यां लोकसूत्र उदारधीः ॥ ११६ ॥
विह्वलं तं परायत्तमासने सन्यवेशयत् । आसनस्थमुवाचेदं व्योमसूनू रवेः सुतम् ॥
केन त्वमभिभूतोऽसि केनस्थानान्निवारितः । केनाऽयं मार्जितोदेव! पटोलेखपटस्तव
ब्रूहि सर्वमशेषेण कुतोहेतोस्त्वमागतः । यः प्रभुस्तात! सर्वेषां सतेकर्तामर्माऽपिच
अपि कस्माच्च मार्तण्डे! दुःखं हृदयसंस्थितम् ॥ ११९ ॥
स एवमुक्तः श्वसनेन सत्यमादित्यसूनुर्वचनं बभाषे ।
विलोक्य वक्त्रं कुशकेतुसूनोः सगद्गदं चेदमहोऽतिदीनम् ॥ १२० ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे कीर्तिमद्विजय-
वर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

यमदुःखनिरूपणम्

यम उवाच

श्रृणु मे वचनं नाथ! लोपितोऽहं पितामह । मरणादधिकं मन्येमत्पदस्यचखण्डनम्
नियोगी न नियोगं हि करोति कमलासन! । प्रभोर्वित्तंसमश्नातिसभवेत्काष्ठकीटकः
योऽश्नाति लोभाद्वित्तानिप्रज्ञावांश्चमहीपते! । सतिर्यग्योनिनरकेयातिकल्पशतत्रयम्
निःस्पृहो नाऽऽचरेद्यस्तु नियोगं पद्मसम्भव! ।
भुक्त्वा तु नरकान्घोरान्स पुमान्वायसो भवेत् ॥ ४ ॥
आत्मकार्यपरोयस्तुस्वामिकार्यंविलुम्पति । भवेद्वेश्मनिपापात्माआखुःकल्पशतत्रयम्
नियोगीयश्च भृत्वा वै विष्णुवित्तंस्ववेश्मनि । शक्तस्तु कार्यकरणेमार्जारोजायतेनरः

सोऽहं देव ! तवादेशात्प्रजाधर्मेण साधये । पुण्येन पुण्यकर्तारं पापं पापेन कर्मणा ॥
सम्यग्विचार्य मुनिभिर्धर्मशास्त्रान्वितैः प्रभो । कल्पादौ वर्तमानस्ययातनांदापयन्मम
कर्तुं नियोगमेवं हित्वदीयोनैवशक्नुयाम् । राज्ञाकीर्तिमताभग्नोनियोगस्तवचक्षितौ
भयादस्य जगन्नाथ पृथिवीं सागराम्बराम् । वैशाखधर्मसहितां पालयन्वर्तते कचित्
विहाय सर्वधर्मांश्चविहाय पितृपूजनम् । विहायाऽग्निसपर्यांतुतीर्थयात्रादिसत्क्रियाः

योगसाङ्ख्यावुभौ त्यक्त्वा त्यक्त्वा प्राणनिरोधनम् ।
त्यत्तवा होमञ्च स्वाध्यायं कृत्वा पापानि भूरिशः ॥ १२ ॥

प्रयान्तिवैष्णवं लोकंकृत्वावैशाखसत्क्रियाः । मनुजाःपितृभिःसार्द्धंतथैवचपितामहैः
तेषामतीतपितरः पितॄणां पितरस्तथा । तथामातामहा यान्ति तेषां वै जनकादयः
तेषामपि च नेतारो जनित्रीणाञ्च पूर्वजाः । एतद्दुःखं पुनर्देव मम मस्तकभेदनम्

प्रियायाः पितरो यान्ति मार्जयित्वा लिपिं मम ।
पितॄणां बीजजो यस्तु धात्र्या कुक्षौ धृतो विभो! ॥ १६ ॥

यदङ्गेन कृतं कर्म तदङ्गेनैव भुज्यते । तन्निरस्य कृतं सर्वं जानंस्त्वेकः कुलेतु यः ॥
तारयेत्तावुभौपक्षौषड्विंशोपर्यलंविभो । प्रियायाऽश्चापिवैतात्तसर्वेचैकुक्षिसम्भवाः
तेऽपि सर्वे जगन्नाथ! यान्तिविष्णोः परं पदम् । न मे प्रयोजनं देवनियोगेनेदृशेनवै
वैशाखधर्मनिरतःसमांत्यक्त्वाव्रजेद्धरिम् । त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्यत्यक्तपापोऽतिशोभनः
स त्यक्त्वा मम मार्गं हिप्रयातिहरिमन्दिरम् । न यज्ञैस्तादृशैर्देवगतिंप्राप्नोतिमानवः

सर्वतीर्थैर्न दानाद्यैर्न तपोभिश्च न व्रतैः ।
अपि वा सकलैर्धर्मैर्युक्तो नाऽऽप्नोति तां गतिम् ॥ २२ ॥
प्रयागपाताद्रणमध्यपाताद्भृगोश्च पातान्मरणाच्च काश्याम् ।
न तां गतिं यान्ति जनाश्च सर्वे वैशाखनिष्ठेन च या प्रपद्यते ॥ २३ ॥
प्रातः स्नात्वा देवपूजाञ्च कृत्वा श्रुत्वा कथां मासमाहात्म्यसञ्ज्ञाम् ।
धर्मान्कृत्वा चोचितान्वैष्णवांश्च स वै भवेद्विष्णुलोकैकनाथः ॥ २४ ॥

अप्रमाणमहं मन्ये लोकं विष्णोर्जगत्पतेः । यो न पूर्येतकोट्योघैःसर्वतःकमलासन!

माधवावसथेनेह समस्तेन पितामहम् । विकर्मस्थाऽविकर्मस्थाःशुचयोऽशुचयस्तथा

कृत्वा वैशाखकृत्यानि लोका यान्ति नृपाऽऽज्ञया ।

योऽस्माकंहि महच्छत्रुर्भवताञ्च विशेषतः ॥ २७ ॥

निग्राह्योजगतांनाथभवताऽसौमहीपतिः । हित्वाहिसकलान्धर्मान्सकृद्वैशाखस्नानतः असंस्कृतजनायान्तिवैकुण्ठंहरिमन्दिरम् । अस्माभिस्तुकृतोपेक्षोविष्णुपादैकसंश्रयः समस्तं नेष्यते लोकं पार्थिवो नाऽत्रसंशयः । एषदण्डपटोह्यद्यतवपद्भ्यांनिवेदितः लोकपालत्वमतुलमर्जितं तेन भूभुजा । किमपत्येन जातेन मातुः क्लेशकरेण वै ॥ योनपातयते शत्रुं ज्येष्ठमासीव भास्करः । वृथासुता हि युवतिर्जाताचेद्धिकुपुत्रिणी न तस्याः स्फुरते कीर्तिर्घनस्येव शतहृदा । यत्पितुर्नोद्धरेत्पापाद्विद्यया वा बलेन वा मातुर्जठरजो रोगः स प्रसूतो धरातले । धर्मे चाऽर्थे च कामे चयत्प्रतीपोभवेत्सुतः ॥ मातृहाह्युच्यते सद्भिः स पुत्रः पुरुषाधमः । तन्माता नृपपत्नीचलोकविख्यातसत्क्रिया एकैव वीरसूर्लोके वीरः स नात्र संशयः । यथा वै कीर्तिमाञ्जातो मल्लिपेर्मार्जनायवै नेदं व्यवसितं देव! केनचित्क्षत्रियेण हि । पुराणेषु जगन्नाथ न श्रुतं पटमार्जनम्

सोऽहं न जानामि जगत्पतीश ऋते क्षितीशां! हरितत्परं तम् ।

प्रचोदयन्तं पटहं सुघोषाद्विलोपयानं मम वेश्ममार्गम् ॥ ३८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांद्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसमादे यमदुःखनिरूपणंनाम

द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

यमदुःखसान्त्वनवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

किमाश्चर्यं त्वया दृष्टं किमर्थंखिद्यते भवान् । सद्गुणेषुकृतस्तापःसतापोमरणान्तिकः
तस्योच्चारणमात्रेण प्राप्यते परमं पदम् । नगच्छन्ति हरेर्लोकं कथं भूपस्यशासनात्
एकोऽपि गोविन्दकृतः प्रणामः शताश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।
यज्ञस्य कर्त्ता पुनरेति जन्म हरेः प्रणामो न पुनर्भवाय ॥ ३ ॥
कुरुक्षेत्रेण किं तस्य सरस्वत्या च किं तथा । जिह्वाग्रे वर्ततेयस्यहरिरित्यक्षरद्वयम्
ब्राह्मणाः श्वपचींभुञ्जन्विशेषेणरजस्वलाम् । यदिविष्णुंसमरणेस्मरेन्नाप्नोतितत्पदम्
अभक्ष्यभक्षणाज्जातं विहायाऽघस्य सञ्चयम् ।
प्रयाति विष्णुसायज्यं यतो विष्णुप्रिया स्मृतिः ॥ ६ ॥
एवं विष्णुप्रियो मासोवैशाखोनामवैयम! । यद्धर्मश्रवणादेवमुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥
यातीति किमुवक्तव्यं तस्यानुष्ठानतत्परः । यस्मिन्सङ्गीयते यो हिप्रीयतेपुरुषोत्तमः
कथं न याति च गतिं तस्याऽनुष्ठानतत्परः । अस्माकं जगतांनाथोजनितापुरुषोत्तमः
तस्येष्टान्माधवे मासि धर्मानेतान्करोत्ययम् ।
तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा सहाये सर्वदा स्थितः ॥ १० ॥
न तस्य भूपतेः सौरे समर्थस्त्वं च शिक्षणे । न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यतेक्वचित्
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते ॥ ११ ॥
नियोगी स्वामिकार्येषुयावच्छक्तिसमीहते । तावतासकृतार्थःस्यान्नरकान्नैवगच्छति
कार्ये शक्तिविनिष्क्रान्ते स्वामिने च निवेदयेत् ।
अनृणस्तावता भृत्यो नियोगी सुखमश्नुते ॥ १३ ॥
तस्मान्निवेदितार्थस्यन ऋणं न च पातकम् । यत्नेकृतेस्वकर्तव्येनापराधोस्तिदेहिनः

तस्मादशक्यकार्येऽस्मिन्न विशोचितुर्महसि ॥ १५ ॥

इत्युक्तोब्रह्मणासौरिःपुनरत्यन्तखिन्नधीः । उवाचदीनयावाचागलद्वाष्पाऽऽकुलेक्षणः
प्राप्तं तात मया सर्वं त्वदङ्घ्रिभजनेन वै । नाऽहंयास्ये पुनः कर्तुं नियोगं पद्मसम्भव!
प्रशासति महावीर्यैभूपेऽस्मिन्भूमिमण्डले । चालयित्वास्वधर्मांश्चतमेकंभूपतिंविभो
कृतकृत्योऽस्मितनयोगयायांपिण्डदोयथा । कृपालोतदिदंकार्यंसाधयस्वममाव्ययम्
विज्वरस्तु ततो भूयः शासनंतेकरोम्यहम् । श्रुत्वाब्रह्मा यमेनोक्तं पुनश्चिन्तापरायणः
तमुवाच पुनर्ब्रह्मा सान्त्वयन्बहुधाऽप्यमुम् ।

ब्रह्मोवाच

न निर्ग्राह्यस्त्वया राजा विष्णुधर्मपरायणः ॥ २१ ॥

यदि च्छलयसे कोपाद्गच्छामोह्यन्तिकंहरेः । निवेद्य सकलंतस्मै कर्मपश्चात्तदीरितम्
स एवकर्त्तालोकस्यधर्मस्यपरिपालकः । सचदण्डधरोऽस्माकंशास्ताकर्त्तानियामकः
नतदुक्तेऽस्तिप्रत्युक्तिरस्माकंविहितावृष! । नराजोक्तेस्तुप्रत्युक्तिर्दृश्यतेकाऽपिभूतले
इत्याश्वास्य यमं तेन साकं क्षीराम्बुधिं ययौ । ब्रह्मातुष्टाव चिन्मात्रं निर्गुणंपरमेश्वरः
साङ्ख्ययोगैरद्वितीयमेकं तं पुरुषोत्तमम् । आविरासीत्तदाविष्णुर्ब्रह्मणासंस्तुतोहरिः
प्रणामं चक्रतुस्तस्मै यमो ब्रह्मा च सत्वरम् । तावुवाचमहाविष्णुर्मेघगम्भीरयागिरा
कस्माद्युवामिहाऽऽयातौ किं दुःखंदनुजैरभूत् । म्लानंयममुखंकस्मात्केनवानतकन्धरः
एतद्वदस्व मे ब्रह्मन्नित्युक्तश्चाहकञ्जजः । त्वद्दासवर्ये भूपाले भूमिं शासति वै नराः
वैशाखधर्मनिरता यान्ति ते परमव्ययम् । ततो यमपुरी शून्यातेन चाऽतीवदुःखितः
तेन युद्धं चकाराऽऽसौहन्तुंदण्डमथाऽऽददे । त्वच्चक्रेणपराभूतोययावद्यममान्तिकम्
न च शक्ता वयं दण्डं त्वद्भक्तानांमहात्मनाम् । तस्मात्त्वामेवशरणंवयंप्राप्तामहाविभो
तस्माद्भूपं दण्डयित्वा पालयैनं यमं स्वकम् । इत्युक्तः प्रहसन्प्राह ब्रह्माणंयममेवच

लक्ष्मीं वाऽपि परित्यक्ष्ये प्राणान्देहमथाऽपि वा ।
श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां वैजयन्तीमथाऽपि वा ॥ ३४ ॥

श्वेतद्वीपञ्च वैकुण्ठं क्षीरसागरमेव च । शेषं च गरुडं चैव न भक्तं त्यक्तुमुत्सहे ॥

विसृज्य सकलान्भोगान्मदर्थे त्यक्तजीवितान् ।
मदात्मकान्महाभागान्कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ ३६ ॥
तस्मात्त्वद्दुःखशमने ह्युपायं कल्पयाम्यहम् ।
तस्य चायुर्मया दत्तमयुतं भूपतेर्भुवि ॥ ३७ ॥
गतान्यष्टौ सहस्राणि तत्रेदानीं नरान्तक! । आयुः शेषेतेन नीतेमत्सायुज्यंगतेऽपिच
भविष्यति ततो राजा वेनो नाम दुरात्मवान् ।
स लुम्पतिमहाधर्मान्सर्वानेताञ्छ्रुतीरितान् ॥ ३९ ॥
तदा वैशाखधर्माश्चविच्छिन्नाःस्युर्नसंशयः । स्वकृतेनैव पापेन वेनो दग्धोभविष्यति
पश्चादहं पृथुर्भूत्वापुनर्धर्मान्प्रवर्तये । तदाजनेषुप्रख्यातान्वैशाखोक्तान्करोम्यहम् ॥४१॥
मद्भक्तोमद्गतप्राणो यस्तु विन्यस्तसंग्रहः । एकःसहस्रेभवितातस्य प्रख्यापयेद्धितान्
कश्चिदेव हि जानातु धर्मानेतान्श्रितौ मम । ततस्तेभविता कार्यं माविषीदनरान्तक
दापयिष्यामिते भागंमासेऽस्मिन्माधवेऽपिच । नरैःसर्वैश्चवैशाखधर्मनिष्ठैर्महात्मभिः
भूपेनाऽपि च कालेन खेदं शमय तेन च । वीर्यशुल्कंतुतेभागंशत्रोर्भुङ्क्तेबलाधिकात्
गृह्णन्गृह्णन्स्वकं भागं न भागी दुःखमर्हति । त्वामुद्दिश्य न कुर्वन्ति प्रत्यहंयेनराभुवि
स्नानं चाऽर्घ्यं सोदकुम्भं दध्यन्नं चाऽन्तिमे दिने ।
वैशाखे सकलं कर्म तेषां च विफलं भवेत् ॥ ४७ ॥
तस्मात्क्रोधं त्यजनृपे भागदे मत्परायणे । ये के चाऽपिचकुर्वन्तिलोकेतेभागदानराः
वैशाखोक्ते महाधर्मे तेषां विघ्नंचमाकुरु । मामेवयेयजन्त्यद्धात्वांहित्वाधर्मपालकम्
मदाज्ञया महाभाग! तदा दण्डश्च त्वं कुरु । नृपाद्भागं दापयितुं सुनन्दं प्रेषयामि च ॥
मच्छासनात्स वै गत्वा भागं ते दापयिष्यति ।
तिष्ठत्येवं यमे स्वस्य सन्निधौ गरुडासनः ॥ ५१ ॥
सुनन्दं प्रेषयामास नृपं बोधयितुं विभुः । सोऽपिगत्वाबोधयित्वापार्श्वञ्चपुनरागमत्
इत्याश्वास्ययमंविष्णुस्तत्रैवाऽन्तरधीयत । यमंस्वयंसान्त्वयित्वासमनुज्ञाप्यवेगतः
अतिविस्मयमापन्नो ययौधामसहानुगैः । यमोऽपिस्वपुरींप्रायात्किञ्चित्संहृष्टमानसः

पश्चाद्विष्णोर्निदेशेन सुनन्दपरिबोधितः। भागदाः सकला लोका येवैशाखपरायणाः
धर्मराजं पुरस्कृत्य येनकुर्वन्ति मानवाः। तेषांहि स्वयमादत्ते पुण्यं वैशाखसम्भवम्
कुर्याच्च प्रत्यहं स्नानं दद्यादर्घ्यं यमाय वै।
वैशाखे सकलं पुण्यमन्यथा विफलं भवेत् ॥ ५७ ॥
सोदकुम्भश्च दध्यन्नं पौर्णमास्याश्च माधवे। धर्मराजं समुद्दिश्य दातव्यं प्रथमे जनैः
पश्चात्पितॄन्समुदिश्य गुरुमुद्दिश्य वै नरः। मधुसूदनमुद्दिश्य पश्चाद्देवं जनार्दनम्
शीतलोदकदध्यन्नं ताम्बूलञ्च सदक्षिणम्।
सफलं कांस्यपात्रस्थं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ६० ॥
दद्याच्च प्रतिमां दिव्यां मधुसूदनदेवताम्। मासधर्मप्रवक्त्रे च दद्याद्विप्राय सीदते
तमेव धर्मवक्तारं पूजयेद्विभवैः स्वकैः। इत्यादिष्टः सुनन्देन तथा राजा चकार ह॥
स नीत्वा चाऽऽयुषः शेषं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान्।
पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तो जगाम हरिमन्दिरम् ॥ ६३ ॥
वैकुण्ठस्थे नृपेतस्मिन्वेनोराजाऽधमोऽभवत्। सर्वेधर्माश्चवैशखधर्माअपिविशेषतः
दुरात्मना च तेनैव लुप्ता एव बभूविरे। न प्रख्याताः पुनर्भूमौ भूरिशो मोक्षहेतवः
यःकश्चिन्नैव जानाति वैशाखोक्तानिमाञ्छुभान्। बहुजन्मार्जितेपुण्यपरिपाकउपागते
वैशाखोक्तेषु धर्मेषु मतिरात्यन्तिकी भवेत्।

मैथिल उवाच

पूर्वमन्वन्तरस्थो हि वेनो राजा दुरात्मवान् ॥ ६७ ॥
अयं वैवस्वतस्थो हि राजा चेक्ष्वाकुनन्दनः।
इति श्रुतं मया पूर्वमिदानीञ्चोच्यतेत्वया ॥ ६८ ॥
अयं वैकुण्ठगः पश्चाद्वेनो राजा भविष्यति। इत्येतं संशयं छिन्धि श्रुतदेवमहामते

श्रुतदेव उवाच

पुराणेषु च वैषम्यं युगकल्पव्यवस्थया। न चाप्रामाण्यशङ्का तेकथायांव्यत्ययेक्वचित्
गते दैनन्दिने कल्पे यथैषा शाश्वती शुभा। मार्कण्डेयेन मे प्रोक्ता सा चोक्तातवभूपते

तस्मान्न ख्यातिमायान्ति धर्मा वैशाखसम्भवाः
कश्चिदेव हि जानाति विरक्तो विष्णुतत्परः ॥ ७२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे यमदुःखसान्त्वनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

सत्यनिष्ठतपोनिष्ठयोराख्यानवर्णनम्

श्रुतदेव उवाच

यः प्रायः स्नाति वैशाखे मेषसंस्थे दिवाकरे । मधुसूदनमभ्यर्च्यकथांश्रुत्वाहरेरिमाम्
स तु पापविनिर्मुक्तो यति विष्णोः परंपदम् ।
वाच्यमानां कथां हित्वा योऽन्यां सेवेत मूढधीः ॥ २ ॥
रौरवं नरकं प्राप्य पैशाचीं योनिमाप्नुयात् । अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्
पापघ्नं पावनं धर्म्यं सद्यो वन्द्यं पुरातनम् । पुरा गोदावरीतीरे क्षेत्रे ब्रह्मेश्वरे शुभे
दुर्वासशिष्यौ परमहंसौ ब्रह्मैकनिष्ठितौ । सदैवोपनिषद्विद्यानिष्ठितौ निरपेक्षितौ
भिक्षामात्राशिनौ पुण्यौ तौ गुहावासिनावुभौ ।
सत्यनिष्ठतपोनिष्ठाविति ख्यातौ जगत्त्रये ॥ ६ ॥
तयोर्मध्ये सत्यनिष्ठःसदाविष्णुकथापरः । श्रोतॄणामप्यभावेचव्याख्यातॄणांतथानृप
तदा कर्मकला नित्याः करोत्यद्धा मुनीश्वरः ।
श्रोता चेदस्ति यः कश्चित्तस्मै व्याख्यात्यहर्निशम् ॥ ८ ॥
यदि व्याख्याति कश्चिद्वा पुण्यां विष्णुकथां शुभाम् ।
तदा सङ्कुच्य कर्माणि शृणोति श्रवणे रतः ॥ ९ ॥

अतिदूरस्थतीर्थानि देवतायतनानि च। हित्वा कथाविरोधीनितथाकर्माणिभूरिशः
श्रृणोति च कथां दिव्यां श्रोतृभ्यो वक्ति वै स्वयम्।
विना कथां न जानाति सेव्यमन्यन्नरेश्वर ॥ ११ ॥
व्याख्याति चगृहेस्वस्यवक्तारोगाद्युपद्रुतः। कूपस्नानपरोभूत्वाश्रृणोत्येवकथांमुनिः
कथायाश्च विरामेतुस्वकृत्यंसाधयत्यलम्। कथांवैश्रृण्वतः पुंसोजन्मबन्धोनविद्यते
सत्त्वशुद्धिस्ततो विष्णावरतिश्चैव गच्छति।
रतिश्च जायते विष्णोः सौहृदं चैव साधुषु ॥ १४ ॥
नीरजं निर्गुणं ब्रह्म सद्यो ह्यवरुध्यते। ज्ञानहीनस्य वै पुंसः कर्म वै निष्फलं भवेत्
बहुधाचरितंचाऽपियथैवान्धकदर्पणम्। कर्माणिक्रियमाणानिबहुधाशोचितात्मभिः
सत्त्वशुद्ध्यै भवन्त्येव सत्त्वशुद्ध्या श्रुतिं व्रजेत्।
श्रुतेस्तु ज्ञानमासाद्य ज्ञात्वा ध्यानाय कल्पते ॥ १७ ॥
बहुधाश्रवणं ध्यानं मननं श्रुतिचोदितम्। यत्रविष्णुकथानास्तियत्रसाधुजनानहि ॥
साक्षाद्गङ्गातटं वाऽपित्याज्यमेवनसंशयः। यद्देशेतुलसीनास्तिवैष्णवंधामवाशुभम्
यत्र विष्णुकथा नास्ति मृतस्तत्र तमो व्रजेत्।
यद् ग्रामे वैष्णवं धाम नास्ति कृष्णमृगोऽपि वा ॥ २० ॥
यत्र विष्णुकथानास्तिसाधवोवातदाश्रयाः। मृतस्तत्रपुमान्क्षिप्रंश्वानयोनिशतंव्रजेत्
विचार्योपनिषद्विद्यामिति निश्चित्य वै मुनिः।
सदा विष्णुकथाऽऽसक्तो विष्णुस्मृतिपरायणः॥ २२ ॥
न किञ्चिदधिकं जातु मन्यते श्रवणात्परम्। इतरस्तु तपोनिष्ठः कर्मनिष्ठोदुराग्रही
न व्याख्याति स्वयम्वाऽपि न श्रृणोति च सत्कथाम्।
वाच्यमानां कथां हित्वा तीर्थस्नानाय गच्छति ॥ २४ ॥
तीर्थेऽपि च प्रवृत्तायांकथायांभूमिपालक!। कर्मलोपभयाद्दूरंयातिचाश्चल्यशङ्कितः
व्रजन्ति गृहकृत्यार्थं सङ्गमात्परतो जनाः। न श्रोतारोन वक्तारस्तस्यपार्श्वेतुकर्मिणः
दुरात्मनस्तु दुर्बुद्धेः काल एवंक्षयंगते। जिह्वांश्रुतिश्चनक्वापिसम्प्राप्ताहिकथाविभोः

अश्रोतृत्वादवक्तृत्वाद्दुर्बुद्धित्वाद्दुराग्रहात् ।
पश्चात्पश्चत्वमासाद्य सद्यो धर्मेण वै मुनिः ॥ २८ ॥
पिशाचोऽभूच्छमीवृक्षे च्छिन्नकर्णाह्वयोऽवलः।
निराश्रयो निराहारः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ॥ २९ ॥
एवं वै खिद्यमानस्य समा दिव्यायुतागताः ।
नापश्यत्स्वस्य त्रातारं निराहारोऽतिदुःखितः ॥ ३० ॥

स्वकृतं चिन्तयानश्च मत्तोन्मत्त इवाभ्रमत् । क्षुधयापर्यटन्वाऽपिनिर्वृतिंनापमूढधीः
कृशानुसदृशो वायुरङ्गं स्पृष्ट्वा कृतात्मनः । कालाग्नितुल्या आपश्च फलपुष्पादिकंविषम्
न क्वापि सुखमापेदे कर्मठो दीनधीरयम् । एवं व्यवसिते तस्मिन्नरण्ये जनवर्जिते ॥
कथया रहिते क्षेत्रे स्वाश्रयेसाधुवर्जिते । दैवादायात्सत्यनिष्ठस्तदा पैठिनसीम्पुरीम्

गच्छन्मार्गे ददर्शाऽसौ छिन्नकर्णं वहुव्यथम् ।
दृष्ट्वाऽऽत्मानं द्रावयन्तं रुदन्तं क्षुधयाऽऽतुरम् ॥ ३५ ॥

माभैर्भीरितिचाऽऽभाष्यकोऽसीत्याहमुनीश्वरः । दशेदृशीचकस्मात्तेनतेदुःखमतःपरम्

इत्याश्वस्तोऽमुना च्छिन्नकर्णः प्राहाऽतिविह्वलः ।
तपोनिष्ठो यतिरहं शिष्यो दुर्वाससः परम् ॥ ३७ ॥

ब्रह्मेश्वरक्षेत्रवासी कर्मनिष्ठो दुराग्रही । कर्मलोपभयान्मौढ्यान्मयादुर्बुद्धिना मुने! ॥

साधुभिर्वाच्यमानाऽपि नाऽऽदृता विष्णुसत्कथा ।
न व्याख्याता च श्रोतृभ्यः कथा कर्मनिकृन्तनी ॥ ३९ ॥

तेन कर्मविपाकेन महताऽहं मृतिंगतः । छिन्नकर्णोऽभवं नाम्ना पिशाचोदुःखविह्वलः
न पश्यामि च त्रातारंदुःखादस्मात्कथञ्चन । तवदृष्टिपथंयातो दिष्ट्याऽहंगतकल्मषः
अद्य मे देवतास्तुष्टा गुरवः साधवश्च ये । हरिश्चमे प्रसन्नोऽभूद्यतस्ते दर्शनं मम ॥
पपात पादयोर्भूमौत्राहित्राहीतिवैरुदन् । ततस्तुकृपयाऽऽविष्टःसत्यनिष्ठोमहायशाः
दोर्भ्यामुत्थापयामास शन्तमाभ्यांमुनीश्वरः । ततस्त्वपउपस्पृश्यददौपुण्यमनुत्तमम्
वैशाखमासमाहात्म्यश्रवणस्य मुहूर्तजम् । तेन पुण्यप्रभावेणसद्योध्वस्ताखिलाशुभः

पिशाचदेहनिर्मुक्तो दिव्यदेहधरोऽभवत् । दिव्यं विमानमारुह्य तं प्रणम्य महामुनिम्

आमन्त्र्य च परिक्रम्य ययौ विष्णोःपरम्पदम् ।
सत्यनिष्ठस्ततो धीमान्ययौ पैठिनसीम्पुरीम् ॥ ४७ ॥
माहात्म्यश्रवणस्यैवं चिन्तयानः पुनः पुनः ।

श्रुतदेव उवाच

यत्र विष्णुकथा पुण्या शुभा लोकमलाऽपहा ॥ ४८ ॥
तत्र सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि विविधानि च ।
यत्र प्रवहते पुण्या शुभा विष्णुकथाऽऽपरा ॥ ४९ ॥
तद्देशवासिनां मुक्तिः करसंस्था न संशयः ॥ ५० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे नारदाम्बरीषसम्वादे कथाप्रशंसायां पिशाचमुक्तिप्राप्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

पाञ्चालाधिपतेर्जयप्राप्तिर्दारिद्र्यनाशवर्णनम्

श्रुतदेव उवाच

भूयः श्रृणुष्व भूपाल माहात्म्यंपापनाशनम् । वैशाखस्यचमासस्यवल्लभस्यमधुद्विषः
पुरापाञ्चालदेशे तु राजा पुरुयशोऽभवत् । तनयो भूरियशसः पुण्यशीलस्य धीमतः
पितर्युपरते भूप राज्यस्थो धर्मलालसः । शौर्यौदार्यगुणोपेतो धनुर्विद्याविशारदः
शशास पृथिवीं सर्वां स्वधर्मेण महामतिः । पूर्वजन्मजलादानाद्दोषेण महता वृतः ॥
सम्पद्धानिमवापाऽसौ कालेनकियताऽनघ! । हयागजामृतिं याता महद्रोगेणपीडिताः
दुर्भिक्षमतुलं चासीन्निर्मानुष्यविधायकम् ।

राज्यं कोशं तदा चाऽऽसीद्गजभुक्तकपित्थवत् ॥ ६ ॥
बलहीनं नृपं ज्ञात्वा कोशराष्ट्रविवर्जितम् । तं जेतुमेष समय इति निश्चितमानसः
आजग्मुः शतशोभूपा रिपवस्तस्य भूपतेः । जिग्युर्युद्धेनतंभूपं पाञ्चालविषयाधिपम्
पराजितस्ततो राजा विवेश गिरिगह्वरे ।
शिखिन्या भार्यया साकं धात्र्यादिगणसंयुतः ॥ ६ ॥
अज्ञातपद्धतिश्चान्यैर्बहुदुःखसमाकुलः । त्रिपञ्चाशत्समाश्चैव नीतास्तेन विलीयता
चिन्तयामास भूपालः किमेतदिति भूरिशः । कर्मणा जन्मशुद्धोऽहंमातृपितृहितेरतः
गुरुभक्तः सदाक्षिण्यो ब्रह्मण्यो धर्मतत्परः । दयावान्सर्वभूतेषु देवभक्तो जितेन्द्रियः
न भ्राता मे न पुत्रो मेनचमेसुहृदोहिताः । दयापौरुषविख्याताःकुलीनस्ताऽपिमेकुतः
केनवा कर्मणा चाप्तं दारिद्र्यं भूरि दुःखदम् । केन वाऽपजयोमेऽद्यकेनवावनवासिता
इति चिन्ताकुलोराजागुरुंसस्मारखिन्नधीः । याजोपयाजकौनामसर्वज्ञौमुनिसत्तमौ
आजग्मतुर्मुनीन्द्रौ तौ राज्ञाहूतौ महामती । तौ दृष्ट्वा सहसोत्थायराजापाञ्चालवल्लभः
ननाम शिरसा भक्त्या प्रवासेनाऽतिपीडतः । राजचिह्नविहीनश्च केनाप्यज्ञातपद्धतिः
तूर्ष्णीं तस्थौ मुहूर्तं हि पतित्वा भुवि पादयोः ।
दोर्भ्यामुत्थापि तस्ताभ्यां परिमृष्टाऽश्रुलोचनः ॥ १८ ॥
विधिवत्पूजयामास वन्यैरेवाऽर्हणैःशुभैः । सूपविष्टौतुतौविप्रौपप्रच्छाऽऽनतकन्धरैः
ब्राह्मणौ वदतं दुःखकारणञ्च क्षितीशितुः । कर्मणा जन्मशुद्धस्य पितृदेवप्रियस्यच
पापभीरोः कृपालोश्च गुरुभक्तस्य मे कुतः । दारिद्र्यं कोशहानिश्चरिपुभिश्चपराभवः
कस्मादरण्यवासश्च कुत एकाकिता मम । नपुत्रोन च मे भ्राता न हिताः सुहृदश्च मे
दुर्भिक्षं वाकुतश्चासीद्देशे मत्पालितेऽनघे । एतद्विस्तार्य मे ब्रूतं कारणं मुनिपुङ्गवौ
इत्युक्तौ तौ मुनिश्रेष्ठौ भूतेनाऽत्यन्तदुःखिना ।
प्रत्यूचतुर्महात्मानौ किं सिद्ध्या न परायणौ ॥ २४ ॥

याजोपयाजकावूचतुः

शृणु भूप प्रवक्ष्यावस्तव दुःखस्यकारणम् । पुरा भूप महापापीव्याधस्त्वंदशजन्मसु

निष्ठुरः सर्वलोकानां सदा हिंसापरायणः । धर्मलेशाकरः क्वापि न दमो नच वैशमः
न जिह्वा वक्तिनामानि विष्णोर्वापिकथञ्चन । चेतः स्मरतिगोविन्दरणाम्बुरुहद्वयम्
न प्रणामः कृतः क्वापि शिरसा परमात्मने । नव जन्मानि ते भूप गतान्येवंदुरात्मनः
दशमे जन्मनि प्राप्ते व्याधस्त्वं सह्यभूधरे । निष्ठुरःसर्वलोकानां नराणां त्वंनरान्तकः
दयाहीनः शस्त्रजीवी सदा हिंसापरायणः । निर्गुणःसकलत्रस्त्वं मार्गपीडाकरः शठः
प्रजानां गौडदेश्यानां राक्षसो मानुषाशनः । एवं चाऽब्दान्यतीतानिनैजंहितमजानतः
बालापत्यमृगाणाञ्च पक्षिणाञ्च वधात्तव । दयाहीनस्य दुर्बुद्धेर्जन्मन्यस्मिन्नपुत्रता
विश्वासघातकत्वेन भ्रातरो नैव सोदराः । मार्गपीडाकरत्वेन सुहृज्जनविवर्जितः॥
साधूनाञ्च तिरस्काराच्छत्रुभिस्ते पराजयः । कदाप्यदत्तदोषेण दारिद्र्यम्पतितं गृहे
सदैवोद्वेगकारित्वात्प्रवासस्ते दुरासदः । सर्वेषामप्रियत्वाच्च दुःखमत्यन्तदुःसहम्
निराहारोऽप्यतः पूर्वंसदाक्रूरेण कर्मणा । तस्माद्राज्यापहारस्तेजन्मन्यस्मिन्महामते

अथ ते सत्कुलीनत्वे हेतूंश्चाऽपि ब्रवीम्यहम् ।
यदाऽभूर्गौडदेशीयो ह्यन्तिमे व्याधजन्मनि ॥ ३७॥

स्वकर्मनिरते क्रूरे विपिने कण्टकाविले । तिष्ठत्येवं दयाहीने सर्वभूतान्तके पथि ३८
वैश्यावाजग्मतुर्दिव्यौ धनाढ्यौ धर्मपीडितौ । मुनिश्चकर्षणोनाम वेदवेदाङ्गपारगः॥
जटाचीरधरः पुण्य कमण्डलुपरिग्रहः । तान्दृष्ट्वा धनुरादाय मार्गं रुद्ध्वा व्यवस्थितः

अनुद्रुत्य शरी वैश्यौ कृत्वा छिन्नशरीरकौ ।
तयोरेकश्च त्वं हत्वा गृहीत्वाऽखिलतत्पणम् ॥ ४१ ॥

अपरं हन्तुमुद्युक्ते स दुद्राव भयाद्द्रुतम् । पणं गुल्मे विनिक्षिप्यभीतःप्राणपरीप्सकः

कर्षणोऽपि मुनिः शीघ्रं व्याधान्मृतिविशङ्कया ।
आतपे धावमानः संस्तृषाघर्मप्रपीडितः ॥ ४३ ॥

मूर्च्छामाप गलत्स्वेदः संज्ञामात्रावशेषितः । विहायैनं दुद्रुवे च वैश्यो जीवनतत्परः
त्वं तावनुद्रुतौ दृष्ट्वा मूर्च्छितंपथिभूसुरम् । पणं कुत्रविनिक्षिप्तंकियद्दूरंगतोवणिक्

इति पृष्टं द्विजं श्रान्तमुज्जीवयितुमुद्यतः।

फूत्कृत्वा कर्णयोस्तस्य नागरं स्मृतिकारणम् ॥ ४६ ॥
पल्वलस्थोदकेनैव कृमिकर्दमसंयुजा । नेत्रे संमृज्य श्रान्तस्य पर्णैः सम्वीज्यतन्मुखे
ससञ्ज्ञश्च मुनिं कृत्वा त्वमात्थ स्वस्थमानसः ।
मा शङ्का ते मुने कार्या मत्तः शस्त्रभृतो वने ॥ ४८ ॥
निष्किञ्चनः सुखी लोके कुतस्ते भयमुल्वणम् ।
भिन्नपात्रेण जीर्णेन न मे किञ्चिद्भविष्यति ॥ ४६ ॥
एतावद्वद मे विद्वन्वणिक्कुत्र पलायितः । कुत्र गुल्मे धनं क्षिप्तं तेन शीघ्रंपलायता
अन्यथा त्वां हनिष्यामि यदि मिथ्या वदिष्यसि ।

कर्षण उवाच

धनं गुल्मे विनिक्षिप्तं मार्गदस्मात्पलायितः ॥ ५१ ॥
इतिप्राहभयात्सोऽपि पृष्टःप्राणपरीप्सया । गच्छ विप्र सुखं मार्गंमत्तोभीतिंविहायच
इतो विदूरे सलिलं तडागे वर्तते शुभम् । तत्पीत्वा सलिलं पुण्यं गच्छग्रामंगतश्रमः
अधुनैऽऽवागमिष्यन्ति राजकीयाः पथा जनाः ।
मत्पदान्वेषणे सक्ताः श्रुत्वा रावं वणिक्पतेः ॥ ५४ ॥
तृषार्तमनुगन्तुं मे न शक्यं त्वां ततो द्विज! । वीजमानेन पर्णेनघर्मःकिञ्चिद्गमिष्यति
तस्मै दत्त्वा पलाशं च त्वमागा विपिनं पुनः । तेन पुण्यप्रभावेण वैशाखे घर्मघर्घरे ॥
स्वकार्यार्थं कृतेनापि मुनेस्त्राणाय पद्धतौ । जन्मासीत्तेमहापुण्येराजवंशेऽतिविस्तृते
यदीच्छसि सुखंराज्यंधनधान्यादिसम्पदः । स्वर्गापवर्गौयदिवासायुज्यंवाहरेःपदम्
कुरु वैशाखधर्मांस्त्वं सर्वसौख्यमवाप्स्यसि ।
मासोऽयं माधवोनाम तृतीयाचाऽक्षयाह्वया ॥ ५६ ॥
गांचसकृत्प्रसूताख्यांदेहिविप्रायसीदते । तेनतेकोशपूर्तिःस्याच्छय्यांदेहिसुखंभवेत्
कुरु च्छत्रप्रदानं च साम्राज्यं ते भविष्यति । स्नानंकुरुयथान्यायंतथैवाऽर्चयमाधवम्
देहि त्वं प्रतिमांदिव्यांकृत्वातेनजयोभवेत् । आत्मतुल्यगुणान्पुत्रान्यदिकामयसेनृप
सर्वभूतहितार्थाय प्रपादानं च त्वं कुरु । वैशाखोक्तानिमान्धर्मान्सम्यगाचर भूमिप ॥

तेन ते सकला लोका वशं यान्तिनसंशयः । निष्कामकेनचित्तेनयदिधर्मान्करिष्यसि
वैशाखे पुण्यमासेऽस्मिन्प्रीतयेमधुघातिनः । प्रत्यक्षोभविताविष्णुस्तवनिर्मलचेतसः
येन चाचरिताः पुंसा धर्मा ह्येते शुभावहाः । तेषाञ्चह्यक्षयालोकाः पुराणेकवयोविदुः
एतत्सर्वं तव प्रोक्तं यथादृष्टं यथाश्रुतम् । इति राजानमामन्त्र्य ब्राह्मणौ च पुरोधसौ
याजोपयाजकौनाम जग्मतुस्तौ यथागतौ ।
ततो राजामहावीर्यः पुरोधोभ्याञ्च वोधितः ॥ ६८ ॥
वैशाखधर्मान्सकलांश्चकार श्रद्धयाऽन्वितः । यथोपदिष्टं च तथा मधुसूदनमर्चयत् ॥
ततो लब्धप्रभावः सन्वन्धुभिः सकलैर्वृतः । पाञ्चालनगरीम्प्राप हतशेषबलान्वितः
ततस्तु शत्रवो भूपा उपश्रुत्य च भूपतेः । प्रवेशं च पुरस्याऽथ पुनराजग्मुरुद्धताः॥
तदा पाञ्चालभूपेन नृपाणामभवद्रणम् । जिग्ये सर्वान्महाबाहुनेक एव महारथः ॥७२
पलायितेषु भूतेषु नानादेशपथिष्वपि । राज्ञां कोशगजानश्वान्स्वयं जग्राह वीर्यवान्
अश्वानां निर्वुदं चैव गजानां च त्रिकोटिकम् । रथानामर्वुदञ्चैव दीर्घग्रीवायुतंतथा
रासभाणां त्रिलक्षाणि प्रापयामास तां पुरीम् ।
वैशाखधर्ममाहात्म्यात्क्षणात्सर्वे च भूभृतः ॥ ७५ ॥
करदा भग्नसङ्कल्पाः पादाक्रान्ता बभूविरे । सुभिक्षमतुलं चासीत्पाञ्चालविषयेषु च
एकच्छत्रमभूद्राज्यं प्रसादान्मधुघातिनः ।
पुत्राः पञ्चाऽपि तस्यासञ्छौर्य्यौदार्यगुणान्विताः ॥ ७७ ॥
धृष्टकीर्तिर्धृष्टकेतुर्धृष्टद्युम्नस्तथाऽपरे । विजयश्चित्रकेतुश्च मयूरध्वजसन्निभाः ॥ ७८
अनुरक्ताः प्रजाश्चासन्धर्मेणप्रतिपालिताः । वैशाखस्य प्रतापेनप्रत्ययस्तत्क्षणादभूत्
पुनश्चकार तान्धर्मान्पाञ्चालनगरीश्वरः । अकामुकेन चित्तेन प्रीयते मधुघातिनः ॥
धर्मेणानेन सन्तुष्टो भगवान्मधुसूदनः । अक्षयायां तृतीयायां प्रत्यक्षः समजायत ॥
तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा परमात्मानमच्युतम् । नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम्
पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम् । सलक्ष्मीकं सानुगञ्च गरुडोपरि संस्थितम्

निरीक्ष्य दुःसहं तेजः सद्योमीलितलोचनः ।

उत्पतन्संपतन्हर्षान्मत्तोन्मत्तइव भ्रमन् ॥ ८४ ॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो गलद्बाष्पाकुलेक्षणः । तुष्टाव परया भक्त्याप्राञ्जलिःप्रणतोभुवि

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे पाञ्चालदेशाधिपतेर्जयप्राप्ति-दरिद्रनाशवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

पाञ्चालदेशाधिपतेःसायुज्यप्राप्तिवर्णनम्

श्रुतदेव उवाच

तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम मूर्ध्ना ।
चिरं निरीक्ष्याऽऽकुललोचनो ह्यमुं विश्वात्मदेवं जगतामधीशम् ॥ १ ॥
दधार पादाववनिज्य तज्जलं यत्पादजाऽऽब्रह्म जगत्पुनाति ।
समर्चयामास महाविभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ॥ २ ॥
स्रग्धूपदीपामृतभक्षणादिभिस्त्वगात्रवित्तात्मसमर्पणेन ।
तुष्टाव विष्णुं पुरुषं नारायणं निर्गुणमद्वितीयम् ॥ ३ ॥
निरञ्जनं विश्वसृजामधीशं वन्दे परं पद्मभवादिवन्दितम् ।
यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा जना विमोहिता विश्वसृजामधीश्वरम् ॥ ४ ॥
मुह्यन्ति मायाचरितेषु मूढा गुणेषु चित्रं भगवद्विचेष्टितम् ।
अनीह एतद्बहुधैक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽप्यथ ॥ ५ ॥
समस्तदेवासुरसौख्यदुःखप्राप्त्यै भवान्पूर्णमनोरथोऽपि ।
तत्राऽपि काले स्वजनाभिगुप्त्यै बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय ॥ ६ ॥
तमोगुणं राक्षसबन्धनाय रजोगुणं निर्गुण! विश्वमूर्ते! ।

दिष्ट्या त्वदङ्घ्रिः प्रणताघनाशनस्तीर्थास्पदं हृदिधृतःसुविपक्वयोगैः ।
उत्सिक्तभक्त्युपहृताशयजीवभावाः प्रापुर्गतिं तव पदस्मृतिमात्रतो ये ॥
भवाख्यकालोरगपाशबन्धः पुनःपुनर्जन्मजरादिदुःखैः ॥ ८ ॥
भ्रमामि योनिष्वहमाखुभक्ष्यवत्प्रवृद्धतर्षस्तव पादविस्मृतेः ।
नूनं न दत्तं न च ते कथा श्रुता न साधवो जातु मयाऽपि सेविताः ॥ ९ ॥
तेनारिभिर्ध्वस्तपरार्ध्यलक्ष्मीर्वनं प्रविष्टः स्वगुरुह्यघं स्मरन् ।
स्मृतौ च तौ मां समुपेत्य दुःखात्सम्बोधयाञ्चक्रतुरार्तबन्धू ॥ १० ॥
वैशाखधर्मैः श्रुतिचोदितैः शुभैः स्वर्गापवर्गादि पुमर्थहेतुभिः ।
तद्बोधतोऽहं कृतवान्समस्ताञ्छुभावहान्माधवमासधर्मान् ॥ ११ ॥
तस्मादभून्मे परमः प्रसादस्तेनाऽखिलाः सम्पद ऊर्जिताइमा ।
नाऽग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ॥ १२ ॥
उपासितास्तेऽपि हरन्त्यघं चिराद्विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ।
यान्मन्यसे त्वं भविनोऽपि भूरिशस्त्यक्तेषणांस्त्वत्पदन्यस्तचित्तान् १३
नमः स्वतन्त्राय विचित्रकर्मणे नमः परस्मै सदनुग्रहाय ।
त्वन्मायया मोहितोऽहं गुणेषु दारार्थरूपेषु भ्रमाम्यनर्थदृक् ॥ १४
त्वत्पादपद्मे सति मूलनाशने समस्तपापापहरे सुनिर्मले ।
सुखेच्छयाऽनर्थनिदानभूतैः सुतात्मदारैर्ममताभियुक्तः ॥ १५ ॥
न क्वापि निद्रां लभते न शर्म प्रवृद्धतर्षः पुनरेव तस्मिन् ।
लब्ध्वा दुरापं नरदेवजन्म त्वं यत्नतः सर्वपुमर्थहेतुः ॥ १६ ॥
पदारविन्दं न भजामि देव ! सम्मूढचेता विषयेषु लालसः ।
करोमि कर्माणि सुनिष्ठितः सन्प्रवृद्धतर्षस्तदपेक्षया ददत् ॥ १७ ॥
पुनश्च भूयामहमद्य भूयामित्येव चिन्ताशतलोलमानसः ।
तदैव जीवस्य भवेत्कृपा विभो! दुरन्तशक्तेस्तव विश्वमूर्ते! ॥१८॥
समागमः स्यान्महतां हि पुंसां भवाम्बुधिर्येन हि गोष्पदायते ।

सत्सङ्गमो देव यदैव भूयात्तर्हीश देवे त्वयि जायते मतिः ॥ १६॥
समस्तराज्यापगमं हि मन्ये ह्यनुग्रहं ते मयि जातमञ्जसा ।
यथार्य ते ब्रह्मसुरासुराद्यैर्निवृतत्तर्षैरपि हंसयूथैः ॥ २० ॥
इतः स्मराम्यच्युतमेव सादरं भवापहं पादसरोरुहं विभो! ।
अकिञ्चनप्राथ्यर्यममन्दभाग्यदं न कामयेऽन्यत्तव पादपद्मात् ॥ २१ ॥
अतो न राज्यं न सुतादिकोशं देहेन शश्वत्पतता रजोभुवा ।
भजामि नित्यं तदुपासितव्यं पादारविन्दं मुनिर्विचिन्त्यम् ॥ २२ ॥
प्रसीद देवेश! जगन्निवास! स्मृतिर्यथा स्यात्तव पादपद्मे ।
सक्तिः सदा गच्छतु दारकोशपुत्रात्मचिह्नेषु गणेषु मे प्रभो! ॥ २३ ॥
भूयान्मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि ते दिव्यकथानुवर्णने ।
नेत्रे ममेमे तव विग्रहेक्षणे श्रोत्रे कथायां रसना त्वदर्पिते ॥ २४ ॥
घ्राणञ्च त्वत्पादसरोजसौरभेत्वद्भक्तगन्धादिविलेपनेसक्तत् ।
स्यातां च हस्तौ तव मन्दिरे विभो सम्मार्ज्जनादौ मम नित्यदैव ॥२५॥
पादौ विभोः क्षेत्रकथाऽनुसर्पणे मूर्धा च मे स्यात्तव वन्दनेऽनिशम् ।
कामश्च मे स्यात्तव सत्कथायां बुद्धिश्च मे स्यात्तव चिन्तनेऽनिशम् ॥२६
दिनानि मे स्युस्तव सत्कथोदयैरुद्गीयमानैर्मुनिभिर्गृहागतैः ।
हीनः प्रसङ्गस्तव मे न भूयात्क्षणं निमेषार्द्धमथाऽपि विष्णो! ॥ २७॥
न पारमेष्ठ्यं न च सार्वभौमं न चाऽपवर्गं स्पृहयामि विष्णो! ।
त्वत्पादसेवाञ्च सदैव कामये प्राथ्यां श्रिया ब्रह्मभवादिभिः सुरैः ॥ २८॥
इति राज्ञा स्तुतो विष्णुः प्रसन्नः कमलेक्षणः ।
मेघगम्भीरया वाचा तमुवाच क्षितीश्वरम् ॥ २६ ॥

श्रीभगवानुवाच

जाने त्वां दासवर्यं मे निष्कामुकमकल्मषम् ।
अथाऽपि ते प्रदास्यामि वरं दैवतदुर्लभम् ॥ ३० ॥

आयुष्यं चायुतं दिव्यं सम्पदश्च नरेश्वर! । भक्तिर्मयि दृढा भूयादन्ते सायुज्यमेव च
त्वया कृतेन स्तोत्रेणमांस्तुवन्तिचयेभुवि । तेषांतुष्टःप्रदास्यामिभुक्तिमुक्तिनसंशयः
तृतीयैषाऽक्षयानाम भुविख्याताभविष्यति । यस्यांतवप्रसन्नोऽहंभुक्तिमुक्तिफलप्रदः

ये कुर्वन्ति नरा मूढाः स्नानदानादिकाः क्रियाः ।
व्याजेनाऽपि स्वभावाद्वा यान्ति मत्पदमव्ययम् ॥ ३४ ॥

ये चाऽक्षयतृतीयायां पितॄनुद्दिश्य मानवाः । श्राद्धं कुर्वन्तितेषांवैतदानन्त्यायकल्पते
न चाऽनयातिथिर्लोकेसमावानाधिकाभुवि । अस्यांकृतंस्वल्पमपितदक्षय्यफलंभवेत्
यागां दद्यान्नृपश्चेष्ठब्राह्मणायकुटुम्बिने । सर्वसम्पत्प्रवर्षाख्याभुक्तिर्मुक्तिःकरेस्थिता
यो हिदद्यादनड्वाहंसर्वपापविनाशनम् । कालमृत्युविमुक्तःसन्दीर्घायुष्यमवाप्नुयात्
वैशाखमासे यो धर्मान्कुरुते मत्प्रियावहान् । तेषां मृत्युजराजन्मभयं पापं हराम्यहम्
यथा वैशाखधर्मैस्तु तुष्टः स्यांसकलैरपि । मासधर्मैस्तुतुष्टःस्यांमासोमेमाधवप्रियः

सर्वधर्मोज्झिता वापि ब्रह्मचर्यविवर्जिताः ।
वैशाखमासनिरता यान्ति मत्पदमव्ययम् ॥ ४१ ॥

यद्दुरापं तपोभिश्च सांख्ययोगैर्मखैरपि । तद्धाम परमं यान्ति वैशाखनिरता नराः
अपि पापसहस्रं वा मासोऽयं हरतेऽनघ । प्रायश्चित्तविहीनं वा मत्पादस्मरणं यथा
गुरूपदिष्टः कान्तारे वैशाखे निरतो भवान् । समाराध्य जगन्नाथं तेनाप्तमखिलं नृप

धर्मेणानेन सम्प्रीतः प्रत्यक्षोऽहं भवामिते ।
भुक्त्वा भोगान्यथाकामान्देवैरपि सुदुर्लभान् ॥ ४५ ॥

इति तस्मै वरं दत्त्वा देवदेवो जनार्दनः । पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥४६
ततो भूपालवर्योऽसौ बभूवात्यन्तविस्मितः । हृष्टपुष्टतनुर्भूप! लब्धनष्टधनो यथा
ततः शशास पृथिवीं तच्चित्तस्तत्परायणः । महद्भिर्बोधितोनित्यंगुरुभिश्चनिरन्तरम्
नान्यं प्रियतमं मेने वासुदेवमृते नृपः । यत्सम्पर्कात्प्रिया आसन्दारामात्यसुतादयः
सर्वान्धर्मांश्चकाराऽसौ वैशाखोक्तान्पुनः पुनः । तेनपुण्यप्रभावेणपुत्रपौत्रादिभिर्वृतः

भुक्त्वा मनोरथान्सर्वान्देवानामपि दुर्लभान् ।

अन्ते जगाम सायुज्यं विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥ ५१ ॥
य इदं परमाख्यानं शृण्वन्तिश्रावयन्तिच । तेसर्वेपापनिर्मुक्तायान्तिविष्णोःपरंपदम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे पाञ्चालदेशाधिपतेः सायुज्यप्राप्तिर्नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

दन्तिलकोहलमुक्तिप्राप्तिवर्णनम्

श्रुतकीर्तिरुवाच

वैशाखधर्मानखिलानिहाऽमुत्रफलप्रदान् । भूयोऽपिशृण्वतश्चासीत्तृप्तिर्नाऽद्यापिमानद
यत्र चाऽकैतवोधर्मोयत्रविष्णुकथाःशुभाः । तच्छास्त्रंशृण्वतोनैवतृप्तिःकर्णरसायनम्
पूर्वजन्मकृतं पुण्यं दिष्ट्या पारमुपागतम् । आतिथ्यव्यपदेशेन यद्भवान्गृहमागतः
वचोऽमृतं मुखाम्भोजनिःसृतं परमाद्भुतम् । पीत्वा तृप्तः पारमेष्ठ्य मोक्षंवाचनकामये
तस्मात्तानेव धर्मान्मे भुक्तिमुक्तिप्रदायकान् ।
विष्णुप्रीतिकरान्दिव्यान्भूयो विस्तरतो वद ॥ ५ ॥
इत्युक्तस्तु पुरा राज्ञा श्रुतदेवोमहायशाः । संहृष्टाऽऽत्माशुभान्धर्मान्पुनर्व्याहर्तुमारभत्

श्रुतदेव उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ।
वैशाखधर्मविषयां भावितां मुनिभिर्मुहुः ॥ ७ ॥
पम्पातीरे द्विजः कश्चिच्छङ्खोनाममहायशाः । गुरौसिंहगतेचागान्नदींगोदावरींशुभाम्
तीर्त्वा भीमरथीं पुण्यां कान्तारे कण्टकाचले । निर्जले निर्जनेघोरेवैशाखेतपकर्षितः
वृक्षे चोपविवेशाऽसौ मध्याह्नसमये द्विजः । तदाकश्चिद्दुराचारोव्याधश्चापधरःशठः

निर्घृणः सर्वभूतेषु कालान्तक इवाऽपरः। तं कुण्डलधरं विप्रंदीक्षितंभास्करोपमम्
दृष्ट्वा बद्ध्वा स जग्राह कुण्डलादिकमुग्रधीः। उपानहौचछत्रंचअक्षमालांकमण्डलुम्
पश्चाद्विसृज्य तं विप्रं गच्छेत्याह विमूढधीः ॥ १३ ॥
ततः स गच्छन्पथि शर्कराऽऽविले सूर्यांशुतप्ते जलवर्जिते खरे।
सन्तप्तपादस्तृणछादिते स्थले क्वचिच्चचारोपवसन्नूर्ध्वरेताः ॥ १४ ॥
स वै द्रुतं सम्पतन्क्वाऽपि तुष्यन्हाहेति वादी स जगाम तूर्णम्।
दृष्ट्वामुनिं खिद्यमानं पृथिव्यां मध्यं गते पूष्णि दया बभूव ॥ १५ ॥
व्याधस्य धर्मविमुखस्य च पापबुद्धेस्तस्मै ददामि सुखदां खलु पादरक्षाम् ॥ १६॥
चौर्येणैव स्वधर्मेण या गृहीता वनान्तरे
तदीयमेव तत्सर्वं व्याधानां धर्मनिर्णयः। तस्मादुपानहौ दास्ये मुहुर्दुःखापनुत्तये
तेन श्रेयो भवेद्यच्च तद्भवेन्मम पापिनः। जीर्णे चोपानहौ द्वे च वर्तेते पादयोर्मम॥
न ताभ्यामस्ति मे कृत्यं तस्मात्ते वै ददाम्यहम् ॥ १८ ॥
इति निश्चित्य मनसि तूर्णं गत्वा ददौ च ते। शर्करातप्तपादाय द्विजवर्याय सीदते
उपानहौ गृहीत्वा ते निर्वृतिश्च परां ययौ। सुखीभवेतितंव्याधमाशीर्भिरभिनन्द्यच
नूनं सुपक्वपुण्योऽयं वैशाखेदत्तवानमू। व्याधस्यापिचदुर्बुद्धेः प्रायोविष्णुःप्रसीदति
सर्वस्याऽऽप्त्या च भूयोऽपि यत्सुखंतदभून्मम।
ततोऽभिश्रुत्य तद्वाक्यं किमेतदिति विस्मितः ॥ २२ ॥
व्याजहार पुनर्विप्रं ब्रह्मिष्ठं ब्रह्मवादिनम्। त्वदीयं तु मया दत्तं कथं पुण्यं भवेन्मम
प्रशंससि च वैशाखं हरिस्तुष्टोभवेदिति। एतदाचक्ष्वमेब्रह्मन्को वैशाखस्तु को हरिः
को धर्मः किं फलं तस्यशुश्रूषोर्मेदयानिधे। इतिव्याधवचःश्रुत्वाशङ्खस्तुष्टमनाअभूत्
प्रशंसन्स च वैशाखं पुनर्विस्मितमानसः। इदानीं दत्तवान्पादत्राणे मे लुब्धकः शठः
यद्दुर्बुद्धेश्च वैषम्यं जातं चित्रमहो बत। सर्वेषामेव धर्माणां फलंजन्मान्तरेषु वै॥
वैशाखमासधर्माणां फलं सद्यः प्रतीक्षणम्।

पापाचारस्य दुर्बुद्धेर्व्याधस्याऽपि दुरात्मनः ॥ २८ ॥

दैवादुपानहोर्दानात्सत्त्वशुद्धिरभूदहो । यच्च विष्णोः प्रियंकर्मयत्तत्सन्तोषनिर्मलम्
तदेव धर्ममित्याहुर्मन्वाद्या धर्मवित्तमाः । धर्मामाधवमासीयाःप्रिया विष्णोरतीवते
धर्मैर्माधवमासीयैर्यथा तुष्यति केशवः । न तथा सर्वदानैश्च तपोभिश्च महामखैः ॥
नानेन सदृशो धर्मः सर्वेधर्मेषु विद्यते । मा गयां यान्तु मा गङ्गामाप्रयागंतु पुष्करम्
मा केदारं कुरुक्षेत्रंमाप्रभासंस्यमन्तकम् । मागोदांमाचकृष्णाञ्चमासेतुंमामरुद्वृधम्
वैशाखधर्ममाहात्म्यं शंसन्तीच कथाऽऽपगा । तत्रस्नातस्यवैविष्णुःसद्योहृद्यवरुध्यते
मासे माधवसञ्ज्ञेऽस्मिन्यस्त्वल्पेनैव साध्यते । नतद्बहुव्ययैर्दानैर्नधर्मैर्वाऽपिवैमखैः
मासोऽयं माधवोनाम व्याध! पुण्यविवर्द्धनः । तस्मिन्मह्यं त्वया दत्तेपादुकेतपनाशने
तेन ते पूर्वकालीनं पुण्यं पाकमुपागतम् । तुष्टस्तुभगवान्प्रायःश्रेयोव्याधविधास्यति
अन्यथा ते कथं भूयाद्बुद्धिरेतादृशीशुभा । मुनावेवं ब्रुवाणे च मृत्युना प्रेरितो बली
सिंहो व्याघ्रवधार्थाय प्राद्रवत्क्रोधविह्वलः । मध्ये दृष्ट्वाचमातङ्गं दैवाद्दैवेनकल्पितम् ॥
तं हन्तुमुद्यतोऽगच्छत्पदाक्रान्तं व्यवस्थितम् । तयोर्युद्धमभूद्राजन्सिंहमातङ्गयोर्वने

श्रान्तौ युद्धाच्च विरतौ निरीक्षन्तौ च तस्थतुः ।
व्याधमुद्दिश्य यच्चोक्तं मुनिना च महात्मना ॥ ४१ ॥

समस्तपातकध्वंसि दैवाच्छुश्रुवतुश्च तौ । तेनैव मासमाहात्म्यश्रवणेनाऽमलाशयौ॥
शापान्मुक्तौचतौदेहात्सद्योमुक्तौ दिवंगतौ । दिव्यरूपधरौदिव्यौदिव्यगन्धानुलेपनौ
दिव्यंविमानमारूढौ दिव्यनारीनिषेवितौ । सद्योऽवनतमूर्द्धानौप्राञ्जलीचोपतस्थतुः
मुनीन्द्रोधर्मवक्ताचव्याधमुद्दिश्यवैपथि । तौदृष्ट्वाविस्मितःप्राहकौयुवामितिनिश्चलः
दुर्यानौ तु कुतो जन्मयुवयोर्वाकथंस्मृतिः । अहेतोर्विपिनेचाऽस्मिन्परस्परवधोद्यतौ
एतत्सर्वं सुविस्तार्यसम्यग्वदत मेऽनघौ! । इत्युक्तौ मुनिना तेन वचः प्रत्यूचतुः पुनः
मतङ्गस्य मुनेः पुत्रौदन्तिलःकोहलोऽपरः । शापदोषेणतौजातौनाम्नादन्तिलकोहलौ
रूपयौवनसम्पन्नौ सर्वविद्याविशारदौ । आवामुद्दिश्य प्रोवाच पिताधर्मार्थकोविदः

मतङ्गो नाम ब्रह्मर्षिः सर्वधर्मविदुत्तमः ।
वैशाखे मासि तनयौ मधुसूदनवल्लभे ॥ ५० ॥

प्रपां कुरुत मार्गेचजनान्वीजयतं क्षणम् । मार्गे छायां विधत्ताश्चभूर्यन्नं शीतलाम्बुच
कुरुतं स्नानमुष्सि तथैवार्चयतं विभुम् । कथाञ्च शृणुतं नित्यंयया वन्धो निवर्तते
एवं च बहुभिर्वाक्यैर्बोधितावपि दुर्मती । क्रुद्धोऽभवंदन्तिलोऽहं मत्तोऽहंकोहलाह्वयः
क्रुद्धः शशाप तौ सद्यः पिता धर्मेषु लालसः ॥ ५४ ॥
पुत्रश्चधर्मविमुखंभार्याञ्चाऽप्रियावादिनीम् । अब्रह्मण्यंचराजानं त्यजेत्सद्योनचेत्पतेत्
दाक्षिण्यादर्थलोभाद्वा संसर्गं ये प्रकुर्वते । ते सर्वे नरकं यान्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥
इति ज्ञात्वा शशापाऽऽवां मदक्रोधपरिप्लुतौ ॥ ५६ ॥
क्रुद्धोऽयंदन्तिलोभूयात्सिंहःक्रोधपरिप्लुतः । मत्तस्तुकोहलोभूयान्मत्तोमातङ्गयूथपः
कृतानुतापौपश्चात्तुप्रार्थयावोविमोचनम् । आवाभ्यांप्रार्थितोभूयोविशापञ्चददौपिता
युवां प्राप्य च दुर्योनिंकियत्कालान्तरेऽपि च । सङ्गमोभवितातत्रपरस्परवधैषिणोः
तस्मिन्नेवहि समये सम्वादो व्याधशङ्खयोः । वैशाखधर्मविषयो दैवाद्वांश्रवणेऽपिच
गमिष्यति क्षणादेव तस्मान्मुक्तिर्भविष्यति । शापान्मुक्तौपूर्वमेवरूपमास्थायपुत्रकौ
मामेव प्राप्य वसतं नान्यथा मे वचो भवेत् । इति शप्तौ च गुरुणादुर्योनिंप्राप्यदुर्मती
प्राप्य दैवात्सङ्गतिञ्च परस्परवधैषिणौ।
सम्वादं युवयोर्दिव्यं शुभं तं शुश्रुवावहे ॥ ६३ ॥
तेनसद्योविमुक्तिश्चक्षणादेवाऽऽवयोरभूत् । इति सर्वं समाख्यायप्रणम्यचमुनीश्वरम्
समामन्त्र्याभ्यनुज्ञातौ जग्मतुःपितुरन्तिकम् । तदेवंसम्प्रदृश्याहमुनिर्व्याधंदयानिधिः
पश्य वैशाखमाहात्म्यश्रवणस्य फलं महत् । मुहूर्तश्रवणादेव तयोर्मुक्तिः करेस्थिता
इति ब्रुवाणं मुनिपुङ्गवं तं दयानिधिं निःस्पृहमग्र्यबुद्धिम् ।
विशुद्धसत्त्वं सुकृतैकपात्रं स न्यस्तशस्त्रःपुनराह व्याधः ॥ ६७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमाससमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे दन्तिलकोहलमुक्तिप्राप्ति-वृत्तान्तवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

व्याधोपाख्यानेतस्यपूर्वजन्मवृत्तकथनम्

व्याध उवाच

भवताऽनुगृहीतोऽस्मि मुने! पापोऽतिदुष्टधीः ।

दयालवो महान्तो हि स्वभावादेव साधवः ॥ १ ॥

क्व व्याधश्चाऽकुलीनोऽहं क्व च वा मतिरीदृशी । केवलं भवतामेवमन्येऽनुग्रहमुत्तमम्

अथ साधो! च शिष्योऽस्मि कृपापात्रोऽस्मि मानद! ।

अनुग्राह्योऽस्मि पुत्रोऽस्मि कृपां कुरु दयानिधे! ॥ ३ ॥

यथा मे न पुनर्भूयादसन्मतिरनर्थदा । सद्भिस्तु सङ्गतेः क्वापि न भूयो दुःखमश्नुते ॥

तस्माद्बोधय मांविप्रसूक्तैस्तैर्वृजिनापहैः । येनचाद्धातरिष्यन्तिसंसाराब्धिमुमुक्षवः

साधूनां समचित्तानांतथाभूतदयावताम् । न च हीनोत्तमःक्वापिनात्मीयोहिपरस्तथा

ऐकाग्र्येणविचिन्त्याथचित्तशुद्धिंचपृच्छति।सर्वदोषयुतोवापिसर्वधर्मोज्झितोपिवा

कृतानुतापश्चयदा यदा पृच्छति वै गुरून्। तदैवोपदिशन्त्यद्धा ज्ञानं संसारमोचकम्

यथागङ्गामनुष्याणांपापनाशस्यभाविनी । तथामन्दसमुद्धारस्वभावाःसाधवःस्मृताः

मा विचारय मां बोद्धुं दयालो भक्तवत्सल! । शुश्रूषत्वान्नतत्वाच्चशुद्धत्वात्तवसङ्गतेः

इति व्याधवचः श्रुत्वा पुनर्विस्मितमानसः ।

साधुसाध्विति सम्भाष्य धर्मानेतानुवाच ह ॥११ ॥

शङ्ख उवाच

व्यविष्णुप्रीतिकरान्दिव्यान्संसाराब्धिविमोचकान् ।

कुरु धर्मांश्च वैशाखे यदि व्याध! शमिच्छसि ॥ १२ ॥

आतपो बाधते घोरो न च्छाया नाऽम्बु चाऽत्र च ।

तस्मात्स्थलान्तरं यावो यत्र च्छाया तु वर्तते ॥ १३ ॥

तत्र गत्वा जलं पीत्वा सुच्छायां च समाश्रितः ।
तत्र ते वर्णयिष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ १४ ॥
विष्णोर्माधवमासस्य यथादृष्टंयथाश्रुतम् । इत्युक्तोमुनिनातेनव्याधःप्राहकृताञ्जलिः
इतो विदूरे सलिलं वर्तते च सरोवरे । कपित्थास्तत्र वैसन्ति फलभारेण पीडिताः
गच्छावस्तत्र सन्तुष्टिर्भविता नाऽत्रसंशयः । व्याधेनैवंसमादिष्टस्तेनसाकंययौमुनिः
कियद्दूरं ततो गत्वा ददर्शाऽग्रेसरोवरम् । वककारण्डवाकीर्णंचक्रवाकोपशोभितम्
हंससारसक्रौञ्चाद्यैः समन्तात्परिशोभितम् । कीचकैश्च सुघोषैश्च कूजितंभ्रमरैरपि
नक्रकच्छपमीनाद्यैर्वगाह्यं सुमनोहरम् । कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीकादिभिर्महत् ॥ २०
शतपत्रैः कोकनदैः समन्तात्परिशोभितम् । पक्षिणाञ्च कलारावैर्मुखरं नयनोत्सवम्
तटे कीचकगुल्मैश्च तथा वृक्षैश्चशोभितम् । वटैःकरञ्जैर्नीपैश्चचिञ्चिणीभिस्तथैवच
निम्वप्लक्षप्रियालैश्च चम्पकैर्बकुलैः शुभैः । पुन्नागैस्तुम्बरैश्चैव कपित्थामलकैरपि ॥
निष्पेपणैश्च जम्बूभिः समन्तात्परिशोभितम् । वन्यमातङ्गसारङ्गवराहमहिषादिभिः
शशैश्च शल्लकैश्चैव गवयैरुपशोभितम् । खड्गनाभिमृगाद्यैश्च व्याघ्रैः सिंहैर्वृकैरपि
खरान्तकैश्च शरभैश्चमरीभिः सुमण्डितम् ।
शाखाशाखान्तरं शीघ्रं प्लवमानैः प्लवङ्गमैः ॥ २६ ॥
मार्जारैश्चैव भल्लूकैर्भीषणं रुरुभिस्तथा । झिल्लीशब्दैश्चक्रेङ्कारैः कीचकानांरवैस्तथा
घोरवायुविनिर्घातदारुभारैः समन्वितम् । एतादृशं सरो दिव्यंव्याधेनैव प्रदर्शितम्
ददर्श मुनिशार्दूलस्तृषया बाधितो भृशम् ।
स्नात्वा मध्याह्नवेलायां सरस्यस्मिन्मनोरमे ॥ २९ ॥
वाससी परिधायाऽथ कृत्वा माध्याह्निकीः क्रियाः ।
देवपूजां ततः कृत्वा भुक्त्वा फलमतन्द्रितः ॥ ३० ॥
व्याधोपनीतं सुस्वादु कपित्थं श्रमहारि च । सुखोपविष्टःपप्रच्छव्याधंधर्मरतं पुनः
किं वक्तव्यं मयाद्यत्वाऽऽद्दौधर्मतत्पर! । धर्माश्चबहवःसन्तिनानामार्गापृथग्विधाः
तत्रवैशाखमासोक्ताः सूक्ष्मा अपिमहार्थदाः । सर्वेषामेवजन्तूनामिहाऽमुत्रफलप्रदाः

यत्प्रष्टव्यं मनसि ते यच्चादौतच्चपृच्छताम्। इत्युक्तोमुनिनातेनव्याधःप्राञ्जलिरब्रवीत्

व्याध उवाच

केनवाकर्मणाचाऽऽसीद्व्याधजन्मतमोमयम्। केनवाचेदृशीबुद्धिःसङ्गतिर्वामहात्मनः

एतच्चान्यत्समाचक्ष्व यदि मां मन्यसे प्रभो! । इत्युक्तः पुनरप्याह शङ्खोनाममहामुनिः

मेघगम्भीरया वाचा स्मयमानमुखाम्बुजः।

शङ्ख उवाच

शाकले नगरे पूर्वं द्विजस्त्वं वेदपारगः ॥ ३७ ॥

स्तम्बोनाममहातेजास्तथाश्रीवत्सगोत्रजः। तवेष्टागणिकाकाचिदासीत्तत्सङ्गदोषतः

त्यक्त्वा नित्यक्रिया नित्यं शूद्रवद्गृहमागतः।

शून्याचारस्य दुष्टस्य परित्यक्तक्रियस्य च ॥ ३९ ॥

ब्राह्मणी च तदा चाऽऽसीद्भार्या कान्तिमती तव।

सा त्वां पर्यचरत्सुभ्रूः सवेश्यं ब्राह्मणाधमम् ॥ ४० ॥

उभयोः क्षालयन्ती व पादांस्त्वत्प्रियकारिणी। उभयोरप्यधः शेते उभयोर्वचने रता

वेश्यया वार्यमाणाऽपि पातिव्रत्यव्रतस्थिता। एवंशुश्रूषयन्त्या हिभर्तारंवेश्ययासह

जगाम सुमहान्कालो दुःखितायामहीतले। अपरस्मिन्दिनेभर्तामाषश्चमूलकान्वितम्

अभक्षयच्छूद्रधर्मान्निष्पावांस्तिलमिश्रितान्।

तदपथ्यमशित्वा तु वमंश्चैव विरेचयन् ॥ ४४ ॥

अपथ्याद्दारुणो रोगो व्यजायत भगन्दरः। स दह्यमानो रोगेण दिवारात्रं तु भूरिशः

यावदास्तेगृहेवित्तंतावद्वेश्याचसंस्थिता। गृहीत्वातस्यसावित्तंपश्चान्नोवासमन्दिरे

अन्यस्य पार्श्वमासाद्यगताघोरासुनिर्घृणा। ततःसदीनवचनोव्याधिबाधासुपीडितः

उक्तवान्स रुदन्भार्यां रुजाव्याकुलमानसः। परिपालयमांदेविवेश्याऽऽसक्तंसुनिष्ठुरम्

न मयोपकृतं किञ्चित्त्वयि सुन्दरि पावनि! । यो भार्यां प्रणतांपापोनानुमन्येतगर्हितः

स षण्ढो भविता भद्रे दश जन्मसु पञ्चसु। दिवारात्रंमहाभागेनिन्दितःसाधुभिर्जनैः

पापयोनिमवाप्स्यामि त्वां साध्वीमवमन्य वै।

अहं क्रोधेन दग्धोऽस्मि तवाऽपमानजेन(तवाऽनारदजेन)वै ॥ ५१॥
एवं ब्रुवाणं भर्तारं कृताञ्जलिपुटाऽब्रवीत् । नदैन्यं भवता कार्यं नव्रीडाकान्तमास्प्रति
न चाऽपि त्वयि मे क्रोधोयेनदग्धोवदस्यथ । पुराकृतानिपापानिदुःखानीहभवन्तिहि
तानि या क्षमते साध्वी पुरुषो वा स उत्तमः । यन्मया पापयापापंकृतं वैपूर्वजन्मनि
तद्भुक्त्या न मे दुःखं न विषादःकथञ्चन । इत्येवमुक्त्वाभर्तारंसाशुश्रूस्तमपालयत्
आनीय जनकाद्वित्तं वन्धुभ्यो वरवर्णिनी । क्षीरोदवासिनं देवंभर्त्तारंसात्वचिन्तयत्
शोधयन्ती दिवारात्रौ पुरीषं मूत्रमेव च । नखेन कर्षती भर्त्तुः कृमीन्कष्ठाच्छनैः शनैः
न सा स्वपिति रात्रौ तु न दिवा वरवर्णिनी । भर्तुर्दुःखेन सन्तप्तादुःखितेदमवोचत
देवाश्च पान्तु भर्तारं पितरो ये च विश्रुताः । कुर्वन्तु रोगहीनं मे भर्तारं गतकल्मषम्
चण्डिकायै प्रदास्यामि रक्तमांससमुद्भवम् । सुष्ठ्वन्नं माहिषोपेतं भर्त्तुरारोग्यहेतवे

मोदकान्कारयिष्यामि विघ्नेशाय महात्मने ।
मन्दवारे करिष्यामि चोपवासान्दशैव तु ॥ ६१ ॥

नोपभुञ्जामि मधुरं नोपभुञ्जामिवै घृतम् । तैलाभ्यङ्गविहीनाऽहं स्थास्येनैवात्रसंशयः
जीवताद्रोगहीनोऽयं भर्त्ता मे शरदां शतम् । एवं साऽव्याहरद्देवी वासरे वासरे गते

तदा चाऽऽगान्मुनिः कश्चिन्महात्मा देवलाह्वयः ।
वैशाखे मासि घर्मार्तः सायाह्ने तस्यवै गृहम् ॥ ६४ ॥
तदा वै भार्यया चोक्तं भिषग्वै गृहमागतः ।
तेन वै रोगहानिः स्यात्तस्याऽऽतिथ्यं करोम्यहम् ॥ ६५ ॥

ज्ञात्वा त्वं धर्मविमुखं भिषग्व्याजेनवञ्चितः । पादावनेजनंकृत्वातज्जलंमूर्ध्निसाक्षिपत
पानकञ्च ददौ तस्मै घर्मार्ताय महात्मने । त्वयाऽनुमोदिता सायं घर्मतापनिवारकम्
स प्रातरुदिते सूर्ये मुनिः प्रायाद्यथाऽऽगतः । अथ चाऽल्पेनकालेनसन्निपातोऽभवत्तव
त्रिकटूव्यां नीयमानायांभर्त्ताङ्गुलिमखण्डयत् । उभयोर्दन्तयोःश्लेषःसहसासमपद्यत
तत्खण्डमङ्गुलेर्वक्त्रेस्थितंभर्तुःसुकोमलम् । खण्डयित्वाङ्गुलिं भर्तापञ्चत्वमगमत्तदा

शय्यायांसुमनोज्ञायांस्मरंस्तांपुंश्चलींशुभाम् । मृतंविज्ञायभर्त्तारंभार्याकान्तिमतीतव

विक्रीय चाऽपि वलयं गृहीत्वा चेन्धनं बहु ।
चक्रे चितिं तेन साध्वी मध्ये कृत्वा पतिं तदा ॥ ७२ ॥
अवगुह्य भुजाभ्यां च पादौ चाश्लिष्य पादयोः । मुखे मुखं विनिक्षिप्य हृदयं हृदये तथा
जघने जघनं देवी ह्यात्मानं सन्निवेश्य च । दाहयामास कल्याणी भर्तृदेहं रुजान्वितम्
आत्मना सह कल्याणी ज्वलिते जातवेदसि ॥ ७४ ॥
विमुच्य देहं सहसा जगाम पतिं समालिङ्ग्य मुरारिलोकम् ।
पानीयदानेन च माधवेऽस्मिन्पादावनेजादपि योगिगम्यम् ॥ ७५ ॥
त्वमन्तकाले गणिकाविचिन्तया देहं त्यक्त्वा मुक्तसमस्तकिल्बिषः ।
जन्मव्याध्यं प्राप्यसे घोररूपं हिंसासक्तः सर्वदोद्वेगकारी ॥ ७६ ॥
दत्ता त्वया पानकस्याऽपि दाने मासेऽनुज्ञा माधवे साधुजाने! ।
व्याधो जातस्तेन जाता सुबुद्धिर्धर्मान्द्रष्टुं सर्वसौख्यैकहेतून् ॥ ७७ ॥
धृतं मूर्ध्ना पादशौचावशिष्टं जलं मुनेः सर्वपापापहारि ।
तेनेयं ते सङ्गतिर्मे वनेऽस्मिन्यया भूयः सम्पदः सन्ततिश्च ॥ ७८ ॥
इत्येतत्सर्वमाख्यातं पूर्वजन्मनि यत्कृतम् । कर्म पुण्यं पापकं च दृष्टं दिव्येन चक्षुषा
गोप्यं वा ते प्रवक्ष्यामि यद्भवाञ्छ्रोतुमिच्छति ।
जाता ते चित्तशुद्धिर्वै स्वस्ति भूयान्महामते! ॥ ८० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे व्याधोपाख्याने व्याधस्य पूर्वजन्मकथनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

शङ्खव्याधसम्वादेपरब्रह्मनिरूपणपूर्वकंवायुशापकथनम्

व्याध उवाच

विष्णुमुद्दिश्य कर्तव्या धर्माभागवताःशुभाः । तत्राऽपिमाधवीयाश्चइत्युक्तंतुत्वयापुरा

स विष्णुः कीदृशो ब्रह्मन्कि वा तस्य हि लक्षणम् ।

किं मानं तस्य सद्भावैः कैर्ज्ञेयो भगवान्विभुः ॥ २ ॥

कीदृशावैष्णवा धर्माः केनाऽसौ प्रीयते हरिः ।

एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन्! किङ्कराय महामते! ॥ ३ ॥

इति पृष्टस्तु व्याधेन पुनः प्राह स वै द्विजः । प्रणम्य जगतामीशंनारायणमनामयम्

शङ्ख उवाच

शृणु व्याध! प्रवक्ष्यामि विष्णुरूपमकल्मषम् ।

यदचिन्त्यं विरिञ्च्याद्यैर्मुनिभिर्भावितात्मभिः ॥ ५ ॥

पूर्णशक्तिःपूर्णगुणो निर्दिष्टःसकलेश्वरः । निर्गुणोनिष्कलोऽनन्तःसच्चिदानन्दविग्रहः

यदेतदखिलं विश्वं चराचरमनीदृशम् । साधिशंसाऽऽश्रयं यच्च यद्वशेनियतंस्थितम्

अथ ते लक्षणं वच्मिब्रह्मणःपरमात्मनः । उत्पत्तिस्थितिसंहाराह्यावृत्तिर्नियमस्तथा

प्रकाशोवन्धमोक्षौ च वृत्तिर्यस्माद्भवन्त्यमी ।

स विष्णुर्ब्रह्मसञ्ज्ञोऽसौ कवीनां सम्मतो विभुः ॥ ६ ॥

साक्षाद्ब्रह्मेति तं प्राहुः पश्चाद्ब्रह्मादिकानपि । ब्रह्मशब्दं सोपपदंब्रह्मादिषुविदोविदुः

नान्येषां ब्रह्मता क्वाऽपि तच्छक्त्येकांशभागिनाम् ।

तदेतच्छास्त्रगम्यं हि जन्माद्यस्य महाविभोः ॥ ११ ॥

शास्त्रं चवेदाः स्मृतयः पुराणं वै तदात्मकम् । इतिहासः पञ्चरात्रं भारतं चमहामते!

एतैरेवमहाविष्णुर्ज्ञेयो नान्यैः कथञ्चन । नावेदविदमुं विष्णुं मनुतेच नरः कचित् ॥

नेन्द्रियैर्नानुमानैश्च न तर्कैः शक्यते विभुम् । ज्ञातुं नारायणं देवं वेदवेद्यं सनातनम् ॥
अस्यैव जन्मकर्माणि गुणाञ्ज्ञात्वायथामति । मुच्यन्ते जीवसंघाश्चसदातद्वशवर्तिनः
क्रमाद्विष्णोश्च माहात्म्यं यथा सातिशयं भवेत् ।
एकैकस्मिन्स्थिता शक्तिर्देवर्षिपितृमातृके ॥ १६ ॥
प्रत्यक्षेणाऽऽगमेनापि तथैवाऽनुमयाऽपि च । आदौनरोत्तमंविद्याद्बलेज्ञानेसुखेतथा
तस्माद्भूतं शतगुणं विद्याज्ज्ञानादिभिर्वृतम् ।
भूतान्मनुष्यगन्धर्वान्विद्याच्छतगुणाधिकान् ॥ १८ ॥
तत्त्वाभिमानिनो देवांस्तेभ्यो विद्याच्छताधिकान् ।
तत्त्वाभिमानिदेवेभ्यः सप्तैव ऋषयो वराः ॥ १९ ॥
सप्तर्षिभ्यो वरो ह्यग्निरग्नेःसूर्यादयस्तथा । सूर्याद्गुरुर्गुरोःप्राणःप्राणादिन्द्रोमहाबलः
इन्द्राच्च गिरिजादेवीदेव्याःशम्भुर्जगद्गुरुः । शम्भोर्बुद्धिर्महादेवीबुद्धेःप्राणोबलाधिकः
नप्राणात्परमंकिञ्चित्प्राणेसर्वंप्रतिष्ठितम् । प्राणाज्जातमिदंविश्वंप्राणात्मकमिदंजगत्
प्राणे प्रोतमिदं सर्वं प्राणादेव हि चेष्टते । सर्वाधारमिमं प्राहुः सूत्रंनीलाम्बुदप्रभम् ॥
लक्ष्मीकटाक्षमात्रेण प्राणस्याऽस्य स्थितिर्भवेत् ।
सा लक्ष्मीर्देवदेवस्य कृपा लेशैकभाजिनी ॥ २४ ॥
न विष्णोः परमं किञ्चिन्न समो वा कथञ्चन ।

व्याध उवाच

कथं जीवेष्वयं प्राणः सूत्रनामाऽधिकोऽभवत् ॥ २५ ॥
निर्णयो वा कथंह्यस्यप्राणाधिक्यंकथंविभो! । एतदाचक्ष्वमेब्रह्मन्कथंप्राणाद्विभुःपरः

शङ्ख उवाच

शृणुव्याधप्रवक्ष्यामियत्पृष्टोनिर्णयस्त्वया । प्राणधिक्यंसमुद्दिश्य जीवैश्चसकलैरपि
पुरा नारायणो देवः पद्मसृष्टौ सनातनः । सृष्ट्वाब्रह्मादिकान्देवानिदं प्राह जनार्दनः ॥
साम्राज्येऽहं स्थापयेयं ब्रह्माणं वः पतिं प्रभुम् ।
यो युष्मास्वधिको देवो यौवराज्ये सुरेश्वराः! ॥ २६ ॥

तंस्थापयतशीलाढ्यंशौर्यौदार्यगुणान्वितम् । इत्युक्त्वाविभुनादेवाःसर्वेशक्रपुरोगमाः
एवं विवदिरेऽन्योन्यमहं भूयामहं त्विति । सर्वेविवदमानाश्च सूर्यं केचित्परं विदुः
शक्रं केचित्परं कामं केचित्तूष्णींतु तस्थिरे । ते निर्णयमपश्यन्तःप्रष्टुंनारायणंययुः
नमस्कृत्य पुनः प्राहुःसर्वेप्राञ्जलयोऽमराः । विचारितंमहाविष्णो! सर्वैरस्माभिरञ्जसा
अस्मासु देवमधिकं नैव विद्मः कथञ्चन । त्वमेव निर्णयं ब्रूहि देवाः संशयिनः खलु
इति पृष्टोऽमरैः सर्वैःप्रहसन्निदमब्रवीत् । देहादस्माच्चवैराजाद्यस्मिन्निष्क्रामतिह्ययम्
पतिष्यति प्रविष्टेतु यस्मिन्वै ह्युत्थितो भवेत् । सदेवोह्यधिकोनूनंनापरस्तुकथञ्चन
इत्युक्तास्तेततःसर्वेतथास्त्वितिवचोऽब्रुवन् । निश्चक्रामजयन्ताह्वःपादात्पूर्वंसुरेश्वरः
तदापङ्गुममुं प्राहुर्नदेहः पतितस्तदा । शृण्वन्पिबन्वदञ्जिघ्रन्पश्यन्नास्तेऽचलन्नपि ॥३८
पश्चाद्गुह्याद्विनिष्क्रान्तो दक्षोनाम प्रजापतिः । तदा षण्ढममुं प्राहुर्नदेहः पतितस्तदा
शृण्वन्पिबन्वदञ्जिघ्रन्पश्यन्नास्तेऽचलन्नपि।पश्चाद्धस्ताद्विनिष्क्रान्तइन्द्रःसर्वामरेश्वरः
हस्तहीनममुंप्राहुर्न देहः पतितस्तदा । शृण्वन्पिबन्वदञ्जिघ्रन्पश्यन्नास्तेऽचलन्नपि॥

लोचनाभ्यां विनिष्क्रान्तः सूर्यस्तेजस्विनां वरः ।
तदा काणममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ४२ ॥
शृण्वन्पिबन्वदञ्जिघ्रन्पश्यन्नास्तेऽचलन्नपि ।
घ्राणात्पश्चाद्विनिष्क्रान्तौ नासत्यौ विश्वभेषजौ ।
अजिघ्राणममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ४३ ॥

शृण्वन्पिबन्वदन्नैवाजिघ्रन्नास्तेऽचलन्नपि ।श्रोत्राद्दिशोविनिष्क्रान्तानदेहःपतितस्तदा

तदाऽमुं बधिरं प्राहुर्मृतं नैव कथञ्चन ॥ ४४ ॥

पिबन्वदन्नपि तदा ह्यशृण्वन्नचलन्नपि । वरुणो रसनायास्तु विनिष्क्रान्तस्ततःपरम्

तदाऽरसंज्ञमेवाऽऽहुर्नदेहः पतितस्तदा ॥ ४५ ॥
जीवंश्चलन्वदन्नास्ते तथा जानञ्छ्वसन्नपि ।
ततो वाचो विनिष्क्रान्तो वह्निर्वागीश्वरो विभुः ॥ ४६ ॥
तदा मूकममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ।

जीवंश्चलन्नदन्नास्ते तथा जानञ्छ्वसन्नपि ॥ ४७ ॥

पश्चाद्बुद्धो विनिष्क्रान्तो मत्तसोबोधनात्मकः । तदाजडममुंप्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥

जीवंश्चलन्नदन्नास्ते तथा जानञ्छ्वसन्नपि ।

पश्चात्प्राणो विनिष्क्रान्तो मृतमेनं तदा विदुः

पुनरेवं तदा प्राहुर्देवा विस्मितमानसाः ॥ ४९ ॥

देहमुत्थापयेद्यस्तु पुनरेवं व्यवस्थितः । स एव ह्यधिकोऽस्मासुयुवराजाभविष्यति

इत्येवंतुप्रतिश्रुत्यविविशुश्चयथाक्रमम् । जयन्तःप्राविशत्पादौनोत्तस्थौतत्कलेवरम्

गुह्यञ्च प्राविशद्दक्षो नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ।

इन्द्रो हस्तौ विवेशाऽथ नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ ५२ ॥

चक्षुः सूर्यः प्रविष्टोऽभून्नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ।

दिशः श्रोत्रे प्रविविशुर्नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥५३ ॥

वरुणः प्राविशज्जिह्वां नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ।

नासां विविशतुर्दस्रौ नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ ५४ ॥

वह्निश्चप्राविशद्वाचं नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् । मनश्च प्राविशद्रुद्रोनोत्तस्थौतत्कलेवरम्

पश्चात्प्राणो विवेशाऽसौ तदोत्तस्थौ कलेवरम् ।

तदा देवा विनिश्चित्य प्राणं देवाधिकं विभुम् ॥ ५६ ॥

बले ज्ञाने च धैर्ये च वैराग्ये प्राणनेऽपि च । ततोऽभिषेचयाञ्चक्रुर्यौवराज्येमहाप्रभुम्

उत्कृष्टस्थितिहेतुत्वादुक्थमेकंतदाजगुः । तस्मात्प्राणात्मकंविश्वंसर्वंस्थावरजङ्गमम्

अंशैः पूर्णैर्बलाद्यैश्च पूर्णोऽयं जगताम्पतिः ॥ ५९ ॥

न प्राणहीनं जगदस्ति किञ्चित्प्राणेन हीनं न च वै समेधते ।

न प्राणहीनं स्थितमत्र किञ्चित्प्राणेन हीनं न च किञ्चिदस्ति

तस्मात्प्राणः सर्वजीवाधिकोऽभूद् बलाधिकः सर्वजीवान्तरात्मा ॥ ६०॥

प्राणात्कोऽपि ह्यधिको वा समो वा शास्त्रे दृष्टः श्रुतपूर्वो न चाऽऽस्ते ।

तत्तत्कार्यानुगः प्राणो ह्येको देवोह्यनेकधा । तस्मात्प्राणं वरंप्राहुःप्राणोपासनतत्परः

लीलयैव जगत्स्रष्टुं हन्तुं पालयितुं प्रभुः ॥ ६२ ॥
शेषाऽहिशिवशक्राद्याश्चेतनाश्च जडा अपि । वासुदेवाद्भृतेकोऽपि नैनम्परिभविष्यति
सर्वदेवात्मकः प्राणः सर्वदेवमयोविभुः । वासुदेवाऽनुगोनित्यंतथाविष्णुवशस्थितः
वासुदेवप्रतीपं तु न शृणोति न पश्यति । देवाः प्रतीपं कुर्वन्ति रुद्रेन्द्राद्याः सुरेश्वराः
प्रतीपं क्वाऽपि कुरुते नप्राणःसर्वगोचरः । तस्मात्प्राणोमहाविष्णोर्बलमाहुर्मनीषिणः
एवं ज्ञात्वा महाविष्णोर्माहात्म्यंलक्षणंतथा । पूर्ववन्धानुगंलिङ्गंजीर्णांत्वचमिवोरगः
विसृज्य परमं याति नारायणमनामयम् । श्रुत्वा शङ्खोदितंवाक्यंपुनर्व्याधःप्रसन्नधीः
प्रश्रयाऽवनतोभूत्वापुनःपप्रच्छतंमुनिम् । ब्रह्मन्महानुभावस्यप्राणस्याऽस्यजगद्गुरोः
न ख्यातो महिमा लोकेकथं सर्वेश्वरस्य वै । देवानाञ्चमुनीनाञ्च भूपानाञ्चमहात्मनाम्
महिमा श्रूयते लोके पुराणेषु सहस्रशः । एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्छ्रोतुं कौतूहलं हि मे॥

शङ्ख उवाच

पुरा प्राणो हरिं देवं नारायमनामयम् । अश्वमेधैर्यष्टुकामो गङ्गातीरं ययौ मुदा॥
हलैश्चकार भूशुद्धिं नानामुनिगणैर्युतः । अन्तर्वल्मीकलीनस्तु कण्वो नामसमाधिगः
हलोत्कृष्टो विनिष्क्रान्तक्रोधादिदमुवाच ह । दृष्ट्वा पुरःस्थितंप्राणंशशापहमहाविभुम्
अद्यप्रभृति न ख्यातिं महिमा भुवनत्रये । तव प्राप्नोति देवेश! भूलोके तु विशेषतः
प्रख्यातास्ते भविष्यन्तिह्यवताराजगत्त्रये । इत्युक्तोमुनिनातेनवायुःक्रोधात्तमब्रवीत्
विनाऽपराधं शप्तोऽस्मि तितिक्षुं मां निरागसम् ।
तस्मात्कण्व! महाबाहो गुरुद्रोही भवाऽऽशु च ॥ ७७ ॥
लोकेनिन्दितवृत्तिश्चभवेत्याहसदागतिःततःप्रभृतिलोकेऽस्मिन्प्राणस्याऽस्यमहाप्रभो!
नख्यातोमहिमालोकेभूलोकेतुविशेषतः । शापात्कण्वोगुरुंजग्ध्वासूर्यशिष्योऽभवत्तदा
इत्येतत्कथितं सर्वं यत्पृष्टं तुत्वयाऽधुना । यच्छ्रोतव्यमितोव्याधपृच्छमांमाविचारय

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे वायुशापकथनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

श्रीभागवतधर्मकथनम्

व्याध उवाच

किं जीवा विभुना सृष्टाः कोटिशोऽथ सहस्रशः ।
दृश्यन्ते भिन्नकर्माणो नानामार्गा सनातनाः ॥ १ ॥

नैकस्वभावा एतेहि कुत एव महामते! । सर्वं तत्पृच्छते मह्यं विस्तरात्तत्त्वतो वद

शङ्ख उवाच

त्रिविधाजीवसङ्घा हि रजःसत्त्वतमोगुणाः । राजसा राजसंकर्मतामसास्तामसंतथा
सात्त्विकाः सात्त्विकंकर्मकुर्वन्त्येतेयथाक्रमम् । क्वचिचगुणवैषम्यात्प्राप्नुवन्तिनराइमे
तेनैवोच्चावचं कर्म कुर्वन्तः फलभागिनः । क्वचित्सुखं क्वचिद्दुःखंक्व चिच्चोभयमेवच
गुणानामेव वैषम्यात्प्राप्नुवन्ति नराइमे । प्रकृतिस्था इमे जीवाबद्धाएतैर्गुणैस्त्रिभिः
गुणकर्माऽनुरूपेण कर्मणां व्यत्ययःफलम् । गुणानुगुण्यंभूयस्तेप्रकृतियान्त्यमीजनाः
प्रकृतिस्थाःप्राकृतिकागुणकर्माऽभिमूर्च्छिताःगतिंप्राकृतिकींयान्तिव्यत्ययःप्रकृतेर्नहि
तामसा दुःखवहुलाः सदा तामसवृत्तयः । निर्दया निष्ठुरा लोके सदाद्वेषैकजीविनः

राक्षसाद्याः पिशाचान्तास्तामसीं यान्ति वै गतिम् ।
राजसा मिश्रमतयः कर्तारः पुण्यपापयोः ॥ १० ॥
पुण्यात्स्वर्गं प्राप्नुवन्ति क्वचित्पापाच्च यातनाम् ।
अत एते मन्दभाग्या आवर्तन्ते पुनः पुनः ॥ ११ ॥
धर्मशीला दयावन्तः श्रद्धावन्तोऽनसूयकाः ।
सात्त्विकाः सात्त्विकीं वृत्तिमनुतिष्ठन्त आसते ॥ १२ ॥

तेचोर्ध्वंयान्तिविमलागुणापायेमहौजसः।विभिन्नकर्मणाञ्चाऽतःपृथग्भावाःपृथग्विधाः
गुणकर्मानुरूपेण तेषां विष्णुर्महाप्रभुः । कर्माणि कारयत्यद्धास्वस्वरूपाप्तये विभुः

विष्णोर्वैषम्यनैर्घृण्ये पूर्णकामस्य वै नहि । सृष्टिंस्थितिंहृतिंश्चैवसमामेवकरोत्ययम्
स्वगुणादेव ते सर्वेकर्मणः फलभागिनः । आरामोप्तान्यथा सर्वान्समं वर्षयतिद्रुमान्
एककुल्याजलाद्यङ्ग द्रुमाश्च प्रकृतिं गताः । नारामोप्तरि वैषम्यं नैर्घृण्यं वा कथञ्चन
व्याध उवाच
जनानां पूर्णभोगानां कदामुक्तिर्भवेन्मुने! । सृष्टिकालेऽथवाह्यन्तकालेवास्थापनस्यच
कच्चिच्चसृष्टिकालस्य संहारस्याऽपि वै स्थिते । एतद्विस्तार्यमेब्रह्मन्भगवच्चेष्टितंवद
शङ्ख उवाच
चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते । रात्रिश्च तावती तस्य ह्यहोरात्रं दिनं भवेत्
दशपञ्चदिनान्याहुः पक्षं मासो द्वयात्मकः । मासद्वयमृतुं प्राहुरयनं च ऋतुत्रयम्॥
अयने द्वेवत्सरःस्यात्ताद्दृक्च्छतसमायदि । गच्छन्तिब्रह्मणोह्यस्यब्रह्मकल्पं तदाविदुः
तावान्हि प्रलयः काल इति वेदविदांमतम् । प्रलयस्त्रिविधःप्रोक्तोमानवोमानवात्यये
दैनन्दिनोद्वितीयोहि ब्रह्मणो दिवसात्यये । ब्रह्मणोऽथ लये पश्चाद्ब्राह्मश्चप्रलयंविदुः
ब्रह्मणस्तु मुहूर्ते तु तु मनोस्तु प्रलयं विदुः । प्रलयेषु व्यतीतेषु चतुर्दशसु वै क्रमात्
दैनन्दिनलयं प्राहुः प्रलयानां स्थितिम्पुनः । त्रयाणामेव लोकानांलयोमन्वन्तरेभवेत्
चेतनानांःतदा नाशोन लोकानां क्षयो भवेत् । उदकैरेव पूर्तिश्च यथा पूर्वं तथा पुनः
मन्वन्तरान्ते भूयाच्चु चेतनानां पुनर्भवः । दैनन्दिनलये व्याध सर्वस्यापि क्षयोभवेत्

सत्यलोकं विना सर्वे लोका नश्यन्ति साधिपाः ।
सचेतनाः साधिभूताः प्रसुप्ते चतुरानने ॥ २९ ॥
तत्त्वाभिमानिनो देवाः केचिच्च मुनयस्तथा ।
शिष्यन्ति सुप्ताः सर्वेऽपि सत्यलोकव्यवस्थिताः ॥ ३० ॥

तिष्ठन्ति सुप्तिमापन्ना यावत्कल्पमतीन्द्रियाः । पुनर्निशात्यये ब्रह्मायथापूर्वमकल्पयत्

ऋषीन्देवान्पितॄंल्लोकान्धर्मान्वर्णान्पृथक्पृथक् ।
पुनर्दशावतारा हि विष्णोर्देवस्यचक्रिणः ॥ ३२ ॥

नियमेन भवन्त्येते तथान्येऽपि च भूरिशः । देवता ऋषयश्चैव आकल्पञ्च गिराम्पतेः

पुनरेवाऽभिवर्तन्ते ब्रह्मणा सह मुक्तिगाः। भूपाश्च साधवो ये त्वसिद्धिप्राप्ताःपरंगताः

तेनैव चाभिवर्तन्ते सत्यलोकव्यवस्थिताः।

तद्राशिगाः पुनर्यान्ति तन्नाम्नाश्रुतिसंस्थिताः॥ ३५॥

तत्तद्गोत्रेषु जायन्ते तत्तत्कर्मरताः सदा।

दैत्यानामपि सर्वेषां यदा कलियुगात्ययः॥ ३६॥

कलिनासहगच्छन्तिस्वांगतिंनिरयालयाः। तेषाञ्चराशिसंस्थायेतन्नामानोऽपरेऽपिच

जायन्ते कर्मणा स्वेन तत्तत्कर्मविधायकाः। सृष्टिकालं प्रवक्ष्यामिमुक्तिकालंतथैवच

ब्रह्मादीनाञ्च देवानां समाहितमना भव। निमेषो देवदेवस्य ब्रह्मकल्पसमो मतः॥

तस्याऽवसाने चोन्मेषो देवदेवशिखामणेः।

निमेषाऽन्ते भवेदिच्छा स्रष्टुं लोकांश्च कुक्षिगान्॥ ४०॥

सोऽपश्यत्स्वोदरे सर्वाञ्जीवसङ्घाननेकशः।

सृज्यान्मुक्तानमून्सर्वाँल्लिङ्गभङ्गमुपागतान्॥ ४१॥

सुप्ताः स्मृतिस्थाः सर्वेऽपितमोगाअपिसर्वशः। पूर्वकल्पेलिङ्गभङ्गमापन्नाविधिपूर्वकाः

मानवान्ताजीवकोशाजीवन्मुक्ताश्चमुक्तिगाः। पूर्वकल्पेविमुक्ताश्चब्रह्माद्यामानवान्तकाः

ध्यानसंस्था हि तिष्ठन्ति विष्णुकुक्षिगताअपि।

उन्मेषस्याऽऽदिमे भागे चतुर्व्यूहात्मको विभुः॥ ४४॥

भूत्वा तु पूर्वसाड्गुण्याद्वासुदेवाच्च व्यूहगात्।

दत्त्वा तु ब्रह्मणो मुक्तिं सायुज्याख्यां महाविभुः॥ ४५॥

दत्त्वा तदनु सायुज्यं तत्त्वज्ञानं महात्मनाम्।

सारूप्यं चैव केषाञ्चित्सामीप्यञ्च तथा विभुः॥ ४६॥

सालोक्यञ्च तथाऽन्येषां दत्त्वा देवो जनार्दनः।

अनिरुद्धवशे सर्वान्स्थिताँल्लोकानलोकयत्॥ ४७॥

प्रद्युम्नस्य वशे दत्वा सृष्टिं कर्तुं मनो दधे। मायां जायांकृतिशान्तिमुपयेमेस्वयंहरिः

चतुर्व्यूहैः पूर्णगुणैर्वासुदेवादिकैः क्रमात्।

ताभिर्युक्तो महाविष्णुश्चतुर्व्यूहात्मको विभुः ॥ ४६ ॥
भिन्नकर्माशयं लोकंपूर्णकामोव्यजीजनत् । उन्मेषान्तेपुनर्विष्णुर्योगमायांसमाश्रितः
सङ्कर्षणाद्व्यूहगाच्च हरत्येतच्चराचरम् । तदेतत्सर्वमाख्यातं कार्यं चिन्त्यं महात्मकः
यदचिन्त्यं दुर्विभाव्यं ब्रह्माद्यैरपि योगिभिः ।

व्याध उवाच

के वा भागवता धर्माः कैर्विष्णुश्च प्रसीदति ॥ ५२ ॥
तानहं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतं वद नो मुने! ।

शङ्ख उवाच

येन चित्तविशुद्धिः स्याद्यः सतामुपकारकः ॥ ५३ ॥
तं विद्धि सात्त्विकं धर्मं यश्च केनाऽप्यनिन्दितः ।
श्रुतिस्मृत्युदितो यस्तु यदि निष्कामिको भवेत् ॥ ५४ ॥
यस्तुलोकाऽविरुद्धोऽपितंधर्मंसात्त्विकंविदुः । चतुर्विधाहितेधर्मावर्णाश्रमविभागतः
नित्यनैमित्तिकाः काम्या इति ते च त्रिधामताः ।
ते सर्वे स्वस्वधर्माश्च यदा विष्णोः समर्पिताः ॥ ५६ ॥
तदा वै सात्त्विकाज्ञेया धर्माभागवताःशुभाः । देवातान्तरदैवत्याःसकामाराजसामताः
यक्षरक्षःपिशाचादिदैवत्या लोकनिष्ठुराः ।
हिंसात्मका निन्दिताश्च धर्मास्ते तामसाः स्मृताः ॥ ५८ ॥
सत्त्वस्थाः सात्त्विकान्धर्मान्विष्णुप्रीतिकराञ्छुभान् ।
कुर्वन्त्यनीहया नित्यं ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ५६ ॥
येषांचित्तंसदाविष्णौजिह्वायांनामवैविभोः । पादौचहृदयेयेषांते वैभागवताः स्मृताः
सदाचाररता ये च सर्वेषामुपकारकाः । सदैव मंमताहीनास्ते वै भागवताः स्मृताः
येषाञ्च शास्त्रेविश्वासो गुरौसाधुषुकर्मसु । येविष्णुभक्ताःसततन्तेवैभागवताःस्मृताः
येषां हि सस्मता धर्माः शाश्वता विष्णुवल्लभाः ।
श्रुतिस्मृत्युदिता ये च ते धर्माः शाश्वता मताः ॥ ६२ ॥

अटनंसर्वदेशेषु वीक्षणं सर्वकर्मणाम् । श्रवणं सर्वधर्माणां विषयाऽऽसक्तचेतसाम्
अकिञ्चित्करमेतेषां षण्ढस्येव वरस्त्रियः । साधूनां दर्शनेनैव मनोद्रवति वै सताम्
चन्द्रस्य कौमुदीसङ्गाच्चन्द्रकान्तशिलायथा । क्वचित्सच्छास्त्रश्रवणाद्विषयैरहितंमनः
तिष्ठत्येव सतां पुंसांतेजोरूपंह्यकल्मषम् । पद्मबन्धोःप्रभासङ्गात्सूर्यकान्तशिलायथा
निष्कामैर्हि जनैर्यैस्तु श्रद्धया समुपाश्रितः । योविष्णुवल्लभोनित्यंधर्मोभागवतोमतः
तैर्दृष्टा वहवो धर्माइहाऽमुत्रफलप्रदाः । विष्णुप्रीतिकराःसूक्ष्माःसर्वदुःखविमोचकाः
दध्नःसारमिवोद्धृत्य धर्मंवैशाखसम्भवम् । रमायैभगवानाहक्षीराब्धौहितकाम्यया
मार्गच्छायाविनिर्माणं प्रपादानञ्च वै तथा । व्यजनैर्व्यंजनञ्चैव प्रश्रयाणां समर्पणम्

छत्रस्योपानहोर्दानं दानं कर्पूरगन्धयोः ।
वापीकूपतडागानां निर्माणं विभवे सति ॥ ७२ ॥

सायाह्ने पानकस्यापि दानं तु कुसुमस्य च । ताम्बूलदानं पापघ्नंगोरसानांविशेषतः
लवणान्विततक्रस्य दानं श्रान्ताय वै पथि । अभ्यङ्गकरणं चैव द्विजपादावनेजनम्
कटकम्बलपर्यङ्कदानं गोदानमेव च । मधुयुक्ततिलानां च दानं पापविनाशनम् ॥
सायाह्ने चेक्षुदण्डानां दानमुर्वारुकस्य च । रसायनप्रदानञ्च पितृनिर्वापणं तथा ॥७६

एते धर्मा विशिष्योक्ता मासेऽस्मिन्माधवप्रिये ।
प्रातः सूर्योदये स्नात्वा शृण्वन्द्विजकुलेरितम् ॥ ७७ ॥

नित्यकर्माणि कृत्वैवंमधुसूदनमर्चयेत् । कथां माधवमासीयां शृणुयाच्च समाहितः
तैलाभ्यङ्गंवर्ज्जयेच्चकांस्यपात्रे तुभोजनम् । निषिद्धभक्षणञ्चैववृथाऽऽलापन्तुवर्जयेत्
अलाम्बुं गृञ्जनञ्चैव लशुनन्तिलपिष्टकम् । आरनालं भिस्सटञ्चपूतकोशातकीं तथा
उपोदकीं कलिङ्गञ्च शिग्रुशाकञ्च वर्जयेत् । निष्पावानिकुलित्थानिमसूराणि वर्जयेत्
वृन्ताकानि कलिङ्गानिकोद्रवाणिच वर्जयेत । तन्दुलीयकशाकञ्चकौसुम्भंमूलकंतथा

औदुम्बरं बिल्वफलं तथा श्लेष्मातकीफलम् ।
सर्वथा वर्जयेद्विद्वान्मासेऽस्मिन्माधवप्रिये ॥ ८३ ॥

एतेष्वन्यतमंभुक्त्वासचण्डालोभवेद्ध्रुवम् । तिर्यग्योनिशतंयातिनात्रकार्याविचारणा

ताभिर्युक्तो महाविष्णुश्चतुर्व्यूहात्मको विभुः ॥ ४६ ॥
भिन्नकर्माशयं लोकंपूर्णकामोव्यजीजनत् । उन्मेषान्तेपुनर्विष्णुर्योगमायांसमाश्रित
सङ्कर्षणाद्व्रयूहगाच्च हरत्येतच्चराचरम् । तदेतत्सर्वमाख्यातं कार्यं चिन्त्यं महात्मन
यदचिन्त्यं दुर्विभाव्यं ब्रह्माद्यैरपि योगिभिः ।

व्याध उवाच

के वा भागवता धर्माः कैर्विष्णुश्च प्रसीदति ॥ ५२ ॥
तानहं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतं वद नो मुने! ।

शङ्ख उवाच

येन चित्तविशुद्धिः स्याद्यः सतामुपकारकः ॥ ५३ ॥
तं विद्धि सात्त्विकं धर्मं यश्च केनाऽप्यनिन्दितः ।
श्रुतिस्मृत्युदितो यस्तु यदि निष्कामिको भवेत् ॥ ५४ ॥
यस्तुलोकाऽविरुद्धोऽपितंधर्मंसात्त्विकंविदुः । चतुर्विधाहितेधर्मावर्णाश्रमविभागत
नित्यनैमित्तिकाः काम्या इति ते च त्रिधामताः ।
ते सर्वे स्वस्वधर्माश्च यदा विष्णोः समर्पिताः ॥ ५६ ॥
तदा वै सात्त्विकाज्ञेया धर्माभागवताःशुभाः । देवातान्तरदैवत्याःसकामाराजसामताः
यक्षरक्षःपिशाचादिदैवत्या लोकनिष्ठुराः ।
हिंसात्मका निन्दिताश्च धर्मास्ते तामसाः स्मृताः ॥ ५८ ॥
सत्त्वस्थाः सात्त्विकान्धर्मान्विष्णुप्रीतिकराञ्छुभान् ।
कुर्वन्त्यनीहया नित्यं ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ५९ ॥
येषांचित्तंसदाविष्णौजिह्वायांनामवैविभोः । पादौचहृदयेयेषांते वैभागवताः स्मृताः
सदाचाररता ये च सर्वेषामुपकारकाः । सदैव ममताहीनास्ते वै भागवताः स्मृताः
येषाञ्च शास्त्रेविश्वासो गुरौसाधुषुकर्मसु । येविष्णुभक्ताःसततन्तेवैभागवताःस्मृताः
येषां हि सम्मता धर्माः शाश्वता विष्णुवल्लभाः ।
श्रुतिस्मृत्युदिता ये च ते धर्माः शाश्वता मताः ॥ ६३ ॥

अटनंसर्वदेशेषु वीक्षणं सर्वकर्मणाम्। श्रवणं सर्वधर्माणां विषयाऽऽसक्तचेतसाम्
अकिञ्चित्करमेतेषां षण्ढस्येव वरस्त्रियः। साधूनां दर्शनेनैव मनोद्रवति वै सताम्
चन्द्रस्य कौमुदीसङ्गाच्चन्द्रकान्तशिलायथा। क्वचित्सच्छास्त्रश्रवणाद्विषयैरहितंमनः
तिष्ठत्येव सतां पुंसांतेजोरूपंह्यकल्मषम्। पद्मबन्धोःप्रभासङ्गात्सूर्यकान्तशिलायथा
निष्कामैर्हि जनैर्यस्तु श्रद्धया समुपाश्रितः। योविष्णुवल्लभोनित्यंधर्मोभागवतोमतः
तैर्दृष्टा वहवो धर्माइहाऽमुत्रफलप्रदाः। विष्णुप्रीतिकराःसूक्ष्माःसर्वदुःखविमोचकाः
दध्नःसारमिवोद्धृत्य धर्मंवैशाखसम्भवम्। रमायैभगवानाहक्षीराब्धौहितकाम्यया
मार्गच्छायाविनिर्माणं प्रपादानञ्च वै तथा। व्यजनैर्व्यजनञ्चैव प्रश्रयाणां समर्पणम्

छत्रस्योपानहोर्दानं दानं कर्पूरगन्धयोः।
वापीकूपतडागानां निर्माणं विभवे सति ॥ ७२ ॥

सायाह्ने पानकस्यापि दानं तु कुसुमस्य च। ताम्बूलदानं पापघ्नंगोरसानांविशेषतः
लवणान्विततक्रस्य दानं श्रान्ताय वै पथि। अभ्यङ्गकरणं चैव द्विजपादावनेजनम्
कटकम्बलपर्यङ्कदानं गोदानमेव च। मधुयुक्ततिलानां च दानं पापविनाशनम् ॥
सायाह्ने चेक्षुदण्डानां दानमुर्वारुकस्य च। रसायनप्रदानञ्च पितृनिर्वापणं तथा ॥७६

एते धर्मा विशिष्योक्ता मासेऽस्मिन्माधवप्रिये।
प्रातः सूर्योदये स्नात्वा शृण्वन्द्विजकुलेरितम् ॥ ७७ ॥

नित्यकर्माणि कृत्वैवंमधुसूदनमर्चयेत्। कथां माधवमासीयां शृणुयाच्च समाहितः
तैलाभ्यङ्गंवर्ज्जयेच्चकांस्यपात्रे तुभोजनम्। निषिद्धभक्षणञ्चैववृथाऽऽलापन्तुवर्जयेत्
अलाम्बुं गृञ्जनञ्चैव लशुनन्तिलपिष्टकम्। आरनालं भिस्सटञ्चवृतकोशातकीं तथा
उपोदकीं कलिङ्गञ्च शिग्रुशाकञ्च वर्जयेत्। निष्पावानिकुलित्थानिमसूराणि वर्जयेत्
वृन्ताकानि कलिङ्गानिकोद्रवाणिच वर्जयेत्। तन्दुलीयकशाकञ्चकौसुम्भंमूलकंतथा

औदुम्बरं विल्वफलं तथा श्लेष्मातकीफलम्।
सर्वथा वर्जयेद्विद्वान्मासेऽस्मिन्माधवप्रिये ॥ ८२ ॥

एतेष्वन्यतमंमुक्त्वाचण्डालोभवेद्ध्रुवम्। तिर्यग्योनिशतंयातिनात्रकार्याविचारणा

एवं मासव्रतं कुर्यात्प्रीतये मधुघातिनः । एवं व्रते समाप्ते तु प्रतिमां कारयेद्विभोः॥
मधुसूदनदैवत्यां सवस्त्राञ्च सदक्षिणाम् । स्वर्चितां विभवैःसर्वैर्ब्राह्मणायनिवेदयेत्
वैशाखसितद्वादश्यां दद्याद्दध्यन्नमञ्जसा । सोदकुम्भं सताम्बूलं सफलञ्च सदक्षिणम्
ददामि धर्मराजाय तेन प्रीणातु वै यमः । अपसव्यात्समुच्चार्य नामगोत्रे पितुस्ततः
दद्याद्दध्यन्नमक्षय्यं पितॄणां तृप्तिहेतवे । गुरुभ्यश्च तथा दद्यात्पश्चाद्दद्याच्च विष्णवे

शीतलोदकदध्यन्नं कांस्यपात्रस्थमुत्तमम् ।
सदक्षिणं सताम्बूलं सभक्ष्यञ्च फलान्वितम् ॥ ॥ ६० ॥
ददामि विष्णवे तुभ्यं विष्णुलोकजिगिषया ।
इति दत्त्वा यथाशक्त्या गाञ्च दद्यात्कुटुम्बिने ॥ ६१ ॥

एवं मासव्रतं कुर्याद्यो दम्भेन विवर्जितः । ससर्वैः पातकैर्हीनः कुलमुद्धृत्य वैशतम्
पश्यतामेवभूतानांभित्त्वावैसूर्यमण्डलम् । यातिविष्णोःपरंधामयोगिनामपिदुर्लभम्

व्याख्यात्येवं द्विजकुलवरे माधवीयांश्च धर्मा,
न्विष्णवादीष्टानतिमहितरान्व्याधपृष्टान्समस्तान् ॥ ६४ ॥
वटः सद्यः पश्यतामेव भूमौ पपाताऽहो पञ्चशाखी द्रुमोऽयम् ।
वृक्षात्तस्मात्कोटरे संस्थितो हि व्यालः कश्चिद्दीर्घदेही करालः
हित्वा देहं पापयोनिं च सद्यः स वै तस्थौ प्राञ्जलिर्नम्रमूर्धा ॥ ६५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे भागवतधर्म-
कथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

व्याधोपाख्यानेवाल्मीकेर्जन्मवर्णनम्

श्रुतदेव उवाच

ततस्तु विस्मितोभूत्वाशङ्खोव्याधसमन्वितः । कोभवानितितंप्राहदशैशाच कुतस्तव
केन वाकर्मणासौम्य! मतिस्तवशुभावहा । अकस्मात्तेकथंमुक्तिरेतदाचक्ष्वविस्तरात्
शङ्खेनैव तदापृष्टो दण्डवत्पतितोभुवि । प्रश्रयाऽवनतो भूत्वाप्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्
अहंपुरा द्विजः कश्चित्प्रयागे वहुभाषणः । रूपयौवनसम्पन्नो विद्यामदसुगर्वितः ॥
धनाढ्यो वहुपुत्राढ्यः सदाऽहङ्कारदूषितः । कुसीदस्य मुनेः पुत्रोनाम्नारोचनइत्यहम्

आसनं शयनं निद्रा व्यवायोऽक्षपरिक्रियाः ।
लोकवार्ता कुसीदं वा व्यापारास्ते ममाऽभवन् ॥ ६ ॥

तन्तुमात्राणि कर्माणि लोकनिन्दाविशङ्कितः । सदम्भश्च सदा कुर्वेनश्रद्धामेकदाचन
दुर्बुद्धेर्ममदुष्टस्यकियत्कालोगतोऽभवत् । तदावैशाखमासेऽस्मिञ्जयन्तोनामवैद्विजः
श्रावयामासतन्मासधर्मान्भागवतप्रियान् । तत्क्षेत्रेवासिनांपुण्यकर्मणाञ्चद्विजन्मनाम्
नारीनराः क्षत्रियाश्चवैश्याः शूद्राःसहस्रशः । प्रातःस्नात्वासमभ्यर्च्यमधुसूदनमव्ययम्
कथां शृण्वन्तिसततं जयन्तेनसमीरिताम् । शुचिर्भूत्वामौनधरावासुदेवकथारताः
वैशाखधर्मनिरता दम्भालस्यविवर्जिताः । तांसभाञ्चप्रविष्टोऽहं कौतुकाच्चदिदृक्षया

सोष्णीषेण मया मूर्ध्ना नमस्कारोऽपि न कृतः ।
तांम्बूलञ्च मुखे कृत्वा कञ्चुकश्च मया धृतम् ॥ १३ ॥

कथाविक्षेपमचरं लोकवार्ताभिरञ्जनात् । सर्वेषां चित्तचाञ्चल्यमभूद्वैलोकवार्तया ॥
क्वचिद्धासःप्रसार्याहंक्वचिन्निन्दन्क्वचिद्धसन् । एवंकालोमयानीतःकथायावत्समाप्यते
पश्चात्तेनैव दोषेण सद्योऽल्पायुर्विनष्टधीः । सन्निपातेन पञ्चत्वं प्राप्तोऽहञ्चपरे दिने ॥
तप्तसीसजलैः पूर्णं निरयञ्च हलाहलम् । प्राप्यभुक्त्वा यातनाश्च मन्वन्तराणि चतुर्दश

युक्तेष्वथचलक्षेषु तां चतुरशीतिभिः । क्रमाद्योनिषु जातोऽहमिदानीञ्चावसन्द्रुमे॥
दशयोजनविस्तीर्णे शतयोजनमुन्नते । व्यालोऽहं तामसः क्रूरः सप्तयोजनकोटरे॥
भूत्वा वसामि विप्रर्षे! कर्मणा बाधितः पुरा । अयुतञ्च समायातानिराहारस्यकोटरे
दैवात्तव मुखाम्भोजसमीरितकथामृतम् । श्रुत्वा चक्षुर्द्वयेनाहंसद्योध्वस्ताशुभोमुने

व्यालयोनिं विसृज्याऽहं दिव्यरूपधरः पुमान् ।
प्राञ्जलिःमप्रणतो भूत्वा पादौ ते शरणं गतः ॥ २२ ॥

कस्मिञ्जन्मनि त्वंवन्धुर्नजानेमुनिसत्तम । नमयोपकृतंकाऽपिसानुकम्पःकुतःसताम्
साधूनां समचित्तानांसदा भूतदयावताम् । परोपकारप्रकृतिर्न चैषामन्यथामतिः॥

ममाद्याऽनुगृहाण त्वं यथा धर्मे मतिर्भवेत् ।
न भूयाद्विस्मृतिः क्वाऽपि विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥ २५ ॥
महतां साधुवृत्तानां सङ्गतिश्च सदा भवेत् !
दारिद्र्यमेकमेव स्यान्मदान्धपरमाञ्जनम् ॥ २६ ॥

इति तं बहुधा स्तुत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः । प्राञ्जलिःप्रणतस्तस्थौतूष्णीमेवतदग्रतः
शङ्खो दोर्भ्यां समुत्थाप्यपूर्णप्रेमपरिप्लुतः । पस्पर्श पाणिना चाङ्गं शन्तमेनगताध्वसः
चक्रे सोऽनुग्रहं तस्मिन्दिव्यरूपधरे द्विजे । प्राहतंकृपयाऽऽविष्टोभाविवृत्तान्तमञ्जसा

द्विज! त्वं मासमाहात्म्यश्रवणाच्च हरेरपि।
माहात्म्यश्रवणात्सद्योविध्वस्ताऽखिलबन्धनः ॥ ३० ॥

अतिहायकलङ्कञ्च क्रमाद्गत्वापुनर्भुवि । दशार्णे विषमे पुण्ये भविता त्वं द्विजोत्तमः
वेदशर्मेति विख्यातः सर्ववेदविशारदः । तत्रतेभविताजातिस्मृतिरात्यन्तिकीशुभा

तथा स्मृतानुबन्धस्त्वं त्यक्तसर्वैषणः शुभः ।
करोषि सकलान्धर्मान्वैशाखोक्तान्हरिप्रियान् ॥ ३३ ॥

निर्द्वन्द्वोनिःस्पृहोऽसङ्गोगुरुभक्तोजितेन्द्रियः।सदाविष्णुकथालापोभवितातत्रजन्मनि
ततःसिद्धिसमाप्याऽथविध्वस्ताऽखिलबन्धनः । प्राप्तोषिपरमंधामयोगैरपिदुरासदम्

माभैषीःपुत्र!भद्रंतेभवितामत्प्रसादतः । हास्याद्भयात्तथाक्रोधाद्द्वेषात्कामादथाऽपिवा

स्नेहाद्वा सकृदुच्चार्य विष्णोर्नामाऽघहारि च ।
पापिष्ठा अपि गच्छन्ति विष्णोर्धाम निरामयम् ॥ ३७ ॥
किमु तच्छ्रद्धया युक्ता जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।
दयावन्तः कथां श्रुत्वा गच्छन्तीति द्विजोत्तम! ॥ ३८ ॥
केचित्केवलया भक्त्या कथालापैकतत्पराः ।
सर्वधर्म्मोज्झिता वाऽपि यान्ति विष्णोःपरम्पदम् ॥ ३६ ॥
द्वेषादिना च भक्त्या वा केचिद्विष्णुमुपासते । तेऽपियान्तिपरंधामपूतनेवासुहारिणी
महद्भिःसङ्गतोनित्यंवाग्विसर्गस्तदाश्रयः । मुमुक्षणाश्चकर्तव्यःसःविधिःश्रुतिचोदितः
स वाग्विसर्गो जनताऽघविप्लो यस्मिन्प्रतिश्लोकमवद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्तिसाधवः ॥
यः कष्टसेवां न च काङ्क्षते विभुर्न वा समं भूरि न रूपयौवने ।
स्मृतः सकृद्गच्छति धाम भास्वरं कम्वा दयालुं शरणं व्रजेत ॥ ४२ ॥
तमेव शरणं याहि नारायणमनामयम् । भक्तवत्सलमव्यक्तं चेतोगम्यं दयानिधिम् ॥
कुरु सर्वानिमान्धर्मान्वैशाखोक्तान्महामते! । तेन तुष्टोजगन्नाथःशर्म तेच विधास्यति
इत्युक्त्वा विररामाऽथव्याधं दृष्ट्वा सुविस्मितः । सदिव्यःपुरुषःप्राहपुनस्तंमुनिपुङ्गवम्

दिव्यपुरुष उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि त्वया शङ्ख! दयालुना ।
दिष्ट्या गता मे दुर्योनिर्यामि चैव पराङ्गतिम् ॥ ४७ ॥
इति तञ्च परिक्रम्य ह्यनुज्ञातो दिवं ययौ । ततःसायमभूद्राजञ्छङ्खोव्याधेनतोषितः
सन्ध्यांसायन्तनींकृत्वारात्रिशेषंनिनायच । नानाख्यानैश्चभूपानांदेवानाञ्चमहात्मनाम्
लीलाभिरवताराणां दृष्टगोष्ठिभिरेव च । ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय पादौप्रक्षाल्यवाग्यतः
ध्यायंश्च तारकम्ब्रह्म कृत्वा शौचादिसत्क्रियाम् ।
वैशाखे मेषगे सूर्ये स्नात्वा प्राक्च भगोदयात् ॥ ५१ ॥
कृत्वा सन्ध्यादिकं कर्म तथा सन्तर्प्य चाऽखिलान् ।

व्याधमाहूय हृष्टात्मा मूर्ध्नि प्रोक्ष्य निरीक्ष्य च ॥ ५२ ॥
रामेति द्व्यक्षरं नामददौवेदाधिकं शुभम् । विष्णोरेकैकनामाऽपिसर्ववेदाधिकंमतम्
तेभ्यश्चाऽनन्तनामभ्योऽधिकं नाम्नांसहस्रकम् । तादृङ्नामसहस्रेणरामनामसमंमतम्
तस्माद्रामेति तन्नामजपव्याध! निरन्तरम् । धर्मानेतान्कुरुव्याध!यावदामरणान्तिकम्
ततस्ते भविता जन्म वल्मीकस्य ऋषेःकुले ।
वाल्मीकिरिति नाम्ना च भूमौ ख्यातिमवाप्स्यसि ॥ ५६ ॥
इति व्याधं समादिश्य प्रतस्थे दक्षिणां दिशम् ।
व्याधोऽपि तं परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ ५७ ॥
किञ्चिद्दूरानुगो भूत्वा सरुदन्विरहातुरः । यावद्दृष्टिपथं तावत्पश्यंस्तस्यगतिंपुनः
पुनर्निववृते कृच्छ्रात्तमेव हृदि चिन्तयन् । वनं निर्माय तन्मार्गेप्रपांकृत्वासुनिर्मलाम्
अतियोग्यानिमान्धर्मान्वैशाखोक्तांश्चकार ह ।
वन्यैः कपित्थपनसैर्जम्बूचूतादिभिः फलैः ६० ॥
मार्गगानां श्रमार्तानामाहारं परिकल्पयन् । उपानद्भिश्चन्दनैश्च छत्रैश्च व्यजनैरपि॥
वालुकास्तरणोपेतच्छायाभिश्च क्वचित्क्वचित् ।
आजहाराथ पान्थानां श्रमं स्वेदोद्भवं तथा ॥ ६२ ॥
प्रातः स्नात्वा दिवारात्रं जपन्नामेति वै मनुम् ।
व्याधजन्मनि नामाऽसौ वल्मीकस्य सुतोऽभवत् ॥ ६३ ॥
कृणुर्नाम मुनिः कश्चित्तस्मिन्नेव सरोवरे । तपो वै दुस्तरं तेपे बाह्यव्यापारवर्जितः
वल्मीकमभवद्देहे तस्य कालेन भूयसा । वल्मीक इति तं प्राहुरतो वै मुनिपुङ्गवम् ॥
पश्चात्तपोविरामान्तेकृणौस्मृतिपथंगते । स्त्रियोऽनुस्मरतोराजन्स्खलितंचेन्द्रियंमुनेः
जग्राह शैलुषी काचित्तस्यां जज्ञे वनेचरः । वाल्मीकिरिविख्यातोभुवनेषुमहायशाः
यो वै रामकथांदिव्यांस्वैःप्रबन्धैर्मनोहरैः । लोकेप्रख्यापयामासकर्मबन्धनिकृन्तनीम्

श्रुतदेव उवाच

पश्य वैशाखमाहात्म्यं भूपालाद्याऽपि भूतिदम् ।

व्याधोऽप्युपानहौ दत्त्वा ऋषित्वं प्राप दुर्लभम् ॥ ६६ ॥
य इदं परमाख्यानं पापघ्नं रोमहर्षणम् । शृणुयाच्छ्रावयेद्वाऽपि न भूयःस्तनपोभवेत्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे व्याधोपाख्याने
वाल्मीकेर्जन्मकथनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

कलिधर्मनिरूपणे पितृमुक्तिवर्णनम्

मैथिलेय उवाच

का ह्यस्मिंस्तिथयः पुण्या मासे वैशाखसञ्ज्ञके ।
कानि दानानि शस्तानि तासु तासु विशेषतः ॥ १ ॥
काः प्रख्याताश्च वै लोक एतदाचक्ष्व विस्तरात् ।

श्रुतदेव उवाच

त्रिंशच्च तिथयः पुण्या वैशाखे मेषगे रवौ ॥ २ ॥
एकादश्यां कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत् । सर्वदानेषुयत्पुण्यंसर्वतीर्थेषुयत्फलम्
समवाप्नोति वैशाख एकादश्यां जलाप्लुतः । स्नानंदानंतपोहोमोदेवतार्चनसत्क्रियाः
कथायाः श्रवणञ्चैव सद्यो मुक्तिविधायकम् ।
रोगाद्युपहतो यस्तु दारिद्र्येणाऽपि पीडितः ॥ ५ ॥
श्रुत्वाकथामिमंपुण्यांकृतकृत्योभवेन्नरः । अस्नात्वा चाऽप्यदत्त्वाचयेननीताइमाःशुभाः
स गोघ्नश्च कृतघ्नश्च पितृघ्नश्च महान्स्मृतः ।
जलाशयाश्च स्वाधीनाः स्वाधीनश्च कलेवरम् ॥ ७ ॥
माधवोमनसा सेव्यः कालश्च सुगुणोत्तमः । साधवश्च दयावन्तः कोनसेवेतमाधवम्

दरिद्रैश्च धनाढ्यैश्चपङ्गुभिश्चाऽन्धकैस्तथा। षण्ढैश्चविधवाभिश्चनारीभिश्चनरैस्तथा
कुमार्य्युवघृद्धैश्च रोगार्तैरपिभूमिप। अतीवसुखसाध्यो हि धर्मो वैशाखगोचरः॥
मासमेनमनुप्राप्य धर्मान्कुरु इमाञ्छुभान्। कोन यत्नश्चकुरुतेतस्मात्कोन्वपरःशुभः
योऽतीवसुलभान्धर्मान्न करोति नराऽधमः। तस्यैव सुलभा लोकानारकानात्रसंशयः

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि तस्मिन्मासे च कोत्तमा।
तां तिथिं सर्वपापघ्नीं दध्नः सारमिवोद्धृताम्॥ १३॥

चैत्रेमासि महापुण्ये मेषसंस्थे दिवाकरे। पापघ्नी पितृदैवत्या गयाकोटिफलप्रदा॥

अत्रैव श्रूयते पुण्या पितृगाथा पुरातनी।
श्रृणु तां सत्कथां राजन्सावर्णौ शासति क्षितिम्॥ १५॥

त्रिंशत्कलियुगस्याऽन्ते सर्वधर्मविवर्जिते। आनर्तं तुद्विजः कश्चिद्धर्मवर्णइति श्रुतः
दृष्ट्वाकलियुगे राजञ्जनान्पापरतान्मुनिः। तस्यैव प्रथमे पादे वर्णधर्मविवर्जिते॥ १७
सकदाचित्सत्रयागंमुनीनांतुमहात्मनाम्। अगमत्पुष्करेक्षेत्रेकुर्वतां मौनधारिणाम्
तत्र चासन्पुण्यकथा ऋषीणां शास्त्रगोचराः। तत्रकेचित्कलियुगं प्रशशंसुर्धृतव्रताः

कृतेयद्वत्सरात्साध्यं पुण्यं माधवतोषणम्।
त्रेतायां मासतःसाध्यं द्वापरे पक्षतो नृप!॥ २०॥

तस्माद्दशगुणंपुण्यंकलौविष्णुस्मृतेर्भवेत्। अत्यल्पमपिवैपुण्यंकलौकोटिगुणंभवेत्
दयापुण्यविहीने तु दानधर्मविवर्जिते। दयादानञ्च कुरुते सकृदुच्चार्य वै हरिम्॥ २२
स एवचोर्ध्वगो नूनं दुर्भिक्षे चान्नदस्तथा। एतत्प्रसङ्गावसरे नारदोऽभ्येत्यवै मुनिः
करेणैकेन शिश्नञ्च जिह्वां चैकेन वै हसन्। प्रगृह्योन्मत्तवत्तत्र ननर्त मुनिसत्तमः॥
सभ्यास्तदातमित्यूचुःकिमेतदितिनारद!। प्रत्युवाचसतान्सर्वान्नृत्यंकुर्वन्हसन्सुधीः
सन्तोषाद्यदिहप्रोक्तंनृत्यद्भिर्भावितात्मभिः। सिद्धावयंनसन्देहःपुण्योऽयंकलिरागतः
तत्सत्यञ्चनसन्देहो बहु स्वल्पेन साध्यते। स्मरणात्तोषमायाति केशवःक्लेशनाशनः

तथापि वः प्रवक्ष्यामि दुर्धरञ्च द्वयं ध्रुवम्।

शिश्नस्य निग्रहः पुत्रा! जिह्वाया अपि नित्यशः॥ २८॥

द्वयं यद्धि भवेद्यस्य स एव स्याज्जनार्दनः। भवद्भिर्नात्रस्थातव्यंतस्मात्कलियुगागमे
पाखण्डं भारतंहित्वा सञ्चरध्वंयथासुखम्। यत्र कुत्रापि देशेषु मनो यत्र प्रसीदति
इति तद्वचनं श्रुत्वा मुनयः शंसितव्रताः। सत्रं समाप्य सहसा ययुस्तेचयथासुखम्
धर्मवर्णोऽपितच्छ्रुत्वात्यक्तुंभूमिं मनोदधे। सव्रतश्चोर्ध्वतेजस्कंधृत्वादण्डकमण्डलू
जटावल्कलधारीच भूत्वाचैवं ययौपुनः। कलौयुगेत्वनाचारान्द्रष्टुं विस्मितमानसः

तत्राऽपश्यज्जनान्घोरान्पापाचाररतान्खलान्।
पाखण्डिनो द्विजाः सर्वे शूद्राः प्रव्राजिनस्तथा ॥ ३४ ॥
भर्तारं द्वेष्टि भार्या च शिष्यो द्वेष्टि गुरुं तथा।
भृत्यश्च स्वामिहन्ता च पुत्रः पितृवधे रतः ॥ ३५॥
शूद्रप्राया द्विजाः सर्वे वस्तप्रायाश्च धेनवः।
गाथाप्रायास्तथा वेदाः क्रियासाम्याः शुभाः क्रियाः ॥ ३६ ॥

भूतप्रेतपिशाचाद्याः फलदास्तत्र देवताः। ता एव श्रद्धयाऽर्चन्तिजनाःपापरताःशिताः
सर्वे व्यवायनिरतास्तदर्थे त्यक्तजीविताः। कूटसाक्ष्यप्रवक्तारः सदा कैतवमानसाः ॥
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं सदा कलौ। सर्वेषां हैतुकीविद्यासापूज्या नृपमन्दिरे

गीताद्याश्च कला विद्या नृपाणाञ्च प्रियावहाः।
हीनाश्च पूज्यतां यान्ति नोत्तमाश्च कलौ युगे ॥ ४० ॥

श्रोत्रियाश्च द्विजाः सर्वे दरिद्राःस्युःकलौयुगे। विष्णुभक्तिर्नराणांतुप्रायशोनैववर्तते
प्रायः पाखण्डभूयिष्ठं पुण्यक्षेत्रं भविष्यति। शूद्रा धर्मप्रवक्तारोजटिलास्तापसाःकलौ
सर्वे चाल्पायुषो मर्त्या दयाहीनाः शठा जनाः। सर्वे धर्मप्रवक्तारः सर्वेचग्रहणोत्सवाः

स्वार्चनं चाऽपि हीच्छन्ति वृथा निन्दापरायणाः।
असूयानिरताः सर्वे प्रभोः स्वगृहमागते ॥ ४४ ॥

भ्राता च भगिनींगन्ता पिता पुत्रीश्चवैकलौ। सर्वेऽपिशूद्रीनिरताःसर्वेवाराङ्गनारताः
साधूंनैव विजानन्ति बहूपापांश्च मन्यते। व्यक्तीकुर्वन्ति साधूनांदोषमेकंदुराग्रहाः
पापानां श्रोपजनानि गुणत्वेन वदन्ति हि।

दोषमेव प्रगृह्णन्ति कलौ तु विगुणा जनाः ॥ ४७ ॥
जलौका धर्मसंयुक्ता रक्तंपिबतिनोपयः । औषध्यःसत्त्वहीनाहिऋतूनांव्यत्ययास्तथा
दुर्भिक्षं सर्वराष्ट्रेषु कन्या काले न सूयते । नटनर्तकविद्यासु प्रीतिमन्तो नराः कलौ
वेदवेदान्तविद्यासु निरता ये गुणाधिकाः ।
भृत्यान्पश्यन्ति तान्मूढास्ते भ्रष्टाश्चाखिला नृप! ॥ ५० ॥
त्यक्तश्राद्धक्रियाः सर्वे त्यक्तवेदोदितक्रियाः । जिह्वायांविष्णुनामानिनवर्तन्तेकदाचन
शृङ्गाररसनिर्वाणास्तद्गीतान्येव ते जगुः ॥ ५१ ॥
न विष्णुसेवा न च शास्त्रवार्ता न य यागदीक्षा न विचारलेशः ।
न तीर्थयात्रा न च दानधर्माः कलौ जने क्वाऽपि बभूव चित्रम् ॥ ५२ ॥
तां दृष्ट्वा धर्मवर्णोऽपि सुभीतोऽत्यन्तविस्मितः ।
वंशं पापात्क्षयं यान्तं दृष्ट्वा द्वीपान्तरं ययौ ॥ ५३ ॥
स चरन्सर्वद्वीपेषु लोकेष्वेवतुसर्वशः । पितृलोकंययौधीमान्कदाचित्कौतुकान्वितः
तत्राऽपश्यन्महाघोराञ्छाम्यमाणांश्च कर्मभिः ॥ ५५ ॥
धावतो रुदमानांश्च पततः पतितानपि । तत्राऽपश्यच्चान्धकूपे पतितान्स्वान्पितॄनधः
दूर्वाग्रलम्बिनो दीनान्दूर्वाच्छेदे हि शङ्कितान् ।
तदा प्राप्तः कोऽपि चाखुर्दूर्वामूलं तदाश्रयम् ॥ ५७ ॥
तेन भागत्रयं चात्तमेको भागोऽवशेषितः । तं दृष्ट्वा तेक्षीयमाणं मूलं दुःखेन कर्षिणः
अधो दृष्ट्वाचाऽन्धकूपं तत्पातादिभीषणम् । दुरुत्तारं महाघोरं कर्मणाप्तं सुदुःखिताः
अग्रेचाऽपिदुरुत्तारमवलम्बविवर्जितम् । तांदृष्ट्वा विस्मितोभूत्वादयालुर्वाक्यमब्रवीत्
केयूयं पतिताह्यस्मिन्केन दुस्तरकर्मणा । कस्यगोत्रेसमुत्पन्नाःकथं वो मुक्तिरूर्जिता
एतद्यूयं वदध्वं मे शर्म वोऽथभविष्यति । इत्येवमुदितास्तेन पितरोऽथसुदुःखिताः
तमूचुः करुणां वाचं धर्मश्रुतिपुरःसराः ।

पितर ऊचुः

वयं श्रीवत्सगोत्रीया भुवि सन्तानवर्जिताः ॥ ६३ ॥

पिण्डश्राद्धविहीनाश्चतेनपच्यामहेवयम् । निःसन्तानोऽपिनोवंशोजातःपापैःकलौयुगे
नाऽस्माकं पिण्डदश्चाऽस्ति वंशे पापात्क्षयं गते ।
तेनाऽन्धकूपे पतनं निस्तन्तूनां दुरात्मनाम् ॥ ६५ ॥
एको हि वर्तते वंशे धर्मवर्णो महायशाः । स विरक्तश्चरन्नेकोनगार्हस्थ्यमुपेयिवान् ॥
तन्तुनातेनविभ्रामोदूर्वानालावलम्बिताः । निस्तन्तुत्वाच्चतन्मूलमाखुःखादतिप्रत्यहम्
एकस्यैवाऽवशिष्टत्वात्किञ्चिन्नालोऽवशेषितः ।
आखुना खाद्यमानश्च वर्तते सौम्य! पश्यताम् ॥ ६८ ॥
तस्य चाऽऽयुःक्षये तात शेषमाखुर्हरिष्यति ।
पश्चात्कूपे पतिष्यामोदुरुत्तारेऽन्धतामसे ॥ ६९ ॥
तस्मात्त्वञ्चभुवंगत्वाधर्मवर्णंप्रबोधय । अस्मद्वाक्यैर्दयापात्रैर्गार्हस्थ्येविमुखंमुनिम्
पितरस्ते भृशाऽर्ता हि नरके पतितामया । अन्धकूपेदुरुत्तारे दृष्टा दूर्वावलम्बिताः ॥
सा दूर्वा वंशरूपा हि तन्मूलं सततंमुने । कालाख्योमूषकस्तस्यमूलंखादतिप्रत्यहम्
वंशनाशोऽनुक्रमत एकस्त्वं त्ववशेषितः । तेन मूलस्य दूर्वाया नष्टं भागत्रयं मुने! ॥
एको भागोऽवशिष्टोऽत्र यतस्त्वं वर्तसे भुवि ।
किञ्चित्खादति वै त्वाऽऽखुस्तव चाऽऽयुः क्षयक्रमात् ॥ ७४ ॥
परेते त्वयि चाऽस्माकंतवापिपतनम्भवेत् । कूप एवान्धतामिस्रे सन्तानेऽपिक्षयंगते
तस्माद्गार्हस्थ्यमासाद्य कुरु सन्ततिवर्धनम् ।
तेनाऽस्माकं तवाऽपि स्याद्गतिरूर्ध्वा न संशयः ॥ ७६ ॥
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयाम्व्रजेत् । यजेतवाऽश्वमेधश्चनीलम्वावृषमुत्सृजेत्
यद्येकोऽपि च वैशाखे माघे वा कार्त्तिकेऽपि च ।
अस्मानुद्दिश्य वै स्नानं श्राद्धं दानं करिष्यति ॥ ७८ ॥
तेन चोर्ध्वंगतिर्भूयान्नरकादुद्धृतिश्च नः । एकोवाविष्णुभक्तःस्यादेकोवाहरिवासरी
एको वा शृणुयाद्विष्णोः कथां पापविनाशिनीम् ।
तस्याऽतीतं कुलशतं भावि चाऽपि कुलं शतम् ॥ ८० ॥

अपि पापवृतं क्वाऽपि नरकं नैव पश्यति । किमन्यैर्बहुभिः पुत्रैर्दयाधर्मविवर्जितैः॥
ये जातानार्चयंत्यद्धाविष्णुंनारायणंकुले । नाऽपुत्रस्यहिलोकोऽस्तिसर्वमेतज्जनाविदुः
तत्राऽपि च दयायुक्तं तत्सन्तानश्च दुर्लभम् । इतितंबोधयित्वातुवाक्यैरेतैश्च सूनृतैः
विरक्तस्योर्ध्वरेतस्य गार्हस्थ्ये त्वं मतिं कुरु ।
पितॄणां वचनं श्रुत्वा धर्मवर्णोऽतिविस्मियः ॥ ८४ ॥
प्रणम्य प्राञ्जलिः प्राह रुदन्वै जातवेपथुः । नाम्नाऽहं धर्मवर्णश्च युष्मद्वंश्यो दुराग्रही
सत्रेश्रुत्वातुवचनंनारदस्यमहात्मनः । जिह्वादार्ढ्यं गुह्यदार्ढ्यं न कस्याऽपिकलौयुगे
दृष्ट्वा भुवि च पापिष्ठांस्ताञ्जनानपि शङ्कितः ।
भीतो दुर्जनसङ्गत्या चरन्द्वीपान्तरे वसन् ॥ ८७ ॥
पादास्त्रयो गताह्यस्यकलेःपादेऽन्त्यकेऽपि च । गताःसार्द्धत्रयोभागाइदानींजनका इमे
नाऽहं वेद्मि भवद्दुःखंवृथाजन्मगतं मम । यस्मिन्कुले त्वहं जातऋणंपित्रोर्नवैहृतम्
किं तेनजातमात्रेणभूभारेणाऽत्र शत्रुणा । यो जातोनार्चयेद्विष्णुंपितॄन्देवानृषींस्तथा
युष्मदाज्ञां करिष्यामि मामाऽऽज्ञापयत क्षितौ ।
यथा न कलिबाधा स्यात्तत्र संसारतोऽपि वा ॥ ९१ ॥
कर्तव्यान्यपि कृत्यानि मया पुत्रेण भूतले! । इत्युक्तास्तेन वंश्येन धर्मवर्णेन धीमता
किञ्चिदाश्वस्तमनस इदमूचुर्महीपते । पुत्र पश्य दशामेतां पितॄणान्ते महात्मनाम्॥
सन्तत्यभावात्पततां दूर्वामात्रावलम्बिनाम् ।
त्वं गार्हस्थ्यमुपालभ्य सन्तत्यास्मान्समुद्धर ॥ ९४ ॥
ये च विष्णुकथारक्ता ये स्मरन्त्यनिशं हरिम् । येसदाचारनिरतानतान्वैबाधतेकलिः
शालिग्रामशिलायस्यगृहे तिष्ठति मानद । अथवा भारतं गेहे न तं वै बाधते कलिः॥
यश्च वैशाखनिरतो माघस्नानपरश्च यः । कार्त्तिके दीपदाता यो न तं वै बाधते कलिः
प्रत्यहं शृणुयाद्यस्तु कथां विष्णोर्महात्मनः ।
पापघ्नीं मोक्षदां दिव्यां न तं वै बाधते कलिः ॥ ९८ ॥

यद्गृहे वैश्वदेवश्च यद्गृहे तुलसी शुभा । यदङ्गणे शुभा गौश्च न तं वै बाधते कलिः

तस्मान्नो भीतिरस्तीह युगे पापात्मकेऽपि च ।
शीघ्रं गच्छ भुवं पुत्र! मासोऽयं माधवाह्वयः ॥ १०० ॥

सर्वेषामुपकाराय मेषसंस्थे दिवाकरे । त्रिंशच्च तिथयः पुण्या मेषसंस्थे दिवाकरे ॥
एकैकस्यां कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणंभवेत् । तत्राऽपिचैत्रबहुलोदर्शोनृणांचमुक्तिदः
प्रियश्च पितृदेवानां सद्यो मुक्तिविधायकः । ये वै पितृन्समुद्दिश्यश्राद्धंकुर्वन्तितद्दिने

सोदकुभं पिण्डदानं तदक्षय्यफलं लभेत् ।
ये च कुर्वन्ति वै श्राद्धममायांच मधौ सुत! ॥ १०४ ॥

तैः कृतं तु गयाक्षेत्रे श्राद्धं कोटिगुणं भवेत् । यदिश्राद्धंमधौदर्शेशाकेनाऽपिकरोतिच
कोटिश्राद्धं गयायां तु कृतं तेन न संशयः । कुम्भं च पानकैः पूर्णंकर्पूरागुरुवासितम्

यो न दद्यान्मधौ दर्शे स पितृघ्नो न संशयः ।
यो दद्याच्च मधौ दर्शे सपानीयं करीरकम् ॥ १०७ ॥
श्राद्धं च भक्तिसंयुक्तः कुरुते च कुलोद्धृतिम् ।
पितृणां च तथा लोके नदीचाऽमृतवर्षिणी ॥ १०८ ॥

कुम्भदानात्प्रसरति श्राद्धदानादिदायिनाम् । अन्नसूपघृतापूपलेह्य पायसकर्दमान् ॥

तस्माज्झटिति त्वं गच्छ यदा वाऽमा भविष्यति ।
कुरु श्राद्धं पिण्डदानं सोदकुम्भं महामते! ॥ ११० ॥

सर्वेषामुपकाराय गार्हस्थ्यं च समाश्रय । धर्मार्थकामैः सन्तुष्टः प्राप्यसन्तानमुत्तमम्
पुनश्च मुनिवृत्तिस्त्वं सुखं द्वीपे सुसञ्चर । इत्यादिष्टःपितृभिश्चतूर्णं भूमिं ययौमुनिः
चैत्रे मासे मेषसंस्थेपुण्येमासिदिवाकरे । प्रातःस्नात्वाचसन्तर्प्यपितृन्देवानृषींस्तथा

सोदकुम्भं तथा श्राद्धं कृत्वा पापविनाशनम् ।
तेन दत्त्वा पितृणाञ्च मुक्तिमावृत्तिवर्जिताम् ॥ ११४ ॥
स्वयं विवाहमकरोत्सन्ततिं प्राप्य वैसतीम् ।
लोके प्रख्यापयामास तां तिथिंपापनाशनीम् ॥ ११५ ॥

स्वयं पुनर्मुदा भक्त्या गन्धमादनमाययौ ॥ ११६ ॥

तस्मात्पुण्यतमाद्येषामधोर्दर्शाद्धयातिथिः। नानयासदृशीलोकेतिथिर्दृष्टाश्रुताऽपिवा

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे कलिधर्मनिरूपणेपितृमुक्तिर्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

अक्षय्यतृतीयामाहात्म्यवर्णनम्

श्रुतदेव उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम्।
अक्षय्यायास्तृतीयायाः सिते पक्षे च माधवे ॥ १ ॥

ये कुर्वन्ति चतस्यांवैप्रातःस्नानंभगोदये। तेसर्वेपापनिर्मुक्तायान्तिविष्णोः परंपदम्
देवान्पितॄन्मुनीन्यस्तु कुर्याद्वाद्दश्य तर्पणम्। तेनाऽधीतं च तेनेष्टंतेनश्राद्धशतंकृतम्
मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां शृण्वन्तियेनराः। अक्षय्यायांतृतीयायांतेनरामुक्तिभागिनः
ये दानं यत्र कुर्वन्ति मधुद्विट्प्रीतये शुभम्। तदक्षय्यं फलत्येव मधुशासनशासनात्
देवर्षिपितृदैवत्या तिथिरेषा महाशुभा। त्रयाणां तृप्तिदात्रीच कृते धर्मे सनातने॥

प्रख्यातिश्च तिथेरस्याः केन चाऽस्ति तदप्यहम्।
वक्ष्यामि नृपशार्दूल! सावधानमनाः शृणु ॥ ७ ॥

पुरा पुरन्दरस्याऽऽसीद्युद्धश्च बलिना सह। देवानाञ्चैव दैत्यानां द्वन्द्वयुद्धमभूत्ततः॥
सनिर्जित्यबलिंदैत्यंपातालतलवासिनम्। पुनर्भुवंसमासाद्यचोतथ्यस्याऽऽश्रमंययौ

तत्राऽपश्यच्च तत्पत्नीं गुर्विणींमन्दगामिनीम्।
चलच्छ्रोणितटाबद्धकाञ्चीदाम्ना सुमण्डिताम् ॥ १० ॥

क्वणत्कङ्कणनिर्घोषजितमत्तालिकोकिलाम्।

वल्गुचित्राम्वरां रामां मञ्जुवाचं शुचिस्मिताम् ॥ ११ ॥
लसत्कुम्भस्थलाभ्यां च कुचाभ्यामुपशोभिताम् ।
हसत्पद्ममुखां दिव्यां नीलोत्पलसुलोचनाम् ॥ १२ ॥
केतक्युदरपाण्डुभ्यां गण्डाभ्याञ्च मनोरमाम् ।
श्रमोच्छ्वसन्तीं दीनाक्षीं पर्णशालामुखे स्थिताम् ॥ १३॥
स्वपतीं शयने क्वाऽपि तां दृष्ट्वा मोहमागतः ।
वलात्कारेण वुभुजे गुर्विणीं पाकशासनः ॥ १४ ॥

गर्भस्थस्तु तदापिण्डः स्वस्यपातविशङ्कया । छादयामासवैयोनिं द्वारेपादेनदुःखितः
ततश्चस्कन्दवीर्यं तद्भूमावेव वलिद्विषः । गर्भस्थायचुकोपासौभगवान्पाकशासनः
तं शशाप चगर्भस्थंरुषाताम्रान्तलोचनः । जात्यन्धोभव दुर्बुद्धे माऽवमंस्थायतःपदा
प्रच्छाद्य योनिद्वारञ्च ततो दीर्घतपाह्वयः । पदा प्रस्कन्दिताद्वीर्याज्जालतः समजायत
पश्चादिन्द्रो ययौशीघ्रमृषेःशापविशङ्कितः । पलायन्तंहरिं दृष्ट्वा जहसुर्वटवोऽखिलाः

ततस्तु व्रीडितो भूत्वा ययौ मेरोर्गुहां शुभाम् ।
तत्र लीनश्चचाराऽसौ दुस्तरम्वै तपो महत् ॥ २० ॥

मेरौ विलीय वसति देवेन्द्रे लज्जयाऽन्विते । गूढैर्विज्ञायतांवार्तां दैतेया वलिपूर्वकाः
सुरानाक्रम्य वुभुजुर्वलीन्द्रश्चामरावतीम् । दिक्पालानांविभूतीश्चशम्वराद्यावलीयसः
वलद्वुभुजिरे हीननाथे राष्ट्रे दिवौकसाम् । रक्षितारमजानन्तोदेवाश्चाग्निपुरोगमाः
पप्रच्छुर्धिषणं देवं देवाचार्यमकल्मषम् । पप्रच्छुरिन्द्रवृत्तान्तं क्वस्वित्तिष्ठतिनः प्रभुः

दैत्याक्रान्तमिदं राष्ट्रं हीननाथं दिवौकसाम् ।
कुतो नाऽऽयाति देवोऽसौ भूयान्कालो गतो विभो! ॥ २५ ॥

तं यामो यत्र धिषण! प्रार्थयामश्च तं विभुम् । इति पृष्टस्तदा देवैर्धिषणस्तानुवाचह

रसातले वलिं जित्वा चोतथ्यस्याऽऽश्रमं ययौ ।
भुक्त्वा पत्नीं च दार्ढ्येन तच्छिष्यैरेव निन्दितः ॥ २७ ॥

व्रीडितस्तु दिवंयातुंगुहांमेरोर्विवेशह । तत्रैवाऽऽस्तेशचीयुक्तःस्वकृतंचिन्तयविभु

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवा अग्निपुरोगमाः। गुहां मेरोर्ययुःशीघ्रंदृष्ट्वाप्रार्थयितुंविभुम्
तत्र दृष्ट्वा गुहालीनं देवेन्द्रं पाकशासनम्। तुष्टुवुर्विविधैःस्तोत्रैस्तद्वीर्यैर्लोकविश्रुतैः
इन्द्र! तुभ्यं नमस्तेऽस्तु सर्वदेवाऽधिपाय ते। वयंदैत्यैरर्दिताश्चत्वयाहीनाभृशार्दिताः
स्थानभ्रष्टाश्चरामोऽङ्ग नानादेशेषु दुःखिताः। तस्मादागत्य देवेन्द्रजहिशत्रूनरिन्दम!
इति स्तुतस्तदा देवैर्निश्चक्राम गुहामुखात्। लज्जयाऽवनतोभूत्वापश्यन्भूमिञ्चचक्षुषा
न किञ्चिदपि चोवाच दुःखाद्गद्गदभाषणः। तऽज्ज्ञात्वा धिषणःप्राहतंसुरेन्द्रंभयानकम्
मा शङ्का ते सुरपते! कर्माधीनमिदं जगत्। मानामानौसुखंदुःखंलाभालाभौजयाजयौ
पूर्वकर्मानुरोधेन भवन्त्येते न संशयः। जीवःकर्मानुगो दुःखं दिष्टं दैवेन कालतः॥

प्राज्ञाः प्रायो न शोचन्ति न प्रहृष्यन्ति वै सुखात्।
तस्मात्प्रारब्धतः प्राप्तं दुःखं चेदं तव प्रभो! ॥ ३७ ॥

तत्प्राप्य मघवन्दुःखं नैव शोचितुमर्हसि। इत्युक्तो गुरुणाचाऽऽहमघवानमराधिपान्

इन्द्र उवाच

परस्त्रीसङ्गदोषेण बलं वीर्यं यशोऽमलम्। मन्त्रशक्तिःशास्त्रशक्तिर्विद्याशक्तिश्चमानद
अभवन्नष्टवीर्यं मे तूष्णीं तेन वसाम्यहम्। पाकशासनवाक्यं तुश्रुत्वास्वाचार्यसंयुताः
मन्त्रयामासुरेकान्ते पुनस्तस्य बलाप्तये। तदा गुरुश्च तान्प्राह करुणश्च विदुत्तमः

बृहस्पतिरुवाच

मासो वैशाखनामाऽयं प्रियो वै मधुघातिनः।
सर्वाश्च तिथयः पुण्या मासेऽस्मिन्माधवप्रिये ॥ ४२ ॥

तत्राऽपि च सितेपक्षेमासेऽस्मिन्नक्षयाह्वया। यास्तस्यांस्नानदादिश्रद्धयाचकरोतिवै
तस्यपापसहस्राणि नश्यन्त्येव न संशयः। अनवद्यं तथैश्वर्यं बलं धैर्यं भवन्ति च॥
तस्मात्तस्यांतृतीयायांहरिणाबलविद्विषा। स्नानदानादिसद्धर्मान्कारयामोहिताऽऽतये
भविष्यति चसा शक्तिर्विद्याया मन्त्रशास्त्रयोः। बलं धैर्यं यशश्चैवयथापूर्वंभविष्यति
इत्येवन्तु विचार्यांश्च गुरुर्देवैः समाहितः। इन्द्रेणकारयामासधर्मानेतान्हरिप्रियान्
अक्षय्ययांतृतीयायांभुक्तिमुक्तिफलप्रदान्। तेनपूर्ववदेवाऽऽसीद्बलंधैर्यादिकंविभोः

परस्त्रीसङ्गदोषोऽपि सद्य एव व्यलीयत । पश्चाद्धताशुभः शक्रोराहोर्मुक्त इवोडुपः ॥
देवतानां तथा मध्ये शुशुभे च हरिर्यथा । पश्चाद्देवैसमायुक्तोविनिर्जित्यतथाऽसुरान्

तृतीयायाश्च माहात्म्याद्भाग्ययुक्तोऽमरावतीम् ।
विवेश विभवैः सार्द्धं शङ्खतूर्यादिनिःस्वनैः ॥ ५१ ॥

अनुज्ञाताऽश्च शक्रेण स्वधामानि ययुः सुराः । ततस्ते यज्ञभागांश्चलेभिरेचयथापुरा
पिण्डभागांश्च पितरोयथापूर्वं प्रपेदिरे । स्वाध्याये मुनयस्तुष्टा दैत्यानाञ्च पराजयः

तदाप्रभृति लोकेऽस्मिंस्तृतीया चाऽक्षयाऽऽह्वया ।
प्रख्याता सर्वलोकेषु देवर्षिपितृतुष्टिदा ॥ ५४ ॥

तस्मात्पुण्यतमावैषासर्वकर्मनिकृन्तनी । भुक्तिमुक्तिप्रदानृणांतृतीयाचाऽक्षयाऽऽह्वया

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे
वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादेऽक्षय्यतृतीयायाः श्रेष्ठत्वकथनं-
नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

शुनीमोक्षप्राप्तिवर्णनम्

श्रुतदेव उवाच

तिथिष्वेतासु पुण्यासुद्वादशीसितपक्षिणी । वैशाखमासेराजेन्द्रसर्वाघौघविनाशिनी

किं दानैः किंतपोभिश्च किमुपोष्यैर्व्रतैश्च किम् ।
किमिष्टैश्चैव पूतैश्च द्वादशी यैर्न सेविता ॥ २ ॥

गङ्गायामुपरागे तु यो दद्याद्गोसहस्रकम् । तत्फलं समवाप्नोतिप्रातःस्नात्वाहरेर्दिने ॥
यद्दत्तंचार्हतेचाऽन्नंद्वादश्याञ्चसितेशुभे । सिक्थेसिक्थेभवेत्तस्यकोटिब्राह्मणभोजनम्
यो दद्यात्तिलपात्रन्तुद्वादश्यांमधुसंयुतम् । निर्धूताऽखिलबन्धस्तुविष्णुलोकेमहीयते

एकादश्यां सिते पक्षे कुर्याज्जागरणंहरेः । स जीवन्नेव मुक्तःस्यात्तुष्टास्युःसर्वदेवताः

कोटीन्दुसूर्यग्रहणे तीर्थान्युत्प्लाव्य यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति प्रातः स्नात्वा हरेर्दिने ॥ ७ ॥
तुलस्याः कोमलैः पत्रैर्द्वादश्यां विष्णुमर्चयेत् ।
समस्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोकाऽधिपो भवेत् ॥ ८ ॥
(क्षेपकः—तुलसीपत्रपुष्पैश्च वैशाखेऽश्वत्थपूजनम् ।
पुष्पाद्यभावे धान्यैर्वा पूजयेन्मधुसूदनम् ॥ १ ॥)

यमंपितॄन्गुरून्देवान्विष्णुमुद्दिश्यमानवः । माधवे शुक्लद्वादश्यांसोदकुम्भंसदक्षिणम्
दध्यन्नञ्चैव यो दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु । प्रयागे प्रत्यहञ्चैव कुर्याद्यःकोटिभोजनम्
यावत्सम्वत्सरंपुण्यं षड्रसान्नैर्मनोरमैः । तत्फलं समवाप्नोति मधुशासनशासनात्
शालिग्रामशिलादानं यः कुर्याद्द्वादशी दिने । वैशाखे शुक्लपक्षे तु सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥

द्वादश्यां पयसा यस्तु स्नापयेन्मधुसूदनम् ।
राजसूयाऽश्वमेधाभ्यां यत्फलं परिजायते ॥ १३ ॥

त्रयोदश्यां यजेद्विष्णुं पयोदधिविमिश्रितैः । शर्करामधुभिर्द्रव्यैर्मधुसूदनप्रीतये ॥१४
तत्फलंसमवाप्नोतिगङ्गायांनाऽत्रसंशयः। पञ्चामृतैश्चयोविष्णुंभक्त्यासंस्नापयेद्विभुम्
स सर्वंकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते । यो दद्यात्पानकंह्यस्यां सायाह्नेप्रीतयेहरेः
जीर्णपापं जहात्याशुजीर्णां त्वचमिवोरगः । सायाह्नेचैव यो दद्यादुर्वारुकरसायनम्
भवेन्मुक्तः कर्मबन्धादुर्वारुकरसायनात् । इक्षुदण्डं चूतफलं दद्याद्द्राक्षाफलानि च ॥

न विच्छित्तिः सन्ततेः स्यात्तस्य वै शतपूरुषम् ।
यो दद्याद्गन्धलेपं तु सायाह्ने द्वादशीदिने ॥ १६ ॥

बाह्योपघातैः सकलैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः । यत्किञ्चित्कुरुतेपुण्यं द्वादश्यांराजसत्तम
माधवे तु सिते पक्षे तदक्षय्यफलंलभेत् । प्रख्यातिमस्या वक्ष्यामियेनजातेतिभूमिप
सर्वेषां सर्वपापघ्नीं सर्वमङ्गलदायिनीम् । पुराकाश्मीरदेशे तु द्विजोदेवव्रताह्वयः ॥२२

तस्याऽऽसीन्मालिनीनामतनयाचारुरूपिणी । ददौतांसत्यशीलायविप्रवर्यायधीमते

तामुद्वाह्य ययौ धीमान्स्वदेशं यवनाऽऽह्वयम् ।
रूपयौवनसम्पन्ना तस्य नैव प्रियाऽभवत् ॥ २४ ॥
सदा विद्वेषसंयुक्तस्तस्यां तिष्ठति निष्ठुरः ।
नाऽन्यस्य कस्यचिद्द्वेष्टि तां विना नृपते! पतिः ॥ २५ ॥
तस्मिन्सा क्रोधसंयुक्ता वशीकरणलम्पटा ।
अपृच्छत्प्रमदा राजन्यास्त्यक्ताः पतिभिः पुरा ॥ २६ ॥
ताभिरुक्ता तु सा भूप! वश्यो भर्त्ता भविष्यति ।
अस्माकं प्रत्ययो जातो भर्तृत्यागावमानिनाम् ॥ २७ ॥
प्रयुज्यभेषजंवश्यंनीताहि पतयः पुराः । योगिनींत्वं तु गच्छाऽद्यदास्यतेभेषजंशुभम्
नविकल्पस्त्वयाकार्योभवितादासवत्पतिः । योगिनीमन्दिरेगत्वातासांवाक्येनभूपते
प्रसादमतुलंतस्या लेभेदुश्चारिणी सती । शतस्तम्भसमायुक्तांकुटीं भेजेत्वरान्विता
सुविस्तृतां सुवर्चस्कां तथैवाऽयातयामिकाम् ।
प्रावृता दीर्घवस्त्रेण सन्निधिं तेन योगिनी ॥ ३१ ॥
दीर्घाभिश्च सटाभिस्तु:प्रावृतादीप्तिसंयुता । परिचारसमोपेता वीक्षमाणा शनैःशनैः
अक्षसूत्रकरा सा तु जपन्ती प्रार्थिता तया । ददौवश्यकरमंत्रं क्षोभकं प्रत्ययात्मकम्
ततः सा प्रणता भूत्वा दद्याद्द्रव्याङ्गुलीयकम् ।
वज्रमाणिक्यसंयुक्तमतिरक्तप्रभान्वितम् ॥ ३४ ॥
मृदुकाञ्चनसंयुक्तं भानुरश्मिसमद्युति । ततो दृष्ट्वा तु सन्तुष्टा पादस्थंचाङ्गुलीयकम्
हृदयञ्च तया ज्ञातं तत्पतेरवमानजम् । तदोक्ता हि तया भूप! तापस्या हितयुक्तया ॥
चूर्णो रक्षान्वितोह्येष सर्वभूतवशङ्करः । चूर्णं भर्तरि संयुज्य रक्षां ग्रीवाश्रयां कुरु
भविष्यति पतिर्वश्यो नाऽन्यां यास्यति सुन्दरीम् ।
नाऽप्रियं वदति क्वापि दुश्चारिण्यास्तवाऽपि च ॥ ३८ ॥
चूर्णरक्षां गृहीत्वा सा प्राप भर्तृगृहं पुनः । प्रदोषे पयसायुक्तश्चूर्णोभर्तरियोजितः

ग्रीवायां हि कृता रक्षा न विचारः कृतस्तया । तदा सपातचूर्णस्तुभर्त्तानृपवरोत्तम

तच्चूर्णात्क्षयरोगोऽभूत्पतिः क्षीणोदिनेदिने । गुह्येतुकृमयोजाताघोरादुष्टव्रणोद्भवाः
दिनैःकतिपयैराजन्पत्युर्नैवव्यवस्थितिः । उवासस्वेच्छयासाऽपिपुंश्चलीदुष्टचारिणी

हततेजास्ततो भर्ता तामुवाचाऽऽकुलेन्द्रियः ।
क्रन्दमानो दिवारात्रौ दासोऽस्मि तव शोभने! ॥ ४३ ॥

त्राहि मां शरणं प्राप्तंनेच्छेऽहमपरां स्त्रियम् । तत्तस्यविदितंज्ञात्वाभीतासामेदिनीपते
अलङ्कारकृते पत्युर्जीवनेच्छुर्न वै हिता । योगिनीं च ययौ शीघ्रं तस्यैसर्वंन्यवेदयत्
तया च भेषजं दत्तं द्वितीयंदाहशान्तये । दत्तेचभेषजेतस्मिन्स्वस्थोऽभूत्तत्क्षणात्पतिः
तिष्ठत्युपपतिर्गेहे गृहकृत्याऽपदेशतः । सर्व वर्णसमुद्भूता जारास्तिष्ठन्ति वै गृहे ॥
न किञ्चिद्वचने शक्तिर्भर्तुर्जाता कथञ्चन । ततस्तेनैव दोषेण सर्वाङ्गेषु च जज्ञिरे ॥

कृमयश्चास्थिभेत्तारः कालान्तकयमोपमाः ।
तैर्नासाजिह्वयोश्चाऽऽसीच्छेदः कर्णद्वयस्य च ॥ ४६ ॥

स्तनयोश्चाङ्गुलीनाञ्च पङ्गुत्वंचाऽपि चाऽऽगतम् । तेनपञ्चत्वमापन्नागतानरकयातनाः
ताम्रभाण्डे च सा दग्धाऽयुतानिदश पञ्च च । श्वानयोनिषुसञ्जाता शतवारं पुनःपुनः
छिन्ननासा छिन्नकर्णा कृमिमूर्द्धा निरन्तरम् । छिन्नपुच्छाभग्नपादा ताडिताचगृहेगृहे
पश्चात्सौवीरदेशेषु पद्मबन्धोर्द्विजस्य च । दास्या गृहेशुनी जाता बहुदुःखसमाकुला

छिन्नकर्णा छिन्ननासा छिन्नपुच्छाऽङ्घ्रिरातुरा ।
कृमिपूर्णशिरा नित्यं कृमियोनिश्च तिष्ठति ॥ ५४ ॥

एवं त्रिंशद्गतावर्षा अस्मिञ्जन्मनि भूमिप । दैवात्कर्मविपाकेन वैशाखे मेषगे रवौ ॥
शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां पद्मबन्धोस्तनूद्भवः । नद्यांस्नात्वा शुचिर्भूत्वा सार्द्रवस्त्रोगृहंययौ
तुलसीवेदिकाम्प्राप्य पादाववनिजे निजौ । वेदिकायामधोदेशे साशुनीस्वापमागता

प्राक्सूर्योदयवेलायां पादोदकपरिप्लुता ।
सद्यो ध्वस्ताऽशुभा जाता जातिस्मृतिरभूत्क्षणात् ॥ ५८ ॥

स्मृत्वा कर्म कृतं पूर्वं सा शुनी तापसंतदा । चुक्रोशकरुणादीनामुने त्राहीतिवै पुनः

स्वकर्मंच मुनीन्द्राय स्मृत्वाचख्यौभयाऽऽकुला ।

भर्तुर्विषप्रयोगं तु स्वस्य दुश्चरितं तथा ॥ ६० ॥

याऽन्यापियुवती ब्रह्मन्भर्तुर्वश्यंसमाचरेत् । वृथाधर्मा दुराचारा पच्यते ताम्रभाजने भर्तानाथोगुरुर्भर्ताभर्तादैवतमुत्तमम् । विक्रियांकृत्यसाध्वीसा कथंसुखमवाप्नुयात् तिर्यग्योनिशतं याति कृमिकोटिशतानिव । तस्माद्भूसुरकर्तव्यंस्त्रीभिर्भर्तुर्वचःसदा

साऽहं पश्ये पुनर्योनिं कुत्सितां यातनान्विताम् ।

यदि नोद्धरसे ब्रह्मन्नद्यत्वद्दृष्टिसम्मुखाम् ॥ ६४ ॥

तस्मादुद्धर मां ब्रह्मन्दुष्कृतां पापचारिणीम् । सुकृतस्य प्रदानेन वैशाखे शुक्लपक्षके

या कृता तु त्वया ब्रह्मन्द्वादशी पुण्यवर्द्धिनी ।

तस्यां त्वया कृतं पुण्यं स्नानदानान्नभोजनैः ॥ ६६ ॥

दुश्चारिण्याअपिब्रह्मंस्तेनमुक्तिर्भविष्यति । यस्यांतुभूसुरःस्नातःस्वगृहेमनुजःकिल सर्वतीर्थफलावाप्तिं लभते ताऽत्र संशयः । तप्तं दत्तं हुतं यत्र कृतं देवार्चनादि यत् ॥ तदक्षय्यफलं ज्ञेयं यत्कृतं द्वादशीदिने । एवं विधफलं यत्स्यात्तद्देहि सकलं मम ॥

द्वादश्यामुपवासेन त्रयोदश्यां तु पारणात् ।

यत्फलं स्यात्तदप्यद्धा तेन मुक्तिर्भविष्यति ॥ ७० ॥

दयां कुरु महाभाग! दीनायां दीनवत्सल । दीननाथो जगन्नाथो युष्मन्नाथोजनार्दनः तदीयास्तादृशाएवयथाराजातथाप्रजाः । वैवस्वतपदध्वं सिन्परित्राहिसुदुः खिताम् त्वद्द्वारवासिनीं दीनांशुनींमांदीनवत्सल । ब्रह्महत्यासहस्रम्वागोहत्यानांसहस्रकम् अगम्यानाञ्च कोटीश्च दहत्येव शुभातिथिः । तस्यां कृतं महापुण्यं मह्यंदत्त्वामहामुने मामुद्धर समुद्विग्नां दीनां नाथ समुद्धर । अन्तेतुभ्यं द्विजेन्द्राय नमउक्तिं वदाम्यहम् इतितस्यावचःश्रुत्वाशुनीमाहमुनेःसुतः । स्वकृतंजन्तवोऽश्नन्तिसुखदुः खात्मकंशुनि

तस्मात्किमु त्वया कार्यं क्षुद्रया पापशीलया ।

यया भर्ता वशं नीतो रक्षाचूर्णादिभिर्द्विजः ॥ ७७ ॥

साधुभ्यो यत्कृतं पापं स्वस्य दुःखकरम्भवेत् ।

साधुभ्यो यत्कृतं पुण्यं स्वस्य दुःखहरम्भवेत् ॥ ७८ ॥

उभयं भ्रंशतामेति पापेभ्यो यत्कृतम्भवेत् । शर्करामिश्रितं क्षीरं काद्रवेयनिवेदितम्
विषवृद्धिकरं दृष्टमेवं पापकरं भवेत् । वदत्येवं मुनिसुते शुनी दुःखैकरूपिणी ॥ ८०

पुनश्चुक्रोशोर्ध्वस्वरं तत्पित्रे बहुभाषिणी ।
पद्मबन्धो! परित्राहि शुनींत्वद्द्वारवासिनीम् ॥ ८१ ॥
त्वदुच्छिष्टाशिनीं नित्यं त्वं पाहीति पुनः पुनः ।
स्वपोष्या ये हि वर्तन्ते गृहस्थस्य महात्मनः ॥ ८२ ॥

तेषामुद्धरणंकार्यमिति वेदविदां मतम् । चण्डाला वायसाश्चैव सारमेयाश्च नित्यशः
गृहस्थानां दयापात्रं प्रत्यहम्बलिभोजिनः । अशक्तं नोद्धरेत्पोष्यं रोगाद्युपहतं यदि

सोऽधः पतेन्नः सन्देह इतिवेदविदांमतम् ॥ ८५ ॥
कर्तारमेकं जगतां हिकर्ता कृत्वात्मना पाति समस्तजन्तून् ।
दारादिरूपव्यपदेशतो हरिस्तस्मात्तदाज्ञा खलु पोष्यरक्षा ॥ ८६ ॥
स्वपोष्यरक्षां परिहृत्यजन्तुर्दैवेन क्लृप्त्या यदि वर्ततेऽन्यधीः ।
स देवद्रोग्धा सकलस्य हन्ता कीनाशलोकाननु सम्प्रयाति ॥ ८७ ॥

कर्तव्यत्वाद्दयालुत्वादेतामुद्धर दुर्मतिम् । इति तस्या वचःश्रुत्वादुःखार्तायागृहेसुतः

निश्चक्रामगृहात्तूर्णं पद्मबन्धुर्दयानिधिः ॥ ८८ ॥

किमेतदिति तां प्राह पुत्रं सर्वं न्यवेदयत् । स तुपुत्रवचः श्रुत्वातमेवं प्राहविस्मितः

पद्मबन्धुरुवाच

ममात्मजकथं वाक्यमीदृशं व्याहृतं त्वया । न साधूनामिदं वाक्यं भवतीह वरानन
आत्मसौख्यकराः पापा भवन्ति परिभाविताः । पश्यपुत्र जनाः सर्वेपरोपकरणायवै
शशीसूर्योऽथ पवनो रजनी हुतभुग्जलम् । चन्दनं पादपाः सन्तःपरोपकरणेस्थिताः
अस्थिदानंकृतं पुत्र कृपयांहिदधीचिना । देवानामुपकाराय ज्ञात्वा दैत्यान्महाबलान्
कपोतार्थे स्वमांसानि शिबिनाभूभुजा पुरा । प्रदत्तानि महाभागश्येनायक्षुधितायवै
जीमूतवाहनोराजा पुराऽऽसीत्क्षितिमण्डले । तेनाऽपि जीवितंदत्तंगरुडायमहात्मने
तस्माद्दयालुना भाव्यं भूसुरेण विपश्चिता । शुद्धं वर्षति देवस्तु किमशुद्धे न वर्षति

किन्न दीपयते चन्द्रश्चण्डालानां गृहे सदा । तस्मादहं शुनीमेतां याचन्तींश्च पुनःपुनः

उद्धरिष्ये निजैः पुण्यैः पङ्कमग्नाश्च गां यथा ।

इति पुत्रं निराकृत्य प्रतिजज्ञे महामतिः ॥ ९८ ॥

दत्तं दत्तं महापुण्यं द्वादशीदिनसम्भवम् । शुनि! गच्छ हरेर्धाम निर्धूताऽखिलकल्मषा

तद्वाक्यात्सहसा भूप! दिव्याऽऽभरणभूषिता । विमुच्य देहंजीर्णंतुदिव्यरूपधराशुभा

शताऽऽदित्यप्रभा जाता सावित्रीप्रतिमा यथा ।

जगामाऽऽमन्त्र्य तं विप्रं द्योयन्ती दिशो दश ॥ १०१ ॥

भुक्त्वा दिवि महाभोगान्पश्चाज्जातामहीतले । नरनारायणाद्देवादुर्वशीनाम नामतः ॥

वैशाखशुद्धद्वादश्याः प्रभावेण वराङ्गना । देवानाश्चप्रियाजाता अप्सरस्त्वंचसाययौ

यद्योगिगम्यं हुतभुक्प्रकाशं वरं वरेण्यं परमार्थरूपम् ।

यत्प्राप्य सन्तोऽपि हि यान्ति मोहं तत्प्राप रूपश्च शुनी हि देवी ॥ १०४॥

पश्चात्स पद्मबन्धुर्हि तां तिथिं पुण्यवर्द्धिनीम् ।

लोकेटीं ख्यापयामास मधुद्विट्प्राणवल्लभाम् ॥ १०५ ॥

कोटीन्दुसूर्यग्रहणाधिका सा समस्तरूपाधिकपुण्यरूपा ।

यज्ञैः समस्तैरतिरिच्यमाना द्विजेन ख्याता भुवनत्रये च ॥ १०६ ॥

इहि श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे

वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे शुनीमोक्षप्राप्तिर्नाम

चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

वैशाखमासमाहात्म्योपसंहारवर्णनम्

श्रुतदेव उवाच

यास्तिस्रस्तिथयः पुण्या अन्तिमाः शुक्लपक्षके ।
वैशाखमासि राजेन्द्र! पूर्णिमान्ताः शुभावहाः ॥ १ ॥
अन्त्याः पुष्करिणीसञ्ज्ञाः सर्वपापक्षयावहाः । माधवेमासियत्पूर्णंस्नानंकर्त्तुं नचक्षमः
तिथिष्वेतासु स स्नायात्पूर्णमेव फलं लभेत् ।
सर्वे देवास्त्रयोदश्यां स्थित्वा जन्तून्पुनन्ति हि ॥ ३ ॥
पूर्णायाः सर्वतीर्थैश्च विष्णुनासहसंस्थिताः । चतुर्दश्यांसयज्ञाश्चदेवाएतान्पुनन्तिहि
ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा सर्वानेतान्पुनन्ति हि । एकादश्यां पुराजज्ञेवैशाख्याममृतंशुभम्
द्वादश्यां पालितं तच्चविष्णुनाप्रभविष्णुना । त्रयोदश्यांसुधांदेवान्पाययामासवैहरिः
जघान च चतुर्दश्यां दैत्यान्देवविरोधिनः । पूर्णायांसर्वदेवानांसाम्राज्याऽऽप्तिर्बभूवह
ततो देवाः सुसन्तुष्टाएतासांचवरंददुः । तिसृणाञ्चतिथीनांवैप्रीत्योत्फुल्लविलोचनाः
एता वैशाखमासस्य तिस्रश्च तिथयःशुभाः । पुत्रपौत्रादिफलदानराणां पापहानिदाः
योऽस्मिन्मासे च सम्पूर्णेनस्नातो मनुजाधमः ।तिथित्रयेतुसस्नात्वापूर्णमेवफलंलभेत्
तिथित्रयेप्यकुर्वाणः स्नानदानादिकं नरः । चाण्डालीं योनिमासाद्यपश्चाद्रौरवमश्नुते
उष्णोदकेन यः स्नाति माधवे च तिथित्रये । रौरवं नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश
पितृन्देवान्समुद्दिश्यदध्यन्नंन ददाति यः । पैशाचींयोनिमासाद्य तिष्ठत्याभूतसम्प्लवम्
प्रवृत्तानाञ्चकामानां माधवे नियमे कृते । अपश्यं विष्णुसायुज्यं युज्यतेनाऽत्र संशयः
आमासं नियमासक्तः कुर्याद्यदि दिनत्रये । तेन पूर्णफलम्प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे
यो वै देवान्पितृन्विष्णुं गुरुमुद्दिश्य मानवः ।
न स्नानादि करोत्यद्धाऽमुष्य शापप्रदा वयम् ॥ १६ ॥

निःसन्तानोनिरायुश्चनिःश्रेयस्कोभवेदिति । इति देवावरंदत्त्वा स्वधामानिययुःपुरा
तस्मात्तिथित्रयंपुण्यंसर्वघौघविनाशनम् । अन्त्यं पुष्करिणीसञ्ज्ञंपुत्रपौत्रविवर्द्धनम्
या नारीसुभगाऽऽपूपपायसं पूर्णिमादिने । ब्राह्मणायसकृद्दद्यात्कीर्तिमन्तंसुतं लभेत्
गीतापाठन्तु यः कुर्यादन्तिमे च दिनत्रये । दिनेदिनेऽश्वमेधानां फलमेति न संशयः
सहस्रनामपठनं यः कुर्य्याच्च दिनत्रये । तस्यपुण्यफलं वक्तुं कः शक्तोदिविवाभुवि
सहस्रनामभिर्देवं पूर्णायां मधुसूदनम् । पयसास्नाप्य वै यातिविष्णुलोकमकल्मषम्
समस्तविभवैर्यस्तु पूजयेन्मधुसूदनम् । न तस्यलोकाः क्षीयन्ते युगकल्पादिव्यत्यये

अस्नात्वा चाऽप्यदत्त्वा च वैशाखश्च गतो यदि ।
स ब्रह्महा गुरुघ्नश्च पितॄणां घातकस्तथा ॥ २४ ॥
श्लोकार्द्धं श्लोकपादंवा नित्यं भागवतोद्भवम् ।
वैशाखे च पठन्मर्त्यो ब्रह्मत्वं चोपपद्यते ॥ २५ ॥

यो वै भागवतं शास्त्रं शृणोत्येतद्दिनत्रये । न पापैर्लिप्यतेक्वाऽपि पद्मपत्रमिवाम्भसा
देवत्वं मनुजैः प्राप्तंकैश्चित्सिद्धत्वमेवच । कैश्चित्प्राप्तो ब्रह्मभावो दिनत्रयनिषेवणात्
ब्रह्मज्ञानेन वै मुक्तिः प्रयागमरणेन वा । अथवा मासि वैशाखे नियमेन जलाप्लुतेः ॥

नीलं वृषं समुत्सृज्य वैशाख्याश्च जलाप्लुतेः ।
समस्तबन्धनिर्मुक्तः पुमान्याति परं पदम् ॥ २६ ॥

गां सवत्सां द्विजेन्द्राय सीदते च कुटुम्बिने । इहापमृत्युनिर्मुक्तःपरत्र च परस्त्रजेत्
स्नानदानविहीनस्तुवैशाखीश्चैवयो नयेत् । श्वानयोतिशतंप्राप्य विष्ठायांजायतेकृमिः
तिस्रःकोट्योऽर्धकोटिश्चतीर्थानिभुवनत्रये । सम्भूयमन्त्रयाञ्चक्रुःपापसङ्घातशङ्किताः

जना अस्मासु पापिष्ठा विसृजन्ति स्वकं मलम् ।
तदस्माकं कथं गच्छेदितिचिन्तासमन्विताः ॥ ३३ ॥

तीर्थपादंहरिंजग्मुःशरण्यंशरण्यंविभुम् । स्तुत्वा च बहुभिःस्तोत्रैःप्रार्थयामासुरञ्जसा
देवदेव जगन्नाथ सर्वाघौघविनाशन! । जना अस्मासुपापिष्ठाःस्नात्वा पापानिसर्वशः

विसृज्य त्वत्पदं यान्ति त्वदाज्ञाधारिणो भुवि ।

अस्माकञ्चैव तत्पापंकथं गच्छेज्जनार्दन! ॥ ३६ ॥

तदुपायं वदास्माकंत्वत्पादशरणैषिणाम् । इति तीर्थैः प्रार्थितस्तु भगवान्भूतभावनः

प्रहसन्प्राह तीर्थानि मेघगम्भीरया गिरा ।

श्रीभगवानुवाच

सिते पक्षे मेषसूर्ये वैशाखान्ते दिनत्रये ॥ ३८ ॥

सर्वतीर्थमये पुण्ये ममाऽपि प्राणवल्लभे । यूयं भगोदयात्पूर्वं बहिःसंस्थजलाप्लुताः

विमुक्ताघाः पुण्यरूपा भवन्त्वाशु सुनिर्मलाः । भवद्भिश्च विमुक्ताघैर्येनस्नातादिनत्रये

तेषु तिष्ठन्तु तत्पापं जनैर्युष्मद्भिरेचितम् । इतितीर्थपदोविष्णुस्तीर्थानाञ्चवरं ददौ

अनुज्ञाप्यच तान्योगात्तत्रैवान्तरधीयत । स्वधामानिपुनः प्राप्यतानितीर्थानिनित्यशः

प्रतिवर्षन्तु वैशाखे तथैवान्त्यदिनत्रये । तेनाघौघं विमुच्यैव यान्ति निर्मलतामहो

ये तु स्नानंनकुर्वन्तिवैशाखान्तदिनत्रये । तेभवन्तु समस्तानांजनानांपातकाऽऽश्रयाः

इति शापञ्च तीर्थानि ह्यस्नातानां वदन्ति च ।

न तेन सदृशः पापो यो न स्नातो दिनत्रये ॥ ४५ ॥

विचारितेषुशास्त्रेषु न दृष्टो न च वै श्रुतः । तस्माद्दिनत्रयेकार्यंस्नानदानार्चनादिकम्

अन्यथा नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश । इत्येतत्सर्वमाख्यातं श्रुतकीर्ते! महामते! ॥

पृष्टं वैशाखमाहात्म्यंयथादृष्टंयथाश्रुतम् । माहात्म्यस्यचलेशोऽयंमाधवस्यचवर्णितः

कात्स्न्यार्द्वक्तुं च ब्रह्माऽपि नाऽलं वर्षशतैरपि ।

पुरा कैलासशिखरे पार्वत्यै शङ्करः स्वयम् ॥ ४६ ॥

आह माधवमाहात्म्यं पृच्छन्त्यै शतवत्सरम् । तथापि नान्तमगमदशक्तो विरराम ह

को नु वर्णयितुं शक्तः कात्स्न्यार्न्माहात्म्यमुत्तमम् ।

विना विष्णुं जगन्नाथं नारायणमनामयम् ॥ ५१ ॥

पुरा सर्वेऽपिऋषयोमाहात्म्यंपापनाशनम् । लेशस्यलेशंव्याचख्युर्जनानांहितकाम्यया

नाऽन्तः केनापि व्याख्यातो ह्यशक्तत्वान्महीपते! ।

त्वञ्च मासे तु वैशाखे कुरु दानादिसत्क्रियाः ॥ ५३ ॥

तेन भुक्तिश्चमुक्तिश्चसम्प्राप्नोषि न संशयः । इति तं बोधयित्वाच मैथिलंजनकाह्वयम्
श्रुतदेवस्तमामन्त्र्य गन्तुंचक्रे मनस्ततः । जाताह्लादः स राजर्षिर्गलद्बाष्पाकुलेक्षणः
उत्सवं कारयामास स्वाभिवृद्ध्यै मनोरमम् ।
ग्रामं प्रदक्षिणीकृत्य शिविकामधिरोप्य तम् ॥ ५६ ॥
चतुरङ्गबलैर्युक्तः स्वयं पृष्ठमथाऽन्वगात् । पुनश्चान्तः पुरम्प्राप्य सकलैर्विभवैरपि ॥
वस्त्रैराभरणैश्चैव गोभूतिलहिरण्यकैः । प्रणम्य च परिक्रम्य तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥
ततः स तु महातेजाः श्रुतदेवो महायशाः । सन्तुष्टः परमप्रीतोययौ धामस्वकंमुनिः
त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां च माधवे । स्नानं दानं पूजनञ्च कथाश्रवणमेवच
वैशाखधर्मनिरतः स वै मोक्षमवाप्नुयात् । धनशर्मा ब्राह्मणश्च प्रेताश्चैव यथा पुरा ॥

नारद उवाच

इत्येतत्परमाख्यानमम्बरीष! तवोदितम् । श्रवणात्सर्वपापघ्नं सर्वसम्पद्विधायकम्
तेन भुक्तिश्च मुक्तिश्च ज्ञानंमोक्षश्चविन्दति । इतितस्यवचःश्रुत्वा अम्बरीषोमहायशाः
प्रहृष्टान्तरवृत्तिश्च वाह्यव्यापारवर्जितः । प्रणनाम तथा मूर्ध्ना दण्डवत्पतितो भुवि
विभ्रमैरखिलैश्चाऽपिपूजयामासतम्पुनः । सम्पूजितस्तमामन्त्र्यनारदो भगवान्मुनिः
लोकान्तरं ययौ धीमाञ्छापान्नैकत्र संस्थितिः ।
अम्बरीषोऽपि राजर्षिर्नारदोक्तानिमाञ्छुभान् ॥ ६६ ॥
धर्मान्कृत्वा विलीनोऽभूत्परे ब्रह्मणि निर्गुणे ।

सूत उवाच

य इदं परमाख्यानं पापघ्नं पुण्यवर्धनम् ॥ ६७ ॥
शृणयाद्वा पठेद्वाऽपि स यातिपरमाङ्गतिम् । लिखितं पुस्तकंयेषां गृहेतिष्ठतिमानदाः
तेषां मुक्तिः करस्था हि किमु तच्छ्रवणात्मनाम् ॥ ६८ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादेफलश्रुतिकथनंनाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५

समाप्तमिदं वैशाखमासमाहात्म्यम्

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथाऽयोध्यामाहात्म्यारम्भः

प्रथमोऽध्यायः

विष्णुहरिमाहात्म्यवर्णनम्

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ।
यस्याऽऽस्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति ॥ १ ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैवनरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ २

व्यास उवाच

हिमवद्वासिनःसर्वे मुनयो वेदपारगाः । त्रिकालज्ञा महात्मानो नैमिषारण्यवासिनः ॥
येऽर्बुदारण्यनिरता दण्डकारण्यवासिनः । महेन्द्राद्रिरतायेवै ये चविन्ध्यनिवासिनः
जम्बूवनरता ये च ये गोदावरिवासिनः । वाराणसीश्रिता येच मथुरावासिनस्तथा ॥
उज्जयिन्यां रता ये च प्रथमाश्रमवासिनः । द्वारावतीश्रिता येच बदर्य्याश्रयिणस्तथा
मायापुरीश्रिता ये चयेचकान्तीनिवासिनः । एतेचान्येचमुनयःसशिष्याबहवोऽमलाः
कुरुक्षेत्रे महाक्षेत्रे सत्रे द्वादशवार्षिके । वर्तमाने च रामस्य क्षितीशस्य महात्मनः ॥
समागताः समाहूताः सर्वे ते मुनयोऽमलाः ॥ ८ ॥

सर्वे ते शुद्धमनसो वेदवेदाङ्गपारगाः । तत्रस्नात्वा यथान्यायं कृत्वा कर्म जपादिकम्
भारद्वाजं पुरस्कृत्य वेदवेदाङ्गपारगम् । आसनेषु विचित्रेषु बृष्यादिषु ह्यनुक्रमात् ॥
उपविष्टाः कथाश्चक्रुर्नानातीर्थाश्रितास्तदा । कर्मान्तरेषुसत्रस्यसुखासीनाःपरस्परम्
कथान्तेषु ततस्तेषां मुनीनांभावितात्मनाम् । आजगाममहातेजास्तत्रसूतोमहामतिः

व्यासशिष्यः पुराणज्ञो रोमहर्षणसञ्ज्ञकः । तान्प्रणम्य यथान्यायं मुनीनांवचनेनसः
उपविष्टो यथान्यायं मुनीनां वचनेन सः ॥ १३ ॥
व्यासशिष्यं मुनिवरं सूतं वै रोमहर्षणम् । तं पप्रच्छुर्मुनिवरा भारद्वाजादयोऽमलाः

ऋषय ऊचुः

त्वत्तः श्रुता महाभागनानातीर्थाश्रिताःकथाः । सरहस्यानिसर्वाणिपुराणानिमहामते
साम्प्रतंश्रोतुमिच्छामःसरहस्यंसनातनम्।अयोध्यायामहापुर्यामहिमानंगुणोज्ज्वलम्
कीदृशीसा सदा मेध्यसऽयोध्या विष्णुप्रिया पुरी ।
आद्या सा गीयते वेदे पुरीणां मुक्तिदायिका ॥ १७ ॥
संस्थानं कीदृशं तस्यास्तस्यां के च महीभुजः ।
कानि तर्थानि पुण्यानि महात्म्यं तेषुकीदृशम् ॥ १८ ॥
अयोध्यासेवनान्नृणां फलं स्यात् सूत! कीदृशम् ।
किं चरित्रं सूत! तस्याः का नद्यः के च सङ्गमाः ॥ १९ ॥
तत्र स्नानेन किं पुण्यं दानेन च महामते! ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तः सूत! गुणाधिक! ॥ २० ॥
एतत्सर्वं क्रमेणैव तथ्यं त्वं वेत्थ साम्प्रतम् ।
अयोध्याया महापुर्या माहात्म्यं वक्तुमर्हसि ॥ २१ ॥

सूत उवाच

व्यासप्रसादाज्ज्ञानामिपुराणानितपोधनाः । सेतिहासानिसर्वाणिसरहस्यानितत्त्वतः
तं प्रणम्य प्रवक्ष्यामि माहात्म्यंभवदग्रतः । अयोध्यायामहापुर्यायथावत्सरहस्यकम्
विद्यावन्तं विपुलमतिदं वेदवेदाङ्गवेद्यं श्रेष्ठं शान्तं शमितविषयं शुद्धतेजोविशालम् ।
वेदव्यासं सततविनतं विश्ववेद्यैकयोनिं पाराशर्यं परमपुरुषं सर्वदाऽहं नमामि ॥२४
ॐनमोभगवतेतस्मैव्यासायामिततेजसे । यस्यप्रसादाज्ज्ञानामिह्ययोध्यामहिमामहम्
शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सावधानाः सशिष्यकाः ।
माहात्म्यं कथयिष्यामि अयोध्याया महोदयम् ॥ २६ ॥

उदीरितमगस्त्याय स्कन्देनाऽश्रावि नारदात् ।
अगस्त्येन पुरा प्रोक्तं कृष्णद्वैपायनाय तत् ॥ २७ ॥
कृष्णद्वैपायनाच्चैतन्मयाप्राप्तं तपोधनाः । तदहं वच्मि युष्मभ्यंश्रोतुकामेभ्यआदरात्
नमामि परमात्मानं रामं राजीवलोचनम् । अतसीकुसुमश्यामं रावणान्तकमव्ययम्
अयोध्या सा परा मेध्या पुरी दुष्कृतिदुर्लभा ।
कस्य सेव्या च नाऽयोध्या यस्यां साक्षाद्धरिः स्वयम् ॥ ३० ॥
सरयूतीरमासाद्य दिव्यापरमशोभना । अमरावत्ती निभा प्रायः श्रिता बहुतपोधनैः
हस्त्यश्वरथपत्त्याढ्या सम्पदुच्चा च संस्थिता ।
प्राकाराढ्यप्रतोलीभिस्तोरणैः काञ्चनप्रभैः ॥ ३२ ॥
सानूपवेषैः सर्वत्र सुविभक्तचतुष्टया । अनेकभूमिप्रासादाबहुभित्तिसुविक्रिया ॥३३॥
पद्मोत्फुल्लशुभोदाभिर्वापीभिरुपशोभिता । देवतायतनैर्दिव्यैर्वेदघोषैश्च मण्डिता ॥
वीणावेणुमृदङ्गादिशब्दैरुत्कृष्टताङ्गता । शालैस्तालैर्नालिकेरैःपनसामलकैस्तथा ॥३५
तथैवाम्रकपित्थाद्यैरशोकैरुपशोभिता । आरामैर्विविधैर्युक्ता सर्वर्तुफलपादपैः ॥ ३६
मालतीजातिबकुलपाटलीनागचम्पकैः । करवीरैः कर्णिकारैः केतकीभिरलङ्कृता ॥
निम्वजम्बीरकदलीमातुलिङ्गमहाफलैः । लसच्चन्दनगन्धाढ्यैर्नागरैरुपशोभिता ॥
देवतुल्याप्रभायुक्तैर्नृपपुत्रैश्च संयुता । सुरूपाभिर्वरस्त्रीभिर्देवस्त्रीभिरिवावृता ॥ ३९॥
श्रेष्ठैः सत्कविभिर्युक्तावृहस्पतिसमैर्द्विजैः । वणिग्जनैस्तथा पौरैःकल्पवृक्षैरिवावृता
अश्वैरुच्चैः श्रवस्तुल्यैर्दन्तिभिर्दिग्गजैरिव । इति नानाविधैर्भावैरुपेतेन्द्रपुरीसमा ॥
यस्यांजातामहीपालाः सूर्यवंशसमुद्भवाः । इक्ष्वाकुप्रमुखाः सर्वे प्रजापालनतत्पराः ॥
यस्यास्तीरे पुण्यतोया कूजद्भृङ्गविहङ्गमा । सरयूर्नाम तटिनी मानसप्रभवोल्लसा
धर्मद्रवपरीता सा घर्घरोत्तमसङ्गमा ।
मुनीश्वराश्रिततटा जागर्ति जगदुच्छ्रिता ॥ ४४ ॥
दक्षिणाच्चरणाङ्गुष्ठान्निःसृता जाह्नवी हरेः । वामाङ्गुष्ठान्मुनिवराः सरयूर्निर्गता शुभा ॥
तस्मादिमे पुण्यतमे नद्यौ देवनमस्कृते । एतयोः स्नानमात्रेण ब्रह्महत्यां व्यपोहति

तामयोध्यामथ प्राप्तोऽगस्त्यः कुम्भोद्भवो मुनिः ।
यात्रार्थं तीर्थमाहात्म्यं ज्ञात्वा स्कन्दप्रसादतः ॥ ४७ ॥

आगत्यतुपुनःसोऽपिकृत्वायात्रांक्रमेणच । यथोक्तेनविधानेनस्नात्वासन्तर्प्यतान्पितॄन्
पूजयित्वायथान्यायंदेवताःसकलाअपि । सर्वाण्यपिचतीर्थानिनमस्कृत्ययथाविधि
कृतकृत्योर्ज्जितानन्दस्तीर्थमाहात्म्यदर्शनात् । अभूदगस्त्योरूपेण पुलकाञ्चितविग्रहः

स त्रिरात्रं स्थितस्तत्र यात्रां कृत्वा यथाविधि ।
स्तुवन्नयोध्यामाहात्म्यं प्रतस्थे मुनिसत्तमः ॥ ५१ ॥
तमायान्तं विलोक्याऽऽशु वहुलानन्दसुन्दरम् ।
कृष्णद्वैपायनो व्यासः पप्रच्छाऽऽनन्दकारणम् ॥ ५२ ॥

व्यास उवाच

कुतः समागतो व्रह्मन्साम्प्रतं मुनिसत्तमः । परमानन्दसन्दोहः समभूत्सांप्रतं तव ॥
कस्मादानन्दपोषोऽभूत्तव व्रह्मन्वदस्व मे । ममापि भवदानन्दात्प्रमोदोहृदि जायते ॥

अगस्त्य उवाच

अहो महदथाश्चर्य्यं विस्मयो मुनिसत्तम! । दृष्ट्वाप्रभावं मेऽद्याभूदयोध्यायास्तपोधन

तस्मादानन्दसन्दोहः समभून्मम साम्प्रतम् ।
तच्छ्रुत्वागस्त्यवचनं व्यासः प्रोवाच तं मुनिम् ॥ ५६ ॥

व्यास उवाच

भगवन्ब्रूहितत्त्वेनविस्तरात्सरहस्यकम् । अयोध्यायामहापुर्या महिमानंगुणाधिकम्

कः क्रमस्तीर्थयात्रायाः कानि तीर्थानि को विधिः ।
किं फलं स्नानतस्तत्र दानस्य च महामुने! ॥
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तराद्वदतांम्वर ॥ ५८ ॥

अगस्त्य उवाच

अहो धन्यतमाबुद्धिस्तवजातातपोधन! । दृश्यते येन पृच्छा ते ह्ययोध्यामहिमाश्रिता

अकारो व्रह्म च प्रोक्तं यकारो विष्णुरुच्यते । धकारो रुद्ररूपश्च अयोध्यानाम राजते

सर्वोपपातकैर्युक्तैर्ब्रह्महत्यादिपातकैः । नायोध्या शक्यतेयस्मात्तामयोध्यांततोविदुः
विष्णोराद्या पुरी येयं क्षितिं न स्पृशति द्विज! ।
विष्णोः सुदर्शने चक्रे स्थिता पुण्यकरी क्षितौ ॥ ६२ ॥
केन वर्णयितुं शक्यो महिमाऽस्यास्तपोधन! ।
यत्र साक्षात्स्वयं देवो विष्णुर्वसति सादरः ॥ ६३ ॥
सहस्रधारामारभ्य योजनं पूर्वतोदिशि । तथैवदिक्प्रतीच्यां वै योजनं समतोऽवधिः
दक्षिणोत्तरभागे तु सरयूतमसावधिः । एतत्क्षेत्रस्य संस्थानं हरेरन्तर्गृहंस्थितम्
मत्स्याकृतिरियंविप्रपुरीविष्णोरुदीरिता । पश्चिमेतस्यमूर्द्धातुगोप्रतारासिताद्द्विज
पूर्वतः पृष्ठभागो हि दक्षिणोत्तमरमध्यमः ।
तस्यां पुर्यां महाभाग! नाम्ना विष्णुर्हरिः स्वयम् ॥
पूर्वं दृष्टप्रभावोऽसौ प्राधान्येन वसत्यपि ॥ ६७ ॥
व्यास उवाच
भगवन्किम्प्रभावोऽसौ योऽयं विष्णुहरिस्त्वया ।
कीर्तितो मुनिशार्दूल प्रसिद्धिं गतवान्कथम् ॥
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण ममाऽग्रतः ॥ ६८ ॥
अगस्त्य उवाच
विष्णुशर्मेति विख्यातः पुराऽभूद्ब्राह्मणोत्तमः । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञोधर्मकर्मसमाश्रितः
योगध्यानरतो नित्यंविष्णुभक्तिपरायणः । सकदाचित्तीर्थयात्रांकुर्वन्वैष्णवसत्तमः
अयोध्यामागतो विष्णुर्विष्णुः साक्षाद्वसेदिति ॥ ७० ॥
चिन्तयन्मनसा वीरस्तपः कर्तुंसमुद्यतः । स वै तत्र तपस्तेपे शाकमूलफलाशनः॥
ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यस्थो ह्यतपत्स महातपाः । वार्षिकेच निरालम्बोहेमन्ते च सरोवरे
स्नात्वा यथोक्तविधिना कृत्वा विष्णोस्तथाऽर्चनम् ।
वशीकृत्येन्द्रियग्रामं विशुद्धेनाऽन्तरात्मना ॥ ७३ ॥

मनोविष्णौसमावेश्यविधायप्राणसंयमम् । ॐकारोच्चारणाद्धीमान्हृदिपद्मंविकाशयन्

तन्मध्येरविसोमाग्निमण्डलानियथाविधि । कल्पयित्वाहरिंमूर्तंयस्मिन्देशेसनातनम्
पीताम्बरधरं विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम् । तञ्चपुष्पैःसमभ्यर्च्य मनस्तस्मिन्निवेश्यच
ब्रह्मरूपं हरिंध्यायञ्जपन्वैद्वादशाक्षरम् । वायुभक्षःस्थितस्तत्र विप्रस्त्रीन्वत्सरान्वसन्
ततो द्विजवरो ध्यात्वा स्तुतिञ्चक्रे हरेरिमाम् । प्रणिपत्यजगन्नाथं चराचरगुरुंहरिम्
विष्णुशर्माऽथ तुष्टाव नारायणमतन्द्रितः ॥ ७८ ॥

विष्णुशर्मोवाच

प्रसाद भगवन्विष्णो! प्रसीद पुरुषोत्तम! । प्रसीद देवदेवेश! प्रसीद कमलेक्षण! ॥
जयकृष्ण!जयाचिन्त्य!जयविष्णो!जयाव्यय! । जययज्ञपते!नाथ!जयविष्णोपतेविभो
जय पापहरानन्त जय जन्मज्वरापह । नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने ॥ ८१ ॥
नमः सर्वेश भूतेश तमः कैटभसूदन! । नमस्त्रैलोक्यनाथाय जगन्मूल! जगत्पते ॥८२॥
नमो देवाधिदेवाय नमो नारायणाय वै । नमः कृष्णाय रामाय नमश्चक्रायुधाय च ॥

त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतःपिता ।
भयार्त्तानां सुहृन्मित्रं त्वं पिता त्वं पितामहः ॥ ८४ ॥
त्वं हविस्त्वं वषट्कारस्त्वं प्रभुस्त्वं हुताशनः ।
करणं कारणं कर्त्ता त्वमेव परमेश्वरः ॥ ८५ ॥
शङ्खचक्रगदापाणे! मां समुद्धर माधव! ॥ ८६ ॥

प्रसीद मन्दरधर! प्रसीद मधुसूदन! । प्रसीद कमलाकान्त प्रसीद भुवनाधिप! ॥८७॥

अगस्त्य उवाच

इत्येवं स्तुवतस्तस्यमनोभक्त्यामहात्मनः । आविर्बभूव विश्वात्मा विष्णुर्गरुडवाहनः
शङ्खचक्रपदापाणिः पीताम्बरधरोऽच्युतः । उवाचस प्रसन्नात्माविष्णुशर्माणमव्ययः

श्रीभगवानुवाच

तुष्टोऽस्मि भवतो वत्स महता तपसाऽधुना ।
स्तोत्रेणानेन सुमते! नष्टपापोऽसिसाम्प्रतम् ॥ ९० ॥

वरम्वरयविप्रेन्द्र! वरदोऽहं तवाऽग्रतः । नाऽतस्तपसा द्रष्टुं शक्यः केनाऽप्यहं द्विज!

विष्णुशर्म्मोवाच

कृतकृत्योऽस्मि देवेश साम्प्रतं तवदर्शनात् । त्वद्भक्तिमचलामेकां मम देहि जगत्पते

श्रीभगवानुवाच

भक्तिरस्त्वचलामेवैवैष्णवीमुक्तिदायिनी । अत्रैवास्त्वचलामेवै जाह्नवीमुक्तिदायिनी

इदं स्थानं महाभाग! त्वन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति ॥ ६४॥

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वादेवदेवेशश्चक्रेणोत्खायतत्स्थलम् । जलं प्रकटयामास गाङ्गंपातालमण्डलात्

जलेन तेन भगवान्पवित्रेण दयाम्बुधिः । नीरजस्कं भूमितलं क्षणाच्चक्रे कृपावशात्

चक्रतीर्थमिति ख्यातं ततः प्रभृति तद्द्विज! ।

जातं त्रैलोक्यविख्यातमघौघध्वंसकृच्छुभम् ॥ ६७ ॥

तत्र स्नानेन दानेन विष्णुलोकम्व्रजेन्नरः॥ ६८ ॥

ततः स भगवान्भूयोविष्णुशर्माणमच्युतः । कृपया परया युक्त उवाच द्विजवत्सलः

श्रीभगवानुवाच

त्वन्नामपूर्विकाविप्रमन्मूर्त्तिरिहतिष्ठतु । विष्णुहरीतिविख्याता मुक्तानांमुक्तिदायिनी

अगस्त्य उवाच

इतिश्रुत्वावचोविप्रोवासुदेवस्यबुद्धिमान् । स्वनामपूर्विकांमूर्तिंस्थापयामासचक्रिणः

ततः प्रभृति विप्रेश! शङ्खचक्रगदाधरः । पीतवासाश्चतुर्बाहुर्नाम्नाविष्णुहरिः स्थितः

कार्त्तिकेशुक्लपक्षस्यप्रारम्भ्यदशमीतिथिम् । पूर्णिमामवधिंकृत्वायात्रासाम्वत्सरीभवेत्

चक्रतीर्थेनरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते । बहुवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥

पितॄनुद्दिश्य यस्तत्र पिण्डान्निर्वापयिष्यति ।

तृप्तास्तु पितरो यान्ति विष्णुलोकं न संशयः ॥ १०५ ॥

चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा विष्णुहरिं विभुम् । सर्वपापक्षयंप्राप्य नाकपृष्ठे महीयते

स्वशक्त्या तत्र दानानि दत्त्वा निष्कल्मषो नरः ।

विष्णुलोके वसेद्धीमान्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ १०७ ॥

अन्यदाऽपि नरस्तत्र चक्रतीर्थे जितेन्द्रियः । दृष्ट्वा सकृद्धरिंदेवं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

इति सकलगुणाब्धिर्ध्येयमूर्तिश्चिदात्मा
हरिरिह परमूर्त्या तस्थिवान्मुक्तिहेतोः ।
तमिह बहुलभक्त्या चक्रतीर्थाभिषेकी
वसति सुकृतिमूर्त्तिर्योऽर्चयेद्विष्णुलोके ॥ १०६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये विष्णुहरिमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्मकुण्डसहस्रधारातीर्थवर्णनम्

सूत उवाच

अगस्त्यमुनिरित्युक्त्वा चक्रतीर्थाश्रयां कथाम् ।
विभोर्विष्णुहरेश्चापि पुनराह द्विजोत्तमाः ॥ १ ॥

अगस्त्य उवाच

पुरा ब्रह्माजगत्स्रष्टाविज्ञायहरिमच्युतम् । अयोध्यावासिनंदेवंतत्रचक्रेस्थितिंस्वयम्
आगत्यकृतवांस्तत्र यात्रां ब्रह्मायथाविधि । यज्ञश्चविधिवच्चक्रेनानासम्भारसंयुतम्
ततः स कृतवां स्तत्र ब्रह्मालोकपितामहः ।
कुण्डं स्वनाम्ना विपुलं नानादेवसमन्वितम् ॥ ४ ॥
विस्तीर्णजलकल्लोलकलितं कलुषापहम् । कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीककुलाकुलम् ॥
हंससारसचक्राह्वविहङ्गममनोहरम् । तटान्तविटपोल्लासिपतत्त्रिगणसङ्कुलम् ॥ ६ ॥
तत्र कुण्डेसुराः सर्वस्नाताःशुद्धिसमन्विताः । बभूवुरुद्धा विगतरजस्काविमलत्विषः

तदाश्चर्यं महद्दृष्ट्वा ते सर्वे सहसासुराः । ब्रह्माणम्प्रणिपत्योचुर्भक्त्या प्राञ्जलयस्तदा

देवा ऊचुः

भगवन्ब्रूहि तत्त्वेन माहात्म्यंकमलासन । अस्य कुण्डस्यसकलंखातस्यविमलत्विषः
अत्रस्नानेनसर्वेषामस्माकंविगतं रजः । महदाश्चर्यमेतस्य दृष्ट्वा कुण्डस्यविस्मिताः
सर्वे वयं सुरश्रेष्ठ! कृपया त्वमतो वद ॥ १० ॥

ब्रह्मोवाच

शृण्वन्तु सर्वे त्रिदशाः! सावधानाः सविस्मयाः ।
कुण्डस्यैतस्य माहात्म्यं नानाफलसमन्वितम् ॥ ११ ॥

अत्रस्नानेनविधिवत्पापात्मानोऽपिजन्तवः । विमानंहंससंयुक्तमास्थायरुचिराम्बराः
(अध्यासते) निवसन्ति ब्रह्मलोकं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ १२ ॥

अत्र दानेन होमेन यथाशक्त्या सुरोत्तमाः । तुलाश्वमेधयोःपुण्योप्राप्नुयुर्मुनिसत्तमाः
ममास्मिन्सरसिश्रीमाञ्जायतेस्नानतोनरः । तस्मादत्र विधानेनस्नानंदानंजपादिकम्
सर्वयज्ञसमंस्याद्वैमहापातकनाशनम् । ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातिमितोयास्यत्यनुत्तमाम्
अस्मिन्कुण्डेचसान्निध्यंभविष्यतिसदामम । कार्त्तिकेशुक्लपक्षस्यचतुर्दश्यांसुरोत्तमाः
यात्रा भविष्यति सदा सुराः! साम्वत्सरीमम । शुभप्रदा महापापराशिनाशकरीतदा
स्वर्णञ्चैवसदादेयंवासांसिविविधानिच । निजशक्त्याप्रकर्तव्यासुरास्तृप्तिर्द्विजन्मनाम्

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवोऽयं ब्रह्मा लोकपितामहः । अन्तर्दधे सुरैः सार्द्धं तीर्थं दृष्ट्वा तपोधन!
तदाप्रभृति तत्कुण्डंविख्यातंपरमम्भुवि । चक्रतीर्थाच्चपूर्वस्यांदिशिकुण्डंस्थितंमहत्

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तपोराशिरगस्त्यः कुम्भसम्भवः ।
पुनः पृष्टो मुनिवरो व्यासायाऽब्रवीदत्कथाम् ॥ २१ ॥

अगस्त्य उवाच

अन्यच्छृणु महाभाग! तीर्थंगुह्यमतिदुर्लभम् । ऋणमोचनसंज्ञन्तु सरयूतीरसङ्गतम्

ब्रह्मकुण्डान्मुनिवर! धनुःसप्तशतेन च। पूर्वोत्तरदिशाभागे संस्थितं सरयूजले ॥२३॥
तत्र पूर्वं मुनिवरो लोमशोनाम नामतः। तीर्थयात्राप्रसङ्गेन स्नानञ्चक्रे विधानतः ॥
ततः स ऋणनिर्मुक्तो बभूव गतकल्मषः। तदाश्चर्य्यं महद्दृष्ट्वा मुनीन्सानन्दमब्रवीत्
पश्यन्त्वेतस्यमहतोगुणांस्तीर्थवरस्य वै। भुजावूर्ध्वंतथाकृत्वाहर्षेणाऽऽह्राश्रुलोचनः

लोमश उवाच

ऋणमोचनसञ्ज्ञन्तु तीर्थमेतदनुत्तमम्। यत्र स्नानेन जन्तूनामृणनिर्यातनम्भवेत् ॥
ऐहिकं पारलौकिक्यं यदृणत्रितयं नृणाम्।
तत्सर्वं स्नानमात्रेण तीर्थेऽस्मिन्नश्यति क्षणात् ॥ २८ ॥
सर्वतीर्थोत्तमं चैतत्सद्यः प्रत्ययकारकम्। मया चाऽस्य फलं सम्यगनुभूतमृणादिह
तस्मादत्र विधानेनस्नानंदानञ्चशक्तितः। कर्त्तव्यंश्रद्धयायुक्तैःसर्वदाफलकाङ्क्षिभिः
स्नातव्यञ्च सुवर्णञ्च देयं वस्त्रादि शक्तितः ॥ ३१ ॥

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वा तीर्थमाहात्म्यं लोमशो मुनिसत्तमः।
अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठः स्तुवंस्तीर्थगुणान्मुदा ॥ ३२ ॥
इत्येतत्कथितं विप्र! ऋणमोचनसञ्ज्ञकम्। यत्रस्नानेनजन्तूनामृणंनश्यतितत्क्षणात्
ऋणमोचनतीर्थन्तु पूर्वतः सरयूजले ॥ ३३ ॥
धनुर्द्विशत्या तीर्थञ्च पापमोचनसञ्ज्ञकम्। सर्वपापविशुद्धात्मा तत्र स्नानेन मानवः ॥
जायते तत्क्षणादेव नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३४ ॥
मया तत्र मुनिश्रेष्ठ! दृष्टं माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३५ ॥
पाञ्चालदेशसम्भूतो नाम्ना नरहरिर्द्विजः। असत्सङ्गप्रभावेण पापात्मा समजायत ॥
नानाविधानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। कृतवान्पापिसङ्गेनत्रयीमार्गविनिन्दकः
स कदाचित्साधुसङ्गात्तीर्थयात्राप्रसङ्गतः। अयोध्यामागतोविप्र! महापातककृद्द्विजः
पापमोचनतीर्थेतुस्नातःसत्सङ्गतोद्विजः। पापराशिर्विनष्टोऽस्यनिष्पापःसमभूत्क्षणात्
दिवः पपात तन्मूर्ध्नि पुष्पवृष्टिर्मुनीश्वर। दिव्यं विमानमारुह्यविष्णुलोकंगतोद्विजः

तद्दृष्ट्वामहदाश्चर्यं मया च द्विजपुङ्गव! । श्रद्धया परयातत्र कृतं स्नानं विशेषतः ॥४१॥
माघकृष्णचतुर्दश्यां तत्र स्नानं विशेषतः ।
दानञ्च मनुजैः कार्य्यं सर्वपापविशुद्धये ॥ ४२ ॥
अन्यदा तु कृते स्नाने सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ४३ ॥
पापमोचनतीर्थे तुपूर्वन्तु सरयूजले । धनुः शतप्रमाणेन वर्त्तते तीर्थमुत्तमम् ॥ ४४ ॥
सहस्रधारासञ्ज्ञन्तु सर्वकिल्विषनाशनम् । यस्मिन्रामाज्ञया वीरो लक्ष्मणः परवीरहा
प्राणानुत्सृज्य योगेन ययौ शेषात्मतां पुरा ॥ ४५ ॥
सार्द्धहस्तत्रयेणैव प्रमाणं धनुषो विदुः । चतुर्भिर्हस्तकैः संख्यादण्डइत्यभिधीयते ॥

सूत उवाच

इत्थंतदासमाकर्ण्यकुम्भयोनिमुनेस्तदा । कृष्णद्वैपायनोव्यासःपुनःपप्रच्छकौतुकात्

व्यास उवाच

सहस्रधारामाहात्म्यंविस्तराद्वद सुव्रत! । शृण्वंस्तीर्थस्य माहात्म्यंनतृप्यतिमनोमम

अगस्त्य उवाच

सावधानः शृणु मुने! कथां कथयतो मम । सहस्रधारातीर्थस्य समुत्पत्तिमहोदयात्
पुरा रामो रघुपतिर्देवकार्यं विधायवै । कालेन सह सङ्गम्य मन्त्रं चक्रे नरेश्वरः ॥५०॥
आवां मन्त्रयमाणौ हि यः पश्येदन्तिकागतः ।
मया त्याज्यो भवेत्क्षिप्रमित्थं चक्रे स सम्विदम् ॥ ५१ ॥
तस्मिन्मन्त्रयमाणेहिद्वारेतिष्ठतिलक्ष्मणे । आगतःसतपोराशिर्दुवासास्तेजसांनिधिः
आगत्य लक्ष्मणं शीघ्रं प्रीत्योवाच क्षुधाऽऽकुलः ॥ ५३ ॥

दुर्वासा उवाच

सौमित्रे! गच्छ शीघ्रं त्वं रामाग्रे मां निवेदय ।
कार्यार्थिनमिदं वाक्यं नाऽन्यथा कर्तुमर्हसि ॥ ५४ ॥

अगस्त्य उवाच

शापाद्भीतः स सौमित्रिर्द्रुतं गत्वातयोः पुरः । मुनिंनिवेदयामासरामाग्रेदर्शनार्थिनम्

दुर्वाससं तपोराशिमत्रिनन्दनमागतम् ॥ ५५ ॥

रामोऽपि कालमामन्त्र्यप्रस्थाप्यचबहिर्ययौ । दृष्ट्वा मुनितंप्रणतःसम्भोज्यप्रभुरादरात्

दुर्वाससं मुनिवरं प्रस्थाप्य स्वयमादरात् ।

सत्यभङ्गभयाद्धीरो लक्ष्मणं त्यक्तवांस्तदा ॥ ५७ ॥

लक्ष्मणोऽपि तदा वीरः कुर्वन्नवितथं वचः । भ्रातुर्ज्येष्ठस्य सुमतिः सरयूतीरमाययौ

तत्र गत्वाऽथ च स्नात्वा ध्यानमास्थाय सत्वरम् ।

चिदात्मनि मनः शान्तं सङ्गम्याऽवस्थितस्तदा ॥ ५९ ॥

ततः प्रादुरभूत्तत्र सहस्रफणमण्डितः । शेषश्चक्षुःश्रवाः श्रेष्ठः क्षितिं भित्त्वासहस्रधा

सुरलोकात्सुरेन्द्रोऽपि समागादमरैः सह ॥ ६० ॥

ततः शेषात्मतां यातं लक्ष्मणं सत्यसङ्गरम् । उवाचमधुरं शक्रःसुराणांतत्रपश्यताम्

इन्द्र उवाच

लक्ष्मणोत्तिष्ठ शीघ्रंत्वमारोह स्वपदं स्वकम् । देवकार्यं कृतं वीर! त्वया रिपुनिषूदन

वैष्णवंपरमंस्थानंप्राप्नुहित्वंसनातनम् । भवन्मूर्तिःसमायातः शेषोऽपिविलसत्फणः

सहस्रधाक्षितिंभित्त्वासहस्रफणमण्डलैः । क्षितेःसहस्रच्छिद्रेषुयस्माद्भित्त्वासमुद्गताः

फणसाहस्रमणिभिर्दग्धाः शेषस्य सुव्रत! । तस्मादेतन्महातीर्थं सरयूतीरगं शुभम्

ख्यातं सहस्रधारेति भविष्यति न संशयः ॥ ६५ ॥

एतत्क्षेत्रप्रमाणं तु धनुषां पञ्चविंशतिः । अत्र स्नानेन दानेन श्राद्धेन श्रद्धयान्वितः ॥

सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥ ६६ ॥

अत्र स्नातो नरो धीमाञ्छेषं सम्पूज्य चाऽव्ययम् ।

तीर्थं सम्पूज्य विधिवद्विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ६७ ॥

तस्मादत्र प्रकर्तव्यंस्नानं विधिपुरःसरम् । शेषरूपाहिवद्धन्यं याःपूज्याविप्राविशेषतः

स्वर्णं चान्नंचवासांसिदेयानिश्रद्धयान्वितैः । स्नानं दानं हरेः पूजासर्वमक्षयतां व्रजेत्

तस्मादेतन्महातीर्थं सर्वकामफलप्रदम् । क्षितौ भविष्यति सदानात्रकार्याविचारणा

श्रावणे शुक्लपक्षस्य या तिथिः पञ्चमीभवेत् । तस्यामत्रप्रकर्तव्योनागानुद्दिश्ययत्नतः

उत्सवो विपुलः सद्भिः शेषपूजापुरःसरम् । उत्सवे तु कृते तत्र तीर्थेमहति मानवैः
सन्तोष्य च द्विजान्भक्त्या नागपूजापुरस्सरम् ।
सन्तुष्टाः फणिनः सर्वे पीडयन्ति न मानुषान् ॥ ७३ ॥
वैशाखमासे ये स्नानं कुर्वन्त्यत्र समाहिताः । न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि
तस्मादत्र प्रकर्तव्यं माधवे यत्नतो नरैः । स्नानं दानं हरिःपूज्यो ब्राह्मणाश्च विशेषतः
तीर्थे कृतेऽत्र मनुजैः सर्वकामफलप्रदः ॥ ७५ ॥
विष्णुमुद्दिश्ययोदद्यात्सालङ्कारांपयस्विनीम् । सवत्सामत्रसत्तीर्थेसत्पात्रायद्विजन्मने
तस्य वासो भवेन्नित्यं विष्णुलोके सनातने । अक्षयंस्वर्गमाप्नोतितीर्थस्नानेनमानवः
अत्र पूज्यौ विशेषेण नरैः श्रद्धासमन्वितैः । वैशाखे मास्यलङ्कारैर्वस्त्रैश्चद्विजदम्पती
लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै लक्ष्मीप्राप्त्यै विशेषतः ।
वैशाखेमासि तीर्थानि पृथिवीसंस्थितानि वै ॥ ७६ ॥
सर्वाण्यपि चसङ्गत्यस्थास्यन्त्यत्रनसंशयः । तस्मादत्रविशेषेणवैशाखेस्नानतोनृणाम्
सर्वतीर्थावगाहस्य भविष्यति फलं महत् ॥ ८० ॥

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वा मुनिराजेन्द्रो लक्ष्मणं सुरसङ्गतम् । शेषं संस्थाप्यतत्तीर्थे भूभारहरणक्षमम्
लक्ष्मणं यानमारोप्य प्रतस्थे दिवमादरात् ॥ ८१ ॥
तदाप्रभृति तत्तीर्थंविख्यातिपरमां ययौ । वैशाखेमासितीर्थस्यमाहात्म्यंपरमंस्मृतम्
पञ्चम्यामपि शुक्लायां श्रावणस्य विशेषतः । अन्यदापर्वणि श्रेष्ठंविशेषंस्नानमाचरेत्
सहस्रधारातीर्थे च नरः स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ८३ ॥
विधिवदिह हि धीमान्स्नानदानानितीर्थेनरवर! इह शक्त्या यः करोत्यादरेण ।
स इह विपुलभोगान्निर्मलात्मा च भक्त्या भजति भुजगशायिश्रीपतेरात्मनैक्यम् ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये
वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये ब्रह्मकुण्डसहस्रधारातीर्थ-
माहात्म्यवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

तृतीयोऽध्यायः

चन्द्रसहस्रव्रतोद्यापनवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचो धीमानादरात्कुम्भजन्मनः । प्रोवाचमधुरंवाक्यंकृष्णद्वैपायनोमुनिः

व्यास उवाच

भगवन्नद्भुतमिदं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् । श्रुत्वा त्वत्तो मम मनः परमानन्दमाययौ ॥

अन्यत्तीर्थवरं ब्रूहि तत्त्वेन मम शृण्वतः । न तृप्तिरस्ति मनसः शृण्वतो मम सुव्रत!

अगस्त्य उवाच

शृणु विप्र! प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यदनुत्तमम् । स्वर्गद्वारमिति ख्यातं सर्वपापहरं सदा

स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं विस्ताराद्वक्तुमीश्वरः ।

नहि कश्चिदतो वत्स! सङ्क्षेपाच्छृणु सुव्रत! ॥ ५ ॥

सहस्रधारामारभ्य पूर्वतः सरयूजले । षट्त्रिंशदधिका प्रोक्ता धनुषां षट्शती मितिः

स्वर्गद्वारस्य विस्तारः पुराणज्ञैर्विशारदैः । स्वर्गद्वारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति

सत्यंसत्यंपुनः सत्यं नासत्यं ममभाषितम् । स्वर्गद्वारसमंतीर्थंनास्तिब्रह्माण्डगोलके

हित्वा दिव्यानि भौमानि तीर्थानि सकलान्यपि ।

प्रातरागत्य तिष्ठन्ति तत्र संश्रित्य सुव्रत! ॥ ६ ॥

तस्मादत्र प्रकर्तव्यं प्रातःस्नानं विशेषतः । सर्वतीर्थावगाहस्य फलमात्मनः ईप्सता

त्यजन्ति प्राणिनः प्राणान्स्वर्गद्वारान्तरेद्विज! ।

प्रयान्ति परमं स्थानं विष्णोस्तेनाऽत्र संशयः ॥ ११ ॥

मुक्तिद्वारमिदं पश्यस्वर्गप्राप्तिकरंनृणाम् । स्वर्गद्वारमितिख्यातंतस्मात्तीर्थमनुत्तमम्

स्वर्गद्वारंसुदुष्प्राप्यं देवैरपि न संशयः । यद्यत्कामयते तत्र तत्तदाप्नोति मानवः ॥

स्वर्गद्वारे परा सिद्धिः स्वर्गद्वारे परागतिः । जप्तं दत्तं हुतं दृष्टं तपस्तप्तंकृतञ्चयत्

ध्यानमध्ययनं सर्वं दानं भवति चाऽक्षयम् ॥ १४ ॥
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम् । स्वर्गद्वारप्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम्
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसङ्कराः ।
कृमिम्लेच्छाश्च ये चाऽन्ये सङ्कीर्णाः पापयोनयः ॥ १६ ॥
कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः । कालेन निधनं प्राप्ताः स्वर्गद्वारे शृणु द्विज
कौमोदकीकराः सर्वे पक्षिणो गरुडध्वजाः । शुभे विष्णुपुरे विष्णुर्जायन्ते तत्र मानवाः
अकामो वा सकामो वा अपि तीर्थंगतोऽपि वा ।
स्वर्गद्वारे त्यजन्प्राणान्विष्णुलोके महीयते ॥ १६ ॥
मुनयो देवताः सिद्धाः साध्या यक्षा मरुद्गणाः । यज्ञोपवीतमात्रेण विभागश्चक्रिरे तुये
मध्याह्नेऽत्र प्रकुर्वन्ति सान्निध्यं देवतागणाः । तस्मात्तत्र प्रकुर्वन्ति मध्याह्ने स्नानमादरात्
कुर्वन्त्यनशनं ये तु स्वर्गद्वारे जितेन्द्रियाः । प्रयान्ति परमं स्थानं ये च मासोपवासिनः
अन्नदानरता ये च रत्नदा भूमिदा नराः । गोवस्त्रदाश्च विप्रेभ्यो यान्ति ते भवनं हरेः
यत्र सिद्धा महात्मानो मुनयः पितरस्तथा । स्वर्गं प्रयान्ति ते सर्वे स्वर्गद्वारं ततः स्मृतम्
चतुर्द्धा च तनुं कृत्वा देवदेवो हरिः स्वयम् । अत्र वै रमते नित्यं भ्रातृभिः सह राघवः
ब्रह्मलोकं परित्यज्य चतुर्वक्त्रः सनातनः । अत्रैव रमते नित्यं देवैः सह पितामहः ॥
कैलासनिलयावासी शिवस्तत्रैव संस्थितः ॥ २७ ॥
मेरुमन्दरमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः । स्वर्गद्वारं समासाद्य स सर्वो व्रजति क्षयम्
या गतिर्ज्ञानतपसां या गतिर्यज्ञयाजिनाम् । स्वर्गद्वारे मृतानां तु सा गतिर्विहिता शुभा
ऋषिदेवासुरगणैर्जपहोमपरायणैः । यतिभिर्मोक्षकामैश्च स्वर्गद्वारो निषेव्यते ॥ ३०॥
षष्टिवर्षसहस्राणि काशीवासेषु यत्फलम् । तत्फलं निमिषार्द्धेन कलौ दाशरथीं पुरीम्
या गतिर्योगयुक्तानां वाराणस्यां तनुत्यजाम् । सा गतिः स्नानमात्रेण सरय्वां हरिवासरे
स्वर्गद्वारे मृतः कश्चिन्नरकं नैव पश्यति ।
केशवानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परां गतिम् ॥ ३३ ॥
भूलोके चाऽन्तरिक्षे च दिवि तीर्थानि यानि वै ।

अतीत्य वर्तते तानि तीर्थान्येतद्द्विजोत्तम! ॥ ३४ ॥
विष्णुभक्तिं समासाद्य रमन्ते तु सुनिश्चिताः ।
संहृत्य शक्तितः कामं विषयेषु हि संस्थितम् ॥ ३५ ॥
शक्तितःसर्वतोयुक्त्वाशक्तिस्तपसिसंस्थिता । नतेषांपुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि
हन्यमानोऽपियोविद्वान्वसेच्छस्त्रशतैरपि । सयातिपरमं स्थानं यत्र गत्वा नशोचति
स्वर्गद्वारे वियुज्येत सयाति परमाङ्गतिम् । उत्तरं दक्षिणंवाऽपिअयनंनविकल्पयेत्
सर्वस्तेषां शुभःकालःस्वर्गद्वारंश्रयन्तिये । स्नानमात्रेणपापानिविलयंयान्तिदेहिनाम्
यावत्पापानि देहेनयेकुर्वन्ति जनाः क्षितौ । अयोध्या परमं स्थानंतेषामीरितमादरात्
ज्येष्ठे मासि सितेपक्षेपञ्चदश्यांविशेषतः । तस्यसाम्वत्सरीयात्रादेवैश्चन्द्रहरेःस्मृता
तस्मिन्नुद्यापनं चन्द्रसहस्रं व्रतयोगिभिः । कार्यं प्रयत्नतो विप्र! सर्वयज्ञफलाधिकम्
तस्मिन्कृते महापापक्षयात्स्वर्गो भवेन्नृणाम् ॥ ४२ ॥

श्रीव्यास उवाच

भगवन्ब्रूहि तत्त्वेनतस्यचन्द्रहरेः शुभाम् । उत्पत्तिञ्च तथाचन्द्रव्रतस्योद्यापनेविधिम्

अगस्त्य उवाच

अयोध्यानिलयं विष्णुंनत्वा शीतांशुरुत्सुकः ।
आगच्छत्तीर्थमाहात्म्यं साक्षात्कर्तुं सुधानिधिः ॥
अत्राऽऽगत्य च चन्द्रोऽथ तीर्थयात्रां चकार सः ॥ ४५ ॥
क्रमेण विधिपूर्वञ्च नानाश्चर्यसमन्वितः । समाराध्य ततो विष्णुं तपसा दुश्चरेण वै
तत्प्रसादं समासाद्य स्वाभिधानपुरस्सरम् । हरिं संस्थापयामासतेनचन्द्रहरिःस्मृतः
वासुदेवप्रसादेन तत्स्थानं जातमद्भुतम् । तद्धि गुह्यतमं स्थानं वासुदेवस्य सुव्रत
सर्वेषामेव भूतानां भर्तुर्मोक्षस्य सर्वदा ।
अस्मिन्सिद्धाः सदा विप्र! गोविन्दव्रतमास्थिताः ॥ ४६ ॥
नानालिङ्गधरानित्यं विष्णुलोकाभिकाङ्क्षिणः ।
अभ्यस्यन्ति परं योगं मुक्तात्मानो जितेन्द्रियाः ॥ ४७ ॥

यथाधर्ममवाप्नोति अन्यत्र न तथा क्वचित् । दानं व्रतं तथा होमःसर्वमक्षयतां व्रजेत्
सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते प्राणिनां सदा । तस्मादत्र विधातव्यंप्राणिभिर्यत्नतःक्रमात्
दानादिकं विप्रपूजा दम्पत्योश्च विशेषतः ॥ ५२ ॥
सर्वयज्ञाधिकफलं सर्वतीर्थावगाहनम् । सर्वदेवावलोकस्य यत्पुण्यं जायते नृणाम्॥
तत्सर्वं जायते पुण्यं प्राणिनामस्य दर्शनात् । तस्मादेतन्महाक्षेत्रं पुराणादिषुगीयते
उद्यापनविधिश्चात्र नृभिर्द्विजपुरस्सरम् । अग्रे चन्द्रहरेश्चन्द्रसहस्रव्रतसञ्ज्ञकः ॥५५॥
गतेवर्षद्वये सार्द्धे पञ्चपक्षे दिनद्वये । दिवसस्याऽष्टमे भागे पतत्येकोऽधिमासकः॥
त्र्यधिके वा अशीत्यब्दे चतुर्मासयुते ततः । भवेच्चन्द्रसहस्रं तु तावज्जीवति योनरः
उद्यापनं प्रकर्त्तव्यं तेन यात्रा प्रयत्नतः ॥ ५७ ॥
यत्पुण्यं परमं प्रोक्तं सततं यज्ञयाजिनाम् । सत्यवादिषु यत्पुण्यं यत्पुण्यंहेमदायिनि
तत्पुण्यं लभते विप्र! सहस्राब्दस्य जीविभिः ॥ ५८ ॥
सर्वसौख्यप्रदं तादृक्पुण्यव्रतमिहोच्यते ॥ ५६ ॥
चतुर्दश्यां शुचिः स्नात्वा दन्तधावनपूर्वकम् । चरितब्रह्मचर्य्यश्च जितवाक्कायमानसः
पौर्णमास्यां तथा कृत्वा चन्द्रपूजां च कारयेत् ॥ ६० ॥
पूर्वश्च मातरः पूज्या गौर्यादिकक्रमेण च । ऋत्विजः पूजयेद्भक्त्यावृद्धिश्राद्धपुरस्सरम्
प्रयतः प्रतिमा कार्या चन्द्रमण्डलसन्निभा । सहस्रसङ्ख्या ह्यथवातदर्द्धं वातदर्द्धकम्
निजवित्तानुमानेन तदर्द्धेन तदर्द्धिकम् ॥ ६२ ॥
ततः श्रद्धानुमानाद्वा कार्या वित्तानुमानतः । अथवा षोडश शुभा विधातव्याःप्रयत्नतः
चन्द्रपूजां ततः कुर्यादागमोक्तविधानतः । माषैः षोडशभिः कार्याप्रत्येकंप्रतिमाशुभा
सोममन्त्रेण होमस्तु कार्योवित्तानुमानतः । प्रतिमास्थापनंकुर्यात्सोममन्त्रमुदीरयेत्
सोमोत्पत्तिं सोमसूक्तं पाठयेच्च प्रयत्नतः । चन्द्रपूजांततः कुर्यादागमोक्तविधानतः॥
चन्द्रन्यासं कलान्यासंकारयेन्मण्डलेजलम् । एकादशेन्द्रियन्यासंतथैवविधिपूर्वकम्
चन्द्रबिम्बनिभं कार्य्यंमण्डलंशुभतण्डुलैः । मध्येचकलशःस्थाप्योगव्येनपयसाप्लुतः
चतुरस्रेषुसम्पूर्णान्कलशान्स्थापयेद्बहिः । मण्डले चन्द्रपूजा च कर्त्तव्यानामभिःक्रमात्

हिमांशवे नमश्चैव सोमचन्द्राय वै नमः। चन्द्राय विधवे नित्यं नमः कुमुदबन्धवे ॥
सुधांशवे च सोमाय ओषधीशाय वै नमः। नमोऽब्जायमृगाङ्कायकलानांनिधयेनमः
नमो नक्षत्रनाथाय शर्वरीपतये नमः। जैवातृकाय सततं द्विजराजाय वै नमः ॥ ७२ ॥
एवं षोडशभिश्चन्द्रः स्तोतव्यो नामभिः क्रमात् ॥ ७३ ॥
ततो वै प्रयतो दद्याद्विधिवन्मन्त्रपूर्वकम्। शङ्खतोयं समादाय सपुष्पफलचन्दनम् ॥
नमस्तेमासमासान्ते जायमानःपुनःपुनः। गृहाणार्घ्यंशशाङ्क! त्वं रोहिण्यासहितोमम
एवं सम्पूज्य विधिवच्छशिनं प्रणतोभवेत्। षोडशान्येचकलशादुग्धपूर्णाःसरत्नकाः
सवस्त्राच्छादनाः शान्त्यै दातव्यास्ते द्विजन्मने।
अभिषेकं ततः कुर्यात्पायसेन जलेन तु ॥ ७७ ॥
ऋत्विजां मनसस्तुष्टिः कार्या वित्तानुमानतः। ब्राह्मणंभोजयेतत्र सकुटुम्बंविशेषतः
पूजनीयौप्रयत्नेन वस्त्रैश्च द्विजदम्पती। कर्तव्यश्च ततो भूरिदक्षिणादानमुत्तमम् ॥
प्रतिमाश्च प्रदातव्या द्विजेभ्यो धेनुपूर्विकाः। सुवर्णं रजतं वस्त्रं तथान्नं च विशेषतः
दातव्यं चन्द्रसुप्रीत्यै हर्षादेवं द्विजन्मने ॥ ८० ॥
उपवासविधानेन दिनशेषं नयेत्सुधीः। अनन्तरे च दिवसे कुर्याद्भगवदर्चनम् ॥
बान्धवैः सह भुञ्जीत नियमञ्च विसर्ज्जयेत् ॥ ८१ ॥
एवञ्च कुरुते चन्द्रसहस्रं व्रतमुत्तमम्। ब्रह्मघ्नोऽपि सुरापोऽपि स्तेयी च गुरुतल्पगः
व्रतेनाऽनेन शुद्धात्मा चन्द्रलोकं व्रजेन्नरः ॥ ८२ ॥
यादृशश्च भवेद्विप्र! प्रियो नारायणस्य च। एवं करोति नियतं कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांद्वितीये
वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये चन्द्रसहस्रव्रतोद्यापनविधि-
वर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः
धर्महरिस्वर्णखनिमाहात्म्यवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

तस्माच्चन्द्रहरिस्थानादाग्नेय्यां दिशि संस्थितः ।
देवो धर्महरिर्नाम कलिकल्मषनाशकः ॥ १ ॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः स्वकर्मपरिनिष्ठितः ।
पुरा समागतो धर्मस्तीर्थयात्राचिकीर्षया ॥ २ ॥
आगत्य च चकारोच्चैर्यात्रांतत्रादरेणसः । दृष्ट्वामाहात्म्यमतुलमयोध्यायाःसविस्मयः
विधाय स्वभुजावूर्ध्वौ विप्रोऽवोचन्मुदान्वितः ।
अहो रम्यमिदं तीर्थमहो माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४ ॥
अयोध्यासदृशी कापि दृश्यते नाऽपरा पुरी ।
या न स्पृशति वसुधां विष्णुचक्रस्थिताऽनिशम् ॥ ५ ॥
यस्यां स्थितो हरिः साक्षात्सेयं केनोपमीयते ।
अहो तीर्थानि सर्वाणि विष्णुलोकप्रदानि वै ॥ ६ ॥
अहो विष्णुरहोतीर्थमयोध्याऽहो महापुरी ।
अहो माहात्म्यमतुलं किं न श्लाघ्यमिहास्थितम् ॥७ ॥
इत्युक्त्वा तत्र बहुशो ननर्तप्रमदाकुलः । धर्मोमाहात्म्यमालोक्यअयोध्यायाविशेषतः
तं तथा नर्तमानंवै धर्मं दृष्ट्वा कृपान्वितः । आविर्बभूव भगवान्पीतवासाहरिः स्वयम्
तं प्रणम्य च धर्मोऽथ तुष्टाव हरिमादरात् ॥ ६ ॥

धर्म उवाच

नमः क्षीराब्धिवासाय नमः पर्यङ्कशायिने ।
नमो शङ्करसंस्पृष्टदिव्यपादाय विष्णवे ॥ १० ॥

भक्त्याऽर्चितसुपादाय नमोऽजादिप्रियाय ते । शुभाङ्गाय सुनेत्राय माधवाय नमोनमः
नमोऽरविन्दपादाय पद्मनाभाय वै नमः । नमः क्षीराब्धिकल्लोलस्पृष्टगात्राय शार्ङ्गिणे
ॐनमो योगनिद्राय योगक्षैर्भावितात्मने । तार्क्ष्यासनाय देवाय गोविन्दायनमोनमः
सुकेशाय सुनासाय सुललाटाय चक्रिणे । सुवस्त्राय सुवर्णाय श्रीधराय नमोनमः ॥
सुबाहवे नमस्तुभ्यं चारुजङ्घाय ते नमः । सुवासाय सुदिव्याय सुविद्याय गदाभृते
केशवाय च शान्ताय वामनाय नमोनमः । धर्मप्रियाय देवाय नमस्ते पीतवाससे ॥

अगस्त्य उवाच

इति स्तुतो जगन्नाथो धर्मेण श्रीपतिर्मुदा । उवाच स हृषीकेशः प्रीतो धर्मुदारधीः

श्रीभगवानुवाच

तुष्टोऽहं भवतो धर्म! स्तोत्रेणानेन सुव्रत! । वरम्वरय धर्मज्ञ! यस्तेस्यान्मनसः प्रियः

स्तोत्रेणानेन यः स्तौति मानवो मामतन्द्रितः ।
सर्वान्कामान्वाप्नोति पूजितः श्रीयुतःसदा ॥ १६ ॥

धर्म उवाच

यदि तुष्टोऽसि भगवन्देवदेव! जगत्पते! । त्वामहंस्थापयाम्यत्र निजनाम्नाजगद्गुरो

अगस्त्य उवाच

एवमस्त्विति सम्प्रोच्याऽभवद्धर्महरिर्विभुः । स्मरणादेव मुच्येत नरो धर्महरेर्विभोः
सरयूसलिले स्नात्वा सुचिन्ताकुलमानसः । देवं धर्महरिं पश्येत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
अत्र दानं तथा होमं जपोब्राह्मणभोजनम् । सर्वमक्षयतांयातिविष्णुलोकेनिवासकृत्

अज्ञानाज्ज्ञानतो वाऽपि यत्किञ्चिद्दुष्कृतम्भवेत् ।
प्रायश्चित्तं विधातव्यं तन्नाशाय प्रयत्नतः ॥ २४ ॥

प्रायश्चित्तेन विधिना पापं तस्य प्रणश्यति । तस्मादत्र प्रकर्त्तव्यंप्रायश्चित्तंविधानतः
अज्ञानाज्ज्ञानतोवापिराजादेर्निग्रहात्तथा । नित्यकर्मनिवृत्तिःस्याद्यस्यपुंसोऽवशात्मनः

तेनाऽप्यत्र विधातव्यं प्रायश्चित्तं प्रयत्नतः ॥ २६ ॥

अत्र साक्षात्स्वयं देवो विष्णुर्वसति सादरः ।

तस्माद्वर्णयितुं शक्यो महिमा न हि मानवैः ॥ २७ ॥
आषाढे शुक्लपक्षस्यएकादश्यांद्विजोत्तम! । तस्यसाम्वत्सरीयात्राकर्तव्यातुविधानतः
स्वर्गद्वारे नरःस्नात्वा दृष्ट्वा धर्महरिंविभुम् । सर्वपापविशुद्धात्माविष्णुलोकेवसेत्सदा
तस्माद्दक्षिणदिग्भागे स्वर्णस्य खनिरुत्तमा । यत्रचक्रेस्वर्णवृष्टिं कुबेरो रघुजाज्ञयात्

व्यास उवाच

भगवन्ब्रूहि तत्त्वज्ञ! स्वर्णवृष्टिरभूत्कथम् । कुबेरस्य कथं भीतिरुत्पन्ना रघुभूपतेः॥
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरान्मम सुव्रत! । श्रुत्वा कथारहस्यानिनतृप्यतिमनो मम

अगस्त्य उवाच

शृणु विप्र! प्रवक्ष्यामि स्वर्णस्योत्पत्तिमुत्तमाम् ।
यस्य श्रवणतो नृणां जायते विस्मयो महान् ॥ ३३ ॥
आसीत्पुरा रघुपतिरिक्ष्वाकुकुलवर्द्धनः । रघुर्निजभुजोदारवीर्यशासितभूतलः ॥ ३४
प्रतापतापितारातिवर्गव्याख्यातसद्यशाः । प्रजाः पालयता सम्यक्तेन नीतिमता सता
यशःपूरेण संलिप्ता दिशोदश सितत्विषा । स चक्रे प्रौढविभवसाधनां विजयक्रमात्
नानादेशान्समाक्रम्य चतुरङ्गबलान्वितः । भूतानि वशमानीय वसु जग्राह दण्डतः॥
उत्कृष्टान्नृपतीन्वीरो दण्डयित्वा बलाधिकान् ।
रत्नानि विविधान्याशु जग्राहाऽतिबलस्तदा ॥ ३८ ॥
स विजित्य दिशः सर्वा गृहीत्वा रत्नसञ्चयम् ।
अयोध्यामागतो राजा राजधानीञ्च तां शुभाम् ॥ ३९ ॥
तत्रागत्यचकाकुत्स्थोयज्ञायोत्सुकमानसः । चकारनिर्मलांबुद्धिंनिजवंशोचितक्रियाम्
वसिष्ठं मुनिमाज्ञाय वामदेवं च कश्यपम् ॥ ४१ ॥
अन्यानपि मुनिश्रेष्ठान्नानातीर्थसमाश्रितान् । समानयद्विनीतेन द्विजवर्येण भूपतिः॥
दृष्ट्वास्थितान्सतान्सर्वान्प्रदीप्तानिवपावकान् । तानागतान्विदित्वाऽथरघुःपरपुरञ्जयः
निश्चक्राम यथान्यायं स्वयमेव महायशाः ॥ ४३ ॥
ततो विनीतवत्सर्वान्काकुत्स्थो द्विजसत्तमान् ।

उवाच धर्मयुक्तं च वचनं यज्ञसिद्धये ॥ ४४ ॥

रघुरुवाच

मुनयः सर्व एवैते यूयं शृणुत मद्वचः। यज्ञं विधातुमिच्छामि तत्राज्ञां दातुमर्हथ ॥
साम्प्रतं मामको यज्ञोयुक्तःस्यान्मुनिसत्तमाः। एतद्विचार्यतत्त्वेन ब्रूत यूयंमुनीश्वराः

मुनय ऊचुः

राजन्विश्वजिदाख्यातोयज्ञानांयज्ञउत्तमः। साम्प्रतंकुरु तं यत्नान्माविलम्बंवृथाकृथाः

अगस्त्य उवाच

नृपश्चक्रे ततो यज्ञं विश्वदिग्जयसञ्ज्ञितम्। नानासम्भारमधुरं कृतसर्वस्वदक्षिणम्
नानाविधेन दानेन मुनिसन्तोषहर्षकृत्। सर्वस्वमेव प्रददौ द्विजेभ्यो बहुमानतः ॥
तेषु विश्वेषु यातेषु पूजितेषु गृहान्स्वकान्। बन्धुष्वपि च तुष्टेषु मुनिषु प्रणतेषु च
तेन यज्ञेन विधिवद्विहितेन नरेश्वरः। शुशुभे शोभनाचारः स्वर्गे देवेन्द्रवत्क्षणात् ॥
तत्रान्तरे समभ्यायान्मुनिर्यूमवताम्वरः। विश्वामित्रमुनेरन्तेवासीकौत्सइतिस्मृतः
दक्षिणार्थं गुरोर्धीमान्पावितुं तं नरेश्वरम्। चतुर्दशसुवर्णानां कोटीराहर सत्वरम्

मह्यं दक्षिणेति गुरुणा निर्बन्धाद्याचिनो रुषा।
आगतः स मुनिः कौत्सस्ततो याचितुमादरात् ॥ ५३॥
रघुं भूपालतिलकं दत्तसर्वस्वदक्षिणम् ॥ ५४ ॥

तमागतमभिप्रेत्य रघुरादरतस्तदा। उत्थाय पूजयामास विधिवत्स परन्तपः ॥

सपर्य्यासीत्तस्य सर्वा मृत्पात्रविहितक्रिया ॥ ५५ ॥
पूजा सम्भारमालोक्य तादृशं तं मुनीश्वरः।
विस्मितोऽभून्निरानन्दो दक्षिणाऽऽशां परित्यजन् ॥
उवाच मधुरं वाक्यं वाक्यज्ञानविशारदः ॥ ५६ ॥

कौत्स उवाच

राजन्नभ्युदयस्तेऽस्तु गच्छाम्यन्यत्र साम्प्रतम् ॥ ५७ ॥

गुर्वर्थाहरणायैवदत्तसर्वस्वदक्षिणम्। त्वां न याचे धनाभावादतोऽन्यत्रव्रजाम्यहम्

अगस्त्य उवाच

इत्युक्तस्तेन मुनिना रघुः परपुरञ्जयः। क्षणं ध्यात्वाऽब्रवीदेनं विनयाद्विहिताञ्जलिः॥

रघुरुवाच

भगवंस्तिष्ठ मे हर्म्ये दिनमेकं मुनिव्रत!। यावद्यतिष्ये भगवन्भवदर्थार्थमुच्चकैः॥६०

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वापरमोदारवचो मुनिमुदारधीः।प्रतस्थे च रघुस्तत्र कुबेरविजिगीषया॥६१
तमायान्तं कुबेरोऽथ विज्ञाप्य वचनोदितैः। प्रसन्नमनसंचक्रेवृष्टिं स्वर्णस्य चाक्षयाम्
स्वर्णवृष्टिरभूद्यत्र सास्वर्णखनिरुत्तमा। स मुनिं दर्शयामास खनितेन निवेदिताम्॥
तस्मै समर्पयामास तांरघुःखनिमुत्तमाम्। मुनीन्द्रोऽपिगृहीत्वाशुततोगुर्वर्थमादरात्
राज्ञेनिवेदयामाससर्वमन्यद्गुणाधिकः। वरानथ ददौ तुष्टः कौत्सो मतिमताम्वरः॥

कौत्स उवाच

राजल्लँभस्वसत्पुत्रं निजवंशगुणान्वितम्। इयंस्वर्ण खनिस्तूर्णं मनोऽभीष्टफलप्रदा
भूयादत्र परं तीर्थं सर्वपापहरं सदा। अत्र स्नानेन दानेन दानेन नृणांलक्ष्मीःप्रजायते
वैशाखेशुक्लद्वादश्यांयात्रासाम्वत्सरीस्मृता। नानाभीष्टफलप्राप्तिर्भूयान्मद्वचसान्नृणाम्

अगस्त्य उवाच

इति दत्त्वा वरान्राज्ञेकौत्सः सन्तुष्टमानसः। प्रतस्थे निजकार्यार्थे गुरोराश्रममुत्सुकः
राजाः सकृतकृत्योऽथशेषंसङ्गृह्यतद्धनम्। द्विजेभ्योविधिवद्दत्त्वापालयामासवैप्रजाः
एवं स्वर्णखनेर्जातं माहात्म्यञ्च मुनीश्वरात्॥ ७१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये-
वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये धर्महरिस्वर्णखनिमाहात्म्य-
वर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

पञ्चमोऽध्यायः

सकौत्सवृत्तवर्णनंतिलोदकीमाहात्म्यकथनम्

व्यास उवाच

भगवन्ब्रूहितत्त्वेनकथंनिर्वन्धतोमुनिः। विश्वामित्रोनिजंशिष्यंकौत्संक्रोधेनतादृशम्
दुष्प्राप्यमर्थं यत्नेन बहु प्रार्थितवांस्तदा। एतत्सर्वञ्च कथय मयि यद्यस्ति ते कृपा

अगस्त्य उवाच

शृणु द्विजकथामेतांसावधानेन्द्रियःस्वयम्। विश्वामित्रोमुनिश्रेष्ठःसदिव्यज्ञानलोचनः
निजाश्रमे तपो दुर्गञ्चकार प्रयतो व्रती। एकदा तमथो द्रष्टुं दुर्वासा मुनिरागतः॥

आगत्य च क्षुधाक्रान्त उच्चैः प्रोवाच स द्विजः।
भोजनं दीयतां मह्यं क्षुधापीडितचेतसे।
पायसं शुचि चोष्णञ्च शीघ्रं क्षुधार्त्तिने द्विज!॥ ५॥

इतिश्रुत्वावचःक्षिप्रंविश्वामित्रःप्रयत्नतः। स्थाल्यांपायसमादायतंसमर्प्यततःस्वयम्
तदादायोत्थितं दृष्ट्वा दुर्वासास्तं विलोकयन्। उवाच मधुरं वाक्यंमुनिर्लक्षणतत्परः

क्षणं सहस्व विप्रेन्द्र! यावत्स्नात्वा व्रजाम्यहम्।
तिष्ठ तिष्ठक्षणं तिष्ठ आगच्छाम्येव साम्प्रतम् ॥ ८॥
इत्युक्त्वा स जगामैव दुर्वासाः स्वाश्रमं तदा ॥ ६॥
विश्वामित्रस्तपोनिष्ठस्तदा सानुरिवाऽचलः।
दिव्यं वर्षसहस्रं स तस्थौ स्थिरमतिस्तदा॥ १०॥

तस्य शुश्रूषणपरो मुनिः कौत्सो यतव्रतः। बभूव परमोदारमतिर्विगतमत्सरः॥११
पुनरागत्यस मुनिर्दुर्वासा गतकल्मषः। भुक्त्वा च पायसं सद्यःसजगामनिजाश्रमम्
तस्मिन्गतेमुनिवरेविश्वामित्रस्तपोनिधिः। कौत्संविद्यावतांश्रेष्ठंविससर्जगृहान्प्रति
स शिष्यो गुरुं प्राह दक्षिणा प्रार्थ्यतामिति।

विश्वामित्रस्तु तं प्राह त्वं किं दास्यसि दक्षिणाम्
दक्षिणा तव शुश्रूषा गृहं व्रज यतव्रतः ॥ १४ ॥
पुनः पुनर्गुरुं प्राहशिष्यो निर्बन्धवान्यदा । तदा गुरुर्गुरुक्रुद्धः शिष्यंप्राह चनिष्ठुरम्
सुवर्णस्य सुवर्णस्य चतुर्दश समाहर । कोटीर्मे दक्षिणाविप्र पश्चाद्गच्छ गृहम्प्रति
इत्युक्तो गुरुणा कौत्सो विचार्य समुपागतम् ।
काकुत्स्थं दिग्विजेतारं ययाचे गुरुदक्षिणाम् ॥ १७ ॥
इत्युक्तं ते मुनिवर त्वया पृष्टं हि यत्पुनः । अतोऽन्यच्छृणुतेवच्मितीर्थकारणमुत्तमम्
तस्माद्दक्षिणदिग्भागे सम्भेदःसिद्धसेवितः ।
तिलोदकीसरय्वोश्चसङ्गत्या भुवि संश्रुतः
तत्र स्नात्वामहाभागभवन्तिविरजानराः । दशानामश्वमेधानांकृतानांयत्फलंफलंभवेत्
तदाप्नोति स धर्मात्मा तत्र स्नात्वा यतव्रतः ॥ २० ॥
स्वर्णादिकञ्च यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे । शुभांगतिमवाप्नोति अग्निवच्चैव दीप्यते
तिलोदकी सरय्वोश्च सङ्गमे लोकविश्रुते ।
दत्त्वान्नञ्च विधानेन न स भूयोऽभिजायते
उपवासञ्चयः कृत्वा विप्रान्सन्तर्पयेन्नरः । सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः
एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र यतव्रतः । यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति
नभस्यकृष्णामावस्यांयात्रासाम्वत्सरीभवेत् । रामेणनिर्मितापूर्वंनदीसिन्धुरिवापरा
सिन्धुजानांतुरङ्गांणाजलपानायसुव्रत! । तिलवच्छ्याममुदकं यतस्तस्यां सदाबभौ
तिलोदकीति विख्याता पुण्यतोया सदा नदी ।
सङ्गमादन्यतो यस्यां तिलोदक्यां शुचिव्रतः
स्नातो विमुच्यते पापैः सप्तजन्मार्जितैरपि ॥ २७ ॥
तस्मात्तिलोदकीस्नानं सर्वपापहरं मुने! ।
कर्त्तव्यं सुप्रयत्नेन प्राणिभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः
स्नानं दानं व्रतं होमं सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥ २८ ॥

इति विविधविधानैस्तीर्थयात्रां क्रमेण प्रथितगुणविकासः प्राप्तपुण्यो विधाय
हरिमुपहृतभावः पूजयन्सर्वतीर्थं व्रजति परमधाम न्यस्तपापः कथञ्चित् ॥ २६

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव
खण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये तिलोदकीप्रभाववर्णनंनाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

स्वर्गद्वारगोप्रतारतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

अगस्त्य उवाच :

तस्मात्सङ्गमतोविप्रपश्चिमेदिक्तटेस्थितम्। सीताकुण्डमितिख्यातंसर्वकामफलप्रदम्
यत्रस्नात्वानरो विप्र सर्वपापैःप्रमुच्यते । सीतया किलतत्कुण्डंस्वयमेवविनिर्मितम्
रामेण वरदानाच्च महाफलनिधिकृतम् ॥ २ ॥

श्रीराम उवाच

श्रृणु सीते! प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं भुवि यादृशम् ।
त्वत्कुण्डस्याऽस्य सुभगे त्वत्प्रीत्या कथयाम्यहम् ॥ ३ ॥

अत्र स्नानञ्च दानञ्च जपो होमस्तपोऽथवा । सर्वमक्षयतां याति विधानेनशुचिस्मते
मार्गकृष्णचतुर्दश्यां तत्र स्नानंविशेषतः । सर्वपापहरं देवि! सर्वदास्नायिनांनृणाम्
इति रामो वरं प्रादात्सीतायै च प्रजाप्रियः । तदाप्रभृति सर्वत्र तत्तीर्थे भुविवर्त्तते
सीताकुण्डमिति ख्यातं जनानां परमाद्भुतम् ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा नूनं राममवाप्नुयात् ॥ ७ ॥

तत्र स्नानेन दानेन तपसा च विशेषतः । गन्धैर्माल्यैर्धूपदीपैर्नानाविभवविस्तरैः ॥
रामं सम्पूज्य सीताञ्च मुक्तः स्यान्नात्र संशयः ॥ ८ ॥

मार्गे मासि च स्नातव्यं गर्भवासो न जायते ।
अन्यदाऽपि नरः स्नात्वा विष्णुलोकं सगच्छति ॥ ६ ॥
विभोर्विष्णुहरेर्विप्र! रम्ये पश्चिमदिक्तटे । देवश्चक्रहरिर्नाम सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥१०
तस्य चक्रहरेर्विप्र महिमा न हि मानवैः । शक्यो वर्णयितुंधीरैरपि बुद्धिमताम्वरैः
ततः पश्चिमदिग्भागे नाम्ना पुण्यं हरिस्मृति । विष्णोरायतनंख्यातंपरमार्थफलप्रदम्
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १२ ॥
तयोर्दर्शनतो यान्ति तेषां पापानिदेहिनाम् । तानिपापानियावन्ति कुर्वतेभुवियेनराः
पुरा देवासुरे जाते सङ्ग्रामे भृशदारुणे । दैत्यैर्वरमदोत्सिक्तैर्देवायुधि पराजिताः॥
तेषां पलायमानानां देवानामग्रणीर्हरः । संस्तभ्यचैवतान्सर्वान्पुरस्कृत्याम्वुजासनम्
क्षीरोदशायिनं विष्णुं शेषपर्य्यङ्कशायिनम् ।
लक्ष्म्योपविष्टं पार्श्वे च चरणाम्बुजहस्तया ॥ १६ ॥
नारदाद्यैर्मुनिवरैरुद्गीतगुणगौरवम् । गरुडेन पुरःस्थेनानिशमञ्जलिना स्तुतम् ॥१७॥
क्षीराब्धिजलकल्लोलमदविन्द्वङ्कितास्वरम् । तारकोत्करविस्फारतारहारविराजितम्
पीताम्बरमतिस्मेरविकाशङ्खावभावितम् ।
विभ्रतं कुण्डलं स्थूलं कर्णाभ्यां मौक्तिकोज्ज्वलम् ॥ १६ ॥
रत्नवल्लीमिव स्वच्छां श्वेतद्वीपनिवासिनीम् ।
किरीटं पद्मरागाणां वलयं दधतं परम् ॥ २० ॥
मित्रस्य राहुवित्रासनिवर्त्तनमिवाऽपरम् । सकौस्तुभप्रभाचक्रं विभ्राणस्प्रवलारुणम्
पराश्चतुर्मुखोत्पत्तिकल्पसंकल्पनामिव । शरणंस जगामाऽऽशुविनीतात्मास्तुवन्निति
तस्मिन्नवसरेशम्भुःसर्वदेवगणैःसह । तुष्टाव प्रयतोभूत्वा विष्णुं जिष्णुं सुरद्विषाम्

ईश्वर उवाच

संसारार्णवसंतारसुपर्णमुखदायिने । मोहतीव्रतमोहारिचन्द्राय हरये नमः ॥ २४ ॥
स्फुरत्सम्विन्मणिशिखां चित्तसङ्गतिचन्द्रिकाम् ।
प्रपद्ये भगवद्भक्तिमानसोद्यानवाहिनीम् ॥ २५ ॥

हेलोल्लसत्समुत्साहशक्तिव्याप्तजगत्त्रयम्। यापूर्वकोटिर्भावानांसत्वानांवैष्णवीतिका
पवनान्दोलिताम्भोजदलपर्यान्तवर्त्तिनाम् । पततामिवजन्तूनांस्थैर्यमेका हरिस्मृतिः
नमः सूर्यात्मने तुभ्यं साम्वित्किरणमालिने ।
हृत्कुशेशयकोषश्रीसमुन्मेषविधायिने ॥ २८ ॥
नमस्तस्मै यमवते योगिनांगतये सदा । परमेशाय वै पारे सहसां तमसां तथा ॥
यज्ञाय भुक्तहविष ऋग्यजुःसामरूपिणे । नमः सरस्वतीगीतदिव्यसद्गुणशालिने ॥
शान्ताय धर्मनिधये क्षेत्रज्ञायाऽमृतात्मने । शिष्ययोगप्रतिष्ठाय नमो जीवैकहेतवे ॥
घोराय मायाविधये सहस्रशिरसे नमः ॥ ३१ ॥
योगनिद्रात्मनेनाभिपद्मोद्भूतजगत्सृजे । नमः सलिलरूपाय कारणाय जगत्स्थितेः
कार्यमेयाय वलिने जीवाय परमात्मने । गोप्त्रे प्राणाय भूतानां समो विश्वायवेधसे
दृप्ताय सिंहवपुषे दैत्यसंहारकारिणे । वीर्यायाऽनन्तमनसे जगद्भावभृते नमः ॥ ३४ ॥
संसारकारणाज्ञानमहासन्तमसच्छिदे । अचिन्त्यधाम्ने गुह्याय रुद्रायात्युद्विजेनमः ॥
शान्ताय शान्तकल्लोलकैवल्यपददायिने । सर्वभावातिरिक्ताय नमः सर्वमयात्मने ॥
इन्दीवरदलश्यामं स्फूर्जत्किञ्जल्कविभ्रमम् ।
बिभ्राणं कौस्तुभं विष्णुं नौमि नेत्ररसायनम् ॥ ३७ ॥

अगस्त्य उवाच

इति स्तुतः प्रसन्नात्मा वरदो गरुडध्वजः । ववर्ष दृष्टिसुधया सर्वान्देवान्कृपान्वितः
उवाच मधुरं वाक्यं प्रश्रयावनतान्सुरान् ॥ ३८ ॥

श्रीभगवानुवाच

जानामि विबुधाः सर्वमभिप्रायं समाधितः। दैतेयैर्विक्रमाक्रान्तं पदं समरदर्पितैः ॥
सबलैर्बलहीनानां प्रतापो विजितःपरैः । साम्प्रतं तु विधास्यामितपोयुष्मद्बलायवै
अयोध्यानगरेगत्वा करिष्येतपउत्तमम् । गुप्तो भूत्वा भक्ततेजोविवृद्ध्यैदैत्यशान्तये
भवन्तोऽपि तपस्तीव्रं कुर्वन्त्वमलमानसाः ।
अयोध्यां प्राप्यतांदेवादैत्यनाशाय सत्वरम्

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवान्देवो गरुडवाहनः। अयोध्यामागतः क्षिप्रञ्चकार तप उत्तमम्
गुप्तो भूत्वा यदा विद्वन्सुरतेजोऽभिवृद्धये। तेन गुप्तहरिर्नाम देवो विख्यातिमागतः
आगतस्य हरेः पूर्वं यत्र हस्ततलाच्च्युतम्।
सुदर्शनाख्यं तच्चक्रं तेन चक्रहरिः स्मृतः॥ ४५॥
तयोर्दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते। हरेस्तेन प्रभावेण देवाः प्रबलतेजसा॥ ४६॥
जित्वा दैत्यान्रणे सर्वान्सम्प्राप्य स्वपदान्यथ। रेजिरे विपुलानन्दैरसुरानार्दयंस्ततः
ततः सर्वे समेत्याशुबृहस्पतिपुरस्सराः। देवाः सर्वेऽनमन्मौलिमालार्चितपदाम्बुजम्
हरिं द्रष्टुमथागच्छन्नयोध्यायां समुत्सुकाः॥ ४८॥
आगत्य चततःश्रुत्वानानाविधगुणादरम्। भावैःपुण्यैःसमभ्यर्च्यनत्वाप्राञ्जलयस्तदा
हरिमेकाग्रमनसा ध्यायन्तो ध्याननिष्ठिताः॥ ४९॥
तानागतान्समालोक्यपदभक्त्याकृतानतीन्। प्रसन्नः प्राहविश्वात्मापीतवासाजनार्दनः

श्रीभगवानुवाच

भोभोदेवाभवन्तश्चचिराद्द्विग्न्याद्यसंगताः। अधुनाभवतामिच्छांकांकरोमिसुराअहम्
तद्ब्रूत त्वरिता मह्यं किं विलम्बेन निर्भयाः॥ ५१॥

देवा ऊचुः

भगवन्देवदेवेश! त्वया सम्प्रति सर्वशः। सर्वं समभवत्कार्यं निष्पन्नं वै जगत्पते!॥
तथापिसर्वदाभाव्यं नित्यंदेवत्वयाविभो!। अस्मद्रक्षार्थमत्रैव विजितेन्द्रियवर्त्मना
एवमेव सदा कार्यं शत्रुपक्षविनाशनम्॥ ५४॥

श्रीभगवानुवाच

एवमेतत्करिष्यामि भवतामरिसञ्जयम्। श्रीमतां तेजसो वृद्धिं करिष्यामिसदासुराः
कथेयश्च सदा ख्यातिं लोके यास्यति चोत्तमाम्॥ ५५॥
अयं नाम्ना गुप्तहरिर्देवो भुवनविश्रुतः। मदीयं परमं गुह्यं स्थानं ख्यातिं समेष्यति
अत्र यः प्राणिनां श्रेष्ठःपूजायज्ञजपादिकम्। करोतिपरयाभक्त्यासयातिपरमांगतिम्

अत्र यः कुरुतेदानं यथाशक्त्या जितेन्द्रियः। स स्वर्गमतुलंप्राप्यनशोचति कदाचन
अत्र मत्प्रीतये देवाः प्राणिभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः।
दातव्या गौः प्रयत्नेन सवत्सा विधिपूर्वकम् ॥ ५६ ॥
स्वर्णशृङ्गी रौप्यखुरी वस्त्रद्वयसमावृता। कांस्योपदोहना ताम्रपृष्ठीवहुगुणान्विता
रत्नपुच्छा दुग्धवती घण्टाभरणभूषिता।
अर्चिता गन्धपुष्पाद्यैः सुप्रसन्नाऽमृतप्रजा ॥ ६१ ॥
द्विजाय वेदविज्ञाय गुणिने निर्मलात्मने। विष्णुभक्तायविदुषे आनृशंस्यरताय च ॥
ब्राह्मणायच गौर्देया सर्वत्र सुखमश्नुते। न देया द्विजमात्राय दातारं सोऽवपातयेत्
मत्प्रीतयेऽत्र दातव्या निर्मलेनान्तरात्मना। स्नातं यैश्च विशुद्ध्यर्थमत्र मद्भक्तितत्परैः
तेषां स्वर्गतयो नित्यं मुक्तिः करतलेस्थिता ॥ ६५ ॥
तथा चक्रहरेः पीठे मत्प्रीत्यै दानमुत्तमम्। जपहोमादिकञ्चापि कर्त्तव्यं यत्नतोनरैः
भवन्तोऽपि विधानेनयात्रांकुर्वन्तुसत्तमाः। अस्माद्गुप्तहरेः स्थानान्निकटेसङ्गमेशुभे
प्रत्यग्भागे गोप्रताराद्योजनत्रयसंमिते। घर्घराम्बुतरङ्गिण्या सरयूः सङ्गता यतः ॥६८
अत्र स्नात्वा विधानेन द्रष्टव्योऽत्र प्रयत्नतः।
देवो गुप्तहरिर्नाम सर्वकामार्थसिद्धिदः ॥ ६६ ॥

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवः पीताम्बरधरोऽच्युतः। देवाअपिविधानेन कृत्वा यात्रांप्रयत्नतः
अयोध्यायां स्थिता नित्यं हरेर्गुणविमोहिताः ॥ ७० ॥
तदाप्रभृति विप्रेन्द्र! तत्स्थानम्भुवि पप्रथे।
कार्त्तिक्यां तु विशेषेण यात्रा साम्वत्सरी भवेत् ॥ ७१ ॥
विभोर्गुप्तहरेस्तत्र सङ्गमस्नानपूर्विका। गोप्रतारेच तीर्थेऽस्मिन्सरयूवर्घराश्रिते ॥
स्नात्वा देवोऽर्चनीयोऽयं सर्वकामफलप्रदः ॥ ७२ ॥
तथा चक्रहरेर्यात्रा कर्त्तव्या सुप्रयत्नतः। मार्गशीर्षस्य विशदे पक्षे हरितिथौ नरैः
एवं यः कुरुते यात्रां विष्णुलोके स मोदते ॥ ७४ ॥

श्रीसूत उवाच

एवमुक्त्वा तु विरते मुनौ कलशजन्मनि । कृष्णद्वैपायनो व्यासःपुनराह सविस्मयः

व्यास उवाच

अत्याश्चर्य्यमयीं ब्रह्मन्कथामेतां तपोधन! । उक्तवानसि येनैतत्साश्चर्य्यं मममानसम्

विस्तरेण मम ब्रूहि माहात्म्यं परमाद्भुतम् । शृणुसङ्गममाहात्म्यंविप्रेन्द्र! परमाद्भुतम्

स्कन्ददेवाच्छ्रुतं सम्यक्कथयामि तथा तव ॥ ७८ ॥

दशकोटिसहस्राणि दशकोटिशतानिच । तीर्थानि सरयूनद्या घर्घरोदकसङ्गमे ॥

निवसन्ति सदा विप्र! स्कन्दादवगतं मया ॥ ७९ ॥

देवतानां सुराणाञ्च सिद्धानां योगिनां तथा ।

ब्रह्मविष्णुशिवानाञ्च सान्निध्यं सर्वदा स्थितम् ॥ ८० ॥

तस्मिन्सङ्गमसलिलेनरःस्नात्वासमाहितः । सन्तर्प्यपितृदेवांश्चदत्त्वादानंस्वशक्तितः

हुत्वा वैष्णवमन्त्रेण शुचिर्यत्फलमाप्नुयात् ।

तदिहैकमना विप्र! शृणु यत्कथयामि ते ॥ ८२ ॥

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च । कुरुक्षेत्रे महाक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ ८३॥

सुवर्णदाने यत्पुण्यमहन्यहनि तद्भवेत् ॥ ८४ ॥

अमावास्यांपौर्णमास्यांद्वादश्योरुभयोरपि । अयनेचव्यतीपातेस्नानंवैष्णवलोकदम्

तिष्ठेद्युगसहस्रन्तु पादेनैकेन यः पुमान् । विधिवत्सङ्गमेस्नायात्पौष्यांतदविशेषतः

लम्बतेऽवाक्छिरा यस्तु युगानामयुतं पुमान् ।

स्नातानां शुचिभिस्तोयैः सङ्गमे प्रयतात्मनाम् ॥ ८७ ॥

व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि ॥ ८८ ॥

पौषे मासि विशेषेण स्नानं बहुफलप्रदम् ॥ ८९ ॥

पौषे मासि विशेषेण यः कुर्यात्स्नानमादृतः ।

ब्राह्मणः क्षत्रियोवैश्यः शूद्रो वा वर्णसङ्करः ॥

स याति ब्रह्मणः स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ९० ॥

पौषे मासि तु यो दद्याद् घृताढ्यं दीपमुत्तमम् ।
विधिवच्छ्रद्धया विप्र! शृणु तस्याऽपि यत्फलम् ॥ ९१ ॥
नानाजन्मार्जितं पापं स्वल्पंबह्वपिवाभवेत् । तत्सर्वंनश्यति क्षिप्रं तोयस्थंलवणंयथा
आयुरारोग्यमैश्वर्यं सन्ततीःसौख्यमुत्तमम् । प्राप्नोतिफलदंनित्यंदीपदःपुण्यभाङ्नरः
यस्तु शुक्लत्रयोदश्यां पौषेऽत्र प्रयतो व्रती । जागरं कुरुतेधीरः स गच्छेद्भवनंहरेः
जागरं विदधद्रात्रौ दीपं दत्त्वा तु सर्वशः । होमञ्च कारयेद्विप्रो नियतात्माशुचिव्रतः
वैष्णवो विष्णुपूजाञ्च कुर्वञ्छृण्वन्हरेःकथाम् ।
गीतवादित्रनृत्यैश्च विष्णुतोषणकारकैः ॥
कथाभिः पुण्ययुक्ताभिर्जागृयाच्छर्वरीं नरः ॥ ९६ ॥
ततः प्रभाते विमले स्नात्वा विधिवदादरात् ।
विष्णुं सम्पूज्य विप्रांश्च देयं स्वर्णादि शक्तितः ॥ ९७ ॥
स्वर्णं चाऽन्नञ्च वासांसि योदद्याच्छ्रद्धयाऽन्वितः ।
सङ्गमे विधिवद्विद्वान्स याति परमां गतिम् ॥ ९८ ॥
वर्षे वर्षे तु कर्त्तव्यो जागरः पुण्यतत्परैः ॥ ९९ ॥
हरिः पूज्यो द्विजाः सम्यक्सन्तोष्याः शक्तितो नरैः ।
तेन विष्णोः परातुष्टिः पापानि विफलानि च ।
भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात् ॥ १०० ॥
तत्र स्नातो दिवं याति अत्र स्नातः सुखी भवेत् ॥ १०१ ॥
त्रिषु लोकेषु ये केचित्प्राणिनः सर्व एव ते ।
तर्प्यमाणाः परां तृप्तिं यान्ति सङ्गमजैर्जलैः ॥ १०२ ॥
भूतानामिहसर्वेषां दुःखोपहतचेतसाम् । गतिमन्वेषमाणानां न सङ्गमसमा गतिः ॥
सप्तावरान्सप्त परान्पुरुषांश्चाऽऽत्मना सह । पुंसस्तारयते सर्वान्सङ्गमे स्नानमाचरन्
जात्यन्धैरिह ते तुल्यास्तथा पङ्गुभिरेव च । समेत्याऽत्रचनस्नान्ति सरयूघर्घरसङ्गमे
वर्णानां ब्राह्मणो यद्वत्तथा तीर्थेषु सङ्गमः । सरयूघर्घरायोगे वै स्नातस्यो नरः सदा

अत्र स्नानेन दानेन यथाशक्त्याजितेन्द्रियः। होमेनविधियुक्तेननरःस्वर्गमवाप्नुयात्

नरो वा यदि वा नारी विधिवत्स्नानमाचरेत्।
स्वर्गलोकनिवासो हि भवेत्तस्य न संशयः॥ १०८॥

यथा वह्निर्दहेत्सर्वं शुष्कमार्द्रमथाऽपि वा। भस्मीभवन्तिपापानितत्समागममज्जनात्
एकतः सर्वतीर्थानि नानाविधिफलानि वै। सरयूघर्घरोत्पन्नसङ्गमस्त्वधिको भवेत्
सर्वतीर्थावगाहस्यफलंयादृक्स्मृतं श्रुतौ। तादृक्फलंनृणांसरय्वांभवेत्सङ्गममज्जनात्
गोप्रताराभिधं तीर्थमपरं वर्ततेऽनघ!। सन्निधौ सङ्गमस्यैव महापातकनाशनम् ११२
यत्रस्नानेन दानेन न शोचति नरः क्वचित्। गोप्रतारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति

वाराणस्यां यथा विद्वन्वर्त्तते मणिकर्णिका।
उज्जयिन्यां यथा विप्र! महाकालनिकेतनम्॥ ११४॥

नैमिषे चक्रवापी तु यथा तीर्थतमास्मृता। अयोध्यायांतथाविप्रगोप्रताराभिधंमहत्
यत्र रामाज्ञया विद्वन्साकेतनगरीजनाः। अवापुः स्वर्गमतुलं निमज्ज्य परमाम्भसि॥

व्यास उवाच

अवापुस्ते कथं स्वर्गं साकेतनगरीजनाः। कथञ्च राघवो विद्वन्नेतत्कथय सुव्रत!॥

अगस्त्य उवाच

सावधानः शृणु मुने!कथामेतांसुविस्तरात्। यथाजगामरामोऽसौस्वर्गंसचपुरीजनः
पुरा रामो विधायैव देवकार्य्यमतन्द्रितः। स्वर्गं गन्तुं मनश्चक्रे भ्रातृभ्यांसहवीरधीः
ततो निशम्य चारेण वानराः कामरूपिणः। ऋक्षगोपुच्छरक्षांसि समुत्पेतुरनेकशः
देवगन्धर्वपुत्राश्च ऋषिपुत्राश्च वानराः। रामक्षयं विदित्वा तु सर्व एव समागताः॥
ते राममनुगत्योचुः सर्वे वानरयूथपाः। तवाऽनुगमने राजन्सम्प्राप्ताःस्मइहानघ!॥
यदि राम विनास्माभिर्गच्छेस्त्वं पुरुषर्षभ!। सर्वे खलुहताः स्याम दण्डेन महतानृप
श्रुत्वा तु वचनं तेषामृक्षवानररक्षसाम्। विभीषणमुवाचाऽथ राघवस्तत्क्षणं गिरा
यावत्प्रजाधरिष्यन्ति तावद्देव विभीषण!। कारयस्वमहद्राज्यंलङ्कांत्वंपालयिष्यसि

शाधि राज्यञ्च खल्वेतन्नान्यथा मे वचः कुरु।

प्रजास्त्वं रक्ष धर्मेण नोत्तरं वक्तुमर्हसि ॥ १२६ ॥

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थोहनुमन्तमथाब्रवीत् । वायुपुत्रचिरञ्जीवमाप्रतिज्ञांवृथाकृथाः
यावल्लोका वदिष्यन्ति मत्कथां वानरर्षभ! । तावत्त्वंधारयप्राणान्प्रतिज्ञांप्रतिपालयन्
मैन्दश्च द्विविदश्चैव अमृतप्राशनावुभौ । यावल्लोका धरिष्यन्ति तावदेतौ धरिष्यतः

पुत्रपौत्राश्च येऽस्माकं तान्रक्षन्त्विह वानराः ।
एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थः सर्वानथ च वानरान्
मया सार्धं प्रयातेति तदा तान्राघवोऽब्रवीत् ॥ १३० ॥

प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महाभुजः । रामः कमलपत्राक्षः पुरोधसमथाऽब्रवीत्
अग्निहोत्राणि यान्त्वग्रेदीप्यमानानिसर्वशः । वाजपेयातिरात्राणिनिर्यान्तुचममाग्रतः

ततो वसिष्ठस्तेजस्वी सर्वं निश्चित्य चेतसा ।
चकार विधित्कर्म महाप्रास्थानिकम्विधिम् ॥ १३३ ॥

ततः क्षौमाम्बरधरो ब्रह्मचर्यसमन्वितः । कुशानादाय पाणिभ्यां महाप्रस्थानमुद्यतः
न व्याहरच्छुभं किञ्चिदशुभं वा नरेश्वरः । निष्क्रम्यनगरात्तस्मात्सागरादिवचन्द्रमाः

रामस्य सव्यपार्श्वे तु सपद्मा श्रीः समाश्रिता ।
दक्षिणे ह्रीर्विशालाक्षी व्यवसायस्तथाऽग्रतः ॥ १३६ ॥

नानाविधायुधान्यत्र धनुर्ज्याप्रभृतीनि च । अनुव्रजन्ति काकुत्स्थं सर्वेपुरुषविग्रहाः
वेदो ब्राह्मणरूपेणसावित्रीसव्यदक्षिणे । ॐकारोऽथवषट्कारःसर्वेरामं तदाऽव्रजन्
ऋषयश्चमाहात्मानःसर्वे चैवमहीधराः । अनुगच्छन्तिकाकुत्स्थंस्वर्गद्वारमुपस्थितम्
तथानुयान्ति काकुत्स्थमन्तःपुरगताःस्त्रियः । सवृद्धाबालदासीकाःसवर्षद्वाररक्षकाः
सान्तःपुरश्च भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ । रामं व्रजन्तमागम्य रघुवंशमनुव्रताः ॥१४१
ततोविप्रामहात्मानःसाग्निहोत्राःसमन्ततः । सपुत्रदाराःकाकुत्स्थमनुगच्छन्तिसर्वशः

मन्त्रिणो भृत्ययुक्ताश्च सपुत्राः सहबान्धवाः ।
सर्वे ते सानुगाश्चैव ह्यनुगच्छन्ति राघवम् ॥ १४३ ॥

ततः सर्वाः प्रकृतयो हृष्टपुष्टजनावृताः । गच्छन्तमनुगच्छन्ति राघवं गुणरञ्जिताः ॥

तथा प्रजाश्च सकलाः सुपुत्राश्चसबान्धवाः । राघवस्यानुगाश्चासन्हृष्टाविगतकल्मषम्
स्नाताः शुक्लाम्बरधराः सर्वेप्रयतमानसाः । कृत्वा किलकिलाशब्दमनुयाताश्च राघवम्
न कश्चित्तत्र दीनोऽभून्न भीतोनाऽतिदुःखितः । प्रहृष्टामुदिताः सर्वेबभूवुःपरमाद्भुताः
द्रष्टुकामाश्चनिर्वाणं राज्ञो जनपदास्तथा । सम्प्राप्तास्तेऽपिदृष्ट्वैव नभोमार्गेणचक्रिणा
ऋक्षवानररक्षांसि जनाश्च पुरवासिनः । आगत्य परया भक्त्या पृष्ठतः समुपाययुः॥
तानिभूतानि नगरेह्यन्तर्धानगतान्यपि । राघवं तेऽप्यनुययुः स्वर्गद्वारमुपस्थितम्॥

यानि पश्यन्ति काकुत्स्थं स्थावराणि चराणि च ।
सत्त्वानि स्वर्गगमने मतिं कुर्वन्ति तान्यपि ॥ १५१ ॥
नाऽऽसीत्सत्त्वमयोध्यायां सुसूक्ष्ममपि किञ्चन ।
यद्राघवं नाऽनुयाति स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ १५२ ॥

अथार्द्धयोजनंगत्वा नदीं पश्चान्मुखो ययौ । सरयूं पुण्यसलिलां ददर्श रघुनन्दनः॥
अथ तस्मिन्मुहूर्ते तु ब्रह्मालोकपितामहः । सर्वैः परिवृतोदेवैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः

आययौ तत्र काकुत्स्थं स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ १५४ ॥

विमानशतकोटिभिर्दिव्याभिःसर्वतोवृतः । दीपयन्सर्वतोव्योमज्योतिभूतमनुत्तमम्
स्वयंप्रभैश्च तेजोभिर्महद्भिःपुण्यकर्मभिः । पुण्या वाता ववुस्तत्रगन्धवन्तः सुखप्रदाः
सपुण्यपुष्पवर्षश्च वायुयुक्तं महाजवम् । गन्धर्वैरप्सरोभिश्च तस्मिन्सूर्यउपस्थितः॥

सरयूसलिलं रामः पद्भ्यां स समुपास्पृशत् ।
ततो ब्रह्मा सुरैर्युक्तं स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ १५८ ॥

त्वं हि लोकपतिर्देव न त्वां जानाति कश्चन । अहं ते वै विशालाक्ष! भूतपूर्वपरिग्रहः
त्वमचिन्त्यं महद्भूतमक्षयंलोकसंग्रहे । यामिच्छसिमहावीर्यतांतनुं प्रविशस्वकाम्
पितामहस्य वचनादिदमेवाविशत्स्वयम् । सुदिव्यं वैष्णवं तेजः संसारंससहानुजः

ततो विष्णुतनुं देवाः पूजयन्तः सुरोत्तमम् ॥ १६१ ॥

साध्यामरुद्गणाश्चैवसेन्द्राःसाग्निपुरोगमाः । येचदिव्याऋषिगणागन्धर्वाप्सरसस्तथा

सुपर्णा नागयक्षाश्च दैत्यदानवराक्षसाः ॥ १६२ ॥

देवाः प्रहृष्टा मुदिताः सर्वे पूर्णमनोरथाः। साधुसाध्वितितेसर्वेत्रिदिवस्थावभाषिरे
अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाच ह। एषां लोकं जनौघानां दातुमर्हसि सुव्रत
इमे तु सर्वेमत्स्नेहादायाताःसर्वमानवाः। भक्ताश्चभक्तिमन्तश्चत्यक्तात्मानोऽपिसर्वशः

तच्छ्रुत्वा विष्णुकथितं सर्वलोकेश्वरोऽब्रवीत्।
लोकं सन्तानिकं नाम संस्थास्यन्ति हि मानवाः॥ १६६॥

स्वर्गद्वारेऽत्रवैतीर्थेराममेवानुचिन्तयन्। प्राणांस्त्यजतिभक्त्यावैससन्तानम्परंलभेत्

सर्वे सन्तानिकं नाम ब्रह्मलोकादनन्तरम्।
वानराश्च स्वकां योनिं राक्षसाश्चाऽपि राक्षसीम्॥ १६८॥

यस्या विनिःसृता ये वै सुरासुरतनूद्भवाः। आदित्यतनयश्चैव सुग्रीवः सूर्यमण्डलम्
ऋषयो नागयक्षाश्च प्रयास्यन्ति स्वकारणम्। तथाब्रुवतिदेवेशेगोप्रतारमुपस्थितम्
तज्जलं सरयूं भेजे परिपूर्णं ततोजलम्। अवगाह्य जलं सर्वे प्राणांस्त्यक्त्वाप्रहृष्टवत्
मानुषं देहमुत्सृज्य तेविमानान्यथाऽऽरुहन्। तिर्यग्योनिगतायेच प्रविश्य सरयूं तदा
देहत्यागश्चतेतत्रकृत्वादिव्यवपुर्द्धराः। तथान्यान्यपि सत्त्वानि स्थावराणिचराणिच
प्राप्य चोत्तमदेहं वै देवलोकमुपागमन्। तस्मिंस्तत्र समापन्ने वानरा ऋक्षराक्षसाः

तेऽपि प्रविविशुः सर्वे देहान्निक्षिप्य वै तदा॥ १७४॥

तदा स्वर्गंगताःसर्वेस्मृत्वालोकगुरुंविभुम्। जगामत्रिदशैः सार्द्धं रामोहृष्टोमहामतिः
अतस्तद्गोप्रताराख्यं तीर्थंविख्यातिमागतम्। गोप्रतारे परोमोक्षोनान्यतीर्थेषुविद्यते
जन्मान्तरशतैर्विप्र योगोऽयं यदि लभ्यते। मुक्तिर्भवतिवत्त्वेकजन्मनालभ्यते न वा
गोप्रतारेण सन्देहोहरिर्भक्त्यासुनिष्ठितः। एकेनजन्मनान्योऽपियोगमोक्षञ्चविन्दति

गोप्रतारे नरो विद्वान्योऽपि स्नाति सुनिश्चितः।
विशत्यसौ परं स्थानं योगिनामपि दुर्लभम्॥ १७९॥
कार्त्तिक्याञ्च विशेषेण स्नातव्यं विजितेन्द्रियैः।
कार्त्तिके मासि विप्रर्षे सर्वे देवाः सवासवाः॥
स्नातुमायान्त्ययोध्यायां गोप्रतारे विशेषतः॥ १८०॥

गोप्रतारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति । यत्र प्रयागराजोऽपि स्नातुमायातिकार्त्तिके
निष्पापःकलुषं त्यक्त्वा शुक्लाङ्गः सितकञ्चुकः ।
शुद्ध्यर्थं साधु कमोऽसौ प्रयागे मुनिसत्तम! ॥ १८२ ॥
यानि कानि च तीर्थानि भूमौ दिव्यानि सुव्रत! ।
कार्त्तिक्यां तानि सर्वाणि गोप्रतारे वसन्ति वै ॥ १८३ ॥
गोप्रतारे जपो होमः स्नानं दानञ्च शक्तितः । सर्वमक्षयतां याति श्रद्धयानियमव्रतम्
कार्त्तिके प्राप्य तद्यान्ति तीर्थानि सकलान्यपि ।
गोप्रतारं गमिष्यामः पापं त्यक्तुमितीच्छया ॥ १८५ ॥
गोप्रतारे कृतं स्नानं सर्वपापप्रणाशनम् । गोप्रतारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा गुप्तहरिंविभुम्
सर्वपापैः प्रमुच्येत नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ १८६ ॥
विष्णुमुद्दिश्य विप्राणां पूजनञ्च विशेषतः । कर्त्तव्यं श्रद्धया युक्तैः स्नानपूर्वं यतव्रतैः
पयस्विनी च गौर्देया सालङ्कारा च शक्तितः । विप्राय वेदविदुषे नियमव्रतशालिने
ब्राह्मणायाऽतिशुचये विष्णुप्रीत्यै यतात्मना ॥ १८८ ॥
अन्नं बहुविधं हेमवासांसिविविधानिच । दातव्यानि हरेः प्राप्त्यैभक्त्यापरमयायुतैः
सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे नर्मदायां शशिग्रहे । तुलादानस्य यत्पुण्यं तदत्र दीपदानतः ॥१९०॥
घृतेन दीपको यस्य तिलतैलेन वा पुनः । ज्वलते मुनिशार्दूल! हयमेधेन तस्य किम्
तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः कृतं तीर्थावगाहनम् । दीपदानं कृतं येन कार्त्तिके केशवाग्रतः ॥
नानाविधानि तीर्थानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि च ।
गोप्रतारस्य तान्यत्र कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ १९३ ॥
स्वर्णमलपञ्च यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे । शुभाङ्गतिमवाप्नोति ह्यग्निवच्चैव दीप्यते
गोप्रताराभिधे तीर्थे त्रिलोकी विश्रुते द्विज! ।
दत्त्वाऽन्नञ्च विधानेन न स भूयोऽभिजायते ॥ १९५ ॥
तत्र स्नानंतु यः कुर्याद्विप्रान्संतर्पयेन्नरः । सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलम्प्राप्नोतिमानवः
एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र यतव्रतः । यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति

अग्निप्रवेशं ये कुर्युर्गोप्रतारे विधानतः। तेविशन्ति पदं विष्णोर्निःसन्दग्धं तपोधन

कुर्वन्त्यनशनं येऽत्र विष्णुभक्त्या सुनिश्चिताः॥

न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ १६६॥

अर्चयेद्यस्तु गोविन्दं गोप्रतारे हि मानवः॥

दशसौवर्णिकं पुण्यं गोप्रतारे प्रकथ्यते॥ २००॥

अग्निहोत्रफलो धूपो गोविन्दस्य समर्पितः॥

भूमिदानेन सदृशं गन्धदानफलं स्मृतम्॥ २०१॥

अत्यद्भुतमिदं विद्वन्स्थानमेतत्प्रकीर्तितम्॥

कार्त्तिक्यां तु विशेषेण अत्र स्नात्वा शुचिव्रतः॥ २०२॥

स्वर्गद्वारेनरःस्नात्वादशस्वर्णफलंलभेत्।स्वर्णदःस्वर्गवासीचयोदद्याच्छ्रद्धयान्वितः

सुतीर्थे पर्वणि श्रेष्ठे दशस्वर्णफलप्रदे। ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां रात्रौ जागरणं चरेत्॥

उपोषितः शुचिः स्नातो विष्णुपूजनतत्परः। दीपंदद्यात्प्रयत्नेननानाफलविधायिनम्

तावद्गर्जन्ति पुण्यानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले। यावद्दद्याज्जले दीपं कार्त्तिके केशवाग्रतः

पौर्णमास्यांप्रभातेतुस्नात्वानिर्मलमानसः। हरिंसम्पूज्यविधिवद्विधायश्राद्धमादरात्

दत्त्वाऽन्नंचयथाशक्त्यासन्तोष्यब्राह्मणांस्ततः।वस्त्रादिभिरलङ्कारैःसम्पूज्यद्विजदम्पती

विभुंगुसहरिं दृष्ट्वा सम्पूज्य तु विशेषतः। नमस्कृत्याऽनु तत्तीर्थं शुचिस्तद्गतमानसः

स्वर्गद्वारे च विधिवन्मध्याह्ने स्नानमाचरेत्।

सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते॥ २१०॥

इति परमविधानैर्गोप्रतारे विधाय प्रथितसुकृतमूर्त्तिः स्नानमुच्चैः प्रयत्नात्।

कलितनिखिलपापः पूजयित्वाऽऽदरेणाऽच्युतममलचिकाशोविष्णुसायुज्यमेति

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे-

ऽयोध्यामाहात्म्ये स्वर्गद्वारगोप्रतारतीर्थमाहात्म्यवर्णनं

नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

सप्तमोऽध्यायः

क्षीरोदकादिघोषार्ककुण्डान्तमाहात्म्यवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

तीर्थमन्यत्प्रवक्ष्यामि क्षीरोदकमिति स्मृतम् ।
सीताकुण्डाच्च वायव्ये वर्त्तते गुणसुन्दरम् ॥
पुण्यैकनिचयस्थानं सर्वदुःखविनाशनम् ॥ १ ॥

पुरा दशरथो राजा पुत्रेष्टिं नाम नामतः । चकार विधिवद्यज्ञं पुत्रार्थं यत्र चाऽऽदरात्
क्रतुं समापयामास सानन्दो भूरिदक्षिणम् । यज्ञान्ते क्रतुभुक्तत्र मूर्तिमान्समदृश्यत
हस्ते कृत्वा हेमपात्रंहविःपूर्णमनुत्तमम् । तस्मिन्हविषिसङ्कीर्णं वैष्णवं तेजउत्तमम्
चतुर्विधंविभज्यैवपत्नीभ्योदत्तवान्नृपः ॥ ४ ॥

यत्र तत्क्षीरसम्प्राप्तिर्जाता परमदुर्लभा । क्षीरोदकमितिख्याततंतत्स्थानंपापनाशनम्
उदकेनाभिव्यक्तं च उत्तमश्च फलप्रदम् ॥ ५ ॥

तत्र स्नात्वा नरो धीमान्विजितेन्द्रिय आदरात् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति पुत्रांश्च सुबहुश्रुतान् ॥ ६ ॥

आश्विनेशुक्लपक्षस्यएकादश्यांजितव्रतः । तत्रस्नात्वा विधानेनदत्त्वाशक्त्याद्विजन्मने
विष्णुं सम्पूज्य विधिवत्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
पुत्रानवाप्नुयाद्विद्धि धर्मांश्च विधिवन्नरः ॥ ८ ॥

तस्मात्क्षीरोदकस्थानान्नैर्ऋते दिग्दले श्रितम् ।
ख्यातं बृहस्पतेः कुण्डमुद्दण्डाचण्डमण्डितम् ॥ ९ ॥

सर्वपापप्रशमनं पुण्यामृततरङ्गितम् । यत्र साक्षात्सुरगुरुर्निवासं किल निर्ममे ॥ १०॥
यज्ञश्च विधिवच्चक्रे बृहस्पतिरुदारधीः । नानामुनिगणैर्युक्तं रम्यं बहुफलप्रदम् ॥
सुपर्णाख्यापरपरमं कुण्डं तत्पापदुर्लभम् ॥ ११ ॥

इन्द्रादयोऽपि विबुधा यत्र स्नात्वा प्रयत्नतः ॥
मनोऽभीष्टफलं प्राप्ताः सौन्दर्यौदार्यतुन्दिलाः ॥ १२ ॥
यत्र स्नानेन दानेन नरो मुच्येत किल्विषात् ॥ १३ ॥
भाद्रे शुक्ले तु पञ्चम्यां यात्रा तत्र फलप्रदा। अन्यदाऽपिगुरोर्वारेस्नानं बहुफलप्रदम्
बृहस्पतेस्तथा विष्णोः पूजां तत्र य आचरेत् ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके स मोदते ॥ १५ ॥
भवेद्बृहस्पतेः पीडा यस्यगोचरवेधतः । तेनाऽत्रविधिवत्स्नानंकार्यं सङ्कल्पपूर्वकम्
होमंकृत्वा गुरोर्मूर्तिःसुवर्णेनविनिर्मिता । स्थित्वाजले प्रदेयावै पीताम्बरसमन्विता
वेदज्ञायाऽतिशुचये स्नात्वा पीडापनुत्तये । होमञ्च कारयेत्तत्र ग्रहजाप्यविधानतः ॥
एवं कृते न सन्देहो ग्रहपीडा प्रणश्यति ॥ १६ ॥
तद्दक्षिणे मुनिश्रेष्ठरुक्मिणीकुण्डमुत्तमम् । चकारयत्स्वयंदेवीरुक्मिणीकृष्णवल्लभा
तत्र विष्णुः स्वयं चक्रे निवासंसलिलेतदा । वरप्रदानात्स्नेहेनभार्यायाःप्रगुणीकृतम्
तत्र स्नानं तथा दानं होमं वैष्णवमन्त्रकम् । द्विजपूजां विष्णुपूजांकुर्वीतप्रयतोनरः
तत्र साम्वत्सरी यात्रा कर्त्तव्या सुप्रयत्नतः । ऊर्ज्जकृष्णनवम्याञ्च सर्वपापापनुत्तये
पुत्रवाञ्जायते वन्ध्यो यात्रां कृत्वा न संशयः ।
नारीभिर्वा नरैर्वापि कर्त्तव्यं स्नानमादरात् ॥ २४ ॥
भुक्त्वा भोगान्समग्रांश्च विष्णुलोके स मोदते ।
लक्ष्मीकामनयातत्र स्नातव्यश्च विशेषतः ॥ २५ ॥
सर्वकाममवाप्नोतितत्रस्नानेनमानवः । रुक्मिणीश्रीपतिप्रीत्यैदातव्यञ्चस्वशक्तितः
कर्त्तव्या विधिवत्पूजा ब्राह्मणानांविशेषतः । ध्येयोलक्ष्मीपतिस्तत्रशङ्खचक्रगदाधरः
पीताम्बरधरः स्रग्वी नारदादिभिरीडितः । तार्क्ष्यासनोमुकुटवान्महेन्द्रादिविभूषितः
सर्वकामफलावाप्त्यै वक्षोलक्षितकौस्तुभः । अतसीकुसुमश्यामः कमलामललोचनः
एवं कृते न सन्देहः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।

इह लोके सुखम्भुक्त्वा हरिलोके स मोदते ॥ ३० ॥

अतः परम्प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यदघापहम् । कलिकिल्विषसंहारकारकं प्रत्ययात्मकम्
परम्पवित्रमतुलं सर्वकामार्थसिद्धिदम् । धनयक्षइतिख्यातं परं प्रत्ययकारकम् ॥३२

रुक्मिणीकुण्डवायव्यदिग्दले संस्मृतं शुभम् ।
हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेरासीत्तत्र धनं महत् ॥ ३३ ॥

तस्य रक्षार्थमत्यर्थं रक्षितो यक्षउच्चकैः । विश्वामित्रो मुनिः पूर्वं यदाचैव पराजयत्
हरिश्चन्द्रं नरपतिं राजसूयकरम्परम् । राज्यं जग्राह सकलं चतुरङ्गबलान्वितम् ॥
तद्वशेऽदाच्च स मुनिर्धनं सकलमुत्तमम् । तद्रक्षायै प्रयत्नेन यक्षं स्थापितवानसौ ॥

प्रमन्थुरइतिख्यातं प्रमोदानन्दमन्दिरम् ।
रक्षां विदधतस्तस्य बहुयत्नेन सर्वशः ॥ ३७ ॥

तुतोष स मुनिर्धीमान्कन्दाचिद्विजितेन्द्रियः । उवाचमधुरं वाक्यंप्रीत्यापरमयायुतः

विश्वामित्र उवाच

वरं वरय धर्मज्ञ! क्षिप्रमेवविमत्सरः । भक्त्या परमया धीर! सन्तुष्टोऽस्मिविशेषतः

यक्ष उवाच

वरं प्रयच्छसि यदि विप्रवर्य! मदीप्सितम् । ममाङ्गमतिदुर्गन्धि शापाच्च नृपतेरभूत्

सुगन्धयितुं ब्रह्मर्षे! तत्प्रसीदमुनीश्वर! ॥ ४० ॥

अगस्त्य उवाच

एवमुक्ते तु यक्षेण मुनिर्ध्यानस्थलोचनः । तंविविच्यानयाभक्त्याअभिषेकंचकारसः
तीर्थोदकेन विधिवत्कृत्वासङ्कल्पमादरात् । ततः सोऽभूत्क्षणेनैवसुगन्धोत्तरविग्रहः
तथाभूतः स मधुरं प्रोवाचप्राञ्जलिस्ततः । पुनः पुरः स्थितोधीमान्विनयावनतस्तदा

यक्ष उवाच

त्वत्कृपाभिरहंधीर जातः सुरभिविग्रहः । एतत्स्थानं यथाख्यातिंयातिसर्वज्ञतत्कुरु

त्वत्प्रसादेन विप्रर्षे! तथा यत्नं विधेहि वै ॥ ४५ ॥

अगस्त्य उवाच

एवमुक्तः क्षणं ध्यात्वा मुनिस्स्तिमितलोचनः ।

यक्षं प्रति प्रसन्नात्मा ह्यवाच श्लक्ष्णया गिरा ॥ ४६ ॥

विश्वामित्र उवाच

प्रसिद्धिमतुलां यक्ष एतत्स्थानं गमिष्यति । धनयक्ष इतिख्यातिमेतत्तीर्थंगमिष्यति

सौन्दर्य्यदं शरीरस्यपरंप्रत्ययकारकम् । यत्रस्नात्वाविधानेनदौर्गन्ध्यंत्यजतिक्षणात्

तत्र स्नानं प्रयत्नेन कर्त्तव्यं पुण्यकाङ्क्षिभिः ॥ ४८ ॥

दानंश्रद्धास्वशक्तिभ्यांलक्ष्मीपूजाविशेषतः । तत्रस्नानेनदानेन लक्ष्मीप्रीत्यैविशेषतः

पूजया तु निधीनाञ्च नवानामपि सुव्रत! । इहलोके सुखं भुक्त्वा परलोके स मोदते

महापद्मस्तथा पद्मः शङ्खो मकरकच्छपौ । मुकुन्दकुन्दनीलाश्च सर्वाश्च निधयो नव

एतेषामपि कुण्डेऽत्र सन्निधिर्भविताऽनघ! । एतेषां तु विशेषेण पूजाबहुफलप्रदा ॥

जलमध्ये प्रकर्त्तव्यं निधिलक्ष्मीप्रपूजनम् ॥ ५३ ॥

अन्नं बहुविधं देयं वासांसि विविधानि च ॥ ५४ ॥

सुवर्णादि यथा शक्त्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् । गुप्तंदानं प्रयत्नेनकर्त्तव्यंसुप्रयत्नतः

फलानि च सुवर्णानि देयानि च विशेषतः ॥ ५६ ॥

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नानं बहुफलप्रदम् । श्रद्धयापरयायुक्तैः कर्त्तव्यंश्रद्धयाऽधिकम्

माघे कृष्णचतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी भवेत् ।

तत्र स्नानं पितृणान्तु तर्पणञ्च विशेषतः ॥ ५८ ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्तृप्यत्विति ब्रुवन् । अपसव्येन विधिवत्तर्प्पयेदञ्जलित्रयम् ॥

एवंकुर्वन्नरोयक्ष! न मुह्यातकदाचन । अत्र स्नातो दिवं याति अत्रस्नातःसुखीभवेत्

अत्र स्नातेन ते यक्ष कर्त्तव्यं पूजनम्पुरः । त्वत्पूजनेन विधिवन्नृणां पापक्षयोभवेत्

नमः प्रमथराजेति पूजामन्त्र उदाहृतः । तीर्थमध्ये प्रकर्त्तव्यं पूजनं श्रवणादिकम् ॥

निधिलक्ष्म्योस्तथायक्ष! तवपूजा विशेषतः । एवंयःकुरुतेधीरसर्वान्कामानवाप्नुयात्

धनार्थी धनमाप्नोति पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् ।

मोक्षार्थी मोक्षमाप्नोति तत्किं न यदिहाऽऽप्यते ॥ ६४

यस्तु मोहान्नरोयक्ष स्नानं नकुरुतेकिल । तस्यसाम्वत्सरंपुण्यंत्वंग्रहीष्यसिसर्वशः

इति दत्त्वा वरांस्तस्मै विश्वामित्रोमुनीश्वरः । अन्तर्दधेमुनिवरस्तदासचतपोनिधिः
तदाप्रभृतितत्स्थानंपरमांख्यातिमाययौ । तस्यतीर्थस्यसकलाभूमिःस्वर्णविनिर्मिता
दिव्यरत्नौघखचिता समन्तादुपशोभिता । एवं यः कुरुते विद्वन्सयातिपरमांगतिम्
धनयक्षादुत्तरस्मिन्दिग्भागेसंस्थितं द्विज! । वसिष्ठकुण्डंविख्यातंसर्वपापापहं सदा

वसिष्ठस्य सदा तत्र निवासः सुतपोनिधेः ।
अरुन्धती सदा यस्य वर्तते निर्मलव्रता ॥ ७० ॥

अत्र स्नानंविशेषेणश्राद्धपूर्वमतन्द्रितः । यः कुर्यात्प्रयतोधीमांस्तस्यपुण्यमनुत्तमम्
वामदेवस्य यत्रैव सन्निधिर्वर्ततेऽनघ! । वशिष्ठवामदेवौतु पूजनीयौ प्रयत्नतः ॥७४॥
पतिव्रतापूजनीयाऽरुन्धतीचविशेषतः । स्नातव्यंविधिनासम्यग्दातव्यञ्चस्वशक्तितः
सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते नात्र संशयः । अत्र यः कुरुते स्नानं स वसिष्ठसमो भवेत्
भाद्रेमासिसितेपक्षेपञ्चम्यांनियतव्रतः । तस्यसाम्वत्सरीयात्राकर्त्तव्याविधिपूर्विका

विष्णुपूजा प्रयत्नेन कर्तव्या श्रद्धयाऽत्र वै ।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते ॥ ७६ ॥
वसिष्ठकुण्डाद् विप्रेन्द्र! प्रत्यदिग्दलमाश्रितम् ।
विख्यातं सागरंकुण्डं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥
यत्र स्नानेन दानेन सर्वकामानवाप्नुयात् ॥ ७७ ॥
पौर्णमास्यां समुद्रस्य स्नानाद्यत्पुण्यमाप्नुयात् ।
तत्पुण्यं पर्वणि स्नातो नरश्चाऽक्षयमाप्नुयात् ॥ ७८ ॥

तस्मादत्रविधानेनस्नातव्यंपुत्रकाङ्क्षया । आश्विनेपौर्णमास्यांतुविशेषात्स्नानमाचरेत्
एवं कुर्वन्नरोविद्वान्सर्वपापैः प्रमुच्यते । अत्रस्नात्वा नरोदत्त्वा यथाशक्त्यादिवम्व्रजेत्

सागरान्नैर्ऋतेभागे योगिनीकुऽण्डमुत्तमम् ।
यत्राऽऽस्ते चतुःषष्टियोगिन्यो जलसंस्थिताः ॥ ८१ ॥

सर्वार्थसिद्धिदाः पुंसांस्त्रीणाञ्चैवविशेषतः । परसिद्धिप्रदाःसर्वाः सर्वकामफलप्रदाः
आश्विने शुक्लपक्षस्य अष्टम्याञ्च विशेषतः । स्नातव्यञ्च प्रयत्नेन योगिनीप्रीतयेनृभिः

अत्रस्तानंतथादानंसर्वंसफलंशाम्व्रजेत् । यक्षिणीप्रभृतयः सिद्धा भवन्त्यत्र नसंशयः
योगिनीकुण्डतः पूर्वमुर्वशीकुण्डमुत्तमम् । यत्र स्नातोनरोविद्वन्नुर्वशींदिविसंश्रयेत्
पुराकिल मुनिर्धीरो रैभ्योनामंतपोधनः । चचारहिमवत्पार्श्वे निराहारोजितेन्द्रियः
तत्तपो विपुलं दृष्ट्वा भीतः सुरपतिस्ततः । उर्वशीं प्रेषयामास तपोविघ्नाय चादरात्
ततः सा प्रेषिता तेनाजगाम गजगामिनी । उवास हिमवत्पार्श्वे रैभ्याश्रममनुत्तमम्
नवफुल्ललताकुञ्जे मञ्जुकूजद्विहङ्गमे । किन्नरीकेलिसङ्गीतस्तिमिताङ्गकुरङ्गके ॥८६॥

पुन्नागकेशराशोकच्छिन्नकिञ्जल्कपिञ्जरे ।
कल्पिते काञ्चनगिरौ द्वितीय इव वेधसा ॥ ९० ॥

सा वभौ कान्तिसर्वस्वकोशःकुसुमधन्वनः । उर्वश्यनल्पसामान्यलावण्यामृतवाहिनी
अङ्गप्रभासुवर्णेन सितमौक्तिकशोभिता । तारुण्यरुचिरत्वेन तारुण्येन विभूषिता ॥
विलोललोचनापाङ्गतरङ्गधवलत्विषा । नवपल्लवसच्छायं कल्पयन्ती निजाधरम् ॥

कर्णोपलम्बिसङ्घुष्यद्भृङ्गाढ्यचूतमञ्जरी ।
सुधागर्भसमुद्भूता पारिजातलता यथा ॥ ९४ ॥

तनुमध्या पृथुश्रोणिर्वर्णोद्भिन्नपयोधरा । निःशाणितशरस्येव शक्तिः कुसुमधन्वनः ॥
अपश्यदाश्रमे तस्मिन्मुनिरायतलोचनाम् । नयनानलदाहेन विदग्धेन मनो भुवा ॥९६
त्रिनेत्रवञ्चनायेव कल्पितां ललनातनुम् । तामाश्रमलतापुष्पकाञ्चीरचितकुण्डलाम्

विलोक्य तां विशालाक्षीं मुनिर्व्याकुलितेन्द्रियः ।
वभूव रोषसन्तप्तः शशाप च वहु ज्वलन् ॥ ९८ ॥

रैभ्य उवाच

कुरूपतां व्रजक्षिप्रं या त्वं सौन्दर्यगर्विता । समागता तपोविघ्नहेतवे मम सन्निधौ

अगस्त्य उवाच

इति शप्तारुषा तेन मुनिना सा शुभेक्षणा । उवाच वनिता भूत्वा प्राञ्जलिर्मुनिमादरात्

उर्वश्युवाच

भगवन्मे प्रसीद त्वं पराधीनायतस्त्वहम् । त्वच्छापस्य कथं मुक्तिर्भवितानियतव्रत

रैभ्य उवाच

अयोध्यायामस्ति तीर्थं पावनंपरमं महत्। तत्रस्नानंकुरुष्वाऽद्यसौन्दर्यम्परमाप्नुहि
त्वन्नाम्नैव च विख्यातिं तोयं यास्यति तद्ध्रुवम् ॥ १०३ ॥

अगस्त्य उवाच

एवंसाविप्रवचसाविदधेसर्वमादरात्। सुन्दरी साऽभवत्क्षिप्रंतत्स्थानंख्यातिमाययौ
अत्र स्नानंमुनिश्रेष्ठ यः कुर्याद्विधिवज्जनः। सौन्दर्यं परमं तस्य भवेत्तत्र न संशयः॥

भाद्रे शुक्लतृतीयायां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्।
विष्णुरत्र जनैः पूज्यः सर्वकामार्थसिद्धये ॥ १०६ ॥

एवंकुर्वन्नरोविद्वान्विष्णुलोकेवसेत्सदा। नरोवा यदिवानारीसर्वान्कामानवाप्नुयात्
घोषार्ककुण्डं परममुर्वशीकुण्डदक्षिणे। वर्तते मुनिशार्दूल! सर्वपापापहं सदा ॥१०८
यत्र स्नानेन दानेन सूर्य्यलोके महीयते। एतत्तीर्थस्य सदृशं नापरं विद्यते क्वचित्

व्रणी कुष्ठी दरिद्री वा दुःखाक्रान्तोऽपि यो नरः।
करोति विधिवत्स्नानं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ११० ॥
रविवारे विशेषेण कर्त्तव्यं स्नानमादरात्।
भाद्रे मासि तथा माघे शुक्लषष्ठ्यां प्रयत्नतः ॥ १११ ॥

कर्त्तव्यंविधिवत्स्नानंसूर्यलोकाभिकाङ्क्षया। पौषेमासि तथा स्नाने सूर्यवारेविशेषतः
सप्तम्यां रवियुक्तायां स्नानं बहुफलप्रदम्। घोषाभिधोऽभवत्पूर्वं सूर्यवंशे नरेश्वरः
समुद्रमेखलामेकः पृथिवीं समपालयत्। यस्यकीर्त्याप्रकाशन्तेत्रिलोकीमण्डलानिवै
यः प्रतापात्स्फुरन्भाति प्रभाकर इवाऽपरः। प्रचण्डतरदोर्दण्डखण्डितारातिमण्डलः
स कदाचित्प्रजापालो मन्त्रिविन्यस्तभूतलः। बभ्राम मृगयासक्तो वनेऽतिगहनद्रुमे
स राजा पूर्वजन्मोत्थपापैरशुभसूचकैः। कृमिव्याप्तकराम्भोजः सुन्दरोऽपि गतस्मयः
मृगयायामभूदेकः कदाचित्पर्यटन्वने। वराहसिंहहरिणान्निघ्नन्गच्छन्नितस्ततः॥
तृषाक्रान्तोम्लानतनुःसरोपश्यत्पुरो नृपः। ददर्शतत्रच मुनीन्स्नानसन्ध्यादितत्परान्
ततोविधिवदाचम्य स्नानञ्चक्रेनरेश्वरः। ततो दिव्यशरीरोऽभूदानन्दामलमानसः॥

मुनिभिस्तीर्थमाज्ञाय चक्रेसूर्य्यस्तुतिं प्रियाम् ॥ १२१ ॥

राजोवाच

भगवन्देवदेवेश नमस्तुभ्यं चिदात्मने । नमः सवित्रे सूर्याय जगदानन्ददायिने ॥१२२
प्रभागेहाय देवाय त्रयीभूताय ते नमः । विवस्वते नमस्तुभ्यं योगज्ञाय सदात्मने ॥
पराय परमेशाय त्रिलोकीतिमिरच्छिदे । अचिन्त्याय सदातुभ्यं नमो भास्करतेजसे
योगप्रियाय योगाय योगज्ञाय सदा नमः ।
ॐकाराय वषट्कारहूपिणे ज्ञानरूपिणे ॥ १२५ ॥
यज्ञाय यजमानाय हविषे ऋत्विजे नमः । रोगघ्नाय स्वरूपाय कमलानन्ददायिने ॥
अतिसौम्यातितीक्ष्णाय सुराणाम्पतये नमः ।
सत्रासायनमस्तुभ्यंभक्तत्राय प्रियात्मने ॥ १२७ ॥
प्रकाशकाय सततं लोकानांहितकारिणे । प्रसीद प्रणतायाऽद्य मह्यं भक्तिकृतेस्वयम्

अगस्त्य उवाच

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य स प्रसन्नोरविःस्वयम् । आविर्बभूवसहसा भक्तस्यप्रियकाम्यया
उवाच मधुरं वाक्यं प्रश्रयानतमूर्द्धजम् ॥ १२६ ॥

रविरुवाच

वरम्वरय राजेन्द्र! प्रसन्नोऽस्मि तवाग्रतः । ददामि तद्वरं तेऽद्ययत्त्वयामनसेप्सितम्

राजोवाच

भगवन्भास्कराऽनन्त! प्रयच्छसिवरं यदि । मन्नाम्ना कृतमूर्त्तिस्तेतिष्ठत्वत्रसदाविभो

रविरुवाच

एवमस्तु मनुष्येन्द्रतववाञ्छामनोहरा । एतत्स्तोत्रंत्वयोक्तं मे ये पठिष्यन्तिमानवाः
तेभ्यस्तुष्टः प्रदास्यामि सर्वान्कामान्नरेश्वरः ।
तत्तत्स्थानं परांख्यातिं त्वन्नाम्ना यास्यति क्षितौ ॥ १३३ ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति योऽत्र स्नानं समाचरेत् । मद्भक्तेनसदाराजन्कर्त्तव्यंस्नानमत्र वै
यं यं काममभिलेच्छेत तं तं काममवाप्नुयात् ॥ १३५ ॥

अगस्त्य उवाच

इति दत्त्वा वरंदेवः कृपया परया युतः। भास्वान्सहस्रकिरणस्तदाऽन्तर्द्धानमाययौ
राजा भास्करदेहोत्थां रविमूर्त्तिमनुत्तमाम्। तत्रसंस्थापयामासपूजयामासचस्वयम्
घोषार्ककुण्डं तन्नाम्ना तत्र ख्यातिंजगामह। यत्र स्नानान्नरो राजन्सूर्य्यलोकेवसेत्सदा
इति रुचिरविधानैस्तूर्णमादित्यमूर्त्तिं विमलपरम भक्त्या पूजयित्वाऽऽदरेण।
तदमृतमयकुण्डे स्नानमादौ विधाय प्रचुरविमलकीर्तिः सूर्यलोकेवसेत्सः ॥१३६

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे ऽयोध्यामाहात्म्ये बृहस्पतिकुण्डरुक्मिणीकुण्डधनयक्षतीर्थवसिष्ठ-कुण्डसागरकुण्डयोगिनीकुण्डोर्वशीकुण्डघोषार्ककुण्डमाहात्म्य वर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

रतिकुण्डमहारत्नतीर्थदुर्भरमहामरतीर्थमहाविद्यातीर्थसिद्धपीठक्षीरेश्वर सीताकुण्डसुग्रीवतीर्थहनुमत्कुण्डविभीषणसरस्तीर्थायोध्या यात्राविधिक्रमवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

घोषार्कतीर्थाद्विप्रर्षे पश्चिमे दिक्तटे स्थितम्। रतिकुण्डमिति ख्यातं सर्वपापहरं सदा
यत्र स्नानेन दानेन परां कान्तिमवाप्नुयात्। तत्पश्चिमदिशाभागे कुसुमायुधनामकम्
कुण्डं प्रसिद्धमतुलं सर्वकामार्थसिद्धये। यत्र स्नानेन दानेन कन्दर्पसदृशाकृतिम्॥
लभते ना विधानेन मुने! नास्त्यत्र संशयः॥ ३॥
रतिकुण्डे तथा विप्र! कुसुमायुधकुण्डके। श्रद्धया कुरुते स्नानं ससौख्यपरमोभवेत्

कुण्डद्वयेऽत्र मिथुनं यत्स्नानं कुरुते किल। रतिकामाविवख्यातौसदातौसुन्दरौतदा
तस्मादत्र विधानेन स्नातव्यं धर्मकाङ्क्षिभिः। दानं देयंयथाशक्त्या रतिकन्दर्पतुष्टये
भवेतां नियतं तस्य सन्तुष्टौ रतिमन्मथौ। माघे विशदपञ्चम्यांयत्र स्नानंशुभप्रदम्
रतिकुण्डे पुरः स्नात्वा पश्चात्कन्दर्प्पकुण्डके। स्नातव्यं तद्दिनेविप्रमिथुनेनप्रयत्नतः

रतिकन्दर्प्पयोः पूजा विधातव्या विशेषतः।
वस्त्रादिभिरलङ्कारैः सम्पूज्यौ द्विजदम्पती॥ ९॥
सर्वान्कामानवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा॥ १०॥

चन्दनागुरुकर्पूरकस्तुरीकुङ्कुमादिभिः। वासोभिर्विविधैः पुष्पैः पूजयेद्द्विजदम्पती
एवं कृते न सन्देहो रतिकन्दर्पतुष्टये। तद्व्रजेन्मिथुनं विप्र! रतिकन्दर्प्पतुल्यताम्॥

कुसुमायुधकुण्डात्तु प्रतीच्यां दिशि संस्थितम्।
मन्त्रेश्वर इति ख्यातं तत्स्थानं भुवि दुर्लभम्॥ १३॥

तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा मन्त्रेश्वरं विभुम्। न तेषांपुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि
पुरा रामो देवकार्यं विधायामलकर्मकृत्। कालेन सह सङ्गम्य मन्त्रं चक्रे नरेश्वरः॥
स्वर्गं प्रति प्रयाणाय यत्रस्नातोजितेन्द्रियः। तत्रैवस्थापितं लिङ्गंमन्त्रेश्वरइतिश्रुतम्
तदुत्तरे सरो रम्यं कुमुदोत्पलमण्डितम्। तत्र स्नानं तथा दानं नानाफलदमुत्तमम्
चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी स्मृता। तत्र स्नानेनदानेनब्राह्मणानांचपूजनात्

अक्षयं स्वर्गमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा॥ १८॥

मन्त्रेश्वरस्य महिमा नहि केनापि शक्यते। सम्यग्वर्णयितुं विप्र! य उत्तमफलप्रदः॥

मन्त्रेश्वरसमं लिङ्गं न भूतं न भविष्यति॥ १९॥

सुगन्धिपुष्पधूपादिकुसुमाद्यनुलेपनैः। पूजनीयः प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धिदः॥२०॥
एवं कृते न सन्देहो मुक्तिस्तस्य करे स्थिता। तत्रैवोत्तरभागे तु शीतला वर्ततेऽनघ
तां सम्पूज्य नरो विद्वान्सर्वपापैः प्रमुच्यते। सर्वदा पूजनं तस्याःसोमवारेविशेषतः

कर्त्तव्यं सुप्रयत्नेन नृभिः सर्वार्थसिद्धये॥ २२॥

विस्फोटकादिकभये नरश्च समुपस्थिते। कर्त्तव्यं पूजनं सम्यग्रोगादिभयनाशनम्

तदुत्तरे तु तत्रैव देवी वन्दीति विश्रुता। यस्याः स्मरणमात्रेण निगडादिभयं नहि
राज्ञा क्रुद्धेन ये बद्धाः शृङ्खलानिगडादिभिः।
वन्दीं संस्मृत्य देवीं तु मुक्ताः स्युस्तत्क्षणाद्धि ते ॥ २५ ॥
यात्रा तस्याः प्रयत्नेन कर्तव्या यत्नतोनरैः। मङ्गलेहिविशेषेणसर्वकामार्थसिद्धिदा
गन्धैःपुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैरपि च सुव्रत! । नैवेद्यैर्विविधैर्वाऽपि पूजनीया प्रयत्नतः॥
वन्दीप्रीत्यैमुनिश्रेष्ठ! देयं ब्राह्मणभोजनम्। एवं कृते नसन्देहः सर्वान्कामानवाप्नुयात्
तदुत्तरस्मिन्स्तत्रैव चुडकी भुविकीर्त्तिता। वर्ततेपरमासिद्धिरूपिणीस्मरणान्नृणाम्
सुसंदिग्धेषु कार्येषुभयेचसमुपस्थिते। यस्याः स्मरणतो नृणांसर्व सिद्धिःप्रजायते
अग्रे तस्याः सदाकार्यान्नृभिरङ्गुष्ठतोध्वनिः। दीपदानं प्रयत्नेन कर्त्तव्यंनियतात्मभिः
सर्वाभीष्टप्रदं नृणां दीपदानं प्रशस्यते।
चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां तस्या यात्रा विनिर्मिता ॥ ३२ ॥
ततः पूर्वदिशाभागे वर्त्तते तीर्थमुत्तमम्। महारत्नइतिख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्॥
यत्र स्नानेनदानेनपूजयाचद्विजन्मनाम्। सर्वकामार्थसिद्धिःस्यान्नात्रकार्याविचारणा
भाद्रे कृष्णचतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी स्मृता।
यात्राऽऽस्ते किल मुख्याऽस्य महारत्ना इति श्रुता ॥ ३५ ॥
महारत्नइति ख्यातं तस्मात्तीर्थमनुत्तमम्। तत्र दानं प्रकर्त्तव्यं द्विजसन्तोषकारकम्
नारीभिरपि विप्रर्षे कर्त्तव्यो जागरोत्सवः। वीर्यसौभाग्यसम्पन्नसर्वसौख्यायसर्वदा
तत्र स्नानं प्रयत्नेन कर्त्तव्यं श्रद्धया नरैः ॥ ३७ ॥
ततो नैर्ऋत्यदिग्भागे दुर्भराख्यं सरःशुभम्। वर्तते सुकृतोदारं महाभरसरस्तथा॥
तत्र स्नानादवाप्नोति सदा स्वर्गपदं नरः। धनं बहुविधं देयंवासांसि विविधानि च
शिवपूजाप्रकर्तव्या स्नात्वा कुण्डद्वये नरैः। नानाविधेन भावेन भक्त्यापरमयायुतैः
गन्धादिभिः शुभैः पुष्पैरर्च्चनीयो महेश्वरः।
नीलकण्ठोऽन्धकारातिराराध्यो योगिनामपि ॥ ४१ ॥
इति ध्यात्वा शिवंसार्द्धंनिष्पापंप्रयतोनरः। सर्वकामानवाप्याशुशिवलोकेमेवसेत्सदा

एवं कृत्वा नरो विप्र सर्वपापैः प्रमुच्यते । महाभरे वरे तीर्थे तथा दुर्भरसञ्ज्ञके ॥४३

भाद्रकृष्णचतुर्दश्यां यः कुर्य्याच्छ्रद्धयाऽन्वितः ।
शिवपूजाञ्च विधिवद्द्विजपूजां विशेषतः ॥ ४४ ॥

यः करोति नरोभक्त्या शिवलोके स सम्वसेत् । एवंकुर्वन्नरोविद्वान्नमुह्यतिकदाचन
विष्णुरुद्रौ चतस्यात्तिसुप्रसन्नौ सनातनौ । तयोः स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते
अतः किं वहुनोक्तेन विप्र! तीर्थमनुत्तमम् । सर्वपापौघशमनं सर्वाभीष्टकरं सदा ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यच्छुभावहम् ।
यत्र यात्रा तथा दानं विना भाग्यं न सम्भवेत् ॥ ४८ ॥

ईशानेदुर्भरस्थानान्महाविद्याभिधंमहत् । तस्यदर्शनतोनृणांसिद्धयःस्युःकरेस्थिताः

तदग्रे सरसि स्नात्वा महाविद्यां तु यो नरः ।
पश्यति श्रद्धया भक्त्या स याति परमां गतिम् ॥ ५० ॥

सिद्धपीठंतथाख्यातंसम्यक्प्रत्ययकारकम् । तत्र पूजाविधातव्याभक्त्यापरमयाद्विज!
मन्त्रं यः श्रद्धया विप्र शैवंशाक्तमथापिवा । गाणपत्यं वैष्णवं वा तत्र यः प्रयतोनरः
एकाग्रमानसोविद्वन्नाराध्यावर्तयेत्सदा । तस्यसिद्धिर्भवेन्नित्यं चमत्कारोभवेद्द्विज
तस्मादत्रप्रकर्तव्यं जपादिकमतन्द्रितैः । अष्टम्याञ्चनवम्याञ्चयात्रास्यात्प्रतिमासिकी
देयान्यन्नानि वहुशो नानाविधफलानिच । क्षीरेण स्नपनं कार्यं पूजनीया प्रयत्नतः ॥
उच्चाटनादीन्यपि च मोहनादिविशेषतः । अत्रस्थानेविशेषेणदुष्टमन्त्रोऽपिसिध्यति

सिद्धस्थाने परं मोक्षं वशीकरणमुत्तमम् ।
जपो होमस्तथा दानं सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥ ५७ ॥

आश्विने शुक्लपक्षस्य नवरात्रिषु सुव्रत! । यत्र गत्वा नरो विप्र! सर्वपापैः प्रमुच्यते
यदा पूर्वं विनिर्जित्य रावणं लोकरावणम् । समागतोरघुपतिः सीतालक्ष्मणसंयुतः
यत्र गत्वा पदा वीरो भरतोरामकाङ्क्षया । स्थितः सानुचरःश्रीमाञ्छ्रियापरमयायुतः
तत्रागमत्सुरगवी प्रादुर्भूता स्रवत्स्तनी । तत्स्तनेभ्यःप्रसुस्राव दुग्धं वहुगुणाधिकम्
तद्भूमिपतितं दुग्धं दृष्ट्वा वानराश्चसाः । विस्मयं परमं जग्मुः पश्यन्तस्ते चराचरम्

किमेतदिति राजेन्द्र! तानुवाच रघूद्वहः । वसिष्ठो वेत्तितत्सर्वं पृच्छामस्तंमुनिवयम्
इत्युक्तास्तु ततःसर्वेवसिष्ठप्रमुखेस्थिताः । ते पप्रच्छुः प्राञ्जलयः कृत्वाचाग्रेसरंनृपम्
वसिष्ठोऽपि क्षणं ध्यात्वा तमुवाच निराकुलम् ।
राघवम्प्रति सम्बोध्य सर्वेषामग्रतो मुनिः ॥ ६५ ॥

वसिष्ठ उवाच

शृणुराम महाबाहो कामधेनुरियं शुभा । समागता तव स्नेहात्प्रस्रवन्ती स्तनात्पयः
दुग्धमध्येसमुद्भूतोरुद्रस्त्वांद्रष्टुमागतः । निष्पन्नकार्य्यंदेवानांनिर्जितारातिमुत्तमम्
इमं सम्पूजय क्षिप्रमेतत्कुण्डस्य सन्निधौ । शीघ्रं त्वमपि यत्नेन पूजयेमंशिवंशुभम्
दुग्धेश्वरमितिख्यातं क्षीरकुण्डे पवित्रकम् ॥ ६८ ॥

अगस्त्य उवाच

ततो रघुपतिः श्रीमान्वसिष्ठोक्तविधानतः । पूजयामासतल्लिङ्गंदुग्धेश्वरमिति स्मृतम्
सीतयासत्कृतंयस्मात्तत्कुण्डंक्षीरसङ्गमम् । सीताकुण्डमितिख्यातिंजगामानुपमांततः
सीताकुण्डेनराः स्नात्वादृष्ट्वादुग्धेश्वरंप्रभुम् । सर्वपापैःप्रमुच्यन्तेनात्रकार्याविचारणा
अत्रस्नानंजपोहोमोदानञ्चाक्षयताम्व्रजेत् । सीताकुण्डेतुसम्पूज्यसीतारामौसलक्ष्मणौ
दुग्धेश्वरञ्च सम्पूज्य सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
जेष्ठेमासि चतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी स्मृता ॥ ७३ ॥
एवं यो विधिवत्कुर्याद्द्वयाधर्मविशारदः । स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा नशोचति
तत्र पूर्वादिशाभागे सुग्रीवरचितं महत् । तीर्थं तपोनिधेस्तत्र वर्तते सन्निधौ शुभम्
यत्रस्नात्वाचदत्त्वाचरामंसम्पूज्ययत्नतः । तस्मिन्नेवदिनेतत्रसर्वान्कामानवाप्नुयात्
तत्प्रत्यग्दिशि वै स्थानं हनुमत्कुण्डमित्यपि ।
तस्य पश्चिमतो विप्र! विभीषणसरः शुभम् ॥ ७७ ॥
तयोः स्नानेन दानेन रामसम्पूजनेन च । सर्वान्कामानवाप्नोति तस्मिन्नेवविधानतः
इयं सा परमा मेध्याऽयोध्या धर्मनिधिः स्मृता ॥ ७८ ॥
इत्युक्तास्तुततः सर्वे वसिष्ठमुनिमाद्दरात् ।

पप्रच्छुर्विनयात्क्षिप्रं विभीषणपुरःसराः । कथयस्व तपोराशे! कथामेतांसुदुर्ल्लभाम्

अयोध्यायाः परम्विप्र माहात्म्यं कथयन्ति यत् ।

तत्सर्वं कथय क्षिप्रं श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ८० ॥

यथा यात्रांविधास्यामःक्रमेणचविधानतः । तदस्मासुकृपां कृत्वा कथयस्वतपोनिधे

वसिष्ठ उवाच

शृण्वन्तुमुनयःसर्वे अयोध्यामहिमाद्भुतम् । यच्छ्रुत्वासर्वपापेभ्योमुच्यतेनात्र संशयः

इदं गुह्यतरं क्षेत्रमयोध्याभिधमुत्तमम् । सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा ॥८३

अस्मिन्सिद्धाः सदा देवा वैष्णवं व्रतमास्थिताः ।

नानालिङ्गधरा नित्यं विष्णुलोकाभिकाङ्क्षिणः ॥ ८४ ॥

अभ्यस्यन्तिपरंयोगंयुक्तप्राणाजितेन्द्रियाः । नानावृक्षसमाकीर्णेनानाविहगवासिनि

कमलोत्पलशोभाढ्ये सरोभिः समलङ्कृते । अप्सरोगणसङ्कीर्णे सर्वदा सेवितेशुभे

रोचतेहिसदावासःक्षेत्रेनित्यंहरेरिह । मन्यमानाविष्णुभक्ताविष्णौ सर्वेऽर्पितक्रियाः

यथामोक्षमिहायान्तिनान्यत्र हि तथा क्वचित् । अथ श्रेष्ठतमं क्षेत्रंयस्माच्चवसतिर्हरेः

महाक्षेत्रमिदं यस्मादयोध्याभिधमुत्तमम् ॥ ८८ ॥

नैमिषे च कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे । स्नानात्संसेवनाद्वाऽपि न मोक्षः प्राप्यतेतथा

इह सम्प्राप्ते यद्वत्तत एव विशिष्यते । प्रयागे वा भवेन्मोक्ष इह वा हरिसंश्रयात् ॥

सर्वस्मादपि तीर्थाग्र्यादिदमेव महत्स्मृतम् ॥ ६० ॥

अव्यक्तलिङ्गैर्मुनिभिःसर्वैःसिद्धैर्महर्षिभिः । इहसम्प्राप्यतेमोक्षोदुर्ल्लभोऽन्यत्रयोमतः

तेभ्यःप्रयच्छतिहरिर्योगमैश्वर्य्यमुत्तमम् । आत्मनश्चैवसायुज्यमीप्सितंस्थानमुत्तमम्

ब्रह्मादेवर्षिभिःसार्द्धंश्रीश्चवायुर्दिवाकरः ।देवराजस्तथाशक्रो ये चान्येऽपिदिवौकसः

उपासते महात्मनः सर्वत्र हरिमादरात् । अन्येऽपियोगिनः सिद्धा क्षेत्ररूपामहाव्रताः

अनन्यमनसो भूत्वा सर्वदोपासतेहरिम् । विषयासक्तचित्तोऽसि त्यक्तधर्म रतिर्नरः

इह क्षेत्रे मृतः सोपि संसारी न पुनर्भवेत् ॥ ६५ ॥

ये पुनर्निगमाधीनाःसत्त्वस्थाविजितेन्द्रियाः । व्रतिनश्चनिरारम्भाःसर्वे तेहरिमाविताः

देहभङ्गं समापद्य धीमन्तः सङ्गवर्जिताः । गतास्ते च परं मोक्षं प्रसादात्सर्वदा हरेः
जन्मान्तरसहस्रेषु युञ्जन्योगी न चाऽऽप्नुयात् । तमिहैव परंमोक्षंमरणादपिगच्छति
एतत्सङ्क्षेपतो वच्मि क्षेत्रस्य महिमाद्भुतम् । एतदेव परं स्थानमेतदेव परम्परदम् ॥
एतादृङ्नापरं स्थानं पुनरन्यत्र दृश्यते ॥ ९९ ॥
यत्रगत्वाप्रयत्नेनयात्रापुण्याभिकाङ्क्षिभिः । कर्तव्याविधिवद्धीराः क्रमेणश्रद्धयान्वितैः
प्रथमेऽहनि कर्त्तव्य उवपासो यतात्मभिः । नियमेन ततः स्नानं दानञ्चैव स्वशक्तितः
उपावृत्तस्तु पापेभ्योयस्य वासोगुणैः सह ।
उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ॥ १०२ ॥
उपवासं विधायाऽसौ चक्रतीर्थे नरः कृती । उपवासदिनेस्नायाद्दद्याच्चैवस्वशक्तितः
विप्रं सम्पूज्य विधिवत्पश्येद्विष्णुहरिं विभुम् ।
स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा विष्णुं सम्पूज्य यत्नतः ॥ १०४ ॥
क्षौरञ्च कारयेत्तत्र व्रतीधर्माभिधे ततः । पापमोचनके स्नानमृणमोचनके ततः १०५
स्नात्वा सहस्रधारायां शेषंसम्पूज्य यत्नतः । दृष्ट्वा चन्द्रहरिं देवं ततोधर्महरिंविभुम्
ततश्चक्रहरिं दृष्ट्वा दद्याच्चैव स्वशक्तितः । ब्रह्मकुण्डे नरः स्नात्वा सर्वकामार्थसिद्धये
महाविद्यासमीपे तु रात्रौ जागरणं चरेत् ॥ १०७ ॥
ततः प्रभाते विमले पुनरुत्थाय सद्व्रती । स्वर्गद्वारे प्रयत्नेन विधिवत्स्नानमाचरेत्
श्राद्धञ्च विधिवत्कृत्वा दत्त्वा चैव स्वशक्तितः ।
विष्णुं सम्पूज्य विधिवद्विप्रानपि पुनः पुनः ॥ १०९ ॥
दम्पती च प्रयत्नेनपूज्यौवस्त्रादिभिस्तथा । श्रद्धया परया युक्तैर्दातव्याभूरिदक्षिणा
विप्रान्सम्पूज्य विधिवद्भुञ्जीत प्रयतोनरः ॥ १११ ॥
अन्येद्युरपि चोत्थाय श्रद्धयापरयायुतः । रुक्मिणीप्रभृतीन्यत्रपश्येत्तीर्थानिचक्रमात्
तत्र तत्र नरः स्नात्वा दत्त्वा चैव स्वशक्तितः ।
विष्णुं सम्पूज्य यत्नेन मनोवाक्कायनिर्मलः ॥ ११३ ॥
यात्रां समापयेत्सम्यङ्नियतात्माशुचिव्रतः । यत्रकापिमृतोधीरःपरंमोक्षमवाप्नुयात्

अगस्त्य उवाच

वसिष्ठोक्तमिति श्रुत्वाकृत्वाचैवयथाविधि । विभीषणपुरोगास्ते बभूवुर्निर्मलास्तदा
इति बहुलविधानैस्तीर्थयात्रां विधाय प्रचुरसुकृतपूर्णास्ते च सुग्रीवमुख्याः ।
गतमलिनसुदेहाः स्वर्गचर्याप्रयत्नादुपगुणितगुणौघास्ते बभूवुः समस्ताः ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे-
ऽयोध्यामाहात्म्ये रतिकुण्डमहारत्नतीर्थदुर्भरमहाभरतीर्थमहाविद्यातीर्थ
सिद्धपीठक्षीरेश्वरसीताकुण्डसुग्रीवतीर्थहनुमत्कुण्डविभीषण-
सरस्तीर्थायोध्यायात्राविधिक्रमवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८॥

नवमोऽध्यायः

गयाकूपपिशाचमोचनमानसतीर्थतमसानदीमाण्डव्याद्याश्रमसीता-कुण्डदुग्धेश्वरभैरवभरतकुण्डजयकुण्डमाहात्म्यवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

जटाकुण्डत आग्नेयदिग्दले संश्रितं महत् । गयाकूपमिति ख्यातं सर्वाभीष्टफलप्रदम्
यत्रस्नात्वाचदत्त्वाचयथाशक्त्याजितेन्द्रियः । सर्वकाममवाप्नोतिश्राद्धंकृत्वाद्विजोत्तमः
नरकस्थाश्च ये केचित्पितरश्च पितामहाः ।
विष्णुलोकेतु गच्छन्ति तस्मिञ्छ्राद्धे कृते तु वै ॥ ३ ॥
तस्मिञ्छ्राद्धेकृते विप्रपितृणामनृणाभवेत् । शक्तिभिः पिण्डदानन्तुसयवैःपायसेनच
कर्त्तव्यमृषिनिर्दिष्टं पिण्याकेनगुणेनवा । श्राद्धं तत्तीर्थके प्रोक्तं पितृणां तुष्टिकारकम्
तत्रश्राद्धं प्रकर्त्तव्यं नरैः श्रद्धासमन्वितैः । तुष्यन्ति पितरस्तेषांतुष्टाःस्युःसर्वदेवताः
तुष्टेषु पितृषु श्रीमाञ्जायते पुत्रवांस्तथा । श्राद्धेन पितरस्तुष्टाःप्रयच्छन्तिसुतान्बहून्
श्रियश्च विपुलान्भोगाञ्छ्राद्धकृन्मो न संशयः ।

तस्मादत्र विधानेन विधातव्यं प्रयत्नतः ॥ ८ ॥
श्राद्धं श्रद्धायुतैः सम्यगभीष्टफलकाङ्क्षिभिः । गयाकूपे विशेषेण पितृणां दत्तमक्षयम्
सोमवारेण संयुक्ता अमावास्या यदाभवेत् । तत्रानन्तफलं श्राद्धं पितृणांदत्तमक्षयम्
अन्यदा सोमवारेण तत्र श्राद्धं विधानतः । पितृसन्तोषदं नित्यं तत्रदत्ताक्षयोभवेत्
तत्र पूर्वदिशाभागे तीर्थं सर्वोत्तमोत्तमम् । पिशाचमोचनंनाम विद्यते च फलप्रदम्
तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च पिशाचोनैवजायते । तत्रस्नानंतथादानंश्राद्धञ्चैवविशेषतः
कर्त्तव्यञ्च प्रयत्नेन नरैः श्रद्धासमन्वितैः ॥ १३ ॥
मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां विशेषतः । स्नानं तत्र प्रकर्तव्यं पिशाचत्वविमुक्तये ॥
तत्सन्निधौपूर्वभागे मानसंनाम नामतः । तीर्थं पुण्यनिवासाग्र्यंस्नातव्यञ्चविशेषतः
तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
नानाविधानि पापानि मेरुतुल्यानि वै पुनः ॥
तत्र स्नानात्क्षयं यान्ति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ १६ ॥
यत्किञ्चिद्विद्यतेपापंमानसंकायिकं तथा । वाचिकञ्चतथापापंस्नानतोविलयम्व्रजेत्
प्रौष्ठपद्यांसदाकार्य्यापौर्णमास्यांविशेषतः । यात्रातस्यनृभिर्विप्रपुण्यवद्भिःक्रियापरैः
तस्माद्दक्षिणदिग्भागे वर्त्तते सुकृतैकभूः । तमसानाम तटिनी महापातकनाशिनी ॥
यत्र स्नानं तथा दानं सर्वपापहरं सदा । यस्यास्तटेतथा रम्ये सर्वदा फलदायके ॥
नानाविधानि स्थानानि मुनीनां भावितात्मनाम् ।
माण्डव्यस्य मुने! स्थानं वर्त्तते पापनाशनम् ॥ २१ ॥
यस्यास्तीरे मुनिश्रेष्ठ! सर्वत्र सुमनोहरम् । तस्याऽऽश्रमपदं रम्यं नानावृक्षमनोहरम्
यस्मात्स्थानात्समुद्भूता तमसा सुतरङ्गिणी । तद्वनं पुण्यमधिकं पावनं पदमुत्तमम्
यस्य दर्शनतो नृणां सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ २४ ॥
प्रफुल्लनानाविधगुल्मशोभितं लताप्रतानावनतं मनोहरम् ।
विरूढपुष्पैः परितः प्रियङ्गुभिः सुपुष्पितैः कण्टकितैश्च केतकैः ॥ २५ ॥
तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभिः सकर्णिकारैर्बकुलैश्च सर्वतः ।

अशोकपुन्नागवरैः सुपुष्पितैर्द्विरेफमालाकुलपुष्पसञ्चयैः ॥ २६ ॥
क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणुरूषितैर्विहङ्गमैश्चारुफलप्रचारिभिः ।
विनादितं सारसमुत्कुलादिभिः प्रमत्तदात्यूहकुलैश्चवल्गुभिः ॥ २७ ॥
क्वचिच्च चक्राह्वरवोपनादितं क्वचिच्च कादम्बकदम्बकैर्युतम् ।
क्वचिच्च कारण्डवनादनादितं क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतम् ॥ २८ ॥
मदाकुलाभिर्भ्रमरीभराराग्निषेवितं चारुसुगन्धिपुष्पवत् ।
क्वचिच्च पुष्पैः सहकारवृक्षैर्लतोपगूढैस्तिलकद्रुमैश्च ॥ २६ ॥
प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितं प्रमत्तहारीतकुलोपनादितम् ।
समन्ततः सुन्दरदर्शनीयतां समुद्वहत्तद्वनमुल्लसन्महत् ॥ ३० ॥
निविडनिचुलनीलं नीलकण्ठाभिरामं मदमुदितविहङ्गीवृन्दनादाभिरामम्
कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफं नवकिसलयशोभाशोभितंसत्फलाढ्यम्
इत्यादिवहुशोभाढ्य सर्वदिक्षु मनोहरम् । यत्र माण्डव्यमुनिनातपस्तप्तं महत्किल
यत्प्रभावादभूत्तीर्थं पावनं तत्सदा महत् ॥ ३२ ॥
तत्पूर्वं गौतमस्यर्षेराश्रमं पावनं महत् । तत्पूर्वं च्यवनस्यर्षेः पराशरमुनेरिदम् !
प्रथमं ते मुनिश्रेष्ठ! पितुः किल तपोनिधेः ॥ ३३ ॥
नानाविधानि तीर्थानि चाश्रमाश्चैवसर्वशः । वर्तन्तेतापसानाञ्चयस्यास्तीरेसमन्ततः
तमसानाम सा ज्ञेया वर्तते तटिनी शुभा । यज्ञयूपान्समुत्खाय शोभितावहुशोऽभितः
तत्र स्नानेन दानेनश्राद्धेनचविशेषतः । सर्वकामार्थसिद्धिःस्यान्नाऽत्रकार्याविचारणा
मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे पञ्चदश्यां विशेषतः । स्नानं तस्य फलप्राप्तिदायकं सर्वदा नृणाम्
तस्मादत्र प्रकर्तव्यं स्नानं निर्मलमानसैः । प्रयत्नतो मुनिश्रेष्ठ! सर्वकामार्थसिद्धिदम्
अतः परं प्रवक्ष्यामि तमसापरमंशुभम् । सीताकुण्डमितिख्यातंश्रीदुग्धेश्वरसन्निधौ
भाद्रेशुक्लचतुर्थ्यांतुतस्ययात्राशुभावहा । सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थं पूज्योविघ्नेश्वरस्तथा
तस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नविनाशनम् ॥ ४० ॥
तस्माद्दक्षिणदिग्भागे भैरवो नाम नामतः । यं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यतेनात्रसंशयः

रक्षितो वासुदेवेन क्षेत्ररक्षार्थमादरात् । तस्यपूजा विधातव्या प्रयत्नेन यथाविधि ॥
मनोऽभीष्टफलप्राप्तिर्भैरवस्य सदाऽऽदरात् ॥ ४२ ॥
मार्गशीर्षस्यकृष्णायामष्टम्यांतस्यनिर्मिता । यात्रासाम्वत्सरीतत्रसर्वकामार्थसिद्धये
पशूपहारसम्भूति कर्त्तव्यं पूजनं जनैः । सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते नाऽत्र संशयः ॥४४
निर्विघ्नं तीर्थवसतिर्भैरवस्य प्रसादतः । जायते तेन कर्तव्या पूजा तस्य प्रयत्नतः ॥
एतस्मिन्नुत्तरे भागे रम्यं भरतकुण्डकम् ।
यत्र स्नात्वा नरः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४५ ॥
तत्र स्नानं तथादानं सर्वमक्षयतां व्रजेत् । अन्नं वहुविधं देयंवासांसिविविधान्यपि
यत्नतो देवताः पूज्या वस्त्रादिभिरलङ्कृतैः । नन्दिग्रामे वसन्पूर्वं भरतोरघुवंशजः
रामचन्द्रं हृदि ध्यायन्निर्मलात्मा जितेन्द्रियः ।
ततः स्थित्वा प्रजाः सर्वा ररक्ष क्षितिवल्लभः ॥ ४६ ॥
तत्र चक्रे महत्कुण्डं भरतोनाम भूपतिः । राममूर्ति च संस्थाप्यचचारविजितेन्द्रियः
तत्कुण्डे सुमहत्पुण्यं नानापुण्यसमन्वितम् ।
कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीकसमन्वितम् ॥ ५१ ॥
हंससारसचक्राह्वविहङ्गमविराजितम् । उद्यानपादपच्छायासच्छायममलं सदा ॥५२
तत्र स्नानं महापुण्यं प्रमोदानन्दनिर्मलम् । तत्र स्नानं तथा श्राद्धं पितॄनुद्दिश्य कुर्वतः
पितरस्तस्य तुष्यन्ति तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ ५३ ॥
स्वर्णं चाऽन्नं विधानेन दातव्यं च द्विजन्मने । श्रद्धापूर्वकमेतत्तु कर्तव्यं प्रयतैर्नरैः ५४
तत्पश्चिमदिशाभागे जटाकुण्डमनुत्तमम् । यत्र रामादिभिः सर्वैर्जटाःपरिहृता निजाः
जटाकुण्डमिति ख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ।
यत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ५६ ॥
पूर्वकुण्डेषु सम्पूज्योभरतःश्रीसमन्वितः । जटाकुण्डेषुसम्पूज्यौससीतौरामलक्ष्मणौ
चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी भवेत् ॥ ५७ ॥
इति परमविधानैः पूजयेद्रामसीते तदनु भरतकुण्डे लक्ष्मणं च प्रपूज्य ।

विधिवदमृतकुण्डे द्वन्द्वसम्मज्जनेन वसति सुकृतिमूर्तिर्वैष्णवे तत्रलोके ॥५८

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे-ऽयोध्यामाहात्म्ये गयाकूपपिशाचमोचनमानसतीर्थतमसानदीमाण्डव्याद्या-श्रमसीताकुण्डदुग्धेश्वरभैरवभरतकुण्डजटाकुण्डमाहात्म्य-वर्णनंनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

अयोध्यायात्राविधिक्रमवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

निराहारो नरो भूत्वा क्षीराहारोऽपि वा पुनः ।
अजितं पूजयेद्विप्र! तस्य सिद्धिः करे स्थिता ॥ १ ॥

महोत्सवस्तु कर्तव्योगीतवादित्रसंयुतः । एवं यःकुरुतेधीमान्सर्वान्कामानवाप्नुयात्
एतस्मादुत्तरे विद्धन्वीरस्य शुभसूचकम् । स्थानं मत्तगजेन्द्रस्य वर्तते नियतव्रत! ॥
तदग्रे सरसिस्नात्वावसेत्तत्रसुनिश्चितम् । पूर्णांसिद्धिमवाप्नोतियामवाप्यनशोचति
अयोध्यारक्षको वीरःसर्वकामार्थसिद्धिदः । नवरात्रिषुपञ्चम्यांयात्रासाम्वत्सरीभवेत्
गन्धपुष्पधूपादिनैवेद्यादिविधानतः । पूजनीयः प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धिदः ॥
यंयं काममिहेच्छेत तं तं काममवाप्नुयात् ॥ ६ ॥

एतस्माद्दक्षिणे भागे सुरसानाम राक्षसी । विष्णुभक्ता सदाविप्रवर्ततेसिद्धिदायिका
तां सम्पूज्य नरो भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ८ ॥

लङ्कास्थानादिहानीतारामेणोत्कृष्टकर्मणा । अयोध्यायांस्थापितासारक्षार्थंनियतव्रतैः
सम्पूज्यविधिवत्तस्याःदर्शनंकार्यमादरात् । सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थमुत्सवोऽपिशुभप्रदः
कर्त्तव्यः सुप्रयत्नेन गीतवादित्रसंयुतः ॥ १० ॥

नवरात्रे तृतीयायां यात्रा साम्वत्सरीभवेत् । सर्वदा सुखसन्तानसिद्धये परमार्थदा
नानासङ्गीतवादित्रनृत्योत्सवमनोहरा ॥ ११ ॥
एवं कृते न सन्देहः सर्वदा रक्षितो भवेत् ॥ १२ ॥
एतत्पश्चिमदिग्भागे वर्तते परमो मुने! । पिण्डारक इति ख्यातो वीरःपरमपौरुषः ॥
पूजनीयः प्रयत्नेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ १३ ॥
यस्य पूजावशान्नृणां सिद्धयः करसंश्रिताः । तस्य पूजाविधानेन कर्तव्यं पूजनंनरैः
सरयूसलिले स्नात्वा पिण्डारकञ्चपूजयेत् । पापिनांमोहकर्त्तारंमतिदं कृतिनांसदा
तस्य यात्राविधातव्यासपुष्यानवरात्रिषु । तत्पश्चिमदिशाभागे विघ्नेशंकिलपूजयेत्
यस्य दर्शनतो नृणां विघ्नलेशोन विद्यते । तस्माद्विघ्नेश्वरः पूज्यः सर्वकामफलप्रदः
तस्मात्स्थानत ऐशाने रामजन्मप्रवर्त्तते । जन्मस्थानमिदम्प्रोक्तंमोक्षादिफलसाधनम्
विघ्नेश्वरात्पूर्वभागेवासिष्ठादुत्तरेतथा । लोमशात्पश्चिमेभागेजन्मस्थानंततःस्मृतम्
यद्दृष्ट्वा च मनुष्यस्य गर्भवासजयोभवेत् ।
विना दानेन तपसा विना तीर्थैर्विना मखैः ॥ २० ॥
नवमीदिवसे प्राप्ते व्रतधारी हि मानवः । स्नानदानप्रभावेण मुच्यते जन्मबन्धनात् ॥
कपिलागोसहस्राणि यो ददातिदिनेदिने । तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेःप्रदर्शनात्
आश्रमे वसतां पुंसां तापसानाञ्च यत्फलम् । राजसूयसहस्राणि प्रतिवर्षाग्निहोत्रतः
नियमस्थं नरं दृष्ट्वा जन्मस्थाने विशेषतः । मातापित्रोगुरूणाञ्चभक्तिमुद्वहतांसताम्
तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात् ॥ २५ ॥

अथ सरयूवर्णनम्

पितृणामक्षया तृप्तिर्गयाश्राद्धाधिकं फलम् ॥ २६ ॥
मन्वन्तरसहस्रैस्तु काशीवासेषुयत्फलम् । तत्फलंसमवाप्नोति सरयूदर्शने कृते ॥
गयाश्राद्धश्च ये कृत्वा पुरुषोत्तमदर्शनम् । कुर्वन्ति तत्फलं प्रोक्तं कलौदाशरथींपुरीम्
मथुरायां कल्पमेकं वसते मानवो यदि । तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते ॥२६
पुष्करेषु प्रयागेषु माघे वा कार्त्तिके तथा । तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते ॥

कल्पकोटिसहस्राणि ह्यवन्तीवासतो हि यत्।
तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते ॥ ३१ ॥

षष्टिवर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहजम्। तत्फलं निमिषार्द्धेन कलौ दाशरथीं पुरीम्
निमिषं निमिषार्द्धं वा प्राणिनां रामचिन्तनम्। संसारकारणाज्ञाननाशकंजायतेध्रुवम्

यत्र कुत्र स्थितो ह्यस्तु ह्ययोध्यां मनसा स्मरेत्।
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पान्तरशतैरपि ॥ ३४ ॥

जलरूपेण ब्रह्मैव सरयूर्मोक्षदा सदा। नैवाऽत्र कर्मणोभोगो रामरूपो भवेन्नरः ॥३५
पशुपक्षिमृगाश्चैव ये चान्ये पापयोनयः। तेऽपि मुक्ता दिवं यान्ति श्रीरामवचनंयथा
इत्युक्त्वा विरते तस्मिन्मुनौ कलशजन्मनि। कृष्णद्वैपायनव्यासःपुनरूचे तपोधनः

दुर्लभा सर्वजन्तूनां कथा विस्तरतः क्रमात्।
यात्राक्रमोऽपिच मया श्रुत आगच्छतां नृणाम् ॥ ३८ ॥

इदानींश्रोतुमिच्छामिक्षेत्रस्थानंयथाविधि। यात्राक्रमंमुनिश्रेष्ठसम्यक्त्वत्तस्तपोधन
फलम्ब्रूहि क्रमेणैवविस्तरात्पृच्छतो मम। यद्यस्तिमयिते विद्वन्कृपाकारुणिकोत्तम
यथा श्रुत्वा क्रमेणैव यात्रां विश्वविदाम्वर!। करोमि त्वत्प्रसादेन तथाकुरुयतव्रत!

अगस्त्य उवाच

शृणु वक्ष्यामितत्त्वेनयात्राक्रममथादितः। अयोध्यां सप्ततीर्थानां यथावदनुपूर्वशः
मनोवाक्कायशुद्धेन निर्दोषेणान्तरात्मना। मानसेषु सुतीर्थेषु स्नात्वाकिल जितेन्द्रियः

यः करोति विधिं सम्यक्स तीर्थफलमश्नुते ॥ ४३ ॥

व्यास उवाच

मानसान्येव तीर्थानि कथयस्वतपोधन!। येषुस्नातवतां नृणां विशुद्धिर्मनसोभवेत्

अगस्त्य उवाच

शृणुतीर्थानिगदतोमानसानिममानघ!। येषु सम्यङ्नरः स्नात्वाप्रयातिपरमांगतिम्
सत्यतीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः। सर्वभूतदयातीर्थं तीर्थानां सत्यवादिता
ज्ञानतीर्थं तपस्तीर्थं कथितं तीर्थसप्तकम्। सर्वभूतदयातीर्थे विशुद्धिर्मनसो भवेत् ॥

नतोयपूतदेहस्यस्नानमित्यभिधीयते। स स्नातो यस्य वै पुंसः सुविशुद्धंमनोगतम्
भौमानामपि तीर्थानां पुण्यत्वे कारणं श्रृणु ॥ ४८ ॥
यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मध्योत्तमाः स्मृताः।
तथा पृथिव्यामुद्देशाः केचित्पुण्यतमाः स्मृताः ४९ ॥
तस्माद्भौमेषु तीर्थेषु मानसेषु च सम्भवेत्। उभयेषुचयः स्नाति स यातिपरमांगतिम्
तस्मात्त्वमपिविप्रेन्द्र विशुद्धेनान्तरात्मना। यात्रांकुरुप्रयत्नेन यात्रा वै नोदितामया
तं तु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र! तीर्थयात्राविधिं क्रमात् ॥ ५१ ॥
जायन्ते च जलेष्वेवम्रियन्तेचजलौकसः। न च गच्छन्तिते स्वर्गमशुद्धमनसोमलाः
विषयेष्वनिशं रागो मनसो मल उच्यते। तेष्वेव हि न सङ्गस्य नैर्मल्यं समुदाहृतम्
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानं न शुध्यति। शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमपावनम्
दानमिज्या तपः शौचं तीर्थसेवा श्रुतिस्तथा।
सर्वाण्येतानि तीर्थानि यदि भावेन निर्मलः ॥ ५५ ॥
निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव वसते नरः। तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्करं तथा॥
एतत्ते कथितं विप्र! मानसं तीर्थलक्षणम्।
स्नाते यस्मिन्क्रियाः सर्वाः सफलाः स्युः क्रियावताम् ॥ ५७ ॥
प्रातरुत्थाय मतिमान्सङ्गमे स्नानमाचरेत्।
विभुं विष्णुहरिं दृष्ट्वा स्नायाद्वै ब्रह्मकुण्डके ॥ ५८ ॥
चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा चक्रहरिं विभुम्। ततो धर्महरिंदृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते
एकादश्यामेकादश्यामियं यात्रा शुभावहा। प्रातरुत्थाय मतिमान्स्वर्गद्वारजलाप्लुतः
विधाय नित्यजं कर्म अयोध्यां च विलोकयेत्। सरयूं तु ततोदृष्ट्वापश्येन्मत्तगजंततः
चन्दीश्च शीतलांश्चैवबटुकश्चविलोकयेत्। तद्ग्रसरसिस्नात्वामहाविद्यांविलोकयेत्
पिण्डारकं ततो दृष्ट्वा ततो भैरवदर्शनम्। अष्टम्याश्च चतुर्दश्यामेषा यात्रा फलप्रदा
अङ्गारकचतुर्थ्यां तु पूर्वोक्ता देवता अपि। विघ्नेशश्च ततः पश्येत्सर्वकामार्थसिद्धये
प्रातरुत्थाय मतिमान्ब्रह्मकुण्डजले प्लुतः। विष्णुंविष्णुहरिंदृष्ट्वामनोवाक्कायशुद्धिमान्

मन्त्रेश्वरं ततोदृष्ट्वा महाविद्यां विलोकयेत् ।
अयोध्यां च ततो दृष्ट्वा सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ६६ ॥
स्वर्गद्वारेनरःस्नात्वासचैलोविजितेन्द्रियः । नानाविधानिपापानिबहुजन्मकृतानि च
सचैलस्नानतो यान्ति तस्मात्सचैलमाचरेत् ॥ ६७ ॥
एषा वै गदिता यात्रा सर्वपापहरा शुभा ॥ ६८ ॥
य एवं कुरुते यात्रां नित्यं शुभफलप्रदाम् । न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि
तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र! अयोध्यां व्रज माचिरम् ।
तत्र गत्वा क्रमेणैव यात्रां कुरु यतेन्द्रियः ॥ ७० ॥
अयोध्या परमं स्थानं अयोध्या परमं महत् ।
अयोध्यायाः समा काचित्पुरी नैव प्रदृश्यते ॥ ७१ ॥
अयोध्या परमं स्थानं विष्णुचक्रे प्रतिष्ठितम् ॥ ७२ ॥
इत्येतत्कथितं विप्र मया पृष्टं हि यत्त्वया । समाश्रय मुने! तां त्वमनुजानीहिमामतः

सूत उवाच

इत्येतदुक्त्वा विरते मुनौ कलशजन्मनि । उवाचमधुरं वाक्यंव्यासःसतपसांनिधिः

व्यास उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि कृतकृत्योऽस्म्यहं मुने! ।
सत्यं शौचं श्रुतं विप्रं सुशीलं च क्षमाऽऽर्जवम्
सर्वञ्च निष्फलं तस्य अयोध्यां नाऽऽगतो यदि ॥ ७५ ॥
यस्मिन्मयिप्रसन्नेन वयोक्तोधर्मनिर्णयः । इदानीमपिगच्छामिह्ययोध्यांनिर्मलांपुरीम्
त्वमपि व्रज विप्रेन्द्र! स्वमाश्रमपदं निजम् ॥ ७६ ॥

सूत उवाच

इत्येवमुक्त्वाक्रमशोयात्राविधिमिनुत्तमम् ।
जगाम तपसांराशिरगस्त्यःकुम्भसम्भवः ॥ ७७ ॥
स्वमाश्रमपदं धीरो विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।

व्यासोऽपि महसां राशिर्जगाम विजितेन्द्रियः ॥ ७८ ॥
अयोध्यामागतो विप्रःसर्वकामार्थसिद्धये । आगत्यैतद्विधानेनकृत्वायात्रांयथाक्रमम्
दृष्ट्वा महाश्चर्यकरं कारणं तीर्थमुत्तमम् । आनन्दतुन्दिलस्तत्रसम्यगाचम्य बुद्धिमान्
ततो जगाम विप्रेन्द्रः स्वमाश्रमपदं मुनिः ।
व्यासेन कथितं मह्यं माहात्म्यं क्रमशस्तदा ॥ ८१ ॥
मया श्रुत्वा च माहात्म्यंयात्रां कृत्वाविधानतः । कुरुक्षेत्रेसमागत्यभवदग्रेनिरूपितम्
इदं माहात्म्यतुलंयः पठेत्प्रयतो नरः । श्रद्धया यच्च शृणुयात्सयाति परमां गतिम् ॥
तस्मादेतत्प्रयत्नेन श्रोतव्यश्च जनैः सदा । द्विजपूजा विष्णुपूजाविधातव्या प्रयत्नतः
दातव्यश्च सुवर्णादि यथाशक्त्या द्विजन्मने । पुत्रार्थीलभतेपुत्रान्धर्मार्थीधर्ममाप्नुयात्
अतिविपुलविधानैर्वर्णितं धर्म्यमाद्यं कलयति परभक्त्या क्षेत्रमाहात्म्यमेतत् ।
य इह मनुजवर्यः श्रीसनाथः स सम्यग्व्रजति हरिनिवासं सर्वभोगांश्च भुक्त्वा
यः पाठकस्यापि कदाचिदेव ददाति वित्तं च यथाऽऽत्मशक्त्या
पात्राणि वस्त्राणि मनोहराणि रौप्यं सुवर्णञ्च गवीः स मुच्येत् ॥ ८७ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे-
ऽयोध्यामाहात्म्येऽगस्त्यव्याससम्वादेऽयोध्यायात्राविधिक्रमवर्णनं
नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

समाप्तमिदमयोध्यामाहात्म्यम्

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥

अथश्रीवासुदेवमाहात्म्यारम्भः *

प्रथमोऽध्यायः

सावर्णिप्रश्नवर्णनम्

शौनक उवाच

जीवानां श्रेयसे सौते! बहुधा साधनानिते । धर्मोज्ञानञ्चवैराग्यंयोगादीन्युदितानिनः
इतिहासैर्बहुविधैर्विस्पष्टार्थानितानिच । सर्वाण्यपिमहाबुद्धे! श्रुतान्यस्माभिरादरात्
सर्वेषां मनुजानान्तुदुष्कराण्येवतानितु । बाहुल्याच्चान्तरायाणांतत्सिद्धिरपिदुर्ल्लभा
प्रयत्नेनाऽतिमहतापुरुषैर्धैर्य्यशालिभिः । साधितान्यपिसिध्यन्तितानिकालेनभूयसा
अतो भवान्द्विजातानामाश्रमाणाञ्चसर्वशः । ब्रवीतु सुकरोपायं स्त्रीशूद्रादेरपीह नः ॥
कृतेन येनाऽप्यल्पेन येन केनाऽपि देहिना । अन्तरायैरविहतं महदेव फलं भवेत् ॥ ६॥
मोक्षस्य साधनंताद्वक्सुविचार्य्यमहामते! । हिताय सर्वजीवानां कृपया वक्तुमर्हसि
प्रसादाद्बलदेवस्य व्यासस्य जनकस्य च । जानामिसर्वमेवत्वं तन्नो ब्रूहि बुभुत्सतः

सौतिरुवाच

महर्षिरपि सावर्णिरेवमेव हि शौनक । विनीतः स्कन्दमप्राक्षीत्पुनः शङ्करनन्दनम् ॥

---

* बङ्गाक्षरमुद्रितपुस्तकेलक्ष्मणपुर (लखनऊ) मुद्रितपुस्तकेचेदंवासुदेवमाहात्म्यं नैव दृश्यतेनारदपुराणीयविषयानुक्रमणेमाहेश्वरखण्डेवासुदेवमाहात्म्यपरिगणनं कृतं परं वेङ्कटेश्वरमुद्रितग्रन्थ एतन्माहात्म्यस्य वैष्णवखण्डसमाप्त्यनन्तरं कृतंनिबन्धन मिति परिशिष्टत्वेन निबद्धयतेऽस्माभिरिति विभालयन्तु सुधियः ।

सावर्णिरुवाच

श्रुतानानाविधाधर्माःसाङ्ख्यज्ञानञ्चनैकधा। योगादीनित्वदुक्तानिसाधनानिमयागुह

सुदुष्कराणि मन्येऽहं तानि त्वस्मादृशां किल।

महतामपि चाऽन्येषां कृच्छ्रसाध्यानि वै चिरात् ॥ ११॥

अतो वर्णाश्रमवतां श्रेयस्कृत्सुकरञ्च यत्। साधनं यच्छ्रेष्ठतमं वक्तुमर्हसिमेऽधुना

सौतिरुवाच

इति पृष्टो मुनीन्द्रेण तेनजिज्ञासुनागुहः। वासुदेवं हृदिध्यायन्कार्त्तिकेयःसऊचिवान्

स्कन्द उवाच

शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्येऽहं श्रुतं पितृमुखान्मया। सर्वेषामपि जीवानां सुकरंमोक्षसाधनम्

देवताप्रीणनसमंस्वेष्टसिद्धिमभीप्सताम्। नास्त्यन्यसाधनंकिञ्चिद्वर्णाश्रमवतामिह

अप्यल्पं सुकृतं कर्म देवसम्बन्धतः कृतम्। फलं ददाति निर्विघ्नंमहद्देवहितन्नृणाम्

दैवं पित्र्यं स्वधर्म्मंश्च काम्यं कर्म्मापि यच्च तत्।

देवतायास्तु सम्बन्धात्सद्यः स्यादिष्टसिद्धिदम् ॥ १७ ॥

साङ्ख्ययोगविरागादि प्रागुक्तं यच्च दुष्करम्।

तदपि स्याद्धि सुकरमनेनैवाऽऽशु सिद्धिदम् ॥ १८ ॥

देवस्याऽऽराधनेनैव यतः सिद्ध्यति वाञ्छितम्।

अतः सर्वैर्यथाशक्ति प्रीत्याराध्यः स मानवैः ॥ १९ ॥

सावर्णिरुवाच

देवाबहुविधाःप्रोक्तास्त्वया षण्मुख! मे पुरा। नानाविधा वर्णिताश्चतदाराधनरीतयः

तत्फलानि च सर्वाणि त्वयोक्तानि पृथक्पृथक्।

स्वर्गादिप्राप्तिमुख्यानि कालग्रस्तानि तानि तु ॥ २१ ॥

निवृत्तिधर्म्मिणां ब्रह्माद्युपास्तेर्य्योगिनां गुह!।

जांनादिलोकाप्तिफलं द्विपरार्द्धान्तनश्वरम् ॥ २२ ॥

दुष्कराणीह संसाध्य कर्म्माणिपुरुकृच्छ्रतः। क्षयिष्णुफललाभश्चेत्तर्हिंकितदुपार्जनैः

कालेन नाश्यते येषांवपुःस्थानबलादिकम् । तेषांनरोचतेमह्यमुपास्याऽत्रदिवौकसाम्
यः स्वयं निर्भयोऽन्येषां भयहर्त्तासनातनः । नित्यधामाक्षयफलप्रदाता भक्तवत्सलः
यस्य प्रसादात्सर्वेषां सर्वएव मनोरथाः । सिद्ध्येयुश्चाञ्जसैवाऽत्र तं देवं वद मे गुह!
तदाराधनरीतिञ्च सुकरां शिष्टसम्मताम् । ब्रूहि सर्वां विशेषेण जिज्ञासामीदमञ्जसा

सौतिरुवाच

इत्थं महर्षिणा तेन सम्पृष्टो भगवान्गुहः । सुप्रसन्नउवाचेदं मानयंस्तमुदारधीः ॥२८

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांद्वितीये वैष्णवखण्डे-
श्रीवासुदेवमाहात्म्ये सावर्णिप्रश्नोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

आत्यन्तिकश्रेयःसाधनवणनेनारायणनारदसमागमवर्णनम्

स्कन्द उवाच

महान्तं प्रश्नविन्प्रश्नं पृच्छसि त्व मेहाऽनघ! । नास्योत्तरंवर्षशतैर्वक्तुंशक्यंस्वतर्कतः
ऋते देवप्रसादाद्वै ब्रह्मञ्ज्ञानिवरैरपि ॥ १ ॥
वासुदेवप्रसादात्तु मया ज्ञातं वदामि ते । अनाख्येयं न ते किञ्चिद्धर्मनिष्ठाय सन्मते!
एवमेव हि पप्रच्छ निवृत्ते भारते रणे । अजातशत्रुर्नृपतिर्भीष्मं धर्मंविदाम्वरम् ॥
शयितं शरशय्यायां ध्यानप्राप्ताच्युतेन च । प्राप्तमैकात्म्यमव्यग्रं निगमागमपारगम्

युधिष्ठिर उवाच

चतुर्षु तात वर्णेषु चतुर्ष्वप्याश्रमेषु यः । इच्छेच्चतुर्वर्गसिद्धिं देवतां कां यजेत सः
निर्विघ्नेन च का सिद्धिः कथं स्यादल्पकालतः ।
कथं चाप्यल्पसुकृती पदवीं महतीमियात् ॥
एतं मे संशयं छिन्धि सर्वज्ञस्त्वं पितामह! ॥ ६ ॥

स्कन्द उवाच

एवं धर्मात्मनातेन पृष्टः शान्तनवो मुने! । किञ्चिज्जहास वीक्ष्यैवश्रीकृष्णमुखपङ्कजम्
दृशा स प्रेरितस्तेन नरनारायणोदितम् । श्रीवासुदेवमाहात्म्यं पितुः श्रुतमुवाचतम्
ततः श्रुत्वा नारदोऽपिकुरुक्षेत्रं गतः पुनः । कैलासप्रत्थयतत्प्राह पितरंमेसचापिमाम्
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि निश्छद्मपरिपृच्छते । महासदसि निर्णीतंमुनिवर्याऽपसंशयम्
वासुदेवः परम्ब्रह्म श्रीकृष्णः पुरुषोत्तमः । देवोऽकामैः सकामैश्च पूज्यो मुक्तैर्नरैरपि

द्विजातीनां चाश्रमाणां स्त्रीशूद्रादेश्च सर्वथा ।
स्वस्वधर्मैरेष एव तोषणीयोऽस्ति भक्तितः ॥ १२ ॥

तस्मात्कर्माखिलमपिदैवंपित्र्यञ्चसर्वदा । तत्प्रीत्याएव कर्त्तव्यं वेदोक्तञ्चयथोचितम्
सुखाप्तयेनृभिर्यद्यत्कर्माऽत्रक्रियतेशुभम् ।अपिस्वनुष्ठितंतच्चेत्कृष्णसम्बन्धवर्जितम्

तदा क्षयिष्णवल्पफलं ज्ञेयं तच्च गुणात्मकम् ॥ १४ ॥

फलवैगुण्यकृत्तच्चाऽशुभदेशादियोगतः । बहुविघ्नञ्च तन्नृणां नैव वाञ्छितसिद्धिदम्
कमतदेव श्रीकृष्णप्रीणनाय क्रियेत चेत् । तत्सम्बन्धेन तर्ह्येतद्भवेत्सर्वं हिनिर्गुणम्
स्ववाञ्छितादप्यधिकं ददाति फलमक्षयम् । असद्देशादिसम्बन्धात्तद्वैगुण्यंभवेन्न च

विघ्नस्तु कोऽपि ब्रह्मर्षे! प्रतापाच्चक्रपाणिनः ।
तस्मिन्नप्रभवेत्काऽपितत्स्यातीप्सितसिद्धिदम् ॥ १८ ॥

यद्यप्यल्पंस्वसुकृतं तथापि परमात्मनः । साक्षात्सम्बन्धतो ब्रह्मन्भवत्येव महत्तरम्
यथास्फुलिङ्गमात्रोऽपि वन्यकाष्ठौघयोगतः । अनिवार्यो भवेद्दावस्तथैतद्धरियोगतः

प्रवृत्ते वा निवृत्ते वा तस्माद्धर्मे स्थितैर्नरैः ।
उपास्तव्यो वासुदेवस्तत्सम्यक्सिद्धिमीप्सुभिः ॥ २१ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । नारदस्य च सम्वादमृषेर्नारायणस्य च ॥
यो वासुदेवोभगवान्नित्यंब्रह्मपुरेस्थितः । दाक्षायण्यामाविरासीद्धर्माल्लोकहितायसः
कृते युगे द्विजवर! पुरा स्वायम्भुवान्तरे । नरो नारायणश्चेति द्विरूपः प्रादुरास सः
धर्माश्रमात्तपस्तप्तुं क्षेमायैव नृणाम्मुने । नरनारायणौ तौ च बदर्याश्रममीयतुः ॥

तत्राद्यौ लोकनाथौ तौकृशौधमनिसन्ततौ । तेपातेतेजसास्वेनदुर्निरीक्ष्यौसुरैरपि
यस्य प्रसादं कुर्वाते स वै तौ द्रष्टुमर्हति । शक्यते नान्यथाद्रष्टुमपि तद्धामवासिभिः
एकदा नारदोयोगी ताभ्यामेव दिदृक्षितः । अन्तरात्मतया चान्तर्हृदयेपि प्रचोदितः
मेरोर्महागिरेः शृङ्गात्सद्यो गगनवर्त्मना । तं देशमागमद्ब्रह्मन्बदर्याश्रमसञ्ज्ञितम् ॥
तयोराह्निकवेलायामागतस्तत्र स द्रुतम् । आद्याश्रमक्रियासक्तौ तौ ददर्श च दूरतः
दृष्ट्वैवेश्वरचर्यां तां तस्य कौतूहलंत्वभूत् । अहोएतौ जगत्पूज्यावीश्वरौसर्वदेहिनाम्
एतौ हि परमं ब्रह्म काऽनयोराह्निकी क्रिया ॥ ३१
पितरौ सर्वभूतानां देवतानाञ्च दैवतम् । कां देवतां तु यजतः पितॄन्वैतौ महामती
इति सञ्चिन्त्य मनसा भक्तो नारायणस्य सः ।
तत्समीपमुपेत्याऽथ तस्थौ नत्वा कृताञ्जलिः ॥ ३३ ॥
कृते दैवेच पित्र्ये च ततस्ताभ्यांनिरीक्षितः । पूजितश्चैवविधिनाशास्त्रदृष्टेनसोऽनघ!
तद्दृष्ट्वामहदाश्चर्य्यमपूर्वंविधिविस्तरम् । उपोपविष्टःसुप्रीतो नारदोऽभूच्चविस्मितः
नारायणं सन्निरीक्ष्य प्रयतेनान्तरात्मना । नमस्कृत्य च तं देवमिदं वचनमब्रवीत् ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे-
श्रीवासुदेवमाहात्म्य आत्यन्तिकश्रेयःसाधननिरूपणे नारायणनारद-
समागमोनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

श्रीवासुदेवस्यसर्वोपास्यत्वनिरूपणम्

नारद उवाच

वेदेषु सपुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयसे । त्वमेव शाश्वतो धातानियन्ताऽमृतमच्युतः

त्वं विधाता च सततं त्वयि सर्वमिदं जगत् ॥ १ ॥

चत्वारो ह्याश्रमादेवसर्वे वर्णाश्चकर्मभिः । यजन्ते त्वामहरहर्नानामूर्त्तिसमास्थितम्

पिता माता च सर्वस्य दैवतं त्वं हि शाश्वतम् ।

कं त्वं च यजसे देवं पितरं वा न विद्महे ॥ ३ ॥

श्रीनारायण उवाच

नैतद्रहस्यं वक्तव्यमात्मगुह्यमथापि ते । मयि भक्तिमते ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामि यथातथम् ॥

सत्यं ज्ञानमनन्तं यो ब्रह्मेति श्रुतिवर्णितः । त्रिगुणव्यतिरिक्तश्च पुरुषो दिव्यविग्रहः

महापुरुष इत्युक्तो वासुदेवश्च यः प्रभुः । नारायण ऋषिर्विष्णुः कृष्णश्च भगवानिति

एकः स एव देवो नौ पितरौ चेति विद्धि भो ।

आवाभ्यां पूज्यतेऽसौ हि दैवे पित्र्ये च कल्पिते ॥ ७ ॥

नास्तितस्मात्परतरःपितादेवोऽथवाद्विज! । आत्माहिनौस विज्ञेयःकृष्णोब्रह्मपुरेश्वरः

तेनैषा प्रथिता ब्रह्मन्मर्यादा लोकभावनी । दैवं पित्र्यञ्च कर्तव्यमितिलोकहितैषिणा

प्रवृत्तश्च निवृत्तश्च द्वेधा कर्माऽस्ति वैदिकम् । यथाधिकारंविहितंपुरुषार्थोपलब्धये

तन्त्रवेदोक्तविधिनास्वोचितस्त्रीपरिग्रहः । वित्तार्जनञ्चन्यायेनद्रव्ययज्ञाःसकामनाः

वासो ग्रामे च नगरे पूर्त्तमिष्टञ्च कर्मयत् । प्रवृत्तं तत्तुसकलमशान्तिकृदुदीरितम् ॥

स्त्रीद्रव्ययोः परित्यागः कामलोभक्रुधांतथा । वनवासश्चवैराग्यंतपःक्षान्तिःशमोदमः

ब्रह्मयज्ञा योगायज्ञा ज्ञानयज्ञाश्च सर्वशः । जपयज्ञाश्चेति मुने निवृत्तं कर्म कीर्तितम् ॥

त्रिलोक्यां गतयोधर्मंप्रवृत्तमनुतिष्ठताम् । स्वर्गलोकावधिमुने! मनुष्याणांभवन्तिवै

इन्द्रचन्द्राग्निलोकादौ स्वस्वपुण्यफलञ्च ते ।
भोगैश्वर्यं बहुविधमभीष्टं भुञ्जते खलु ॥ १६ ॥

यावत्पुण्यं तावदेव भुक्त्वा तत्ते सुरास्ततः । क्षीणे तु सुकृतेभूयःपतन्तिविवशाभुवि
भोगैश्वर्यादिनाशो हि कालवेगेन जायते । अनिच्छतामपि मुने तेषांपुण्यक्षये सति
अधिकारिकदेवानामपि ब्रह्मदिने मुहुः । इष्टभोगैश्वर्यनाशो जायते कालरंहसा ॥ १६

निवृत्तधर्मनिष्ठा ये योगिनश्च तपस्विनः ।
जनादीन्यान्ति लोकांस्त्रींस्ते तु त्रैलोक्यतो बहिः ॥ २० ॥

तत्तल्लोकैश्वर्यभोगान्भुञ्जते तेनिजेप्सितान् । दैनन्दिनेऽपि प्रलयेवर्त्तन्ते ते यथासुखम्
ब्रह्मणो द्विपरार्द्धान्ते तद्भोगैर्यसम्पदः । नश्यन्ति कालशक्त्यैव लोकास्तेषां चनारद
अथैतद्द्विविधंकर्मगुणात्मकमपि द्विज! । कृतंचेद्विष्णुसम्बद्धंनिर्गुणंस्यात्तदातुतत्

तत्फलं चाऽक्षयं स्याद्धि स्वेष्टादप्यधिकं नृणाम् ।
भक्तास्ते भगवद्धाम यान्त्यष्टावृत्तितः परम् ॥ २४ ॥
अतो विवेकिनो नित्यं विष्णुभक्त्यन्विताः क्रियाः ।
प्रवृत्ता वा निवृत्ता वा कुर्वते सकला अपि ॥ २५ ॥

ब्रह्मा स्थाणुर्मनुर्दक्षो भृगुर्द्धर्मस्तथायमः । मरीचिरङ्गिराश्चात्रिःपुलस्त्यःपुलहः क्रतुः
वैभ्राजश्च वसिष्ठश्च विवस्वान्सोम एव च । कश्यपः कर्द्दमाद्याश्च प्रजानां पतयोमुने
देवाश्च ऋषयः सर्वेसर्वे वर्णास्तथाऽऽश्रमाः । पूजयन्ति तमेवेशं प्रवृत्तंधर्ममास्थिताः
सनः सनत्सुजातश्च सनकः स सनन्दनः । सनत्कुमारः कपिल आरुणिश्चसनातनः
ऋभुर्यतिश्च हंसाद्या मुनयो नैष्ठिकव्रताः । तमेव पूजयन्तीशं निवृत्तं धर्ममास्थिताः
वासुदेवस्याऽङ्गतया भावयित्वासुरान्पितॄन् । अहिंसपूजाविधिनायजन्तेचान्वहंहि ते
यथाधिकारमेते हि तेन यत्र नियोजिताः । प्रवृत्ते वा निवृत्ते वा धर्मेतेपालयन्तितम्

तस्य देवस्य मर्यादां न क्रामन्त्युभयेऽपि ते ॥ ३२ ॥

चतुर्वर्गे तेषु यस्य यद्यदिष्टतमं भवेत् । तत्तत्सम्पूरयत्येव सर्वशक्तिपतिः प्रभुः ॥३३
भक्त्या कृतस्याप्यल्पस्यभगवान्पुण्यकर्मणः । प्रीतोददात्येवफलंमहदक्षयमीप्सितम्

तेषुतद्भक्तितोलोकेयेत्वेकान्तित्वमास्थिताः । वासुदेवंविनाऽन्यत्रलङ्क्षीणाशेषवासनाः
देहान्ते तेतु सम्प्राप्य तस्य धाम तमःपरम् । देहैरप्राकृतैरेव प्रेम्णा परिचरन्ति तम्
अन्येतु भक्ताःकालेनतदुपासनदार्ढ्यतः । वासनानांक्षयेजातेयान्त्येकान्तिकवद्भितम्
येन केनाऽपि भावेन तेन सम्बध्यते तु यः । संसृतिं नप्रयात्येवसतुक्काप्यन्यजीववत्

कर्मयोगस्यसंसिद्धिर्ज्ञानयोगस्यचेप्सिता ।
तस्या श्रयादेवऽऽनृणां निर्विघ्नं भवतिद्रुतम् ॥ ३६ ॥

तस्मात्सएवभगवान्सर्वैरपिजनैरिह । स्वाभीष्टफलसिद्ध्यर्थंप्रीत्योपास्योयथाविधि

ब्रह्मैक्यमाप्ता निर्विघ्ना अपि ब्रह्मशिवादयः ।
श्रीविष्णोः कुर्वते भक्तिं सन्तीत्थं तन्महागुणाः ॥ ४१ ॥

इतिगुह्यसमुद्देशस्तवनारद कीर्त्तितः । अतिप्रेम्णा हि सततं मयि भक्तिमतोऽखिलः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे-
श्रीवासुदेवमाहात्म्ये श्रीवासुदेवसर्वोपास्यत्वनिरूपणं नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

श्वेतद्वीपमुक्तवर्णनम्

स्कन्द उवाच

स एवमुक्तो (क्ता?) त्मविदां वरिष्ठो नारायणेनोत्तमपूरुषेण ।
जगाद वाक्यं जगतां गरिष्ठं तमच्युतं लोकहिताधिवासम् ॥ १ ॥

नारद उवाच

श्रुतं मयादेव! समं त्वयोक्तमृष्याकृतिच्छादितभूरिधाम्ना ।
तवैव लीलासकलेयमीश सर्वेश्वरस्येति विदामि चित्ते ॥ २ ॥
त्वद्दर्शनेनैव हि पूर्णकामो भवामिभूमन् ! स्वहृदीप्सितेन ।

तथाप्यहं तत्तव पूर्वरूपं प्रभो! दिदृक्षामि हि कौतुकं मे ॥ ३ ॥

श्रीनारायण उवाच

न तत्स्वरूपं मम दानयज्ञयोगैश्च वेदैस्तपसाऽपि दृश्यम् ।
एकान्तिकैर्भक्तवरैस्तु भक्त्या ह्यनन्यया नारद! दृश्यते तत् ॥ ४ ॥
भक्तिस्तव त्वस्ति मयि ह्यनन्या ज्ञानञ्च वैराग्ययुतं स्वधर्मः ।
अतश्च तद्दर्शनमाप्स्यसि त्वं सुरेश्वराद्यैरपि यद्दुरापम् ॥ ५ ॥
त्वदीयभक्त्याऽतितरां प्रसन्नस्त्वाज्ञापयाम्यद्य तदीक्षणाय ।
सितान्तरीपं व्रज तत्र तेऽयं मनोरथः सेत्स्यति विप्रवर्य! ॥ ६ ॥

स्कन्द उवाच

श्रुत्वेति वाचं परमेष्ठिपुत्रः सोऽप्यर्च्चयित्वा तमृषिं पुराणम् ।
खमुत्पपातोत्तमयोगयुक्तस्ततोऽधिमेरौ सहसा निपेते ॥ ७ ॥
तस्याऽवतस्थे च मुनिर्मुहूर्त्तमेकान्तमासाद्य गिरेः स शृङ्गे ।
आलोकयन्नुत्तरपश्चिमेन ददर्श चाऽत्यद्भुतमन्तरीपम् ॥ ८ ॥
क्षीरोदधेरुत्तरतो हि द्वीपः श्वेतः स नाम्ना प्रथितो विशालः ।
देदीप्यमानो विततेन सर्वतो ज्योतिश्चयेनाऽतिसितेन नित्यम् ॥ ९॥
आम्रैरनेकैरसनैरशोकैराम्रातकैर्निम्बकदम्बनीपैः ।
बिल्वैर्मधूकैः सुरदारुभिश्च प्लक्षैर्वटैः किंशुकचन्दनैश्च ॥ १० ॥
सर्ज्जैश्च शालैः पनसैस्तमालैर्मुनिद्रुमैः केतकचम्पकैश्च ।
कुन्दैश्चजातीसुरमल्लिकाभिर्द्रुमैर्वृतः पुष्पफलावनम्रैः ॥ ११ ॥
कल्पद्रुमाणां बहुभिश्च वृन्दैः सुवर्णरम्भाक्रमुकालिभिश्च ।
महद्भिरुद्यानवरैरनेकैः सरित्सरोभिर्विकचाम्बुजैश्च ।
हंसादिभिः पक्षिवरैः सुशब्दैर्गणैर्मृगाणांरुचिरैश्चलद्भिः ॥ १२ ॥
सर्वेऽपि जीवाः किल यत्र मुक्ता वसन्ति च स्थावरजङ्गमाश्च ।
तं वीक्षमाणेन च तेन दृष्टा भक्तोत्तमाः श्री पुरुषोत्तमस्य ॥ १३ ॥

अतीन्द्रिया निर्गतसर्वपापा निष्यन्दहीनाश्च सुगन्धिनश्च ।
द्विबाहवः केऽपि चतुर्भुजाश्च श्वेताश्च केचिन्नवनीरदाभाः ॥ १४ ॥
पद्मच्छदाक्षाः सममानगात्राः सुरूपदिव्यावयवाःसुसाराः ।
विकीर्णकेशाश्च सदा किशोराः सद्भिश्च चिह्नैर्निखिलैरुपेताः ॥ १५ ॥
सरोजरेखाङ्कितपाणिपादाः षडूर्मिहीना मिहिरातितेजसः ।
सितांशुकाध्यानपराश्च सौम्याः कालोऽपि येभ्यो भयमेति नित्यम् ॥१६॥

सावर्णिरुवाच

अतीन्द्रिया निरातङ्का अनिष्यन्दाः सुगन्धिनः ।
के ते नराः कथं जातास्तादृशाः का च तद्गतिः ॥ १७ ॥
श्वेतद्वीपपयोम्भोधौवर्त्तते हिधरातले । तद्वासिनामपिकथं प्रोक्ताऽतीन्द्रियता त्वया
ये ब्रह्मण्यक्षरे धाम्नि सच्चिदानन्दरूपिणि ।
स्थिताः स्युश्चिन्मया मुक्तास्ते तथा स्युर्न्नहीतरे ॥ १९ ॥
एतं मे संशयं छिन्धि परं कौतूहलं हि मे ।
त्वं हि सर्वकथाभिज्ञस्ततस्त्वामाश्रितोऽस्म्यहम् ॥ २० ॥

स्कन्द उवाच

एकान्तोपासनेनैव प्राक्कल्पेषु रमापतेः । ये ब्रह्मभावं सम्प्राप्ता अजरामरतांगताः ॥२१
अक्षराख्या पुमांसस्ते श्वेतद्वीपेऽत्रधामनि । सेवितुंवासुदेवंतंस्थितादेवर्षिणेक्षिताः
प्राप्तेप्रलयकालेतुपुनश्चाऽक्षरधामनि। स्थास्यन्तितेस्वतन्त्राश्चकालमायाभयोज्झिताः
अत्रापिपुरुषा ये तुमायाजाताअतः क्षराः । तेऽपि सद्भिःसाधनैर्वैजायन्तेतादृशाःकिल
अहिंसया च तपसा स्वधर्मेण विरागतः । वासुदेवस्यमाहात्म्यज्ञानेनैवात्मनिष्ठया ॥
भक्त्या परमयानित्यंप्रसङ्गेन महात्मनाम् । हरिसेवाविहीनानां मुक्तीनामप्यनिच्छया
सिद्धीनाममणिमादीनां सर्वासां चाऽप्यकाङ्क्षया ।
अन्योऽन्यं श्रुतिकीर्तिभ्यां श्रीहरेर्जन्मकर्मणाम्
भवन्ति तादृशा नूनं पुरुषा मुनिसत्तम! ॥ २७ ॥

जगत्सर्गे जायमानेऽप्येते कालवशात्कचित् ।
न जायन्ते स्वतन्त्रत्वान्न नश्यन्ति लयेऽन्यवत् ॥ २८ ॥
अत्रतेकथयिष्यामिकथांपौराणिकींमुने! । यथाऽत्रत्योऽपिमनुजस्तथाभावमुपेयिवान्
विस्तीर्णैषाकथाब्रह्मञ्छ्रुतामेपितृसन्निधौ । सैषाद्यतववक्तव्याकथासारोहिसस्मृतः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवासुदेवमाहात्म्ये श्वेतद्वीपमुक्तवर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

उपरिचरवसुसद्गुणवर्णनम्

स्कन्द उवाच

आसीद्राजोपरिचरो वासुनामा पुरा मुने । भूभर्त्तुरायोस्तनयः ख्यातश्चासावमावसुः
आखण्डलसखो भक्तिं प्राप्तो नारायणे प्रभौ ॥ १ ॥
धार्मिकः पितृभक्तश्च पितृन्देवांश्च तर्पयन् । सदाचाररतो दक्षः क्षमावाननसूयकः ॥
सर्वोपकारकः शान्तो ब्रह्मचर्यरतः शुचिः । अक्रोधनश्च मितभुङ्मृदुर्निर्व्यसनो मुनिः
निर्द्वन्द्वो निर्विकारश्च निर्मानो धीर आत्मवित् ।
निर्दम्भो मानदो योगी तपस्वी विजितेन्द्रियः ॥ ४ ॥
धनपुत्रकलत्रेषु विरक्तः स्वजनादिषु । नारायणमनुं भक्त्या स जजापाऽन्वहं नृपः ॥
तस्मैतुष्टोऽथभगवान्वासुदेवःस्वयंददौ । साम्राज्यं सोऽथनासक्तस्तत्रभेजेतमादरात्
तन्त्रोक्तेनविधानेनपञ्चकालं समाहितः । पूजयामास देवेशं तच्छेषेण सुरान्पितॄन् ॥
तेषांशेषेणविप्रांश्चसम्विभज्याऽऽश्रितांश्चसः । शेषान्नभुक्सत्यपरःसर्वभूतेष्वहिंसकः
भक्षणे दोषमविदत्प्राणिमात्रामिषस्य तु । महापातकवद्राजा स्वप्रजाश्चतथाऽवदत्
सर्वभावेन भेजेऽसौ देवदेवं जनार्दनम् । अनादिमध्यनिधनं लोककर्त्तारमव्ययम् ॥

श्रीवासुदेवपदयोः स चकार मनः स्थिरम् । श्रोत्रे चनित्यंभगवत्कथायाःश्रवणेनृपः
नयने स्वे मुकुन्दस्य तद्भक्तानाञ्चदर्शने । गुणगाने हरेर्वाणीञ्चक्रे भूमिपतिः स तु॥
नारायणाङ्घ्रिसंस्पृष्टतुलसीपुष्पसौरभे ।
घ्राणं चकार च नृपो नाऽन्यगन्धेषु कर्हिचित् ॥ १३ ॥
श्रीशोपभुक्तवस्त्रादिस्पर्शने च त्वचं निजाम् । चकार रसनामन्ने नारायणनिवेदिते
भगवन्मन्दिरक्षेत्रसदन्तिकगतौ तथा । चकार चरणौ राजा सेवायाञ्च करौ हरेः॥
उत्तमाङ्गं च चक्रेऽसौ विष्णुपादाभिवन्दने । सख्यञ्चकार परमं महाभागवतेषु सः १६
एकोऽपि न क्षणस्तस्य विना भक्तिरमापतेः । जगामकिलराजर्षेस्तदीयव्रतचारिणः
महद्भिरेव सम्भारैर्विष्णोर्ज्जन्मदिनोत्सवान् । चक्रे तदर्थमुद्यानमन्दिरोपवनानि च
इत्थं नारायणे भक्तिं वहतो ब्राह्मणोत्तम! । एकशय्यासनं तस्यदत्तवान्देवराट्स्वयम्
वैजयन्तीं ददौ मालां तस्मा इन्द्रोऽतिशोभनाम् ।
अम्लानपङ्कजमयीं तथा रत्नानि भूरिशः ॥ २० ॥
आत्मा राज्यं धनं चैव कलत्रं वाहनादि च । यत्तद्भगवतः सर्वमिति तत्प्रेक्षितं सदा
काम्या नैमित्तिकाजस्रं यज्ञियाः परमाः क्रियाः ।
सर्वाः सात्वतमास्थाय विधिं चक्रे समाहितः ॥ २२ ॥
पञ्चरात्रविदो मुख्यास्तस्य गेहे महात्मनः । प्रायणंभगवत्प्रत्तंभुञ्जतेऽस्माग्रतोद्विजाः
तस्य प्रशासतो राज्यंधर्मेणाऽमित्रघातिनः । नानृतावाक्समभवन्मनोदुष्टंनचाऽभवत्
न च कायेन कृतवान्स पापं परमण्वपि ॥ २४ ॥
पञ्चरात्रं महातन्त्रं भगवद्भक्तिपुष्टये । शुश्रावाऽनुदिनं राजा भगवद्भक्तवक्त्रतः ॥ २५॥
धर्मं संस्थापयञ्छुद्धं रञ्जयन्सकलाः प्रजाः । पालयामासपृथिवींदिवमाखण्डलोयथा
अपिसप्तविधस्तस्य राज्ये पललभक्षकः । पुमान्कोऽप्यभवन्नैव न चपाखण्डवेषिणः
असाध्व्यो योषितश्चैव पुरुषाः पारदारिकाः ।
न श्रुतास्तस्य राज्ये च धर्मसङ्करकारिणः ॥ २८ ॥
एकादशविधं मर्त्यत्रिविधाश्चसुरानपि । नाजिघदपि कोऽपीह तस्मिन्राज्यंप्रशासति

एवंगुणःसतु काऽपिपक्षपाताद्दिवौकसाम् । मिथ्यालापाद्दिवोभ्रष्टःप्रविवेशमहीतलम्
अन्तर्भूमिगतश्चाऽसौ सततं धर्मवत्सलः । नारायणपरोभूत्वा तन्मन्त्रमजपत्स्थिरः
तस्यैवच प्रसादेन पुनरेवोत्थितस्तु सः । दिवम्प्राप्य सुखं तत्रमनोऽभीष्टंसमन्वभूत्

पुनश्चेदिपतिर्भूत्वा भुव्यसौ पितृशापतः ।
पञ्चरात्रोक्तविधिना भेजे हरिमतन्द्रितः ॥ ३३ ॥

स्वर्गलोकं ततः प्रापद्दिव्यदेहेन भूपतिः । उपासनाञ्च तत्रत्यैः परमर्षिगणैः सह ॥
दृढीकुर्वन्भगवतः कश्चित्कालमुवास तत् । परं पदमथ प्रापद्वासुदेवस्य निर्भयम् ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवासुदेवमाहात्म्य उपरिचरवसुसद्गुणवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

वेदस्यहिंसापरत्वोक्त्योपरिचरवसोरधःपातवर्णनम्

सावर्णिरुवाच

स हि भक्तोभगवतआसीद्राजामहान्वसुः । किं मिथ्याऽभ्यवदद्येनदिवोभूविवरंगतः

केनोद्धृतः पुनर्भूमेः शप्तोऽसौ पितृभिः कुतः ।
कथं मुक्तस्ततो भूप इत्येतत्स्कन्द! मे वद ॥ २ ॥

स्कन्द उवाच

शृणु ब्रह्मन्कथामेतां वसोर्वासवरोचिषः । यस्याः श्रवणतःसद्यःसर्वपापक्षयोभवेत्
स्वायम्भुवान्तरेपूर्वमिन्द्रो विश्वजिदाह्वयः । आरम्भे महायज्ञमश्वमेधाभिधं मुने ॥
निबद्धाः पशवोऽजाद्याःक्रोशन्तस्तत्रभूरिशः । सर्वेदेवगणाश्चापि रसलुब्धास्तदासत
क्षेमाय सर्वलोकानां विचरन्तो यदृच्छया । महर्षय उपाजग्मुस्तत्र भास्करवर्चसः

सम्मानिताः सुरगणैः पाद्यार्घ्यस्वागतादिभिः ।

ते वृहन्मुनयोऽपश्यन्मेध्यांस्तान्क्रोशतः पशून् ॥ ७ ॥
सात्त्विकानामपिचतंदेवानांयज्ञविस्तरम् । हिंसामयंसमालोक्यतेऽत्याश्चर्यंहिलेभिरे
धर्मव्यतिक्रमं दृष्ट्वा कृपया ते द्विजोत्तमाः । महेन्द्रप्रमुखानूचुर्देवान्धर्मधियस्ततः ॥८॥

महर्षय ऊचुः

देवैश्च ऋषिभिःसाकंमहेन्द्राऽस्मद्वचःशृणु । यथास्थितंधर्मतत्त्वंवदामोहिसनातनम्
यूयं जगत्सर्गकाले ब्रह्मणा परमेष्ठिना । सत्त्वेन निर्मिताः स्थोवै चतुष्पाद्धर्मधारकाः
रजसा तमसा चासौ मनूंश्चैव नराधिपान् । असुराणाञ्चाधिपतीनसृजद्धर्मधारिणः
सर्वेषामथ युष्माकं यज्ञादिविधिबोधकम् । ससर्ज श्रेयसे वेदं सर्वाभीष्टफलप्रदम्
अहिंसैव परो धर्मस्तत्र वेदेऽस्तिकीर्त्तितः । साक्षात्पशुवधोयज्ञे नहि वेदस्यसम्मतः
चतुष्पादस्यधर्मस्यस्थापनेह्येवसर्वथा । तात्पर्यमस्तिवेदस्य न तु नाशोऽस्यहिंसया
रजस्तमोदोषवशात्तथाप्यसुरपा नृपाः । मेध्येनाऽऽजेन यष्टव्यमित्यादौमतिजाड्यतः
छागादिमर्थं बुबुधुर्व्रीह्यादिं तु न ते विदुः ॥ १६ ॥
सात्त्विकानां तु युष्माकं वेदस्याऽर्थो यथा स्थितः ।
ग्रहीतव्योऽन्यथानैव तादृशी च क्रियोचिता ॥ १७ ॥
यादृशो हि गुणो यस्यस्वभावस्तस्यतादृशः ।
स्वस्वभावानुसारेण प्रवृत्तिः स्याच्च कर्मणि ॥ १८ ॥
सात्त्विकानां हि वो देवः साक्षाद्विष्णू रमापतिः ।
अहिंस्रयज्ञेऽस्ति ततोऽधिकारस्तस्य तुष्टये ॥ १९ ॥
प्रत्यक्षपशुमालभ्य यज्ञस्याऽऽचरणं तु यत् । धर्मः स विपरीतोवैयुष्माकंसुरसत्तमाः
रजस्तमोगुणवशादासुरीं सम्पदं श्रिताः । युष्माकं याचका ह्येतेसन्त्यवेदविदोयथा
तत्सङ्गादेवयुष्माकं साम्प्रतं व्यत्ययोमतेः । जातस्तेनेदृशंकर्म प्रारब्धमितिनिश्चितम्
राजसानां तामसानामासुराणांतथानृणाम् । यथागुणंभैरवाद्याउपास्याःसन्तिदेवताः
स्वगुणानुगुणात्मीय देवतातुष्टये भुवि । हिंस्रयज्ञविधानं यत्तेषामेवोचितं हि तत्
तत्राऽपि विष्णुभक्तायै दैत्यरक्षोनरादयः । तेषामप्युचितो नास्तिहिंस्रयज्ञःकुतस्तुवः

यज्ञशेषोहि सर्वेषां यज्ञकर्मानुतिष्ठताम् । अनुज्ञातो भक्षणार्थं निगमेनैव वर्तते ॥२६
सात्त्विकानां देवतानां सुरामांसाशनं क्वचित् ।
अस्माभिस्तर्वीक्षितं नैव न श्रुतञ्च सतां मुखात् ॥ २७ ॥
तस्माद्व्रीहिभिरेवाऽसौयज्ञःक्षीरेणसर्पिषा । मेध्यरन्नरसैश्चाऽन्यैःकार्योनपशुहिंसया
तत्राऽपिवीजयंष्टव्यमजसञ्ज्ञामुपागतः । त्रिवर्षकालमुषितंन्नं येषां पुनरुद्गमः ॥ २६॥
अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया तपः । ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमदम्भश्च क्षमा धृतिः
सनातनस्यधर्मस्य रूपमेतदुदीरितम् । तदतिक्रम्य यो वर्तेद्धर्मघ्नः स पतत्यधः ॥३१
स्कन्द उवाच
इत्थं वेदरहस्यज्ञैर्महामुनिभिरादरात् । वोधिता अपि सन्नीत्या स्वप्रतिज्ञाविघाततः
तद्वाक्यंजगृहुर्नैव तत्प्रामाण्यविदोऽपिते ॥ ३२ ॥
महद्व्यतिक्रमात्तर्हि मानक्रोधमदादयः । विविशुस्तेष्वधर्मस्य वंश्याश्छिद्रगवेषिणः
अजश्छागोन वाजःनीत्यादिवादिषुतेष्वथ । विमनस्स्वृषिवर्येषुपुनस्तान्वोधयत्सुच
राजोपरिचरः श्रीमांस्तत्रैवागाद्यदृच्छया । तेजसा द्योतयन्नाशा इन्द्रस्य परमः सखा
तं दृष्ट्वासहसायान्तंवसुं तेऽन्तरिक्षगम् । उचुर्द्विजातयो देवानेष च्छेत्स्यतिसंशयम्
एष भूमिपतिःपूर्वं महायज्ञान्सहस्रशः । चक्रे सात्वततन्त्रोक्तविधिनाऽऽरण्यकेन च
येषु साक्षात्पशुवधः कस्मिंश्चिदपि नाऽभवत् ।
नदक्षिणानुकल्पश्च नाऽप्रत्यक्षसुरार्चनम ॥ ३८ ॥
अहिंसाधर्मरक्षाभ्यांख्यातोऽसौ सर्वतोनृपः । अग्रणीर्विष्णुभक्तानामेकपत्नीमहाव्रतः
ईदृशो धार्मिकवरः सत्यसन्धश्चवेदवित् । कश्चिन्नान्यथा ब्रूयाद्वाक्यमेष महान्वसुः
एवं तेसम्विदं कृत्वाविवुधाश्चर्षयस्तथा । अपृच्छन्सहसाऽभ्येत्यवसुं राजानमुत्सुकाः
देवमहर्षय ऊचुः
भोराजन्केन यष्टव्यं पशुनाऽहोस्विदोषधैः । एतं नः संशयंछिन्धिप्रमाणंनोभवान्मतः
स्कन्द उवाच
स तान्कृताञ्जलिर्भूत्वा परिपप्रच्छ वै वसुः । कस्यवःकोमतःपक्षोब्रतसत्यंसमाहिताः

महर्षय ऊचुः

धान्यैर्यष्टव्यमित्येव पक्षोऽस्माकं नराधिप! । देवानां तु पशुःपक्षोमतंराजन्वदात्मनः

स्कन्द उवाच

देवानां तु मतं ज्ञात्वा वसुस्तत्पक्षसंश्रयात् । छागादिपशुनैवेज्यमित्युवाचवचस्तदा
एवं हि मानिनां पक्षमसन्तं स उपाश्रितः । धर्मज्ञोऽप्यवदन्मिथ्यावेदं हिंसापरंनृपः
तस्मिन्नैव क्षणे राजा वाग्दोषादन्तरिक्षतः । अधः पपात सहसा भूमिं चप्रविवेशसः
महतीं विपदं प्रापभूमिमध्यगतो नृपः । स्मृतिस्त्वेनं नप्रजहौ तदा नारायणाश्रयात्
मोचयित्वा पशून्सर्वांस्ततस्ते त्रिदिवौकसः ।
हिंसाभीता दिवं जग्मुः स्वाश्रमांश्च महर्षयः ॥ ४६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे श्रीवासुदेवमाहात्म्ये वेदस्य हिंसापरत्वोक्त्या उपरिचरवसोरधः पातवर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

उपरिचरवसुमोक्षवर्णनम्

स्कन्द उवाच

भूमध्यगःसराजाऽथस्वकृतंकर्मगर्हयन् । अनुतप्यमानश्च भृशं मानयंस्तान्बृहन्मुनीन्
जजाप भगवन्मन्त्रं त्र्यक्षरं मनसा सदा ॥ १ ॥
तत्राऽपि परया भक्त्या पञ्चकालं स्वचेतसा । अयजद्धरिं सुरपतिंभूमेर्विवरआदरात्
ततोऽस्य तुष्टोभगवान्वासुदेवो जगत्पतिः । आपद्यपि यथाकालंयथाशास्त्रंस्वमर्हतः
वरदो भगवान्विष्णुः समीपस्थं द्विजोत्तमम् ।
गरुत्मन्तं महावेगमाबभाषे स्वयं ततः ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच

द्विजोत्तम महाभाग गम्यतां वचनान्मम । सम्राड्राजा वसुर्नामधर्मात्मामांसमाश्रितः
ब्रह्मातिक्रमदोषेण प्रविष्टो वसुधातलम् । तन्मानना कृता तेन तद्गच्छाद्यतदन्तिकम्
भूमेर्विवरसङ्गुप्तं गरुडैनं ममाज्ञया । अधश्चरं नृपश्रेष्ठं खेचरं कुरु मा चिरम् ॥ ७ ॥

स्कन्द उवाच

गरुत्मानथ विक्षिप्य पक्षौमारुतवेगवान् । विवेश विवरंभूम्यांयत्रास्तेवाग्यतोवसुः
तत एनं समुत्क्षिप्य स्वचञ्च्वा विनतासुतः । उत्पपात नभस्तूर्णं तत्र चैनममुञ्चत
तस्मिन्मुहूर्त्ते सञ्जज्ञे राजोपरिचरः पुनः । सशरीरो गतः स्वर्गं परमं सुखमाप्तवान्
एवं तेनाऽपि ब्रह्मर्षे वाग्दोषात्सद्वज्ञया । प्राप्ता गतिरयज्वार्हा धर्मज्ञेन महात्मना ॥
केवलं पुरुषस्तेन सेवितो हरिरीश्वरः । ततः शीघ्रं जहौ पापं स्वर्गलोकमवाप च

भुञ्जानो विविधं सौख्यं मनोऽभीष्टञ्च तत्र सः ।
उवासान्यो यथा शक्रो गीयमानयशाः सुरैः ॥ १३ ॥

तमेकदा विमानेन चरन्तं सूर्यसन्निभम् । अद्रिकाप्सरसायुक्तमच्छोदा समवैक्षत ॥

सा हि सोमपदस्थानां पितॄणां मानसी सुता ।
अग्निष्वात्ताभिधानानाममूर्त्तानां महात्मनाम् ॥ १५ ॥
अमूर्त्तत्वात्पितॄन्स्वान्सा न जानन्ती शुचिस्मिता ।
तं वसुं पितरं मेने स च तामात्मजामिव ॥ १६ ॥

तौ ततः पितरः शेपुर्भावं दृष्ट्वेदृशं तयोः । कन्ये त्वमस्यनृपतेर्भुविकन्याभविष्यसि

वसो! त्वं मानुषो भूत्वा सुतामेनां स्वयोषिति ।
अस्यामेवाप्सरायां त्वं जनयिष्यसि निश्चितम् ॥ १८ ॥
इत्थं तौ पितृभिः शप्तौ शापमोक्षाय तांस्ततः ।
प्रार्थयामासतुर्नत्वा तदोचुस्ते कृपालवः ॥ १९ ॥
अवश्यमित्थं भावित्वाद्युवाभ्यामुपलम्भितः ।
शापोऽयं तत्र युवयोः श्रेय एव भविष्यति ॥ २० ॥

अष्टाविंशे द्वापरे तु वसो! त्वं भुवि भूपतेः । कृतयज्ञस्य तनयो भवितासि महात्मनः
तत्राऽपि च यथेदानीं तथा त्वं सकलैर्गुणैः । जुष्टश्चखचरोभाव्यो महाभागवताग्रणीः

पञ्चरात्रोक्तविधिना विष्णुमभ्यर्च्य भक्तितः ।
तच्छेषेण सुरांश्चाऽस्मानर्चयिष्यसि सप्रजः ॥ २३ ॥
ततस्त्वं दिव्यदेहेन स्वर्गलोकमवाप्स्यसि ।
दिव्यान्भोगांस्तत्र भुक्त्वा प्राप्स्यसे वैष्णवं पदम् ॥ २४ ॥
अच्छोदे त्वमपि क्षोण्यां नाम्ना कालीति विश्रुता ।
स्वांशेन मत्स्यदेहायामद्रिकायां जनिष्यसे ॥ २५ ॥

पराशरात्तत्रसुतंकन्यैवप्राप्स्यसेहरिम् । प्रसादादेवतस्यत्वं भुक्तिं मुक्तिं च लप्स्यसे

स्कन्द उवाच

इत्थं स पितृभिःशप्तोऽनुगृहीतश्चभूपतिः । कृतयज्ञादिह जनिं प्राप्याऽभूद्विश्रुतोगुणैः
यथा पूर्वं कृष्णभक्तो दैवपित्र्यविधानवित् । सख्ये तस्मै महेन्द्रश्चप्रादात्प्रचुरसम्पदः
श्वेतद्वीपे वासुदेवात्प्राप्तोयोविजयध्वजः । पुरास्वेनारिनाशार्थंतस्माइन्द्रस्तमप्यदात्

अन्तरीक्षगती राजा भौमान्भोगान्सुदुर्लभान् ।
भुक्त्वाऽन्ते स्वर्गलोकश्च दिव्यदेहेन लब्धवान् ॥ ३० ॥
प्राक्पुण्यशेषस्य फलं भुञ्जन्स्वमनसेप्सितान् ।
तत्र भोगान्बहुविधांस्तीव्रं वैराग्यमाप्तवान् ॥ ३१ ॥

मेरोः शृङ्गेऽथ विजने शुचिः कृतदृढासनः । दध्यौस्वहृदयाम्भोजेस्वेष्टदेवंरमापतिम्
त्यक्त्वादेवचपुः सोऽथयोगधारणयामुनिः । ततःसूक्ष्मशरीरेणप्रापभास्करमण्डलम्

यदाहुर्नैष्ठिकानाञ्च मुक्तिद्वारं हि योगिनाम् ॥ ३२ ॥

तत्तेजोदग्धसूक्ष्माङ्गः सच्चिद्रूपोऽतिनिर्मलः । स बभूव महाभागः सक्षीणाशेषवासनः
ततस्तन्मण्डलगतैरातिवाहिकदैवतैः । स निन्ये वैष्णवं धाम श्वेतद्वीपाख्यमद्भुतम्
सहिद्वीपोभुविस्थोऽपिभवत्यप्राकृतोमुने । हरिभक्तिजनावासःप्राप्यएकान्तभक्तिभिः
स गोलोकब्रह्मपुरवैकुण्ठानाञ्च सुव्रत! । द्वारभूतोऽस्ति भक्तानांतल्लिप्सूनांमहात्मनाम्

यस्य यद्धाम्न इच्छा स्याद्व्रजतस्तं तदेव हि । प्रापयन्तिश्वेतमुक्तामुनेप्रागुक्तलक्षणाः
दिव्यदेहोऽभवत्तत्र धाम्न्यऽसौ श्वेतमुक्तवत् ।
प्राप्य गोलोकधामाऽथ परमानन्दमाप्तवान् ॥ ३६ ॥
इत्थमेकान्तिकेनैवधर्मेणाऽऽराधयन्तिये । नारायणं परं ब्रह्म श्वेतमुक्ता भवन्ति ते ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं पृष्टवान्यद्भवान्मुने । स्थितिरेकान्तभक्तानां श्वेतधाम्नश्चलक्षणम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवासुदेवमाहात्म्य उपरिचरवसुमोक्षनिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

देवेन्द्रशापवार्त्तावर्णनम्

सावर्णिरुवाच

महर्षिवारितैर्द्देवैस्त्यक्ते हिंसामये मखे । पुनः कथं सम्प्रवृत्ता मखाः सर्वत्र तादृशाः
देवेष्वृषिषु भूपेषु प्राचीनाऽऽधुनिकेषु च । सनातनः शुद्धधर्मो विपर्यासं कथं गतः ॥
अत्र मे संशयो भूयान्सञ्जातोऽद्य षडानन! । त्वं सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञस्तमपाकर्त्तुमर्हसि

स्कन्द उवाच

कालो बलीयान्बलिनां भिद्यन्ते तेन बुद्धयः । कामक्रोधरसास्वादलोभमानवतां मुने
अतिक्रमेण महतांयथार्थहितभाषिणाम् । क्रोधमानवशात्पुंसांनश्यन्त्येव च सद्धियः
अकार्यमपि ते कर्तुं तदानीं तु बुधा अपि । प्रवर्त्तन्तेऽनुतप्यन्तेवम्भ्रम्यन्तेऽथ संसृतौ
कामादिभिर्विहीना ये सात्वताः क्षीणवासनाः ।
तेषां तु बुद्धिभेदाय काऽपि कालो न शक्नुते ॥ ७ ॥
अनाश्रितस्तु सद्धर्मं पुमान्कश्चन कर्हिचित । संसृतेर्मुच्यतेनैव सत्यमेतद्वचो मम ॥

प्रवृत्तिं हिंस्रयज्ञादेरथ ते द्विजसत्तम! । कथयामि यथा पूर्वं मयाऽश्रावि पितुर्मुखात्
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
नारायणस्य माहात्म्यं यत्र लक्ष्म्याश्च कीर्तितम् ॥ १० ॥
मुनीनां वृहतांतेषामतिक्रमणदोषतः । इन्द्रस्याऽऽसीद्विश्वजितःसद्बुद्धिविलयोमुने
दुर्वासाः शङ्करस्यांशस्तपस्वी मुनिरेकदा । चरन्यदृच्छयालोकान्पुष्पभद्रांनदींययौ
जलक्रीडार्थमायान्तीं स्वर्गात्तत्रसखीवृताम् । विद्याधरस्य सुमतेरङ्गनां स समैक्षत
स्वर्गङ्गाहेमकमलैर्ग्रथितामतिसौरभाम् । दधतीं दक्षिणे पाणौ स्रजंमदकलाभिधाम्
तामवेक्ष्य मुनिस्तस्याः समीपमुपगम्यसः । उन्मत्तवद्ययाचेतांस्रजेविद्याधरीधृताम्
सापिप्रणम्यतंसद्योमाहात्म्यंतस्यजानती । तत्कण्ठेधारयामासमालांतां परमादरात्
ततः प्रीतमनागच्छन्गायन्नुन्मत्तवन्मुनिः । ददर्श पथिदेवेन्द्रमायान्तं तां महानदीम्
अप्सरोभिश्च गन्धर्वैः सतालं मधुरस्वरम् ।
उपगीयमानविजयमधिरूढं गजाधिपम् ॥ १८ ॥
रम्भामधुरसङ्गीतश्रवणानन्दनिर्वृतम् । तन्मुखाब्जस्थिरदृशं छत्रचामरशोभितम् ॥
अनवेक्षमाणमात्मानं तं दृष्ट्वा सोऽत्रिनन्दनः ।
स्वकण्ठस्थां स्रजं तस्मिन्निक्षेपोन्मत्तवद्धसन् ॥ २० ॥
इन्द्रोऽप्यधर्मसर्गेण समाविष्टःपुरैव यत् । ततस्तदा कामवशस्तांन्यधाद्गजकुम्भयोः
तत्सौरभाकृष्टचेताः करीन्द्रः शुण्डयाऽकृषत् ॥ २१ ॥
करात्सा पतिता भूमौ ताञ्च गच्छन्करीपदा । ममर्द पश्यतस्तस्यमहर्षेस्तपसांनिधेः
ततःक्रुद्धःसदुर्वासाः प्रलयाग्न्यरुणेक्षणः । प्राहेन्द्रंमत्तदुष्टात्मन्स्तब्धोसिकामलम्पट
श्रियोधामस्रजंप्रीत्यामद्दत्तांनाभिनन्दसि । प्रणाममपि रेमूढ न करोषि त्वमुन्मदः ॥
न वीक्षसे मामपि त्वं त्वादृङ्मत्तैकशिक्षकम् ।
त्रैलोक्यराज्यप्राप्तान्ध्यः सम्यक्त्वां शिक्षयेऽधुना ॥ २५ ॥
यस्यः प्रसादात्त्रैलोक्यराज्यसौख्यं त्वमाप्तवान् ।
सैव श्रीः सत्रिलोकं त्वां हित्वा लीनाऽस्तु सागरे ॥ २६ ॥

वज्रपातोपमंवाक्यंतन्निशम्यैवतत्क्षणम् । गजादुत्प्लुत्य विमदस्तदङ्घ्रयोर्न्यपतद्धरिः
प्रार्थयामासच मुहुः प्रणमंस्तं सवेपथुः । प्रसादं मयि दासे त्वं कृपालो कर्तुमर्हसि ॥
प्राहाऽथ स रे शक्र नाहम्वैगौतमोमुनिः । अक्षमासारसर्वस्वं दुर्वाससमवेहिमाम्
अन्येतेमुनयोदुष्टास्तावकास्तेऽनुवर्त्तिनः । अहं तु त्वादृशान्कीटान्गणयेनैवनिःस्पृहः
ज्वलज्जटाकलापाच्च भ्रूकुटीकुटिलेक्षणात् ।
को वा न विभियान्मत्तो ब्रह्माण्डे पापकर्मकृत् ॥ ३१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवासुदेवमाहात्म्ये देवेन्द्रशापो नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

हिंस्रयज्ञप्रवृत्तिहेतुनिरूपणम्

स्कन्द उवाच

भाविधर्मविपर्यासकालवेगवशोऽथ सः । नाहं क्षमिष्य इत्युक्त्वा कैलासं प्रययौमुने
त्रैलोक्याच्छ्रीरपितदासमुद्रेऽन्तर्द्धिमाययौ । इन्द्रंविहायाऽप्सरस सर्वशःश्रियमन्वयुः
तपः शौचं दया सत्यं पादः सद्धर्मश्रद्धयः । सिद्धयश्च बलं सत्त्वं सर्वतः श्रियमन्वयुः
गजादीनिच यानानि स्वर्णाद्याभूषणानिच । चिक्षियुर्मणिरत्नानि धातूपकरणानिच
अन्नान्यौषधयः स्नेहाः कालेनाऽल्पेन चिक्षियुः ।
न क्षीरं धेनुमहिषीप्रमुखानां स्तनेष्वभूत् ॥ ५ ॥
नवाऽपि निधयोनष्टाः कुबेरस्यापिमन्दिरात् । इन्द्रःसहामरगणैरासीत्तापससन्निभः
सर्वाणि भोगद्रव्याणि नाशमीयुस्त्रिलोकतः ।
देवा दैत्या मनुष्याश्च सर्वे दारिद्र्यपीडिताः ॥ ७ ॥
कान्त्याहीनस्ततश्चन्द्रःप्रापाम्बुत्वंमहोदधौ । अनावृष्टिर्महत्यासीद्धान्यबीजक्षयङ्करी

काऽन्नं कान्नेति जल्पन्तः क्षुत्क्षामाश्च निरोजसः। त्यक्त्वाग्रामान्पुरश्चोषुर्वनेषु च नगेषु च
क्षुधार्त्तास्ते पशून्हत्वा ग्राम्यानारण्यकांस्तथा।
पक्त्वाऽपक्त्वाऽपि वा केचित्तेषां मांसान्यभुञ्जत ॥ १० ॥
विद्वांसो मुनयश्चाऽथ ये वै सद्धर्मचारिणः।
म्रियमाणाः क्षुधाऽथाऽपि नाऽश्नन्त पललानि तु ॥ ११ ॥
तदा तु वृद्धा ऋषयस्तान्दृष्ट्वाऽनशनाद्धृतान्। मनुभिः सह वेदोक्तमापद्धर्ममबोधयन्
मुनयः प्रायशस्तत्र क्षुधाव्याकुलितेन्द्रियाः। परोक्षवादवेदार्थान्विपरीतान्प्रपेदिरे॥
अर्थश्चाजादिशब्दानांमुख्यंछागादिमेव ते। बुबुधुश्चाऽथ ते प्राहुर्यज्ञान्कुरुतभोद्विजाः
या वेदविहिता हिंसा न सा हिंसाऽस्ति दोषदा।
उद्दिश्य देवान्पितॄंश्च ततो घ्नत पशूञ्छुभान् ॥ १५ ॥
प्रोक्षितं देवताभ्यश्च पितृभ्यश्च निवेदितम्। भुञ्जतस्वेप्सितंमांसंस्वार्थंतुघ्नतमापशून्
ततो देवर्षिभूपाला नराश्च स्वस्वशक्तितः। चक्रुस्तैर्बोधितायज्ञान्तेह्येकान्तिकान्हरेः
गोमेधमश्वमेधञ्च नरमेधमुखान्मखान्। चक्रुर्यज्ञावशिष्टानि मांसानि बुभुजुश्च ते॥
विनष्टायाः श्रियः प्राप्त्यैकेचिद्यज्ञांश्चचक्रिरे। स्त्रीपुत्रमन्दिराद्यर्थंकेचिच्चस्वीयवृत्तये
महायज्ञेष्वशक्तास्तुपितॄनुद्दिश्यभूरिशः। निहत्यश्राद्धेषुपशून्मांसान्यादंस्तथाऽऽदयन्
केचित्सरित्समुद्राणां तीरेष्वेवावसञ्जनाः। मत्स्याञ्जालैरुपादाय तदाहारा बभूविरे
स्वगृहागतशिष्टेभ्यः पशूनेव निहत्य च।
निवेदयामासुरेते गोछागप्रमुखान्मुने! ॥ २२ ॥
सजातीयविवाहानां नियमश्च तदा क्वचित्। नाभवद्धर्मसाङ्कर्याद्वित्तवेश्माद्यभावतः
ब्राह्मणाः क्षत्रियादीनांक्षत्राद्याब्रह्मणांसुताः। उपयेमिरेकालगत्यास्वस्ववंशविवृद्धये
इत्थं हिंसामया यज्ञाः सम्प्रवृत्ता महापदि।
धर्मस्त्वाभासमात्रोऽस्थात्स्वयं तु श्रियमन्वगात् ॥ २५ ॥
अधर्मः साऽन्वयो लोकांस्त्रीनपि व्याप्य सर्वतः।
अवर्द्धताऽल्पकालेन दुर्निवार्यो बुधैरपि ॥ २६ ॥

दरिद्राणामथैतेषामपत्यानि तु भूरिशः । तेषां च वंशविस्तारो महाँल्लोकेष्ववर्द्धत
विद्वांसस्तत्रयेजातास्तेतुधर्मं तमेव हि । मेनिरे मुख्यमेवाऽथ ग्रन्थांश्चक्रुश्चतादृशान्
ते परम्परया ग्रन्थाः प्रामाण्यं प्रतिपेदिरे । आद्ये त्रेतायुगे हीत्थमासीद्धर्मस्यविप्लवः
ततः प्रभृति लोकेषु यज्ञादौ पशुहिंसनम् । बभूव सत्ये तु युगे धर्मआसीत्सनातनः
कालेन महता सोऽपि सह देवैः सुराधिपः । आराध्य सम्पदं प्राप वासुदेवं प्रभुम्मुने
ततो धर्मनिकेतस्य श्रीपतेः कृपया हरेः । यथापूर्वश्चसद्धर्मस्त्रिलोक्यां सम्प्रवर्तत ॥

तत्राऽपिकेचिन्मुनयो नृपा देवाश्च मानुषाः ।
कामक्रोधरसास्वादलोभोपहतसद्धियः
तमापद्धर्ममद्यापि प्राधान्येनैव मन्वते ।

एकान्तिनोभागवतजिताकामादयस्तुये । आपद्यपि नतेऽगृह्णंस्तं तदाकिमुताऽन्यदा
इत्थं ब्रह्मन्नादिकल्पे हिंस्रयज्ञप्रवर्त्तनम् । यथासीत्तन्मयाख्यातमापत्कालवशाद्भुवि ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांद्वितीयेवैष्णवखण्डे
श्रीवासुदेवमाहात्म्ये हिंस्रयज्ञप्रवृत्तिहेतुनिरूपणंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

श्रीवासुदेवप्रसादनिरूपणम्

सावर्णिरुवाच

कथं प्राप्ता पुनःस्कन्दश्रीरिन्द्रेण गताम्बुधिम् । एतांकथयमेसर्वांकथांनारायणाश्रयाम्

स्कन्द उवाच

श्रिया विहीनो देवेन्द्रः श्रीहीनैरपि दानवैः । पराजितोहृतस्थानोनष्टाशेषपरिच्छदः
गिरिगह्वरकुञ्जेषु काननेषु ततस्ततः । परिबभ्राम सहितो दिग्गीशैर्वरुणादिभिः ॥ २
वल्कलाजिनवस्त्राश्च पशुपक्ष्यामिषाशनाः । देवादैत्यानरानागास्तुल्याचारपरिच्छदाः

पात्राणि मृण्मयान्येवसर्वेषामपिवेश्मसु । आसन्वराकाःसर्वेऽपिपिशाच्यइवचस्त्रियः
आदावभूदनावृष्टिर्भुवि द्वादशवार्षिकी । ततो वर्षे क्वचिद्वृष्टिरासीत्स्वल्पाकचिन्नच
इत्थंदारिद्र्यदुःखानांतेषांवर्षशतंगतम् । बलिष्ठारब्धकर्माणस्तेऽतिदुःखेऽपिनोमृताः

अजीवन्त मृतप्राया नरकेष्विव नारकाः

यतन्तोऽपि श्रियः प्राप्त्यै यज्ञाद्यैर्नाऽलभन्त ताम् ॥ ८ ॥

ततः सहस्रवर्षान्ते मेरौ शरणमाययुः । शापाद्दुर्वाससो देवाःसर्वेदुर्वाससोविधिम्

प्रणम्य तस्मै दुःखं स्वं वासवाद्या न्यवेदयन् ।

आदावेव हि सोऽज्ञासीत्सर्वज्ञत्वात्सुरापदम् ॥ १० ॥

उपालभ्यततश्चेन्द्रं विरिञ्चिःसहशङ्करः । तद्दुःखवारणाकल्पोविष्णुमैच्छत्प्रसादितुम्
आराधयिष्यंस्तपसा ततोऽसौ तं तपःप्रियम् । सर्वदेवगणोपेतउपायात्क्षीरसागरम्
तस्योत्तरे तटे रम्ये सर्वे तेऽनशनव्रताः । एकपादस्थिता ऊर्द्ध्वबाहवश्चक्रिरे तपः॥
केशवं हृदि ते दध्युः सर्वक्लेशविनाशनम् । लक्ष्मीपतिंवासुदेवमेकाग्रकृतमानसाः॥

शताब्दान्ते ततो विष्णुः श्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् ।

अत्यापन्नेषु दीनेषु कृपां देवेषु सोऽकरोत् ॥ १५ ॥

अदृश्यमूर्तिरात्मज्ञैरपि भूरितपस्विभिः । तत्राऽऽविरासीत्कृपयानियुताहस्करद्युतिः
तेजोमण्डलमेवाऽऽदौ सहसा स्फुरितं महत् । ददृशुर्विबुधाः सर्वे सितंघनमनौपमम्
ब्रह्माशिवश्च तन्मध्ये ददृशाते रमापतिम् । घनश्यामंचतुर्बाहुंगदाब्जाब्जारिधारिणम्
किरीटकाञ्चीकटककुण्डलादिविभूषितम् । पीतकौशेयवसनं दिव्यसुन्दरविग्रहम् ॥
हर्षविह्वलितात्मानौ दण्डवत्तौ प्रणेमतुः। तदिच्छयाऽथ देवाश्चदृष्टातंचमुदाऽऽनमन्
बभूवुरतिहृष्टास्ते निधिं प्राप्याऽधना इव ।बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वेभक्त्या तं तुष्टुवुःसुराः

देवा ऊचुः

ॐनमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि । प्रद्युम्नायाऽनिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च
ॐकारब्रह्मरूपाय त्रेधाऽऽविष्कृतमूर्तये । ब्रह्माण्डसर्गस्थित्यन्तहेतवे निर्गुणाय च॥
नयनानन्दरूपाय प्रणतक्लेशनाशिने । केशवाय नमस्तुभ्यं स्वतन्त्रेश्वरमूर्तये ॥ २४

मोदिताशेषभक्ताय कालमायादिमोहिने । सदानन्दाय कृष्णाय नमः सद्धर्मवर्त्तिने ॥
भवाम्बुधिनिमग्नानामुद्धृतिक्षमकीर्तये । दर्शनीयस्वरूपाय घनश्यामाय ते नमः ॥
गदाब्जदरचक्राणि बिभ्रते दीर्घबाहुभिः । सुरगोविप्रधर्माणां गोप्त्रे तुभ्यं नमोनमः
वरेण्याय प्रपन्नानामभीष्टवरदायिने । निगमागमवेद्याय वेदगर्भाय ते नमः ॥ २८ ॥

तेजोमण्डलमध्यस्थदिव्यसुन्दरमूर्तये ।
नमामो विष्णवे तुभ्यं परात्परतराय च ॥ २९ ॥

वाणीमनोविप्रकृष्टमहिम्नेऽक्षररूपिणे । सर्वान्तर्यामिणे तुभ्यं बृहते च नमोनमः
सुखदोऽसि त्वमेवैकःस्वाश्रितानामतोवयम् । महापदधिकक्लिष्टाःशरणंत्वामुपागताः

देवाधिदेवभक्तस्य तव दुर्वाससोवयम् ।
अतिक्रमाच्छ्रिया हीनाः प्राप्ताः स्मो दुर्दशामिमाम् ॥ ३२ ॥
वासोऽन्नपानस्थानादिहीनान्धर्मोऽपि नः प्रभो ।
त्यक्त्वा सह श्रिया यातस्तान्पातुं त्वमसाध्वरः ॥ ३३ ॥

यतोवयञ्च धर्मश्च त्वदीया इति विश्रुताः । यथापूर्वं सुखीकर्त्तुं त्वमेवार्हस्यतोहिनः

स्कन्द उवाच

इति सम्प्रार्थितो देवैर्भगवान्स दयानिधिः । उवाचानन्दयन्वाचामेघगम्भीरया सुरान्

श्रीभगवानुवाच

विदितं मे सुरा सर्वं कष्टं वः सदतिक्रमात् । उपायं कुरुताद्यैव वच्मि यत्तन्निवृत्तये
औषधीरम्बुधौ सर्वाः क्षिप्त्वामन्दरभूभृता । नागराजवरत्रेण मन्थध्वमसुरैः सह ॥

आदौ सन्धाय दनुजैः कुरुताऽम्बुधिमन्थनम् ।
साहाय्यं वःकरिष्यामि खेदःकार्यो न तत्र वः ॥ ३८ ॥
अमृतञ्च श्रियो दृष्टिं प्राप्य पूर्वाधिकौजसः ।
भवितारो मद्विमुखा दैत्यास्तु क्लेशभागिनः ॥ ३९ ॥

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुर्भक्तसङ्कटनाशनः ।

देवास्तस्मै नमस्कृत्य तदुक्तं कर्तुमारभन् ॥ ४० ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवासुदेवमाहात्म्ये श्रीवासुदेवप्रसादनिरूपणं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १०

एकादशोऽध्यायः

अमृतमन्थनेविषोत्पत्तिनिरूपणम्

स्कन्द उवाच

ब्रह्मरुद्रौ महेन्द्रादीन्सन्धानायाऽसुरैः सह । आज्ञाप्यजग्मतुः स्वंस्वंधामदेवास्तांमुने
समयोचितभाषाविद्वांसवोनीतियुक्तिभिः । प्रलोभ्यफलभागेनसन्धिंचक्रेऽसुरैः सह
ततो देवासुरगणा मिलिता वारिधेस्तटे । महौषधीरुपानीय वहुशो निदधुर्द्रुतम् ॥
मन्दराद्रिमुपेत्याऽथ नानौषधिविराजितम् । मूलादुत्पाट्य तेसर्वेनेतुमब्धिसमुद्यताः
एकादशसहस्राणियोजनानांभुविस्थितम् । नोद्धर्तुमशकंस्ते तं तदानींतुष्टुवुर्हरिम्
एतद्विदित्वा भगवान्सङ्कर्षणमहीश्वरम् । अजिज्ञपत्तमुद्धर्तुं वद्धमूलं महीधरम् ॥
फत्कारमात्रेणैवेन स तु सद्यस्तमीश्वरः । वहिश्चिक्षेप तत्स्थानाद्योजनद्वितयान्तरे
अत्याश्चर्यं तदालोक्य हृष्टाः सर्वे सुरासुराः । तदन्तिकमुपाजग्मुर्द्धावन्तश्चकृतारवाः
वलिनो यत्नवन्तोऽपि परिघोपमवाहवः । उद्धृत्यनेतुं नो शेकुर्विषण्णाविफलश्रमाः
ज्ञात्वा सुरगणान्खिन्नान्भगवान्सर्वदर्शनः । तार्क्ष्यमाज्ञापयामास नेतुं तमुदधिं द्रुतम्

सहावरणमप्यण्डं लीलया धर्तुमीश्वरः ।
मनोवेगः स तत्रेत्य निजत्रोट्यैव तं गिरिम्
उत्पाट्य सागरतटे निधाय हरिमाययौ ॥ ११ ॥

ततः संहृष्टमनसः सर्वे कश्यपनन्दनाः । वासुकिं चाऽऽह्वयामासुः सुधाभागप्रतिज्ञया

स तत्रागादथो सर्वे तेऽब्धिं मन्थितुमुद्यताः ।

तानपांनिधिरागत्य मूर्त्तिमानब्रवीद्वचः ॥ १३ ॥

यदि दास्यथ मे यूयममृतांशं सुरासुराः । सोढास्मि विपुलं तर्हि मन्दरभ्रमणार्द्दनम्
तथेति ते प्रतिज्ञाय क्षिप्त्वाद्यावोषधीलताः । परिविव्युर्नागराजंतस्मिन्काञ्चनपर्वते
ततो देवा हृदि हरिं सस्मरुः कार्यसिद्धये । स्मृतमात्रःसतत्राऽगादच्युतःसर्वदर्शनः
तमालोक्यामरगणा मुदिताःफणिनांपतेः । पुरोभागंगृहीत्वैवतस्थुस्तेनानुमोदिताः
देवतापक्षपातित्वं सूचयन्स्वस्य च प्रभुः । यत्रदेवास्तत्रतस्थौततोदैत्यास्तुचुक्रुधुः
तपोविद्यावयोज्येष्ठा अधोभागममङ्गलम् । कथं तिरश्चोगृह्णीमोनेदृङ्मूर्खावयंत्विति
सहदेवैस्ततोविष्णुःस्वयंतान्मानयन्निव । प्रहस्यदत्त्वाप्राग्भागंसुरान्पुच्छमजिग्रहत्
महाहिविषफूत्कारदाहादमररक्षणम् । चरित्रमेतच्छ्रीभर्तुरिति दैत्या न ते विदुः ॥

तत उत्तोलयामासुः स्वर्णसान्वालिभास्वरम् ।

मन्दरं काश्यपेयास्ते चर्मिका बद्धकच्छकाः ॥ २२ ॥

द्वाविंशतिसहस्राणि योजनानां तमुच्छ्रितम् ।

अम्भोनिधौ निदधिरे क्रोशन्तोऽत्यर्थमुत्सुकाः ॥ २३ ॥

धार्यमाणोप्यनाधारस्तैरद्रिरतिगौरवात् । ययावधस्तलंसद्यस्तदासंस्तेऽतिविह्वलाः
तदा स भगवान्साक्षात्सर्वथा भक्तकार्यकृत् । स्तूयमानोऽमरैरद्रिमुद्दध्रे कमठाकृतिः
उत्थितं तमवेक्ष्याशुसर्वे फुल्लहृदाननाः । बभूवुश्च स्थिरःसोऽभूत्कूर्मपृष्ठेतिविस्तृते

ततो ममन्थुस्तरसा यावद्बलमपांनिधिम् ।

श्रमफूत्कारवदना (म्लाना) देवादयोऽदयम् (देवादयोऽभवन्) ?॥ २७

भ्राम्यमाणात्ततस्त्वद्रेर्बहवोन्यपतन्द्रुमाः । ऊर्द्ध्वंद्रुघर्षजोवह्निस्तत्स्थसिंहादिमादहत्
तत्र नाना जलचरा विनिष्पिष्टा महाद्रिणा । विलयंसमुपाजग्मुःशतशः क्षीरवारिधौ
सांवर्त्तकमहामेघसङ्घगर्ज्जितवन्महान् । आसीन्मन्थननादश्च प्रतिध्वनिविवर्द्धितः
अत्याकर्षणखिन्नाङ्गवासुकेर्मुखफूत्कृतैः । हतौजसोऽतिखिन्नाश्चदैत्यानिङ्गालवद्बभुः
अविषह्यं विषाग्निश्च मर्षन्ति बहुधा मुहुः । लम्बन्तेस्माऽहिराजस्यसहस्रंवदनान्यधः
दधारसहसा तानि भगवत्प्रेरितो विभुः । सङ्कर्षणो महातेजाः सहमानो विषानलम्

सहस्रमेकं वर्षाणां मथ्यमानात्पयोनिधेः । हालाहलं विषमभूदुत्सर्पद्विदिशो दिशः
यदाहुः कालकूटाख्यं सर्वलोकातिदाहकम् । तेनदन्दह्यमानाङ्गास्ते तुचक्रुः पलायनम्
ततोब्रह्मप्रजेशाश्चदेवाःसर्वेऽप्युमापतिम् । प्रार्थयंस्तस्यपानार्थंस्तुवन्तःस्तुतिभिर्मुने
भगवानथतं प्राह सुराणामग्रजो भवान् । भवतीत्यग्रजं वादूर्ध्वैर्गृहाणेदं विषं शिव!

देवानां स भयं दृष्ट्वा करुणश्चाऽऽज्ञया हरेः ।
आकर्षद्योगकलया विषं प्राणितलेऽखिलम् ॥ ३८ ॥
पपौ तत्कण्ठमध्ये च शोषयामास तत्क्षणम् ।
नीलकण्ठ इति ख्यातः शङ्कराख्यश्च सोऽभवत् ॥ ३९ ॥
पास्यतस्तस्य पाणेर्ये पतिता भुवि विन्दवः ।
तान्नागा वृश्चिकाद्याश्च जगृहुः काश्चनौषधीः ॥ ४० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे श्रीवासुदेवमाहात्म्येऽमृतमन्थने विषोत्पत्तिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

अमृतमन्थनेचतुर्दशरत्नोत्पत्तिवर्णनम्

स्कन्द उवाच

ततोहृष्टाः काश्यपेया मन्थस्थानमुपेत्यते । पुनर्वर्षसहस्रंचमथ्नन्तिस्म पयोनिधिम्

मथ्यमानात्तथा सिन्धोः सर्वैस्तैरपि किञ्चन ।
नाऽऽसीच्च शिथिला आसन्मन्थितारः श्वसन्मुखाः ॥ २ ॥
वासुकिश्च महासर्पः प्राणवैक्लव्यमाप्तवान् ।
मन्थकाले मन्दरोऽपि नैकत्राऽऽसीत्स्थिरस्थितिः ॥ ३ ॥

सर्वान्दृष्ट्वा निरुत्साहान्प्रद्युम्नो विष्णवनुज्ञया । देवासुराहिराजेषु प्रविश्यबलमादधौ

अनिरुद्धोपि तत्रैव तमाक्रम्य नगाधिपम्। सहस्रबाहुभिस्तस्थौ महाचलइवाऽपरः
ततो ममन्थुस्तरसा सम्प्राप्तपरमौजसः। सविस्मया महाब्धिं ते सुरासुरगणामुदा
नारायणानुभावेन नाऽऽपुर्देवादयः श्रमम्। शुशुभे मन्थनं तच्च सममाकर्षणात्तदा ॥ ७
मथ्यमाने महाम्भोधौ सुस्रुवुःपरितस्तदा। महाद्रुमाणां निर्यासावहवश्चौषधीरसाः
तथाभूतादम्बुनिधेराविरासीत्कलानिधिः। कान्त्यौषधीनामध्यक्षःसर्वासांयउदीर्यते
ततो गवामधिष्ठात्री सर्वासामपि कामधुक्।
हविर्धान्यभवद्धेनुः शीतांशुसदृशद्युतिः ॥ १० ॥
अश्वः श्वेतोऽथाविरासीद्धयानामधिदेवता। ऐरावतश्चनागेन्द्रश्चतुर्दन्तः शशिप्रभः॥
पारिजातोदिव्यतरुस्तरुराजस्ततोऽभवत्। मणिरत्नं कौस्तुभाख्यं पद्मरागमभूत्ततः
ततोऽभवन्नप्सरसो रूपलावण्यभूमयः। सुरा देवी ततो जज्ञे सर्वमादकदेवता ॥१३॥
आसीदथ धनुःशार्ङ्गंसर्वशस्त्राधिदैवतम्। वाद्याधिदैवतंशङ्खः पाञ्चजन्यस्ततोऽभवत्
तत्र चन्द्रः पारिजातस्तथैवाप्सरसांगणः। आदित्यपथमाश्रित्यतस्थुरेतेतुतत्क्षणम्
वारुणीमश्वराजञ्च दैत्येशा जगृहुर्द्रुतम्। ऐरावतं देवराजो जग्राहानुमताद्धरेः ॥
कौस्तुभश्च धनुः शङ्खो विष्णुमेव प्रपेदिरे। हविर्धानींतु ते सर्वे तापसेभ्योददुस्तदा
मथ्यमानात्पुनः सिन्धोः साक्षाच्छ्रीरभवत्स्वयम्।
आनन्दयन्ती स्वदृशा त्रिलोकीं हतवर्चसम् ॥ १८ ॥
तां ग्रहीतुं तु सर्वेऽपिसुरासुरनरादयः। ऐच्छंस्तस्याः प्रतापात्त शेकेनेतुंनकश्चन
ततस्तां पद्महस्तत्वाच्छ्रीं विदित्वैव वासवः।
आनन्दं परमम्प्राप ब्रह्माद्या ये च तद्विदः ॥ २० ॥
तावत्तत्राम्बुधिःसाक्षादेत्यतांहैमआसने। कन्याममेयमित्युक्त्वागृहीत्वाङ्कउपाविशत्
पुनरब्धेर्मथ्यमानादधिकं बलिभिश्चतैः। सुधार्थिभिर्धैर्यवद्भिरपि नैवाऽभवत्सुधा ॥
तदा शिथिलयत्नास्ते निराशाअमृतोद्भवे। प्रम्लानवक्त्राःखिन्नाश्चबभूवुःकाश्यपामुने
दृष्ट्वातथाविधांस्तांश्चभगवान्करुणानिधिः। उद्युक्तोऽभूत्स्वयंब्रह्मन्मन्थनायहसन्विभुः
रत्नकाञ्चीदृढाबद्धकक्षपीताम्बरद्युतिः।

द्वाभ्यां द्वाभ्यामहिं मध्ये दोर्भ्यामुभयतोऽग्रहीत् ॥ २५ ॥

धृताऽहिवदना दैत्यास्तस्थुरेकत एवते । एकतोधृततत्पुच्छादेवास्तस्थुस्तदाखिलाः

तन्मध्यगश्च भगवान्ममन्थाऽब्धिंसलीलया । ददानो नयनानन्दंचश्चत्करविभूषणः

ब्रह्मामहर्षिप्रवरैरन्तरिक्षस्थितस्तदा । अवाकिरत्तं कुसुमैः कुर्वञ्जयजयध्वनिम् ॥२८

मथ्यमानात्ततः सिन्धोर्जज्ञे धन्वन्तरिः पुमान् ।

विष्णोरंशेन गौराङ्गः सुधाकुम्भं करे दधत् ॥ २९ ॥

घृतादीनांहिसर्वेषांरसानांसारमुत्तमम् । अमृतंतद्गृहीत्वाऽसौश्रियोन्तिकमुपाययौ

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवासुदेवमाहात्म्येऽमृतमन्थने चतुर्दशरत्नोत्पत्तिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

देवतामृतपानवर्णनम्

स्कन्द उवाच

उत्प्रेक्षन्तो जायमानं मन्थितारोऽथतेऽखिलाः ।

आयान्तं ददृशुर्दूरादन्ति धन्वन्तरिं श्रियः ॥ १ ॥

सुधाभृतं हेमकुम्भं दृष्ट्वां चाऽस्य करे धृतम् ।

असुराः सहसा ब्रह्मन्नुत्प्लुत्य जगृहुश्च तम् ॥ २ ॥

तत्रापि बलिनो ये ते गृहीत्वादुद्रुवुस्ततः । तान्दुर्बलान्न्यषेधन्तनीतिवाक्यैरुदुता:

अहो नैवमधर्मो वः कार्यो धर्मपरायणैः । समश्रमेभ्यो देवेभ्यो दत्त्वा पेयंनचान्यथा

अनादृत्येति तद्वाक्यं ययुर्दूरं त्वरान्विताः । तत्रापितेषामन्योन्यंकराकृष्टिर्महत्यभूत्

अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं न त्वंपिबाम्यहम् । इत्थं विवदमानास्तेनापुस्तत्प्राशनक्षणम्

अथ देवाम्लानवक्त्राद्दृष्ट्वादैत्यैर्हृतांसुधाम् । अशक्तास्तत्प्रतीकारेशरणम्प्रापुरच्युतम्
पाहिपाहि जगन्नाथ! नष्टं सर्वस्वमेव नः । दैत्यैर्हृता सुधासर्वाकागतिर्नोभविष्यति
सुधापानादृतेऽप्येते हन्तुमस्मानलं क्षमाः । पीतेऽमृते तु तैरद्य किं करिष्यामहेवयम्

स्कन्द उवाच

निशम्यदैन्यंदेवानांभगवान्भक्तकार्यकृत् । साभैष्टेतिसुरानुक्त्वासुधामादात्सदासुरात्
स्त्रीरूपमद्भुतं धृत्वा सर्वलोकविमोहनम् । दैत्यान्तिकमुपागत्य चक्रे कन्दुकखेलनम्
ते तु तद्रूपमालोक्यमोहिताःकामविह्वलाः । त्यक्त्वा परस्परोन्मर्दंतामुपेत्याब्रुवन्वचः
सुधाकुम्भमिमंभद्रेगृहीत्वात्वंविभज्य नः । सर्वान्पायय सुश्रोणि वयंकश्यपसूनवः

इत्युक्त्वा तं ददुस्तस्यै तेऽनिच्छन्त्या अपि स्त्रियै ।
सा प्राह मम विश्रम्भो न कार्यः स्वैरिणी ह्यहम् ॥ १४ ॥

अकार्यंवःकृतं ह्येतद्विभजिष्येनिजेच्छया । इत्युक्त्वाअपिते मूढा यथेष्टंकुर्विति ब्रुवन्
ततस्तदाज्ञयासर्वेदेवादैत्याश्चवासुकिः । निषेदुःपङ्क्तिशस्तत्रस्वस्वमण्डलमाश्रिताः
पङ्क्तिबन्धोद्यतेष्वेषु मोहिनीसातुदूरतः । सम्मुखं देवपङ्क्तीनांहैमासनउपाविशत्

स्वान्तिके चाऽमृतघटं निधाय स्त्रैणलीलया ।
इतस्ततो वीक्षमाणा तस्थौ निःस्पृहवत्क्षणम् ॥ १८ ॥
विप्रचित्तिमुखास्तर्हि ये वै दानवयूथपाः ।
सन्दिग्धचित्ता मोहिन्यामासन्देवान्तिकस्थितेः ॥ १६ ॥

शनैरुपेत्यतद्दृष्टिंवञ्चयित्वा सुधाघटम् । जह्नुःपुनर्दुरात्मानो रहोगत्वापिपासवः ॥
नरनारायणौ तत्रमुनिभिः सहचागतौ । आस्तां तौददृशातेतान्दानवान्हरतोऽमृतम्
नारायणेनेरितोऽथनरस्तान्सहसाऽरुणत् । बलादाच्छिद्यतत्कुम्भंमोहिन्यैसददौद्रुतम्
ततोनरंहन्तुकामाआत्तशस्त्रास्तुदानवाः । आपतन्पङ्क्तिविक्षेपोह्यसुराणामभून्महान्
तदा नरोऽपि भगवान्देवदैत्यनरैरपि । अजेयो निर्भयो ह्येकः साकं तैर्युयुधे बली

एतस्मिन्नन्तरे देवान्पङ्क्तिस्थान्मोहिनीवपुः ।
अपाययत्सुधां विष्णुः सर्वशो लघुचङ्क्रमः ॥ २५ ॥

तत्रापि दानवो राहुः सूर्याचन्द्रमसाऽन्तरे। प्रविश्य देवतापङ्क्तावुपाविशदलक्षितः
तत्राऽऽगतायां मोहिन्यां सिञ्चन्त्यां तन्मुखे सुधाम्।
दृशाऽसूसुचता तस्यै पुष्पवन्तावुभौ च तम् ॥ २७ ॥
स्मृत्यागतेनचक्रेणतद्ग्रीवाऽस्यचसामृतम्। शिरश्चिच्छेदातिमहन्मायायोषिद्वपुःप्रभुः
तच्छैलशृङ्गप्रतिमं ग्रसल्लोकान्नदद्भृशम्। ग्रहत्वेस्थापयामास लोकानांशान्तयेहरिः
देवान्सुधां पाययित्वा जगृहे पौरुषींतनुम्। भगवानथ देवास्तु युयुधुः सहदानवैः
उदन्वतस्तटे युद्धं देवानामसुरैः सह। सुधापानातिबलिनामासीद्विष्णुसहायिनाम्
तस्मिंस्तु तुमुलेयुद्धेनरेणेन्द्रादिभिश्चते। निहन्यमानाअसुराः पलाय्य विविशूरसाम्
सूर्यश्चास्तं गतस्तावत्सर्वे देवगणास्ततः।
श्रियोऽन्तिकमुपाजग्मुस्तद्दर्शनमहोत्सवाः॥ ३३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे-
श्रीवासुदेवमाहात्म्ये देवतामृतपानवर्णनं नाम
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

लक्ष्मीनारायणविवाहोत्सववर्णनम्

स्कन्द उवाच

ब्रह्मा प्रजेश्वराः शम्भुर्मनवश्च महर्षयः। आदित्यवसुरुद्राश्च सिद्धगन्धर्वचारणाः ॥१॥
साध्याश्च मरुतश्चैवविश्वदेवादिगीश्वराः। दस्रौवह्निश्चन्द्रमाश्च स्वयं धर्मःप्रजापतिः
सुपर्णः किन्नराश्चैव ये चान्ये गणदेवताः। शेषाद्या वैष्णवानागा देवपत्न्यश्चसर्वशः
सावित्री पार्वती चैव पृथिवी च सरस्वती।
शची गौरी शिवा सन्ध्या ऋद्धिः स्वाहा च रोहिणी॥

धूमोर्णा चादितिर्द्धर्मपत्न्यो मूर्तिंदथादयः ॥ ४ ॥
अरुन्धती शाण्डिलीच लोपामुद्रातथैवच । अनसूयादयः साध्व्यऋषिपत्न्यश्चसर्वशः
गङ्गा सरस्वती रेवा यमुना तपती तथा । चन्द्रभागा विपाशाच शतद्रुर्देविका तथा
गोदावरी च सरयूःकावेरीकौशिकीतथा । कृष्णा वेणी भीमरथी ताम्रपर्णीमहानदी
कृतमाला वितस्ता च निर्विन्ध्या सुरसा तथा ।
चर्मण्वती पयोष्णी च विश्वाद्या नद्य आययुः ॥ ८ ॥
रम्भा घृताची विश्वाची मेनका चतिलोत्तमा । उर्वशीप्रमुखास्तत्रसर्वाप्सरसआययुः
वैकुण्ठवासिनः सर्वे तथा गोलोकवासिनः । पार्षदप्रवराविष्णोस्तत्राजग्मुःप्रहर्षिताः
अणिमाद्याः सिद्धयोऽष्टौ शङ्खपद्मादयो नव ।
निधयो मूर्तिमन्तश्च समाजग्मुः श्रियोऽन्तिके ॥ ११ ॥
पूर्णः शारदचन्द्रोपि तदानीं प्रीतये श्रियाः । नैशं तमोऽहरत्सर्वं वभूवुर्निर्मलादिशः ॥
ततोऽभिषेकमारेभे तस्या ब्रह्माज्ञया वृषा । मण्डपं रचयामाससद्यस्त्वष्टातिशोभनम्
रत्नस्तम्भसहस्राणामायताभिश्च पङ्क्तिभिः ।
चित्रैरनेकैरुल्लोचैः शोभितं कदलीद्रुमैः ॥ १४ ॥
सुगन्धिपुष्पनम्राभिर्दिव्यकल्पद्रुमालिभिः । जुष्टं नानाविधैरङ्गैर्दर्शनीयं मनोहरम् ॥
कोटिशो रत्नदीपानां पङ्क्तिभिः शुद्धरोचिषाम् ।
भ्राजमानं तोरणैश्च मुक्ताहारैश्च लम्बिभिः ॥ १६ ॥
रत्नसिंहासने तत्र गीतवाद्यपुरस्सरम् । उपावेश्य श्रियं चक्रुरभिषेकं महर्षयः ॥१७
ऐरावतः पुण्डरीको वामनो कुमुदोऽञ्जनः ।
पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ॥ १८ ॥
कुर्वन्तोवृंहितान्येतेहेमकुम्भोद्धृतैःशुभैः । चतुःसिन्धुसमानीतैरभ्यषिञ्चन्तवारिभिः
मूर्तिमत्यो महानद्यस्तत्राजह्रुर्जलानि च । मन्त्रानुच्चारयन्तिस्म मूर्तावेदाःसहर्षिभिः
जगुः सुकण्ठा गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः । वाद्यानिवादयामासुरन्येदेवगणास्तदा
महानभूत्तदानन्दस्त्रिलोक्यां सर्वदेहिनाम् । श्रीसूक्तादिद्विजापेठुर्जगुर्गीतानिचस्त्रियः

कांस्यतालमृदङ्गांश्च पणवानकगोमुखान् । वादयामासुरम्भोदादिविंदुन्दुभयोऽनदन्
आसीत्कुसुमवृष्टिश्च साकंजयरवैस्तदा । आसंस्तत्परिचर्यायांधर्मपत्न्यश्च सिद्धयः
सुस्नातायै ततस्तस्यै कौशेये पीतवाससी । ददावनर्घ्ये जलधी रत्नभूषाश्च भूरिशः
उपवेशोचितं तस्या इन्द्र आसनमाहरत् । विश्वकर्मा कङ्कणानि ददौ सद्रत्नमुद्रिकाः

सुधाकरस्तु तद्भ्राता नासाभूषणमुत्तमम् ।
ददौ तस्यै केशभूषां सद्रत्ननिचितां तथा ॥ २९ ॥

पद्मजन्मा ददौ पद्मं मुक्ताहारं सरस्वती । नागाश्च शेषप्रमुखास्तस्यै रत्नेन्द्रकुण्डले

अञ्जनं कुङ्कुमं चाऽदाद् दुर्गा सौभाग्यलक्षणम् ।
ललाटिकाञ्च सावित्री शची ताम्बूलपात्रिकाम् ॥ ३६ ॥

वसन्तः कौसुमान्हारान्कण्ठसूत्रञ्च शङ्करः । वैजयन्तीं स्रजं पाशी कुबेरो रत्नदर्पणम्

अनर्घ्यां कञ्चुकीं वह्निर्यमोऽदाद् व्यजनं शुभम् ।
ददुस्तस्यै चाऽपरेऽपि भूषास्तत्समयोचिताः ॥ ३१ ॥
ततः स्वलङ्कृतां कन्यां कस्मैदद्यामिमामिति ।
सिन्धुः पप्रच्छ ब्रह्माणं तदोवाच स सर्ववित् ॥ ३२ ॥

कन्यातवेयमम्भोधे! मातामम शिवस्य च । देवानामथसर्वेषांलोकानामस्तिनिश्चितम्
नारायणं वासुदेवं परं ब्रह्माखिलेश्वरम् । पुरुषोत्तममेवंकं विनाऽस्याः नाऽपरः पतिः
अतः साक्षाद्भगवते त्रैलोक्यसुखहेतवे । आगतायोपविष्टाय देह्यस्मै विधिनाऽम्बुधे
कुरुष्व जन्मसाफल्यं पावयित्वा निजंकुलम् । समुद्धर भवाम्भोधेर्देह्येमांपरमात्मने
एकस्त्वंसप्तभीरूपैःसप्तद्वीपविभागतः । विश्रुतोऽथविधायैतन्महतींकीर्त्तिमाप्स्यसि

इत्युक्तो ब्रह्मणा हृष्टः समुद्रः पुलकाञ्चितः ।
मन्यमानो निजं धन्यमदित्सद्विष्णवे सुताम् ॥ ३८ ॥

ततःसहैवविधिनासमभ्यर्थ्यतमीश्वरम् । वाग्दानादिविधायंवचक्रेवैवाहिकंविधिम्
धन्वन्तरिश्चन्द्रमाश्च वासवाद्याश्चदेवताः । आसन्समुद्रस्यपक्षे तत्र वैवाहिकोत्सवे
वस्त्राभरणयानादिदाने भोजनकर्मणि । सम्माने च जन्यानां मुख्या आसंस्तएवहि

लक्ष्म्याश्च माङ्गल्यविधौ मुख्यास्तत्र तु योषितः ।
आसन्गङ्गादयो नद्यः शच्याद्याश्च सुराङ्गनाः ॥ ४२ ॥

मेनाद्यानगपत्न्यश्चसिद्धयश्चाणिमादयः । चन्द्रपत्नीतथाकान्तिःसर्वाश्चाप्सरसोमुने

नारायणस्याथ विभोर्लीलां वैवाहिकीं विधिः ।
शोभयन्पितरौ चक्रे मूर्तिधर्मौ विचार्य च ॥ ४४ ॥
धर्मोऽसौ जगदाधारः पूज्यश्चाखिलदेहिनाम् ।
पिताऽस्य भवितुं योग्यो ह्यस्मिंश्च प्रीतिमान्भृशम् ॥ ४५ ॥

इयञ्च मूर्त्तिःप्रख्यातासर्वसद्गुणजन्मभूः । दाक्षायणीधर्मपत्नी माता भवितुमर्हति
ततोधर्मस्याऽपिपक्षेमुख्याःकार्येष्विमेऽभवन् । नन्दीश्वरगणेशाभ्यांसहितःशङ्करोमुने
महर्षयो मरीच्याद्याः प्रजेशा नारदो मुनिः । वैनतेयश्च नन्दाद्याःश्रीदामाद्याश्चपार्षदाः
दुर्गा च वेदसूर्वाणी स्त्रीषुमुख्यावभूविरे । ऋषिपत्न्योऽनसूयाद्याधर्मपत्न्यश्चसर्वशः
सह वेदादिभिर्ब्रह्मा त्वासीदुभयपक्षयोः । ब्राह्मणावैदिकाये चविवाहविधिकोविदाः
अथाऽब्धिःसर्वसम्भाराञ्छ्रियाएवप्रसादतः । सद्यःसम्पादयामासजनयन्देवविस्मयम्
यद्यत्सङ्कल्पयामास हृदि तत्तदुपाहृतम् । सद्यः स्वान्तिक एवेक्षत्ततोऽभूदतिहर्षितः
मध्येतुमण्डपस्यासावग्निस्थापनवेदिकाम् । कारयामासविधिवद्ब्राह्मणैर्वेदवेदिभिः
अलञ्चकार तां वेदिंगन्धपुष्पाक्षतादिभिः । नानाविधैःशुभैः रङ्गैः साङ्कुरैः करकैस्तथा

ततो महामङ्गलवाद्यघोषैः समन्त्रकं संस्नपितो मुनीन्द्रैः ।
अनर्घ्यवासांसि च रत्नभूषा दधार विष्णुर्मुकुटञ्च दिव्यम् ॥ ५५ ॥
वादित्रनिध्वाननिनादिताशं नृत्यत्सुरस्त्रीकलगीतशोभनम् ।
तं मण्डपं सोऽथ सुरैः स्तुवद्भिः सहेत्य हैमे निषसाद पीठे ॥ ५६ ॥
प्रक्षालयामास तदङ्घ्रिपङ्कजं स्वप्रेष्ठपत्न्या जलधिः सगङ्गया ।
भृङ्गारसिक्तोत्तमवारिधारया तदम्बु शीर्ष्णा च दधार साऽन्वयः ॥ ५७ ॥
ततः पठन्मङ्गलमुच्चकैः श्रियं प्रादापयच्चाम्बुधिनाऽच्युताय ।
प्रज्वाल्य वह्निं विधिना विधाता साकं बृहद्भिर्मुनिभिर्जुहाव ॥ ५८ ॥

प्रदाय तस्मै तनयां मनोज्ञां तत्पादपद्मैकनिबद्धदृष्टिम् ।
वासांसि रत्नाभरणानि चाऽदाद् भूयांसि भूम्ने स समं दुहित्रा ॥ ५९ ॥
हुतस्य तस्याऽथ हुताशनस्य प्रदक्षिणाश्चापि सह श्रियैव ।
चकार चेतांसि निजेक्षकाणां स्त्रीणाञ्च पुंसां च हरन्हरिः सः ॥ ६० ॥
एकासने तौ सह सन्निविष्टौ ब्रह्माण्डमातापितरौ मनोज्ञौ ।
सम्पूजयामासुरनर्घ्यवस्त्रविभूषणैर्दैवगणाः सयोषाः ॥ ६१ ॥
तदा च गीतानि सुमङ्गलानि श्रियश्च विष्णोर्गुणवर्णनानि ।
दुर्गादयश्चाऽथ पुलोमजाद्या देव्यो जगुः सस्मितचारुवक्त्रा ॥ ६२ ॥
द्विधा विभक्तानि सुराङ्गनानां वृन्दान्युपाविश्य च सम्मुखानि ।
तद्दम्पतिप्रेक्षणकौतुकानि तदा जगुः प्रेमभरेण तानि ॥ ६३ ॥
यथा तदाकर्ण्य सुराः समस्ता महर्षयश्चाऽखिलयोषितोऽपि ।
स्वान्तस्तमैक्षन्त सह श्रियेशं स्फुरन्तमासन्ननु चित्रवच्च ॥ ६४ ॥
प्रणम्य भक्त्या च वराक्षतादि समर्प्य ताभ्यां विबुधा मुदैव ।
पृथक्पृथक्तुष्टुवुरूर्जिताभिर्वाग्भिश्च तौ प्राञ्जलयो विनीताः ॥ ६५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवासुदेवमाहात्म्ये लक्ष्मीनारायणविवाहोत्सवनिरूपणं नाम
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

ब्रह्मादिदेवकृतालक्ष्मीनारायणस्तुतिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विचार्य्याऽहं वेदान्मुहुरुपगतो निश्चयमिमं
रमारामे भक्तिस्त्वयिदृढतरा यर्ह्यसुभृताम् ।
भवेत्तर्ह्येवैषां क्षयविरहिता भोगनिकरा-
स्तथास्युर्लोका वै परमपुरुषाऽऽत्यन्तिकगतिः ॥ १ ॥
अजानन्तस्त्वित्थं भूतरजतमस्कानपि हरे!
भजन्त्यस्मान्देवावहुविधतपोर्चासरणिभिः। तपवोक्तामूढाःक्षयरहितसौख्यंनकुहचि
लुभन्तेऽतस्त्वां वै निजहृदि दधे केशवमहम् ॥ २ ॥

शङ्कर उवाच

त्रयी सांख्यवेदान्तयोगाः पुराणं तथा पञ्चरात्रं प्रभो! धर्मशास्त्रम् ।
तवैवाऽतिमाहात्म्यमेकस्य नित्यं प्रकारैरनेकैर्हि गायन्ति भक्त्या ॥ ३ ॥
त्वदेवेश शास्त्राणि चैतानि भूम्नो वभूवुस्त्वदेकाश्रयाण्यादिकल्पे ।
रमासेव्यपादाम्बुजं शास्त्रयोनिं तमाद्यं भवन्तं भजे वासुदेवम् ॥ ४ ॥

धर्म उवाच

कथा त्वदीया भवपाशमोचनी सुधेव तापत्रयतप्तदेहिनाम् ।
अनेकजन्माघचयापहारिणी तनोति भक्तिं वयुनं तवाऽञ्जसा ॥ ५ ॥
सदैव सा कर्णपथेन हृद्दरीं विशत्वनन्ताभिध सम्मुखोद्गता ।
मम त्वदन्या हरताच्च वासना दयाब्धये ते प्रभविष्णवे नमः ॥ ६ ॥

प्रजापतय ऊचुः

धन्या एते कल्पवृक्षा यदीयां छायामेतामाश्रितास्त्वं सहश्रीः ।

धन्यः कर्ता मण्डपस्याऽस्य ते वै धन्यैषा भूर्यत्र पीठं तवेश! ॥ ७ ॥
धन्यो लोके नूनमेषोऽम्बुराशिः साक्षात्तुभ्यं येन दत्ता स्वकन्या ।
धन्याश्चैते त्वां वयं वीक्षमाणा धन्येशानं श्रीपतिं त्वां नताः स्मः ॥ ८ ॥

मनव ऊचुः

धर्मः खलु स हि परमो धर्मेभ्यो माधव सकलेभ्योऽपि ।
भक्तिर्भवति यतो वै धर्मभुवि त्वयि हि निरवद्या ॥ ९ ॥
धर्मात्मानं भगवन्धर्मधुरीणं च धर्मपातारम् ।
सर्वातिप्रियधर्मं नुमस्त्वां धर्मसम्भूतिम् ॥ १० ॥

ऋषय ऊचुः

भक्त्या हीनस्त्वद्विमुखो वयुनार्थी श्राम्यन्भूयोऽप्यस्य नसिद्धिं समुपैति ।
तर्ह्याऽऽसक्तः कर्मणि काम्ये तु कुतोऽसौ सौख्यं यायादक्षयमानन्दमहाब्धे ॥११॥
भक्त्या नित्यं त्वामत एव वयं वै श्रद्धायुक्ता धर्मतपोनिगमाद्यैः ।
मायातीतं कालनियन्तारमुदारं ध्यायामः श्रीकान्तपरात्परमेकम् ॥ १२ ॥

इन्द्र उवाच

भगवन्नुरुदुःखिता वयं ननु दुर्वाससस एव हेलनात् ।
न भवन्तमृतेऽवितुं हि नो विधिरुद्रप्रमुखा इमेऽशकन् ॥ १३ ॥
विगताखिलसम्पदो निरन्नाः समभावं भुवि पामरैरुपेताः ।
भवतैव वयं हृतापदः स्मः सपदि श्रीहरये नमोऽस्तु तुभ्यम् ॥ १४ ॥

अग्निरुवाच

गीर्वाणदानवनराद्युपजीवनान्नं यन्निर्मितं हि भवतैव ततो बुधास्तु ।
यज्ञेषु तेन यजनं तव कुर्वतेऽथो त्वच्छेषमन्यदिविषद्भ्य उपानयन्ति ॥१५॥
काम्येषु कर्मसु रता अपि याज्ञिकास्ते तत्कर्मबन्धनत आशु विमुच्य यान्ति ।
ब्राह्मीं गतिं तदितरे तु भवन्ति चौराः
श्रीयज्ञपूरुषमहं प्रणमामि तं त्वाम् ॥१६

मरुत ऊचुः

भक्ता एकान्तिकास्तेऽक्षरपरमपदे सेवया ते तुहीनं

वःसैश्वर्यादि नेच्छन्त्यतिशयितसुखं नाऽपि कैवल्यमोक्षम् ।

तद्युक्तं त्वात्मनोऽपि श्वपचकुलजनुर्मानयन्त्युत्तमं वै

तं त्वामेकान्तधर्माश्रयणमुपगताः श्रीमहापूरुषं स्मः ॥ १७ ॥

सिद्धा ऊचुः

नैकब्रह्माण्डसर्गादिकारणं त्वामकारणम् । तत्स्थं तद्व्यतिरिक्तं चनियन्तारंनमामहे

रुद्रा ऊचुः

माय्यया सर्वमोहिन्यामोहनंमोहवर्जितम् । महाकालस्याऽपि कालंत्वांनमःपुरुषोत्तमम्

आदित्या ऊचुः

प्रकाशिता येन वयं जगन्ति प्रकाशयामो भवता रमेश! ।

स्वयं प्रकाशं तमुरुप्रकाशं प्रकाशमूर्त्ति प्रणता भवन्तम् ॥ २० ॥

साध्या ऊचुः

शास्ता नृपाणाञ्च महोरगाणां दैत्याधिपानाञ्च सुराधिपानाम् ।

त्वं वै मनूनाञ्च प्रजापतीनां राजाधिराजाय नमोऽस्तु तुभ्यम् ॥ २१ ॥

वसव ऊचुः

भवति भुवि यदा यदाऽसुरांशैः प्रथितसनातनधर्मधार्मिकाणाम् ।

कदनमुरु तदातदा स्वयं ते ह्यवतरते प्रणमाम धर्मगोप्त्रे ॥ २२ ॥

चारणा ऊचुः

चरित्रं शुभं ते धृतानेकमूर्त्तेः प्रबन्धैरनेकैर्हि गायन्ति भक्ताः ।

यदु श्रोतृवक्तृन्पुनात्येव सद्यो वयं तं नताः पुण्यकीर्त्ति भवन्तम् ॥ २३॥

गन्धर्वाप्सरस ऊचुः

ये कथास्ते विहायाऽन्यगाथाः प्रभो! कीर्त्तयन्तेऽथ श्रृण्वन्ति वा ते जनाः ।

दुःखिताः स्युश्च संसारपाशैः सितास्तं नताः स्मः शरण्यं भवन्तं वयम् ॥२४॥

समुद्र उवाच

अजित तवाऽथ तावकजनस्य मुदा-
ऽल्पमपि द्रविणजलान्नवस्त्रनमनान्यतमेन सकृत् ।
चरति ह सेवनं स पदवीं महतीं महतां व्रजति जनोऽल्पकोपितमहंप्रणतःकरुणम्

पार्षदा ऊचुः

पितरौ त्वमसि स्वजनस्त्वमसि त्वमसीष्टगुरुः सुहृदात्मपतिः ।
त्वमसाश्वर एव च नः परमस्त्वमसि द्रविणं सकलं त्वमसि ॥ २६ ॥

मूर्त्तिरुवाच

यत्सम्बन्धत एव यान्ति पदवीमुच्चां महद्भिर्नुतां
स्त्रीशूद्रासुरनीचपक्षिपशवः पापात्मजीवा अपि ।
तद्धीना विबुधेश्वरा अपि भवन्त्यर्चोज्झितास्तत्क्षणं
गोलोकाधिपतिं तमेव हृदये नित्यं भजे त्वामहम् ॥ २७ ॥

सावित्र्युवाच

त्वं सर्गकाले प्रकृतिश्च पूरुषं दृष्ट्या स्वयोत्थाप्य ततस्तदात्मना ।
तत्त्वानि सृष्ट्वा महदादिमानितैर्नैकान्विराजो बहुधा समर्जिथ ॥ २८ ॥
वैराजरूपेण जगद्विधातृतां स्वीकृत्य देवासुरमानुषोरगान् ।
त्वं स्थावरं जङ्गममीश! निर्ममे त्वामादिकर्तारमुपाश्रिताऽस्म्यहम् ॥ २९ ॥

दुर्गोवाच

प्रियतयाऽधिकया हृदि चिन्तनं विदधते तव ये भुवि ते विभो! ।
न परमेष्ठिसुखं न दिवः सुखं न कमयन्ति धरैकनरेशताम् ॥ ३० ॥
प्रसभमर्पितमप्यतुलं त्वया सुखमिदं समवाप्य च तत्र ते ।
तदपहाय न शक्तिकृतः क्षणं तमु नमामि च सात्वतनायकम् ॥ ३१ ॥

नद्य ऊचुः

वरद! नमनमात्रं नामसंकीर्तनं वा विदधति तव ये वै ज्ञानतोऽज्ञानतो वा ।

जनिमृतियमभीतेस्तानपि त्रायमाणं नरसखमुपयाताः स्मोऽद्य नारायणं त्वाम्

देवपत्न्य ऊचुः

भुवि धृताकृतेर्जन्म मङ्गलं चरितमद्भुतं लोकपावनम् ।
भवति निर्गुणं सर्वमेव ते भवसि निर्गुणं ब्रह्म यत्परम् ॥ ३३ ॥
तव समाश्रयात्तामसा जना अपि च राजसाः सात्त्विकाश्च ये ।
ननु भवन्ति ते निर्गुणास्ततो वयमुपास्महे त्वां हि निर्गुणम् ॥ ३४ ॥

ऋषिपत्न्य ऊचुः

आर्तानामुरुवृजिनैस्त्रिधा च तापैः सर्वापत्प्रशमनमेकमेश विष्णोः ।
पादाब्जं तव भवतीति तद्वयं वै प्राप्ताः स्मः शरणमनन्त देवदेव! ॥ ३५ ॥

पृथिव्युवाच

पूर्णशारदसुधाकराननं शारदाब्जदलदीर्घलोचनम् ।
श्रीवियोगवद्भुधार्तिमोचनं वासुदेवमहमेकमाश्रये ॥ ३६ ॥

सरस्वत्युवाच

नयने ममाच्युत तवाऽतिसुन्दरे मुखशीतरोचिषि चकोरतां गते ।
न हि गच्छतोऽन्यत इतीयमेव मे हृदि मूर्तिरस्तु सततं नहीतरा ॥ ३७ ॥

स्कन्द उवाच

इति स्तुतोऽखिलैर्देवैः सोऽभिनन्द्य दृशैव तान् ।
प्राह श्रियं शुभे! पश्य देवादींस्त्वमिमानिति ॥ ३८ ॥

ततःसमीक्षिताःप्रीत्यातथामधुरयादृशा । त्रिलोकीवासिनः सर्वेऋद्धाआसन्यथापुरा
लेभिरेस्वस्वऋद्धिंतेगृहिणस्त्यागिनोऽपिच । धर्मादयश्चसानन्दंप्रचरन्तिस्मपूर्ववत्

तस्याः श्रियश्च भगवान्ददौ स्थानमुरः स्वकम् ।
तत्र स्थित्वैव सा व्यापत्त्रैलोक्यं सम्पदात्मना ॥ ४१ ॥

ततो रत्नाकरः स्वस्माच्छ्रीजनेरनुभावतः । बभूवान्वर्थसञ्ज्ञो वैसम्पूर्णक्षयरत्नवान् ॥
चतुर्विधैर्वेबुरसैः संवत्तैरमृतोपमैः । सर्वान्समागतांस्तत्र तर्पयामास सादरम् ॥ ४२

अनर्घ्याणि च वस्त्राणि रत्नभूषाः परिच्छदान् ।
देवादिभ्यो ददौ प्रीत्या सर्वेभ्योऽपि पृथक्पृथक् ॥ ४४ ॥
जामातुस्तुष्टयेस्वस्यतदीयेभ्यस्तदाम्बुधेः । नाऽऽसीत्किमप्यदेयस्वैघनवद्धनवर्षिणः
भगवानपि तद्दत्तं यौतकञ्च धनं बहु । ब्राह्मणेभ्यः प्रदायैव श्रिया सह तिरोदधे॥
लक्ष्मीनारायणाभ्यांतेभृशमानन्दिताःसुराः । इन्द्रादयोदिवंजग्मुःस्वंस्वंधामाऽपरेययुः
अधिकारञ्च सम्प्राप्य यथापूर्वंनिजंनिजम् । सर्वेऽपिसुखिनोजाताप्रसादात्कमलापतेः
मन्दरञ्च गिरिं तार्क्ष्यः पुनर्भगवदाज्ञया । स्वस्थानं समुपानीय स्थापयामास लीलया
एवमिन्द्रेण ब्रह्मर्षे! नष्टा ब्राह्मणशापतः । उपलब्धा पुनः सम्पन्नारायणप्रसादतः ॥५०
य एतां शृणुयात्पुण्यां कथांभगवतोमुने! । कीर्तयेत्प्रयतोवापिसम्पदंप्राप्नुवोहितौ
गृहिणां धनसिद्धिः स्यात्त्यागिनाञ्च यथेप्सिता ।
भक्तिज्ञानविरागादेर्भवेत्सिद्धिरनेन वै । ॥ ५२ ॥
इति ते कथितं ब्रह्मन्यथेन्द्रः प्राप सम्पदम् । नारदोऽपि यथाश्वेतं द्वीपंसगतवानृषिः
तत्ते सर्वं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकेन चेतसा ॥ ५३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवासुदेवमाहात्म्ये लक्ष्मीनारायणस्तुतिनिरूपणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

गोलोकवर्णनम्

स्कन्द उवाच

मेरुशृङ्गं समारूढो नारदो दिव्यया दृशा । श्वेतद्वीपञ्चतत्रस्थान्पश्यन्मुक्तान्सहस्रशः
वासुदेवे भगवति दृष्टिमाबध्य तत्क्षणम् । । उत्पपात महायोगीसद्यःप्रापचधामतत्

प्राप्यश्वेतं महाद्वीपं नारदो हृष्टमानसः। ददर्श भक्तांस्तानेव श्वेतांश्चन्द्रप्रभाञ्छुभान्
पूजयामास शिरसा मनसा तैश्च पूजितः। दिदृक्षुर्ब्रह्म परमंसच कृच्छ्रपरः स्थितः
भक्तमेकान्तिकं विष्णोर्बुद्ध्वाभागवतास्तु ते। तमूचुस्तुष्टमनसोजपन्तंद्वादशाक्षरम्

श्वेतमुक्ता ऊचुः

मुनिवर्य! भवान्भक्तः कृष्णस्याऽस्ति यतोऽत्र नः।
दृष्टवान्देवदुर्दृश्यान्किमिच्छन्नथ तप्यति॥ ६॥

नारद उवाच

भगवन्तंपरं ब्रह्मसाक्षात्कृष्णमहंप्रभुम्। द्रष्टुमुत्कोऽस्मिभक्तेन्द्रास्तंदर्शयततत्प्रियाः

स्कन्द उवाच

तदैकः श्वेतमुक्तस्तु कृष्णेन प्रेरितो हृदि। एहितेदर्शयेकृष्णमित्युक्त्वापुरतोऽभवत्
प्रहृष्टो नारदस्तेन साकमाकाशवर्त्मना। पश्यन्धामानि देवानां तत उर्ध्वं ययौमुनिः
सप्तर्षीं श्चध्रुवं दृष्ट्वाऽनासक्तः कुत्रचित्स च। महर्जनतपोलोकान्व्यतीयाय द्विजोत्तम!
ब्रह्मलोकं ततोदृष्ट्वाश्वेतमुक्तानुगोमुनिः। कृष्णस्यैवेच्छयाऽध्वानंप्रापाऽष्टावरणेष्वपि
भूम्यप्तेजोनिलाकाऽऽशाऽहम्महत्प्रकृतीः क्रमात्।
क्रान्त्वा दशोत्तरगुणाः प्राप गोलोकमद्भुतम्॥ १२॥
धामतेजोमयं तद्धि प्राप्यमेकान्तिकैर्हरेः। गच्छन्ददर्शविततामगाधां विरजांनदीम्
गोपीगोपगणस्नानधौतचन्दनसौरभाम्। पुण्डरीकैः कोकनदैं रम्यामिन्दीवरैरपि॥
तस्यास्तटं मनोहारि स्फटिकाश्ममयंमहत्। प्रापश्वेतहरिद्रक्तपीतसन्मणिराजितम्
कल्पवृक्षालिभिर्ज्जुष्टं प्रवालाङ्कुरशोभितम्।
स्यमन्तकेन्द्रनीलादिमणीनां खनिमण्डितम्॥ १६॥
नानामणीन्द्रनिचितसोपानततिशोभनम्। कूजद्भिर्मधुरं जुष्टं हंसकारण्डवादिभिः॥
वृन्दैःकामदुघानाञ्चगजेन्द्राणाञ्चवाजिनाम्। पिबद्भिर्निर्मलं तोयं राजितंसव्यतिक्रमत्
उत्तीर्याऽथ धुनीं दिव्यांतत्क्षणादीश्वरेच्छया। तद्धामपरिखाभूतंशतशृङ्गागमापसः
हिरण्मयंदर्शनीयं कोटियोजनमुच्छ्रितम्। विस्तारेदशकोट्यस्तुयोजनानांमनोहरम्

सहस्रशः कल्पवृक्षैः पारिजातादिभिर्द्रुमैः । मल्लिकायूथिकाभिश्चलवङ्गैलालतादिभिः
स्वर्णरम्भादिभिश्चान्यैःशोभमानंमहीरुहैः । दिव्यैर्मृगगणैर्नागैःपक्षिभिश्चसुकूजितैः
दुर्गायितस्य तद्धाम्नस्तस्य रम्येषु सानुषु ।
मनोज्ञान्विततानैश्चद्भगवद्रासमण्डपान् ॥ २३ ॥
वृतानुद्यानततिभिः फुल्लपुष्पसुगन्धिभिः । कपाटै रत्ननिचितैश्चतुर्द्वारसुशोभनान् ॥
चित्रतोरणसम्पन्नै रत्नस्तम्भैः सहस्रशः । जुष्टांश्चकदलीस्तम्भैर्मुक्तालम्बैर्वितानकैः
दूर्वालाजाक्षतफलैर्युक्तान्माङ्गलिकैरपि । चन्दनाऽगुरुकस्तूरीकेशरोक्षितचत्वरान् ॥
सुश्राव्यवाद्यनिनदैर्हृद्यान्बहुविधैरपि । तेषु यूथानि गोपीनां कोटिशः स ददर्श ह ॥
अनर्घ्यवासोभूषाभिः सद्रत्नमणिकङ्कणैः । काञ्चीनूपुरकेयूरैः शोभितान्यङ्गुलीयकैः ॥
तारुण्यरूपलावण्यैःस्वरैश्चाऽप्रतिमानिहि । राधालक्ष्मीसवर्णानिश्रृङ्गारिकरकाणिच
भोगद्रव्यैर्बहुविधैर्मण्डपेषु युतेषु च ।
विलसन्ति च गायन्ति मनोज्ञाः कृष्णगीतिकाः ॥ ३० ॥
उपत्यकासु तस्याद्रेरथ वृन्दावनाभिधम् । वनं महत्तदद्राक्षीत्सावर्णे! नारदो मुनिः ॥
कृष्णस्यराधिकायाश्चप्रियंतत्क्रीडनस्थलम् । कल्पद्रुमालिभीरम्यंसरोभिश्चसपङ्कजैः
आम्रैराम्रातकैर्नीपैर्बदरीभिश्च दाडिमैः । खर्जूरीपूगनारङ्गैःर्नालिकेरैश्च चन्दनैः ॥ ३३
जम्बूजम्बीरपनसैरक्षोदैः सुरदारुभिः । कदलीभिश्चम्पकैश्च द्राक्षाभिः स्वर्णकेतकैः
फलपुष्पभरानम्रैर्नानावृक्षैर्विराजितम् । मल्लिकामाधवीकुन्दैर्ल्लवङ्गैर्यूथिकादिभिः ॥
मन्दशीतसुगन्धेन सेवितं मातरिश्वना । शतश्रृङ्गस्रुतैराद्रं निर्झरैश्च समन्ततः ॥
सदा वसन्तशोभाढ्यं रत्नदीपालिमण्डितैः ।
श्रृङ्गारिकद्रव्ययुतैः कुञ्जैर्जुष्टमनेकशः ॥ ३७ ॥
गोपानां गोपिकानाञ्चकृष्णसंकीर्त्तनैर्मुहुः । गोवत्सपक्षिनिनदैर्नानाभूषणनिस्वनैः
दधिमन्थनशब्दैश्च सर्वतो नादितं मुने! ॥ ३८ ॥
फुल्लपुष्पफलानम्रनानाद्रुमसुशोभनैः । द्वात्रिंशता वनैरन्यैर्युक्तं पश्यमनोहरैः ॥ ३९ ॥
तद्वीक्ष्य हृष्टः स प्रापगोलोकपुरमुज्ज्वलम् । वर्त्तुलं रत्नदुर्गञ्च राजमार्गोपशोभितम्

राजितं कृष्णभक्तानां विमानैः कोटिभिस्तथा ।
रथै रत्नेन्द्रखचितैः किङ्किणीजालशोभितैः ॥ ४१ ॥
महामणीन्द्रनिकरै रत्नस्तम्भाऽलिमण्डितैः ।
अद्भुतैः कोटिशः सौधः पङ्क्तिसंस्थैर्मनोहरम् ॥ ४२ ॥
विलासमण्डपैरम्यैरत्नसारविनिर्मितम् । रत्नेन्द्रदीपततिभिः शोभितं रत्नवेदिभिः
केसराऽगुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् । दधिदूर्वालाजपूर्णैः रम्भाभिः शोभिताङ्गणम्
वारिपूर्णैर्हेमघटैस्तोरणैः कृतमङ्गलम् । मणिकुट्टिमराजाध्वचलद्भूरिगजाश्वकम् ॥
श्रीकृष्णदर्शनाऽऽयातैर्नैकब्रह्माण्डनायकैः । विरिञ्चिशङ्कराद्यैश्च बलिहस्तैःसुसंकुलम्
व्रजद्भिः कृष्णवीक्षाऽथ गोपगोपीकदम्बकैः ।
सुसङ्कुलमहामार्गं मुमोदाऽऽलोक्य तन्मुनिः ॥ ४७ ॥
कृष्णमन्दिरमापाऽथसर्वाश्चर्यमनोहरम् । नन्दादिवृषभान्वादिगोपसौधालिभिर्वृतम्
चतुर्द्वारैः षोडशभिर्दुर्गैः सपरिखैर्युतम् । कोटिगोपवृतैकैकद्वारपालसुरक्षितैः ॥४९
रत्नस्तम्भकपाटेषु द्वार्षु स्वाग्रस्थितेषु सः । उपविष्टाक्रमेणैव द्वारपालान्ददर्श ह ॥
वीरभानुं चन्द्रभानुं सूर्यभानुं तृतीयकम् । वसुभानुं देवभानुं शक्रभानुं ततः परम् ॥
रत्नभानुं सुपार्श्वञ्च विशालमृषभं ततः । अंशुं बलञ्च सुबलं देवप्रस्थं वरूथपम् ॥
श्रीदामानञ्च नत्वाऽसौ प्रविष्टोऽन्तस्तदाज्ञया ।
महाचतुष्के वितते तेजोऽश्यन्महोच्चयम् ॥ ५३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे-
श्रीवासुदेवमाहात्म्ये गोलोकवर्णनं नाम
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

श्रीवासुदेवदर्शनवर्णनम्

स्कन्द उवाच

तत्त्वेककालसम्भूतकोटिकोट्यर्कसन्निभम् । स व्यचष्ट महत्तेजो दिव्यंसिततरम्मुने

दिशश्च विदिशः सर्वा उद्र्ध्वाऽधो व्याप्नुवच्च यत् ।

अक्षरं ब्रह्म कथितं सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ २ ॥

प्रकृतिंपुरुषंचोभौतत्कार्याण्यपिसर्वशः । व्याप्तं यद्योगसंसिद्धाःषट्चक्राणिनिजान्तरे

व्यतीत्य मूर्ध्नि पश्यन्ति वासुदेवप्रसादतः ॥ ३ ॥

यद्भासाभासितःसूर्योवह्निरिन्दुश्चतारकाः । भासयन्तिजगत्सर्वं स्वप्रकाशंतथामृतम्

यद्ब्रह्म पुरमित्याहुर्भगवद्धाम सात्वताः । यस्यान्तिकेषु परितस्तिष्ठन्त्यर्चककोटयः

ब्रह्मशङ्करवृन्दानिह्यपर्युपरिसम्भ्रमात् । पतन्ति बलिहस्तानि गोपगोपीव्रजाश्चयत्

कृष्णस्यानुग्रहोयस्मिन्स तेजसि तमीक्षते । केवलं तेज एवान्ये पश्यन्तिनतुतं मुने

तस्मिन्ददर्शाऽद्भुतदिव्यमन्दिरं विचित्ररत्नेन्द्रमयं मनोज्ञम् ।

रत्नोज्ज्वलस्तम्भसहस्रकान्तं महासभामण्डपदर्शनीयम् ॥ ८ ॥

सौधालिभिर्भूरिभिरुज्ज्वलाभिः स्वोपासकानां परितो विराजितम् ।

विचित्रसूक्ष्माम्बररत्नभूषाविभूषितानां हि नृणाञ्च योषिताम् ॥ ६ ॥

सिंहासनं तत्र मणीन्द्रसारै रत्नेन्द्रसारैश्च विनिर्मितं सः ।

आश्चर्यकृत्प्रेक्षकमानसानां दिव्यं मुनिः प्रैक्षत भूरिहर्षः ॥ १० ॥

तत्राऽथ कृष्णं भगवन्तमैक्षन्नारायणं निर्गुणमाश्रितं सः ।

सर्वज्ञमीशं पुरुषोत्तमञ्च यं वासुदेवञ्च वदन्ति सात्वताः ॥ ११ ॥

यं केचिदाहुः परमात्मसञ्ज्ञं केचित्परं ब्रह्म परात्परञ्च ।

ब्रह्मेति केचिद्भगवन्तमेके विष्णुञ्च भक्ताः परमेश्वरञ्च ॥ १२ ॥

कन्दर्पसाहस्रमनोहराङ्गं सदा किशोरं करुणानिधानम् ।
अतिप्रशान्ताकृतिदर्शनीयं क्षराक्षरेभ्यश्च परं स्वतन्त्रम् ॥ १३ ॥
नैकाण्डसर्गस्थितिनाशलीलाविधायकापाङ्गनिरीक्षणञ्च ।
अनेककोट्यण्डमहाधिराजं विश्वैकवन्द्यं नटवर्यवेषम् ॥ १४ ॥
अनर्घ्यदिव्योत्तमपीतवाससमनेकसद्रत्नविभूषणाढ्यम् ।
नवीनजीमूतसमानवर्णं कर्णोल्लसत्सन्मकराभकुण्डलम् ॥ १५ ॥
निजाङ्गनिर्यत्सितभूरितेजश्चयावृतत्वात्सितवर्णमुक्तम् ।
सद्रत्नसारोज्ज्वलसत्किरीटं शरत्सरोजच्छदचारुनेत्रम् ॥ १६ ॥
सुगन्धिसच्चन्दनचर्चिताङ्गं श्रीवत्सलक्ष्माङ्कितहृत्कपाटम् ।
निनादयन्तं मधुरञ्च वेणुं कृत्वा मुखाग्रेऽम्बुजचारुदोर्भ्याम् ॥ १७ ॥
जयासुशीलाललितामुखानां वृन्दैः सखीनां सह राधया च ।
तमर्च्यमानं रमया च भामाकलिन्दजाजाम्बवतीमुखानाम् ॥ १८ ॥
धर्मेण वेदैरखिलैर्भगैश्च ज्ञानादिभिः सम्मतपाणियुग्मैः ।
निषेव्यमाणञ्च सुदर्शनाद्यैर्निजायुधैर्मूर्तिधरैरनेकैः ॥ १९ ॥
मसारमाणिक्यसुवर्णवर्णैः सितैश्च कैश्चिन्निजपार्षदाग्र्यैः ।
उपासितं चक्रगदाब्जशङ्खलसद्भुजैर्नन्दसुनन्दमुख्यैः ॥ २० ॥
श्रीदाममुख्यैरथ गोपवेषैर्भक्त्याऽवनम्रैर्द्विभुजैरनेकैः ।
उपास्यमानं गरुडेन चाऽग्रतो विभूतिभिश्चाष्टभिरानताभिः ॥ २१ ॥
मूर्त्या च शान्त्या दयया च सेवितं पुष्ट्या च तुष्ट्या ह्यथ मेधया च ।
श्रद्धाक्रियाह्युन्नतिभिश्च मैत्र्या तथा तितिक्षास्मृतिबुद्धिभिश्च ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा तमत्यद्भुतदिव्यमूर्त्तिं तद्रूपसौरम्यहृताखिलेन्द्रियः ।
आनन्दवारिप्रतिरुद्धदृष्टिः प्रेम्णोद्धर्षरोमासुखसम्भृतोऽभूत ॥ २३ ॥
दण्डवत्तं नमस्कृत्य नारदः प्रेमविह्वलः । बद्धाञ्जलिपुटस्तस्थौ वीक्षमाणस्तदाननम्
तं मानयामास हरिः पृष्ट्वा स्वागतमादरात् ।

भक्तमेकान्तिकं स्वस्य स्वेनैवच्च दिदृक्षितम् ॥ २५ ॥

भगवद्वाक्यपीयूषास्वादप्राप्तात्मसंस्मृतिः । तद्दर्शनमहानन्दो भक्त्यातुष्टाव तं मुनिः

नारद उवाच

जयश्रीकृष्ण! भगवन्नारायणजगत्प्रभो! । वासुदेवाऽखिलावास! सदैकान्तिकवल्लभ!

अत्याश्चर्यार्चनीयाङ्घ्रे राधिकाकमलादिभिः ।

त्वमेवात्यन्तिकं श्रेयोऽभीप्सतां परमा गतिः ॥ २८ ॥

नित्यानामात्मनां नित्य आत्मा चेतनचेतनः । क्षराक्षरेभ्यश्च परस्त्वं ब्रह्म परमं हरे

यथाविशुद्धिःसिद्धिश्चभक्त्यापरया तव । तथानस्यान्नृणामन्यैःसाधनैस्तपआदिभिः

त्वदङ्घ्रिदिव्यज्योत्स्नैका मुमुक्षूणां हृदि स्थितम् ।

महत्सन्तमसं हर्तुं सद्यः शक्ताऽस्ति सत्पते! ॥ ३१ ॥

सर्वैर्वेदैस्त्वमेवेज्यउपास्योज्ञेयएव च । निरूपितोऽसिभगवन्सर्वकारणकारणम्

एकैकस्मिन्रोमकूपेयत्तवाऽस्तिसितंमहः । शान्तमानन्दरूपञ्चतत्कोटीन्दुप्रभाधिकम्

अस्मिंस्त्वमक्षरेधाम्निनिर्गुणेऽमृतसञ्ज्ञके । महःपुञ्जेसदैवास्सेनिर्गुणः पुरुषोत्तमः

ब्रह्माण्डभयदात्कालान्मायायाश्च महाभयात् ।

मुक्ता भक्ता भवन्त्येव त्वदीयोपासनाबलात् ॥ ३५ ॥

तं त्वामहमुपेतोऽस्मि शरणं जगदीश्वरम् । सर्वात्मानं विभुं ब्रह्ममहापुरुषमच्युतम्

यथा त्वच्चरणाम्भोजे भक्तिर्मे निश्चला सदा । भवेत्तथैव देवेश! कर्त्तुमर्हस्यनुग्रहम्

स्कन्द उवाच

इत्थं देवर्षिणा भक्त्या संस्तुतः परमेश्वरः ।

तमाहानन्दयन्वाचा सुधासम्मितया मुनिम् ॥ ३८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे-
श्रीवासुदेवमाहात्म्ये श्रीवासुदेवदर्शनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

———

अष्टादशोऽध्यायः

वासुदेवावतारादिवर्णनम्

श्रीभगवानुवाच

दर्शनं मम यज्जातं तव तत्तुमहामुने !। नित्यैकान्तिकभक्तत्वान्निर्दम्भत्वान्मदिच्छया
अहिंसाब्रह्मचर्यं च त्वयि नित्यञ्च तद्द्वयम् । स्वधर्मोपशमौचैववैराग्यंचात्मवेदनम्
सत्सङ्गोऽष्टाङ्गयोगश्च सर्वथेन्द्रियनिग्रहः । मुन्यन्नवृत्तिश्च तपः सर्वव्यसनहीनता ॥
मदेकान्तिकभक्तिश्चमाहात्म्यज्ञानपूर्विका । वर्त्तते तेन मामत्र पश्यसि त्वं हि सुव्रत
ईदृग्लक्षणसम्पन्नायेस्युरन्येऽपिमानवाः । तेपिमामीदृशंविप्र! पश्यन्त्येकान्तिकप्रियम्

असावहमिह ब्रह्मन्नस्मिन्नक्षरधामनि ।
राधालक्ष्मीयुतो नित्यं वसामि स्वाश्रितैः सह ॥ ६ ॥

वासुदेवस्वरूपोऽहं सर्वकर्मफलप्रदः । अन्तर्यामितया वर्त्ते स्वतन्त्रतः सर्वदेहिनाम्
वैकुण्ठाख्ये महाधाम्निलक्ष्म्या सह चतुर्भुजः । वसामिनन्दगरुडमुख्यैःसाकञ्चपार्षदैः
धाम्नि तेजोमयेदिव्येश्वेतद्वीपेऽन्वहं भुवि । ददामिश्वेतमुक्तेभ्यः पञ्चकालंस्वदर्शनम्

कुर्वेऽनिरुद्धप्रद्युम्नसङ्कर्षणसमाह्वयैः ।
स्वरूपैर्नैककोट्यण्डसर्गस्थित्यप्ययानहम् ॥ १० ॥
सर्गारम्भे मया ब्रह्मा सृष्टो नाभिसरोरुहात् ।
तपसाऽऽराधयामास स मां यज्ञैश्च नारद !॥ ११ ॥
ततस्तस्मै प्रसन्नोऽहं प्राददामीप्सितान्वरान् ।
ब्रह्मन्प्राप्स्यसि सामर्थ्यं प्रजानां त्वं विसर्जने ॥ १२ ॥
आज्ञायामेव ताः सर्वास्तव स्थास्यन्ति मद्वरात् ।
वेदाश्चापि स्फुरिष्यन्ति तव बुद्धौ सनातनाः ॥ १३ ॥

ज्ञानञ्च मत्स्वरूपस्य यथावत्तमविष्यति । त्वया कृताञ्चमर्यादां नातिक्रंस्यतिकश्चन

सुरासुरगणानाञ्च मुनीनाञ्च महात्मनाम् । त्वमेव वरदो ब्रह्मन्वरेप्सूनां भविष्यसि
असाध्ये यत्र कार्येचमोहमेष्यसितत्त्वहम् । प्रादुर्भूयकरिष्यामिस्मृतमात्रस्त्वयाविधे

सृज्यमाने त्वया विश्वे नष्टां पृथ्वीं महार्णवे ।
आनयिष्यामि स्वं स्थानं वाराहं रूपमास्थितः ।
हिरण्याक्षं निहत्यैव दैतेयं बलगर्वितम् ॥ १७ ॥

दिनान्तेतवमत्स्योऽहंभूत्वाक्षोणींतरीमिव । सहोषधिंधारयिष्येमन्वादींश्चनिशावधि
सुधायै मथ्नतामब्धिकाश्यपानांनिराश्रयम् । मन्थानं कूर्मरूपोऽहंधास्येपृष्ठेचमन्दरम्
नारसिंहं वपुः कृत्वा हिरण्यकशिपुं विधे !। सुरकार्ये हनिष्यामियज्ञघ्नं दितिनन्दनम्
विरोचनस्यबलवान्बलिःपुत्रोमहासुरः। भविष्यतिसशक्रञ्चस्वाराज्याच्च्यावयिष्यति
त्रैलोक्येऽपहृतेतेनविमुखेचशचीपतौ । अदित्यांद्वादशःपुत्रःसम्भविष्यामिकश्यपात्

ततो राज्यं प्रदास्यामि देवेन्द्राय दिवः पुनः ।
देवताः स्थापयिष्यामि स्वेषु स्थानेष्वहं विधे !।
बलिं चैव करिष्यामि पातालतलवासिनम् ॥ २३ ॥

कर्दमाद्देवहूत्याञ्च भूत्वाऽथ कपिलाभिधः । प्रवर्तयिष्येकालेननष्टंसाङ्ख्यंविरागयुक्
दत्तो भूत्वाऽनसूयायामत्रेरान्विक्षिकींततः । प्रह्लादायोपदेक्ष्यामि विद्याञ्चयदवे विधे
मेरुदेव्यां सुतो नाभेर्भूत्वाहमृषभो भुवि । धर्मं पारमहंस्याख्यंवर्तयिष्ये सनातनम्

त्रेतायुगे भविष्यामि रामो भृगुकुलोद्वहः ।
क्षत्रञ्चोत्सादयिष्यामि भग्नसेतुकदध्वगम् ॥ २७ ॥

सन्धौतु समनुप्राप्ते त्रेतायाद्वापरस्यच । कौशल्यायां भविष्यामि रामोदशरथादहम्
सीताभिधानालक्ष्मीश्चभवित्रीजनकात्मजा । उद्वहिष्यामितामैशंभङ्क्त्वाधनुरहंमहत्
ततो रक्षःपतिं घोरंदेवर्षिद्रोहकारिणम् । सीतापहारिणंसङ्ख्येहनिष्यामिसहानुजम्
तस्य मेतुचरित्राणिवाल्मीक्याद्यामहर्षयः । तदागास्यन्तिवहुधायच्छ्रुतेःस्यादघक्षयः
द्वापरस्यकलेश्चैव सन्धौ पर्यवसानिके । भूभारासुरनाशार्थं पातुं धर्मञ्च धार्मिकान् ॥

वसुदेवाद्भविष्यामि देवक्यां मथुरापुरे ॥ ३२ ॥

कृष्णोऽहंवासुदेवाख्यस्तथासङ्कर्षणोबलः । प्रद्युम्नश्चाऽनिरुद्धश्चभविष्यन्तियदोःकुले

गोपस्य वृषभानोस्तु सुता राधा भविष्यति ।
वृन्दावने तया साकं विहरिष्यामि पद्मज !॥ ३४ ॥
लक्ष्मीश्च भीष्मकसुता रुक्मिण्याख्या भविष्यति ।
उद्वहिष्यामि राजन्यान्युद्धे निर्जित्य तामहम् ॥ ३५ ॥

धर्मद्रुहोऽसुरान्हत्वा तदाविष्टांश्च भूपतीन् । धर्मं संस्थापयन्नेवकरिष्येनिर्भरांभुवम्
येन केनाऽपि भावेनयस्यकस्याऽपिमानसम् । मयिसंयोक्ष्यतेतन्तंनेष्येब्रह्मगतिंपराम्

धर्मं भुवि स्थापयित्वा कृत्वा यदुकुलक्षयम् ।
पश्यतां सर्वदेवानामन्तर्द्धास्ये भुवस्ततः ॥ ३८ ॥

कृष्णस्य मनवीर्याणि कृष्णद्वैपायनादयः । गास्यन्तिबहुधाब्रह्मन्सद्यःपापहराणिहि
कृष्णद्वैपायनो भूत्वा पराशरमुनेः सुतः । शाखाविभागं वेदस्य करिष्यामितरोरिव

वैदिकं विधिमाश्रित्य त्रिलोकीपरिपीडकान् ।
छलेन मोहयिष्यामि भूत्वा बुद्धोऽसुरानहम् ॥ ४१ ॥

मया कृष्णेन निहताः साऽर्जुनेन रणेषु ये । प्रवर्तयिष्यन्त्यसुरास्तेत्वधर्मंयदाक्षितौ
धर्मदेवात्तदा भक्तादहं नारायणो मुनिः । जनिष्ये कोशले देशे भूमौहिसामगोद्विजः
मुनिशापन्नृतांप्राप्तान्नृवींस्तात!तथोद्धवम् । ततोऽवितासुरेभ्योऽहंसद्धर्मंस्थापयन्नज!

जनान्म्लेच्छमयान्भूमौ कलेरन्ते महैनसः ।
कल्की भूत्वा हनिष्यामि विचरन्दिव्यवाजिना ॥ ४५ ॥
यदा यदा च वेदोक्तो धर्मो नाशिष्यतेऽसुरैः ।
प्रादुर्भावो भविष्यो मे तद्रक्षायै तदा तदा ॥ ४६ ॥

तस्माच्चिन्तांविहायैवप्रजाःसृजयथापुरा । एतान्दत्त्वावरांस्तस्माअहमन्तर्हितोऽभवम्
यथा तस्मै वरा दत्तास्तथैव च मयाकृतम् । कुर्वेकरिष्ये च मुनेनिजशक्तिभिरञ्जसा
एवम्विधस्य मे ब्रह्मन्नीशितुः सर्वदेहिनाम् । दर्शनं दुर्लभं जातं तवैकान्तिकभक्तितः

वरं वरय मत्तस्त्वं स्वाभीष्टं मुनिसत्तम । प्रसन्नोऽस्मिमृशं तुभ्यंनाऽफलं ममदर्शनम्

स्कन्द उवाच

श्रुत्वेति भगवद्वाक्यं नारदो मुनिसत्तमः । मन्यमानो निजं धन्यं तमुवाच प्रभुं मुने!
दर्शनादेव ते स्वामिन्सम्पूर्णो मे मनोरथः । इदं हि दुर्लभंमन्ये सर्वेषामपि देहिनाम्

अतस्ते च त्वदीयानां त्वद्वाक्योस्याऽमृतस्य च ।
साक्षात्समीक्षणादन्यत्प्राप्यं मे नास्ति वाञ्छितम् ॥ ५३ ॥

इतोऽन्यद्दुर्लभं क्वाऽपि नास्ति ब्रह्माण्डगोलके । यदहं परितुष्टात्तेप्रार्थयेयमिहाच्युत
लोकान्तरसुखंयत्तद्वैदिकैरेव कर्मभिः । दैवैः पित्र्यैश्चलभ्येत तच्चाऽप्यस्तिहिनश्वरम्
नेच्छामि तदहंकिञ्चित्सुखंत्वत्तःपरंप्रभो !। वरमेकं तु याचे त्वत्स्वेप्सितंवरदर्षभात्
तवाऽथ तवभक्तानांसदैवगुणगायने । अत्युत्सुकाऽस्तुमेबुद्धिस्त्वयिप्रीतिविवर्द्धिनी

स्कन्द उवाच

तथाऽस्त्विति प्रतिश्रुत्य कृष्णस्तेनेति याचितम् ।
गानोपयुक्तां महतीं वीणां दत्त्वाऽब्रवीत्पुनः ॥ ५८ ॥

श्रीभगवानुवाच

अधुना गच्छ देवर्षे विशालांबदरीमितः । तत्र धर्मात्मजं भक्त्या मामाराधय सुव्रत!
त्वं ह्येकान्तिकभक्तोऽसि ममनिष्कपटान्तरः । तेनत्वामधिकंमन्ये विधेरपिपितुस्तव
यादृशोऽहञ्च यद्रूपो यावांश्च महिमा मम । विदुस्तत्सर्वमपि मेभक्ताएकान्तिकामुने
हृदि चिन्त्योऽहमेवास्मिसतांतेषांचतेमम । तेषामिष्टंनमत्तोऽन्यन्ममतेभ्योनकिञ्चन

यथा पतिव्रता नार्यो वशीकुर्वन्ति सत्पतिम्।
निजैर्गुणैस्तथा भक्ता वशीकुर्वन्ति मामपि ॥ ६३ ॥

अनुयामि श्रिया साकं तानहं परवानिव । यत्रयत्र च ते सन्तितत्रतत्राऽहमस्मि हि
सत्सङ्गादेव मत्प्राप्तिर्भवेद्भुवि मुमुक्षताम् । नान्योपायेन देवर्षे! सत्यमित्यवधारय॥

मामेव यर्हि शरणं मानुषाः प्राप्नुवन्ति ये ।
तर्ह्येव ते विमुच्यन्ते मायाया जीवबन्धनात् ॥ ६६ ॥

मां प्रपन्नस्तु पुरुषो येन केनापि भावतः । यथेष्टं सुखमाप्नोति न तु संसृतिमन्वयत्

स्कन्द उवाच

एवमुक्तो भगवता प्राप्तोऽनुग्रहमीप्सितम् । प्रणम्य साश्रुनयनःपर्यावर्तत नारदः॥६८
तमेववीणया गायञ्छ्वेतमुक्तमपश्यत । प्राग्वत्स्वाग्रे चलन्तंतमन्वगच्छद्द्विजर्षभ!

सद्यः श्वेतं महाद्वीपं प्राप्य श्वेतान्प्रणम्य तान् ।
निवृत्तो नारदो ब्रह्मंस्तरसा मेरुमागमत् ॥ ७० ॥

ततो मेरोः प्रचक्राम पर्वतं गन्धमादनम् । निपपात च खात्तूर्णं विशालां बदरीमनु ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे-
श्रीवासुदेवमाहात्म्ये श्रीवासुदेवावतारादिकथनंनामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

नारदनरनारायणसमागमवर्णनम्

स्कन्द उवाच

ततः स ददृशे देवौ पुराणावृषिसत्तमौ । तपश्चरन्तौ सुमहदात्मनिष्ठौ महाव्रतौ ॥

तेजसाऽप्यधिकौ सूर्यात्सर्वलोकविरोचनात् ।
श्रीवत्सलक्षणौ पूज्यौ जटामण्डलधारिणौ ॥ २ ॥

पद्मचिह्नभुजौतौचपादयोश्चक्रलक्षणौ । व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ सितसूक्ष्मघनांशुकौ
स्वास्यौ पृथुललाटौ चसुभ्रूवौशुभनासिकौ । शुभलक्षणसम्पन्नौदिव्यमूर्त्तीघनप्रभौ

विनयेनाऽन्तिकं प्राप्य तयोः कृत्वा प्रदक्षिणाम् ।
भक्त्या प्रणम्य साष्टाङ्गं तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५ ॥

ततस्तौतपसांवासौयशसांतेजसामपि । ऋषीपौर्वाह्णिकस्याऽन्तेविधेर्मौनंविहायच

प्रीत्या नारदमव्यग्रौ पाद्यार्घ्याभ्यां समार्चताम् ।
पीठयोरुपविष्टौ तौ कौशयोर्नारदश्च सः ॥ ७ ॥

तेषुतत्रोपविष्टेषु स देशोऽभिव्यराजत । आज्याहुतिमहाज्वालैर्यज्ञवाटोऽग्निभिर्यथा
अथनारायणस्तत्रनारदम्वाक्यमब्रवीत् । सुखोपविष्टंविश्रान्तंकृतातिथ्यं सुसत्कृतम्

श्रीनारायण उवाच

अपि ब्रह्मन्स भगवान्परमात्मा सनातनः । ब्रह्मधाम्नित्वया दृष्ट आवयोः कारणं परम्

नारद उवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन तमहं परमेश्वरम् । वासुदेवं समालोके स्थितमक्षरधामनि ॥ ११
इहचैवागतःस्तेनविसृष्टोवांनिषेवितुम् । आसिष्येतत्परोभूत्वायुवाभ्यांसहनित्यशः

श्रीनारायण उवाच

धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसियत्तेदृष्टःस्वयंप्रभुः । नहितंदृष्टवान्ब्रह्मन्कश्चिद्देवोपिवाऋषिः

भक्त्यैकान्तिकया तस्य प्राप्ता अक्षरसाम्यताम् ।
ये हि भक्तास्त एवैनं पश्यन्त्यखिलकारणम् ॥ १४ ॥

सदिव्यमूर्त्तिर्भगवान्दुर्दर्शः पुरुषोत्तमः । नारदैतद्धि मे सत्यं वचनं समुदाहृतम्॥

नाऽन्यो भक्तात्प्रियतरो लोके तस्याऽस्ति कश्चन ।
ततः स्वयं दर्शितवांस्तवाऽऽत्मानं द्विजोत्तम !॥ १६ ॥
तेजः पुञ्जाभिरुद्धाङ्गो गुणातीताद्भुताकृतिः ।
अखण्डानन्दरूपश्च सदा शुद्धोऽच्युतोऽस्ति सः ॥ १७ ॥

रूपवर्णवयोवस्थाःप्राकृतानैवतस्य हि । सर्वं तस्याऽस्ति तद्दिव्यंसर्वोपकरणानिच

एकान्तिकानां भक्तानां स एव परमा गतिः ॥ १८ ॥

आत्मब्रह्मैक्यसम्पन्नैर्विनिवृत्तगुणैरपि । क्रियते वासुदेवस्य भक्तिरित्थंगुणो हि सः
माहात्म्यमस्यकोवक्तुंशक्नुयात्परमात्मनः । अचिन्त्यानन्तशक्तीनामधिपस्यमहामुने
आत्मात्मा चाक्षरात्माचह्येषआकाशनिर्मलः । दिव्यदृगीक्ष्यःसन्मात्रःपुरुषोवसुदेवजः
समस्तकल्याणगुणोनिर्गुणश्चेश्वरेश्वरः । परया विद्यया वेद्य उपास्यो, ब्रह्मवित्प्रभुः
दिव्यमूर्त्ति तमीशानं तपसैकान्तिकेन च । यः प्रीणयति धर्मेण सधन्यतमउच्यते
तस्मात्त्वमपि देवर्षे ! धर्मेणैकान्तिकेनतम् । आराधयन्निहैवाङ्ग! कञ्चित्कालं तपःकुरु

तपसैवाऽतिशुद्धात्मा माहात्म्यं तस्य सत्पतेः ।
यथावज्ज्ञास्यति भवान्प्रोच्यमानं मयाऽखिलम् ॥ २५ ॥

सर्वार्थसाधनं विद्धितपस्तद्दधृद्यं मुने !। नातप्तभूरितपसा स वशीक्रियते प्रभुः ॥

स्कन्द उवाच

एवमुक्तो भगवता नरनारायणेन सः । प्रीतस्तपः कर्त्तुमिच्छँस्तमुवाच महामतिः ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवासुदेवमाहात्म्ये नारदनरनारायणसमागमो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

विंशोऽध्यायः

चातुर्वर्ण्यधर्मनिरूपणम्

नारद उवाच

भगवन्ब्रूहि मे धर्ममेकान्तंतव सम्मतम् । प्रीयते येन विश्वात्मा वासुदेवः ससर्वदा

श्रीनारायण उवाच

साधु पृष्टं त्वया ब्रह्मन्मतिस्ते विमला किल ।
मयि स्निग्धाय भक्ताय तुभ्यं गुह्यमपि ब्रुवे ॥ २ ॥

धर्म एष मया प्रोक्तः कल्पस्याऽऽदौ विवस्वते । तमेव कथये तुभ्यं सनातनमहं मुने
स्वधर्मज्ञानवैराग्यैः सह लक्ष्मीवदीश्वरे । तस्मिन्ननन्याभक्तिर्याधर्मएकान्तिकःसवैः
तेनैवातिप्रसन्नःस्याद्गोलोकाधिपतिः स्वयम् । जायतेसचभक्तोऽपिपरिपूर्णमनोरथः

नारद उवाच

लक्षणानि बुभुत्सामिस्वधर्मादेः पृथक्पृथक् । शास्त्रयोनेरहंत्वत्तोवक्तुंतानित्वमर्हसि
निगमागमशास्त्राणां सर्वेषामपि सत्पते !। मूलं त्वमेक एवासि येषु धर्मः सनातनः

त्वमेव साक्षाद्भगवान्वासुदेवोऽक्षरात्परः । श्रेयसे सर्वभूतानां वर्तसेऽत्रदयानिधिः ॥
त्वत्तोऽन्ये तुस्वस्वभावगुणतन्त्राह्यजादयः । यथावन्नविजानीयुर्द्धर्मादींस्त्वमतोवद

स्कन्द उवाच

इति देवर्षिणा पृष्टो भगवान्धर्मनन्दनः । स्वधर्मादीन्क्रमेणैव कथयामास सर्ववित्

श्रीनारायण उवाच

वर्णानामश्रमाणाञ्च सदाचारः पृथक्पृथक् । सामान्यःसविशेषश्चस्वधर्मःस उदीर्यते
नृणां साधारणं धर्मं सर्वेषामादितः शृणु । अहिंसा परमोधर्मस्तत्राऽऽदिम उदाहृतः
स्वमुख्यधर्मवृत्योरप्यद्रोहोमनसाऽपियः । सतिगत्यन्तरेप्राणिमात्रस्यापीतिसामता
सत्यावाग्भूतमात्रस्य द्रोहोनस्याद्ययातथा । तपश्चशास्त्रविहितभोगसङ्कोचलक्षणम्
वाह्यमाभ्यन्तरञ्चेति द्विविधं शौचकर्म च । अनादानं परस्वस्य परोक्षं वा छलेन च
यथोचितं ब्रह्मचर्यं कामलोभक्रुधां जयः । मुदा वित्तार्पणं पात्रे तुष्टिर्लब्धेन दैवतः ॥
तीर्थेक्षेत्रे च यज्ञादौचतुर्वर्गाप्तयेऽपि वा । आत्मनो वापरस्याऽपिसर्वथा त्रातवर्जनम्
जातिभ्रंशकराणाञ्च कर्मणां परिवर्जनम् । पाणिपादोदरोपस्थवाचां संयमनं तथा
सर्वेषां व्यसनानाञ्च वर्जनं मद्यमांसयोः । व्यभिचारान्निवृत्तिश्च कुलसद्धर्मपालनम्
एकादशीनां सर्वासां यमैः साकमुपोषणम् । हरेर्जन्मदिनानाञ्च व्रताचरणमञ्जसा ॥

आर्जवं साधुसेवा च विभज्याऽन्नादिभोजनम् ।
भक्तिर्भगवतश्चेति धर्माः साधारणा नृणाम् ॥ २१ ॥

ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा वर्णाश्चत्वार ईरिताः । तेषां पृथक्पृथग्धर्मान्विशेषान्वच्मितेमुने
शमो दमःक्षमाशौचमास्तिक्यंभक्तिरीशितुः । तपो ज्ञानंचविज्ञानंविप्रधर्मःस्वभावजः
शूरत्वं धैर्यमौदार्यं वलं तेजः शरण्यता । गोविप्रसाधुरक्षेज्याधर्माः क्षत्रस्यकीर्त्तिताः
राज्ञस्त्वेतेऽथ नीत्यैव प्रजानांपरिपालनम् । धर्मसंस्थापनंभूमौ धर्मादण्डार्हदण्डनम्
आस्तिक्यं दाननिष्ठाचसाधुब्राह्मणसेवनम् । अतुष्टिरर्थोपचये धर्मावैश्यस्यचोद्यमः
द्विजातीनां च देवानां सेवा निष्कपटं गवाम् । विशेषधर्मःकथितःशूद्रस्यमुनिसत्तम!
अध्यापनंयाजनञ्चविशुद्धाच्चप्रतिग्रहः । विप्रस्यजीविकाप्रोक्तातत्रान्त्यात्वापदिस्मृता

याजनेऽध्यापने वाऽपि दोषदर्शी द्विजोत्तमः ।
यस्तस्याऽन्यापि विहिता वृत्तिरस्ति चतुर्विधा ॥ २९ ॥
शिलोञ्छं नित्ययाच्ञा च शालीनश्चोचिता कृषिः ।
श्रेयसी पूर्वपूर्वाऽत्र ज्ञातव्या द्विजसत्तमैः ॥ ३० ॥

विप्रो जीवेद्वैश्यवृत्त्या सत्यामापदि नारद !। अथ वा क्षत्रवृत्त्या न तुकर्हिचित् ॥३१
शस्त्रेण जीवेत्क्षत्रन्तु सर्वतो धर्मरक्षया। आपन्नो वैश्यवृत्त्यैव विप्ररूपेण वा चरेत् ॥
करादानादिनृपतेरविप्राद्वृत्तिरीरिता । देशकालानुसारेण रञ्जयित्वाऽखिलाः प्रजाः
आपत्कालेपि क्षत्रस्य ब्राह्मणस्यैव सर्वथा । विगर्हितानीचसेवास्वतेजःक्षयकारिणी

कृषिवाणिज्यगोरक्षा तुरीया वृद्धिजीवनम् ।
वैश्यस्य जीविका प्रोक्ता शूद्रवृत्तिस्तथाऽऽपदि ॥ ३५ ॥
शूद्रो जीवेद्द्विजातीनां सेवालब्धधनेन च ।
आपत्काले तु कार्वादेर्जीविकावृत्तिमाश्रयेत् ॥ ३६ ॥

आपन्मुक्तस्तुसर्वोऽपि प्रायश्चित्तंयथोचितम् । विधायस्वस्ववृत्त्यैवपुनर्वर्त्ततमुख्यया
चातुर्वर्ण्यंसतांसङ्गंकुर्यान्नत्वसतांक्वचित् । मुक्तिप्रदोऽस्तिसत्सङ्गःकुसङ्गोनिरयप्रदः

कामं क्रोधं रसास्वादं जित्वा मानञ्च मत्सरम् ।
निर्दम्भं विष्णुभक्ता ये ते सन्तः साधवो मताः ॥ ३९ ॥
स्त्रियां स्त्रैणे रसास्वादे सक्ताश्च धनगृध्नवः ।
हिंस्रा दम्भकृताटोपा भक्ताभासा ह्यसाधवः ॥ ४० ॥
असाधुष्वासुरी सम्पद्दैवी सम्पत्तु साधुषु ।
सहजाऽस्तीति निश्चित्य सेव्याः सन्तः सुखेप्सुभिः ॥ ४१ ॥
यादृशां यस्य सङ्गः स्याच्छास्त्राणां वा नृणामपि ।
वुद्धिः स्यात्तादृशी तस्य कार्योऽतो नाऽसतां हि सः ॥ ४२ ॥

[ये साधुसेवारुचयःपुरुषानिजशक्तितः । अप्राप्यंनास्तितेषां वै किमप्यैश्वर्यमूर्जितम्
स्वधर्मस्थाअपिसतां द्रोहिणोयेतुमानवाः । सद्गतिंनैवते यान्ति क्वापिकेनापिकर्मणा

महापूजारताविष्णोर्भक्ताअपिसतांयदि । द्रोहं कुर्युस्तदा तेषु न प्रसीदतिसकचित्
सद्द्रोहिणस्तुदेहान्तेयांयांयोनिंव्रजन्तिच । तत्रतत्रक्षुधारोगैःपीड्यन्तेजीवितावधि
सतामतिक्रमादेव पुण्यानां महतामपि । सद्यः क्षयः स्यात्सर्वेषामायुषः सम्पदामपि

तस्मात्सेवा सतां कार्या सर्वैरपि सुखेप्सुभिः ।
पुण्यतीर्थानि सेव्यानि पूज्या विप्राश्च धेनवः ॥ ४८ ॥

तीर्थानि देवप्रतिमा निन्देयुर्येकुबुद्धयः । तेषां तु जारजातानांवंशोच्छेदोभवेद्ध्रुवम्

एकस्मिंस्तर्पिते विप्रे सद्भोज्यैर्दक्षिणादिभिः ।
तर्पितं स्याज्जगत्सर्वं हरिस्तुष्यति च स्वयम् ॥ ५० ॥
एकस्मिन्ब्राह्मणे द्रुग्धे द्रुग्धं स्यात्सकलं जगत् ।
तस्माच्छक्त्या पूजनीया ब्राह्मणा विष्णुरूपिणः ॥ ५१ ॥

गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति सर्वे देवगणा अपि । तथा सर्वाणितीर्थानितासुतिष्ठन्तिसर्वदा
गव्यर्चितायामेकस्यांसर्वेदेवाःसमर्चिताः । कृतानिस्युश्चसर्वाणितीर्थान्यपिचनारद
एकस्याअपिगोर्द्रोहेकृतेकापिप्रमादतः । द्रुग्धाःस्युर्देवतासर्वास्तीर्थान्यपिचकृत्स्नशः
तस्माच्चातुर्वर्ण्यजनैर्यथोक्तविधिसंस्थितैः । भवितव्यं प्रयत्नेन त्रेतव्यश्च निषेधतः
चातुर्वर्ण्येतरे ये तु तेषां वृत्तिः कुलोचिता । चौर्यहिंसाद्यधर्मेण रहितैव हितावहा
वर्णधर्मा इति प्रोक्ताः सङ्क्षेपेण महामुने ।। चतुर्णामाश्रमाणाञ्चधर्मानथ वदामि ते

इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे-
श्रीवासुदेवमाहात्म्ये चातुर्वर्ण्यधर्मनिरूपणं नाम
विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

ब्रह्मचारिधर्मनिरूपणम्

श्रीनारायण उवाच

ब्रह्मचारी गृहस्थश्चवानप्रस्थोयतिस्तथा । एत आश्रमिणःप्रोक्ताश्चत्वारोमुनिसत्तमः

संस्कारैः संस्कृतो यस्तु शुद्धयोनिर्द्विजातिताम् ।

प्राप्तः स हि ब्रह्मचारी तद्धर्मानादितो ब्रुवे ॥ २ ॥

वर्णीवेदमधीयीत वसन्गुरुगृहेशुचिः । जितेन्द्रियोजितक्रोधो विनीतस्तथ्यभाषणः

सायं प्रातश्चरेद्धोमं भिक्षाचर्यांश्च संयतः ।

कुर्यात्त्रिकालं सन्ध्याञ्च विष्णुपूजां तथाऽन्वहम् ॥ ४ ॥

गुर्वाज्ञयैव भुञ्जीत मितमन्नमनाकुलः । गुरुसेवापरो नित्यं भवेद्व्यसनवर्जितः ॥५॥

स्नाने च भोजने होमे जपेमौनमुपाश्रयेत् । छिन्द्यान्ननखरोमाणिदन्तान्नैवातिधावयेत्

नाऽतिधावेच्च वासांसि भवेन्निष्कपटोगुरौ । आहूतोऽध्ययनंकुर्यादादावन्तेचतंनमेत्

अस्पृश्यान्न स्पृशेच्चासौ नाऽसंभाष्यांश्च भाषयेत् ।

अभक्ष्यं भक्षयेन्नैव नाऽपेयञ्च पिवेत्कचित् ॥ ८ ॥

मेखलामजिनंदण्डंविभृयाच्चकमण्डलुम् । सिते द्वे वाससीब्रह्मसूत्रञ्चजपमालिकाम्

दर्भपाणिश्च जटिलः केशसंस्कारवर्जितः । अङ्गरागं पुष्पहारान्भूषणानिच वर्जयेत् ॥

तैलाभ्यङ्गं न कुर्वीत कज्जलेनाऽञ्जनं तथा । वर्जयेच्च प्रयत्नेन संसर्गं मद्यमांसयोः

स्त्रीणां निरीक्षणंस्पर्शंभाषणंक्रीडनादिच । वर्जयेत्सर्वथावर्णीस्त्रियाश्चाप्यवलेखनम्

विना च देवप्रतिमां काष्ठचित्रादि योषितम् ।

अपि नैव स्पृशेद्धीमान्न च बुद्ध्याऽवलोकयेत् ॥ १३ ॥

प्राणिमात्रञ्च मिथुनीभूतं नेक्षेत कर्हिचित् ।

स्त्रीणां गुणांश्चाऽप्यगुणाञ्छृणुयान्नैव नो वदेत् ॥ १४ ॥

अस्पृशन्नेववन्देतगुरुपत्नीमपिस्वकाम् । जनन्याऽपि नतिष्ठेत रहःस्थानेतुकर्हिचित्
एवंवृत्तोवसेत्तत्रयावद्विद्यासमापनम् । ततोविरक्तोन्यासी स्याद्वर्णी वानैष्ठिकोभवेत्
अनधिकारिता प्रोक्ता नैष्ठिकव्रतिनां कलौ ॥ १६ ॥
न सन्धाविति विज्ञेयंकलीतिशब्दसंग्रहात् । वनीस्यादथ वाब्रह्मन्नविरक्तोभवेद्गृही
प्राजापत्यं च सावित्रं ब्राह्मं नैष्ठिकमेव च । चतुर्विधं ब्रह्मचर्यं तत्रैकं शक्तितः श्रयेत्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे-
श्रीवासुदेवमाहात्म्ये ब्रह्मचारिधर्मनिरूपणं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

गृहस्थधर्मनिरूपणम्

श्रीनारायण उवाच

गृही बुभूषुर्गुरवेदक्षिणांस्वस्यशक्तितः । दत्त्वा तदाज्ञयैवाऽसौ समावर्त्तनमाचरेत्
ततः कुलोचितांयोषांवयसोनामरोगिणीम् । पुंल्लक्षणेनरहितामपापांविधिनोद्वहेत्
स्वाधिकारानुसारेण कृष्णसम्प्रीतयेऽन्वहम् । देवर्षिपितृभूतानि यजेतविधिनाततः
स्नानं सन्ध्यां जपं होमं स्वाध्यायं विष्णुपूजनम् ।
तर्पणं वैश्वदेवञ्च कुर्याच्चाऽऽतिथ्यमन्वहम् ॥ ४ ॥
कुर्यात्पुण्यंयथाशक्तिन्यायार्जितधनेनच । अनासक्तः पोष्यवर्गं पुष्णीयान्नतुपीडयेत्
देहेच दैहिकान्वासाबुद्धिश्य पशुवत्परैः । वैरं न कुयाद्देहादावहन्तां ममतांत्यजेत् ॥
कुर्याद्भागवतानाञ्चसतांसङ्गमतन्द्रितः । न स्त्रैणानां व्यसनिनांसङ्गंकुर्यान्नलोभिनाम्
कामभावेन नेक्षेत परयोषान्तु कर्हिचित् ।
श्राद्धपर्वव्रताहादौ नोपेयाच्च स्वयोषितम् ॥ ८ ॥
प्राप्तोऽपि पुरुषः साङ्ख्ये योगे च परिपक्वताम् ।

पुत्र्या अपि प्रसङ्गेन रहःस्थाने तु मुह्यति ॥ ९ ॥
अतो मात्रा भगिन्या वा दुहित्राऽपि रहःस्थले ।
सह नाऽऽसीत मतिमान्युवत्या किमुताऽन्यथा ॥ १० ॥

अमङ्गलानां सर्वेषां विधवाह्यत्यमङ्गलम् । तद्दर्शनञ्च तत्स्पर्शोनॄणां सुकृतहृत्ततः ॥
प्रयाणकाले विधवादर्शनं सन्मुखे यदि । स्यात्तदानैवगन्तव्यमन्यथा मरणं ध्रुवम् ॥

आशिषो विधवा स्त्रीणां सम्ाःकालाहिफूत्कृतैः ।
ततश्च विभियात्ताभ्यो राक्षसीभ्यो यथा गृही ॥ १३ ॥

मद्यंमांसंमादकञ्चद्यूतादीन्दूरतस्त्यजेत् । नद्रोहंप्राणिमात्रस्यकुर्याद्वाचापिकर्हिचित्
अवतारचरित्राणि शृणुयादन्वहं हरेः । सर्वा अपि क्रियाः कुर्याद्वासुदेवार्थमास्तिकः
ऊर्जे माघे च वैशाखे चातुर्मास्ये मलिम्लुचे । अन्येषुपुण्यकालेषुविशेषनियमांश्चरेत्
पुण्यदेशे पुण्यकाले सत्पात्रे विधिना गृही । दद्याद्दानं यथाशक्तिदयांकुर्वीत जन्तुषु
पुण्यान्देशान्पुण्यकालान्पुण्यपात्राणिचाऽनघ !। कथयामिविशेषेणधर्मवृद्धिकराणिते
देशः सर्वोत्तमस्त्वेष भुवि यो मदधिष्ठितः । महामुनिगणा यत्र तपस्यन्तिमहाव्रताः
हरितद्भक्तमाहात्म्याद्देशानामस्ति पुण्यता । गङ्गाद्वारं मधुपुरी नैमिषारण्यमेव च ॥
कुरुक्षेत्रमयोध्या च प्रयागश्च गयाशिरः । पुरी वाराणसी चैव पुण्यश्च पुलहाश्रमः ॥
कपिलाश्रमः श्रीरङ्गः प्रभासश्चकुशस्थली । क्षेत्रं सिद्धपदाख्यं च पौष्करश्चमहत्सरः
क्रीडास्थानं भगवतः सश्रियो रैवताचलः । तथा गोवर्द्धनगिरिः पुण्यंवृन्दावनंवनम्
महेन्द्रमलयाद्याश्च सप्ताऽपि कुलपर्वताः । भागीरथी महापुण्या यमुना च सरस्वती
गोदावरी च सरयूः कावेरी गोमतीमुखाः । पुराणप्रथिताः पुण्या महानद्योनदास्तथा
महोत्सवैर्भवेद्यत्र भगवत्प्रतिमार्चनम् । प्रभोरनन्यभक्ताश्च भवेयुर्यत्रयत्र च ॥ २६ ॥

अहिंस्राश्च स्वधर्मस्था यत्र स्युर्ब्राह्मणोत्तमाः ।
मृगाद्याः पशवो यत्र विचरेयुश्च निर्भयाः ॥ २७ ॥

यत्रयत्रावतारश्च हरेर्वासश्च यत्र वा । एते पुण्यतमा देशा भुवि सन्ति विशेषतः ॥

अल्पोऽप्येषु कृतो धर्मः स्यात्सहस्रगुणो नृणाम् ।

पुण्यवृद्धिकरान्कालाञ्छृणवथो वच्मि नारद !॥ २९ ॥

अयने द्वे च विषुवं ग्रहणं सूर्यसोमयोः । दिनक्षयो व्यतीपातः श्रवणर्क्षाणि सर्वशः

द्वादश्य एकादश्यश्च मन्वाद्याश्च युगादयः ।

पुण्याः स्युस्तिथयः सर्वा अमावास्या च वैधृतिः ॥ ३१ ॥

मासर्क्षयुक्पौर्णमास्यश्चतस्रोऽप्यष्टकास्तथा ।

स्वजन्मर्क्षाणि च हरेर्जन्मोत्सवदिनानि च ॥ ३२ ॥

स्वस्य स्त्रियाश्चाऽर्भकाणां संस्कारोऽभ्युदयस्तथा ।

सत्पात्रलब्धिश्च यदा कालाः पुण्यतमा इमे ॥ ३३ ॥

देवपितृद्विजसतामेषां शक्त्या समर्चनम् । स्नानदानजपादीनि स्युरनन्तफलानि हि

सत्पात्रं तु स्वयं साक्षाद्भगवानेव नारद !। शाखानामिव मूलाम्बु यद्दत्तं सर्वतुष्टिकृत्

अहिंसावेदविद्याभिस्तुष्टिः सद्धर्मभक्तिभिः ।

हृदि विष्णुं दधीरन्ये ते सत्पात्राणि वै द्विजाः ॥ ३६ ॥

एकान्तिकाश्च भगवद्भक्ता बद्धविमोचकाः ।

सत्पात्राणीति जानीहि येष्वास्ते भगवान्स्वयम् ॥ ३७ ॥

आढ्यस्तु कारयेद्विष्णोर्मन्दिराणि दृढानि च ।

पूजाप्रवालसिद्ध्यर्थं तद्वृत्तीश्चाऽपि कारयेत् ॥ ३८ ॥

जलाशयान्वाटिकाश्च विष्णवर्थमुपकल्पयेत् । सदन्नैःसुरसैःसाधून्ब्राह्मणांश्चैवतर्पयेत्

अहिंसान्वैष्णवान्यज्ञान्कुर्याच्छक्त्या यथाविधि ।

व्रतजन्मोत्सवान्विष्णोः सम्भारेण च भूयसा ॥ ४० ॥

प्रौष्ठपदासिते पक्षे क्षयाहे तीर्थपर्वसु । पित्रोः श्राद्धं प्रकुर्वीत तद्बन्धूनां च शक्तितः

दैवे कर्मणि पित्र्ये च भक्तान्भगवतोद्विजान् । पूजयेतस्वधर्मस्थान्भोजयेद्भगवद्धिया

दैवे द्वौ भोजयेद्विप्रौ त्रींश्च पित्र्ये यथाविधि ।

एकैकं वोभयत्राऽपि नैव श्राद्धे तु विस्तरेत् ॥ ४३ ॥

देशकालद्रव्यपात्रपूजोपकरणानि च । विस्तरेण यथाशास्त्रं न स्याद्देवेति निश्चितम्

न श्राद्धे क्वाऽपि मांसं तु दद्यान्नाऽद्याच्च मानवः ।
मुन्यन्नैः क्षीरसर्पिर्भ्यां तृप्यन्ति पितरो भृशम् ॥ ४५ ॥

अहिंसा प्राणिमात्रस्य मनोवाक्तनुभिस्तु या । तयैवपितरःसर्वेंतृप्यन्त्यतिदयालवः
तस्मात्कुसङ्गतः क्वाऽपि शास्त्रहार्दमवुध्य च । श्राद्धे मांसं नैव दद्याद्वासुदेवपरःपुमान्
व्रतानि कुर्याद्विष्णोश्च ब्रह्मचर्यादिभिर्यमैः । सहैव तत्परो नान्यत्कार्यं कुर्याच्चतद्दिने

स्वसम्बन्धिजनानां चाऽप्याशौचं जनिनाशयोः ।
यथाशास्त्रं पालयेत ग्रहणे चाऽर्कचन्द्रयोः ॥ ४६ ॥

व्यावहारिककार्याणांविवादेनिर्णयेऽपि च । गृहीतरास्त्यागिनोयेतेनकार्यानचाधवाः

यत्रैते स्युर्न तत्कार्यं सिध्येत्क्वापि द्विजोत्तम !।
सर्वस्वनाशस्तत्र स्यादित्येवं त्वस्ति निर्णयः ॥ ५१ ॥

धर्मा एते गृहस्थानांमयासङ्क्षेपतोदिताः । यदनुष्ठानतोनृणांस्यात्स्वेष्टसुखमक्षयम्
शिलादिजीविकावृत्तिभेदेन गृहिणो द्विजाः । चतुर्विधाः प्रकीर्त्त्यन्तेतत्तन्नाम्नाचनारद

स्त्रीणामथ प्रवक्ष्यामि धर्मान्धर्मवतांवर !।
येषु स्थिताः स्त्रियः सर्वाः प्राप्नुवन्तीप्सितं सुखम् ॥ ५४ ॥
सुवासिनीभिर्नारीभिः स्वपतिर्देववत्सदा ।
सेवनीयोऽनुवर्त्त्यश्च जरन्रुग्णोऽधनोऽपि वा ॥ ५५ ॥

तद्वन्धवश्चानुवर्त्याः सेवनेनयथोचितम् । उज्ज्वलानिविधेयानिगृहोपकरणानिच
गृहं मार्जनसेकाद्यैः स्वच्छं कार्यं दिनेदिने । प्रियं सत्यंचवक्तव्यंस्थेयंशुचितयासदा

चाञ्चल्यमतिलोभश्च क्रोधः स्तेयं च हिंसनम् ।
अधार्मिकाणां सङ्गश्च वर्ज्यः स्त्रीणां तथा नृणाम् ॥ ५८ ॥
भवितव्यं तत्पराभिर्द्धर्मकार्येषु सर्वदा ।
त्यक्त्वौद्धत्यं विनीताभिः स्थेयं जित्वेन्द्रियाणि च ॥ ५९ ॥
पातिव्रत्ये स्थिताभिश्च धर्मे तामी रमापतेः ।

भक्तिः कार्या स्वतन्त्राभिर्भवितव्यं न कुत्रचित् ॥ ६० ॥

विधवातुसदाविष्णुंसेवेतपतिभावतः । कामसम्बन्धिनीर्वार्त्तानशृण्वीत न कीर्तयेत्
आसन्नसम्बन्धवतो विनाऽन्यान्पुरुषान्कचित् । अनापदिस्पृशेन्नैवपश्येन्नैवचकामतः
स्तनपश्यतुनुःस्पर्शाद्वृद्धस्यचन दुष्यति । कार्यआवश्यकेताभ्यांभाषणेचविभर्तृका
व्यावहारिककार्ये च विवादमधिकं नरैः । न कुर्वीताऽवश्यकार्ये तैर्भाषेत विना रहः

नेक्षेत मिथुनीभूतं बुद्ध्या पश्वाद्यपि क्वचित् ।
त्यजेच्च सकलान्भोगान्स्यात्सकृन्मितभुक्तया ॥ ६५ ॥

सधातुसूक्ष्मवासांसिनालङ्काराश्चधारयेत् । न दिवा शयनं कुर्यान्न खट्वायामनापदि
ताम्बूलभक्षणंनैव कुर्यान्नाभ्यङ्गमञ्जनम् । पुम्प्रसङ्गाच्चविभियात्कृष्णाहेरिवनित्यदा
समीक्ष्यपुरुषंनारीयानमोहमुपाव्रजेत् । तादृशीतुविनालक्ष्मीमेकांनान्यास्तिकुत्रचित्
धर्मनिष्ठा ततो नारी स्वनिःश्रेयसमिच्छती । नेक्षेतपुरुषाकारंबुद्धिपूर्वञ्च न स्पृशेत्
कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि नैरन्तर्येण भक्तितः । व्रतानिकुर्याच्च सदा भवेन्नियमतत्परा
पित्रापुत्रादिनावाऽपितरुणी तरुणेन च । सह तिष्ठेन्न रहसि कुसङ्गं सर्वथा त्यजेत्

सधवा विधवा वा स्त्री स्वरजोदर्शनं क्वचित् ।
न गोपयेत्त्रिरात्रं तु मनुष्यादींश्च न स्पृशेत् ॥ ७२ ॥

प्रथमेऽहनिचण्डालीद्वितीयेब्रह्मघातिनी । तृतीयेरजकीप्रोक्ता साचतुर्थेऽह्निशुद्ध्यति

इति स्त्रीणां मया धर्माः सङ्क्षेपात्कथितास्तव ।
युक्ता यैर्योषितो यायुरिहाऽमुत्र महत्सुखम् ॥ ७४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवासुदेवमाहात्म्ये गृहस्थधर्मनिरूपणं नाम
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

वनस्थयतिधर्मनिरूपणम्

श्रीनारायण उवाच

वानप्रस्थस्य वक्ष्यामि नियमानथ ते मुने !। तृतीयआयुषो भागे तृतीयाश्रम ईरितः
अनुकूला स्वसेवायां विरक्ताच तपःप्रिया । यदि पत्नी भवेत्तर्हि तया सहवनंविशेत्
अन्यथा तु सुतादिभ्यस्तस्या पोषणरक्षणम् ।
आदिश्य स्वयमेकाकी विरक्तो वनमाविशेत् ॥ ३ ॥
निर्भयो निवसेत्तत्र तपोरुचिरतन्द्रितः । कुर्यादुटजमग्न्यर्थं स्वयं तु बहिरावसेत् ॥
भवेत्पञ्चतपा ग्रीष्म उदवासश्च शैशिरे । आसारषाट्चवर्षासुजितक्रोधोजितेन्द्रियः
वासश्च तार्णं पार्णम्वा वसीताऽजिनवल्कलम् ।
भुञ्जीत ऋषिधान्यानि वन्यं कन्दफलादि वा ॥ ६ ॥
अग्निपक्कं वाऽर्कऽपक्कमपक्कं वापिभक्षयेत् । अभावेत्वेषदन्तानामश्मोलूखलकुट्टितम्
स्वयमेवाहरेदन्नं यथाकालं दिनेदिने । काले पराहृतं वापि गृह्णीयान्नाऽन्यथा क्वचित्
कालेऽपि कृष्टपच्यन्तु न गृह्णीयादनापदि । वन्यैरेवाग्निकार्यञ्चधान्यैः कुर्वीत पूर्ववत्
रक्षेत्कमण्डलुं दण्डमग्निहोत्रपरिच्छदान् । केशरोमश्मश्रुनखान्धारयेन्मलिनान्दतः ॥
अङ्गान्यमर्दयन्स्नायाद्भूतले च शयीत सः । देशकालवलावस्थानुसारेण तपश्चरेत्
फेनपाश्चौदुम्बराश्च वालखिल्यास्तथैव च । वैखानसेति कथिताश्चतुर्द्धावनवासिनः
यथाशक्तिद्वादशाब्दानष्टौ वा चतुरो वने । वसेद्द्वावेकमेवाऽपि ततःसंन्यासमाश्रयेत्
यदि स्यात्तीव्रवैराग्यं तर्हि न्यासो हितावहः ।
वसेत्तत्रैवाऽन्यथा तु यावज्जीवं वने द्विजः ॥ १४ ॥
यथाविधि कृतत्यागस्तुरीयाश्रममास्थितः ।
साच्छादनं तु कौपीनं कन्थामेकाञ्च धारयेत् ॥ १५ ॥

दण्डं कमण्डलुं चाम्बुगालनं बिभृयाच्च सः । सदाचारद्विजगृहेकालेभिक्षांसमाचरेत्
न कुर्यात्प्रत्यहं भिक्षामेकस्यैव गृहेयतिः । रसलुब्धो भवेन्नैव सकृच्च मितभुग्भवेत्
वनस्थाश्रमिणो भिक्षां प्रायो गृह्णीत भिक्षुकः ।
तदन्धसाऽतिशुद्धेन शुद्ध्यत्येवाऽस्य यन्मनः ॥ १८ ॥
घ्राणेऽपि मांससुरयोः पाराकं व्रतमाचरेत् ।
शौचाचारविशुद्धः स्याच्छूद्रादींश्चापि न स्पृशेत् ॥ १६ ॥
नित्यं कुर्याद्विष्णुपूजा मद्याद्विष्णोर्न्निवेदितम् ।
द्वादशार्णं जपेद्विष्णोरष्टाक्षरमनुञ्च वा ॥ २० ॥
असद्वादंनकुर्वीतवृत्त्यर्थंनाचरेत्कथाम् ।असच्छास्त्रेनसक्तःस्यान्नोपजीवेच्चजीविकाम्
सच्छास्त्रमभ्यसेच्चासौबन्धमोक्षानुदर्शनम् । मठादीन्नैवबध्नीयादहन्ताममतेत्यजेत्
चातुर्मास्यंविनैकत्रवसेन्नाऽसावनापदि । आत्मनश्च हरेरूपं विद्याज्ज्ञानेन तत्त्वतः॥
कामं क्रोधं भयं वैरं धनधान्यादिसङ्ग्रहम् । नैवकुर्यात्पालयेतयमांश्चनियमान्यतिः
तीव्रज्ञानविरागाभ्यां सम्पन्नोऽपि यतिर्ध्रुवम् ।
स्त्रीवित्तभूषासद्वस्त्रसंसर्गाद्भ्रष्टताम्व्रजेत् ॥ २५ ॥
पुष्पचन्दनतैलादिसुगन्धिद्रव्यवर्जनम् । त्यागीकुर्वीताऽन्यथा तु भवेद्देहात्मधीःस वै
आहारो यस्य यावांस्तं तावान्स्त्रीकाम आविशेत् ।
अतो मितं नीरसं च भोजनं त्यागिनो हितम् ॥ २७ ॥
न श्राव्या ग्राम्यवार्त्ता च मोक्षसिद्धिमभीप्सता ।
नश्येद्यच्छ्रवणान्नृणां सद्यो विष्णुकथारुचिः ॥ २८ ॥
अपिचित्रमयींनारीं त्यागीनैक्षेतन स्पृशेत् । स्त्र्याकारदर्शनादेवभ्रष्टाभूरितपस्विनः
कुटीचको बहूदश्च हंसः परमहंसकः । एवं चतुर्द्धा कथितो यतिर्वैराग्यभेदतः ॥३०॥
काषायवाससोये मे भविष्याःसाधवश्च तैः । कार्यं मदर्थपाकादितुर्याश्रमस्थितैरति
श्रावासुदेवभक्ता ये तीव्रवैराग्यशालिनः । तेषां धर्मस्तुतत्सेवा प्रोक्ताहस्सुचरात्रिषु
एकोऽपि क्षणस्तेषां ज्ञानविज्ञानभूयसाम् ।

भक्तिं नवविधां विष्णोर्विना व्यर्थो न वै भवेत् ॥ ३३ ॥

सर्वैर्गुणैरुपेतोऽपिभगवद्विमुखो यदि । स्वजनोऽपि भवेत्तं तु जह्युरेव हि वैष्णवाः

प्रासादिकं हरेरन्नं मोक्षितंतत्पदाम्बुना । भुञ्जीरंस्तुलसीमिश्रं प्रत्यहं सात्वताजनाः

स्त्रीणाञ्च स्त्रीषु सक्तानां प्रसङ्गो विष्णुचिन्तकैः ।

सर्वथैव परित्याज्यो भवेत्तद्ध्यानमन्यथा ॥ ३६ ॥

भगवन्तंवासुदेवंविनैकमितरःपुमान् । कोऽपिनास्त्येव यो नारींसमीक्ष्यनविमुह्यति

यत्र स्थित्या मुहुः स्त्रीणां स्यातां शब्दश्रुतीक्षणे ।

त्यागी तत्र वसेन्नैव वसन्धर्मच्युतो भवेत् ॥ ३८ ॥

कामो लोभो रसास्वादः स्नेहो मानस्तथा च रुट् ।

एते त्याज्याः प्रयत्नेन षड् दोषाः संसृतिप्रदाः ॥ ३९ ॥

प्रोक्तेषुधर्मेष्वेतेषुयस्ययस्यच्युतिर्भवेत् । यथाशक्तियथाशास्त्रंकार्यातत्तस्यनिष्कृतिः

इत्थं चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणाञ्च नारद ! । धर्माःसंक्षेपतः प्रोक्ता वैष्णवानाञ्चते मया

वर्णीयतिश्चधर्मस्थोब्रह्मलोकमुपैति वै । ऋषिलोकंवनस्थश्चगृहस्थःस्वर्गमाप्नुयात्

भक्त्या सहैताञ्छ्रीविष्णोराचरेयुस्तु ये जनाः ।

ते तु सर्वेऽपि देहान्ते विष्णुलोकमवाप्नुयुः ॥ ४३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे

श्रीवासुदेवमाहात्म्ये वनस्थयतिधर्मनिरूपणं नाम

त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

ज्ञानस्वरूपनिरूपणम्

श्रीनारायण उवाच

अथज्ञानस्वरूपं तेवच्मिसाङ्ख्येननिश्चितम् । क्षेत्रादिज्ञायतेयेन तज्ज्ञानंहिनिरुच्यते
वासुदेवः परं ब्रह्म बृहत्यक्षरधामनि । आदावेकोऽद्वितीयोऽभून्निर्गुणो दिव्यविग्रहः
सकार्यमूलप्रकृतिः सकलाऽक्षरतेजसि । प्रकाशेऽर्कस्यरात्रीव तिरोभूता तदाऽभवत्
सिसृक्षाऽथाभवत्तस्यब्रह्माण्डानांयदातदा । सकालाविर्बभूवादौ महामायाततोहिसा
तां कालशक्तिमादाय वासुदेवोऽक्षरात्मना । सिसृक्षयैक्षत यदा सा चुक्षोभ तदैवहि
तस्याः प्रधानपुरुषकोट्योजज्ञिरे मुने !। युज्यन्ते स्म प्रधानैस्ते पुरुषाश्चेच्छयाप्रभोः
पुमांसोनिदधुर्गर्भांस्तेषु तेभ्यश्चजज्ञिरे । ब्रह्माण्डानिह्यसङ्ख्यानितत्रैकंतुविविच्यते

आदौ जज्ञे महांस्तस्मात्पुंसो वीर्याद्धिरण्मयात् ।
अहङ्कारस्ततस्तस्माद्गुणाः सत्त्वादयस्त्रयः ॥ ८ ॥

तमसः पञ्च तन्मात्रा महाभूतानि जज्ञिरे । दशेन्द्रियाणि रजसो बुद्ध्यासहमहानसुः

सत्त्वादिन्द्रियदेवाश्च जायन्ते स्म मनस्तथा ।
सामान्यतस्तत्त्वसञ्ज्ञा एते देवाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १० ॥

प्रेरिता वासुदेवेन स्वस्वांशैरैश्वरंवपुः । अजीजनन्विराट्सञ्ज्ञं ते चराचरसंश्रयम् ॥
सच वैराजपुरुषःस्वसृष्टास्वप्स्ववशेत यत् । तेन नारायणइतिप्रोच्यते निगमादिभिः

तन्नाभिपद्माद् ब्रह्माऽऽसीद्राजसोऽथ हृदम्बुजात् ।
जज्ञे विष्णु सत्त्वगुणो ललाटात्तामसो हरः ॥ १३ ॥

एतेभ्यएवस्थानेभ्यस्तिस्रआसंश्चशक्तयः । तत्रासीत्तामसीदुर्गासावित्रीराजसीतथा

सात्त्विकी श्रीश्चेति सर्वा वस्त्राऽलङ्कारशोभिताः ॥ १४ ॥
ता वैराजाज्ञया त्रींश्च ब्रह्मादीन्प्रतिपेदिरे ।

दुर्गां रुद्रश्च सावित्रीं ब्रह्माणं विष्णुमन्तिमां ॥ १५ ॥
चण्डिकाद्याश्च दुर्गाया अंशेनाऽऽसन्सहस्रशः ।
त्रयीमुख्याश्च सावित्र्याः शक्तयोंऽशेन जज्ञिरे ॥
दुस्सहाप्रमुखाश्चासन्नंशेनैव श्रियो मुने !॥ १६ ॥

तत्रादितो यो ब्रह्माऽऽसीद्वैराजनाभिपद्मतः । एकार्णवेतदब्जस्थः सकश्चिदपि नैक्षत
विसर्गबुद्धिमप्राप्तोनात्मानञ्चविवेदसः । कोऽहं कुत इति ध्यायन्नदिदृक्षत्कजाश्रयम्

नाऽलं प्रविश्याऽधो यातुस्तन्मूलञ्चविचिन्वतः ।
सम्वत्सरशतं यातं तस्य नाऽन्तं तु सोऽलभत् ॥ १९ ॥

ऊर्ध्वं पुनरुपेत्याऽथ श्रान्तश्च निषसाद सः । अदृश्यमूर्तिर्भगवानूचे तपतपेति तम्
तच्छ्रुत्वा तत्प्रवक्तारमदृष्ट्वा च स सर्वतः । गुरूपदिष्टवत्तेपे दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥
पद्मे तपस्यते तस्मै तपः शुद्धात्मने ततः । समाधौ दर्शयामासधामवैकुण्ठमच्युतः
प्राधानिकागुणा यत्र त्रयोपि रजआदयः । न भवन्त्यल्पमपि यत्कालमायाभयंन च
सहोदितार्कायुतवद्भास्वरेतत्र तेजसि । वासुदेवंददर्शाऽसौ रम्यदिव्यासिताकृतिम्
चतुर्भुजं .गदापद्मशङ्खचक्रधरं विभुम् । पीताम्बरं महारत्नकिरीटादिविभूषणम् ॥

नन्दताक्ष्यार्दिभिर्जुष्टं पार्षदैश्च चतुर्भुजैः ।
सिद्धिभिश्चाष्टभिः षड्भिर्वद्धाञ्जलिपुटैर्भगैः ॥ २६ ॥

सिंहासने श्रिया साकमुपविष्टं तमीश्वरम् । प्रणम्यप्राञ्जलिस्तथौविरञ्चो हृष्टमानसः
तं प्राह भगवान्ब्रह्मंस्तुष्टोऽहंतपसा तव । वरं वरयमत्तस्त्वंस्वाभीष्टंयत्प्रियोऽसि मे
इत्युक्तस्तेन तं जानंस्तपसि प्रेरकं प्रभुम् । स्वञ्चविश्वसृजं ब्रह्मायाचेऽभिमतंवरम्
प्रजाविसर्गशक्तिं मे देहि तुभ्यंनमःप्रभो !। तत्रापिचनं वदुध्येयं यथा कुरुतथाकृपाम्
ततस्तं भगवानूचे सेत्स्यते ते मनोरथः । वैराजेन मयात्मैक्यंभावयित्वा समाधिना

प्रजाः सृजाऽथ स्वासाध्ये कार्ये स्मर्योऽहमिष्टदः ॥ ३१ ॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुर्ब्रह्माप्येकसमाधिना ।
वैराजेनाऽथ लोकान्प्राग्लीनासर्वान्स्व ऐक्षत ॥ ३२ ॥

विसर्गशक्ति सम्प्राप्य स सर्गाय मनोदधे । ब्रह्मज्योतिर्मयस्तावदादित्यःप्रादुरास ह
स्थापयित्वाऽण्डमध्ये तं ततः स मनसाऽसृजत् ।
तपोभक्तिविशुद्धेन मुनीनाद्यांश्चतुःसनान् ॥ ३४ ॥
प्रजाः सृजतचेत्यूचेतांस्तदातेतुतद्वचः । न जगृहुर्नैष्ठिकेन्द्रास्तेभ्यश्चुक्रोध विश्वसृट्
क्रुद्धस्य तस्य भालाच्च रुद्र आसीत्तमोमयः ।
मन्युं नियम्य मनसा प्रजेशान्सोऽसृजत्ततः ॥ ३६ ॥
मरीचिमत्रिं पुलहं पुलस्त्यञ्च भृगुं क्रतुम् । वसिष्ठं कर्दमञ्चैव दक्षमङ्गिरसं तथा॥
धर्मं ततः सहृदयादधर्मंपृष्ठतस्तथा । मनसः काममास्याच्चवाणींक्रोधं भ्रुवोऽसृजत्
शौचं तपो दया सत्यमिति धर्मपदानि च । चतुर्भ्यो वदनेभ्यश्च चत्वारि ससृजेततः
ऋग्वेदं वदनात्पूर्वाद्यजुर्वेदं च दक्षिणात् । ।
ससर्ज पश्चिमात्साम सौम्याच्चाऽथर्वसञ्ज्ञितम् ॥ ४० ॥
इतिहासपुराणानि यज्ञान्विप्रशतं तथा ।
वस्वादित्यमरुद्विश्वान्साध्यांश्च मुखतोऽसृजत् ॥ ४१ ॥
बाहुभ्यः क्षत्रियशतमूरुभ्यां चविशांशतम् । पद्भ्यांशूद्रशतंचैतान्ससर्जसहवृत्तिभिः
ब्रह्मचर्यं च हृदयाद्गार्हस्थ्यं जघनस्थलात् । वनाश्रमंतथोरस्तःसंन्यासंशिरसोऽसृजत्
वक्षःस्थलात्पितृगणानसुराञ्जघनस्थलात् । ससर्ज च गुदान्मृत्युंनिर्ऋतिं निरयांश्च
गन्धर्वांश्चारणान्सिद्धान्सर्पान्यक्षांश्च राक्षसान् ।
नगान्मेघान्विद्युतश्च समुद्रान्सरितस्तथा ॥ ४५ ॥
वृक्षान्पशून्पक्षिणश्च सर्वान्स्थावरजङ्गमान् ।
स्वाङ्गेभ्य एव सोस्राक्षीद् ब्रह्मा नारायणात्मकः ॥ ४६ ॥
सृष्टिमेतां विलोक्याऽपि नाऽतिप्रीतो यदा तदा ।
हरिं ध्यात्वा स ससृजे तपोविद्यासमाधिभिः ॥
ऋषीन्स्वायम्भुवादींश्च मनूंश्च मनुजानपि ॥ ४७ ॥

ततः प्रीतः स सर्वेषांनिवासाययथोचितम् । स्वर्लोकंचभुवर्लोकंभूर्लोकंसमकल्पयत्

येषां तु यादृशं कर्म प्राक्कालीनं हि तान्विधिः ।
संस्थाप्य तादृशे स्थाने वृत्तीस्तेषामकल्पयत् ॥ ४९ ॥
देवानाममृतं नृणामृषीणां चान्नमोषधीः । यक्षरक्षोसुरव्याघ्रसर्पादीनां सुरामिषम्
चक्लृपे गोमृगादीनां वृत्तिं स यवसादि च ॥ ५० ॥
स देवानां तु विश्वेषां हव्यं वृत्तिमकल्पयत् । अमूर्तानांचमूर्तानांपितृणाकव्यमेवच
दुर्गोद्भवानां शक्तीनां तदुपासनतत्परैः । दैत्यरक्षःपिशाचाद्यैर्दत्तं मद्यामिषादि च
तथा सावित्र्युद्भवानां शक्तीनां तदुपासकैः ।
दत्तमृष्यादिभिर्यज्ञे मुन्यन्नंचान्नमोषधीः ॥ ५३ ॥
श्रीजातानां च शक्तीनां तदुपास्तिपरायणैः । दत्तं देवासुरनरैः पायसाज्यसितादिच
प्रजापतीनांसपतिस्ततःप्राहाऽखिलाःप्रजाः । इज्यादेवाश्चपितरोहव्यकव्यात्मकैर्मखैः
इष्टाः सम्पूरयिष्यन्तिह्येतेयुष्मन्मनोरथान् । एतान्येनाऽर्चयिष्यन्तितेवैनिरयगामिनः
इत्थं कृता हि मर्यादा तेन नारायणात्मना ।
दैवं पित्र्यमतोनित्यं जनैःकार्यं यथाविधि ॥ ५७ ॥
ततो ब्रह्मा स सर्वेषांधर्मसेत्ववनायच । तत्तज्जातिषुयेमुख्यास्तान्मनूंश्चाप्यतिष्ठिपत्
वासुदेवेच्छयैवेत्थं वैराजाद्ब्रह्मरूपिणः । कल्पेकल्पे भवत्येव सृष्टिर्बहुविधा मुने !॥
प्राक्कल्पे यादृशी सञ्ज्ञा वेदाः शास्त्राणि च क्रियाः ।
कल्पेऽन्ये तादृशाः सर्वे धर्माः स्युश्चाऽधिकारिणः ॥ ६० ॥
विष्णुर्यः कथितः सोऽपि वैराजपुरुषात्मकः ।
पोषयत्यखिलाँल्लोकान्मर्यादाः परिपालयन् ॥ ६१ ॥
मन्वादिभिः पाल्यमानाः सेतवस्त्वसुरैर्यदा ।
कामरूपैर्विभिद्यन्ते वासुदेवस्तदा स्वयम् ॥
ब्रह्मादिभिः प्रार्थ्यमानः प्रादुर्भवति भूतले ॥ ६२ ॥
अवतारा भगवतो भूताभाव्याश्च सन्ति ये ।
कैस्तु नशक्यते तेषां सङ्ख्यां सङ्ख्याविशारदैः ॥ ६३ ॥

सद्धर्मदेवसाधूनां गुप्त्यै तद्द्रोहिमृत्यवे । श्रेयसेसर्वभूतानामाविर्भावोऽस्तिसत्पतेः

स वासुदेवः प्रकृतौ पुंसि कार्येषु चैतयोः ।
अन्वितश्च पृथक् चाऽऽस्ते सर्वाधीशः स्वधामनि ॥ ६५ ॥
व्याप्य स्वांशैरिमाँल्लोकान्यथाग्निवरुणादयः ।
स्वस्त्यासते स्वस्वलोके तथैव भगवान्मुने !॥ ६६ ॥
सर्गात्प्राक्सच्चिदानन्दः शुद्ध एकश्च निर्गुणः ।
यथाऽऽसीत्ताद्गेवासावन्वितोऽप्यस्ति निर्मलः ॥ ६७ ॥

वायुतेजोजलक्ष्मासु तत्तत्कार्येषु खं यथा । अन्वीयाऽप्यस्तिनिर्लेपंतथा पूर्वंतथैवहि
सर्वोपास्यो नियन्ता च व्यापकश्चैवकीर्तितः । आत्यन्तिकेलयेऽथैवाभवत्येवयथापुरा
वैराजः पुरुषो योऽत्र प्रोक्तोऽसावीश्वराभिधः । ज्ञेयःस्वतन्त्रःसर्वज्ञोवश्यमायश्चनारद
एतस्यैव स्वरूपाणिब्रह्मविष्णुशिवास्त्रयः । रजआदिगुणोपेताःस्वगुणानुगुणक्रियाः
ब्रह्मणो ये समुत्पन्ना देवासुरनरादयः । ते जीवसञ्ज्ञा ह्यल्पज्ञाः परतन्त्रा भवन्ति च
जीवानामीश्वराणां च तनवःक्षेत्रसञ्ज्ञकाः । महदादितत्त्वमय्यःक्षेत्रज्ञाख्यास्तुतद्विदः
क्षेत्राणां च क्षेत्रविदां प्रधानपुरुषस्य च । मायायाः कालशक्तेश्चाऽक्षरस्यचपरात्मनः

पृथक्पृथग्लक्षणैर्यज्ज्ञानं तज्ज्ञानमुच्यते ॥ ७४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवासुदेवमाहात्म्ये ज्ञानस्वरूपनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

वैराग्यभक्तिनिरूपणम्

श्रीनारायण उवाच

वैराग्यस्याऽथतेवच्मिलक्षणंमुनिसत्तम !। क्षयिष्णुवस्तुष्वरुचिःसर्वथेतितदीरितम्
आरभ्य मायापुरुषात्सर्वा ह्याकृतयस्तु याः । कालशक्त्याभगवतोनाश्यन्तेताश्चतद्वशाः
प्रत्यक्षेणाऽनुमानेनशाब्देनचविवेकिभिः । असत्यताकृतीनांचनिश्चितासत्यतात्मनाम्
नित्येन प्रलयेनैष कालो नैमित्तिकेन च । प्राकृतिकेन रूपेण चरत्यात्यन्तिकेन च ॥
देहिदेहा इमे नित्यं क्षीयन्ते परिणामिनः । क्रमेण दृश्यते यत्र बाल्यतारुण्यवार्द्धकम्
सूक्ष्मत्वान्नेक्ष्यते तत्तु गतिर्दीपार्चिषो यथा । फलवृद्धिर्वाऽनुपदं जायमाना द्रुमेयथा
तस्यांतस्यामवस्थायां दुःखं चमहदीक्ष्यते । जाग्रदादिष्ववस्थासुदुःखंचैवपुनःपुनः

दुःखमाध्यात्मिकं भूरि दृश्यते चाऽऽधिभौतिकम् ।
आधिदैविकमप्यत्र दुःखमेवाऽस्ति देहिनाम् ॥ ८ ॥

हाहा ममार मत्पुत्रो हा पत्नी म्रियते मम । तातं मेऽभक्षयद्व्याघ्रो दष्टा सर्पेणमेवधूः

महासौधोऽग्निना दग्धो हाहा सोपस्करोऽद्य मे ।
स्वकुटुम्बं कथं पोक्ष्ये नाऽवर्षत्पाकशासनः ॥ १० ॥

सस्यैःसमृद्धंमत्क्षेत्रंहाहा दग्धंहिमाग्निना । ह्रियन्तेतस्करैर्गावःसर्वस्वंममलुण्ठितम्

नृपेण दण्डितोऽत्यर्थं शत्रुणा हाऽतिताडितः ।
किं करोमि च कं ब्रूयां माता मे व्यभिचारिणी ॥ १२ ॥
विषं पास्यामि हाहाऽद्य मत्पत्नीं शत्रुराकृषत् ।
हा स्वसा मे हृता म्लेच्छैर्हाहाऽरिः प्राप मर्मभित् ॥ १३ ॥

म्रिये ज्वरातिव्यथया यमदूता इमे हहा । इत्थं रोरूयमाणा हि दृश्यन्ते सर्वतो जनाः
अवस्थानां शरीरस्यजन्ममृत्यू प्रतिक्षणम् । कालेनाल्पबुद्धिः स्वंपारब्धंदुःखमश्यते

प्रारब्धान्ते मृत्युदुःखंभवत्यप्रतिमं हि तत् । मृत्वाऽपि चमहद्दुखंप्राप्यतेयमयातना
ततो जरायुजोद्भिज्जस्वेदजाण्डजयोनिषु । भूत्वाभूत्वा यथाकर्मम्रियतेदुःखितैःपुनः
नित्यः प्रलय एवं ते कीर्त्तितः सूक्ष्मया दृशा ।
स ज्ञेयोऽथ मुने! वच्मि लयं नैमित्तिकाभिधम् ॥ १८ ॥
निमित्तीकृत्य रजनीं भवेद्विश्वसृजस्तु यः । नैमित्तिकःसकथितोलयोदैनंदिनश्चसः
चतुर्युगाणां साहस्रं दिनंविश्वसृजो मुने !। निशा चतावतीतस्यतद्द्वयंकल्पउच्यते
एकैकस्मिन्दिने तस्य चतुर्दश चतुर्दश । भवन्ति मनवो ब्रह्मन्धर्मसेत्वभिरक्षकाः॥
आद्यःस्वायम्भुवस्तत्रमनुःस्वारोचिषस्ततः । उत्तमस्तामसश्चाऽथरैवतश्चाक्षुषस्ततः
श्राद्धदेवश्च सावर्णिभौत्यो रौच्यस्ततः परम् । ब्रह्मसावर्णिनामाच रुद्रसावर्णिरेवच
मेरुसावर्णिसञ्ज्ञोऽथदक्षसावर्णिरन्तिमः । चतुर्दशैते मनवः प्रोक्ता ब्रह्मैकवासरे ॥
एकैकस्य मनोः कालो युगानांचैकसप्ततिः । दिव्यैर्द्वादशसाहस्रैर्युगकालश्चवत्सरैः
चतुर्दशस्यैव मनोरन्तरेऽन्तमुपेयुषि । सायंसन्ध्या विश्वसृजो जायते मुनिसत्तम!
दिनावसाने वैराजः शक्तीराकर्षति स्थितेः । वैराजात्मा तदा रुद्रस्त्रिलोकींहर्तुमीहते
आदौभवत्यनावृष्टिरत्युग्राशतवार्षिकी । तदाऽल्पसारसत्त्वानि क्षीयन्ते सर्वशोभुवि
साम्वर्त्तकस्य चाऽर्कस्य रश्मयोऽत्युल्वणा रसम् ।
आपातालात्पिबन्त्याशु धरण्यां सर्वमेव हि ॥ २९॥
सारसं चैव नादेयं सामुद्रं चाऽम्बु सर्वशः ।
शोषयित्वाऽखिलाँल्लोकान्सोऽर्को नयति सङ्क्षयम् ॥ ३० ॥
ततो भवतिनिःस्नेहा नष्टस्थावरजङ्गमा । कूर्मपृष्ठोपमा भूमिःशुष्कासङ्कुचिताभृशम्
कालाग्निरुद्रः शेषस्य मुखादुत्पद्यते ततः । अधोलोकान्सप्तभूमिभुवःस्वश्चदहत्यसौ
निर्दग्धलोकदशको ज्वालावर्त्तभयङ्करः । उद्भासितमहर्लोकः कालाग्निः परिवर्त्तते ॥
गताधिकारास्त्रिदशाभुवःस्वर्गनिवासिनः । महर्लोकाज्जनंयान्तिवह्निज्वालांभृशार्दिताः
निवृत्तिधर्मा ऋषयः प्राप्ताः सिद्धदशां तु ये । भूतलात्तेपितर्ह्येवंऋषिलोकंप्रयान्तिच
उत्तिष्ठन्ति ततो घोरा व्योम्नि साम्वर्त्तका घनाः ।

महागजकुलप्रख्यास्तडित्वन्तोऽतिनादिनः ॥ ३६ ॥
धूम्रवर्णाःपीतवर्णाःकेचित्कुमुदसन्निभाः । लाक्षारसनिभाःकेचिच्चाषपत्रनिभास्तथा
शमयित्वा महावह्निंशतंवर्षाण्यहर्निशम् । वर्षमाणाःस्थूलधाराःस्तनन्तस्ते घनाघनाः
ब्रह्माण्डस्यान्तरालञ्च पूरयन्ति ध्रुवावधि ॥ ३८ ॥
एकार्णवजले तस्मिन्वैराजपुरुषः स तु । अनिरुद्धात्मकः शेते नागेन्द्रशयने प्रभुः ॥
तदा देवाश्च ऋषयो रजःसत्त्वतमोवशाः । ये ते सह विरिञ्चेनस्वकीयगुणकर्षिताः
प्रविश्य तस्य जठरे शेरते दीर्घनिद्रया ॥ ४० ॥
ये तु ब्रह्मात्मैक्यभावा वशीकृतगुणत्रयाः । निवृत्तेनैव धर्मेण वासुदेवमुपासते ॥ ४१
महरादिषु लोकेषु ते चतुर्षु कृतालयाः । तं वैराजं संस्तुवन्तोनिवसन्तियथासुखम्
नारायणः स भगवान्स्वरूपं परमात्मनः । चिन्तयन्वासुदेवाख्यं शेते वै योगनिद्रया
निशान्ते ब्रह्मणा साकं सर्वे तेतस्य जाठराः । उत्पद्यन्तेयथापूर्वंयथाकर्माधिकारिणः
एवं नैमित्तिको नाम त्रिलोकीक्षयलक्षणः । प्रलयः कथितस्तुभ्यंप्राकृतंकीर्त्तयाम्यथ
य एष कल्पः कथितस्तादृशानांशतत्रयम् । षष्ट्याधिकञ्चयःकालोवैधसःसतुवत्सरः
पञ्चाशता तैः परार्द्धा ब्रह्मायुस्तद्द्वयंमतम् । पराख्यकाले सम्पूर्णे महान्भवतिसङ्क्षयः
संहाररुद्ररूपेण संहृत्य स्वं विराड्वपुः । स्वपरं निर्गुणंरूपंवैराजोयातुमिच्छति
तदा भवत्यनावृष्टिः पूर्ववच्छतवार्षिकी ।
साङ्कर्षणश्च कालाग्निर्दहत्यण्डमशेषतः ॥ ४६ ॥
साम्वर्त्तकास्ततो मेघा वर्षन्त्यतिभयानकाः । शतंवर्षाणिधाराभिर्मुसलाकृतिभिर्मुने
महदादेर्विकारस्य विशेषान्तस्य सङ्क्षयः । सर्वस्यापि भवत्येव वासुदेवेच्छयाततः
आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धात्मकं गुणम् ।
आत्तगन्धाततोभूमिः प्रलयत्वाय प्रकल्पते ॥ ५२ ॥
ग्रसतेऽम्बु गुणं तेजो रसंतल्लीयते ततः । रूपं तेजो गुणं वायुर्ग्रसतेर्लीयतेऽथ तत्
वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशो ग्रसते ततः । प्रशाम्यतितदावायुःखन्तुतिष्ठत्यनावृतम्
भूतादिस्तद्गुणं शब्दंग्रसतेलीयतेचखम् । इन्द्रियाणिविलीयन्तेतेजसाहङ्कृतौततः

अहङ्कारे विलीयन्तेसात्त्विके देवता मनः । यद्यद्यस्मात्समुत्पन्नंतत्तत्तस्मिन्हिलीयते

अहङ्कारो महत्तत्वे त्रिविधोऽपि प्रलीयते ।
तत्प्रधाने च तत्पुंसि स मूलप्रकृतौ ततः ॥ ५७ ॥

एष प्राकृतिको नाम प्रलयः परिगीयते । तिरोभवन्ति जीवेशायत्राऽव्यक्तेहरीच्छया

यदा च मायापुरुषौ कालोऽत्यक्षरतेजसि ।
तदिच्छया तिरोयान्ति स त्वेको वर्तते प्रभुः
तदा स प्रलयो ज्ञेयो नारदात्यन्तिकाभिधः ॥ ५६ ॥

इत्थंप्रभोःकालशक्त्यालयैरेतैश्चतुर्विधैः । असद्बुद्ध्वाऽखिलंतत्राऽरुचिर्वैराग्यमुच्यते

वासुदेवेतरान्देवान्कालमायावशीकृतान् ।
विदित्वा तेषु च प्रीतिं हित्वा तस्यैव नित्यदा ।
गाढस्नेहेन या सेवा सा भक्तिरिति गीयते ॥ ६१ ॥

श्रवणं कीर्तनं तस्यस्मृतिश्चरणसेवनम् । पूजाप्रणामोदास्यञ्च सख्यंचात्मनिवेदनम्

इत्येतैर्नवभिर्भावैर्यः सेवेत तमादरात् ।
अनन्यया धिषणया स हि भक्त इतीर्यते ॥ ६३ ॥

त्रिभिः स्वधर्मप्रमुखैर्युक्ताभक्तिरियंमुने !। धर्म एकान्तिकइति प्रोक्तोभागवतश्चसः

साक्षाद्भगवतः सङ्गात्तद्भक्तानाञ्च वेद्रशाम् ।
धर्मो ह्येकान्तिकः पुम्भिः प्राप्यते नाऽन्यथा क्वचित् ॥ ६५ ॥

नैतादृशं परं किञ्चित्साधनंहिमुमुक्षताम् । निःश्रेयसकरं पुंसां सर्वाभद्रविनाशनम्

एकान्तधर्मसिद्ध्यर्थं क्रियायोगपरोभवेत् । पुमान्स्याद्येननैष्कर्म्यंकर्मणांमुनिसत्तम!

एतन्मया वेदपुराणगुह्यं तत्त्वं परं प्रोक्तमघौघनाशम् ।
एकाग्रया शुद्धधियावधार्यं सच्छ्रद्धया चेतसि ते महर्षे ! ॥ ६८ ॥
न वासुदेवात्परमस्ति पावनं न वासुदेवात्परमस्ति मङ्गलम् ।
न वासुदेवात्परमस्ति दैवतं न वासुदेवात्परमस्ति वाञ्छितम् ॥ ६९ ॥
यन्नामधेयं स्खलदप्यबुद्ध्या देहावसानेऽपि गृणाति योऽत्र ।

स पुष्कसोऽप्याशु भवप्रवाहाद्विमुच्यते तं भज वासुदेवम् ॥ ७० ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवासुदेवमाहात्म्ये वैराग्यभक्तिनिरूपणं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

क्रियायोगाधिकारादिवर्णनम्

स्कन्द उवाच

एकान्तधर्मविवृतिं श्रुत्वा भगवतोदिताम् । प्रहृष्टमानसो भूयस्तं पप्रच्छ स नारदः ॥

नारद उवाच

धर्म एकान्तिकः स्वामिंस्त्वया सम्यगुदीरितः ।
तमाश्रुत्य महान्हर्षो जातोऽस्ति मम मानसे ॥ २ ॥
सिद्ध्येतस्यभवताक्रियायोगोयउच्यते । तमहंबोद्धुमिच्छामि भगवंस्तवसम्मतम्

श्रीनारायण उवाच

पूजाविधिः क्रियायोगोवासुदेवस्यकीर्त्यते । स तु वेदेषुतन्त्रेषुवहुधैवास्तिवर्णितः
भक्तानां रुचिवैचित्र्यात्तथा वहुविधत्वतः ।
वासुदेवस्य मूर्त्तीनां वहुधा सोऽस्ति विस्तृतः ॥ ५ ॥
साकल्येनोच्यमानस्य पारो नाऽऽयाति तस्य वै ।
अतः सङ्क्षेपतस्तुभ्यं वच्मि भक्तिविवर्द्धनम् ॥ ६ ॥
प्राप्तायैवैष्णवींदीक्षांवर्णाश्चत्वारआश्रमाः । चातुर्वर्ण्यस्त्रियश्चैतेप्रोक्ताअत्राधिकारिणः
वेदतन्त्रपुराणोक्तैर्मन्त्रैर्मूलेन च द्विजाः । पूजेयुर्दीक्षितायोषाः सच्छूद्रा मूलमन्त्रतः
मूलमन्त्रस्तु विज्ञेयः श्रीकृष्णस्य षडक्षरः ॥ ८ ॥
स्वस्वधर्मं पालयद्भिः सवरैतैर्यथाविधि । पूजनीयोवासुदेवोभक्त्यानिष्कपटान्तरैः

आदौ तु वैष्णवीं दीक्षां गृह्णीयात्सद्गुरोः पुमान् ।
सदैकान्तिकधर्मस्थाद् ब्रह्मजातेर्दयानिधेः ॥ १० ॥
सम्पन्नोज्ञानभक्तिभ्यांस्वधर्मरहितस्तु यः । सगुरुर्नैवकर्तव्यःस्त्रीहृतात्माचकर्हिचित्
प्राप्ता स्त्रैणाद् गुरोर्दीक्षा ज्ञानं भक्तिश्च कर्हिचित् ।
फलेन्नैव यथाऽपत्यं युवतिः षण्ढसङ्गिनी ॥ १२ ॥
प्राप्याऽतः सद्गुरोर्दीक्षां तुलसीमालिकां गले ।
ललाटादौ चोद्र्ध्वपुण्ड्रं गोपीचन्दनतो धरेत् ॥ १३ ॥
विष्णुपूजारुचिर्भक्तो गुरोरेवागमोदितम् । पूजाविधिं सुविज्ञाय ततः पूजनमारभेत्
रात्र्यन्तयामउत्थायभक्तोब्राह्मेक्षणेऽथवा । मुहूर्त्तार्द्धं हृदि ध्यायेत्केशवंक्लेशनाशनम्
कीर्त्तयित्वाऽभिधानस्य तदीयानाञ्च नाडिकाम् ।
ततः शौचविधिं कृत्वा दन्तधावनमाचरेत् ॥ १६ ॥
अङ्गशुद्धिस्नानमादौ कृत्वा स्नायात्समन्त्रकम् ।
गृहीत्वाशुचिमृत्स्नादीन्कुर्यात्स्नानाङ्गतर्पणम् ॥ १७ ॥
परिधायांऽशुकेधौतेउपविश्यासनेशुचौ । कृत्वोद्र्ध्वपुण्ड्रंकुर्वीतसन्ध्यांहोमंजपादिच
वस्त्रचन्दनपुष्पादीनुपहारांस्ततोऽखिलान् । आहरेन्मांसमदिराद्यशुचिस्पर्शवर्जितान्
देवेभ्यो वा पितृभ्यश्चाऽप्यन्येभ्यो न निवेदितान् ।
अनाघ्रातांश्च मनुजैः केशकीटादिवर्जितान् ॥ २० ॥
संस्थाप्यतान्दक्षपार्श्वे पूजोपकरणानिच । उद्धृत्यं दीपमाज्येनकुर्यात्तैलेन वा ततः
कौशेवौर्णे च वस्त्रादौ विकाष्ठे शुद्ध आसने । उपाविशेद्वासुदेवप्रतिमासन्निधौ ततः
शैली धातुमयी दार्वी लेख्या मणिमयी च वा ।
प्रतिमा स्यात्सिता रक्ता पीता कृष्णाऽथ वा मुने !॥ २३ ॥
कृष्णस्य सा तु कर्तव्या द्विभुजावाचतुर्भुजा । मुरलीं धारयेत्तत्र द्विभुजायाःकरद्वये
अथवा दक्षहस्तेऽस्याश्चक्रं शङ्खं तथेतरे । पद्मं वा धारयेद्दक्षे पाणावभयमुत्तरे ॥२५
द्वितीयायास्तु हस्तेषु दक्षिणाधः करक्रमात् । गदाब्जदरचक्राणिधारयेन्मुनिसत्तम॥

द्विविधाया अपि हरेर्मूर्तेर्वामेश्रियं न्यसेत् । मुरलीधरवामे तु राधांरासेश्वरींन्यसेत्
अप्येषा द्विविधा मूर्त्तिरखण्डा शुभलक्षणा । सर्वावयवसम्पन्ना भवेदर्च्चकसिद्धिदा
लक्ष्मीस्तु द्विभुजाकार्यावासुदेवस्यसन्निधौ । दधतीपङ्कजंहस्ते वस्त्रालङ्कारशोभना

लक्ष्मीवद्राधिकाऽपि स्याद् द्विभुजा चारुहासिनी ।
पङ्कजं पुष्पमालां वा दधती पाणिपङ्कजे ॥ ३० ॥

अचलाचचलाचेति द्विविधाप्रतिमाहरेः । तत्राऽऽद्यायां न कर्तव्यमावाहनविसर्जनम्
तदङ्गदेवतानाञ्चकार्यंनावाहनाद्यपि । नच दिङ्नियमोऽर्चायांतस्याः स्थेयंतु सम्मुखे
शालग्रामेऽप्येवमेव कार्यं नावाहनादि च । अन्यत्र चलमूर्तौ तु कर्तव्यं तत्तदर्चकैः ॥
तत्रापि दार्व्यां लेख्यायांजलस्पर्शोऽनुलेपनम् । नैव कार्यम्पूजकेनकर्तव्यंपरिमार्जनम्
उदङ्मुखःप्राङ्मुखोवाचलायांसम्मुखोऽथवा । यथाशक्तियथालब्धैरुपहारैर्यजेद्धरिम्

श्रद्धानिश्छद्मभक्तिभ्यामर्पितेनाऽम्बुनाऽपि सः ।
प्रीतस्तुष्यति विश्वात्मा किमुताऽखिलपूजया ॥ ३६ ॥

पुंसा श्रद्धादिहीनेन रत्नहेमाद्यलङ्क्रियाः । चतुर्विधं चाप्यन्नाद्यं दत्तं गृह्णातिनोमुदा

तस्माद्भक्तिमता कार्यं पुंसा स्वश्रेयसे भुवे ।
श्रीकृष्णस्यार्च्चनं नित्यं सर्वाभीष्टाशुदायिनः ॥ ३८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवासुदेवमाहात्म्ये क्रियायोगाधिकारादिनिरूपणं नाम
षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

———

सप्तविंशोऽध्यायः

क्रियायोगे पूजामण्डलरचनाविधिनिरूपणम्

श्रीनारायण उवाच

खननोक्षणलेपाद्यैः शोधिते धरणीतले । चतुष्पादं न्यसेत्पीठं नानारङ्गसुशोभिते ॥
अर्चकः प्राङ्मुखःपीठपादान्कोणेषुकारयेत् । चतुर्षु तेषुधर्मादीन्स्थापयेत्सिंहरूपिणः
अग्नौ धर्मं न्यसेच्छ्वेतं ज्ञानंशोणञ्च नैरृते । वायौ तु पीतंवैराग्यंश्याममैश्वर्यमैशके

मनोधीचित्ताहङ्कारान्क्रमात्पूर्वादिदिक्ष्वथ ।
विन्यसेत्पीठगात्रेषु हरिद्रक्तसितासितान् ॥ ४ ॥

स्थाप्यारक्तसितश्यामारजःसत्त्वतमोगुणाः । पीठस्यपट्टिकायांतुत्रयोपिमुनिसत्तम!
अन्तःकरणरूपेषु गात्रेष्वथ चतुर्ष्वपि । विमलाद्या न्यसेच्छक्तीर्द्वेद्वे एकैकगात्रके ॥

विमलोत्कर्षिणीति द्वे गौराङ्ग्यौ पूर्वतो न्यसेत् ।
वादयन्त्यौ शुभां वीणां हरिद्वस्त्रे स्वलङ्कृते ॥ ७ ॥

ज्ञानाक्रिये न्यसेद्याम्ये पीतवस्त्रेऽरुणद्युती । एका तालं वादयन्ती मृदङ्गमपरा तथा

योगाप्रह्व्यौ न्यसेत्पश्चाच्छ्यामे अरुणवाससौ ।
सहैव मुरलीं चोभे वादयन्त्यौ पृथक्पृथक् ॥ ९ ॥
सत्येशाने हेमवर्णे उत्तरस्यां ततो न्यसेत् ।
श्यामांशुके वादयन्त्यावुभे ते परिवादिनीम् ॥ १० ॥
अनुग्रहाख्या पट्टिकायां स्थाप्यैका च कृताञ्जलिः ।
सर्वा एतास्तु कर्तव्या द्विभुजाः सुविभूषणाः ॥ ११ ॥

पीठोपरि सितद्वीपं कुर्वीतश्वेतवाससा । तन्मध्येऽष्टदलंपद्मंकुर्वीतोज्ज्वलकर्णिकम्
द्वादशांशं परित्यज्य पद्मक्षेत्रस्य वाह्यतः । वृत्तैस्त्रिभिस्तस्यमध्यं विभजेत्समभागतः
तत्राऽऽद्यंकर्णिकास्थानंकेसराणांतुमध्यमम् ।पत्राणांतुतृतीयंस्याद्दलाग्राणितुवाह्यतः

परितस्तस्य च पुरं चतुर्द्वारं प्रकल्पयेत् । रङ्गद्रव्यैर्बहुविधैर्हरिद्राकुङ्कुमादिभिः ॥
कुर्वीत तण्डुलैर्वापि तत्र पद्मादि शोभनम् । पद्मस्यकर्णिकांमध्येहेमवर्णांसुशोभयेत्
शोणवर्णानि पत्राणिपरितस्तस्यचार्चकः । कुर्यादष्टाप्यप्यष्टदिक्षुरुवर्णवर्णानिवामुने
पूर्वं तु गोपुरं शोणंश्यामंकुर्याच्चदक्षिणम् । पीतवर्णंपश्चिमञ्चस्फटिकाभंतथोत्तरम्

अन्तराले च पुष्पाणि चित्राणि पुरपद्मयोः ।
कृत्वा मध्येऽथ श्रीकृष्णं तद्वामे राधिकां न्यसेत् ॥ १६ ॥

राधाकृष्णस्यास्य ततःपृष्ठेसङ्कर्षणं न्यसेत् । चतुर्बाहुं धृतच्छत्रंगौराङ्गंनीलवाससम्
दक्षे न्यसेद्भगवतः प्रद्युम्नं पीतवाससम् । चतुर्भुजंघनश्यामं धृत्वाचामरमास्थितम्
वामेऽनिरुद्धं च हरेर्न्यसेदरुणवाससम् । इन्द्रनीलमणिश्यामं संस्थितं धृतचामरम् ॥
त्रयोऽप्येते तु कर्तव्या नानालङ्कारशोभिताः । अनर्घ्यरत्नमुकुटास्तारुण्येनमनोहराः
ततोऽवतारांस्तु हरेः केसरेष्वष्टसुक्रमात् । एकैकस्मिन्न्यसेद्द्वौद्वावष्टस्वेवंहिषोडश
स्थापयेद्वामनं बुद्धं पूर्वस्मिन्केसरेऽग्रतः । घनश्यामावुभौह्येतौ करुणौ ब्रह्मचारिणौ
सितांशुकौ करे दक्षे बिभ्रतौ फुल्लपङ्कजम् । अभयं वामहस्तेचशान्तौयज्ञोपवीतिनौ

कल्किनं पशुरामं च वह्निकोणेऽथ विन्यसेत् ।
खड्गपाणिस्तत्र कल्की पशुपाणिस्तथाऽपरः ॥ २७ ॥

उभौ गौरौचताम्राक्षौजटिलौसितवाससौ । यज्ञोपवीतिनौकार्यौत्यक्तक्रोधमहारयौ
हयग्रीववराहौ च स्थापयेद्याम्यकेसरे । हयग्रीवो हयास्यः स्यान्नराङ्गश्चचतुर्भुजः ॥
शङ्खादिभृत्स्वर्णवर्णोधृतदिव्यसिताम्बरः । वराहस्तुवराहास्यो नराङ्गःस्याच्चतुर्भुजः
शङ्खचक्रगदाब्जानि दधत्पीताम्बरं तथा । मधुपिङ्गलवर्णश्च कर्त्तव्योद्विभुजोऽथ वा
मत्स्यकूर्म्मौ नैर्ऋते च स्थापयेत्केसरे ततः । कटेरधस्तादाकारावदूर्ध्वंतौतुनराकृती
वामे शङ्खं गदां दक्षे पाणौच दधतावुभौ । श्यामसुन्दरदेहौ च कर्त्तव्यौधृतभूषणौ
धन्वन्तरिंनृसिंहश्चपश्चिमेकेसरेन्यसेत् । धन्वन्तरिः शुक्लवासोगौराङ्गोऽमृतकुम्भधृत्
सिंहवक्त्रोनृसिंहस्तु नृदेहःकेसरान्वितः । नीलोत्पलाभोद्विभुजोगदाचक्रधरो भवेत्
वायौ न्यसेदुभौ हंसदत्तात्रेयौ जटाधरौ । योगिवेषौसितौदण्डकमण्डलुकरौतथा

उत्तरे केसरे व्यासं न्यसेद्गणपतिं ततः। तत्रव्यासोविशालाक्षःकृष्णवर्णःसिताम्बरः
द्विभुजो धृतवेदश्च सुपिशङ्गजटाधरः। सिंतयज्ञोपवीतश्च कर्त्तव्यः सपवित्रकः॥
गजास्य एकदन्तश्चरक्तो गणपतिर्भवेत्। रक्ताम्बरधरश्चैव नागयज्ञोपवीतवान् ॥३९॥
तुन्दिलश्च चतुर्बाहुः पाशाङ्कुशवरान्दधत्। करेणैकेन चदधद्रम्यांपुस्तकलेखिनीम्

न्यसेत्केसर ईशाने कपिलं पूजकस्ततः।
सनत्कुमारं च मुनिं नैष्ठिकब्रह्मचारिणम् ॥ ४१ ॥

शुक्लाङ्गः कपिलःकार्यो धृतचारुसिताम्बरः। दधत्कराभ्याममम्भोजमभयंशान्तविग्रहम्
पञ्चवार्षिकबालाभो दिग्वस्त्रोऽल्पजटाधरः। सनत्कुमारश्च मुनिः कर्त्तव्यः पूजकेन तु
संस्थाप्य केसरेष्वित्थं देवताः पङ्कजस्य तु। न्यसेच्च दलमध्येषुपार्षदानर्च्चकोऽष्टसु
विष्वक्सेनश्च गरुडं तत्रादौ पूर्वतो न्यसेत्। ततो दक्षक्रमेणैव प्रबलश्च बलं न्यसेत्
कुमुदं कुमुदाक्षश्च सुनन्दं नन्दमेव च। श्रुतदेवं जयन्तश्च विन्यसेद्विजयं जयम् ॥४६
ततः प्रचण्डं चण्डश्चपुष्पदन्तश्चसात्वतम्। द्वौद्वावेवंक्रमेणैवस्थानेष्वष्टसुविन्यसेत्

चतुर्भुजाः सर्व एते शङ्खार्यब्जगदाधराः।
कार्याः किरीटिनः श्यामाः पीतवस्त्राः सुभूषणाः ॥ ४८ ॥

दलमध्यान्तरालेषु सिद्धीरष्टसुविन्यसेत्। नानामङ्गलवाद्यानांवादनेनिपुणाःक्रमात्

अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा।
ईशिता वशिता चैवाऽष्टमी कामावसायिता ॥ ५० ॥

एताः सुवर्णवर्णाभाः सर्वाभरणभूषिताः। वेणुवीणादिहस्ताश्चकर्त्तव्याश्चित्रवाससः

दलाग्रेष्वष्टसु ततो वेदाञ्छास्त्राणि च न्यसेत्।
तत्र वेदान्न्यसेद् दिक्षु शास्त्राणि तु विदिक्षु सः ॥ ५२ ॥

पूर्वे न्यसेत्तु ऋग्वेदमक्षमालाधरं सितम्। खर्वं लम्बोदरं सौम्यं पद्मनेत्रंसिताम्बरम्
याम्ये न्यसेद्यजुर्वेदंमध्यमाङ्गं कृशोदरम्। पिङ्गाक्षं स्थूलकण्ठश्चपीतंचारुणवाससम्
अक्षस्रजं करे वामे दक्षे वज्रश्च बिभ्रतम्। पश्चिमे सामवेदश्च प्रांशुमादित्यवर्चसम्
दक्षेऽक्षमालां वामे च धृतवन्तं करेदरम्। स्वर्णवस्त्रंविशालाक्षंविन्यसेद्गायनोद्यतम्

अथर्वाणं न्यसेत्सौम्ये सिताङ्गं नीलवाससम् ।
वामेऽक्षसूत्रं दक्षे च खट्वाङ्गं बिभ्रतं करे
वह्न्योजसञ्च ताम्राक्षं वयसा स्थविरं तथा ॥ ५७ ॥

अग्निकोणे धर्मशास्त्रंन्यसेच्चकमलासनम् । श्वेतंचबिभ्रतंदोर्भ्यांमुक्तामालांतथातुलाम्
दीर्घकेशनखंसाङ्ख्यंनैर्ऋतेतुन्दिलंन्यसेत्। जपमालाञ्चदण्डञ्चकाराभ्यांबिभ्रतंसितम्
न्यसेद्वायौ ततो योगं स्वर्णवर्णंकृशोदरम् । ऊरुन्यस्तकरद्वन्द्वंस्वनासाग्रकृतेक्षणम्
पञ्चरात्रं तथेशाने धवलं वनमालिनम् । न्यसेत्कराभ्यां दधतमक्षमालाञ्च लाङ्गलम्

एषां चतुर्णां वासांसि श्वेतसूक्ष्मघनानि च ।
कर्त्तव्यानि तथाक्षीणि पद्मपत्रायतानि च ॥ ६२ ॥

अस्त्राणामन्तरालेषुमहर्षींश्च सयोषितः । विन्यसेत्पठतो वेदान्पूर्वाग्नेयाद्यनुक्रमात्
मरीचिं कलयायुक्तमत्रिं चाऽप्यनसूयया । श्रद्धयाऽङ्गिरसं साकं पुलस्त्यञ्च हविर्भुवा
गत्यायुक्तञ्च पुलहं क्रियया च सहक्रतुम् । ख्यात्या भृगुमरुन्धत्या वशिष्ठं सह विन्यसेत्
द्विभुजाःसर्वएवैतेजटाश्मश्रुधराःकृशाः । कार्यास्तपस्विनोदण्डान्दधतश्च कमण्डलून्

पद्माद्बहिर्न्यसेच्चाऽष्टौ दिशासु विदिशासु च ।
दिक्पालानिन्द्रप्रमुखान्सह यानान्यथादिशम् ॥ ६७ ॥

प्राच्यामैरावतारूढं न्यसेदिन्द्रं चतुर्भुजम् । वज्राङ्कुशाम्बुजवरान्दधतंस्वर्णसन्निभम्
कौसुम्भरम्यवसनं नानालङ्कारशोभितम् । शोणापाङ्गंविशालाक्षंसर्वलक्षणलक्षितम्
अग्निकोणे न्यसेदग्निं ताम्रवर्णं चतुर्भुजम् । दधानं पाणिभिश्चैव शूलंशक्तिस्रुचंस्रुवम्
चतुः शुके हैमरथे निषण्णं वायुसारथिम् । त्रिनेत्रं धूम्रवसनं पिङ्गश्मश्रुजटेक्षणम् ॥
यमं न्यसेद्दक्षिणतः श्यामं चामीकराम्बरम् । चतुर्भुजं दण्डखड्गपरशुंपाशधारिणम्

उन्मत्तमहिषारूढं नानाभूषणभूषितम् ॥ ७२ ॥

ऊर्द्ध्वकेशं विरूपाक्षं नैर्ऋतं नैर्ऋते न्यसेत् । खड्गं पाशञ्च दधतंद्विभुजं नरवाहनम्
हरिश्मश्रुं धूम्रवर्णं परिवीतासिताम्बरम् । हाटकानेकभूषाढ्यमवैष्णवभयङ्करम् ॥
ततः प्रतीच्यां वरुणमिन्द्रनीलमणिप्रभम् । श्वेताम्बरं चतुर्बाहुंमुक्ताहारविभूषितम्

सप्तहंसरथारूढं दोर्भ्यां पाशञ्च बिभ्रतम्। अन्याभ्यां रत्नपात्रञ्च शङ्खञ्च दधन्तं न्यसेत्
वायौ वायुं हरिद्वर्णं द्विभुजं कृष्णवाससम्।
पृषत्स्थं मुक्तकेशञ्च व्यात्तास्यं ध्वजिनं न्यसेत् ॥ ७७ ॥
सौम्ये न्यसेत्कुवेरञ्चस्वर्णवर्णञ्चतुर्भुजम्। गदाशक्तित्रिशूलानि रत्नपात्रञ्च बिभ्रतम्
नीलाम्बरं श्मश्रुलं च शिविकायां समास्थितम्। पिशङ्गवामनयनं नैकभूषञ्च वर्मिणम्
ईशानेऽथ महारुद्रमर्द्धनारीश्वरं न्यसेत्। वामार्द्धे पार्वती कार्या दक्षार्द्धे तत्र शङ्करः॥
ईश्वरार्द्धं जटाजूटं कर्तव्यं चन्द्रभूषितम्। उमार्द्धे तिलकं कार्यं सीमन्तमलिके तथा
भस्मनोद्धूलितं चार्द्धमर्द्धं कुङ्कुमभूषितम्। नागोपवीतं चाऽप्यर्द्धमर्द्धं हारविभूषितम्
वामार्द्धे च स्तनः पीनः कर्त्तव्यः कञ्चुकीवृतः। कस्याञ्च रशना हैमी पादे काञ्चननूपुरम्
कौसुम्भं वसनञ्चैव करौ कङ्कणभूषितौ। त्रिशूलमक्षसूत्रञ्च दधतौ रत्नमुद्रिकौ॥
दक्षार्द्धे रशना सार्पी कार्या वस्त्रं गजाजिनम्।
करौ च नागवलयौ दर्पणोत्पलधारिणौ ॥ ८५ ॥
एवंविधं महादेवं न्यसेद्वृषभवाहनम्। इत्थमष्टदिगीशानां कुर्यात्स्थापनमर्चकः॥
पुराद्बहिस्ततश्चाऽष्टौ स्थापयेदर्चको ग्रहान्।
स्वस्वदिक्षु स्थितान्स्वस्वान्यारूढान्स्यन्दनानि च ॥ ८७ ॥
प्राच्यां दिशि न्यसेत्तत्र भास्करं पीतवाससम्।
सिन्दूरवर्णं द्विभुजं पद्महस्तं रथे स्थितम् ॥ ८८ ॥
एकं चक्रं द्वादशारं रथस्यास्यातितेजसः। सप्ताश्वाश्च हरिद्वर्णा वामे सन्ति नियोजिताः
अग्निकोणे ततः स्थाप्यो भृगुः श्वेतः सिताम्बरः।
दण्डं कमण्डलुं बिभ्रद्द्विबाहुः सौम्यदर्शनः ॥ ९० ॥
चित्रवर्णाश्वदशके स्थितो हेममये रथे। दक्षिणे च न्यसेद्भौमं रक्तं रक्ताम्बरं तथा॥
चतुर्भुजं गदाशक्तित्रिशूलवरधारिणम्। तस्य हैमं रथं कुर्यादरुणाष्टहयान्वितम्
राहुश्च नैर्ऋते कोणे नीलवासाश्चतुर्भुजः।
करालवदनस्तमोऽश्वः शर्मासिशक्तिशूलभृत् ॥ ९३ ॥

भृङ्गवर्णाष्टतुरगे स्थितःकार्यस्त्वयोरथे । सौरिश्चपश्चिमेस्थाप्यइन्द्रनीलसमद्युतिः

धन्वी त्रिशूली द्विभुजो मन्दाक्षश्चाऽसिताम्बरः ।

शवलाष्टाश्वसंयुक्ते स्थितः कार्ष्णायसे रथे ॥ ९५ ॥

वायुकोणेततश्चन्द्रं स्थापयेच्च सिताम्बरम् । श्वेतवर्णंगदाहस्तंद्विभुजश्चरथेस्थितम्

शतारचक्रत्रितयेस्नन्दनेतस्यचाम्मये । कुन्दाभाः सन्त्युभयतोयोजितास्तुरगादश

उत्तरे द्विभुजःसौम्यो वराभयकरोऽरुणः । हरिद्वासाष्टपिङ्गाश्वेकार्योहैमरथेस्थितः

ईशाने च गुरुः स्थाप्योहेमवर्णः सिताम्बरः । द्विभुजः पद्मनयनोधृतदण्डकमण्डलुः

पाण्डुराष्टहये हैमे निषण्णः स्यनन्दनोत्तमे ॥ ९९ ॥

अङ्गदेवान्भगवतः स्थापयेदित्थमर्चकः ।

कर्णिकाद्रिपुरान्तान्तस्थानेषु क्रमशोऽखिलान् ॥ १०० ॥

वासुदेवाङ्गदेवानां न्यसेन्मूर्त्तीस्तु वैभवी । पूगफलानीतरस्तु न्यसेत्पुष्पाक्षतादि वा

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवासुदेवमाहात्म्ये क्रियायोगे पूजामण्डलरचनाविधिनिरूपणं नाम
सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

श्रीराधाकृष्णस्वरूपध्याननिरूपणम्

श्रीनारायण उवाच

आचम्यप्राणानायम्यततोसौस्वस्थमानसः । नमस्कृत्येष्टदेवादीन्देशकालौचकीर्त्तयेत्

एकान्तधर्मसिद्ध्यर्थं वासुदेवस्य पूजनम् ।

करिष्य इति सङ्कल्प्य कुर्यान्न्यासविधिं ततः ॥ २ ॥

न्यासे मन्त्रा द्वादशार्णो गायत्री वैष्णवीतथा । नारायणाष्टाक्षरश्चज्ञेयाविष्णुषडक्षरः

एते द्विजानां विहितास्तदन्येषां त्विह त्रयः । वासुदेवाष्टाक्षरश्च हरिपञ्चाक्षरस्तथा
षडर्णः केशवस्येति न्यासे होमे च सम्मताः ॥ ४ ॥
श्रीविष्णुप्रतिमाङ्गेषु स्वाङ्गेष्विव ततोऽखिलान् ।
कुर्यान्न्यासांश्च तैर्मन्त्रैस्ततोऽर्चां वाससाऽऽमृजेत् ॥ ५ ॥
कलशं वामभागे स्वे संस्थाप्यावाह्य तत्रच । तीर्थानिगन्धपुष्पाद्यैरुपचारैस्तमर्चयेत्
पूजाद्रव्याणि चाऽऽत्मानं प्रोक्षयित्वा तदम्बुना ।
शङ्खं घण्टाञ्च सम्पूज्य भूतशुद्धिं समाचरेत् ॥ ७ ॥
आभ्यन्तराग्निवायुभ्यां दग्ध्वा पापात्मकं वपुः ।
शुद्धस्य स्वात्मनस्त्वैक्यं भावयेद् ब्रह्मणा स्थिरः ॥ ८ ॥
ततोऽक्षरब्रह्मरूपो राधाकृष्णं हृदि प्रभुम् । ध्यायेदव्यग्रमनसा प्राणायामं समाचरन्
अधोमुखं नाभिपद्मं कदलीपुष्पवत्स्थितम् । विभाव्यापानपवनं प्राणेनैक्यमुपानयेत्
पद्मनाले तमानीय सह तेन तदम्बुजम् । आकर्षेदूर्ध्वमथ तन्नदत्तीव्रमुपैति हृत् ॥
प्रफुल्लति च तत्रैतद्धृदयाकाश उल्लसत् ॥ ११ ॥
तेजोराशिमये तत्रततोऽप्यधिकतेजसा । दर्शनीयतमं शान्तं ध्यायेच्छ्रीराधिकापतिम्
उपविष्टं स्थितंवा तंदिव्यचिन्मयविग्रहम् । ध्यायेत्किशोरवयसंकोटिकन्दर्पसुन्दरम्
रूपानुरूपसम्पूर्णदिव्यावयवलक्षितम् । शरच्चन्द्रावदाताङ्गं दीर्घचारुभुजद्वयम् ॥१४
आरक्तकोमलतलरम्याङ्गुलिपदाम्बुजम् । तुङ्गारुणस्निग्धनखद्युतिलज्जायितोडुपम् ॥
शिञ्जत्किङ्किणिमञ्जीरहंसकाङ्घ्रियुगश्रियम् । सुवृत्तजङ्घायुगलं समजानूरुशोभनम्
सद्रत्नरशनाबद्धपीताम्बरकटिश्रियम् । उत्तुङ्गकुक्षिनाभ्यन्तर्निम्ननाभिवलित्रयम् ॥१७
विततोत्तुङ्गहृदयं श्रीवत्सावर्त्तशोभितम् ।
ललन्तीगुच्छगुच्छर्द्धदेवच्छान्दादिभूषितम् ॥ १८ ॥
नानासुगन्धिपुष्पस्रक्स्वर्णयज्ञोपवीतिनम् । उन्निद्रशोणपद्माभकरकङ्कणभूषणम् ॥
सूक्ष्मपर्वाङ्गुलिद्योतन्नैकसद्रत्नमुद्रिकम् । निनादयन्तं मधुरं वेणुं सर्वमनोहरम् ॥ २०
विपुलांसं गूढजत्रुं महाबाहुद्वयद्युतिम् । भ्रमत्स्रमरझङ्कालिझङ्कारितवनस्रजम् ॥

कम्बूपमगलभ्राजत्सद्ग्रैवेयककौस्तुभम्। शोभमानहनुं बिम्बीफलशोणाधरद्युतिम्
सितस्मितकलाराजत्पूर्णचन्द्रनिभाननम्। तिलपुष्पसमाकारदर्शनीयसुनासिकम्॥
समानकर्णविभ्राजन्मकराकृतिकुण्डलम्। कर्णोपरिलसच्चित्रपुष्पगुच्छावतंसकम्॥
समसूक्ष्मरदज्योत्स्नोल्लसद्गण्डस्थलश्रियम्। पद्मपत्रायतारक्तप्रान्तरम्यविलोचनम्
पृथुतुङ्गललाटं च कामचापायितभ्रुवम्। वक्रसूक्ष्मासितस्निग्धमनोहरशिरोरुहम्॥
नानासद्रत्नखचितकिरीटधृतशेखरम्। प्रेम्णा निजं वीक्षमाणं प्रसन्नं स्निग्धया दृशा

ध्यात्वेत्थं कृष्णमथ तद्वामे राधां विचिन्तयेत्।
द्विभुजां स्वर्णगौराङ्गीं कौसुम्भामलवाससम्॥ २८॥

समकर्णोल्लसद्रत्नभूषणांशुकनासिकाम्। किशोरीं मृगशावाक्षींपीतोन्नतघनस्तनीम्

कृशमध्यां पृथुश्रोणिं रत्नकाञ्चीविभूषिताम्।
अनेकदिव्याभरणां विकचाब्जाननस्मिताम्॥ ३०॥

रत्नाङ्गुलीयकेयूरकङ्कणादिलसत्कराम्। शिञ्जद्धंसकमञ्जीरशोभमानाङ्घ्रिपङ्कजाम्॥

विशालभालविलसत्सत्काश्मीरललाटिकाम्।
बिम्बोष्ठीं सुकपोलां च वेणीग्रथितमालतीम्॥ ३२॥

प्रेक्षमाणां प्रभुं प्रेम्णा दधानामम्बुजं करे। ध्यात्वैवं राधिकां तत्र प्रभुमर्चेत्तया सह

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवासुदेवमाहात्म्ये क्रियायोगे श्रीराधाकृष्णस्वरूपध्याननिरूपणं
नामाऽष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

ऊनत्रिंशोऽध्यायः

श्रीवासुदेवपूजाविधिनिरूपणम्

श्रीनारायण उवाच

उपचारैर्बहुविधैर्मानसैस्तं प्रपूज्य सः । आवाह्य स्थापयेद्भक्तो मूर्तौ स्थापनमुद्रया ॥
ततस्तदङ्गदेवांश्च तत्तन्मन्त्रैः पृथक्पृथक् । आवाह्य नाममन्त्रैर्वा सुप्रतिष्ठापयेच्च सः
घण्टादि वादयेद्वाद्यं कुर्याद्वा तालिकाध्वनिम् ।
सुप्तोत्थितमिवाऽथैनं कारयेद्दन्तधावनम् ॥ ३ ॥
श्यामाकविष्णुक्रान्ताभ्यां दूर्वाब्जाभ्यां सहोदकम् ।
पाद्यमेतत्प्रभोर्दद्यात्ततोऽर्घ्याचमनीयके ॥ ४ ॥
चन्दनाक्षतपुष्पाणि दर्भाग्रतिलसर्षपान् । यवान्दूर्वाश्चाऽर्घ्यपात्रे निक्षिपेदम्बुना भृते
जातीफललवङ्गैलाकङ्कोलोशीरवासितम् । दद्यादाचमनीयाम्बु ततः संस्नापयेद्धरिम्
सुगन्धिपुष्पतैलेन कुर्यादभ्यङ्गमादितः । सुरभिद्रव्यकल्केन कुर्याच्चोद्वर्तनं ततः ॥ ७॥
क्षीरेण दध्ना चाज्येन मधुना सितयातथा । स्नपयेद्धरिमव्यग्रस्तत्तन्मन्त्रैःपृथक्पृथक्
सुगन्धिना च शुद्धेन स्नानमुष्णेन चाम्बुना । तंकारयित्वागन्धाद्यैःस्नानपीठेऽर्चयेल्लघु
निर्माल्यपुष्पादि ततो विसृज्योत्तरतो द्विजः । राजनाद्यैःसामभिर्वामहापुरुषविद्यया
श्रीसूक्तविष्णुसूक्ताभ्यामभिषेकं समाचरेत् ॥ १० ॥
नाम्नां सहस्रेण हरेरष्टोत्तरशतेन वा । अभिषेकं तु कुर्वीरन्स्त्रियः शूद्राश्च दीक्षिताः
ततः प्रमार्ज्य वस्त्रेण तमनर्घ्यांशुकानि च ।
परिधापयेदतिप्रेम्णा राधां चान्यांश्च शक्तितः ॥ १२ ॥
उपवीतं भगवते दद्यात्सूक्ष्मं सितं शुभम् । रत्नहेमाद्यलङ्कारान्साङ्गायाऽस्मै च धारयेत्
यथाऋतु यथास्थानं चन्दनेनयथोचितम् । तिलकाऽनुलेपनं कुर्यात्सकेशरघनादिना
यथोचितमलङ्कारान्धारयित्वा च राधिकाम् ।

पत्रलेखाश्च तिलकं विदध्यात्कुङ्कुमाक्षतैः ॥ १५ ॥
आदर्शं दर्शयित्वाऽथ पुष्पस्रक्छेखरादिभिः । पूजयेत्तं सहस्रेण तुलसीमञ्जरीदलैः
तुलस्या वाऽथ पुष्पेणप्रत्येकंनामवैष्णवम् । नमःप्रान्तचतुर्थ्यन्तंकीर्त्तयन्नर्चयेत्प्रभुम्
सुगन्धिद्रव्यचूर्णानि ततः सौभाग्यवन्ति च ।
समर्प्य धूपं कुर्वीत दशाङ्गं वाऽमृतादिकम् ॥ १८ ॥
दीपं घृतेनकुर्वीत वर्त्तिकाद्वयदीपितम् । कृतं स्वशक्तितः शुद्धं महानैवेद्यमर्पयेत् ॥
संयावपायसापूपशष्कुलीखण्डलड्डुकान् । पूरिकाःपोलिकामौद्गमोदनंव्यञ्जनानिच
दधिदुग्धघृतादीनि चतुष्पद्यां निधारयेत् ॥ २० ॥
भोजयेत्तं ततः प्रेम्णा मध्येपानीयमर्पयन् । मुहूर्त्तोर्द्ध्वं गतेदद्याद्धस्तप्रक्षालनाम्बु च ॥
उच्छेरणं भगवतो विष्वक्सेनादिदेवताः ।
उपकल्प्याऽन्यतः स्थाप्य स्वार्थं तद्भुवमामृजेत् ॥ २२ ॥
मुखवासं ततोदद्यात्कृतांताम्बूलवीटिकाम् । पूगचूर्णलवङ्गैलाजातीजादिसमन्विताम्
फलञ्चनारिकेलादि दत्त्वाशक्त्या चदक्षिणाम् । महानीराजनंकुर्याद्गीतवादित्रपूर्वकम्
स्तुयात्पुष्पाञ्जलीन्दत्त्वा तत्स्तोत्रेणैव तं ततः ।
नामसङ्कीर्त्तनं कुर्याद्गायन्नृत्यंश्च तत्पुरः ॥ २५ ॥
मुहूर्त्तं स विरमेत्थंकृत्वाचंवप्रदक्षिणाम् । प्रणामंदण्डवत्कुर्यात्तिर्यक्तद्दक्षिणेभुवि
अष्टाङ्गं वाऽपि पञ्चाङ्गं प्रणामं पुरुषश्चरेत् । पञ्चाङ्गमेव नारी तु नान्यथा मुनिसत्तम
पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा ।
वचसा मनसा चेति प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ॥ २८ ॥
[बाहुभ्यां चैव मनसाशिरसावचसादृशा । पञ्चाङ्गोऽयंप्रणामःस्यात्पूजासुप्रवराविमौ
भीतं मां संसृतेः पाहि प्रपन्नं त्वां प्रभो! इति ।
ततः सम्प्रार्थ्य स्वाध्यायं शक्त्या कुर्वीत नैत्यकम् ॥ ३० ॥
आवाहितंयथापूर्वंराधाकृष्णंहृदम्बुजे
ध्यात्वा शेषाश्च तद्दत्तांगृहीत्वाशिरसादरात् । करण्डकेवाशय्यायांमन्दिरेप्रतिमांहरेः
संस्थापयेच्चाङ्गदेवान्स्वस्वस्थानंविसर्जयेत् ।

शाययित्वा पिधाय द्वार्वैश्वदेवं समाचरेत् ॥ ३२ ॥
प्रासादिकंहरेरन्नं स्वपोष्येभ्योविभज्यसः । स्वयंभुक्तवातत्कथाद्यैर्दिनशेषमतिक्रमेत्
महापूजाविधानेनप्रोक्तेनाऽनेनयोऽन्वहम् । भक्तया समर्च्चयेद्विष्णु स भवेत्तस्यपार्षदः
दिव्यं विमानमारुह्य भास्वरं देवतेप्सितम् ।
गोलोकाख्यं हरेर्द्धाम दिव्याङ्गो याति पूजकः ॥ ३५ ॥
फलाभिसन्धिना वाऽपि यस्तमर्चेद्द दिने दिने ।
सोऽपि धर्मं काममर्थं मोक्षं चाऽप्नोत्यभाप्सितम् ॥ ३६ ॥
इत्थं पूजाविधिकर्त्तुमशक्तो राधया सह । हरिमेकं यथा लब्धैरर्चेद्भक्त्योपचारकैः ॥
द्वादशाक्षरमन्त्रेणद्विजोऽन्योनाममन्त्रतः । श्रीराधाकृष्णमभ्यर्चेद्भक्तिरेवाऽत्रसिद्धिदा
एकादश्यां हरेर्जन्मोत्सवादौ तु विशेषतः ।
महापूजैव कर्त्तव्या स्वशक्त्याऽखिलवैष्णवैः ॥ ३९ ॥
प्रतिष्ठामात्रमपि यः कुर्यादन्यकृतालये । स सार्वभौमराज्यं वै प्राप्नुयान्नष्टकिल्बिषः
कारयेन्मन्दिरं रम्यं धनाढ्यश्च हरेर्द्दृढम् ।
यः स तु प्राप्नुयाद्राज्यंत्रैलोक्यस्याप्यकण्टकम् ॥ ४१ ॥
वृत्तिदानेन पूजायाः प्रवाहं वर्द्धयेत्तु यः । सपुमान्प्राप्नुयान्नूनंविष्णुलोकेमहत्सुखम्
प्रतिष्ठां मन्दिरं पूजां कारयेत्त्रीण्यपीह यः ।
समानैश्वर्यमाप्नोति वासुदेवस्य स ध्रुवम् ॥ ४३ ॥
हरेर्वृत्तिंहरेद्यस्तु कृतां स्वेन परेण वा । कल्पमेकं सवै भुङ्क्ते नरके यमयातनाः ॥
कर्त्ता कारयिता यश्च सहायश्चानुमोदकः । चतुर्णां हि फलेभागःसुकृतस्येतरस्य च
इति क्रियायोगविधिर्मया नारद! कीर्त्तितः ।
येनैकान्तिकधर्मोऽत्र सिद्ध्येत्तत्प्रवणात्मनाम् ॥ ४६ ॥
विषयांश्चिन्तयंश्चित्तो बहिःपूजां हरेश्चरन् । सम्भारेणापिमहतानयथोक्तंफलंलभेत्
इतस्ततो ग्राम्यसुखेभ्रमत्स्वीयं मनस्ततः । नियम्यविष्णुपूजायांमुमुक्षुःप्रयतोभवेत्
महाव्रता भूरितपस्विनोऽपि स्वधीतवेदा अपि बुद्धिमन्तः ।

साङ्ख्यं च योगं परिशीलयन्तः सिद्धिं न यान्त्येव विनाऽर्चनं हरेः ॥ ४६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवासुदेवमाहात्म्ये क्रियायोगे श्रीवासुदेवपूजाविधिनिरूपणं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

अष्टाङ्गयोगनिरूपणम्

स्कन्द उवाच

वासुदेवार्चनविधिं निशम्येत्थं स नारदः । प्रसन्नःपुनरप्राक्षीत्तं मुनीनां परं गुरुम् ॥

नारद उवाच

सम्यगुक्तो भगवता क्रियायोगो महाफलः ।
एकेन मनसा योऽसौ कार्यः सिद्धिमभीप्सुभिः ॥ २ ॥

मनसो निग्रहस्तत्रज्ञानिनामपि सद्गुरो !। दुष्करः किंपुनस्तर्हिनृणांकर्मात्मनांभुवि
तमृते तु हरेरर्चा नाभीष्टफलदायिनी । अतस्तन्निग्रहोपायमपि मे वक्तुमर्हसि ॥

स्कन्द उवाच

इत्यापृष्टः स मुनिना मुनीन्द्रः सर्वदर्शनः । नारायणो नरसखो नारदं तमभाषत ॥

श्रीनारायण उवाच

सत्यमेव मुने! वक्षि मनसोऽस्ति बलं महत् ।
जितेऽपि यस्मिन्विश्वासः शत्रुवन्न विवेकिनाम् ॥ ६ ॥
मनसा सदृशोऽन्यस्तु शत्रुर्नास्त्येव देहिनाम् ।
विष्णुध्यानाभ्यासयोगाग्निदर्पं तद्धि शाम्यति ॥ ७ ॥

अदान्ताश्ववदेवैतद्यतोऽस्ति दुरवग्रहम् । अतो वैराग्ययुक्पुम्भिः सदुपायैर्निगृह्यते

उपायास्तत्र बहवःसन्तितेष्वपिसन्मते । अष्टाङ्गयोगस्याभ्यासःश्रेष्ठःस्वयः फलप्रदः
यमाश्च नियमा ब्रह्मन्नासनान्यसुसंयमः । प्रत्याहारोधारणा च ध्यानमङ्गं तु सप्तमम्

समाधिश्चाष्टमं प्रोक्तं योगस्याऽनुक्रमेण वै ॥ १० ॥
तत्राऽहिंसाब्रह्मचर्यं सत्याऽस्तेयापरिग्रहाः ।
एते पञ्च यमाः प्रोक्ताः साधनीयाः प्रयत्नतः ॥ ११ ॥

शौचंतपश्चसन्तोषःस्वाध्यायोविष्णुपूजनम् । एतेच नियमापञ्चद्वितीयाङ्गतयामताः

परिहायाऽङ्गचाञ्चल्यं यथा सुखतया स्थितिः ।
तदासनं स्वस्तिकादिप्रोक्तं द्वन्द्वार्त्तिजिन्मुने !॥ १३ ॥

चरतां सर्वतोऽसूनामेकदेशेतु धारणम् । गुरूपदिष्टरीत्यैव प्राणायामः स उच्यते ॥
चले वायौचलंचित्तंस्थिरेतस्मिंस्थिरं ततः । सुदेशेऽयंसदाऽभ्यस्यः पूरकुम्भकरेचकैः
मनसेन्द्रियवृत्तीनां तत्तद्विषयतश्च यत् । आकर्षणं प्रतीचीनं प्रत्याहारः स ईरितः ॥
नाभ्याद्यन्यतमे स्थाने प्राणेन सह चेतसः । वासुदेवस्वरूपे यद्धारणं धारणोदिता ॥
एकैकावयवस्यैवचिन्तनंयत्पृथक्पृथक् । पदाब्जादेर्भगवतस्तद्ध्यानमितिकीर्तितम्
निरोधःप्राणमनसोरतिप्रेम्णाहरौतुयः । ससमाधिरितिप्रोक्तोयोगिनामभिवाञ्छितः

अङ्गैरष्टभिरेतैर्हि शिक्षितैः सिद्धसद्गुरोः ।
योगः सिद्ध्यति वै पुंसां समाधेः पक्वतात्मकः ॥ २० ॥

नैतादृशं परं सम्यङ्मनोनिग्रहसाधनम् । पुरुषाणां मुमुक्षूणामिति जानीहि नारद ॥

तपस्विनां महाशत्रोर्ब्रह्माण्डक्षोभकादपि ।
मदनान्न भयं किञ्चियोगिनस्त्वस्ति कर्हिचित् ॥ २२ ॥
आयास्यन्तं विहित्वैव सोऽन्तकालञ्च योगवित् ।
स्वातन्त्र्येणैव देहं स्वं त्यजतीत्थं समाधिना ॥ २३ ॥

पार्ष्णिभ्यांगुदमापीड्यवायुंपादद्वयस्थितम् । शनैःशनैःसमाकृष्यमृत्युस्थानंनयत्यमुम्
मनसा केशवं ध्यायंस्तन्मनुञ्चषडक्षरम् । जपंस्ततोऽमुंनयति वायुं स्थानं प्रजापतेः
ततो नाभिञ्च हृदयमुरः कण्ठञ्चयोगवित् । नयति भ्रुकुटिंवायुं वासुदेवपरायणः ॥

एतेषु षट्सु स्थानेषु त्वेकैकस्मिन्पृथक्पृथक् ।
योगी प्राणमनोक्षाणं निरोधश्च विसर्जनम् ॥
तावदभ्यसति स्वस्य यावत्स्यात्तत्स्वतन्त्रता ॥ २७ ॥

जितंजितं विहायैव स्थानं याति परम्परम् । प्राप्तस्यस्थानकंषष्ठंतदभ्यासेश्रमोनहि
सप्तच्छिद्राणि रुद्ध्वाऽथप्राणमक्षमनोयुतम् । प्रापय्यतालुव्रजतिब्रह्मरन्ध्रंसयोगवित्
मायामयपदार्थानां ततो हित्वैव वासनाः । स वासुदेवैकमनास्त्यजति स्वकलेवरम्
ततो भगवतोधाम श्रीकृष्णस्य तमपरम् । उपेत्य सेवमानस्तं नन्दते दिव्यविग्रहः
इति ते कथितो ब्रह्मन्योगशास्त्रस्यसंग्रहः । जित्वातेन मनः स्वीयं तमाराधयसर्वदा

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे-
श्रीवासुदेवमाहात्म्येऽष्टाङ्गयोगनिरूपणं नाम
त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

श्रीनरनारायणस्तुतिनिरूपणम्

स्कन्द उवाच

श्रुत्वैतत्सकलं धर्म्यं यथावद्भगवद्वचः । निःसंशयो मुनिः प्राह तं प्रणम्य कृताञ्जलिः

नारद उवाच

नष्टा मे संशयाः सर्वे प्रसादाद्भगवंस्तव । वासुदेवस्य माहात्म्यंमयाऽधिगतमञ्जसा
कञ्चित्कालमिहैवाऽयंतपःकुर्वंस्त्वयासह । शृण्वंश्चनित्यंज्ञानादिकरिष्येपरमात्मनः

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा नारदस्तत्र तेनचाप्यनुमोदितः । उवास दिव्यवर्षाणां सहस्रं स तपश्चरन्
शुश्राव चाऽनुदिवसं यथाकालं हरेर्मुखात् । धर्मज्ञानादि प्रत्यहं तत्र योगिराट्

स्नेहश्च परमस्प्राप स श्रीकृष्णेऽखिलात्मनि । गुणगानपरोनित्यमासभागवताग्रणीः
भक्तिनिष्ठांपरांप्राप्तमथ तं सिद्धयोगिनम् । उवाचभगवान्प्रीतः श्रेयस्कृत्सर्वदेहिनाम्

श्रीनारायण उवाच

सिद्धोऽसि त्वं महर्षेऽद्य गच्छलोकहितं कुरु। एकान्तधर्मं सर्वत्र प्रवर्त्तयितुमर्हसि

स्कन्द उवाच

इत्याज्ञां शिरसा तस्य स आदाय जगद्गुरोः ।
गच्छंस्ततस्तमस्तौषीत्प्रणम्य प्राञ्जलिः स्थितः ॥ ९ ॥

नारद उवाच

नमो नमस्ते भगवञ्जगद्गुरो! नारायणाऽप्राकृतदिव्यमूर्त्ते !।
अनन्तकल्याणगुणाकरस्त्वं दासे मयि प्रीततरः सदा स्याः ॥ १० ॥
त्वं वासुदेवोऽसि जगन्निवासः क्षेमाय लोकस्य तपः करोषि ।
योगेश्वरेशोपशमस्थ आत्मारामाधिपस्त्वं परहंससद्गुरुः ॥ ११ ॥
विभुर्ऋषीणामृषभोऽक्षरात्मा जीवेश्वराणाञ्च नियामकोऽसि ।
साक्षी महापूरुष आत्मतन्त्रः कालोऽभवद्यद्भ्रुकुटेर्महांश्च ॥ १२ ॥
सर्गादिलीलां जगतां त्वमीश करोषि मायापुरुषात्मनैव ।
तथाप्यकर्त्ता ननु निर्गुणोऽसि भूमा परब्रह्म परात्परश्च ॥ १३ ॥
सत्यः स्वयंज्योतिरतर्क्यशक्तिस्त्वं ब्रह्मभूतात्मविचिन्त्यमूर्त्तिः ।
बृहद्व्रताचार्य! महामुनीन्द्र! कन्दर्पदर्पापहरप्रताप ॥ १४ ॥
तपस्विनां ये रिपवः प्रसिद्धाः क्रोधो रसो मत्सरलोभमुख्याः ।
अप्याश्रमं तेऽपि कदाऽपि वेष्टुं नेमं क्षमा ह्येष तव प्रतापः ॥ १५ ॥
छन्दोमयो ज्ञानमयोऽमृताध्वा धर्मात्मको धर्मसर्गाभिपोष्टा।
उन्मूलिताधर्मसर्गो महात्मा त्वमव्ययश्चाक्षयोऽव्यक्तवन्धुः ॥ १६ ॥
निर्दोषरूपस्य तवाऽखिलाः क्रिया भवन्ति वै निर्गुणा निर्गुणस्य ।
धर्मार्थकामेप्सुभिरर्चनायस्त्वमीश्वरो नाथ! मुमुक्षुभिश्च ॥ १७ ॥

त्वं कालमायायमसंसृतिभ्यो महाभयात्पातुमेकः समर्थः।
भक्तापराधाननवेक्षमाणो महादयालुः किल भक्तवत्सलः ॥ १८ ॥
धृतावतारस्य हि नाममात्रं रूपञ्च वा यः स्मरेदन्तकाले।
सोऽपि प्रभो! घोरमहाघसंघात्सद्यो विमुक्तो दिवमाशु याति ॥ १९ ॥
तं त्वां विहायाऽत्र तु यो मनुष्यो देहे त्रिधातावपि दैहिकेषु।
जायाऽऽत्मजज्ञातिधनेषु सज्जते स मायया वञ्चित एव मूढः ॥ २० ॥
त्वद्भक्तियोग्यो नरदेह एव यं कामयन्तेऽपि च नाकसंस्थाः।
त्वद्भक्तिहीनं हि दिवोऽपि सौख्यमहं तु जाने नरकेण तुल्यम् ॥ २१ ॥
तपस्त्रिलोक्याः कुरुषे सुखाय तत्रापि ते भारतवासिपुंसु।
अनुग्रहो भूरितरो यदत्र कृतावतारो विचरन्विराजसे ॥ २२ ॥
तस्याऽऽश्रयं ये तव नाऽत्र कुर्वते त एव शास्त्रेषु मताः कृतघ्नाः।
अतस्तवैकाश्रयमेव बाढं कुर्वन्त्यजस्रं मयि तेऽस्तु तुष्टिः ॥ २३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवासुदेवमाहात्म्ये श्रीनरनारायणस्तुतिनिरूपणं नामैक-त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

ग्रन्थसम्प्रदायप्रवृत्तिनिरूपणम्

स्कन्द उवाच

इति स्तुत्वातमीशानंनारदःसययौततः। शम्याप्रासाभिधंब्रह्मन्व्यासस्याश्रममादितः
सादरं मानितस्तेन प्रत्युत्थानासनादिभिः। तस्मादेकान्तिकधर्मं प्राहजिज्ञासवेसच

ततो ब्रह्मसभां गत्वा ब्रह्मणः शृण्वतो मुनिः ।
देवान्पितॄन्महर्षींश्च तत्रस्थांस्तमुपादिशत् ॥ ३ ॥
तत्र स्थितो भास्करश्च धर्ममेतं पुनर्म्मुने । शुश्राव नारदात्सर्वं श्रुतं नारायणात्पुरा ॥
स प्राहाऽऽत्माग्रयायिभ्यो वालखिल्येभ्य आदरात् ।
मेरौ ते सङ्गतान्देवानिन्द्रादींश्च न्यशामयन् ॥ ५ ॥
तेभ्योऽसितो मुनिः श्रुत्वा धर्ममेतं द्विजोत्तम !।
पितृभ्यः कथयामास पितृलोकं गतः क्वचित् ॥ ६ ॥
पितरस्ते त्वर्यमाद्या ऊचिरे शन्तनुं नृतम् । स भीष्मायस्वपुत्रायकथयामासतत्त्वतः
सोऽपि भारतयुद्धान्ते धर्म्मराजाय पृच्छते । शयानः शरशय्यायां प्राह संसदि भूयसि
तत्र श्रुत्वा नारदोऽपि स्थितः सदसि सादरम् । कैलासेशङ्करंप्राहसचमांमुनिसत्तम
मया ते कथितंब्रह्मन्पृच्छतेधर्म्मवर्त्तिने । पात्रायैतत्प्रदातव्यमिति मां हिपिताऽब्रवीत्
येनयेन श्रुतं ह्येतन्माहात्म्यं सात्वताम्पतेः । ससतस्मिन्परां भक्तिंचकारस्वविमुक्तये
युधिष्ठिरोऽपि राजर्षिः श्रुत्वा भीष्मेण कीर्त्तितम् ।
माहात्म्यं देवकीसूनोर्म्मुमुदे भ्रातृभिः सह ॥ १२ ॥
तमात्मनो मातुलेयं सर्वकारणकारणम् । निशम्याऽऽश्चर्य्यजलधौनिममज्जमहामतिः
वासुदेवादिकं व्यूहं वाराहादींश्च सर्व्वशः । अवतारानपि नृपो मेनेऽस्यैव रमापतेः ॥
ततः सहानुजो राजा दिव्यमानुषविग्रहे । अत्यन्तं भक्तिमान्कृष्णे बभूव द्विजसत्तम!
श्रुत्वेमां च कथांसर्व्वेब्रह्मराजसुरर्षयः । सभायां तत्रयेचासंस्तेऽप्यभूवन्सविस्मयाः
कृष्णमेव परं ब्रह्म विदित्वा ते नराकृति । भक्तिं प्रपेदिरे तस्मिन्प्रणमन्तस्तमादरात्
इत्थंतस्याऽस्ति माहात्म्यमतस्त्वमपिसन्मते !। सर्वात्मनावासुदेवंतमेवभजभक्तितः
श्रीवासुदेवमाहात्म्यमेतत्ते कथितं मया । दुर्वासनोपशमनं भगवद्भक्तिवर्द्धनम् ॥ १८॥
कथितानि पुराणेऽत्र मयाख्यानानि यानि ते । तेषां सारइदंब्रह्मन्निर्म्मथ्यैवसमुद्धृतः
वेदोपनिषदां चैतद्रसो वै सांख्ययोगयोः । पञ्चरात्रस्यकृत्स्नस्यधर्म्मशास्त्रस्यचानघ
धन्यं यशस्यं चाऽऽयुष्यमेतत्स्वस्त्ययनं महत् । साक्षाद्भगवता गीतं सर्वाभद्रविनाशनम्

य एतच्छृणुयात्पुण्यं कीर्तयेदथ यः पठेत् । वासुदेवे भवेत्तेषामचला निर्मला मतिः॥
भक्ता एकान्तिकास्ते च भवेयुस्तस्य मानवाः । ब्रह्मरूपाब्रजन्त्यन्तेब्रह्मधामतमःपरम्
धर्मार्थी लभतेऽनेन धर्मं कामं च कामुकः ।
धनार्थी धनमाप्नोति मोक्षार्थी मोक्षमुत्तमम् ॥ २५ ॥
लभेत विद्यां विद्यार्थी मुच्येद्रुग्णश्चरोगतः । एतच्छ्रवणमात्रेणसर्वपापक्षयो भवेत्
ब्राह्मं तेजो लभेद्विप्रः क्षत्रियश्चपरेशताम् । धनं वैश्यःसुखंशूद्रःश्रवणादस्यचाप्नुयात्
एतच्छ्रुत्वा रणं गच्छन्विजयं चाऽऽप्नुयान्नृपः ।
प्राप्नुयात्स्त्री च सौभाग्यं कन्या च स्वेप्सितं वरम् ॥ २८ ॥
एतस्य श्रुतिकीर्त्तिभ्यां शास्त्रजातशिरोमणेः । यं यं कामयेत्कामंतंतंप्राप्नोतिमानवः
तस्मात्त्वं सर्वदा भक्त्या पठन्नेतद् द्विजोत्तम !।
कायवाणीमनोभिस्तं भजेथा भक्तवत्सलम् ॥ ३० ॥

सौतिरुवाच

एतन्महासेनमुखाब्जनिःसृतं सावर्णिरापीय वचोऽमृतं सः ।
चकार भक्तिं वसुदेवनन्दने नराकृतिब्रह्मणि सर्वमङ्गले ॥ ३१ ॥
यूयं च सर्वे निगमागमज्ञा ब्रह्मण्यदेवं भजनीयमीशम् ।
भजध्वमेकं तमुदारकीर्त्तिं श्रीवासुदेवं निजधर्मसंस्थाः ॥ ३२ ॥
गोलोकधामपतये प्रकाशचयमूर्त्तये । नमोऽस्तु वासुदेवाय भक्त्याऽऽनन्दविवृद्धये ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वासुदेवमाहात्म्ये ग्रन्थसम्प्रदायप्रवृत्तिनिरूपणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

समाप्तमिदं वासुदेवमाहात्म्यम् ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे द्वितीयं वैष्णवखण्डं सम्पूर्णम् ॥ २ ॥

——:o:——